भारत का नवीन इतिहास

हायर सेकन्डरी, प्री-यूनिवर्सिटी व इन्टरमीडियट
कक्षाओं के लिए

लेखक

एल. पी. वैश्य एम. ए.

प्रिंसिपल

अग्रवाल कॉलेज, जयपुर

तथा

हरिशंकर शर्मा एम. ए.

सुबोध कॉलेज, जयपुर

रमेश बुक डिपो

त्रिपोलिया बाजार

जयपुर

प्रकाशक
बृजमोहनलाल माहेश्वरी
रमेश बुक डिपो
जयपुर

मूल्य ८.५०

मुद्रक
अखिल भारतीय मुद्रणालय
जयपुर

दो शब्द

स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् भारतीय जन जीवन की गति–विधि में युगान्तरकारी परिवर्तन हुआ है ! सदियों से राजतन्त्र की बँधी प्रणाली में शासित देश अब प्रजातन्त्रात्मक शासन प्रणाली में स्वतन्त्रता पूर्वक अपनी प्रगति और उन्नति की विविध योजनायें बनाने में संलग्न हैं। राजनैतिक, सामाजिक, आर्थिक व सांस्कृतिक, जीवन के सभी क्षेत्रों में जनता का दृष्टिकोण बदल गया है। आज हम राजाओं, सामन्तों, सेनाओं आदि के विस्तृत वर्णन की अपेक्षा जन सामान्य व समाज की प्रगति की जानकारी में अधिक रुचि रखते हैं। फलतः नवीन इतिहास लेखन में इतिहासकार राजाओं के व्यक्तिगत जीवन का विस्तृत उल्लेख करने की अपेक्षा देश, राष्ट्र तथा सामान्य जनता की गति विधियों का विस्तृत वर्णन करना आवश्यक मानने लगे हैं।

इसमें सन्देह नहीं कि राजनैतिक घटनाओं और तथ्यों को जाने बिना देश काल का पूरा ज्ञान प्राप्त होना कठिन होता है और यह भी सत्य है कि प्राचीन और मध्यकालीन इतिहास में राजाओं व शासकों के कार्य का महत्वपूर्ण स्थान है क्योंकि राजाओं के प्रभावशाली व्यक्तित्व ने ही तत्कालीन जन–जीवन का संचालन किया है। इसलिए स्वतन्त्रता प्राप्ति से पूर्व हमारे इतिहासकारों ने कुछ तो अपने निजी कारणों से और कुछ समय की गति के अनुकूल शासकों तथा उनसे सम्बन्धित विषयों को ही इतिहास में प्रमुखता दी। किन्तु आज शासन में तथा देश के संचालन में जनता की आवाज प्रखर है। फलतः इतिहासकार के लिए यह आवश्यक हो गया है कि वह जन–जीवन को दृष्टिकोण में रख कर ही इतिहास की रचना करे।

प्रस्तुत पुस्तक इसी विचार धारा को ध्यान में रख कर लिखी गई है। पुस्तक में जहां राजनैतिक घटनाओं का उल्लेख केवल जानकारी देने के लिये किया गया है वहाँ जीवन के विभिन्न पहलुओं में जनता का क्या योग रहा है अथवा क्या देन रही है, इस बात पर विस्तार से विवेचन किया गया है। पुस्तक हायर सैकन्डरी व प्री–यूनिवर्सिटी के विद्यार्थियों के विशेष उपयोग के लिए लिखी गई है किन्तु बदलते हुए ऐतिहासिक अध्ययन की विचार धारा में रुचि रखने वाले पाठकों के लिए भी लाभदायक सिद्ध हो सकती है।

इतिहास के अध्ययन की पहली सीढ़ी सुदृढ़ तथा सही दिशा में ले जाने वाली हो, इसका विशेष ध्यान रखा गया है। यदि पाठक इस पुस्तक रूपी द्वार से निकल कर इतिहास के सागर में गोता खाने में सफल हुए तो लेखक अपना प्रयास सफल मानेंगे। पुस्तक के सम्बन्ध में पाठकों के सुझावों को लेखक सधन्यवाद स्वीकार करेंगे।

जयपुर
१५ अगस्त, १९६१

लेखक द्वय

विषय-सूची

प्रथम भाग

द्वितीय भाग

भारत का नवीन इतिहास

प्रथम अध्याय

"भौगोलिक व सामाजिक पृष्ठभूमि"

(१) प्रस्तावना।

(२) भौगोलिक विभाजन।

(३) वे भौगोलिक परिस्थितियाँ जिन्होंने भारत के इतिहास पर प्रभाव डाला।

(४) मौलिक एकता।

प्रस्तावना:—हिमालय से लेकर दक्षिण तक समस्त भूभाग को 'भरतखण्ड' नाम मिला है। विष्णु पुराण में उसी भरतखण्ड का वर्णन करते हुए लिखा है:—

"उत्तरे यत्समुद्रस्य हिमाद्रश्चैव दक्षिणम्।
वर्षं तद् भारतं नाम भारती यत्र संततिः ॥

अर्थात्:—जो भूमि समुद्र के उत्तर की ओर तथा हिमालय से दक्षिण की ओर फैली हुई है, वही भारतवर्ष है और उसकी सन्तान को भारती कहते हैं।

भारतवर्ष का विस्तार बहुत अधिक है। समस्त देश का क्षेत्रफल रूस को छोड़कर, समस्त योरप के बराबर है। यह ग्रेट ब्रिटेन से बीस गुना अधिक है। इसका क्षेत्रफल पाकिस्तान सहित १६ लाख वर्गमील है। यहाँ की जनसंख्या १९५१ में पाकिस्तान को छोड़कर ३८ करोड़ के लगभग थी। यहाँ ४० से अधिक विभिन्न जातियाँ निवास करती हैं और २०० विभिन्न भाषाओं का प्रयोग किया जाता है। यहाँ सामाजिक विकास की हर स्थिति के प्रतीक विद्यमान है। जंगल में शिकार खेलकर निर्वाह करने वाले प्रागैतिहासिक मनुष्य से लेकर आधुनिक भौतिक संस्कृति के प्रत्येक वैज्ञानिक यन्त्र से सुशोभित नागरिक यहाँ अब भी पाये जाते हैं।

अपने पड़ोसी 'पर्शियन्स' से पृथक होने के उपरान्त, आर्य सिन्धु नदी को पार कर आगे बढ़े और सात नदियों तक बढ़ते गये। उन्होंने इस देश का नाम 'सप्तसिन्धु' ही नहीं रखा अपितु इसी नाम से एक नयी राष्ट्रीयता को जन्म दिया जिसका वर्णन सबसे प्राचीन ग्रन्थ ऋग्वेद में भी आता है। इस देश की सात नदियों के कारण 'सप्त सिन्धु' नाम रखा गया था और इसी नाम से वेद-कालीन भारत को स्मरण किया जाता है। आर्य लोग उसी समय से 'सिन्धु' कहलाने लगे। पड़ोस के राष्ट्र उन्हें इसी

नाम से जानते थे। संस्कृत भाषा के 'स' अक्षर का प्राकृत भाषा में 'ह' के समान उच्चारण होता है। 'सप्त-सिन्धु' शब्द पर्शिया की प्राचीन पुस्तक 'अवस्ता' में 'हप्त हिन्दु' लिखा है। इसी से सम्बन्धित हिन्द व हिन्दुस्तान आदि शब्दों का प्रयोग मध्यकालीन लेखकों ने किया है।

भौगोलिक विभाजन:— भारतवर्ष में एक महाद्वीप होने के समस्त गुण विद्यमान हैं। उत्तर में हिमालय की शृंखला इसे समस्त एशिया से पृथक किये हुये है। पूर्व, पश्चिम व दक्षिण में बंगाल की खाड़ी, अरब सागर व हिन्द महासागर इसे समीपवर्ती देशों से पृथक किये हुए हैं। भौगोलिक विचार से हम भारत के चार भाग कर सकते हैं:—

(१) उत्तर का पहाड़ी प्रदेश जिसे पुराणों में 'पर्वताश्रयन्' कहा है। यह प्रदेश तराई के दलदल वाले जंगलों से हिमालय की पहाड़ियों तक विस्तृत है। इसमें काश्मीर, काँगड़ा, तेहरी, कुमाऊँ, नेपाल, सिकिम और भूटान आदि शामिल हैं।

(२) उत्तर का विशाल मैदान:—इसमें सिन्धु और उसकी सहायक नदियों की गेहूँ- उत्पादक समतल घाटियाँ, सिन्ध और राजपूताना के रेगिस्तान तथा वे उपजाऊ भाग जिनमें गंगा, यमुना तथा ब्रह्मपुत्र द्वारा सिंचाई होती है, सम्मिलित हैं।

(३) दक्षिणी मध्यभारत तथा दक्षिण के पठार, जो गंगा के मैदान के दक्षिण में विस्तृत हैं और शेष प्रायद्वीप से विन्ध्याचल, पश्चिमी तथा पूर्वी घाट द्वारा पृथक कर दिये गये हैं।

(४) दक्षिण के लम्बे और सकड़े सामुद्रिक किनारे के मैदान, जो दोनों घाटों से समुद्र तक प्रसारित हैं और जिनमें कोंकन, मलाबार जैसे समृद्धिशाली बन्ददरगाह तथा गोदावरी, कृष्णा व कावेरी के उपजाऊ डेल्टे सम्मिलित हैं।

प्रत्येक देश के इतिहास व संस्कृति के निर्माण में वहाँ की भौगोलिक स्थिति का प्रभाव होना अवश्यम्भावी है। फिर भारतवर्ष पर तो यह प्रभाव इतना अधिक है कि किसी और देश से इसकी तुलना नहीं की जा सकती। राजनैतिक व सांस्कृतिक दोनों ही क्षेत्र भौगोलिक प्रभाव से अछूते नहीं रहे। उत्तर की पहाड़ी शृंखलाओं के कारण आक्रमणकारी भारत में इस ओर से नहीं आ सके। जो कुछ उत्तर-पश्चिम की ओर से दर्रे खुले हैं, वहाँ से सदा आक्रमणकारी आते रहे हैं। इस विचार से इन दर्रों पर सुरक्षा का उचित प्रबन्ध रखना, भारत सरकार के लिए सदा आवश्यक रहा है। आर्य, परशियन, यूनानी, सिथियन, तुर्क, तातार तथा मंगोल इन्हीं खैबर, गोमल, बोलान, कुर्रम तथा तोची के दर्रों से आते रहे हैं। इतिहास में हमें ऐसे उदाहरण मिलेंगे, जहाँ जब जब इन दर्रों की रक्षा में भारत सरकार ने ढ़ील रखी है तब तब सदा कष्ट उठाया है। इन दर्रों से ही यात्रियों का तथा व्यापारियों का समागम भारत में होता रहा है तथा भारतीय संस्कृति का प्रसार हुआ है।

उत्तर का विशाल मैदान उपजाऊ भूमि लिए हुए है, इस कारण यह संग्रामों का मूल स्थान रहा है। यहाँ अच्छे अच्छे नगर तथा व्यापारिक केन्द्र हैं। प्राचीन समय में इस स्थान को ही 'आर्यावर्त्त' कहते थे। भारतीय सभ्यता व संस्कृति का यही केन्द्र था। यहाँ पर ही जैन व बौद्ध जैसे महान धार्मिक आन्दोलन हुए थे। यहाँ के मनुष्य हमेशा दर्शन व संस्कृति के उत्थान में लगे रहे तथापि उनके वैभव तथा उनकी सुख-समृद्धिशाली स्थिति देख आक्रमणकारी अधिक आकर्षित होने लगे। तराई तथा पानीपत के मैदान इसी भाग में सम्मिलित हैं।

दक्षिणी मध्यभारत तथा दक्षिण के पठार 'दक्षिण पथ' के नाम से प्रसिद्ध रहे हैं। यह भाग भौगोलिक हिसाब से आर्यावर्त्त से भिन्न रहा है। बाद में कभी कभी अशोक, समुद्रगुप्त अलाउद्दीन ख़िलजी, मुहम्मद तुग़लक़ तथा औरङ्गज़ेब आदि ने उत्तर व दक्षिण को राजनैतिक आधार पर एक करने के प्रयत्न किये हैं किन्तु ये दोनों भाग राजनैतिक व सांस्कृतिक एकता बहुत कम पा सके हैं। आधुनिक आवागमन के सुगम साधनों के कारण उत्तर व दक्षिण एक दूसरे के अधिक निकट आ पाये हैं।

दक्षिण के लम्बे व सकड़े सामुद्रिक किनारे के मैदान वाले मनुष्य अन्य दक्षिणी भाग वाले मनुष्यों से भी अलहदा ही रहे हैं। वे अब भी कुछ ऐसे रिवाजों का पालन करते हैं जो भारत में और कहीं नहीं मिलते हैं। पश्चिमी किनारे के सुदूर उत्तर में अधिकतर बड़े साम्राज्य स्थापित हुए हैं और सभ्य पुरुष बहुत पुराने समय से यहाँ रहते आये हैं। यहाँ के बन्दरगाहों से पश्चिम की ओर व्यापार होता रहा है। इसी प्रकार पूर्वी तट के बन्दरगाह पूर्वी जावा, सुमात्रा, ब्रह्मा, स्याम व इन्डोचीन से सम्बन्ध रखते आये हैं और भारतीय संस्कृति का प्रसार करते रहे हैं।

इस प्रकार हम भौगोलिक दृष्टि से भारत में सब प्रकार की विचित्रता पाते हैं। कहीं ऊँचे पहाड़ हैं और कहीं सपाट मैदान, कहीं शस्य श्यामल प्रदेश हैं और कहीं निर्जल मरुभूमि। आर्द्रतम और शुष्कतम, ठंडे-से-ठंडा और ऊष्ण-से-ऊष्ण सभी प्रकार का जलवायु, नाना प्रकार के वृक्ष वनस्पति और पशु पक्षी यहाँ मिलते हैं।

वे भौगोलिक परिस्थितियाँ जिन्होंने भारत के इतिहास पर प्रभाव डाला

डाक्टर राधा कुमुद मुखर्जी ने बतलाया है कि वे भौगोलिक परिस्थितियाँ जिन्होंने भारत के इतिहास पर प्रभाव डाला है पाँच हैं:—पृथकता, समागम, प्रसार, विभिन्नता तथा एकता।

पृथकता:—महाद्वीपों में सम्भवतः कोई भी भाग ऐसा नहीं है जिसे प्रकृति ने अन्य प्रदेशों से इतना पृथक किया हो जितना भारतवर्ष को किया है। उत्तर में हिमालय की श्रृंखलायें तथा दक्षिण, पूर्व, व पश्चिम में हिन्दमहासागर, बंगाल की खाड़ी व अरब

भाग भी एक दूसरे से प्रकृति ने पृथक कर दिये हैं। विन्ध्याचल की शृंखलायें तथा उसके घने जंगल समस्त युगों में उत्तरी व दक्षिणी भारत को पृथक करते रहे हैं। इसी कारण भारत के ये दो भाग आज दिन तक भी जाति, भाषा तथा सामाजिक आचार-विचार में नितान्त विभिन्नता लिये हुए हैं। दक्षिण का अपना स्वतन्त्र इतिहास रहा है।

समागमः—इतनी भौगोलिक पृथकता के होते हुए भी भारत में एक अद्भुत सामाजिक सम्मिश्रण मिलता है, जो प्रधानतया वाह्य संसार के समागम तथा आक्रमणों का फल है। अनन्तकाल से संसार की विचार धारा का यहाँ समागम होता रहा है, जो यहाँ की सभ्यता में नाना प्रकार के जातीय व सांस्कृतिक तत्वों का मिश्रण करता रहा है। ये तत्व प्राग्-द्रविड़, द्रविड़, आर्य, ईरानी, यूनानी, रोमन, सीथियन, हूण, मुसलमान व यूरोपियन आदि लोगों के हैं। ये प्रभाव उत्तर में खैबर व बोलन दर्रों से तथा जलमार्ग से भी प्रविष्ट होते रहे हैं।

प्रसारः—भारत का भौगोलिक प्रसार इतना है कि यह महाद्वीप कहलाने के योग्य है। इसके प्रान्तों का विस्तार भी बहुत है और इसी प्रकार आबादी भी। यह विस्तार यहाँ के इतिहास पर अधिक प्रभावशाली रहा है चूंकि इस विस्तार के कारण ही यहाँ भौगोलिक व सामाजिक विभिन्नताएँ विद्यमान हैं।

विभिन्नता:—भारत में तीनों प्रकार की जलवायु पाई जाती है। यहाँ वर्षा भी चेरापूँजी में ४८० इंच प्रतिवर्ष से सिन्ध व राजपूताना में ३ इंच प्रतिवर्ष तक मिलती है। उपज की भी उसी प्रकार विभिन्नता है। सामाजिक क्षेत्र में भी मनुष्य, भाषाएँ तथा धर्म विभिन्न प्रकार के पाये जाते हैं।

एकता:—सब प्रकार से विभिन्न और पृथक होते हुए भी हम भारत में एक प्रकार की एकता पाते हैं और वह है आन्तरिक तथा सांस्कृतिक एकता।

मौलिक एकताः—नाना प्रकार की जातियों के सम्पर्क से समृद्ध भारतीय संस्कृति की एक विशेषता यह रही है कि विविधताओं से परिपूर्ण होने पर भी यहाँ मौलिक एकता बनी रही है। "भारतीय दर्शन का उच्चतम आदर्श अनेकत्व में एकत्व ढूँढ़ता रहा है और इस देश की संस्कृति ने उसे क्रियात्मक रूप में खोज निकाला है।" इस प्रकार सम्पूर्ण विविधता वाह्य है। इसके आवरण में एक मौलिक एकता है। वस्तुतः वह एकता भौगोलिक तथा सांस्कृतिक एकता का परिणाम है। उत्तर की हिमालय की शृंखलाओं ने तथा दक्षिण के समुद्र ने जो भारतवर्ष को संसार से पृथक किये हुए है, एक विशेष प्रकार की ऋतु-पद्धति बनादी है। गर्मी में समुद्र से उठी वाष्प या तो हिमालय से टकरा कर वर्षा के रूप में बरस जाती है अथवा हिमालय की शिखा पर ही हिम का रूप धारण कर लेती है और वह हिम फिर ऊष्ण काल में पिघल कर नदियों में पानी के रूप में आकर समुद्र में चला जाता है। यह ऋतु-चक्र समस्त भारत में

एकसा चला आ रहा है। विभिन्न भाषाओं की वर्णमाला यहाँ एकसी है। भाषा विज्ञान के विद्वानों ने इन भाषाओं की व्युत्पत्ति अधिकतर एक ही आधार से की है। यहाँ की विभिन्न जातियों पर भारतीयता की अमिट छाप अंकित है। रिज़ले महोदय ने उचित ही कहा है, "भारत में दर्शन को भौतिक क्षेत्र में और सामाजिक रूप में भाषा, आचार और धर्म में जो विविधता दिखाई देती है, उसकी तह में हिमालय से कन्या कुमारी तक एक आन्तरिक एकता है।"

प्रो० हरिदत्त वेदालंकार ने भारत की एकता बतलाते हुए लिखा है, "यह एकता प्रधानत: संस्कृति के प्रसार से प्रादुर्भूत हुई और प्राचीन काल से उसे समूचे देश की विभिन्न जातियों को एक सूत्र में पिरोने में सफलता मिली। पंजाबी, बंगाली और मद्रासी आकार रूप-रंग, भाषा आदि में सब प्रकार से भिन्न हैं किन्तु आन्तरिक रूप से एक हैं। वे एक ही हिन्दू धर्म के अनुयायी हैं। उनके आदर्श पुरुष मर्यादा पुरुषोत्तम श्री राम और श्री कृष्ण एक से हैं। वे समान रूप से उपनिषद् धर्म-शास्त्र, गीता, रामायण और महाभारत, वेद, पुराण और ब्राह्मणों की प्रतिष्ठा करते हैं। गो, गंगा, गायत्री सर्वत्र पवित्र मानी जाती हैं। शिव, विष्णु, दुर्गा आदि पुराण प्रतिपादित देवी-देवताओं की सभी पूजा करते हैं। सारे देश में हिन्दुओं के पवित्र तीर्थ फैले हुये हैं। चारों दिशाओं के चारों धाम, उत्तर में बद्रीनाथ, दक्षिण में रामेश्वरम्, पूर्व में जगन्नाथपुरी, और पच्छिम में द्वारिकापुरी, भारत की सांस्कृतिक एकता और अखण्डता के पुष्ट प्रमाण हैं। मोक्ष प्रदान करने वाली पवित्र पुरियाँ, अयोध्या, मथुरा, काशी, काँची और अवन्ती सारे देश में बिखरी हुई हैं। प्राचीन काल से हिन्दू, गंगा, यमुना, सरस्वती, नर्मदा, सिन्धु और कावेरी को पूज्य मानते आये हैं। समूचे देश का सामाजिक संस्थान लगभग एकसा है; सब जगह वैदिक संस्कार और अनुष्ठान प्रचलित हैं; सर्वत्र जाति-भेद, वर्ण-व्यवस्था छूतछात का विचार समान रूप से माना जाता है। सारे भारत में रामायण और महाभारत की कथाऐं बड़े भाव से सुनी जाती हैं। पुराने जमाने में समूचे देश के विद्वत् समाज को एक सूत्र में पिरोने का काम पहले संस्कृत और फिर प्राकृत ने किया, भविष्य में यह कार्य हिन्दी से पूरा होगा।

इस प्रकार हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि भारतीय संस्कृति के विस्तार में जितना अधिक यहाँ की भौगोलिक स्थिति का प्रभाव पड़ा है, सम्भवत; और देशों में इतना नहीं पड़ा है।

अध्ययन के लिये संकेत

(१) विष्णु पुराण में भारत को 'भरतखण्ड' कहा है।

(२) भारत का क्षेत्रफल ब्रिटेन से बीस गुना है।

(३) भारतवर्ष में [illegible]

(४) भौगोलिक विचार से भारत के चार भाग हो सकते हैं।

(५) पृथकता, समागम, प्रसार, विभिन्नता व एकता, इन भौगोलिक परिस्थितियों ने भारत के इतिहास पर प्रभाव डाला है।

(६) भारत में सम्पूर्ण विविधता बाह्य है और इसके आवरण में एक मौलिक एकता है।

अभ्यासार्थ प्रश्न

(१) भौगोलिक विचार से भारत का विभाजन करते हुए यह बतलाइये कि इतिहास पर इस स्थिति का क्या प्रभाव पड़ा ?

1. Relate the Geographical divisions of India. How have they influenced the History of India ?

(२) उन भौगोलिक परिस्थितियों की विवेचना कीजिये जिन्होंने भारत के इतिहास को प्रभावित किया।

2. Discuss the Geographical features which have influenced the History of India.

(३) "भारत की सम्पूर्ण विविधता वाह्य है। इसके आवरण में एक मौलिक एकता है।" स्पष्ट कीजिये।

3. "The whole difference in Indian culture is external; in its veil is hidden the fundamental unity." Amplify this statement.

द्वितीय अध्याय

प्रागैतिहासिक संस्कृति

(१) प्रस्तावना

(२) प्राचीन पाषाण युग

(३) नवीन पाषाण युग

(४) धातु युग

प्रस्तावना: - प्रागैतिहासिक भारत का प्राकृतिक व मानवीय दोनों दृष्टिकोणों से अध्ययन करना आवश्यक है। भारत का भूखण्ड अनेक युगों में निर्मित हुआ है। मानव का इतिहास भूखण्ड के इतिहास के बहुत समय बाद से प्रारम्भ होता है। सभ्य युग के समाजोत्थान के पूर्व भारत में भी अन्य देशों की भाँति ही ऐतिहासिक समाज का क्रमिक विकास हुआ है। पहले घोर बर्बर, फिर बर्बर युग, उसके उपरान्त पूर्व तथा उत्तर पाषाण काल, तदनन्तर द्रविड़ और सिन्ध-संस्कृति युग। इस सिन्धुघाटी की सभ्यता के युग तक समाज को किन किन संघर्ष अथवा किन किन परिस्थतियों में होकर चलना पड़ा, यह स्पष्ट नहीं है। प्राचीनतम निवासियों के जीवन के सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त करना असम्भव है। उनके हमें ऐसे कोई चिन्ह उपलब्ध नहीं हैं जो उनके जीवन, रहन-सहन इत्यादि का अध्ययन करने में लाभप्रद हों। इसी कारण भारत का इतिहास कुछ सहस्त्र वर्षों का ही इतिहास हो सका है, अधिक नहीं।

सबसे प्राचीन मनुष्य के बारे में इतिहास हमें कोई ज्ञान नहीं दे सकता। इतिहास उन्हीं मनुष्यों को सबसे प्राचीन बतला सका है जिनके कुछ भद्दे पत्थर के औजार मिल सके हैं। इस प्रकार इन औजारों व अस्त्रों की उपलब्धि के आधार पर उस युग को विभाजित किया गया है:— प्राचीन पाषाण युग (Palaeolithio age), नवीन युग (Neolithio age), तथा धातु युग (Metal age).

प्राचीन पाषाण युग:—भूगर्भवेत्ताओं ने अपने अन्वेषणों द्वारा भारत के दक्षिणी प्रायद्वीप को ही सबसे प्राचीन माना है। इस कारण प्राचीनतम निवासियों का वृतान्त वहाँ के भग्नावशेषों से ही प्राप्त हो सकता है। इन लोगों के कोई विशेष चिन्ह हमें नहीं मिले हैं। इन औजारों के आधार पर ही हम उनके जीवन व रहन-सहन के बारे में कुछ जान सकते हैं। इन पत्थर के भौंडे औजारों को लकड़ी या हड्डी के बेंटों में लगाकर काम में लाया जाता था। उन्हें घिस कर ठीक प्रकार से उन पर धार भी नहीं दी गई मालूम पड़ती है। वे तो केवल तोड़े हुये पत्थर के टुकड़े मात्र हैं। ये औजार ही जंगली

जन्तुओं के शिकार खेलने तथा लकड़ी इत्यादि काटने के काम में लाये जाते थे। अधिकतर ऐसे औजार दक्षिणी प्रायद्वीप में पाये जाते हैं। यह तो स्पष्ट है कि उन लोगों को धातु के प्रयोग का ज्ञान नहीं था और उनमें से अधिकांश लोगों के नियत घर नहीं थे, यद्यपि उनमें से कुछ ने किसी प्रकार के वृक्षों व पत्तों की झोपड़ियाँ शायद बनाई हों। उन्हें सदा जंगली जन्तुओं का (उदाहरणार्थ हाथी, शेर, चीता तथा भेड़िये इत्यादि) भय लगता रहा है। वे जानवरों का कच्चा मांस तथा जंगलों से फल
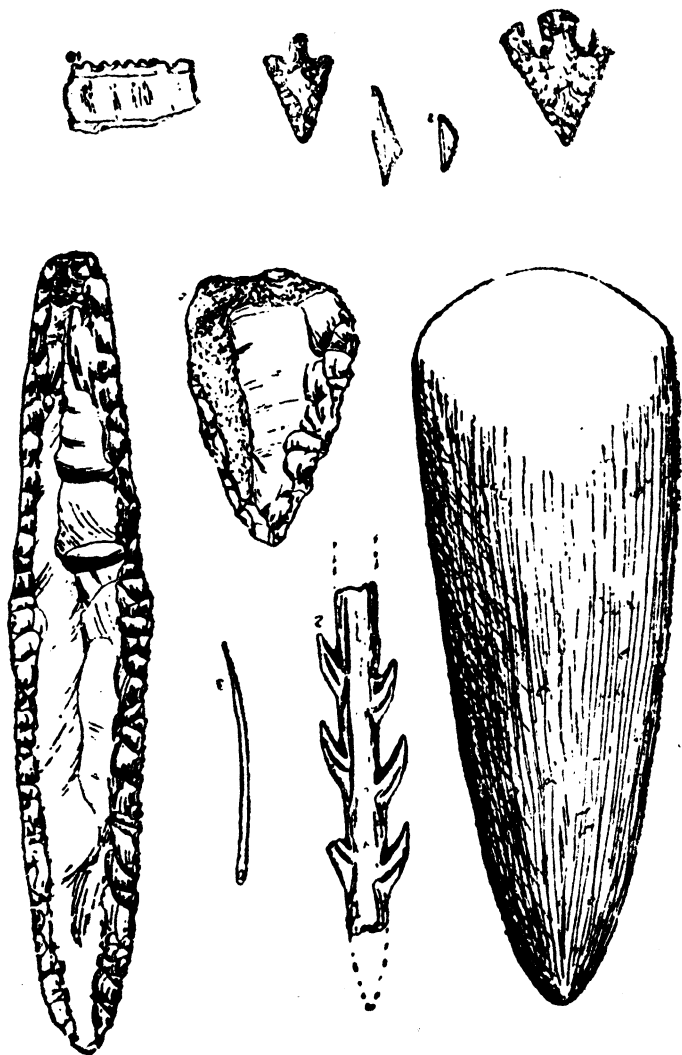
चित्र १
(प्राचीन पाषाण काल के औज़ार अस्त्र आदि)

फूल आदि खाकर ही निर्वाह करते रहे हैं। उन्हें कृषि आदि का ज्ञान नहीं था। वे आग जलाना तथा मिट्टी के बर्तन बनाना नहीं जानते थे।

इस प्रकार इस काल के लोग सांस्कृतिक वातावरण से बिलकुल परे थे। उन्हें बर्बर कहना उचित होगा—ऐसे बर्बर जो पशुओं से कुछ ही उन्नत थे। इनके वंशज आज भी अण्डमन टापू में पाये जाते हैं। इनका कद छोटा, रंग काला और नाक चपटी होती थी। ये नीग्रो जाति के लोगों में से थे। आधुनिक सांस्कृतिक ज्ञान में हमें पहला पग इसी जाति के लोगों का उठाया हुआ मिलता है।

नवीन पाषाण युग:—निरन्तर उन्नति की ओर अग्रसर होना मनुष्य का स्वाभाविक गुण है और इसी गुण के कारण वह पशुओं से भिन्न है। फलतः समय व्यतीत होने के साथ साथ ही मनुष्य के ज्ञान का विकास हुआ और उसने प्राकृतिक साधनों पर दिन प्रतिदिन अधिकार बढ़ाना प्रारम्भ किया। यह अनुमान लगाना कठिन है कि इस अधिकार प्राप्ति में मनुष्य को कितने सहस्त्र वर्षों तक संघर्ष करना पड़ा। प्राचीन पाषाण काल से नवीन पाषाण काल तक पहुँचने में ही काफी उसे समय लगा होगा। नवीन पाषाणकाल में भी उसे पत्थर के औजारों पर ही आश्रित रहना पड़ा। उसे सोने के अतिरिक्त और किसी धातु के प्रयोग का ज्ञान नहीं था। इस समय इतनी उन्नति अवश्य हो चुकी थी कि औज़ार पहले जैसे भोंडे अथवा भद्दे नहीं थे, अपितु ठाक तरह कटे हुए, घिस कर तेज़ धार वाले तथा भली प्रकार पॉलिश किये गये थे। इन औज़ारों में और प्राचीन पाषाण युग के औज़ारों में विभिन्नता स्पष्ट रूप से दिखलाई देती है। इस प्रकार के औज़ारों के भग्नावशेष भारत के हर भाग में पाये जाते हैं किन्तु मद्रास प्रान्त के बेलरी जिले में एक प्रकार का इन औजारों का कारखाना ही मिला है, जहां इनके बनाये जाने की विविध सीढ़ियाँ वहाँ प्राप्त औजारों से समझी जा सकती हैं।

नवीन पाषाण काल में हम विभिन्न दिशाओं में उन्नति की ओर अग्रसर हुए मनुष्य का रूप देखते हैं। इस समय भूमि जोती जाने लगी तथा फल और अनाज उत्पन्न किये जाने लगे। बाँस तथा लकड़ी के टुकड़ों की रगड़ से अग्नि पैदा करना भी इस समय के मनुष्य को आगया था। पहले हाथों से और फिर चाक की सहायता से मिट्टी के बर्तन बनाये जाने लगे। ये लोग गुफाओं में रहते थे और आखेट अथवा नृत्य के दृश्यों को भित्तियों पर चित्रित कर उन्हें सुसज्जित करते थे। इनके कुछ अवशेष अब भी उत्तरी तथा दक्षिणी भारत में मिलते हैं। ये लोग मिट्टी के बर्तनों पर भी चित्र अंकित करते थे। नावें बनाकर समुद्र की यात्रायें की जाने लगी थीं। रूई और ऊन कात कर वस्त्र बुने जाने लगे थे। मृतक मनुष्यों को गाड़ा जाता था। नवीन पाषाण काल की कब्रें अब भी भारत के कुछ भागों में पाई गई हैं। यदा कदा मृतक शरीर को बड़े बड़े चौखटों में भी रखा जाता था और ...

गये हैं। कब्रों पर चौकोर तीन या चार खड़े पत्थरों पर आश्रित बड़ी बड़ी छतें होती थीं। इस प्रकार की नवीन पाषाण काल की कब्रें समस्त संसार में एक सी हैं।

इन दोनों प्राक्-ऐतिहासिक युगों की केवल यही समानता है कि दोनों युगों में पत्थर के औज़ार काम में लाये जाते थे और इन औज़ारों और गुफाओं के अतिरिक्त हमें कोई अन्य चिन्ह इनके बारे में मिलते भी नहीं हैं। दोनों काल के मनुष्यों में क्या सम्बन्ध रहा है इसके भी हमारे पास पर्याप्त प्रमाण नहीं हैं। कुछ लोग नवीन पाषाण काल के मनुष्यों को प्राचीन पाषाण काल के मनुष्यों का वंशज मानते हैं। अन्य इतिहासकारों की धारणा है कि ऐसा कहना न केवल निर्मूल है अपितु दोनों काल के मनुष्यों के बीच सहस्त्रों वर्षों का अन्तर भी है और बिना निश्चित आधार के किसी भी निष्कर्ष पर पहुँचना कठिन है।

धातु युग:—परन्तु सब इतिहासकर इस बात में सहमत हैं कि नवीन पाषाण काल के मनुष्य अवश्य ही आगे आने वाले मनुष्यां के पूर्वज रहे हैं। ये आगे आने वाले मनुष्य धातु के प्रयोग के ज्ञान में प्रगति कर चुके थे किन्तु यह कार्य भी सहस्त्रों वर्षों में हुआ प्रतीत होता है। काफी समय तक पत्थर व धातुओं के औज़ार एक साथ काम में आते रहे। प्रारम्भिक धातु युग के औज़ारों का और नवीन पाषाण युग के औज़ारों का आकार भी समान था किन्तु धातु प्रयोग में भारत के भिन्न भिन्न भागों में समानता नहीं रही। उत्तरी भारत में साधारण अस्त्रों व औज़ारों में पत्थर की जगह ताँबा काम में लाया जाने लगा। ताँबे के बने हुए कुल्हाड़ियाँ, कटारें, भाले इत्यादि देश के भिन्न भिन्न भागों में पाये गये हैं। अनेक शताब्दियों बाद ताँबे की जगह लोहा काम में लाया गया है। इस प्रकार हम उत्तरी भारत में ताम्रयुग तथा प्रारम्भिक लौह युग में विभिन्नता पाते हैं, किन्तु दक्षिणी भारत में पाषाण युग के ठीक बाद से लौह युग प्रारम्भ होता है और हमें ताम्रयुग का कोई चिन्ह नहीं मिलता।

इस प्रकार ताम्र तथा लौह युग के साथ साथ ही हमें प्रागैतिहासिक काल की समाप्ति करनी पड़ती है चूँकि इसके बाद का समस्त इतिहास कई अन्य साधनों पर आधारित है। ताम्र युग के लिए तो हमें सिन्धु-घाटी के भग्नावशेष प्रचुर मात्रा में प्राप्त हैं जिनसे हम उस समय की संस्कृति का अनुमान कर सकते हैं।

अध्ययन के लिए संकेत

(१) मानव का इतिहास भूखंड के इतिहास के बहुत बाद से प्रारम्भ होता है।

(२) सबसे प्राचीन मनुष्य के बारे में इतिहास हमें कोई ज्ञान नहीं दे सकता।

(३) भारत का दक्षिणी प्रायद्वीप सबसे प्राचीन है।

(४) प्राचीन पाषाण युग के मनुष्य बर्बर थे।

(५) नवीन पाषाण काल में मनुष्य विभिन्न दिशाओं में उन्नति कर चुके थे।
(६) दक्षिणी भारत में पाषाण काल के ठीक बाद से लौह युग प्रारम्भ होता है।

अभ्यासार्थ प्रश्न

(१) प्रागैतिहासिक कालीन संस्कृति का वर्णन करो।

1. Describe the salient features of Pre-Historic culture.

(२) प्राचीन पाषाण-युगीन संस्कृति तथा नवीन पाषाण-युगीन संस्कृति में क्या अन्तर है? विस्तार से उल्लेख करो।

2. Bring out clearly the difference between the cultures of Old Stone Age and of New Stone Age.

तृतीय अध्याय

प्राचीन भारत का इतिहास जानने के साधन

(१) प्रस्तावना

(२) धर्म ग्रन्थ और साहित्य

(३) वैदेशिक विवरण

(४) पुरातत्व सम्बन्धी आधार

प्रस्तावना:—भारत एक विशाल देश है। इसे एक उपमहाद्वीप की संज्ञा दी जाती है। इस देश में अनेक धर्म, जाति व भाषा का प्राचुर्य रहा है। इसमें सन्देह नहीं भारत का इतिहास अत्यन्त प्राचीन काल का इतिहास है किन्तु प्राचीन भारत के इतिहास के निर्माण में अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। कुछ विदेशी लेखक तो सिकन्दर की विजय से पहले के भारत के इतिहास को मान्यता देने के लिए तैयार ही नहीं हैं। इसके कारण स्पष्ट हैं। प्राचीन भारत के इतिहास जानने के लिए ऐतिहासिक ग्रन्थों का नितान्त अभाव है। किन्तु धार्मिक व आध्यात्मिक ग्रन्थों की प्रचुरता मिलती है। इसका कारण यह है कि तत्कालीन लेखकों का धार्मिक तथा आध्यात्मिक दृष्टिकोण ही था अतः उनके ग्रन्थों से भारतीय इतिहास का तिथिपरक ज्ञान प्राप्त करना सम्भव न हो सका। राजनीति को छोड़कर जीवन के प्रत्येक अंग की विस्तृत व्याख्या की गई है। अतः हमें तत्कालीन सभ्यता व संस्कृति के जानने के साधन तो प्राप्त हैं किन्तु राजनैतिक जीवन के नहीं। इसीलिए लिवि के "बुक ऑव किंग्स", हेरोडोटस् के 'हिस्ट्रीज़' तथा टेसीटस के "अनल्स" जैसे बहुमूल्य ऐतिहासिक ग्रन्थ हमें यहां नहीं मिलते हैं। लगभग पिछले पचास वर्षों से विदेशी व भारतीय इतिहासकार प्राचीन भारत के इतिहास जानने की सामग्री की खोज में संलग्न रहे हैं और उन्हें आशातीत सफलता भी मिली है।

प्राचीन भारत के राजनैतिक व सांस्कृतिक इतिहास जानने में सबसे बड़ी कठिनाई भौगोलिक और तिथिक्रम सम्बन्धी हैं। हजारों वर्षों के कालक्रम में यहां अनेक नदियाँ सूख गईं, कुछ नदियों ने अपने मार्ग पूर्णतया बदल दिये और नगर तो सहस्रों की संख्या में नष्ट हो गये या कर दिये गये। इसी प्रकार पौराणिक गाथाओं में केवल वंशानुचरित होने के कारण तिथिक्रम ठीक तरह नहीं बैठ पाता है। प्राचीन इतिहास में हमें लगभग ४० विभिन्न सम्वतों का उल्लेख मिलता है जिनका ईसवी सन् अथवा प्रचलित सम्वतों से सम्बन्ध नहीं बैठता है। यही कारण है कि कालीदास जैसे महान कवि का काल निर्णय आज तक विवादास्पद है।

इन सब कठिनाइयों को पार करते हुए इतिहासकारों ने धैर्य और दत्तचित्तता से उपलब्ध साधनों का प्रयोग कर प्राचीन इतिहास जानने का सफल प्रयास किया है। इन साधनों का हम निम्नलिखित तीन श्रेणियों में विभाजन कर अवलोकन करेंगे— धर्म ग्रन्थ और साहित्य, वैदेशिक विवरण तथा पुरातत्व सम्बन्धी आधार।

धर्म ग्रन्थ और साहित्य:—इस श्रेणी में हम उन अन ऐतिहासिक ग्रन्थों की गणना करते हैं जो प्रधानतया धार्मिक तथा साहित्यिक हैं और जिनके ऐतिहासिक तथ्य भी यत्र तत्र विकीर्ण कर दिये गये हैं। इन ग्रन्थों में हम हमारा सम्पूर्ण वैदिक साहित्य महाकाव्य, पुराण, बौद्ध तथा जैन धार्मिक ग्रन्थ मानते हैं। ईसा से लगभग एक सहस्त्र वर्ष पूर्व तक के आर्यों के इतिहास का आधार वेद हैं और फिर बाद के लगभग पांच-छः सौ वर्षों का ज्ञान हमें सूत्र-साहित्य, उपनिषद् आदि से होता है। हमें इन सब ग्रन्थों से सामाजिक इतिहास का ही ज्ञान हो पाता है राजनैतिक का नहीं। वेदों से हमे आर्यों के भारत में क्रमिक प्रसार तथा तत्कालीन सामाजिक, आर्थिक व राजनैतिक दशा का बोध होता है। इसके पश्चात् ऐतिहासिक कथाओं का क्रमबद्ध विवरण पुराणों मिलता है। किन्तु इनमें से वास्तविक इतिहास निकालना बड़ा ही कठिन काम है। इनमें अनेक स्थानों पर विरोधाभास तथा असंगत कथानक हैं। इन ग्रन्थों का पूर्ण रूप से अन्वेषण की दृष्टि से अभी तक अध्ययन होना भी शेष है। बौद्ध ग्रन्थ पिटक निकाय, जातक आदि से हमें अनेक ऐतिहासिक, तथ्यों की जानकारी होती है। जैन ग्रन्थ कल्पसूत्र 'उत्तराज्झयनसूत्र' आदि में अनेक ऐतिहासिक कथाएँ हैं जिनका उपयोग किया जा स

ज्योतिष शास्त्र का ग्रन्थ "गर्ग संहिता" भी ऐतिहासिक तथ्यों पर प्रकाश डालता है। कालिदास व भास के नाटक, पाणिनी का अष्टाध्यायी तथा पातञ्जलि के महाभाष्य आदि ग्रन्थ भी इतिहास जानने में सहायक हैं। कुछ तामिल ग्रन्थ जैसे 'चोलवंश चरित' तथा 'राजराज-शोलन-उक्र' भी इसी श्रेणी में आते हैं।

तत्पश्चात् महाभारत व रामायण दो महाकाव्यों से हमें तत्कालीन सामाजिक व धार्मिक दशा का काफी ज्ञान होता है। कई इतिहासकार इन्हें ऐतिहासिक ग्रन्थ भी मानते हैं किन्तु राजनैतिक इतिहास की जानकारी के लिए ये ग्रन्थ अधिक सहायक सिद्ध नहीं हुए हैं और इनमें वर्णित कथाएँ कभी कभी गल्प का स्वरूप भी धारण कर लेती हैं।

कुछ ऐसा साहित्य भी सहायक सिद्ध हुआ है जो यद्यपि राजपुरुषों की जीवनियों के ही रूप में है, परन्तु उससे उस समय के इतिहास की जानकारी में काफी सहायता मिलती है। कल्हण की 'राजतरंगिणी' जो दूसरे लेखकों द्वारा लिखित इतिहास ग्रन्थों की सहायता से लिखा गया एक ऐतिहासिक ग्रन्थ है, इतिहास की आधुनिक व्याख्या के अत्यन्त निकटतम है। यह ग्रन्थ १२ वीं सदी में लिखा गया था जो काश्मीर के इतिहास

से सम्बन्धित एक प्रामाणिक ग्रन्थ है। कौटिल्य का 'अर्थ शास्त्र', बाण भट्ट का 'हर्षचरित' विल्हण का 'विक्रमांक देव चरित, भवभूति का उत्तर रामचरित, चन्दबरदाई का 'पृथ्वीराज रासो' महाकाव्य आदि ऐसे ग्रन्थ हैं जिनसे इतिहास को श्रृँखलाबद्ध करने में सहायता मिलती है।

वैदेशिक विवरण:—प्राचीन भारत के इतिहास की जानकारी में जितनी सहायता विदेशी लेखकों से मिलती है उतनी सम्भवतः अन्य किसी साधन से नहीं मिलती। इन विदेशी लेखकों में यूनान, रोम, चीन, तिब्बत तथा फारस आदि देशों के यात्री तथा इतिहास-लेखक सम्मिलित हैं। इन लेखकों में क्विनतस् कर्तिस, दियोदोरस, एरिमन, प्लूतार्क प्रमुख हैं। अन्य यूनानी लेखकों में हीरोडोटस् तथा टेशियस् हैं। हेरोडोटस् ने पांचवी शताब्दी में भारत तथा फारस राज्य के सम्बन्ध में लिखा है। हमें चीनी यात्रियों के विवरण से भी बहुत सहायता मिलती है। चीनी इतिहासकार सुमाशीन ने ईसा से लगभग १०० वर्ष पूर्व लिखित अपने ग्रन्थ में भारत का विवरण दिया है। फाह्यान (३६६–४१४ ई.) युवेनच्वांग (६८६–४५ ई.) तथा इत्सिंग आदि यात्रियों ने भारत की सामाजिक, राजनैतिक और सांस्कृतिक दशा का अपनी आँखों देखा हाल लिखा है।

सैल्यूकस के राजदूत मेगस्थनीज़ की प्रसिद्ध पुस्तक 'इण्डीका' (३०० वर्ष ई. पू) एक प्रमाणिक ग्रन्थ है। स्ट्रैबो, प्लिनी तथा एरिमन ने भी उपयोगी सामग्री दी है। तिब्बत के लामा तारानाथ के ग्रन्थ भी सहायक हैं। मुसलमान इतिहासकारों से भारत की ग्यारहवीं व बारहवीं शताब्दी की दशा का विवरण मिलता है। प्रसिद्ध विद्वान अलबरूनी ने भारतीय साहित्य, दर्शन व संस्कृति पर बहुत सी टिप्प ्णियाँ लिखी हैं।

पुरातत्व सम्बन्धी आधार:—"इतिहास-सम्बन्धी लिखित सामग्री से भी अधिक मूल्यवान हमारे लिए पुरातत्व-विषयक वह सामग्री है, जो स्थूल इतिहास है और अनेक युगों के धर्म, कला, संस्कृति, समाज-व्यवस्था और राजनैतिक सत्ता के क्रमिक विकास को हमारे सामने प्रस्तुत करती है।" 'हड़प्पा' और 'मोहनजोदड़ो' की खुदाई ने प्रागैतिहासिक काल की सामग्री प्रस्तुत की। अभिलेख प्राचीन इतिहास जानने के लिए विश्वसनीय साधन हैं। एक अंग्रेज इतिहासकार का कहना है कि "प्राचीन भारत के राजनैतिक इतिहास का ज्ञान हमें केवल अभिलेखों के धैर्य पूर्ण अध्ययन से प्राप्त होता है....इनसे बिना कठिनता के किसी तिथि का निश्चय किया जा सकता है अथवा एकरूपता स्थापित की जा सकती है और यह उसमें क्रम उत्पन्न करते हैं जो हमें साहित्य, परम्परागत कथाओं, सिक्कों, कला, शिल्प अथवा अन्य किसी साधन से ज्ञात होता है।" अशोक के अभिलेखों की संख्या अपार है। अनेक शिलालेख विदेशों में भी पाये गये हैं।

इसी प्रकार भग्नावशेषों में बहुत से स्तूप, मन्दिर, बिहार और मूर्त्तियों से यह पता चलता है कि किस समय कौनसा धर्म अथवा कैसी सामाजिक स्थिति रही होगी।

विदेशी लेखों में एशिया माइनर के बोगज्-कोई लेख, ईरान में परसोपोलिस तथा नक्शरुस्तम के लेखक प्रसिद्ध हैं। प्राचीन मुद्रा से भी बड़ी सहायता मिली है। सिक्कों से हमें राजाओं के नाम तथा क्रमगत वंशावली, तिथियाँ आदि मिलती हैं। ये सिक्के ईसा से २०० वर्ष पूर्व से लेकर ३०० ई० तक विशेष महत्व के हैं। दक्षिणी भारत में मिले कुछ रोमन सिक्कों से भारत और रोम के बीच व्यापारिक सम्बन्धों का पता चलता है।

इस प्रकार प्राचीन इतिहास को जानने में विभिन्न बिखरे साधनों का उपयोग बड़े धैर्य तथा परिश्रम के साथ करना पड़ता है। डा० स्मिथ का कहना है कि "प्राचीन भारत के इतिहास जानने के लिए तथ्यों का अभाव नहीं है वरन् तिथिक्रम की कठिनाई है। प्राचीन भारत के इतिहासकार के पास पर्याप्त नामों की सूची, परम्परागत कथायें, देवी देवताओं की कथायें आदि हैं।"

अध्ययन के लिए संकेत

(१) प्राचीन भारत का इतिहास जानने के लिए ऐतिहासिक ग्रन्थों का नितान्त अभाव है किन्तु,अन्य साधनों का प्राचुर्य है।

(२) प्राचीन भारत के राजनैतिक इतिहास जानने में सबसे बड़ी कठिनाई तिथिक्रम सम्बन्धी है।

(३) कल्हण की 'राजतरंगिणी' इतिहास की आधुनिक व्याख्या के अत्यन्त निकटतम है।

(४) विदेशी लेखकों के ग्रन्थों से तथा अभिलेख व सिक्कों के बिना प्राचीन भारत के इतिहास की जानकारी शायद नहीं हो पाती।

अभ्यासार्थ प्रश्न

(१) प्राचीन भारत के इतिहास जानने के साधनों की विस्तृत व्याख्या कीजिये।

1. Explain the principal sources of information for the history of ancient India.

चतुर्थ अध्याय

भारत की संस्कृति के निर्माण में विभिन्न जातियों का योग

(१) प्रस्तावना

(२) प्रारम्भिक अथवा जंगली जातियाँ–कोल, भील, गोंड, सन्थाल इत्यादि ।

(३) मंगोल, द्रविड़, आर्य, ईरानी, यूनानी, शक और कुषाण, हूण, मुसलमान, यूरोपियन ।

प्रस्तावना:—संस्कृति निर्माण में अनेक जातियों का योग रहता है तथा उसके [illegible]ाण में कई युग लगते हैं और लगते रहेंगे । इस सम्बन्ध में श्री भगवतशरण उपाध्याय के विचार उल्लेखनीय हैं । उनका कथन है कि "आज की भारतीय संस्कृति जातियों और युगों की सामूहिक देन है । जिसे हम आज भारतीय संस्कृति कहते हैं वास्तव में वह विविध जातियों के योग से निर्मित और विकसित हुई है । भारत विविध जनाचरों का संग्रहालय बन गया है और उसकी संस्कृति में अनेक संस्कृतियों तथा अनेक जातियों की सामाजिक विशेषताओं का सम्मिश्रण है । आज ये सारी परस्पर विरोधी विशेषताएँ भारतीय संस्कृति के रसायन कलश में घुल मिलकर एक और उसकी अपनी हो गई है । वास्तव में देश-विशेष की सांस्कृतिक पवित्रता उसी प्रकार असत्य और निरर्थक है जिस प्रकार जाति-विशेष की रक्त शुद्धता । स्थान विशेष की संस्कृति निस्सन्देह एक सामूहिक योग है जिसके निर्माता बहुसंख्यक और परस्पर विरोधी हैं । सदियों के आयात-निर्यात और जातियों के सम्मिश्रण से संस्कृति को रूप मिलता है । भारत इस प्रकार के जातीय सम्मेलन तथा सम्मिश्रण का अपूर्व क्षेत्र रहा है । यहां शक्तियों का संघर्ष हुआ है और शक्तियाँ अनन्तः घुल-मिलकर एक हो गई हैं । भारतीय सीमाओं पर विदेशी जातियों की जब जब कुमक दिखाई पड़ी, तात्कालिक भारतीयों में रोष पूर्ण प्रतिक्रिया हुई, फिर द्वन्द्व छिड़ गया और अन्त में एक जातीय सामन्जस्य का जन्म हुआ । संघर्ष करने वाले दोनों पक्षों की विशेषताएँ मिल गई । एक नई संस्कृति का रूप निखरा । विकास के प्राणभूत दो विरोधी शक्तियों की यह संघर्षात्मक एकता थी जिसने इस सांस्कृतिक द्वन्द्वात्मकता को चरितार्थ किया । जातियां आईं, उनका परस्पर संघर्ष हुआ और उनके रक्त-मिश्रण से एक तीसरी जाति का प्रादुर्भाव हुआ । एक ने दूसरे पर जाने-अनजाने अपनी गहरी सांस्कृतिक छाप डाली, तथा दूसरी ने उसे जाने-अनजाने स्वीकार किया । इस आदान-प्रदान के फलस्वरूप भारत की इस अपनी संस्कृति का कलेवर बना । आगमन, संघर्ष, निर्माण, हमारी संस्कृति की तीन आधारभूत परिस्थितियाँ हैं । इस एकीभूत विरोधात्मकता का अध्ययन अत्यन्त रुचिकर है ।"

भूगर्भवेत्ताओं का कथन है कि भारत में निश्चित रूप से यह बतलाना कि प्रथम मनुष्य कब से निवास करने लगा कठिन है। उनका कहना है कि भारत पहले एक ओर से दक्षिणी अफ्रीका तथा दूसरी ओर से आस्ट्रेलिया की भूमि से मिला हुआ था। यह भूमि सहस्रों वर्षों तक एक होकर रही। तदुपरान्त अफ्रीका और भारत तथा आस्ट्रेलिया और भारत के बीच की भूमि समुद्र के अन्तर्गत हो गई। अब भी हड्डियों के अवशेष तथा, पेड़ पौधों की किस्में जो दक्षिणी अफ्रीका में पाई जाती हैं, इस विचार की पुष्टि करते हैं।

यह बतलाना कठिन है कि भारत का प्रथम मनुष्य आस्ट्रेलिया से आया अथवा अफ्रीका से, किन्तु इतना निश्चित है कि भारत में मनुष्य के निवास करने के सर्व प्रथम अवशेष दक्षिण में ही उपलब्ध हैं। प्राचीन पाषाण-काल के भद्दे औज़ार भी दक्षिण में ही पाये जाते हैं। उत्तरी भारत में भी मनुष्य धीरे धीरे निवास करने लगा और सहस्त्रों वर्षों के व्यतीत होने पर द्रविड़, आर्य, फारसी, यूनानी, शक, यूची, हूण, मुसलमान तथा योरप निवासी भारत में एक के बाद दूसरे आकर रहने लगे। आज का भारत निवासी इन विभिन्न जातियों के रक्त के मिश्रण से बना है। किस में किन किन जातियों का किस औसत में रक्त मिला है, यह तर्क बतलाना असम्भव सा हो गया है। इन विविध जातियों ने ही यहां की संस्कृति के निर्माण में काफी मात्रा में योग दिया है। इस कारण इन जातियों के बारे में तथा उनकी सांस्कृतिक देन के बारे में कुछ जानकारी आवश्यक है। यदि भारत के निवासियों की जाँच उनकी शारीरिक बनावट तथा भाषा के अनुसार की जावे तो विभिन्न श्रेणियाँ स्पष्टतया देखने में आवेंगी।

प्रारम्भिक अथवा जंगली जातियाँ:—इस श्रेणी में कोल, भील, गोंड तथा सन्थाल इत्यादि जातियाँ पाई जाती हैं। शारीरिक बनावट में इन लोगों का छोटा कद, दबी नाक, मोटे बाल और काला रंग होता है। आधुनिक भारत में कोल और सन्थाल जातियाँ उड़ीसा तथा छोटा नागपुर में, भील राजस्थान, विन्ध्य प्रदेश तथा मध्य-भारत में और गोंड मध्य प्रदेश के कुछ भागों में पाये जाते हैं। इनकी अपनी विचित्र भाषा है जिसके अवशेष भारत में उत्तर में पंजाब से लेकर दक्षिण में मद्रास तक पाये जाते हैं। इनकी भाषा अधिकतर पॉलीनेशिया, मेलेनेशिया और मेडेगास्कर की भाषा से सम्बन्धित है। इससे हम इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि किसी समय इस समस्त भूमितल में एक ही जाति के मनुष्य निवास करते थे और काफी समय बाद इस जाति की शाखाएँ विभिन्न स्थानों पर फैल गईं। इस बारे में विद्वान अभी तक एक मत नहीं हैं कि भारत के मूल-निवासी ये लोग ही थे अथवा अन्य जातियों की भाँति ये लोग भी कभी बाहर से आये थे। ये अब भी असभ्य हैं। इतना निश्चित है कि किसी समय ये विस्तृत भूमितल पर बसे हुए थे और धीरे धीरे किसी अन्य शक्तिशाली जाति ने, शायद द्रविड़ों ने इन्हें पीछे हटाया और ये लोग घाटियों में और जंगलों में सुरक्षित प्रकार से रहने लगे।

डा० राधाकुमुद मुखर्जी के अनुसार भारत में उत्तर पाषाण-काल की संस्कृति तथा मिट्टी के बर्तन बनाने की कला इन जातियों की ही देन है। इन जातियों की भारत को सबसे बड़ी देन इनकी भाषा है जो चिरकाल से चली आ रही है।

अन्य आधुनिक जातियाँ:—भारत में जो अन्य जातियाँ आईं उनमें प्रमुख मंगोल, द्रविड़, आर्य, ईरानी, यूनानी, शक और कुषाण, हूण, मुसलमान तथा यूरोपियन हैं।

मंगोल:—भारत में कुछ ऐसी जाति के लोग हैं जो आकार में उसी जाति के मालूम पड़ते हैं जिसके तिब्बत, चीन, जापान, स्याम अथवा ब्रह्मा के रहने वाले हैं। इनके शारीरिक आकार मंगोल जैसे हैं। इनके दाढ़ी नहीं होती, रंग कुछ पीलापन लिए हुए है, कद छोटा, नाक चपटी, मुँह चौड़े और चेहरे की उठी हड्डियाँ होती हैं। ऐसे लोगों के मूल निवासस्थान तिब्बत तथा मंगोलिया माने गये हैं। वे भारत में उत्तर-पूर्व के दर्रों से आये और आर्यों ने उन्हें निकाला या अपने में मिला लिया। आधुनिक भारत में ये लोग हिमालय की तराई, सिक्किम, अल्मोड़ा, गढ़वाल, भूटान तथा आसाम की पहाड़ियों में पाये जाते हैं। गोरखे, भूतिया तथा खलिस इन्ही मंगोल जाति के लोगों के वंशज हैं। मोहन-जो-दड़ो में पाये गये सिर की हड्डियों के अवशेष तथा मिट्टी के बर्तनों पर बने चित्र मंगोल जाति के चिन्ह लिए हुए हैं। इस कारण इन लोगों की संस्कृति काफी उन्नत प्रतीत होती है।

द्रविड़:—आर्यों से पूर्व आने वाली जातियों में द्रविड़ों का विशेष स्थान है। द्रविड़ मूल-निवासी कहाँ के थे, यहं गहन तर्क का विषय रहा है। कुछ इतिहासवेत्ता उन्हें पाषाण- कालीन मनुष्य की ही सन्तति मानते हैं और कुछ उन्हें कोल, भील, सन्थाल इत्यादि जातियों से अधिक सभ्य बतलाकर इस विचार का विरोध करते हैं। अन्य लोग इन्हें नीग्रो जाति के वंशज मानने हैं। कुछ ने उन्हें सिन्धु-घाटी के मनुष्यों से सम्बन्धित किया है। अधिकतर इतिहासकारों को यही मान्य है कि ये लोग भी उत्तर-पश्चिम के पहाड़ी मार्गों से भारत में आये।

द्रविड़ों की सभ्यता अन्य जातियों से अधिक उन्नत थी। इन्होंने कोल इत्यादि जाति के लोगों को भारत के उत्तरी उपजाऊ भागों से मार भगाया, जिससे वे जातियाँ कन्दराओं तथा जंगलों में निवास करने लगीं। सहस्त्रों वर्षों के उपरान्त आर्यों ने इन्हें उत्तर से निकाला और तब से ये लोग धीरे धीरे दक्षिण की ओर जाकर वहां बस गये। बंगाल तथा उत्तर प्रदेश के निवासियों की अब भी द्रविड़ों के समान शारीरिक बनावट है।

द्रविड़ अधिक सांस्कृतिक उन्नति कर चुके थे। ये लोग बड़े सीधे और शान्तिप्रिय थे। इनका उद्योग कृषि था। ये अस्त्र-शस्त्र, सोने के आभूषण तथा चीनी के बर्तन बनाने की कला से परिचित थे। इन्होंने बड़े बड़े सुन्दर नगर निर्माण किये थे और

ये प्राचीन मिश्र, फारस, मेसोपोटेमिया, बेबीलोन, एशिया-माइनर तथा पैलेस्टाइन से व्यापार करते थे। अधिकतर हाथीदांत का व सोने का सामान, चावल, सागवान की लकड़ी, मोर, बन्दर इत्यादि उस समय यहां से विदेशों को भेजे जाते थे। उनकी भाषा जो संस्कृत भाषा से भिन्न थी, उन्नत दशा में थी। आधुनिक दक्षिण की भाषाएँ तेलगू, तामिल, कनारी, मलयालम तथा तूलू उनकी भाषा के ही अंश हैं।

इनके समाज में 'मातृक' प्रथा प्रचलित थी अर्थात् बच्चे अपने माता के वंश के उत्तराधिकारी समझे जाते थे, पिता के वंश के नहीं। समाज झुंडों में बंटा हुआ था और प्रत्येक झुंड अपने को प्रकृति की किसी एक वस्तु से सम्बन्धित समझता था, अधिकतर पशुओं से। वे अधिकतर प्राकृतिक वस्तुओं की तथा मातृ-शक्ति की उपासना करते थे। आर्यों के आगमन के उपरान्त इनका उनसे निरन्तर संघर्ष होता रहा और दक्षिण में हटकर ये लोग अपनी मौलिक संस्कृति को बहुत समय तक अपनाये रहे। यद्यपि आर्य-संस्कृति से ये पूर्णतया प्रभावित हुए फिर भी कुछ मौलिक सांस्कृतिक बातों का ये लोग अन्त तक अनुकरण करते रहे और इस कारण कई बातों में इनकी संस्कृति आर्यों से भिन्न रही। द्रविड़ों में वर्णाश्रम तथा जाति-भेद नहीं था। ये अपने रक्त-सम्बन्धियों में विवाह आदि कर सकते थे। इनमें उत्तराधिकारित्व माता की ओर से था तथा इनका रहन-सहन, रीति-रिवाज, धर्म तथा भाषा आर्यों से भिन्न थे।

आर्यः—आर्यों का गेहुंआ रंग, ऊँचा कद, उभरा माथा तथा लम्बे बाल थे। इन लोगों के भारत आने के समय के विषय में भी इतिहासकार एक मत नहीं हैं। इतना अवश्य है कि ये लोग उत्तर-पश्चिम के दर्रों से आये और द्रविड़ों से संघर्ष कर पंजाब में बस गये। द्रविड़ों को उत्तर से दक्षिण की ओर हटना पड़ा और आर्य उत्तरी भारत में बस गये। उन्होंने उस भाग का नाम आर्यावर्त्त रखा। धीरे धीरे ये समस्त भारत में फैल गये। दक्षिण में भी आक्रमण कर इन्होंने द्रविड़ों को पराजित किया और उनमें अपनी संस्कृति का प्रसार किया। प्रारम्भ में आर्य द्रविड़ों को घृणा की दृष्टि से देखते थे और उन्हें 'दस्यु', 'दास' इत्यादि नामों से सम्बोधित करते थे। फिर ये दोनों परस्पर घुल-मिल गये। आज का भारतीय समाज इन दोनों की ही सन्तान है। आर्यों की शारीरिक बनावट इन जातियों के सम्मिश्रण से जाती रही है। आज की भारतीय संस्कृति अधिक मात्रा में उसका ही अवशेष है। आर्यों की संस्कृति का विस्तृत वर्णन अन्य स्थान पर किया जावेगा।

ईरानीः—विदेशी आक्रमणकारियों में ईरानियों का एक विशेष स्थान है। आर्य और ईरानी एक ही जाति की शाखाएँ हैं। इस कारण उनके आचार-विचार तथा उनकी संस्कृति लगभग समान ही रही है। फिर भी दोनों के द्वारा पृथक संस्कृतियों का निर्माण हुआ है।

[illegible]:—ये लोग भी मध्य-एशिया के ही निवासी थे जो मंगोलों की भाँति क्रूर तथा बर्बर थे। ये लोग शक्तिशाली थे और लगभग पाँचवीं व छठी शताब्दी में श्वेत हूणों ने भारत पर आक्रमण किया था। इन लोगों ने भारत में बसकर यहाँ की संस्कृति को स्वीकार किया। आधुनिक भारत के जाट, गुर्जर इत्यादि इन्हीं की सन्तान माने जाते हैं।

मुसलमान:—ये लोग सातवीं शताब्दी में भारत में मध्य-एशिया से आये। मुसलमानों की विभिन्न जातियाँ अरब, पठान, अफगान, मंगोल इत्यादि सभी निरन्तर यहाँ आती रहीं। सातवीं शताब्दि में अरबों ने सिन्ध विजय किया किन्तु वह विजय अस्थाई सिद्ध हुई। अरबों ने भारतीय संस्कृति से कई बातें लीं। किन्तु इसके उपरान्त लगभग सात सौ वर्ष तक जो मुसलमानों व मुगलों का राज्य भारतवर्ष में रहा, उससे भारतीय संस्कृति अछूती न रह सकी। दोनों का पारस्परिक प्रभाव गहरा पड़ा। नई कला की उत्पत्ति हुई और भारतवर्ष में दोनों जातियों में सम्बन्ध स्थापित हुए। निस्सन्देह मुसलमान संस्कृति से आर्य बहुत प्रभावित हुए। इसका वर्णन भी यथा स्थान किया जावेगा।

यूरोप निवासी:—ये लोग सोलहवीं शताब्दी से ही भारत में जल-मार्ग से आने लगे थे। १८ वीं शताब्दी से इन्होंने साम्राज्य स्थापित करना प्रारम्भ किया। इनमें प्रारम्भ में पुर्तगालवासी, डच, फ्रांसीसी तथा अंग्रेज़ ही आये थे। निरन्तर संघर्ष के उपरान्त अंग्रेज विजयी हुए और उन्होंने अपना साम्राज्य स्थापित किया। अँग्रेज़ शासन जो सन् १९४७ तक चला, राजनैतिक दृष्टि से भी बढ़कर सांस्कृतिक दृष्टि से महत्वपूर्ण रहा। भारतीय संस्कृति पूर्ण रूप से पाश्चात्य संस्कृति द्वारा अँग्रेजों के समय में ही प्रभावित हुई। भारतीय दासता के कारण पाश्चात्य संस्कृति के गुणों को न अपना सके अपितु वाह्य आडम्बर की भूल भुलैया में पड़कर उन्होंने अपनी ही प्राचीन संस्कृति पर कुठाराघात किया।

अध्ययन के लिए संकेत

(१) भारतीय संस्कृति जातियों और युगों की सामूहिक देन है।

(२) भारत में प्रथम मानव कब से निवास करने लगा—यह बतलाना कठिन है।

(३) किन्तु यहाँ प्रथम मानव दक्षिण में रहता था।

(४) कोल, भील, गोंड तथा सन्थाल प्रारम्भिक जंगली जातियाँ थीं।

(५) द्रविड़ जाति इन सबमें अत्यन्त विकसित संस्कृति लिए हुए थी।

(६) आर्यों ने भारत को महानतम् आदर्श दिये।

अभ्यासार्थ प्रश्न

(१) भारतीय सांस्कृतिक निर्माण में विभिन्न जातियों का क्या योग रहा है ?

(1) What part has been played by the different tribes in the development of Indian culture ?

(२) द्रविड़ों की सभ्यता पर प्रकाश डालिए ।

(2) Trace out the Dravidian civilisation.

पंचम अध्याय

सिन्धु घाटी की सभ्यता

(१) प्रस्तावना
(२) नगर
(३) विशाल सार्वजनिक स्नानागार
(४) कृषि
(५) भोजन
(६) वस्त्र तथा आभूषण
(७) गृहस्थ की वस्तुएँ
(८) पालतू जानवर
(९) युद्ध के हथियार
(१०) मुहरें
(११) कला कौशल तथा व्यापार
(१२) अन्त्येष्टि क्रिया
(१३) धर्म
(१४) विनाश
(१५) निष्कर्ष
(१६) सिन्धु-सभ्यता का स्रोत

प्रस्तावना:—कुछ वर्षों पूर्व भारत का इतिहास आर्यों के आगमन से प्रारम्भ होता था। १९२२ ई० की खुदाई के बाद मोहन-जो-दड़ो तथा हड़प्पा में ऐसे अवशेष मिले हैं, जो मिश्र, मेसोपोटेमिया तथा क्रीट की संस्कृति से समता रखते हैं। ये अवशेष विशेषतया सुमेरिया के अवशेषों से अधिक मिलते जुलते हैं जिससे यह बतलाना कठिन पड़ता है कि दोनों में से किसने किसको प्रभावित किया। इतना निश्चित है कि यह उसकी समकालीन थी और मेसोपोटेमिया, मिश्र और क्रीट की सभ्यताओं से भारत का व्यापारिक सम्बन्ध था।

नील, दजला और फरात नदियों की भाँति सिन्धु भी एक ऐसी नदी है जिसके किनारे पर लगभग ५००० वर्ष पूर्व एक बहुत ऊँची संस्कृति फली फूली। आधुनिक भारतीय संस्कृति जातियों और युगों की सामूहिक देन है। यह संस्कृति विविध जातियों के योग से निर्मित और विकसित हुई है। भारत में विभिन्न जातियाँ व शक्तियाँ परस्पर विरोध कर एक हो गई हैं और इस प्रकार दो नहीं अनेकों विरोधी दलों की विशेषताओं ने मिलकर संस्कृति का रूप लिया।

भारतवर्ष के अतीत का सर्व प्रथम चित्र हमें सिन्धु घाटी की सभ्यता से मिलता है, जिसके खण्डहर सिन्ध के मोहन-जो-दड़ो (शवों की राशि) और पश्चिमि पंजाब में हड़प्पा आदि नगरों में ३२५० और २६५० ई० पू० की सभ्यता पर प्रकाश डालते

बीच मांटगोमरी जिले में स्थित हैं। सन् १६२१ ई० में हड़प्पा में श्री दयाराम साहनी ने तथा १६२२ ई० में मोहन-जो-दड़ो में श्री आर० डी० बनर्जी ने खुदाई कराकर अनुसन्धान का कार्य प्रारम्भ किया जिसे १० वर्षों तक चलाकर आर्थिक कठिनाइयों के कारण स्थगित किया गया। तत्कालीन पुरातत्व विभाग के अध्यक्ष सर जॉन मार्शल ने भी बड़ी रुचि से इस कार्य में योग दिया। जिस समय की संस्कृति हमें प्राप्त है उस समय सिन्ध में घना जंगल था और पानी की बहुतायत थी। मोहन-जो-दड़ो दृश्य की सतह ६० से २० फीट की ऊँचाई तक ढेरों में दबी हुई थी। इन ढेरों की चोटी से और नीचे पानी की सतह तक खोदने से सात तह निकली हैं जो बतलाती हैं कि कम से कम सात बार नगर बसाया गया। इनमें प्रारम्भ की तीन तह बाद के समय की हैं, आगे की तीन उससे कुछ पहले के समय की हैं, और अन्तिम एक प्रारम्भिक समय की है।

आज मोहन-जो-दड़ो के भग्नावशेष ही प्राप्त हैं। किसी समय वह समृद्ध और वैभवशाली नगर रहा होगा। नगर-निर्माण एक निश्चित व सुन्दर योजना के अनुसार किया गया था। सड़कें काफी चौड़ी मिली हैं और समकोण पर एक दूसरे को काटती हुई पूर्व से पश्चिम तथा उत्तर से दक्षिण को जाती थीं। यहां की खोज का वृतान्त इस प्रकार दिया जा सकता है।

नगर:—नगर अत्यन्त विशाल था। निवास-गृहों की संख्या भी अधिक थी और उसमें सब प्रकार के निवास-स्थान विद्यमान थे। छोटे दो कमरों के मकान से लेकर बड़े बड़े प्रासाद जिनकी सामने की लम्बाई ८५ फीट और परकोटे की दीवार ४ से ५ फीट तक थी, पाये गये हैं। इमारतें पक्की ईंट की बनाई जाती थीं जिनमें पत्थर का प्रयोग नहीं किया जाता था, चूँकि इस प्रदेश में पत्थर का अभाव था। निवास गृहों के अतिरिक्त कुछ और विशाल भवन थे, जिनमें कुछ में ८० फीट चौकोर कमरे स्तम्भों के आधार पर आधारित थे। वे शायद प्रासाद, मन्दिर इत्यादि रहे हों। सड़कों पर गन्दा पानी निकलने के लिए नालियाँ बनी हुई थीं और घरों में कूड़ा करकट जमा करने के लिए टोकरियाँ रखी जाती थीं।

विशाल सार्वजनिक स्नानागार:—यह एक प्रमुख स्थान था। एक बड़ा चौकोर स्थान बीच में बना था और चारों ओर कमरे तथा बरामदे बने हुए थे। कुछ में उष्ण जल का प्रबन्ध भी था। चौकोर स्थानों के बीच में ३६ फीट लम्बा, २३ फीट चौड़ा और ८ फीट गहरा एक तैरने का तालाब था। इसमें उतरने के लिए दोनों ओर सीढ़ियाँ थीं और एक समीपस्थ कमरे में कुएँ से जल प्राप्ति होती थी। एक बड़ी नाली से गंदा पानी निकाला जाता था। यह स्नानागार १८० फीट लम्बा और १०८ फीट चौड़ा था और उसकी बाहरी दीवार ६ फीट मोटी थी।

मोहन जोदड़ो
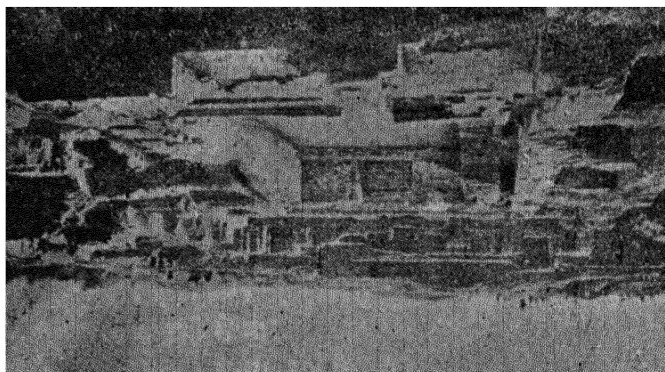
विशाल स्नानगार
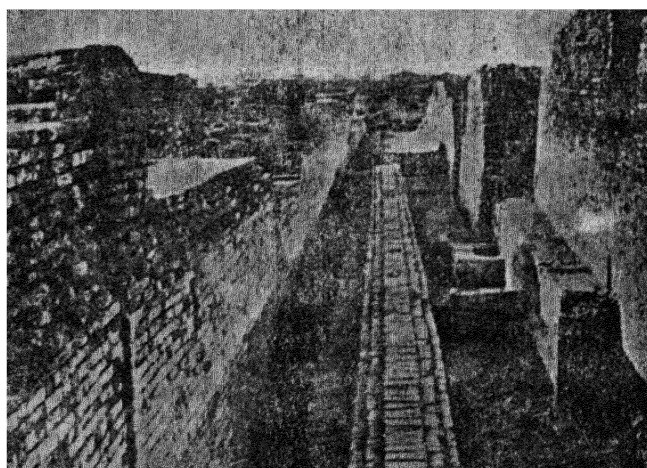
गंदा पानी निकालने की नाली

कृषि:—मोहन-जो-दड़ो की खुदाई में गेंहूं तथा जौ मिले हैं। विद्वानों का मत है कि उस युग में सिन्ध की भूमि अत्यन्त उपजाऊ रही होगी और वहाँ प्रचुर मात्रा में वर्षा होती होगी। वहाँ मिला गेहूं उस जाति का ही है जो पंजाब में आज भी उगाया जाता है। निस्सन्देह जौ उस जाति का नहीं मिलता है। हड़प्पा के लोग फलियाँ, खजूर, तिल तथा तरबूज से परिचित थे। इसी प्रकार भिन्न भिन्न रंगों से सुसज्जित एक मिट्टी के बर्तन पर नारियल तथा अनार जैसा चित्रण है।

भोजनः—गेहूं खास खाद्य पदार्थ था। मछली, दूध व फलादि भी काम में लाये जाते थे। मनुष्य गाय, शूकर, घड़ियाल, कछुए व भेड़ आदि का मांस खाते थे। अनाज कूटने की ओखली और गेहूं आदि पीसने की चक्कियाँ भी मिली हैं।

वस्त्र तथा आभूषणः—उनकी पोशाक सादा थी। सूती कपड़े व ऊनी कपड़े काम में लाये जाते थे। एक प्रकार का शाल काम में लाया जाता था जो हाथ के नीचे होता हुआ बांए कन्धे पर से निकलता था। बाल पीछे की ओर कंघी किये जाते थे। स्त्री व पुरुष दोनों आभूषणों का प्रयोग करते थे। हार, कान की बालियाँ, कड़े, करधनी इत्यादि स्त्री तथा पुरुषों के मुख्य आभूषण थे। धनी लोगों के आभूषण सोना, चांदी, हाथी-दांत, फियास इत्यादि के बनते थे तथा गरीब लोगों के आभूषण तांबा, मिट्टी, हड्डी इत्यादि के बनते थे।

गृहस्थी की वस्तुएँ:—सिन्ध निवासी अधिकतर मिट्टी के बरतनों का प्रयोग करते थे। अनेकों रकाबियाँ, प्याले, सुराहियाँ और घड़े पाये गये हैं। कहीं कहीं उन पर चमकीली पॉलिश भी की जाती थी। उन पर अनेकों प्रकार के पक्षी, पशु, वृक्षों आदि के चित्र बने होते थे। तांबे, चांदी तथा काँसे के बर्तनों का प्रयोग मालूम था। चूँकि लोहे की किसी प्रकार की वस्तु नहीं उपलब्ध हुई है, इससे कहा जा सकता है कि लोहे का प्रयोग प्रायः नहीं था। कातने की मिट्टी की बनी तकलियाँ, हड्डी की बनी सुइयें व कंघे तथा तांबे व कांसे की बनी हुई कुल्हाड़ी, छैनी, चाकू खुरपे, पत्तियाँ इत्यादि पाये गये हैं।

पालतू जानवरः—बैल, भैंस, भेड़, सूअर, ऊँट व हाथी की हड्डियाँ पाई गई हैं और कुत्ते व घोड़ों के उस समय वर्तमान होने के चिन्ह भी पाये गये हैं। बिल्ली का कोई चिन्ह नहीं मिला है। जंगली पशुओं में गैंडा, बन्दर, रीछ, चीता, खरगोश भी पाये जाते थे, कुब्बड़दार बैल तो यहाँ की खास वस्तु थी। इन पशुओं के चित्रण मुहरों तथा ताम्र पत्रों पर पाये गये हैं।

युद्ध के हथियारः—इस युग में पत्थर के बने हथियारों के साथ साथ पीतल तथा तांबे की वस्तु का प्रयोग भी होता था। किन्तु इनके हथियार बहुत घटिया किस्म के होते थे। इससे मालूम होता है कि ये लोग लड़ाकू नहीं थे। ढाल, कवच आदि रक्षा के हथियार भी नहीं मिले हैं।

मुहरें:—लगभग ५५० मुहरें प्राप्त हुई हैं, जो पत्थर व अनेक रंगों के समुद्री पत्थरों व गारे की बनी हुई थीं। इनमें से अनेकों के ऊपर किसी न किसी पशु का चित्र अंकित है। इन चित्रों के ऊपर तथा पार्श्व में अथवा नीचे कुछ लिखा रहता था जो दुर्भाग्यवश अभी तक पढ़ा नहीं जा सका है, चूँकि उनकी लिपि भारतवर्ष में आगे प्रयुक्त होने वाली लिपि से बिलकुल भिन्न है।
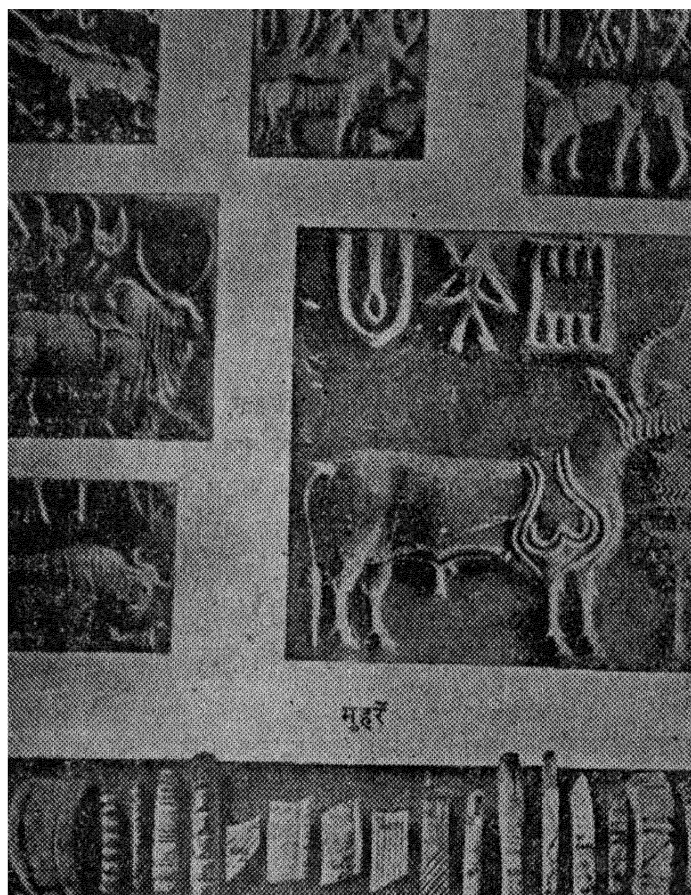
काँच के कडे

कला कौशल तथा व्यापार:—कुछ पत्थर की मूर्तियाँ जो हड़प्पा में निकली हैं, शिल्पकला के उस ऊँचे स्तर की स्मृति दिलाती हैं जो यूनानी मूर्तियों में पाया जाता है। निकली हुई छोटी छोटी मुहरें यह सिद्ध करती हैं कि वे व्यापार में काम में लाई जाती थीं। इस प्रकार के उदाहरण मिलते हैं जिनसे यह सिद्ध होता है कि मनुष्य न केवल भारत से अपितु एशिया के अन्य देशों से भी व्यापार कर रहे थे।

मनुष्य खेती करते थे और कला-कौशल में बढ़ई, राज, कुम्भावत, लुहार, सुनार, जौहरी, हाथी दांत का काम करने वाले व पत्थर काटने वाले होते थे। काँसे की ढली हुई एक नर्तकी की प्राप्त मूर्ति यह बतलाती है कि कला कितनी ऊँची बढ़ी हुई थी।

अन्त्येष्टि क्रिया:—विभिन्न प्रकार से मृत्यु-संस्कार किये जाते थे। मोहन-जो-दड़ो में श्मशान भूमि का न पाया जाना यह बतलाता है कि शव को जलाया जाता था। किन्तु हड़प्पा में एक बड़ा कब्रिस्तान मिला है। राख को कभी बर्तनों में रखा जाता था और कहीं कहीं हड्डियों को एकत्रित कर बर्तनों में डालकर उन्हें गाड़ दिया जाता था।

धर्म:—सिन्धु वासियों के धर्म के विषय में हम मोहन-जो-दड़ो में पाई गई मुहरों, ताम्रपत्रों, धातु, मिट्टी तथा पत्थर की मूर्तियों से जानकारी प्राप्त करते हैं। ये लोग मातृ-देवी की पूजा करते थे। मनुष्यों की धारणा थी कि समस्त रचना में स्त्री-शक्ति का हाथ है। एक नासाग्रदृष्टि योगी की सी मूर्ति मिली है, जो चारों ओर पशुओं से घिरी हुई है। विद्वानों का अनुमान है कि यह पशुपति शिव का प्रतिरूप है। इसके अतिरिक्त पत्थर, वृक्ष तथा पशुओं की पूजा भी होती थी।

इन सब बातों से यह सिद्ध होता है कि आजकल का हिन्दू धर्म जिसमें ऊपर लिखी समस्त बातें पाई जाती हैं, सिन्धु-सभ्यता का ऋणी है। शिव, काली तथा लिंग की पूजा आर्यों के भारत में आने से पूर्व ही थी। हमें यह मानना ही पड़ेगा की सिन्धु घाटी की सभ्यता तथा हिन्दू धर्म में घनिष्ट सम्बन्ध रहा है।

विनाश:—श्री पर्सी ब्राउन का कथन है कि यह सभ्यता शायद ईसा से २००० से १००० वर्ष पूर्व के मध्य समाप्त हुई, चूँकि खुदाई से ऐसा ही मालूम पड़ता है। कुछ समय उपरान्त एक यूनानी लेखक ने लिखा है कि उस समय वहां पर एक सहस्त्र से ऊपर शहरों व कब्रों के ढेर मिलते हैं, जहाँ खूब मनुष्य बसते होंगे। शायद किसी बड़ी प्रलय के कारण ऐसा हुआ हो। सिन्धु घाटी की सभ्यता के पतन के उपरान्त ही हम जब पुन: भवन-निर्माण कला की ओर देखते हैं तो मामूली तरीके से बनाई गई झोपड़ियां मिलती हैं, और नगर निर्माण किसी "सुन्दर व निश्चित योजना" के फलस्वरूप नहीं है। ऐसा संसार के इतिहास में हमें अनेकों जगह मिलता है कि कला का विकास हुआ, वह लोप हुई और पुन: उसे प्रारम्भ से चालू किया गया।

निष्कर्ष:—श्री पंचाननराय का कथन है कि इस सभ्यता के मानने वाले वैदिक ब्राह्मण थे जिन्हें साहित्य, वैद्यक, व्याकरण आदि का पर्याप्त ज्ञान था। पं. जवाहर लाल नेहरू ने अपनी पुस्तक "विश्व इतिहास की झलक" (Glimpses of the World History) में सर जॉन मार्शल के कथन को लिखा है—"मोहन-जो-दड़ो और हड़प्पा इन दोनों जगहों में, एक चीज तो साफ तौर पर जाहिर होती है और जिसके बारे में कोई धोखा नहीं हो सकता है। वह यह है कि इन दोनों जगहों में जो सभ्यता हमारे सामने आई है, वह कोई इब्तदाई सभ्यता नहीं है बल्कि ऐसी है जो उस समय ही युगों पुरानी पड़ चुकी थी, हिन्दुस्तान की जमीन पर मजबूत हो चुकी थी, व उसके पीछे आदमी का

कई हजार वर्ष पुराना कारनामा था। इस तरह अब से मानना पड़ेगा कि ईरान, मेसोपोटामिया और मिश्र की तरह हिन्दुस्तान उन सब प्रमुख देशों में से एक है जहाँ पर सभ्यता का आरम्भ और विकास हुआ था।"

सिन्धु-सभ्यता का स्रोत:—इसमें कोई सन्देह नहीं कि मोहन-जो-दड़ो और हड़प्पा की खुदाई ने हमारे इतिहास में एक गौरव पूर्ण अध्याय जोड़ दिया है। इन दोनों स्थानों के अतिरिक्त खुदाई अन्य स्थानों पर भी हुई और फलत: इस सभ्यता के अंश उत्तरी सिन्ध, दक्षिणी पंजाब, बिलोचिस्तान तथा हालही में राजस्थान में बीकानेर तक पाये गये हैं। इससे यही सिद्ध हुआ है कि यह सभ्यता सिंधु उपत्यका तक ही सीमित नहीं थी, इसका विस्तार काफी था। इसका संसार के इतिहास में एक ऊँचा स्थान है। यह सुमेर तथा मेसोपोटामिया की सभ्यताओं के बहुत कुछ सदृश्य है। ऐसा अनुमान किया जाता है कि (Chalcatholic) सभ्यता जो मिश्र से भारत तक फैली हुई थी उसी का अंश सैन्धव-संस्कृति भी थी।

इस बारे में इतिहासकारों में मतभेद है कि यह सभ्यता भारत की निजी थी अथवा बाहर से आई। सर जॉन मार्शल इसे उस सभ्यता का ही अंश मानते हैं जो योरोप से एशिया तक फैली हुई थी। अर्थात् दजला फरात से सिन्धु नदी तक प्रसारित सभ्यता का ही यह अंश है। पुन: यह संस्कृति मूल रूप में मेसोपोटामिया अथवा ईराक की संस्कृति से भी मिलती है, इस कारण अनेकों इतिहासकारों का मत है कि प्राचीन सुमेरिया के निवासी सिंधु की घाटी में ही आकर बस गये थे। अत: यह उसका ही अंश है। मि. हॉल का कथन है कि सुमेरिया की सभ्यता भारतवासियों के प्रयत्नों का फल थी और दोनों की एक भाषा तामिल थी। कुछ भी हो इतना अवश्य है कि मिश्र, ईराक, भारत तथा क्रीट की सभ्यताओं में बहुत सी बातें मिलती जुलती हैं और भौगोलिक तथा अन्य कई प्रकार की परिस्थितियों के कारण प्रत्येक में आवश्यक परिवर्तन होते रहे हैं।

इसमें कोई संदेह नहीं कि सैन्धव-संस्कृति की खोज के कारण भारत का संसार के प्राचीन सभ्य देशों में महत्वपूर्ण स्थान हो गया है।

अध्ययन के लिये संकेत

(१) सिन्धु घाटी की खुदाई से यह स्पष्ट हो गया है कि आर्यों के आगमन के पूर्व भी भारत में उच्चकोटि की सभ्यता थी।

(२) उनको लिखना आता था किन्तु उनकी लिखावट अभी पढ़ी नहीं गयी है।

(३) नगर निर्माण एक निश्चित योजना के अनुसार होता था।

(४) सिन्धु प्रदेश की सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक, कलात्मक तथा राजनैतिक दशा।

(५) बाहरी आक्रमण, सिन्धु नदी की बाढ़ अथवा भूचाल आदि ने सभ्यता को नष्ट किया।

(६) यह संस्कृति मेसोपोटामिया आदि देशों की संस्कृति से सम्बन्धित थी।

अभ्यासार्थ प्रश्न

(१) सैन्धव संस्कृति किस काल की है? संक्षेप में इसका वर्णन कीजिये।

1. What do you understand by Indus Civilisation? Describe it briefly.

(२) सैन्धव सभ्यता का वर्णन निम्नलिखित शीर्षकों के आधार पर कीजिये:—
(क) समाज (ख) धर्म (ग) कला तथा (घ) शासन।

2. Give an account of Indus Civilisation on the following points. (a) Society, (b) Religion, (c) Art and (d) Administration.

(३) भारतवर्ष की प्राचीनतम सभ्यता एवं संस्कृति का उल्लेख कीजिये।

3. Describe the oldest culture and civilisation of India.

षष्टम अध्याय

आर्यों का भारत में उदय

(क)—वैदिक संस्कृति

(१) प्रस्तावना

(२) आर्यों का मूल निवास-स्थान

(३) वेद रचयिता तथा इनका काल-निर्णय

(४) वैदिक तथा उत्तर-वैदिक साहित्य

(५) ऋग्वेद कालीन संस्कृति

प्रस्तावना:—भारतीय आर्यों की सभ्यता को ही वैदिक सभ्यता कहते हैं। इसका कारण यह है कि इन आर्यों की सभ्यता के बारे में हमारी जानकारी के मुख्य आधार वेद हैं। भारत की वर्तमान सभ्यता एवं संस्कृति पर सबसे अधिक प्रभाव आर्यों की सभ्यता का ही पड़ा है। हम वर्तमान हिन्दू धर्म को कुछ अंशों में परिवर्तित वैदिक धर्म मान सकते हैं। आज भी वेद हिन्दुओं की पवित्र धार्मिक पुस्तकें हैं।

आर्यों का मूल निवास स्थान:—इस विषय पर विद्वान एक मत नहीं हैं। सबसे पहले जर्मनी के विद्वान मैक्समूलर ने इस मत को प्रकट किया कि भारत के उच्चवर्ण के अधिकतर व्यक्ति ईरान तथा अफगानिस्तान के निवासी तथा योरोप के वर्तमान निवासी एक ही पूर्वजों की सन्तान हैं। जिस एक ही जाति से इन सब व्यक्तियों का जन्म हुआ उसे आर्य जाति कहते हैं। मैक्समूलर का विश्वास था कि एक ऐसा समय अवश्य था जब कि इनके पूर्वज एक ही छत के नीचे निवास करते थे। इन विद्वानों की इस राय का आधार यह खोज थी कि भारत की वर्तमान भाषाओं तथा योरोप की वर्तमान भाषाओं तथा फारसी इत्यादि भाषाओं के बहुत से शब्दों में आश्चर्यजनक समानता पाई जाती है। उदाहरण के लिए हिन्दी में जिस शब्द को 'माता' कहते हैं, उसे संस्कृत में 'मातृ', फारसी में 'मादर', अँग्रेजी में 'मादर' तथा लेटिन में 'मैटर' कहते हैं। भाषाओं की इस समानता ने विद्वानों को दो परिणामों पर पहुंचाया— पहला यह कि उपर्युक्त वर्तमान भाषाओं को बोलने वालों के पूर्वज किसी एक ही मूल भाषा को बोलते होंगे जिससे कि ये भाषाएं निकलीं। दूसरा परिणाम यह था कि उस मूल भाषा के बोलने वाले पूर्वज किसी प्राचीन समय में एक ही स्थान पर रहते होंगे।

आर्यों के मूल निवास-स्थान के बारे में अधिकतर विद्वानों का यह मत है कि वे मध्य-एशिया में रहते थे। आर्यों की वर्तमान भिन्न भिन्न भाषाओं में जो पशु, पक्षी

तथा पेड़ पौधों सम्बन्धी समान शब्द हैं वे पशु तथा वृक्ष इत्यादि मध्य एशिया में पाये जाते हैं। मध्य एशिया को आर्यों का मूल निवास स्थान मानने वाले विद्वानों में मैक्समूलर तथा डा. स्मिथ का नाम उल्लेखनीय है। कुछ विद्वान मध्य-योरोप को भी आर्यों का मूल निवास स्थान मानते हैं। इस सम्बन्ध में कुछ भारतीय विद्वानों का मत उल्लेखनीय है। लोकमान्य तिलक ने असाधारण प्रतिभा तथा अकाट्य तर्क द्वारा यह सिद्ध करने का प्रयत्न किया है कि आर्यों का मूल निवास स्थान उत्तरी ध्रुव था। वेदों में ऐसा वर्णन आया है जिससे पता चलता है कि आर्य लोग उत्तरी ध्रुव से परिचित थे तथा वे एक बहुत लम्बे दिन तथा एक बहुत लम्बी रात का भी वर्णन करते हैं। हिमपात का भी उल्लेख आता है। डा. दास का कथन है कि भारत में आर्य कहीं बाहर से नहीं आये बल्कि उनका मूल-निवास स्थान यहीं था। वे सप्त-सिन्धु प्रदेश में रहते थे। डा. भार्गव भी आर्यों को भारत का ही निवासी मानते हैं।

पश्चिमी विद्वानों का मत है कि अनेक कारणों से आर्य अपने मध्य-एशिया अथवा मध्य-योरोप के मूल निवास स्थान से निकल कर पश्चिम तथा दक्षिण और दक्षिण पूर्व की ओर चल दिये और इस प्रकार संसार के अनेक भागों में फैल गये। परन्तु भारतीय विद्वानों का कथन है कि भारत से ही आर्य संसार के दूसरे भागों में फैले। इन्होंने भारत में उच्चकोटि की संस्कृति का सृजन किया। हम उस संस्कृति का विभिन्न दिशाओं में अवलोकन करेंगे।

वेद-रचयिता तथा इनका काल निर्णय:—जिसे आज हम भारतीय संस्कृति कह कर पुकारते हैं, उसका अस्सी प्रतिशत मूलत: आधार वेद है। वेदों को संसार के पुस्तकालय का सबसे प्राचीन ग्रन्थ माना गया है। वेद का अर्थ 'ज्ञान' होता है। वेद आदि-ग्रन्थ हैं और इस कारण इनका धार्मिक व ऐतिहासिक क्षेत्रों में ऊँचा महत्व है। धर्मनिष्ठ भारतीय उन्हें अपौरुषेय मानते हैं अर्थात् वे उन्हें ब्रह्म वाक्य कहकर ईश्वर को ही उनका कर्ता मानते हैं। विभिन्न मन्त्रों के ऋषि अग्नि, वायु, आदित्य व अंगिरा मन्त्रद्रष्टा-मात्र माने जाते हैं।

हड़प्पा और मोहन-जो-दड़ो के ध्वंसावशेषों से जिस संस्कृति का परिचय मिलता है, उससे आगे वाले इतिहास का अभी तक पता नहीं लग सका है, किन्तु इतिहास उसके बाद ऋग्वेद से ही प्रारम्भ होता है।

शृंखलाबद्ध इतिहास के लिए काल-निर्णय अति आवश्यक हो जाता है। वैदिक काल का समय निर्णय अब तक अनेक विद्वानों ने किया, किन्तु प्रत्येक को अपने मत की पुष्टि के लिए अनुमान का सहारा लेना पड़ता है। सच तो यही है कि निश्चित काल का निर्णय अभी तक इतिहासज्ञ नहीं कर पाये हैं।

सभी पाश्चात्य विद्वान ऋषियों को ही वेद के रचयिता मानते हैं। वेदों को 'श्रुति' भी कहा जाता है क्योंकि प्राचीन ऋषियों ने [illegible]

ग्रहण किया है। पाश्चात्य विद्वानों में सबसे पहले वोल्टेयर ने लोगों का ध्यान वैदिक साहित्य की ओर आकर्षित किया, किन्तु वाल्टेयर का प्रभावशाली व्यक्तित्व भी यूरोपियनों को विश्वास न दिला सका कि वैदिक वाङ्मय अनूठा है। इसके उपरान्त हार्डर, केलबक, रोजन आदि ने भी इस ओर प्रयत्न किये। सन् १८४६ में वॉच रूडाल्फराथ स्टूगर्ट ने वैदिक साहित्य व इतिहास पर पुस्तक लिखकर विद्वानों की रुचि वैदिक-अध्ययन की ओर बढ़ाई। तदुपरान्त ए. वैबर ने विस्तार से वैदिक साहित्य की विवेचना की। मैक्समूलर ने सन् १८५६ में प्राचीन संस्कृत साहित्य का इतिहास लिखकर संसार के सामने एक रुचिकर खोजका वृहत् क्षेत्र खोल दिया है। उन्होंने वैदिक साहित्य को चार भागों में बाँटा—छन्द, मन्त्र, ब्राह्मण तथा सूत्र-साहित्य। उनके अनुसार सूत्र-साहित्य का काल ६००—२०० ई० पू०, ब्राह्मणों का ८००—६०० ई० पू०, ॠग्वेद के अंतिम भाग का १०००—८०० ई० पू०, तथा ॠग्वेद के प्रारम्भिक भाग का १२००—१००० ई० पू० का काल माना है।

एशिया माइनर में वोगजक्वाई नामक स्थान पर सन् १४०० ई. पू. के मितनी लेख मिले हैं जिनमें वैदिक देवताओं का उल्लेख है। पाश्चात्य विद्वान इस आधार पर वेदों की रचना १५०० ई. पू. मानने लगे। पुनः जर्मन विद्वान् विंटरनिज ॠग्वेद की रचना ई. पू. २५०० के लगभग मानते हैं। ज्योतिष के प्रमाणों के आधार पर अन्य जर्मन विद्वान जैकोबी ने ॠग्वेद का काल ई. पू. लगभग ४००० वर्ष और तिलक ने ८००० वर्ष ई. पू. माना है। इधर श्री अविनाशचन्द्र दास तथा पावगी ने ॠग्वेद में वर्णित भूगर्भ—विषयक साक्षी से ॠग्वेद को कई लाख वर्ष पूर्व का ठहराया है।

वैदिक काल का कोई प्रमाणिक निर्णय नहीं हो पाया है किन्तु ॠग्वेद ई. पू. १५०० में अवश्य था। सम्भव यह भी है कि उससे बहुत पहले रचा गया हो और सबसे प्राचीन मन्त्र शायद बहुत ही प्राचीन हों। इसके अतिरिक्त इस काल का अध्ययन करते समय हम तीन काल—विभाग स्पष्टतया देख पाते हैं।

(क) ॠग्वैदिक काल— यह सबसे प्राचीन काल है। इस काल की रची हुई रचनाओं के अध्ययन से बहुत प्राचीन संस्कृति का ज्ञान होता है।

(ख) उत्तर वैदिक काल—ॠग्वेद के प्रथम नौ मंडलों के बाद जिस दसवें मंडल की रचना हुई वह भाषा शैली और भाव में उनसे भिन्न है। ॠग्वेद की ॠचाओं को ही मोड़ देकर अन्य वेदों की रचनाएँ हुईं। यह सब बाद की रचनाएं हैं और पूर्व-संस्कृति से इस काल में कुछ परिवर्तन हो गये थे।

(ग) वैदिक काल का अन्तिम युग— यह तीसरा काल ई. पू. आठवीं या सातवीं शताब्दी या शायद उससे भी पहले का है।

वैदिक तथा उत्तर-वैदिक साहित्य:— संसार के सबसे प्राचीन और बृहत् साहित्य में ही वैदिक साहित्य की गणना है। उपलब्ध श्रुति-साहित्य ही इतना है जिस पर कई वर्षों तक खोज की जा सकती है। यह ज्ञान का भंडार है। अनुपलब्ध साहित्य की प्राप्ति के उपरान्त इस साहित्य कोष की महिमा और बढ़ सकती है। इस साहित्य के अध्ययन से संसार की प्राचीनतम संस्कृति का सहज ही ज्ञान हो जाता है।

उपलब्ध वैदिक साहित्य निम्न हिस्सों में बँटा है:—(१) वैदिक संहिता (२) ब्राह्मण तथा आरण्यक (३) उपनिषद् (४) वेदांग (५) सूत्र-साहित्य।

संहिता:—संहिता का शब्दार्थ संग्रह है। इनमें देवताओं के स्तुति परक मंत्रों का संकलन है। वेदों का दूसरा नाम 'संहिता' भी है। वेद चार हैं—ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद व अथर्ववेद।
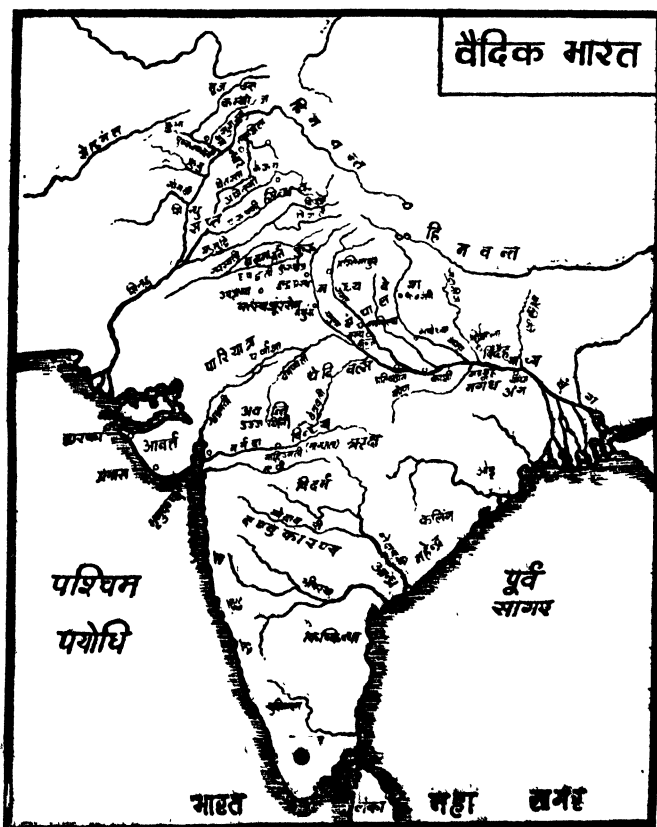
वेद कब व कैसे बने, इन प्रश्नों को पुराणों की सहायता से हल किया जा सकता है। वायु, विष्णु आदि पुराणों में जहां राज वंशावलियां दी हैं, वहां वेदमंत्रों

के द्रष्टा ऋषियों के सम्बन्ध में भी कुछ कुछ ऐतिहासिक सामग्री मिल जाती है। वैदिक संहिताओं व अनुक्रमणिकाओं में मंत्र द्रष्टा ऋषियों का वर्णन आता है। इनमें से कुछ ऋषियों के नाम यत्र तत्र पुराणों में भी आते हैं तथा वहाँ उनके बारे में जो कुछ कहा गया है, उसकी पुष्टि वैदिक संहिताओं से होती है। पुराणों की सहायता से वेदों के मंत्रों को उनके सच्चे स्वरूप में समझा जा सकता है व तिथि-क्रम के अनुसार व्यवस्थित किया जा सकता है।

ऋग्वेदः— यह सबसे प्राचीन संहिता माना जाता है। इसमें दस मंडल १०२८ सूत्र व १०६०० मन्त्र हैं। इसी प्रकार सम्पूर्ण ऋग्वेद को आठ अष्ठकों, प्रत्येक अष्ठक को आठ अध्याय व प्रत्येक अध्याय को कितने ही वर्गों में विभाजित किया गया है। प्रत्येक वर्ग में पांच मन्त्र हैं। मंडलों के द्रष्टा ऋषि विशेष हैं और उन ऋषियों के नाम ब्राह्मण-ग्रन्थों तथा वैदिक अनुक्रमणिकाओं में पाये जाते हैं— उदाहरणार्थ गृत्समद, विश्वमित्र, कामदेव, अत्रि, भारद्वाज और वशिष्ठ। उनमें कुछ स्त्रियां भी हैं—जैसे वागाम्भृणी, घोषा, कात्तीवती, अपाला, मैत्रेयी आदि। ऋग्वेद में देवताओं की स्तुतियां हैं जो बड़ी भव्य व काव्यमयी हैं। यह नितान्त धार्मिक ग्रन्थ हैं किन्तु उनसे धर्म और दर्शन के अतिरिक्त राजनीति, समाज-शास्त्र, अर्थ शास्त्र, गणित, ज्योतिष-शास्त्र, काव्य, अलंकार आदि का भी पर्याप्त ज्ञान होता है।

यजुर्वेदः— इसमें विशेषतया यज्ञ सम्बन्धी मंत्रों का संग्रह है जिनका यज्ञों के समय ऋषि लोग उच्चारण करते थे। इसमें अधिकतर ऋग्वेद के मंत्र लिए गये हैं। यजुर्वेद में कुल ४० अध्याय हैं। कुछ विद्वानों का कहना है कि प्रारम्भ में इसमें १८ अध्याय ही थे, शेष बाद में जोड़े गये हैं। वैसे तो इसमें यज्ञादि मंत्रों का ही आधिक्य है किन्तु कुछ बिखरी सामग्री सामाजिक व आर्थिक दशा को भी प्रकट करती है।

ऋग्वेद से यह भिन्न परिस्थिति का ज्ञान कराता है। ऋग्वेद में आर्यों का कार्य-क्षेत्र पंजाब है तो इसमें कुरु पांचाल। इस काल से ही दोआब का प्रदेश आर्य-संस्कृति का केन्द्र बन गया था। यज्ञों की प्रधानता होने के कारण ब्राह्मणों की प्रतिष्ठा तथा उनका महत्व बढ़ने लगा। यजुर्वेद में सर्व प्रथम उपनिषद् के ब्रह्म के दर्शन होते हैं। यज्ञ से अलौकिक शक्तियों की प्राप्ति मानी जाने लगी। यजुर्वेद के कृष्ण-यजुः तथा शुक्ल-यजुः ये दो भेद थे और दोनों के स्वरूप में बड़ा अन्तर था।

सामवेदः— इस वेद का ऐतिहासिक महत्व अधिक नहीं है क्योंकि कुल १५४० ऋचाओं में केवल ७५ ऋचायें तो नवीन हैं बाकी ऋग्वेद से ली गई हैं। इसमें केवल गेय मंत्रों का संग्रह है। यज्ञों का महत्व बढ़ने से इसकी रचना हुई क्योंकि यज्ञ के अवसर पर देवताओं के लिए होम किया जाता था और उन्हें बुलाने के विचार से मंत्रों को तीव्र स्वर में गाया जाता था। इस गायन को 'साम' कहते थे। समस्त

'सामवेद' को दो अर्चिकाओं में बांटा गया है। पहली अर्चिका में ६ प्रपाटक हैं, जिनमें अग्नि, सोम और इन्द्र की स्तुति की गई है। दूसरी अर्चिका में ६ प्रपाटक हैं।

अथर्ववेद:— इसमें १२०० मंत्र ऋग्वेद से लिए गये हैं। पाश्चात्य विद्वान इसे जादू टोने और अन्धविश्वास का खजाना कहते हैं। इसमें आयुर्वेद-सम्बन्धी सामग्री का आधिक्य है। इसमें भाँति भाँति की विभिन्न औषधियों का वर्णन है, ज्वर, पीलिया, सर्पदंश तथा विष-प्रभाव को दूर करने के मंत्र हैं और सूर्य से स्वास्थ्य-शक्ति, रोगोत्पादक कीटाणुओं तथा विचित्र बीमारियों को नष्ट करने के उपाय हैं। इस संहिता में राजनीति तथा समाज शास्त्र के महत्वपूर्ण सिद्धान्त हैं। ज्योतिष-सम्बन्धी मंत्रों मे नक्षत्रों का उल्लेख है। गान्धार, मूजवत, महावृष वाह्नीक, मगध तथा अङ्ग आदि स्थानों का भी वर्णन है।

शाखाएं एवं ब्राह्मण ग्रन्थ:—वेदों के लिखित न होने के कारण इनके स्वरूप में भेद आना आवश्यक हो गया था। संहिताओं के पश्चात् यज्ञ-सम्बन्धी गद्यात्मक साहित्य का निर्माण हुआ और इस साहित्य के विकास का समय ई. पू. ८०० से ५०० वर्ष पूर्व माना गया है। प्रत्येक वेद की शाखाओं का विकास हुआ। ऋग्वेद की प्रारम्भ में पांच शाखाएँ थीं- शाक्ल, अश्वतायन, माण्डूकेय, शाखापन तथा बाष्कल। इनमे अब शाक्ल ही उपलब्ध है। इसी प्रकार शुक्ल यजुर्वेद की एक शाखा माध्यंदिन उत्तरी भारत में उपलब्ध है। तथा दूसरी शाखा काण्व महाराष्ट्र में। कृष्ण यजुर्वेद चार शाखाएँ तैतिरिय, मैत्रायणी, काठक कठ और कापिष्ठल संहिता उपलब्ध हैं। इसी प्रकार सामवेद की शाखाएँ कौथुम और राणायनीय तथा अथर्ववेद की पैप्पलाद और शौनक उपलब्ध हैं।

ब्राह्मण ग्रन्थों में विस्तार से यज्ञ कर्म-काण्ड का वर्णन है। इसी कारण कुछ विद्वानों ने इन्हें वेद-मन्त्रों का भाष्य भी कहा है। ऋग्वेद के दो ब्राह्मण हैं—ऐतरेय तथा कौषीतकी। इनसे उस समय के इतिहास तथा संस्कृति का विशेष परिचय मिलत है। ऋग्वेद के उपरान्त प्राचीन इतिहास की सबसे अधिक जानकारी शुक्ल यजुर्वेद के ब्राह्मण शतपथ से होती है। इस काल में कुरु पांचाल ही आर्य संस्कृति का केन्द्र था सामवेद के पंचविंश या तांड्य ब्राह्मण महत्वपूर्ण है। इसी प्रकार अथर्ववेद का ब्राह्मण 'गोपथ' कहलाता है।

ब्राह्मण साहित्य में वर्णित विषयों को तीन भागों में बाँटा गया है— विधि, अर्थवाद तथा उपनिषद्। विधि में यज्ञ करने की विधि आदि अर्थवाद में उदाहरणों सहित यज्ञ का महत्व व फल तथा उपनिषद् में यज्ञ आदि पर दार्शनिक ढङ्ग से विचार किया है। इन ब्राह्मणों में कुछ भौगोलिक सामग्री भी प्राप्त होती है। इस साहित्य के अन्त में ही कुछ ऐसा साहित्य है जो बस्ती से दूर अरण्यों अर्थात् जंगलों में पढ़

जाता था। उसे आरण्यक कहा जाता है और इससे ही उपनिषद् साहित्य की उत्पत्ति व विकास हुआ।

उपनिषद् साहित्यः—उपनिषद शब्द का अर्थ रहस्य अथवा उपासना है। उपनिषद साहित्य को 'वेदान्त' भी कहा जाता है क्योंकि वैदिक साहित्य में यह सबसे अन्तिम साहित्य है। उपनिषद् भारतीय संस्कृति के प्रतीक हैं और संसार के अनमोल आध्यात्मिक ग्रन्थ माने जाते हैं। उपनिषदों में ग्यारह उपनिषद ही प्रधान माने गये हैं— ईश, प्रश्न, केन, कठ, तैत्तिरीय, मुण्डक, माण्डूक्य, ऐतरेय, श्वेताश्वर, छान्दोग्य तथा बृहदारण्यक। उपनिषदों की रचना ऋषियों के दार्शनिक चिन्तन के फलस्वरूप हुई।

वेदांगः – कालान्तर में वैदिक साहित्य की जटिलताओं को सुलझाना कठिन होगया और कुछ ही विद्वान उसको समझने में समर्थ हो पाते थे। इस कारण वे सहायक ग्रन्थ जो वेदों के अर्थ तथा विषय को स्पष्ट करने के लिये लिखे गए "वेदांग" कहलाये। ये छः हैं— शिक्षा, छन्द, व्याकरण, निरुक्त, कल्प तथा ज्योतिष। इनमें शिक्षा, छन्द, व्याकरण तथा निरुक्त तो शुद्ध अर्थ तथा उच्चारण आदि के विचार से लिखे गये तथा कल्प व ज्योतिष का निर्माण यज्ञ आदि के उचित समय जानने के विचार से हुआ।

सूत्र साहित्यः—जब कर्म काण्ड अधिक बढ़ गया तो यह विचार किया गया कि तत्सम्बन्धी सब मंत्रों को इतना सूक्ष्म कर दिया जावे कि अधिक समय उनके उच्चारण में न लगे तथा समस्त उपयोगी मंत्रों का सार भी आजावे। इस प्रकार से निर्मित मंत्रों को ही सूत्र–साहित्य कहा जाता है। इस सूत्र–साहित्य के चार भाग हैं—श्रोत सूत्रों में गृह्य, धर्म और शुल्व। श्रोत वैदिक यज्ञ सम्बन्धी कर्म-काण्ड का गृह्य सूत्र में गृहस्थ के दैनिक यज्ञों का, धर्म सूत्र में सामाजिक नियमों का तथा शुल्व सूत्र में यज्ञ-वेदियों के निर्माण का वर्णन है। अगले पृष्ठ पर दी गई सारिणी से वैदिक साहित्य के वर्गीकरण की स्पष्ट जानकारी प्राप्त होती है।

ऋग्वेद-कालीन संस्कृतिः—ऋग्वेद काल की सभ्यता सबसे प्राचीन है और उत्तर वैदिक काल तक पहुँचते हुए उसका क्रमशः विकास हुआ और उसमें अनेकों परिवर्तन हुए। ऋग्वेद की सभ्यता को सप्त–सिन्धव सभ्यता भी कहते हैं क्योंकि उस समय आर्य सप्त–सिन्धु में निवास करते थे। तदुपरान्त आर्य सरस्वती तथा गंगा के मध्य की भूमि में बस गये थे। इस स्थान का नाम कुरुक्षेत्र था और उत्तर–वैदिक कालीन सभ्यता का विकास यहीं हुआ।

धार्मिक धारणाः—ऋग्वेद–कालीन आर्यों का धर्म बहुत ही सीधा सादा था। संक्षेप में आर्य प्रकृति पूजक थे। आर्यों के जीवन तथा आत्मा का शुद्ध और सच्चा स्वरूप उनके धर्म में झलकता है। उनके धर्म में आडम्बर, ढकोसला, रूढ़िवाद तथा

वैदिक साहित्य

वेद	शाखाएं-संहिता	ब्राह्मण-ग्रन्थ	उपनिषद्	सूत्र	वेदांग
ऋग्वेद	शाकल बाष्कल अश्वलायन शांखायन माण्डूयेक	ऐतरेय कौषीतकी	ऐतरेय कौषीतकी	शांखायन आश्वलायन	१. शिक्षा २. छन्द ३. व्याकरण
यजुर्वेद	शुक्ल (१) माध्यायिनी (२) काण्व कृष्ण (१) तैतिरिय मैत्रायणी (२) काठक (३) कठ (४) कापिष्ठल संहिता	कठक तैत्तिरीय शतपथ	तैत्तिरीय महानारण्य श्वेताश्वरतर मैत्रायणी बृहदारण्यक ईश	कात्यायन आवस्तम्ब हिरण्य केशी बौधायन भारद्वाज मानव वैश्वानर	४. निरुक्त ५. कल्प ६. ज्योतिष
सामवेद	कौथुम राणायनीय	पंचविंशताण्ड्य जसमिनीय	छन्दोग्य केन	लाद्यायन द्राह्यायन आर्षेय	
अथर्ववेद	पैप्पलाद शौनक	गोपथ	मुण्डक माण्डूक्य प्रश्न	कौशिक वैतान	

दिखावे को कोई भी स्थान नहीं था। सरलता उनके धर्म का प्रमुख अंग था। वैदिक आर्य धर्म-प्रधान मानव थे, जैसा कि उनके साहित्य से स्पष्ट प्रतीत होता है। वेदों में धर्म और आध्यात्मवाद को ही प्रमुख स्थान प्राप्त है। अन्य बातों को बहुत ही गौण स्थान प्राप्त है। इससे स्पष्ट व्यक्त होता है कि आर्यों के जीवन में सबसे महत्वपूर्ण स्थान धर्म को ही प्राप्त था। आर्यों का धर्म उनकी उच्च बौद्धिक चेतना आध्यात्मिक ज्ञान और उनके मानववाद का प्रतीक है। उनके धर्म में नर-बलि अथवा पशु-बलि को कोई भी स्थान प्राप्त नहीं था। लगभग सभी प्राचीन मानव जातियों के धार्मिक विश्वासों के मूल में भय की भावना ही रही है। वे अपने

देवी-देवताओं की पूजा इसी कारण करते थे कि वे उनसे डरते थे। अनिष्ट की शंका से बचने के लिए उन्हें वे अनेक प्रकार की वस्तुओं तथा जीवों की भी भेंट चढ़ाते थे। परन्तु वैदिक आर्य इसके अपवाद थे। वे अपने देवताओं की आराधना इस कारण नहीं करते थे कि उनसे उन्हें किसी प्रकार का भय था अथवा किसी प्रकार के अनिष्ट की आशंका थी। वे अपने देवी देवताओं की पूजा, श्रद्धा और प्रेम की भावनाओं से ओत-प्रोत होकर करते थे। उनके देवता कल्याण और दया की प्रति मूर्ति थे, क्रोध और हिंसा की नहीं। सभ्य और अर्द्ध-सभ्य मानव के धर्म में संभवतः यही मौलिक अन्तर है।

जैसा कि ऊपर बताया जा चुका है आर्य प्रकृति पूजक थे। प्रकृति की भिन्न-भिन्न शक्तियों को देवी-देवताओं के रूप में पूजते थे। इनके देवताओं की संख्या ३३ थी। इनका वर्गीकरण तीन भागों में किया जा सकता है– पृथ्वी पर रहने वाले, वायु में रहने वाले तथा आकाश में निवास करने वाले। आर्यों के मुख्य देवता सूर्य, वरुण, इन्द्र, अग्नि, सोम (एक पवित्र समझा जाने वाला पौधा) उषा, आदित्य, रुद्र आदि थे। सूर्य को प्रकाश तथा उष्णता देने वाला समझते थे, अग्नि को भी प्रकाश तथा उष्णता देने वाला और बुराइयों को भस्म करने वाला तथा यज्ञ के भाग को देवताओं तक पहुँचाने वाला मानते थे। रुद्र आँधी तथा तूफानों का देवता था जिसने कालान्तर में शिव का नाम लेलिया। इन्द्र को बाद में अन्य देवताओं से श्रेष्ठ और बड़ा समझा जाने लगा। देवताओं को प्रसन्न करने के लिए दो उपाय थे। एक तो मन्त्रों द्वारा स्तुति करके दूसरा उत्तम पदार्थों की यज्ञ द्वारा भेंट करके। अग्नि के माध्यम से ये पदार्थ देवताओं तक पहुँचाये जाते थे। देवता प्रसन्न होकर सुख, समृद्धि तथा जीवन में सफलता प्रदान करते थे।

आर्य अपने मृतक को अग्नि देव की भेंट चढ़ाते थे। उनका विश्वास था कि अग्नि उनके पार्थिव शरीर के भिन्न भिन्न तत्वों को यथा स्थान पहुँचा देगा इस प्रकार आर्यों में मृतक को जलाने की प्रथा थी। अस्थियों के अवशेष पर समाधि भी बनाई जाती थी।

उपरोक्त विवरण से ज्ञात होता है कि आर्य बहुदेव पूजक थे। परन्तु इसके साथ ही साथ आर्यों को इस बात की भी चेतना थी कि प्रकृति की इन विभिन्न शक्तियों के मूल में वस्तुतः एक प्रधान शक्ति है, प्रकृति की ये शक्तियाँ उसी मुख्य शक्ति के भिन्न रूप हैं और वही महान शक्ति है। इस प्रकार वैदिक आर्य एक ईश्वर से परिचित थे और उनके धर्म को हम एकेश्वरवाद कह सकते हैं। पुरुष सूक्त से सर्वेश्वरवाद और एकेश्वरवाद की स्पष्टता का आभास प्राप्त होता है। वैदिक महर्षियों के इन शब्दों से "एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्ति" स्पष्ट ज्ञात होता है कि वैदिक आर्य एक [illegible] जिसके कि अनेक नाम हैं। इसके अतिरिक्त ऋग्वेद

की अनेक ऋचाओं से भी पता चलता है कि आर्य एक ईश्वर की सत्ता से भली भाँति परिचित थे।" जो जीवन दाता है, जो सृष्टि करता है, जो विश्व के प्रत्येक स्थान से परिचित है वह एक है यद्यपि उसके अनेक (देव) रूप तथा अनेक (देव) नाम हैं।" ऋग्वेद की यह ऋचा आर्यों के एकेश्वरवाद से परिचय में कोई भी शंका नहीं छोड़ती। इसके अतिरिक्त इस काल में आर्यों के धर्म में मूर्ति पूजा को कोई भी स्थान नहीं था न देवताओं की पूजा के लिए मन्दिर ही बनवाये जाते थे, और न पुजारियों का कोई वर्ग विशेष ही था यद्यपि धार्मिक अनुष्ठान ब्राह्मण ही करते थे। इस प्रकार आर्यों के धर्म की आडम्बर हीनता का पता चलता है।

सामाजिक जीवन:—इस समय आर्यों का समाज तीन वर्ग में बँटा हुआ था— ब्राह्मण, राजन्य (क्षत्री) और साधारण जन अथवा वैश्य। ब्राह्मण का कार्य धार्मिक अनुष्ठान करना, राजन्यों का शासन चलाना तथा वैश्यों का कार्य कृषि और व्यवसाय करना था। यह वर्गीकरण जन्म पर आधारित नहीं था बल्कि केवल व्यवसाय पर ही आधारित था। कौन व्यक्ति समाज के किस वर्ग से सम्बन्धित है यह उसका व्यवसाय ही निर्धारित करता था। इस प्रकार व्यवसाय परिवर्तन करने पर स्वाभाविक रूप से जाति भी बदल जाती थी। एक साथ खानपान और अन्तर्जातीय विवाह निषिद्ध नहीं थे और न इन पर किसी प्रकार के अंकुश थे। बाद में विजित अनार्य जातियां के आर्य धर्म अंगीकार करने पर समाज के चौथे वर्ग अर्थात् शूद्रों का जन्म हुआ। शूद्र आर्यों से वर्ण (रंग) में तथा अन्य प्रकार से भिन्न थे। अतः शूद्रों को हेय समझा जाता था और अनार्य होने के कारण आर्य लोग उनसे खानपान तथा वैवाहिक सम्बन्ध नहीं करते थे। शूद्रों का मुख्य कर्तव्य अन्य वर्गों की सेवा तथा शारीरिक श्रम के कार्य करना था।

आर्यों का पारिवारिक गठन पितृ-सत्तात्मक आधार पर था और समाज की इकाई परिवार ही था। परिवार में पति-पत्नी, उनके बच्चे तथा भाई बहिन के अतिरिक्त अन्य कुटुम्बी भी रहते थे। संयुक्त परिवार की प्रथा थी। परिवार के सभी व्यक्ति प्रेम और सौहार्द के साथ मिल जुलकर रहते थे। परिवार का मुखिया वयोवृद्ध पिता ही होता था। परिवार के अन्य सदस्य उसकी आज्ञा मानते थे। परिवार का मुखिया परिवार के सभी सदस्यों के हित और सुख-सुविधा का पूर्ण ध्यान रखता था। कम आयु के बालक-बालिकाओं के विवाह नहीं होते थे। वयस्कता प्राप्त होने पर ही विवाह किये जाते थे। कन्या का विवाह यद्यपि पिता की इच्छानुसार ही होता था परन्तु वर और कन्या की स्वेच्छा से विवाह होने के भी प्रमाण मिले हैं। समाज में स्त्रियों क स्थान बहुत ऊँचा था और उनका सम्मान होता था। स्त्रियाँ शिक्षित होती थी। अनेक विदुषी स्त्रियाँ पुरुषों के साथ शास्त्रार्थ भी करती थीं। विश्ववरा, घोषा, अपाला इत्यादि अनेक विदुषी स्त्रियों के उल्लेख मिलते हैं। वे घर की स्वामिनी होती थीं तथ

अपने पति के साथ यज्ञ तथा अनेक धार्मिक अनुष्ठानों में भाग लेती थीं। स्त्री तथा पुरुष दोनों ही स्वर्ण के आभूषण धारण करते थे। साधारणतया स्त्री, पुरुष तीन वस्त्र पहिनते थे। एक वस्त्र कमर से नीचे, दूसरा कमर से ऊपर तथा एक कन्धे पर चादर की तरह प्रयोग में लाया जाता था।

गेहूँ, जौ, चावल, दूध, दही, घी, शाक, फल इत्यादि उनके साधारण भोजन थे। मांस का भी प्रयोग किया जाता था; परन्तु सुरापान अच्छी दृष्टि से नहीं देखा जाता था। यज्ञ के अवसर पर सोमरस का पान किया जाता था। सोमरस से हल्का नशा आ जाता था और उसे पवित्र माना जाता था। रथ दौड़ और द्यूत क्रीड़ा इनके मनोरंजन के मुख्य साधन थे। पशुपालन, कृषि तथा अनेक प्रकार के उद्योग धन्धे आर्यों के मुख्य व्यवसाय थे। आर्यों के आर्थिक जीवन में गाय का बहुत महत्व था। आर्य लोग ग्रामजीवन को जहाँ कि उन्हें शुद्ध वायु और प्रकृति का मुक्त वातावरण उपलब्ध हो, पसन्द करते थे। अभी बड़े बड़े नगरों का निर्माण नहीं हुआ था।

राजनैतिक संगठन:—इस समय आर्यों के अधिकांश राज्य राजतन्त्रात्मक ही थे। राजा की मृत्यु के पश्चात् उसका ज्येष्ठ पुत्र सिंहासन का अधिकारी होता था। परन्तु प्रजा द्वारा राजा चुनने के भी उदाहरण पाये जाते हैं। शासन की सबसे छोटी इकाई ग्राम ही थे। ग्राम का शासन ग्राम के मुखिया, जिसे कि ग्रामणी कहते थे, द्वारा चलाया जाता था। आर्य लोग अनेक वर्गों में बँटे हुए थे जो कि जन कहलाते थे। प्रत्येक जन का एक अधिपति होता था जो कि राजा कहलाता था। इस काल में पंजाब में पुरू, तुर्वसु, यदु, द्रुह्यु तथा अनु नामक पाँच जन बसे हुए थे।

यद्यपि आर्यों के अधिकांश राज्य राजतंत्रात्मक थे, परन्तु इन राज्यों के शासन में प्रजा को महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त था। आर्यों में प्रजातन्त्र शासन की परम्परायें बहुत प्राचीन थी और इसके लिए अनेक लोकप्रिय संस्थाएँ थीं। इनमें से प्रमुख संस्थायें सभा और समिति नामक दो परिषदें थीं। इन प्रजातन्त्रीय संस्थाओं के संगठन, संचालन तथा अधिकारों के बारे में अधिक जानकारी तो उपलब्ध नहीं है परन्तु इतना अवश्य ज्ञात है कि ग्राम की सभा ग्राम के सभी नागरिकों की संस्था होती थी और समिति सारे देश की प्रतिनिधि सभा थी जिसमें कुछ विशिष्ठ और योग्य सदस्यों को ही प्रतिनिधित्व प्राप्त था। शायद समिति समस्त राज्य की कार्यकारिणी अथवा सलाहकार परिषद थी। इन परिषदों के कुछ महत्वपूर्ण कार्य कानून, शासन, राजा का चुनाव, न्याय इत्यादि थे।

शान्ति काल में राजा अपनी प्रजा के सुख और समृद्धि बढ़ाने के लिए अनेक प्रजा हितकारी कार्य करता था। न्याय का अन्तिम स्थान भी उसका दरबार ही था। युद्ध के समय अपनी प्रजा की रक्षा के लिए वह सेना का नेतृत्व करके शत्रु से लड़ता था। सभा तथा समिति के अतिरिक्त राजा को सलाह देने के लिए मन्त्री-परिषद,

पुरोहित जिसका मुख्य मंत्री होता था, राज परिवार के सदस्य तथा अन्य योग्य व्यक्ति भी होते थे। शासन में सलाह देने के अतिरिक्त पुरोहित राजा को समस्त धार्मिक अनुष्ठान कराता था। राज्य के धार्मिक विषयों का वही अध्यक्ष होता था। सेना का अध्यक्ष सेनानी या सेनानायक होता था। राजा की आय का मुख्य साधन भूमि-कर था।

वैदिक सभ्यता का भारतीय जीवन पर प्रभाव:—भारतीय जीवन के प्रत्येक अंग का स्रोत वैदिक सभ्यता में पाया जा सकता है। भारतीयों के आचार-विचार, धर्म, सामाजिक संगठन, वर्ण-व्यवस्था, भाषा, वेष-भूषा, यहाँ तक कि लगभग सभी बातों में वैदिक सभ्यता की स्पष्ट छाप आज भी देखी जा सकती है। वेदों को भारत के प्रत्येक भाग में (हिन्दुओं द्वारा) पवित्र धार्मिक ग्रन्थ माना जाता है। वर्तमान हिन्दू धर्म वैदिक धर्म का ही रूपान्तर है। इसी प्रकार हिन्दी, बंगला, गुजराती, मराठी, अवधी, ब्रजभाषा इत्यादि प्रादेशिक भाषाओं का जन्म संस्कृत भाषा से ही हुआ है। इन भाषाओं में प्रयोग की जाने वाली देवनागरी लिपि भी संस्कृत से ही ली गई है। भारत के अधिकांश हिन्दू अपने को आर्य कहने में गर्व का अनुभव करते हैं। अनेक विद्वान इस बात से सहमत है कि यद्यपि आर्यों के आगमन से पूर्व भारत में सिन्धु घाटी सभ्यता विद्यमान थी परन्तु वर्तमान भारतीय सभ्यता का स्रोत आर्यों से ही आरम्भ हुआ। कुछ साधारण परिवर्तनों के साथ आर्य सभ्यता की परम्परा आज भी हमारे देश में चली आ रही है।

अध्ययन के लिए संकेत

(१) वैदिक साहित्य (२) ऋग्वेद का महत्व (३) वेद रचना का काल (४) आर्य सभ्यता में स्त्रियों का स्थान (५) आर्यों के धर्म का स्वरूप (६) आर्यों का पारिवारिक जीवन (७) युद्ध विद्या (८) सभा और समिति के कार्य (९) आर्यों के मुख्य व्यवसाय (१०) हिन्दू धर्म पर वैदिक सभ्यता का प्रभाव।

अभ्यास के लिए प्रश्न

(१) वैदिक साहित्य के विभिन्न अंगों का पूर्ण परिचय देते हुए बतलाइये कि वैदिक-साहित्य का प्रमुख विषय क्या है?

1. Trace out the different parts and the main subject of the Vedic Literature.

(२) वैदिक आर्यों की सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक तथा धार्मिक बातों की जानकारी के लिए हमें किन ग्रन्थों से सहायता प्राप्ति होती है? वर्णन कीजिए।

2. Give an account of the sources which help us to know about the social, political, economic and religious aspects of the Vedic Aryans.

(३) ऋग्वेद कालीन आर्यों के धर्म का परिचय दीजिये। क्या आर्य बहुदेव पूजक थे ? प्रमाण सहित उत्तर दीजिए।

3. What do you know about the religion of Rigvedic Aryans ? Were they Polytheist ? Discuss.

(४) वैदिक आर्यों की सभ्यता के बारे में आप क्या जानते हैं ? आर्यों के सामाजिक, राजनैतिक तथा आर्थिक संगठनों का वर्णन कीजिये।

4. What do you know about Aryan civilisation of the Vedic Age ? Give an account of the social, political and economic condition of the Aryans.

(५) वैदिक आर्य सभ्यता का वर्तमान भारतीय सामाजिक जीवन पर क्या प्रभाव देखा जा सकता है ? स्पष्ट कीजिए।

5. How the Vedic Aryan civilisation has affected the modern social life of Indians ? Explain.

छठा अध्याय

(ख)—उत्तर-वैदिक संस्कृति

(१) प्रस्तावना (२) उत्तर-वैदिक साहित्य (३) धार्मिक दशा (४) राजनैतिक दशा (५) सामाजिक दशा (६) आर्थिक दशा (७) उत्तर-वैदिक काल की देन ।

प्रस्तावना:—वैदिक साहित्य की रचना सैंकड़ों वर्षों में हुई है । ऋग्वेद की ऋचायें ही लम्बे काल तक रची गईं । अतः वैदिक समय सांस्कृतिक दृष्टिकोण से ऋग्वेद काल तथा उत्तर वैदिक काल—इन दो भागों में बाँटा गया है । ऋग्वेद युग की संस्कृति का उल्लेख किया जा चुका है । लगभग एक सहस्त्र वर्ष में समाज, राजनीति, धर्म तथा जीवन के अनेक क्षेत्रों में पर्याप्त मात्रा में अन्तर आगया । इसके बाद की संस्कृति को उत्तर-वैदिक संस्कृति के नाम से पुकारा जाता है ।

उत्तर-वैदिक साहित्य:—पिछले अध्याय में हमने सम्पूर्ण वैदिक साहित्य का विवरण दिया था । उसके अवलोकन से ज्ञात होगा कि ऋग्वेद युग में केवल ऋग्वेद की ही रचना हुई थी और शेष तीन वेद अर्थात यजुर्वेद, सामवेद तथा अथर्वेद तथा ब्राह्मण व आरण्यक, उपनिषद वेदांग व सूत्र साहित्य बाद की रचना हैं । यह समस्त साहित्य उत्तर-वैदिक साहित्य कहलाता है ।

धार्मिक दशा:—इस समय धार्मिक धारणाओं का परिवर्तित रूप दृष्टिगोचर होता है । अब देवताओं का महत्व कम होता नजर आता है । ऐसा नहीं हुआ कि उनके प्रति श्रद्धा कम हो गई थी अपितु कुछ नये देवता अधिक ऊँचा स्थान ले रहे थे । रुद्र को शिव अथवा महादेव अथवा पशुपति कहते थे । विष्णु बड़े लोकप्रिय देवता हो गये थे और लोग मृत्यु के उपरान्त 'विष्णुधाम' जाना चाहते थे । विष्णु कल्याणकारी देवता माने जाते थे । अब मनुष्य प्रकृति से हटकर चिन्तन तथा मनन की ओर अधिक ध्यान देने लगा था । वह अपनी अभिलाषाओं की पूर्ति के लिए मन्त्रों द्वारा देवताओं को वश में करने का प्रयत्न कर रहा था ।

इसी प्रकार वैदिक क्रियाओं तथा समारोहों ने अब अपनी सरलता गवाँ दी । यज्ञादि विधियों में जटिलता का समावेश हो गया तथा इन क्रियाओं को विधिवत कराने के लिए पुरोहित वर्ग का सम्मान बढ़ गया । यज्ञ सम्बन्धी मंत्र तथा क्रियाएँ बड़ी जटिल तथा रहस्यमय हो गईं थीं । अब यज्ञ की क्रिया महत्वपूर्ण हो गई थी । उसका फल इतना महत्वपूर्ण नहीं रहा था । लोग प्रेत आत्माओं तथा जादू टोना, वशीकरण मन्त्र इत्यादि में विश्वास करने लगे थे ।

इस सब जटिलता की प्रतिक्रिया होना स्वाभाविक ही था। गहन मनन द्वारा मनुष्य इस निष्कर्ष पर पहुंचा कि सबसे श्रेष्ठ ब्रह्म है और इससे ही सृष्टि नियन्त्रित है। पुनर्जन्म के सिद्धान्त का विकास इसी समय होता है। यह माना जाने लगा कि मनुष्य जन्म जन्मान्तर में अपने कर्म का फल भोगता रहता है और पूर्ण शुद्ध होने पर आत्मा परमात्मा में विलीन हो जाती है अर्थात् मनुष्य मोक्ष की प्राप्ति करता है। इस युग में ही उपनिषदों की रचना हुई जिनमें ईश्वर, प्रकृति, आत्मा तथा जीवन मरण के गूढ़ विषयों पर मनन किया गया है और विश्व-दर्शन के लिए यह आर्यों की महत्वपूर्ण देन माने जाते हैं।

इस युग में ही वैराग्यपूर्ण जीवन व्यतीत करने की धारा का भी जन्म हुआ। यह विचार स्थान कर गया कि कठोर यातनाओं को सहन कर, लोभ और मोह से दूर रह कर मनुष्य आत्मा की शुद्धि करता है। इसी प्रकार ब्रह्मचारी के जीवन को भी महत्व दिया गया।

राजनैतिक दशा:—ऋग्वैदिक संस्कृति ग्रामीण थी। उत्तर वैदिक साहित्य में प्रथम बार विशाल नगरों का उल्लेख मिलता है। इस समय शक्तिशाली राज्य स्थापित हो गये। आर्यों के शक्तिशाली झुण्ड अब विन्ध्याचल के जंगलों में घुसने लगे थे। गोदावरी के उत्तर में अनेक राज्य स्थापित होते जारहे थे। आर्यों का क्षेत्र पंजाब नहीं दोआब होता जारहा था। और इस क्षेत्र का नाम ही आर्यावर्त हो गया था। यहाँ से ही आर्य संस्कृति दक्षिण तथा पूर्व की ओर विकसित हुई। अब छोटे छोटे राज्यों के स्थान पर संगठित विशाल राज्य स्थापित हो रहे थे। इन राज्यों में शक्तिशाली तथा प्रभावशाली राजवंश स्थापित हो गये थे। कुरु, पांचाल तथा काशी जैसे महान् राज्य स्थापित हो गये थे। परीक्षित तथा जन्मेजय जैसे प्रतापी राजा इसी समय हुए थे।

राजा के अधिकार व्यापक रूप से विस्तृत हो गये थे। राजा की निरंकुश स्थिति सुदृढ़ हो रही थी। वह अनेक प्रकार के कर वसूल करने लगा था। वह हर प्रकार का दण्ड दे सकता था तथा निर्वासित भी कर सकता था। राजा अनेक प्रकार के यज्ञों द्वारा अपनी अजेय शक्ति का परिचय देता था। उसका प्रमुख कर्तव्य युद्धों में सैन्य संचालन तथा न्याय करना था। इसे न्यायविभाग का उच्चतम अधिकारी माना जाता था। राजा को पूर्ण रूप से निरंकुश नहीं कहा जा सकता था। उसे राज्याभिषेक के समय राज्य के नियमों के प्रति निष्ठ रहने तथा ब्राह्मणों तथा धर्म की रक्षा करने की शपथ लेनी पड़ती थी। अथर्ववेद में बताया गया है कि राजा और सभा या समिति में पूर्ण सहयोग होना अनिवार्य है। ऐसे उल्लेख मिलते हैं जब दुराचारी राजा तथा उसके अधीनस्थ दुराचारी कर्मचारियों को पद से हटाया गया।

शासन व्यवस्था का रूप विस्तृत तथा जटिल होता जा रहा था। अनेक राज्याधिकारी राजा के चारों ओर घिरे रहते थे। इन राज्याधिकारियों को 'रत्निन' कहते थे।

'रत्नि' सम्भवत: उच्चकोटि के ही अधिकारी थे। इनके अतिरिक्त 'वीर' भी राज्य के अधिकारी थे। पंचविंश ब्राह्मण में आठ 'वीरों' का उल्लेख किया गया है। ऋग्वैदिक काल के तीन मुख्य अधिकारी अर्थात पुरोहित, सेनानी और ग्रामणी अब भी होते थे। राजतन्त्र के साथ साथ ही गणतन्त्र भी विकसित हो रहा था। सौराष्ट्र एवं कच्छ राष्ट्रों ने गणतन्त्र प्रणाली अपना रखी थी।

सामाजिक दशा:—वेशभूषा तथा खान-पान में इस काल में विशेष अन्तर नहीं आया था; परन्तु सुरापान तथा मांस-भक्षण को अच्छी दृष्टि से नहीं देखा जाता था। अथर्ववेद में इस प्रकार के भोजन को पाप कहा गया है। आमोद-प्रमोद के साधन बढ़ गये थे। शतपथ ब्राह्मण में पेशेवर नट तथा बाँसुरी आदि बजाने वालों का उल्लेख किया गया है। ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा वैश्य, इन तीनों वर्गों में अब परंपरा का पुट आता जा रहा था। शूद्र अब भी धनाढ्य अवश्य थे। ऐतरेय ब्राह्मण में इस वर्ण-व्यवस्था की रूप रेखा इस प्रकार दी गई है—ब्राह्मण दान लेने वाला, सोम पीने वाला, सदा घूमने वाला, इच्छा पर (सम्भवत: राजा की इच्छा पर) हिलने-डुलने वाला है; वैश्य दूसरों को कर देने वाला, दूसरों से भोग किया जाने वाला, तथा इच्छानुसार रखा जाने वाला कहा गया है। इसी प्रकार शूद्रों को दूसरों का नौकर, जब चाहे हटा दिये जाने वाला, जब चाहे मार दिया जाने वाला कहा गया है। यह सब सम्भवत: क्षत्रियों के दृष्टिकोण से वर्णित किया गया है।

उत्तर वैदिक काल में नारियों की दशा धीरे धीरे गिरती जा रही थी। वैवाहिक नियम कठोर हो गये थे। पर्दा प्रथा नहीं थी किन्तु स्त्रियां पुरुष-वर्ग से धीरे धीरे दूर रहने लगीं थीं। समता के भाव भी लोप हो रहे थे तथा अज्ञानता एवं अशिक्षा बढ़ रही थी। कुछ विदुषी स्त्रियां के उल्लेख मिलते हैं। उपनिषदों में शिक्षित नारियों के कई उदाहरण हैं।

बहु-विवाह प्रचलित हो गये थे और दहेज देने की प्रथा चल पड़ी थी। विधवा-विवाह इस समय भी प्रचलित थे। कुटुम्ब में प्रधान का अब भी उच्च स्थान था। माता का भी खूब आदर था। अथर्ववेद में कौटुम्बिक शान्ति के लिए प्रार्थनाएँ की गई हैं।

वेदों के मंत्रों को लिखना पाप माना जाता था। चिकित्सा ज्ञान पूर्व जैसा ही था और इस पर जादू टोने का प्रभाव अब पड़ा था। जन साधारण की भाषा निवासियों के आपसी सम्पर्क के कारण बदल गई और अनेक प्रादेशिक भाषाओं का—जैसे शौरसेनी, मागधी, महाराष्ट्री आदि का जन्म हुआ।

आर्थिक दशा:—कृषि ही आर्थिक व्यवस्था का मूलाधार थी किन्तु इसमें पर्याप्त उन्नति हो चुकी थी। काठक संहिता में २४ बैलों वाले हल का उल्लेख किया

गया है। शतपथ ब्राह्मण में कृषि कार्यों, जुताई, बुआई, कटाई, ओसाई आदि का उल्लेख किया गया है। जौ, धान, गेहूं, तिल आदि की खेती की जाती थी। कुछ अन्य व्यवसाय से भी लोग अपनी जीविका यापन करते थे जैसे मछुआ, सारथी, व्याध, धीवर, स्वर्णकार, मणिकार, रस्सी बाँटने वाला, टोकरी बुनने वाला, धोबी, लुहार, कुम्भकार, नाई, रंगसाज, जुलाहे आदि। धातुओं का प्रयोग भी बढ़ता जारहा था। लोहे का प्रयोग होता था। पशु—धन भी बढ़ता जारहा था और अब लोग हाथी भी पालने लगे थे। नाव बनाने वाले भी अत्यन्त कुशल थे। वाजसनेयी संहिता में हमें १०० पतवारों की नाव का उल्लेख मिलता है। इस प्रकार उत्तर वैदिक काल में लोगों ने विभिन्न प्रकार के व्यवसायों में काफी उन्नति करली थी।

उत्तर—वैदिक काल की देन:—उत्तर—वैदिक काल का भारतीय संस्कृति के इतिहास में उच्चतम स्थान है। आधुनिक भारतीय सभ्यता के हर पहलू पर इसकी छाप अंकित है। इस युग की सबसे महत्वपूर्ण देन वृहत् साहित्य है। दूसरी महत्वपूर्ण देन दार्शनिकता है। मोक्ष और पुनर्जन्म के सिद्धान्त तथा कर्मवाद के सिद्धान्त का मूलभूत प्रतिपादन इस काल में ही हुआ। अतः सांस्कृतिक क्षेत्र में उत्तर—वैदिक काल की देन अतुलनीय है।

अध्ययन के लिए संकेत

(१) ऋग्वेद युग के पश्चात का समय उत्तर वैदिक युग कहलाता है।

(२) उत्तर वैदिक साहित्य अत्यन्त विशाल है।

(३) इस काल की धार्मिक धारणाओं में पर्याप्त परिवर्तन हुआ है—अनेक देवता और बढ़ गये।

(४) विष्णु के प्रति श्रद्धा बढ़ गई।

(५) मोक्ष, पुनर्जन्म तथा कर्मवाद के सिद्धान्त।

(६) विशाल साम्राज्यों की स्थापना होने लगी।

(७) आर्यों का क्षेत्र पंजाब से हटकर कुरू व पांचाल हो गया।

(८) स्त्रियों की दशा हीन होने लगी।

(९) वर्ण—व्यवस्था परम्परागत रूप धारण करने लगी।

(१०) अनेक अन्य पेशों का जन्म हुआ।

अभ्यासार्थ प्रश्न

(१) **उत्तर—वैदिक युग में आर्यों की सभ्यता का विवेचनात्मक ढंग से वर्णन कीजिये।**

1. Discuss the aspects of Aryan culture of the later Vedic Period.

(२) ऋग्वैदिक तथा उत्तर-वैदिक संस्कृति की धार्मिक, सामाजिक तथा आर्थिक व राजनैतिक क्षेत्र में तुलना करते हुए, बतलाइये की भारत को इन दोनों कालों की क्या देन है ?

2. Compare the culture of Rigvedic Period with the culture of later Vedic Period. Point out the main contribution of these two to the Indian culture.

छठा अध्याय

(ग) परवर्ती वैदिक–साहित्य और उसकी सभ्यता

(१) प्रस्तावना (२) महाकाव्य (३) महाकाव्यों में वर्णित सभ्यता

प्रस्तावना:— प्रारम्भिक सभ्यता के ज्ञान के लिए हमें ऋग्वेद से सामग्री लेनी पड़ी। तदुपरान्त सामवेद से लेकर उपनिषद तथा सूत्र साहित्य तक हमें उत्तर-वैदिक कालीन संस्कृति के लिए सामग्री मिली। यहां उपनिषदों के पश्चात् से लगभग ८०० ई. पू० तथा कुछ उसके बाद तक महाकाव्यों पर आधारित संस्कृति का अवलोकन किया जावेगा। वैसे इन ग्रन्थों की रचना तिथि का ठीक ठीक काल बतलाना बड़ा कठिन है।

उपनिषदों के ठीक बाद वैयाकरण पाणिनि की अष्टाध्यायी ऐतिहासिक सामग्रियों से भरपूर है। इससे हमें कलिंग, सिन्ध, कच्छ, तक्षशिला, अस्मक आदि के बारे में जानकारी होती है। इस काल तक आर्य पश्चिम में कच्छ, पूर्व में कलिंग तथा दक्षिण में अवन्ति तक ही प्रसारित हो सके थे। विभिन्न छोटे छोटे राज्यों को जनपद कहा जाता था और अष्टाध्यायी में इस प्रकार के बाईस जनपदों का उल्लेख मिलता है। अष्टाध्यायी से हमें तत्कालीन सामाजिक अवस्था का भी ज्ञान होता है। 'कुल', 'गोत्र' आदि शब्दों का उल्लेख मिलता है। संगीत तथा नृत्य जीवन के अंग बन चुके थे। शिक्षा का भी जीवन में बहुत महत्व हो चुका था। लोग विभिन्न प्रकार के उद्योग–धन्धों में तथा नौकरियों में लगे हुए थे। मुद्राओं के क्षेत्र में भी पर्याप्त उन्नति हो रही थी।

इसी प्रकार सूत्र–साहित्य से हमें सभ्यता एवं संस्कृति का काफी ज्ञान होता है। राजसत्ता का राजा को अपने हाथ में रखने का उल्लेख है। न्याय के लिए दीवानी तथा फौजदारी विधान का वर्णन मिलता है। उपज पर तथा पशु–धन पर कर आदि का भी वर्णन है। गृहसूत्र में गृहस्थ जीवन का वर्णन है। अब तक आर्यों का समस्त जीवन संस्कारों में बँध चुका था। इसी प्रकार आश्रमों का महत्व भी बढ़ चुका था। ऐसे समय में ही शायद महाकाव्यों की रचना हुई।

महाकाव्य:—महाकाव्यों के अन्तर्गत 'रामायण' तथा 'महाभारत'—ये दो ग्रन्थ सम्मिलित हैं। ये दोनों ग्रन्थ सदियों से हिन्दुओं के प्राण रहे हैं और इनसे भारत में अनेक काव्य, नाटक तथा अन्य साहित्य की रचना हुई है। यद्यपि 'महाभारत' में पाण्डवों तथा कौरवों के युद्ध की ही प्रधानता है तथापि उसमें अनेक गाथाएँ, वंश परम्पराओं का उल्लेख, राजनीति, धर्म, दर्शन आदि वर्णित हैं। यह ग्रन्थ लगभग [illegible] और ... इसका आकार बढ़ता

गया। इसी प्रकार 'रामायण' में राम और सीता से सम्बन्ध न रखने वाले अनेक कथानक हैं, फिर भी ये महाभारत के प्रतिकूल अधिक सम्बद्ध हैं। यह निश्चित करना कठिन है कि ये महाकाव्य कब लिखे गये किन्तु इस सम्बन्ध में डा० ईश्वरीप्रसाद का मन्तव्य उल्लेखनीय है। वे कहते हैं, "ऐसा ज्ञात होता है कि महाभारत का रचना-काल रामायण की अपेक्षा विशेष विस्तृत है तथा सम्भवतः ईसा से सातवी शताब्दी पूर्व से लेकर ईसा के पश्चात दूसरी या तीसरी शताब्दी तक है। रामायण का निर्माण काल ईसा से पूर्व छठी या सातवीं शताब्दी से लेकर दूसरी या तीसरी शताब्दी तक है।"

महाकाव्यों में वर्णित सभ्यता:—रामायण तथा महाभारत के पढ़ने से हमें तत्कालीन समाज, राजनीति तथा शासन-पद्धति आदि का सुन्दर ज्ञान उपलब्ध होता है। यद्यपि वर्णाश्रम-व्यवस्था का पालन अब भी आवश्यक माना जाता था किन्तु व्यावहारिक रूप में इस व्यवस्था में कुछ शिथिलता अवश्य आती चली जारही थी। कुछ राजाओं का शूद्र कन्याओं से विवाह करने का उल्लेख मिलता है। अब महाभारत काल में अपेक्षाकृत शूद्रों का स्थान कुछ ऊँचा हो गया था। आर्थिक क्षेत्र में वैश्यों की प्रधानता बढ़ती जारही थी। कुछ शूद्र भी राजकीय पद पाने लगे थे। महाभारत काल में सामाजिक सन्तुलन तथा समन्वय की भावना आने लगी थी जिससे अन्तर्जातीय विवाह, आचरण की प्रधानता, वर्ण-नियम में ढीलता आदि प्रारम्भ हो गये थे।

समाज में नारी का दिनोंदिन स्थान गिरने लगा था। महाभारत तथा रामायण काल में स्त्रियां की दशा कुछ विचित्र सी थी। कहीं कहीं अत्यधिक सम्मान तो कहीं कहीं पूर्ण अवहेलना। कहीं तो इन्हें खुलेआम तिरस्कृत किया गया है। स्त्रियाँ उत्सव आदि में स्वतन्त्रता-पूर्वक विचरण करती थीं। उनकी जीवन में महत्ता अवश्य मानी गई थी। सूत्रकालीन विवाह की आठों पद्धतियाँ इस समय भी विद्यमान थीं।

समाज में माँस भक्षण अधिक बढ़ गया था। यज्ञों की प्रधानता थी और कुछ नवीन देवताओं को अधिक महत्व दिया जाने लगा था। आमोद-प्रमोद, मृगया, आखेट, जुआ, नृत्य-संगीत आदि अनेक वस्तुएँ इस समय के समाज में पाई जाती थीं किन्तु साथ ही साथ वीरता, कला-प्रियता आदि भी प्रशंसित थीं। अब शस्त्र-शिक्षा पर अधिक बल दिया जाने लगा था। वैश्यों का संगठन हो चुका था और इन्हें 'श्रेणी' कहते थे।

राजा का पद काफी ऊँचा हो गया था। उसे देव-तुल्य माना जाने लगा था। उसका उत्तरदायित्व भी बढ़ गया था। उसके कुछ महत्वपूर्ण कर्तव्य इस प्रकार थे—कृषि-भूमि तैयार करना, सिंचाई की व्यवस्था करना, सड़क-निर्माण, शान्ति-सुरक्षा जनता का नैतिक उत्थान आदि। राजा की निरंकुशता पर रोक लगाने के लिए मंत्रिपरिषद तथा जनता का महत्वपूर्ण योग था। महत्वपूर्ण कामों में राजा को मंत्रीपरिषद की अनुमति आवश्यक थी। ग्राम शासन की न्यूनतम इकाई था और उसका प्रधान

अधिकारी ग्रामणी होता था। महाभारत में पाँच गणराज्यों का भी उल्लेख है। शासन-प्रबन्ध को सुचारु-रूप से संचालित करने के लिए अनेक प्रकार के अधिकारी नियुक्त किये जाते थे। सभापर्व में अठारह अधिकारियों का उल्लेख किया गया है। युद्ध के लिए सेना रखना परम-आवश्यक था। सेना में पैदल, अश्वारोही, गजारोही, रथी आदि होते थे।

इन दोनों महाकाव्यों की महत्ता अपूर्व है। भारतीय संस्कृति की ये अमूल्य निधि हैं। आज भी मर्यादा पुरुषोत्तम राम, सती सीता, योगीराज कृष्ण तथा धर्मराज युधिष्ठर भारत जन जीवन के आदर्श हैं।

अध्ययन के लिए संकेत

(१) उपनिषदों के पश्चात् से लगभग ८०० ई० पू० व और भी उसके बाद का काल महाकाव्यों का काल माना गया है।

(२) डा० ईश्वरी प्रसाद अनुमान से इनकी तिथि सातवीं शताब्दी पूर्व से लेकर दूसरी या तीसरी शताब्दी ई० पू० तक मानते हैं।

(३) रामायण तथा महाभारत काल में समाज में अनेक परिवर्तन हो चुके थे—वर्णाश्रम इतना कठोर नहीं था; राजा का पद बढ़ गया था, उसके कर्तव्य बढ़ गये थे और नारी का स्थान इतना ऊँचा नहीं रहा था।

अभ्यासार्थ प्रश्न

(१) महाकाव्यों में वर्णित संस्कृति की व्याख्या करते हुए, वैदिक-संस्कृति से उसकी भिन्नता पर प्रकाश डालिए?

1. Give an account of the Epic culture and compare it with Vedic Culture.

(२) परवर्ती वैदिक-साहित्य में वर्णित सामाजिक दशा उत्तर-वैदिक साहित्य कालीन दशा से कहाँ तक मेल खाती है?

2. How can you c m are the social life of the Epic age with that of the Later Vedic age?

सातवां अध्याय

बुद्धकालीन भारत व उसकी संस्कृति

(१) प्रस्तावना (२) बौद्धकालीन भारत–उत्तरी भारत की राजनैतिक अवस्था (३) ब्राह्मण धर्म के कर्म काण्ड की प्रतिक्रिया (४) महावीर और बुद्ध (५) जैन धर्म व बौद्ध धर्म–तुलना (६) बौद्ध धर्म की उन्नति के कारण (७) बौद्ध धर्म की देन।

प्रस्तावना:—बौद्ध धर्म संसार के महान धर्मों में से एक है। इसके अनुयायियों की संख्या संभवत: केवल ईसाई धर्म को छोड़कर संसार में सबसे अधिक है। अत: बौद्ध धर्म संसार का दूसरा सबसे बड़ा धर्म है। अनुयायियों की संख्या के अतिरिक्त एक अन्य तथा अधिक उपयोगी दृष्टिकोण से भी बौद्ध धर्म का महत्व और स्थान संसार के अन्य धर्मों से अधिक ऊँचा है। वह इसके मानवोपयोगी सुन्दर सिद्धान्त और आदर्श शिक्षाएँ हैं। इस धर्म का आधार सत्य, अहिंसा, प्रेम और बन्धुत्व है। भारत को इस आदर्श धर्म को जन्म देने का श्रेय प्राप्त है।

राजनैतिक अवस्था:—उत्तर भारत में आर्यकरण का कार्य बहुत ही वेग से चल रहा था और छठी शताब्दी ई. पू. तक आते–आते यहाँ अनेक शक्तिशाली आर्य केन्द्र स्थापित हो चुके थे। पाणिनी की अष्टाध्यायी में २२ जनपदों का उल्लेख किया गया है जिनमें केकय, गांधार, कम्भोज, भद्र, अवन्ति, कुरु, साल्व, कोसल, भारत, उसीनर, यौधेय, प्राज्ञ तथा मगध सम्मिलित थे। प्रारम्भिक बौद्ध ग्रन्थों में ही हमें सर्वप्रथम राजनैतिक इतिहास की पृष्ठभूमि अधिक स्पष्ट रूप से प्राप्त होती है। अंगुत्तर निकाय के अनुसार सोलह महाजनपद थे। अंग, मगध, काशी, कोशल, वज्जि, मल्ल, चेदि, वंश या वत्स, कुरु, पंचाल, मच्छ या मत्स्य, सूरसेन, अस्सक, अवन्ति, गन्धार, और कम्भोज–ये १६ महाजनपद थे। इन जनपद व महाजनपद के अतिरिक्त हमें ग्यारह गणराज्यों का वृतान्त भी मिलता है। ये गणराज्य-कपिलवस्तु के शाक्य, अल्लकप्प केबुली, केसपुत्त के कालाम, सुंसमगिरि के भग्ग, रामगाम के कोलीय, पावा के मल्ल, कुशीनगर के मल्ल, पिप्पलिवन के मोरिय, मिथिला के विदेह, वैशाली के लिच्छवी तथा वेशाला के नाय थे।

तत्कालीन भारत में संघ का महत्व बहुत अधिक था। जनता में राजनैतिक जागरूकता थी। आधुनिक युग में संघ–सरकार की सभाओं में जिन पद्धतियों का प्रचलन है वे न्यूनाधिक सब प्राचीनकाल में प्रचलित थीं। स्वयं महात्मा बुद्ध भी गण–राज्यों

की इस व्यवस्था से प्रभावित थे और कालान्तर में इन्हीं के आधार पर उन्होंने बौद्ध संगठनों का निर्माण किया।
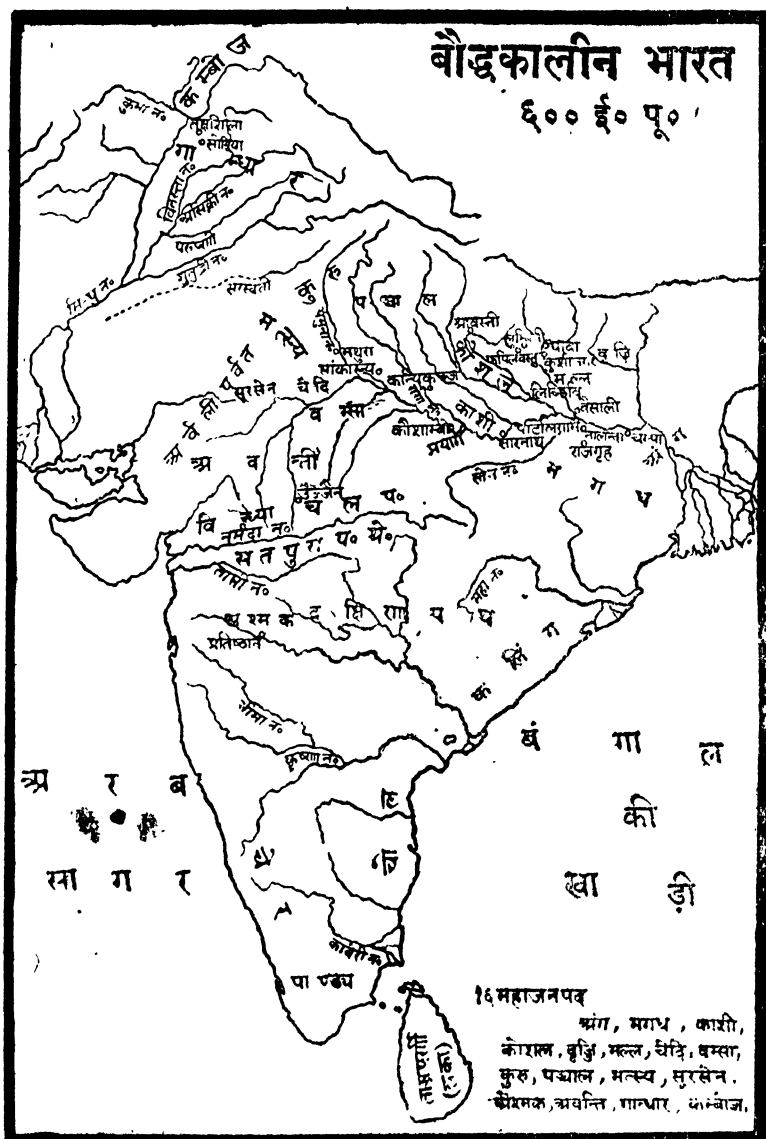
बौद्धकालीन भारत

इनके अतिरिक्त इस काल में चार विशाल राजतंत्रीय राज्य भी थे—वत्स, अवन्ति, मगध व कोशल। इनमें मगध अत्यधिक शक्तिशाली था। मगध के दो प्रसिद्ध

राजाओं—अर्थात बिम्बसार व अजातशत्रु का इतिहास ही मगध का इतिहास है। बिम्बसार का शासन कठोर था जिसमें दया के लिए कोई स्थान नहीं था। जैन लोगों का कहना है कि बिम्बसार जैन धर्म को मानता था। उनका कहना है कि वह समस्त परिवार तथा मंत्रियों के साथ महावीर स्वामी से मिला था और जैन धर्म का अनुगामी बन गया था। इसी प्रकार बौद्ध लोगों का कहना है कि वह भगवान बुद्ध से अपनी राजधानी राजगृह में मिला था और बौद्ध धर्म का अनुयायी हो गया था।

अजातशत्रु ने अपने पिता बिम्बसार का अन्त ५५१ ई० पू० में कर दिया था। बौद्ध ग्रन्थ 'विनय' से हमें इसके काले कारनामों का विवरण मिलता है। अजातशत्रु ने अपनी शक्ति को उत्तरोत्तर बढ़ाया। उसका महान प्रतिद्वन्द्वी केवल अवन्ति का शासक चण्डप्रद्योत ही था। अजातशत्रु ने महावीर स्वामी से भेंट की थी और जैन धर्म की प्रशंसा की थी। वह कब बौद्ध हो गया इसका स्पष्ट उल्लेख नहीं मिलता है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि महात्मा बुद्ध व महावीर स्वामी के समय में उत्तरी भारत में अनेक छोटे-छोटे गणराज्य विद्यमान थे जिनमें आधुनिक प्रजातंत्र के अधिकांश तत्व विद्यमान थे। गणराज्यों में कुछ चुने हुए व्यक्ति ही राज्य करते थे फिर भी बहुमत को मान्यता थी। स्वतन्त्र राज्य भी उन्नति शील थे। मगध राज्य का उत्थान हो रहा था।

ब्राह्मण-धर्म के कर्मकाण्ड की प्रतिक्रिया:—बौद्ध धर्म की स्थापना से पूर्व हमें यह जान लेना आवश्यक है कि इस समय ब्राह्मण धर्म की कैसी दशा थी। बौद्ध धर्म के सूत्रपात से ठीक पूर्व हिन्दू वैदिक धर्म में, जिसे कि ब्राह्मण धर्म भी कहते हैं, अनेक दोष उत्पन्न हो गये थे। बौद्ध धर्म के प्रादुर्भाव का एक अति महत्वपूर्ण कारण ब्राह्मण धर्म के ये दोष भी थे। वैदिक धर्म की सरलता और आडम्बर हीनता का कहीं भी पता नहीं था। जाति बन्धन भी बहुत कठोर हो गये थे। अब जातियाँ कर्म से नहीं बल्कि जन्म से मानी जाती थीं। जातियों में पारस्परिक विवाह तथा खान पान भी बन्द हो गया था। शूद्रों से घृणा की जाती थी तथा उन्हें अस्पृश्य माना जाता था। क्षत्रिय भी अपने को उच्च समझते थे। ऐसे भी प्रमाण मिले हैं कि समाज में ब्राह्मणों के प्रभुत्व के कारण क्षत्रिय उनसे द्वेष रखते थे। जैन और बौद्ध धर्म का प्रादुर्भाव ब्राह्मणों के प्रभाव के प्रति विद्रोह स्वरूप ही हुआ। इस समय का हिन्दू धर्म कर्मकाण्ड तथा आडम्बरों से पूर्ण हो गया था। यज्ञ तथा बलि को ही धर्म का सर्वस्व माना जाता था। धर्म में अनेक प्रकार की जटिलताओं ने भी घर कर लिया था। धर्म पर ब्राह्मणों का एकाधिकार हो गया था। धर्म के इन दोषों के फलस्वरूप यह आवश्यक ही हो गया था कि कोई सुधारक धर्म को इन वाह्य आडम्बरों से मुक्त करके उसे नया जीवन प्रदान करे। इससे जैन और बौद्ध धर्म का प्रादुर्भाव हुआ। अनेक विद्वानों का मत है कि जैन अथवा बौद्ध धर्म कोई नये धर्म नहीं थे। डा० ईश्वरी प्रसाद का कथन है, "जैन अथवा

बौद्ध धर्म भारतीय धर्माकाश में कोई नवीन ग्रह के रूप में प्रकट नहीं हुए, वरन उपर्युक्त भिन्न भिक्षुवर्गों में से ही दो वर्ग थे, यद्यपि प्रभाव दूसरों की अपेक्षा विशेष महत्वपूर्ण तथा स्थायी हुआ था।' जैन धर्म के वास्तविक प्रवर्त्तक महावीर स्वामी थे। वे जैनियों के २४ वें और अन्तिम तीर्थङ्कर थे। ये गौतम बुद्ध के समकालीन थे। इन्होंने सत्य, अहिंसा और सद्व्यवहार की शिक्षा दी। जैन मतावलम्बियों के अनुसार उनके धर्म का प्रारम्भ बौद्धकाल में महावीर स्वामी द्वारा नहीं हुआ था। उन लोगों के विचार में सृष्टि के समान उनका धर्म भी अनादि है। महावीर स्वामी के प्रादुर्भाव से २५० वर्ष पूर्व तीर्थंकर पार्श्व का समय है। तीर्थङ्कर पार्श्वनाथ के अनुयायी बौद्धकाल की धार्मिक सुधारणा में विद्यमान थे। पार्श्वनाथ के अनुसार जैन भिक्षु के लिये निम्नलिखित चार व्रत लेना आवश्यक था—(१) मैं जीवित प्राणियों की हिंसा नहीं करूँगा (२) मैं सदा सत्य भाषण करूँगा (३) मैं चोरी नहीं करूँगा (४) मैं कोई सम्पत्ति नहीं रखूँगा।

महावीर स्वामी

पार्श्व द्वारा प्रतिपादित इन चार व्रतों के साथ महावीर ने एक व्रत और बढ़ा दिया और वह था—"मैं ब्रह्मचर्य का पालन करूँगा।"

महावीर का जन्म का नाम वर्धमान था और वज्जिराज्य-संघ के अन्तर्गत ज्ञातृक गण में राजा सिद्धार्थ तथा रानी त्रिशला के ये पुत्र थे। यद्यपि महावीर का प्रारम्भिक जीवन साधारण गृहस्थ के समान व्यतीत हुआ, पर उसकी प्रवृत्ति सांसारिक जीवन की ओर नहीं थी। वह 'प्रेय' मार्ग छोड़कर 'श्रेय' मार्ग की ओर जाना चाहता था।

गोतम बुद्ध

तीस वर्ष की आयु में पिता की मृत्यु के अनन्तर उन्होंने सांसारिक जीवन को त्यागकर भिक्षु बनना निश्चित किया। उन्होंने भिक्षु बनते समय जो वस्त्र पहने थे वे तेरह मास में बिलकुल जर्जरित हो गये और फिर उन्होंने वस्त्र धारण नहीं किये। तीस वर्षों तक

उन्होंने अपने धर्म का कोसल, मगध तथा सुदूर पूर्व में उपदेश किया और पावा में (पटना) मृत्यु को प्राप्त हुए। यह घटना सम्भवत: ४७० ई० पू० की है।

महात्मा बुद्ध का जन्म आधुनिक बिहार राज्य में स्थित कपिलवस्तु नगरी में ईसा से ५६३ वर्ष पूर्व हुआ था। इनके पिता शुद्धोदन कपिलवस्तु गणराज्य के राजा थे। इनके बचपन का नाम सिद्धार्थ था। ये बचपन से ही बड़े चिंतनशील थे। पीड़ित प्राणियों के प्रति इनके हृदय में अपार दया तथा सहानुभूति का सागर लहरा रहा था। पिता ने इनमें परिवर्तन लाने के लिए १८ वर्ष की आयु में इनका विवाह कर दिया। दो वर्ष बाद इनके पुत्र भी हुआ। परन्तु इनकी चिंतनशीलता बढ़ती ही गई और तीस वर्ष की आयु में रात्रि के गहन अन्धकार में अपने पुत्र और पत्नी को सोता हुआ छोड़कर वे शान्ति की खोज में चल दिये। यही गौतम का "महानिष्क्रमण" है।

वे स्थान स्थान पर शान्ति की खोज में घूमते रहे। उन्होंने छः वर्ष तक कठिन तपस्या भी की परन्तु उनका उद्देश्य पूर्ण नहीं हुआ। अत: तपस्या को निरर्थक मानकर अब वे सरल जीवन व्यतीत करने लगे। एक दिन बौद्ध गया के समीप एक पीपल के पेड़ के नीचे वे ध्यानावस्था में बैठे थे। वहीं उन्हें सत्य का बोध हुआ और इसी कारण वे बुद्ध कहलाये। उन्हें जो भी बोध, ज्ञान तथा सत्य का आभास हुआ था वही बातें उनकी शिक्षाओं तथा उपदेशों में आज स्पस्ट देखी जा सकती हैं। यहां ही उन्हें पता चला कि सरल, सच्चा तथा आडम्बर हीन जीवन ही सुख का मार्ग है। तप, यज्ञ तथा कर्मकाण्ड निरर्थक हैं।

'बोध' प्राप्त करने के पश्चात् उन्होंने सर्व प्रथम अपने उपदेश बनारस के पास सारनाथ में पांच भिक्षुओं को सुनाये और तदनन्तर अपने विचारों का उन्होंने व्यापक रूप से प्रचार करना प्रारम्भ कर दिया। पैंतालीस वर्षों तक महात्मा बुद्ध अपने मत का भारत के भिन्न भिन्न स्थानों में प्रचार करते रहे। अस्सी वर्ष की आयु में कुशीनगर नामक स्थान पर उनके पार्थिव शरीर का अन्त हुआ। यही उनका महानिर्वाण था।

गौतम ईश्वर में विश्वास नहीं रखते थे। वे आत्मा को नित्य नहीं मानते थे तथा किसी ग्रन्थ को स्वत: प्रमाण नहीं मानते थे और जीवन-प्रवाह को इसी शरीर तक परिमित नहीं मानते थे। गौतम बुद्ध ने चार आर्य सत्य बतलाये—दु:ख:, दु:ख समुदाय, दु:ख निरोध तथा दु:ख निरोधगामी मार्ग। इस सबसे निवृत्ति पाने के लिए बुद्ध ने आर्य अष्टांगिक मार्ग का प्रतिपादन किया। यह अष्टांगिक मार्ग इस प्रकार है— सम्यक दृष्टि, सम्यक संकल्प, सम्यक वचन, सम्यक कर्म, सम्यक जीविका, सम्यक प्रयत्न, सम्यक स्मृति तथा सम्यक समाधि।

भगवान बुद्ध ने अन्धानुकरण न करने का उपदेश दिया तथा स्वयं उचित अनुचित पर विचार करने की अनुमति दी।

जैन धर्म व बौद्ध धर्म की तुलनाः— ये दोनों धर्म छठी व सातवीं शताब्दी ईसा पूर्व सामान्य धार्मिक तथा आध्यात्मिक चेतना के प्रतिफल थे। उनमें अनेक समान बातें दृष्टिगोचर होती हैं। दोनों ने वैदिक कर्म-काण्ड, जातिभेद तथा ब्राह्मणों की सामाजिक श्रेष्ठता का विरोध किया और वेदों को अपौरुषेय न मानते हुए अहिंसा पर बल दिया। दोनों ने ईश्वर के प्रति उदासीनता अपनायी और सन्यास की महत्ता बतलाई। पुनर्जन्म तथा मोक्ष को दोनों मानते थे। इन लोगों ने भी कुछ मिलती जुलती पौराणिक कथाओं की सृष्टि की। डा० आर० सी० मजूमदार की मान्यता है कि जैन और बौद्ध सम्प्रदायों में मूर्ति के प्रभाव को स्वीकार कर लेना इस तथ्य का द्योतन करता है कि ये दोनों सम्प्रदाय अनार्य विचारधारा से प्रभावित थे।

इन दोनों धर्मों में अनेक विषमतायें भी हैं। बौद्ध धर्म निर्वाण प्राप्ति के लिए मध्यम पथ की आवश्यकता बतलाता है किन्तु जैन धर्म में उपवास, उग्र तपस्या तथा प्राण-त्याग आदि कठिन कर्मों को मोक्ष-प्राप्ति का साधन बतलाते हैं। जैन धर्मावलम्बी अहिंसा पर बौद्धों से अधिक बल देते हैं। बौद्ध लोग अनात्मावादी हैं जब कि जैन प्रत्येक जीव में आत्मा का निवास मानते हैं। बौद्धों का दृष्टिकोण प्रारम्भ से ही क्रान्तिकारी था जिससे वे प्रचलित धार्मिक विश्वासों के साथ सामञ्जस्य स्थापित नहीं कर सके, परन्तु जैन धर्म का दृष्टिकोण सहिष्णुतापूर्ण था। आचरण में जैन और वैष्णव काफी समान हो गये जबकि बौद्ध विपरीत ही रहे।

बौद्ध धर्म की उन्नति के कारणः— बौद्ध धर्म का इस देश में विस्तृत प्रसार बड़ी शीघ्रता से हुआ। इसकी इस सफलता के अनेक कारण थे।

बौद्ध धर्म के सिद्धान्त सरल थे जो सर्व साधारण के लिए बोधगम्य थे। उनमें कोई ऐसी बात नहीं थी जो साधारण लोग न समझ पाते। तत्कालीन समाज यज्ञों और पुरोहितों के कुप्रभाव से तंग था अत: जब बुद्ध ने वैदिक कर्मकाण्ड का विरोध करते हुए ब्राह्मणों की श्रेष्ठता को चुनौती देना प्रारम्भ किया तो अनेक लोग उनके उपदेशों से प्रभावित हुए। बुद्ध का प्रभावशाली व्यक्तित्व था। अनेक गुण होने के कारण बुद्ध के व्यक्तित्व में चुम्बकीय आकर्षण का समावेश हो गया था। बुद्ध ने जाति प्रथा का विरोध किया और समानता की भावना पर बल दिया, जिसका ब्राह्मणों के अतिरिक्त सबने स्वागत किया। महात्मा बुद्ध ने अपने उपदेशों में लोक भाषा का प्रयोग किया। वे उदाहरणों द्वारा उपदेशों को तथा प्रचार-शैली को रोचक बना देते थे। उन्होंने बौद्ध भिक्षुओं के लिए संघ-पद्धति की व्यवस्था की जिससे इनका संगठन सफल हुआ। इस धर्म को बिम्बसार, अशोक, कनिष्क तथा हर्ष जैसे सम्राटों का राज्याश्रय मिला जिससे इसका तीव्रगति से प्रसार हुआ। अन्त में बौद्ध भिक्षुओं के अदम्य उत्साह के फलस्वरूप ही भारत तथा विश्व भर में इस धर्म का प्रचार सफलता से हो सका।

बौद्ध धर्म की देन:— बौद्ध धर्म की सबसे प्रमुख देन कला के क्षेत्र में है। मूर्ति कला और शिल्पकलाओं का तो उद्भव ही प्रायः बौद्ध धर्म के द्वारा हुआ। ईसा की छठी शताब्दी तक भारत की सबसे उत्तम कला बौद्ध कला ही रही है। चीन, जापान, लंका, बर्मा तथा स्याम, बोर बोदूर का स्तूप, तिब्बत तथा नैपाल की धार्मिक कला—सबमें बौद्ध कला का सर्वोच्च स्थान है।

साहित्य सृजन में भी बौद्ध धर्म की महत्वपूर्ण देन है। इनका सम्पूर्ण साहित्य प्रचुर और विशाल है। इस धर्म के उदय होने से भारत में एक नवीन दार्शनिक साहित्य का सृजन हुआ। इनके दार्शनिक सिद्धान्तों व विचारों का खण्डन करने के लिए अन्य दार्शनिकों जैसे शंकराचार्य आदि ने अपना दर्शन प्रस्तुत किया। बौद्ध धर्म के कारण विदेशों में भारतीय संस्कृति का प्रचार हुआ। ब्राह्मणों ने बौद्ध धर्म की बहुत सी श्रेष्ठ बातों को ग्रहण कर लिया और अपने धर्म में अनेक सुधार किये। बौद्ध संघों की स्थापना भगवान बुद्ध ने की और धार्मिक संघ इनकी अपनी विशिष्ट देन है।

अध्ययन के लिए संकेत

(१) बौद्ध धर्म संसार के महान धर्मों में से एक है।

(२) बौद्ध—कालीन राजनैतिक भारत में जनपद, महाजनपद, गणराज्य तथा चार बड़े राजतंत्र विद्यमान थे।

(३) बौद्ध व जैन धर्म की उत्पत्ति ब्राह्मण-धर्म के कर्म—काण्ड के प्रतिक्रिया स्वरूप हुई।

(४) जैन धर्म के प्रवर्त्तक महावीर स्वामी थे।

(५) बुद्ध ईश्वर में विश्वास नहीं रखते थे।

(६) बौद्ध धर्म की उन्नति के कई विशेष कारण थे। जिसमें राज्याश्रय भी प्रमुख था।

(७) बौद्ध धर्म की सबसे बड़ी देन कला के क्षेत्र में है।

अभ्यासार्थ प्रश्न

उत्तर भारत की छठी शताब्दी ई. पू. की राजनैतिक अवस्था का संक्षिप्त परिचय दीजिए।

Q. 1. Briefly describe the Political Condition of India in the 6th century B. C.

बौद्ध धर्म व जैन धर्म की महत्वपूर्ण शिक्षाओं का वर्णन करते हुए उनकी तुलना कीजिये।

Q. 2. Give the important tenets of Budhism and Jainism and compare them.

Q. 3. Throw light on the causes of the development of Budhism.
बौद्ध धर्म की देन पर प्रकाश डालिए ।

Q. 4. What is the contribution of Budhism ?

आठवां अध्याय

मगध राज्य का उत्थान तथा भारत में यवन

सिकन्दर का आक्रमण

१. प्रस्तावना

२. मगध साम्राज्य का उदय तथा विकास (क) अजात शत्रु (ख) महापद्मनन्द

३. ईरानी आक्रमण

४. सिकन्दर का आक्रमण

५. परिणाम

प्रस्तावना:—मगध का इतिहास बहुत प्राचीन है किन्तु उसका क्रम-बद्ध इतिहास छठी शताब्दी ई० पू० से आरम्भ होता है। उत्तरी भारत की राजनैतिक एकता समाप्त प्राय हो गई थी और जैसा कि पहले कहा जा चुका है वहां १६ महाजनपद भी थे। राजतन्त्रात्मक राज्यों में मगध, कोशल, वत्स व अवन्ति मुख्य थे। इन सबमें शक्तिशाली व महत्वाकांक्षी मगध का राज्य था और यहाँ क्रमश: वार्हद्रथ, हर्यङ्क, शिशुनाग, नन्द तथा मौर्य वंशों ने राज्य किया। यह राज्य आज के बिहार के गया व पटना जिलों को मिलाकर बना हुआ था।

मगध राज्य का उदय तथा विकास:— मगध राज्य की नींव जरासन्ध के पिता वार्हद्रथ ने डाली थी। जरासन्ध बड़ा साम्राज्यवादी शासक था किन्तु वह अपनी योजनाओं में सफल न हो सका। हर्यक वंश का संस्थापक बिम्बसार था। यह बड़ा प्रतापी व साहसी शासक था। बिम्बसार का केवल पंद्रह वर्ष की आयु में ही ५४३ ई. पू. में उसके पिता ने राज्याभिषेक कर दिया था। उसने आरम्भ से ही राज्य विस्तार की नीति का अनुसरण किया। इस लक्ष्य की पूर्ति के लिए उसने दो मार्ग अपनाये- युद्ध तथा विवाह-सम्बन्ध। उसकी एक पत्नी कोशल के प्रसेनजीत की बहन कोशल देवी थी जिससे उसे एक लाख की आय वाला एक ग्राम दहेज में मिला। दूसरी रानी लिच्छवी राजा केतक की पुत्री चेल्लना थी जिससे वह नैपाल तक राज्य विस्तृत कर सका और तीसरी रानी पंजाब के भद्र राजा की पुत्री क्षेमा थी। उसने आक्रमण कर अंग राज्य पर अपना आधिपत्य स्थापित कर लिया।

बिम्बसार का शासन-प्रबन्ध चातुर्य्यपूर्ण था। वह बुद्ध भगवान का मित्र भी था। वह बड़ा उदारहृदय शासक था। उसके पुत्र अजातशत्रु ने लोभवश उसकी हत्या कर दी।

अजातशत्रु ने उत्तर बिहार में वज्जि-गणसंघ राज्य को हराकर उत्तर हिमालय तक अपना साम्राज्य प्रसारित किया। कोशल के राजा प्रसेनजीत से दीर्घकाल तक उसका युद्ध चलता रहा और अन्त में सन्धि हो गई। धीरे धीरे काशी सदा के लिए मगध राज्य का अंग बन गया। अजातशत्रु जैन व बौद्ध दोनों धर्मों का आदर करता था। अतः दोनों धर्मावलम्बी उसे अपने धर्म का अनुयायी मानते हैं। इसमें सन्देह नहीं कि बौद्ध धर्म में अजातशत्रु की अधिक निष्ठा रही थी। उसके उत्तराधिकारियों में उदायी, अनुरुद्ध, मुण्ड, नागदशक इत्यादि कई राजा हुए। इस वंश को काशी के शासक शिशुनाग ने समाप्त किया और अपने नाम के वंश की स्थापना की। इसके काल में लगभग समस्त उत्तरी भारत में मगध की सत्ता स्थापित हो गई थी। शिशुनाग के पुत्र अशोक ने पाटलीपुत्र को अपनी राजधानी बनाया। इस वंश में अनेक राजा हुए और अन्त में शूद्रा नामक स्त्री के पुत्र महापद्मनन्द ने इस वंश का अन्त कर नंन्द वंश की स्थापना की।

महापद्मनंद मौर्यों से पूर्व मगध साम्राज्य का निर्माता कहलाता है। वह एक महान सैनिक नेता तथा योद्धा था। अपनी निर्दयता, कठोरता तथा शूद्र घराने में जन्म के कारण वह लोकप्रिय न हो सका। उसने जनता के हित की ओर भी विशेष ध्यान नहीं दिया अपितु स्वार्थसिद्धि तथा लोलुपता के कारण उसने जनता को अनेक प्रकार से यातनाएँ दीं। चन्द्रगुप्त मौर्य्य ने साहस और शौर्य्य से इस वंश की दुर्बलताओं से लाभ उठाकर अन्तिम तथा नवें शासक को मार कर मगध पर मौर्य्य वंश की स्थापना की।

ईरानी आक्रमण:—यूँ तो मगध साम्राज्य में देश के आन्तरिक भाग के अनेक राज्य सम्मिलित हो चुके थे किन्तु इतने विशाल साम्राज्य के उत्तर तथा उत्तर-पश्चिम भाग में राजनैतिक एकता स्थापित न हो सकी थी यद्यपि पूर्वी राज्यों को उग्रसेन महापद्म ने एक सूत्र में बांध दिया था। परिणाम स्वरूप ईरान के साम्राज्यवादी सम्राट तथा अखामनी साम्राज्य के निर्माताओं ने आक्रमण कर दिया।

अखामनी साम्राज्य का संस्थापक साइरस ५५० ई० पू० के लगभग भारत पर असफल आक्रमण कर चुका था। लगभग ५०० ई० पू० में अखामनी वंश के तृतीय सम्राट डेरियस की सेना ने अपनी यात्रा के समय भारतीय सेना को पराजित किया था। इन तीन सम्राटों ने गान्धार, कम्बोज आदि कुछ ऐसे जिलों पर आधिपत्य स्थापित कर लिया था जो ईरान व भारत की सीमा का निर्धारण करते थे। डेरियस की मृत्यु के बाद उसके इतिहास प्रसिद्ध पुत्र जरक्सीज़ ने ४६५ ई० पू० तक इन जिलों पर अपना आधिपत्य जमाये रखा।

ईरानी-भारतीय सम्पर्क के प्रभाव:-ईरानी आक्रमणों का भारत पर प्रत्यक्ष रूप में प्रभाव दिखलाई पड़ता है। प्रागैतिहासिक काल मे ही कुछ इतिहासकारों

ने आर्य व ईरानियों को एक ही माना है और 'अवेस्ता' तथा 'वेद' इसका प्रमाण बतलाये जाते हैं। इसके अतिरिक्त ईरानियों की 'अरेमिक' ढंग की लिपि ने ही अशोक के समय में 'खरोष्ठी' लिपि का रूप लिया। इसी प्रकार इतिहासकारों का बहुमत अशोक के समय में निर्मित पाटलिपुत्र का स्तम्भयुक्त विशाल भवन, उसके अभिलेख तथा स्तम्भों का घण्टा शीर्ष, ईरानी प्रभाव ही मानता है। यह युक्ति संगत भी है क्योंकि अशोक से पहले हमें स्तम्भों का प्रयोग नहीं मिलता है। चन्द्रगुप्त मौर्य के राज–दरबार में केश–सिंचन की प्रथा, प्रत्यक्ष ईरानी प्रभाव बतलाया जाता है।

सिकन्दर का आक्रमण:—ईसा पूर्व छठी व सातवीं शताब्दी उथल–पुथल का युग था तथा एशिया में विभिन्न देशों में गण–राज्यों की स्थापना का युग था। यूनान में ऐसे गण-राज्यों ने उच्चतर संस्कृति की स्थापना की थी किन्तु चौथी शताब्दी ईसा पूर्व तक ये गण-राज्य आपस में बुरी तरह लड़ झगड़ रहे थे। यकायक मेसीडोनिया के राजा फिलिप ने इन छोटे छोटे गणराज्यों को समाप्त कर एक शक्तिशाली यूनानी राज्य की स्थापना की और उसका महत्वाकांक्षी पुत्र सिकन्दर विश्व–विजय के स्वप्न देखने लगा।

३२७ ई० पू० में जिस समय सिकन्दर महान ने भारत पर आक्रमण किया, उत्तरी भारत में अनेक राजतन्त्र व गणतन्त्र थे जो एक दूसरे से लड़ रहे थे। मेगस्थनीज ने इनका वर्णन किया है। इनमें तीन राज्य शक्तिशाली थे—आम्भी, अभिसार तथा पुरु। नन्द राज्य भारत में शक्तिशाली राज्य था। इन सब राज्यों में आपस में कटुता थी और ईर्ष्यालु भावना से ये एक दूसरे को नीचा दिखलाना चाहते थे।

सिकन्दर मध्य एशिया विजय करता हुआ काबुल व अफगानिस्तान से भारत पहुँचा। अनेक छोटे छोटे राज्यों को जीतकर उसने जलालाबाद पहुँच कर अपनी सेना के दो भाग किये। एक का सेनापतित्व स्वयं सिकन्दर ने किया तथा दूसरी अन्य सेना दो सेनापतियों की अध्यक्षता में दूसरी ओर से चली। सिकन्दर तेजी से पर्वतीय जातियां का दमन करता हुआ ३२६ ई० पू० में सिन्धु नदी को पार कर गया। तक्षशिला के आम्भी ने उसके आधिपत्य को स्वीकार किया जिसका कुप्रभाव यह हुआ कि अनेक छोटे राज्यों ने बिना युद्ध के सिकन्दर का आधिपत्य स्वीकार कर लिया।

अब सिकन्दर पुरु की ओर बढ़ा। पुरु के राजा पोरस ने युद्ध किये बिना आधिपत्य स्वीकार करने से इनकार कर दिया। झेलम के दोनों ओर सेनायें पड़ी रहीं और एक तूफानी अन्धेरी रात में सिकन्दर की सेना ने झेलम पार कर पोरस पर आक्रमण कर दिया। भारतीय बड़ी वीरता से लड़े किन्तु अचानक पोरस का हाथी बिगड़ उठा जिससे सेना में खलबली मच गई और सिकन्दर विजयी हुआ। पोरस कैद कर लिया गया और सिकन्दर के यह पूछे जाने पर कि उसके साथ कैसा बर्ताव किया जावे,

उसने यही उत्तर दिया कि "जैसा एक राजा दूसरे के साथ करता है।" सिकन्दर उसकी वीरता पर बड़ा मुग्ध हुआ और उसका राज्य उसे लौटा दिया गया।

इसके बाद उसने अन्य अनेक छोटी छोटी विजय की किन्तु उसे बड़ा कड़ा मुकाबला सहन करना पड़ा और यदि पोरस की सहायता न होती तो कठों के विरुद्ध वह कदापि विजयी नहीं होता।
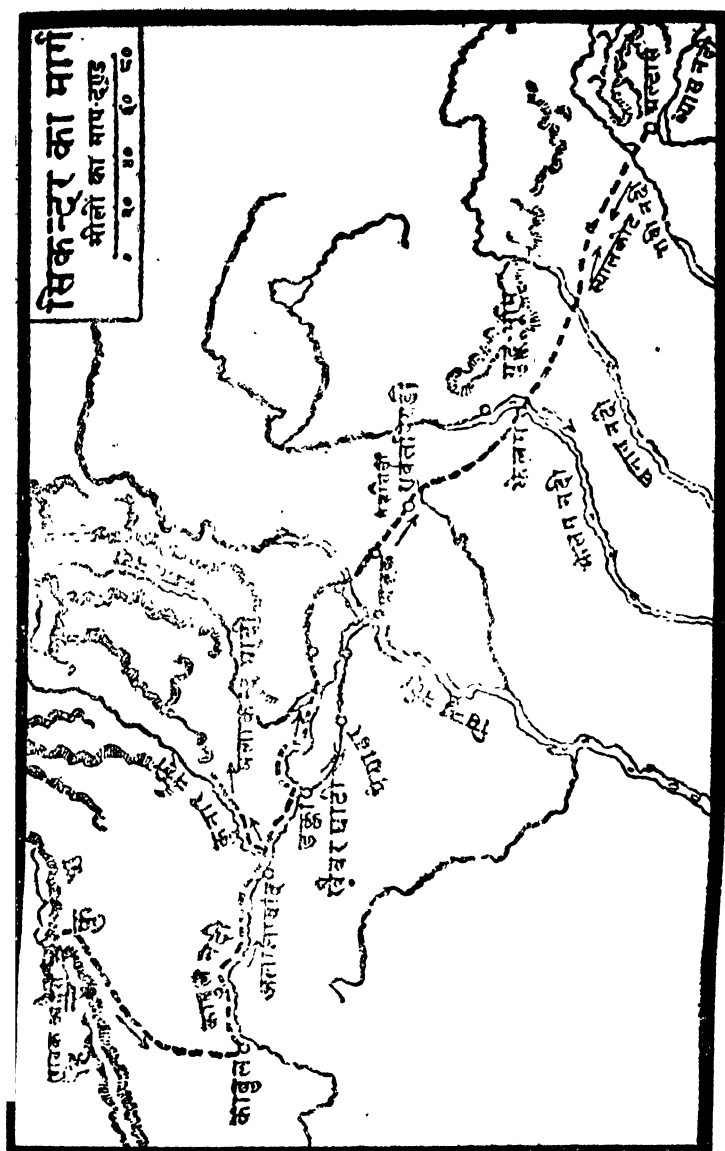
व्यास नदी पर पहुँचते ही, सिकन्दर की सेना ने वापस लौटने की इच्छा प्रकट गी और आगे बढ़ने से इनकार कर दिया। सिकन्दर ने काफी जोशीले भाषण दिये किन्तु सेना टस से मस नहीं हुई। सैनिक शिथिल हो गये थे तथा भारतीय सैनिकों की रणकुशलता से भयातुर हो गये थे। उन्हें यह मालुम हो गया था कि अभी कड़ा मुकाबला शेष है तथा भयानक नदियां तथा महान मरुभूमि पार करनी पड़ेगी। सिकन्दर को वापसी की आज्ञा देने के लिए मजबूर होना पड़ा।

उसने वापस लौटते हुए व्यास व झेलम के भाग को पोरस के अधिकार में छोड़ा और अनेक छोटी मोटी लड़ाइयां लड़ता हुआ पत्तन पहुँचा जहां उसने सेना के तीन भाग किये। एक भाग सक्कर, क्वेटा और सीस्तान होता हुआ ईरान की ओर रवाना हुआ। दूसरा भाग जल मार्ग से और तीसरा भाग सिकन्दर के साथ बिलोचिस्तान होता हुआ रवाना हुआ। वह मई ३२४ ई० पू० में ईरान पहुँचा किन्तु ३३ वर्ष की अल्प आयु में ३२३ ई० पू० में बेबीलोन पहुंचकर सिकन्दर की मृत्यु हो गई।

परिणामः—सिकन्दर के आक्रमण का भारत के राजनैतिक, सांस्कृतिक व आर्थिक क्षेत्र में प्रभाव पड़ा। सिकन्दर ने अपने आक्रमण काल में अनेक नगरों की स्थापना की जिससे दोनों देशों का आदान-प्रदान होता रहा और गान्धार-कला का जन्म हुआ। भारतवासियों ने अपनी सैनिक कमजोरियों को खूब जान लिया। यूनानी राज्यों की सिकन्दर की मृत्यु के बाद ही समाप्ति हो गई किन्तु पश्चिमी भारत की दुर्बलताओं का चित्र सामने आ गया। अब से भारत का तिथि क्रमानुसार इतिहास उपलब्ध होने लगा और यूनानी इतिहासकारों ने भारत की घटनाओं का विस्तृत वर्णन किया।

सांस्कृतिक क्षेत्र में हम देखते हैं कि भारतवासियों ने यूनानियों से मुद्रा-निर्माण की कलात्मक-प्रणाली सीखी। इसी प्रकार भवन-निर्माण की नवीन शैली भी भारतीय क्षेत्र में कुछ समय के लिए अपना अस्तित्व छोड़ गई। भारतीय ज्योतिष तथा दर्शन पर भी यूनान का प्रभाव पड़ा।

आर्थिक क्षेत्र में भारत और यूनान में चार मार्गों से व्यापार होने लगा। भारत में यूनानी सिक्के खूब प्रचलित हो गये और भारत पश्चिमी प्रदेशों से व्यापार करने लगा।

अध्ययन के लिए संकेत

(१) मगध का क्रमबद्ध इतिहास छठी शताब्दी ई० पू० से आरम्भ होता है।

(२) यहाँ क्रमशः वार्हद्रथ, हर्यङ्क, शिशुनाग, नन्द तथा मौर्य वंशों ने राज्य किया।

(३) अजातशत्रु को जैन व बौद्ध दोनों अपना अनुयायी मानते हैं।

(४) महापद्म नंद मौर्यों से पूर्व मगध साम्राज्य का निर्माता कहलाता है।

(५) खरोष्ट्री लिपि ईरानी 'अरेमिक' लिपि की देन है।

(६) अशोक के 'स्तम्भ' भी ईरानी प्रभाव से निर्मित है।

(७) सिकन्दर को भारत में कड़ा मुकाबला करना पड़ा।

(८) उसके आक्रमण के राजनैतिक, सांस्कृतिक व आर्थिक प्रभाव पड़े।

अभ्यासार्थ प्रश्न

(१) मगध साम्राज्य के उदय का संक्षिप्त इतिहास लिखो।

Write briefly the history of the rise of Magadha.

(२) ईरानी आक्रमण का वर्णन करते हुए उसके प्रभाव बतलाइये।

While describing the invasion of the Persions, discuss its effects.

(३) सिकन्दर के आक्रमण ने भारत को किस प्रकार प्रभावित किया ?

How did the invasion of Alexander effect India ?

नवां अध्याय

मौर्य साम्राज्य : तत्कालीन सामाजिक, धार्मिक तथा आर्थिक दशा

(१) प्रस्तावना (२) शासन प्रबन्ध (३) बिन्दुसार (४) अशोक (५) अशोक का धर्म प्रचार (६) सामाजिक धार्मिक तथा आर्थिक दशा (७) साहित्य व कला।

(१) प्रस्तावना:—भारत में सिकन्दर के तूफानी आक्रमण ने मगध साम्राज्य पर कुछ भी प्रभाव नहीं छोड़ा अपितु उसकी अजेय सेना नन्द-सेना की विशालता के बारे में सुनकर आगे बढ़ने का साहस न कर सकी। जिस समय सिकन्दर तक्षशिला में था, उसके पास युवक चन्द्रगुप्त नन्द-साम्राज्य को जीतने की अपनी इच्छा लेकर आया था और उससे स्पष्ट कहन-सुनन हुई थी जिसके कारण चन्द्रगुप्त को वहां से लौटना पड़ा था किन्तु फिर भी यह साहसी युवक विशाल नन्द-साम्राज्य को विध्वंस करने में निरन्तर संलग्न रहा। इसे सौभाग्य से आचार्य चाणक्य की सहायता मिली। चाणक्य महापद्म नन्द द्वारा अपमानित हो चुका था और प्रतिशोध की भावना लिए हुए उसने चन्द्रगुप्त में वे समस्त गुण पाये जो नन्द-वंश को समाप्त कर एक शक्तिशाली राज्य की स्थापना कर सकते थे। चाणक्य और चन्द्रगुप्त ने विन्ध्याचल के आस पास एक बड़ी सेना एकत्रित की। प्रथम युद्ध में वे नन्द सेना का मुकाबला नहीं कर सके।

सिकन्दर महान के चले जाने पर उन्होंने पश्चिमोत्तर भारत पर आधिपत्य करना प्रारम्भ किया और फिर पंजाब में विशाल सेना संगठित कर नन्द वंश को समाप्त कर दिया। चन्द्रगुप्त पाटलीपुत्र के सिंहासन पर बैठा और चाणक्य उसका मंत्री बना।

महात्मा बुद्ध के समय में मोरिय नामक एक छोटा संघ राज्य हिमालय की तराई में था और इस मोरिय को ही संस्कृत में 'मौर्य' कहते थे। चन्द्रगुप्त यहां का ही राजकुमार था। पाटलीपुत्र में सिंहासनारूढ़ होकर इसने सौराष्ट्र से लेकर आसाम तक अपने राज्य का विस्तार किया। दक्षिण में भी इसकी विजयी सेना तामिल प्रदेश तक पहुंच चुकी थी।

चन्द्रगुप्त को सिकन्दर के छोड़े हुए यूनानी सेनापति सेल्यूकस निकेटर का मुकाबला करना पड़ा। सेल्यूकस सिकन्दर के जीते हुए प्रदेशों को वापस लेना चाहता था। सिन्धु के उस पार सेल्यूकस की सेना को चन्द्रगुप्त ने बुरी तरह पराजित किया और सेल्यूकस को मजबूर होकर सन्धि करनी पड़ी जिससे सिन्धु और हिन्दूकुश के बीच का सारा प्रदेश चन्द्रगुप्त के पास रहा। मैत्री को और भी ज्यादा दृढ़ करने के लिए

सेल्यूकस ने अपनी पुत्री का चन्द्रगुप्त के साथ विवाह कर दिया और एक दूत मेगस्थनीज उसके दरबार में छोड़ा। मेगस्थनीज ने अपनी पुस्तक 'इण्डिका' में चन्द्रगुप्त के शासन का विस्तार से वर्णन किया है। चाणक्य ने जिसका दूसरा नाम कौटिल्य भी है, 'अर्थशास्त्र' नामक अद्भुत ग्रन्थ की रचना की। इसमें भी हमें चन्द्रगुप्त के शासन प्रबन्ध का हाल मिलता है।

शासन प्रबन्ध:—चन्द्रगुप्त मौर्य का इतिहास में बड़ा ऊँचा स्थान है। इसके दो कारण हैं। वह एक महान विजेता था जिसने बड़े साम्राज्य की स्थापना की तथा वह एक महान शासक था जिसने चाणक्य की सहायता से एक सुसंगठित शासन प्रणाली का विकास किया।

मौर्य शासन का केन्द्र विन्दु राजा था, अतः हम इस शासन प्रणाली को एकतान्त्रिक की उपमा दे सकते हैं। राजा सर्व शक्तिमान था फिर भी उस पर अनेक प्रकार के वैधानिक, सामाजिक, धार्मिक तथा कानूनी प्रतिबन्ध लगे हुए थे। उदाहरणार्थ धार्मिक उत्तरदायित्व के स्वरूप उसे प्रजा के सुख–दुःख को अपना सुख दुःख मानना पड़ता था; सामाजिक तरीके से उसे क्षत्रिय शासक के समस्त कर्तव्य निभाने के लिए बाधित होना पड़ता था। उसे उसी प्रकार जो सामाजिक अधिनियम थे, उनका ही पालन किया जाता था। हमें बहुत कम ऐसे उदाहरण मिलते हैं जब चन्द्रगुप्त ने व्यक्तिगत रूप से कानून बनाया हो। उसे एक मन्त्रि–परिषद् की सलाह से ही राज्य का संचालन करना पड़ता था। चन्द्रगुप्त को ही इस बात का श्रेय है कि उसने हमें एक सुव्यवस्थित शासन प्रणाली प्रदान की।

केन्द्रीय शासन अठारह विभागों में बँटा हुआ था और प्रत्येक विभाग का एक मन्त्री होता था। इन अठारह मन्त्रियों की नामावली इस प्रकार है—प्रधान मंत्री अथवा पुरोहित, समाहर्त्ता (माल मंत्री), सन्निधाता (कोषाध्यक्ष), सेनापति, युवराज, प्रदेष्टा (शासन सम्बन्धी न्याय मन्त्री), व्यावहारिक, नायक, कर्मान्तिक, मन्त्री-परिषद का अध्यक्ष, दण्डपाल, अन्तपाल, दुर्गपाल, पौर, प्रशास्ता, दौवारिक, आन्तर्वंशिक और आटविक अर्थात जंगल विभाग का मन्त्री।

सारे साम्राज्य को कई प्रान्तों में बाँटा गया था। इनमें विशिष्ट उल्लेख गृहराज्य, उत्तरापथ, सुराष्ट्र, अवन्तिराष्ट्र तथा दक्षिणापथ का है। प्रान्तों के अनेक उपविभाग थे जैसे जनपद, स्थानीय, द्रोणमुख, खार्वटिक, संग्रहण तथा ग्राम आदि। स्थानीय शासन दो प्रकार से संचालित था— ग्राम शासन तथा नगर शासन। गाँव में ग्राम सभा होती थी जिसका प्रमुख ग्रामिक होता था। नगर-शासन के अन्तर्गत हमें पाटलीपुत्र की शासन-व्यवस्था का उल्लेख मिलता है। इस नगर का शासन तीन सदस्यों की नगर-सभा द्वारा होता था और इस सभा ने विभिन्न विभागीय कार्यों का वितरण ६ कमेटियों में कर दिया था। ये ६ कमेटियाँ इस प्रकार थीं— शिल्प–कला–समिति, विदेशी यात्री समिति

जन गणना समिति, वाणिज्य समिति, उद्योग समिति और कर समिति। नगर शासन के अन्तर्गत सार्वजनिक भोजनालय, रक्षा तथा पुलिस, जेल, मनोरंजन, स्वास्थ्य तथा सफाई, भवन-निर्माण आदि भी आते थे।

शासन के तीन प्रमुख विभाग थे—राजस्व, न्याय तथा सेना व पुलिस। सरकारी राजस्व सात प्रमुख साधनों से प्राप्त होता था — राजधानी तथा नगर से आय, भूमिकर, खनिज, फल-शाक तथा औषधि, जंगल, गोचर-भूमि तथा व्यापार। इसके अतिरिक्त टकसाल, आबकारी, द्यूत–क्रीड़ा, शस्त्र–निर्माण, न्यायालय–शुल्क आदि से भी राज्य की आय होती थी।

चन्द्रगुप्त के समय में न्याय के लिए दो प्रकार के न्यायालय थे — कण्टक शोधन अथवा फौजदारी सम्बन्धी तथा धर्मस्थीय अथवा दीवानी सम्बन्धी। न्यायालय में पूर्ण व्यवस्थित प्रणाली काम में लाई जाती थी अर्थात् आवेदन पत्र, प्रमाण, साक्षी तथा सरकारी जाँच आदि। फौजदारी दण्ड कठोर थे।

चन्द्रगुप्त महान विजेता था अत: यह स्वाभाविक ही था कि वह एक विशाल सेना रखता। सेना तीन महान विभागों में बँटी हुई थीं— दुर्ग, हथियार निर्माण तथा सैनिक संगठन। उसकी सेना में ६ लाख पैदल, ३० हजार घुड़सवार, ३६ हजार हाथी और २४ हजार रथ थे। इसके अतिरिक्त जहाजी-बेड़ा, रसद-विभाग, गुप्तचर, औषध तथा उपचार, चारण आदि अनेक अङ्ग और थे। सेना का अधिपति एक सेनापति होता था जिसके नीचे विभिन्न अङ्गों का प्रबन्ध करने वाले अनेक अध्यक्ष होते थे। पुलिस भी दो विभागों में बँटी हुई थी— प्रकट पुलिस तथा गुप्तचर विभाग। इस समय का गुप्तचर विभाग बड़ा लाभप्रद था।

चन्द्रगुप्त ने स्वयं जनता के हित के कई कार्यों की ओर ध्यान दिया। कृषि, सिंचाई, कूँए, तालाब, नहर, यातायात व्यवस्था, स्वास्थ्य, सफाई और प्रत्येक दिशा में प्रशंसनीय कार्य किये गये। चन्द्रगुप्त का शासन प्रबन्ध बड़ा उच्चस्तरीय माना जाता है।

बिन्दुसार:—बिन्दुसार के शासन का पूर्ण विवरण हमें इतिहास में कहीं नहीं प्राप्त होता है। जैन जनश्रुति के अनुसार चन्द्रगुप्त मौर्य अपने जीवन के अन्तिम काल में जैन धर्म को अपना चुका था और मैसूर में श्रमणबेलगोला नामक स्थान पर तपस्या करने चला गया था। इस कारण उसका पुत्र बिम्बसार मगध का राजा बना। मौर्य राज्य में षड़यन्त्रों की भरमार थी। बिन्दुसार ने उन्हें दबाया तथा अपने पिता की दिग्विजयी नीति का अनुकरण किया। बौद्धों के अनुसार चाणक्य बिन्दुसार के मंत्री का काम यथावत् कर रहा था और उसकी सहायता से बिन्दुसार शेष सोलह राज्यों को अपने राज्य के अन्तर्गत मिलाने में सफल हुआ था। उस पर यूनानी प्रभाव था और उसने यूनान से अपने सम्बन्ध अच्छे रखे थे। एक पत्र से मालूम पड़ता

है कि सीरिया के सम्राट् ने उससे मदिरा अंजीर व दार्शनिक की माँग की थी। उस पर उसने उत्तर दिया कि "मुझे मदिरा व अंजीर भेजने में प्रसन्नता है परन्तु दार्शनिक नहीं भेज सकूँगा क्योंकि देश का कानून इसके विरुद्ध है।" डेमाकस नामक राजदूत सीरिया सम्राट द्वारा उसके दर्बार में भेजा गया था।

अशोक:—बिन्दुसार की मृत्यु के बाद उसके पुत्रों में सिंहासन के लिए युद्ध हुआ और उसमें उसके कई पुत्र मारे गये। अन्त में अशोक विजयी हुआ और वह २७२ ई० पू० के लगभग पाटलीपुत्र के सिंहासन पर बैठा। यह निर्विवाद सिद्ध हो चुका है कि अशोक को सिंहासन प्राप्त करने के लिए संघर्ष करना पड़ा था। अपने प्रारम्भिक शासन काल में अशोक ने भी चन्द्रगुप्त व बिन्दुसार की नीति का अनुकरण करते हुए काश्मीर और कलिंग को जीतकर अपने राज्य में मिलाया। हमें अशोक के तेरहवें शिला लेख से कलिंग विजय का हाल मालूम होता है। यह युद्ध अशोक के शासन काल के आठवें वर्ष में हुआ था। यह इतना भयंकर युद्ध था कि इसमें लगभग एक लाख व्यक्ति मारे गये और डेढ़ लाख बन्दी बना लिये गये। यह रक्तरंजित विजय इतिहास में महत्वपूर्ण स्थान रखती है। इसने अशोक के जीवन का दृष्टिकोण बदल दिया और अब दिग्विजयी अशोक धर्म–परायण अशोक होने का संकल्प करने लगा। कलिंग विजय से अशोक के हृदय को भारी आघात पहुंचा और अब उसने यह निर्णय किया कि वह धर्म–विजय को ही अपना लक्ष्य मान कर चलेगा। इस धर्म–विजय तथा लोकसेवा की नीति ने ही उसे संसार का महान सम्राट बनाया।

अशोक ने शासन की नीति को धार्मिक व नैतिक सिद्धान्तों पर आधारित किया। उसकी अनेक घोषणाओं में एक यह थी, "मेरे राज्य में सब मनुष्य मेरी सन्तान के समान हैं, जैसा कि मैं चाहता हूं, कि मेरी सन्तान को लोक में सुख और परलोक में परमार्थ की प्राप्ति हो, उसी प्रकार मैं अपनी प्रजा के लिए भी मंगल-कामना करता हूं।" अत: अशोक ने एक धर्म–विभाग की स्थापना की और धर्म महामात्र नामक अधिकारी नियुक्त किये। उसने ऐसे अधिकारियों की भी नियुक्ति की जो उसे जनता की वास्तविक स्थिति की सूचना देते रहें। ऐसे तमाम सामाजिक उत्सव बन्द कर दिये गये जिनमें मांस, मदिरा आदि का प्रयोग होता था। शासन के अन्तिम काल तक राजमहल में पशु वध पूर्णतया बन्द हो गया। दया व सहानुभूति से ओत–प्रोत अशोक ने पशुओं के लिए चिकित्सालय बनवाये। उत्सवों व शुभ अवसरों पर कैदियों को मुक्त किया जाने लगा तथा लड़ाकू व अर्द्धसभ्य जातियों के साथ दया का बर्ताव किया जाने लगा। ऊपर वर्णित समस्त व अन्य कई उदाहरण अशोक की धर्म–परायणता के साक्षी हैं।

अशोक का धर्म तथा उसका धर्म–प्रचार:—जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है अशोक का इतिहास में धर्म–नीति के कारण बड़ा ऊँचा स्थान है। अशोक ने बौद्ध

धर्म अपना लिया था किन्तु वह एक संकीर्ण बौद्ध मतावलम्बी नहीं था उसका "हृदय एवं मस्तिष्क सम्पूर्ण विश्व के विभिन्न जीवधारियों का शुभेच्छु था।" उसका धर्म ऐसा था जिसमें विश्व के समस्त धर्मों के मूल तत्वों का समावेश हो गया था। दूसरे शब्दों में ;उसका धर्म 'मानव-धर्म' था।
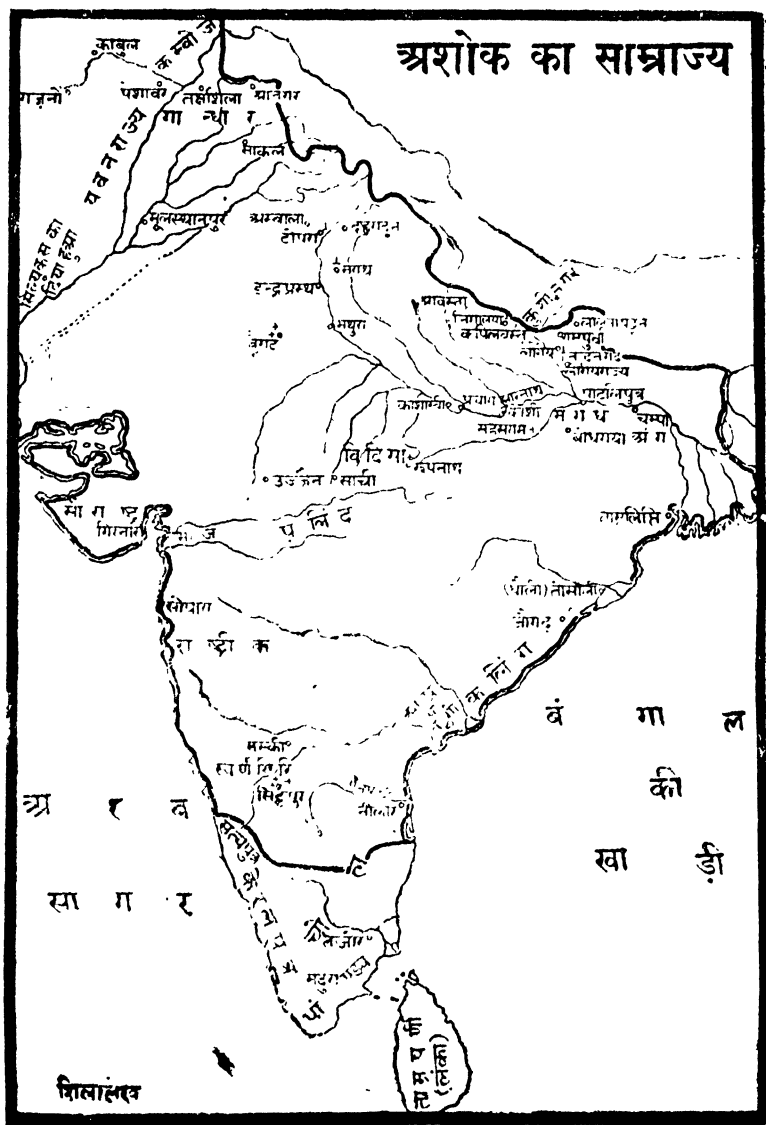
अपने धर्म में अशोक ने साधुता, दया, दान, सत्य, शौच और माधुर्य आदि

निम्नलिखित वाह्य-उपकरण

आवश्यक बतलाये गये— पशु–वध का त्याग, गुरुओं के प्रति आदर, अहिंसा, माता-पिता की सेवा, बड़ों और वृद्धों की सेवा, गुरुओं के प्रति आदर, मित्र, परिचित, जाति-भाई, ब्राह्मण और श्रमणों के साथ उचित व्यवहार, नौकरों और मजदूरों के साथ उचित व्यवहार तथा अल्प व्यय और अल्प संग्रह। अशोक ने नैतिक उत्थान के लिए आत्म–निरीक्षण पर भी बल दिया तथा यह उपदेश दिया कि निठुरता, चण्डता, क्रोध, ईर्ष्या तथा अभिमान आदि दुर्भावनाओं से बचना चाहिए।

इस प्रकार अशोक का धर्म एक मानव–धर्म है जिसमें सार्वभौमिकता, आडम्बर-हीनता, प्रायोगिकता तथा उदारता का पूर्ण समावेश है। अशोक ने, बौद्ध धर्म स्वीकार कर लेने के पश्चात, अपनी समस्त शक्ति इस धर्म के प्रचार में लगादी और अपना तन–मन तथा धन मानव कल्याण के लिए बलिदान कर दिया। अशोक को अपने धर्म प्रचार के उद्देश्य में काफी सफलता भी मिली जिसका प्रमाण बौद्ध धर्म का विश्व व्यापी धर्म बन जाना था।

उसने अपने धर्म और धार्मिक सिद्धान्तों के प्रचार के हेतु अनेकों साधनों का प्रयोग किया जिनमें से कुछ मुख्य साधन निम्नलिखित हैं।

सम्राट अशोक ने अपनी प्रजा में धर्म प्रचार करने के उद्देश्य से अपने आपको प्रजा के सन्मुख एक उदाहरण की तरह रखा। उसने शाही ठाठ बाट छोड़कर एक साधारण भिक्षु की तरह जीवन बिताना प्रारम्भ कर दिया। अशोक के इस महान् त्याग का उसकी प्रजा पर अनुकूल प्रभाव पड़ना स्वाभाविक था। 'यथा राजा तथा प्रजा' वाली कहावत चरितार्थ हुई तथा जनता भी अपने सम्राट की तरह जीवन बिताने लगी।

उसने बौद्ध धर्म के प्रचार के लिए देश में मठों का एक जाल सा बिछा दिया इन मठों को राज्य की ओर से आर्थिक सहायता दी जाती थी तथा अनेकों बौद्ध भिक्षु और भिक्षुणियाँ इन मठों में निवास करते थे जिनके जीवन का एकमात्र उद्देश्य धर्म का चिन्तन और उसका प्रचार करना था।

उसने बौद्ध धर्म को राजधर्म घोषित कर देश की साधारण जनता का ध्यान आकर्षित कर दिया इसके अतिरिक्त राजधर्म बन जाने के कारण राजकीय सहानुभूति, संरक्षण और सहायता से बौद्ध धर्म का पोधा दिन दूना और रात चौगुना बढ़ने लगा।

सम्राठ अशोक ने देश में एक धर्म विभाग की स्थापना की, इस विभाग के प्रधान अधिकारी धर्म महामात्र कहलाते थे। ये धर्ममहामात्र प्रजा में धर्म का प्रचार करने के साथ साथ प्रजा की नैतिक उन्नति के लिये विशेषरूप में प्रयत्नशील रहते थे। इनका काम देश में एक स्थान से दूसरे स्थान का भ्रमण करना और सर्वसाधारण

के नैतिक स्तर को ऊँचा उठाना था। अशोक ने अपने पूर्वजों के आमोद प्रमोद के साधन जिनमें आखेट और विहार यात्राएं मुख्य थीं स्थगति कर दिये और इनके बदले में उसने धर्म यात्राएं प्रारम्भ कीं। अशोक ने स्वयं कपिलवस्तु, लुम्बिनीवन, सारनाथ और कुशीनगर इत्यादि स्थानों का भ्रमण करके जनता को अपने उपदेशों द्वारा बौद्ध धर्म की ओर आकर्षित कर लिया।

उसने बौद्ध धर्म को फैलाने का सबसे अच्छा साधन उसके समय के शिलालेख और स्तम्भ थे। उसके धार्मिक उपदेश चट्टानों, गुफाओं और पत्थर के खम्भों इत्यदि पर अंकित कर दिये गये जिससे उसके धार्मिक सिद्धान्त सुलभ और स्थायी बन गये।

उसने अपने धर्म सिद्धान्तों में अहिंसा पर विशेष बल दिया था परन्तु जब उसने स्वयं शिकार और मांसाहार का त्याग कर दिया तो जनता के सम्मुख एक महान आदर्श उपस्थित हो गया तथा अहिंसा का मुख्य सिद्धान्त तीव्र गति से उन्नति की ओर बढ़ने लगा।

अशोक ने केवल भारतवर्ष में ही नहीं अपितु विदेशों में भी बौद्ध धर्म को फैलाने का प्रयास किया। अनेकों बौद्ध धर्म प्रचारक जिनमें भिक्षु भिक्षुणियाँ सम्मिलित थे चीन, जापान, सिंहलद्वीप और स्वर्णभूमि इत्यादि देशों में भेजे गए जहाँ पर उन्होंने बौद्ध धर्म का भरसक प्रचार किया। अशोक की प्रेरणा से ही उसका पुत्र महेन्द्र और उसकी पुत्री संघमित्रा भी इस धार्मिक प्रचार के कार्य में लग गए और उन्होंने भी विदेशों की यात्राएं कीं।

अशोक ने अपने शासन काल में बौद्ध धर्म की तीसरी संगीति भी आमन्त्रित की। इस बैठक में बौद्ध धर्म ग्रन्थों में कुछ संशोधन किये गये तथा संघ के दोषों को दूर करने का प्रयास किया गया। इस बैठक में बौद्ध धर्म के संगठन और प्रचार करने के उपायों पर भी विशेष ध्यान दिया गया जिसके परिणाम स्वरूप इस धर्म और धर्म प्रचारकों में एक नया जोश उत्पन्न हो गया।

अशोक के आदेशानुसार बौद्ध धर्म ग्रन्थों का पाली भाषा में अनुवाद किया गया। पाली इस समय जनसाधारण की भाषा थी और अशोक यह चाहता था कि साधारण जनता स्वयं इन धर्म ग्रन्थों का अध्ययन और चिन्तन कर सके इस कारण धार्मिक ग्रन्थों का पाली में अनुवाद किया गया।

सम्राट अशोक के इन उपरोक्त प्रयत्नों से बौद्ध धर्म को काफी प्रेरणा प्राप्त हुई तथा उसका यह महान कार्य समस्त विश्व के सम्राटों के सन्मुख एक आदर्श बन गया।

मौर्यकालीन सामाजिक दशा:—मौर्यकालीन सामाजिक दशा पर मेगस्थनीज और कौटिल्य के अर्थशास्त्र से पूर्ण प्रकाश पड़ता है परन्तु इन दोनों साधनों में कहीं

कहीं अन्तर पाया जाता है। वर्ण व्यवस्था का वर्णन करते हुए कौटिल्य ने साफ लिखा है कि इस समय तक वर्ण व्यवस्था का पूर्ण विकास हो चुका था और समाज ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र चार जातियों में विभाजित था। मेगस्थनीज का वर्णन कुछ विचित्र सा प्रतीत होता है उसके अनुसार समाज निम्नलिखित सात विभिन्न जातियों में बँटा हुआ था। (१) दार्शनिक (२) कृषक (३) गोपालक (४) कारीगर (५) सैनिकवर्ग (६) गुप्तचर निरीक्षक (७) अमात्य।

मेगस्थनीज ने इस विभाजन के पश्चात इस बात पर भी विशेष बल दिया है कि किसी व्यक्ति को अपनी जाति परिवर्तन करने का अधिकार नही था। मेगस्थनीज के इस वर्णन को सन्देह की दृष्टि से देखा जाता है क्योंकि कौटिल्य ने अर्थशास्त्र में अन्तर्जातीय विवाहों का स्पष्ट वर्णन किया है। मेगस्थनीज और कौटिल्य के वर्णन में अन्तर का मुख्य कारण यह है कि मेगस्थनीज ने मनुष्यों के व्यवसाय और श्रम को उनकी जाति समझ लिया।

मौर्यकालीन समाज में विवाह संस्था का काफी महत्व था तथा इसे पारिवारिक जीवन की आधार शिला माना जाता था। बारह वर्ष की कन्या तथा सोलह वर्ष के बालक बालिग और विवाह योग्य समझे जाते थे। कौटिल्य के अर्थशास्त्र में आठ प्रकार के विवाहों का वर्णन किया गया है जो क्रमशः इस प्रकार हैं। ब्राह्म, शौल्क, प्रजापत्य, दैव, गन्धर्व, आसुर, राक्षस तथा पैशाच आठ प्रकार की विवाह प्रणालियां थी, प्रथम चार प्रकार के विवाह धर्म विवाह तथा अन्तिम चार अधर्म विवाह माने जाते थे।

कौटिल्य ने विवाह विच्छेद का भी वर्णन किया है जिससे पता चलता है कि समाज में तलाक की प्रथा भी प्रचलित थी। मेगस्थनीज और कौल्टिय दोनों इस मत के समर्थक हैं कि बहु विवाह की प्रथा समाज में प्रचलित थी परन्तु कौटिल्य के अनुसार किसी मनुष्य को दूसरा विवाह करने का तभी अधिकार था जब कि प्रथम स्त्री से उसको कोई सन्तान प्राप्त नहीं हुई हो। कौटिल्य ने विधवा विवाह का भी वर्णन किया है। मौर्यकालीन समाज में संयुक्त परिवार की प्रथा थी परन्तु कभी २ संयुक्त परिवार पारस्परिक कलह के कारण भंग भी हो जाया करते थे। स्त्रियों को समाज में उच्च स्थान प्राप्त था तथा उन्हें आदर की दृष्टि से देखा जाता था।

स्त्रियों को स्वतन्त्रता प्राप्त थी तथा वे पारिवारिक सम्पत्ति की अधिकारिणी समझी जाती थीं। ऊंचे घरों की स्त्रियों में पर्दे की प्रथा प्रचलित हो चुकी थी और यह प्रथा धीरे धीरे बढ़ती जा रही थी। स्त्रियों का क्षेत्र उनका घर ही था और अशिक्षित होने के कारण उनका मानसिक विकास नहीं हो पाता था जिससे स्त्री समाज में अन्ध-विश्वास बढ़ता जा रहा था।

सती की प्रथा का इस काल में प्रचलन नहीं हुआ था। समाज में कुछ ऐसी स्त्रियां भी थीं जो दर्शन शास्त्र कर अध्ययन कर शान्ति के साथ जीवन बिताती थीं। कुछ स्त्रियां संगीत, चित्रकला तथा नृत्य कला में निपुणता प्राप्त करती थीं तथा सैनिक शिक्षा का द्वार भी उनके लिये पूर्णतया बन्द नहीं था।

मेगस्थनीज ने कहा है, "कुछ स्त्रियां रथों पर, कुछ अश्वों पर एवं कुछ हाथियों पर आरूढ़ होती हैं और वे प्रत्येक प्रकार के शस्त्रास्त्र से सुसज्जित रहती हैं। ऐसा मालूम पड़ता है जैसे वे किसी आक्रमण के लिए जा रही हों।"

मौर्यकाल में जनसाधारण का जीवन सुखी था। मनुष्य ईमानदार और सत्य-वादी हुआ करते थे। लोगों के मनोरंजन के लिए उत्सवों का आयोजन किया जाता था जिनमें नाचना, गाना होता था और वाद्ययन्त्रों पर मनुष्य मनोरंजन किया करते थे। इन उत्सवोंमें मल्ल युद्धों का भी प्रबन्ध किया जाता था। घोड़ों तथा बैलों के रथों की दौड़ और नाटक आमोद प्रमोद के मुख्य साधन थे। शतरंज के खेल का भी प्रारम्भ इस समय में हो चुका था।

इस समय में मनुष्य स्वादिष्ट और पुष्टिकर भोजन का प्रयोग करते थे। भोजन में स्वच्छता को विशेष महत्व दिया जाता था। तत्कालीन भोजन में अन्न दूध और मांस को मुख्य स्थान प्राप्त था। सुरा का प्रयोग भी जारी था परन्तु इस पर राज्य का नियंत्रण था।

मौर्यकालीन समाज में दास प्रथा भी प्रचलित थी परन्तु यूनानी लेखकों ने इसका विरोध किया है। मेगस्थनीज के वृतान्त में भी दास प्रथा का वर्णन नहीं मिलता परन्तु अशोक के शिलालेखों और कौटिल्य के अर्थशास्त्र में दास प्रथा का स्पष्ट वर्णन मिलता है। अशोक ने अपने शिलालेखों में दासों के साथ अच्छा बर्ताव करने की सलाह दी है। उस समय यूनान में दासों के साथ बड़ा बुरा बर्ताव किया जाता था परन्तु भारतीय अपने दासों के साथ अच्छा बर्ताव करते थे इसलिये सम्भव है कि मेगस्थनीज का ध्यान इस ओर आकर्षित न हुआ हो।

आर्थिक दशा:- आर्थिक दृष्टि से मौर्यकालीन भारत एक उन्नत और समृद्धि-शाली देश था। इस काल में जन साधारण का आर्थिक जीवन काफी विकसित और सुव्यवस्थित हो गया। इसमें संदेह नहीं कि मौर्य शासनकाल से पहले भी देश की आर्थिक दशा अत्यन्त संतोषप्रद थी परन्तु वास्तविकता यह है कि मौर्यकालीन भारत में आर्थिक दृष्टि से आश्चर्यजनक विकास हुआ।

भारत प्राचीन काल से ही कृषिप्रधान देश रहा है तथा मौर्य युग में भी खेती भारतीयों का मुख्य उद्यम था। खेती का काम गाँवों तक ही सीमित था और मौर्यकालीन

कौटिल्य ने अर्थशास्त्र में तत्कालीन गाँवों का बड़ा सुन्दर वर्णन किया है जिनसे यह स्पष्ट हो जाता है कि उस समय लोग आर्थिक दृष्टि से बहुत सुखी थे। खेती का अधिक से अधिक विकास राज्य का कार्य समझा जाता था तथा इसके लिए राज्य की ओर से कई कानून बनाए जाते थे। किसानों की भलाई की ओर विशेष ध्यान दिया जाता था जिससे उन पर किसी प्रकार का जुल्म नहीं हो सके। राज्य की ओर से खेती की उन्नति के लिए सिंचाई का सुन्दर प्रबन्ध किया गया था। राज्य की ओर से सिंचाई व्यवस्था की देखभाल और उन्नति के लिये कई कर्मचारी नियुक्त किये गये थे।

कौटिल्य ने अर्थशास्त्र में तत्कालीन तमाम फसलों का भी वर्णन किया है जिनका सारांश यह है कि देश में विविध प्रकार के अन्न, तरकारियां और फल उत्पन्न किये जाते थे।

कौटिल्य ने किसानों पर लगाए जाने वाले करों का वर्णन करते हुए लिखा है कि सामान्यत: ये कर अधिक नहीं थे परन्तु युद्ध और अकाल के समय फसलों पर कर बढाया जा सकता था किसानों को कभी कभी बेगार भी करनी पड़ती थी।

मौर्यकालीन युग में उद्योग धन्धों का अद्भुत विकास हुआ। वस्त्र उत्पादन देश का मुख्य उद्योग था सूती वस्त्र का उद्योग समस्त देश में प्रचलित था परन्तु फिर भी कुछ स्थान अधिक प्रसिद्ध होते जा रहे थे। मदुरा, काशी, वत्स और वंग वस्त्र उद्योग के मुख्य केन्द्र माने जाते थे। मौर्यकाल में ऊनी वस्त्रों का उत्पादन भी देश का एक प्रमुख उद्योग था। गान्धार का ऊन काफी प्रसिद्ध माना जाता था।

कौटिल्य ने कलाकारों का वर्णन करते हुए लिखा है कि देश में सोने, चांदी, हाथीदांत और अन्य कीमती वस्तुओं से सम्बन्धित अन्य उद्योग भी प्रचलित थे। पत्थर की कारीगरी इस समय की मुख्य कारीगरी समझी जाती थी जिसका प्रमाण अशोक-काल के पाषाण स्तम्भ हैं। रथ, जलयान, अस्त्र-शस्त्र तथा सुगन्धित वस्तुओं का निर्माण भी देश के मुख्य उद्योग धन्धों में सम्मिलित थे।

उद्योग धन्धों के विकास से देश के व्यापार को भी प्रोत्साहन मिला। भारत उस समय आन्तरिक और विदेशी दोनों व्यापारों में काफी बढ़ा चढ़ा था। व्यापार की उन्नति के लिए जलमार्ग और स्थलमार्ग की सुरक्षा और सुविधाओं पर विशेष ध्यान दिया जाता था। कौटिल्य ने तत्कालीन व्यापारिक केन्द्रों का भी विस्तृत वर्णन किया है।

यूनानी लेखकों के लेखों से इस बात की पुष्टि होती है कि भारत और यूनान के बीच प्रचुर मात्रा में व्यापार होता था तथा यह व्यापार थल और जल दोनों ही

मार्गों की सहायता से किया जाता था। भारत से कछुए की पीठ, हाथीदांत, मोती और नील इत्यादि वस्तुएं मिश्र देश को भेजी जाती थी।

व्यापारियों ने अपने आपको संगठनों द्वारा काफी सुदृढ़ बना रखा था जिससे देश की आर्थिक स्थिति का अनुमान लगाया जा सकता है।

धार्मिक दशा:—मौर्य-कालीन भारत में प्रधानतया तीन धार्मिक-सम्प्रदाय स्थापित हो चुके थे–ब्राह्मण अथवा वैदिक धर्म, जैन धर्म और बौद्ध धर्म। वैदिक धर्म के अनुसरणकर्ता ब्राह्मण यज्ञादि क्रियाकांडों में सलंग्न रहते थे। ये बड़े धनी थे और दूर दूर के देशों से आये विद्यार्थियों को अपने घरों पर रखकर शिक्षा देते थे। पशु–बलि भी प्रचलित थी। इस युग में "वैदिक अनुष्ठान एवं औपनिषदिक विचार-धारा दोनों ही धार्मिक जीवन की सक्रिय शक्तियाँ थीं।" अधिकांश धनिक वर्ग यथा राजा, सामंत तथा व्यवसायीवर्ग ब्राह्मण धर्म का अनुयायी था। एक वर्ग ऐसा भी था जो आडम्बरों से मुक्त होकर कठोर तप और संयम का जीवन व्यतीत करके ब्रह्म का साक्षात्कार करने की प्रबल इच्छा रखता था। इस प्रकार के लोग नगर से दूर वानप्रस्थ जीवन यापन करते थे। कुछ श्रमण अथवा सन्यासी भी होते थे।

बौद्ध धर्म काफी उन्नत दशा पर पहुँच चुका था किन्तु यह समस्त भारत तथा विदेशों में प्रसारित इस काल में ही हो पाया था। अशोक के समस्त साधन इस धर्म के प्रसार में जुटा दिये गये थे।

जैन धर्म का इस काल में अधिक प्रचार नहीं हो पाया था। इस काल के बाद यह धर्म पश्चिमीं तथा दक्षिणी भारत में फैल गया था। अशोक के पौत्र सम्प्रति ने जैन धर्म को अपनाकर उसके प्रसार का प्रयत्न किया था। यद्यपि श्वेताम्बर व दिगम्बर जैन का भेद अभी तक उत्पन्न नहीं हुआ था तथापि इसका बीजारोपण हो चुका था।

बौद्ध धर्म में स्थविरवाद और महासांघिक नामक सम्प्रदाय जन्म ले चुके थे। कुछ अन्य सम्प्रदायों का जिसे अशोक ने धर्म लेखों में "पाखण्ड" के नाम से पुकारा है, उल्लेख मिलता है। चन्द्रगुप्त के समय के बन्धन हट चुके थे और अशोक ने विश्वास तथा पूजा–पद्धति की पूरी स्वतन्त्रता दे दी थी।

मन्दिर तथा धर्म–स्थानों का उच्च–स्थान था और तीर्थ यात्रा का भी पर्याप्त महत्व था। स्वर्ग व नरक की मान्यता थी। अनेक अन्धविश्वास व रूढ़िवाद प्रचलित थे।

साहित्य व कला:—लोक–भाषा प्राकृत की पर्याप्त उन्नति हुई। लिपि का व्यापक–रूप से प्रचार हो गया तथा इहलोकि व पारलोकि–साहित्य का सृजन हुआ। काव्य, नाटक अर्थ शास्त्र आदि की रचना भी हुई। काम–सूत्र को अनेक इतिहासकार इस युग की ही रचना मानते हैं। कात्यायन द्वारा पाणिनी की व्याकरण का भाष्य इसी समय किया गया। तीनों धार्मिक–धाराओं का प्रचुर मात्रा में साहित्य लिखा गया।

गृह्य सूत्र, धर्म सूत्र और वेदाङ्ग ग्रन्थ, विशिष्ट बौद्ध-साहित्य, जैनाचार्य भद्रबाहु आदि की रचना इस काल की ही देन हैं।

अशोक के शासन काल से मौर्य-कला पनपने लगी। विशाल स्तूप, सारनाथ का धर्म राजिका स्तूप, अनेक स्तम्भ जो चुनार के बलुआ पत्थर के बनाये जाते थे तथा सारनाथ का स्तम्भ तत्कालीन कला के उत्कृष्ट नमूने हैं। अशोक के शासन काल में भिक्षुओं के निवास के लिए बिहार तथा दरीगृह निर्मित किये गये। बारबरा की पहाड़ियों में निर्मित गुफाओं में भिक्षु रहते थे। इन गुफाओं की दीवारें बड़ी चमकीली हैं। इन स्तम्भों की चमकती पॉलिश आज भी दर्शकों को मंत्र-मुग्ध कर देती है। अशोक ने अनेक भवनों का भी निर्माण करवाया था जिनके अवशेष अब नहीं मिलते हैं।

चीनी यात्री फाह्यान ने एक ऐसे ही भवन को देखा था जिसकी उसने भूरि भूरि प्रशंसा की है और लिखा है कि "ऐसा अद्भुत भवन अशोक ने देवताओं द्वारा बनवाया होगा क्योंकि इसका निर्माण-कौशल मनुष्यों द्वारा सम्भव नहीं।"

अध्ययन के लिए संकेत

(१) मेगस्थनीज ने 'इण्डिका' में चन्द्रगुप्त के शासन का विस्तार से वर्णन किया है। इसी प्रकार कौटिल्य का 'अर्थ शास्त्र' संसार का अनूठा ग्रन्थ है।

(२) चन्द्रगुप्त मौर्य केवल विजेता ही नहीं था अपितु एक सुयोग्य शासक भी था जिसने जनता के हित के कई कार्य किये।

(३) अशोक ने शासन की नीति को धार्मिक व नैतिक सिद्धान्तों पर आधारित किया।

(४) अशोक का धर्म मानव-धर्म है।

(५) अशोक ने देश-विदेश में बुद्ध धर्म का प्रचार किया।

(६) मौर्य-कला को अशोक ने जाग्रत-रूप दिया।

अभ्यासार्थ प्रश्न

(१) चन्द्रगुप्त की शासन-पद्धति का पूरा विवरण दीजिये।

1. Describe in details the administrative system of Chandra gupta Maurya.

(२) अशोक के धर्म से आप क्या समझते हैं? उसने अपने धर्म-विजय में किन-किन साधनों का उपयोग किया?

2. What do you understand by Ashoka's Dharma ? What resources did he utilise in his triumph of Dharma ?

(३) मौर्य कालीन सभ्यता एवं संस्कृति का विवेचन तत्कालीन सामाजिक, धार्मिक एवं आर्थिक अवस्थाओं पर प्रकाश डालते हुए कीजिए ।

3. Describe Mauryan Civilization and culture in the light of the social, religious and economic condition prevailing during those times.

दसवां अध्याय

मौर्य-साम्राज्य का ह्रास : शुङ्ग वंश, काण्व वंश तथा आन्ध्र वंश

(वैदिक प्रति-सुधारणा)

(१) प्रस्तावना (२) शुङ्ग वंश (३) शुङ्ग कालीन सभ्यता और संस्कृति (४) काण्व-वंश (५) आन्ध्र-सातवाहन वंश (६) सातवाहनों के समय में दक्षिण की सभ्यता एवं संस्कृति ।

प्रस्तावना:— मौर्य शासन काल में भारत उन्नति के चरम शिखर पर था। मौर्यों ने विदेशियों से भारत की रक्षा की और सुव्यवस्थित शासन-व्यवस्था स्थापित कर तथा प्राकृत को राष्ट्र भाषा बनाकर उसे एक सूत्र में बाँधने का महान प्रयास किया। "यह कहना अनुचित न होगा कि मौर्य काल विशेषकर अशोक का काल भारत की राजनैतिक, धार्मिक, सामाजिक तथा सांस्कृतिक एकता का युग था परन्तु अशोक की मृत्यु के उपरान्त ही एकता का ह्रास आरम्भ हो गया।" अब योग्य उत्तराधिकारियों का अभाव हो चला था। अतः साम्राज्य सुसंगठित नहीं रह सकता था। कलिंग ने मौर्य शासन से सम्बन्ध-विच्छेद कर लिया। आन्ध्र तथा महाराष्ट्र ने मौर्य शासन से संघर्ष प्रारम्भ कर दिया। उत्तरापथ भी मौर्य साम्राज्य से विच्छिन्न हो गया। मगध में क्रान्ति हुई और नये राज्य की स्थापना हो गई। अब पुन: छोटे छोटे स्वतन्त्र राज्यों की स्थापना हो गई और राजनैतिक एकता के छिन्न-भिन्न होते ही सांस्कृतिक साम्य भी जाता रहा।

शुंङ्ग वंश: —अन्तिम मौर्य शासक बृहद्रथ का उसके सेनापति पुष्यमित्र शुंग द्वारा वध कर दिया गया था। पुष्यमित्र भारद्वाज गोत्र का ब्राह्मण था। शुंग-वंशीय ब्राह्मण शायद मौर्यों के पुरोहित थे और फिर अशोक के बाद इन लोगों ने अस्त्र-शस्त्र धारण करना प्रारम्भ कर दिया था। पुष्यमित्र शुंग तलवार के जोर से सिंहासनारूढ़ हुआ था। उसने यवनों की शक्ति को पश्चिमी पंजाब में ही रोक दिया और मगध साम्राज्य को पुन: जीवित कर दिया। उसने अपनी विजय के उपलक्ष्य में एक अश्वमेध यज्ञ भी किया। इस अश्वमेध यज्ञ का प्रारम्भ किया जाना ही वैदिक-धर्म का महान समर्थन था। पुष्यमित्र ने वैदिक धर्म को पुन: शक्ति प्रदान की तथा यज्ञों का फिर से अनुष्ठान करके वैदिक कर्मकाण्ड में प्राण फूँक दिये। अब लगभग चार सौ वर्षों से दलित संस्कृत भाषा को राज्याश्रय मिल गया और अनेक प्रसिद्ध ग्रन्थों की रचना की गई। पुष्यमित्र ने प्राची, कोसल, आकर, वत्स और अवन्ति को मगध के अन्तर्गत संगठित किया और भारत में प्रथम यवन आक्रमण को पाटलिपुत्र तक नहीं बढ़ने

शक्ति के केन्द्र बन गये थे। पुष्यमित्र ने लगभग ३६ वर्ष तक राज्य किया। उसकी मृत्यु के उपरान्त उसका पुत्र अग्निमित्र जो कालिदास के प्रसिद्ध नाटक "मालविकाग्निमित्रम्" का नायक है सिंहासनारूढ़ हुआ। इस वंश में सात अन्य राजा और हुए जिनके समय में विशेष उल्लेखनीय घटना नहीं घटी। अन्तिम राजा देवभूति को उसके मन्त्री वसुदेव कण्व ने मार डाला और कण्व वंश की स्थापना हुई।

शुङ्गकालीन सभ्यता व संस्कृति:—जैसा ऊपर कहा जा चुका है शुङ्ग शासक वैदिक धर्म के कट्टर समर्थक थे। उनके काल में ब्राह्मण धर्म की पर्याप्त उन्नति हुई और कला और संस्कृति का भी पर्याप्त विकास हुआ। हम शुङ्ग–संस्कृति को गुप्त कालीन संस्कृति की जननी कह सकते हैं। पुष्यमित्र ने न केवल मगध की परम्परा को बढ़ाया ही अपितु राजनीति को यथार्थ रूप देकर सैन्य–संगठन पर बल दिया। राजनैतिक क्षेत्र में शुङ्गों ने एक विशाल सुव्यवस्थित साम्राज्य की स्थापना की, यवन आक्रमणकारियों को पराजित किया तथा विदेशी शासकों से सम्मान प्राप्त किया। इस काल में कला साहित्य तथा वास्तु को प्रोत्साहन मिला। "मध्यदेश में बुद्धिजीवियों तथा बुद्धिमानों की दृष्टि में सन्यास–दृष्टिकोण का आकर्षण नष्ट होगया। धर्मों की शक्ति सुदृढ़ होगई, स्मृति न्याय की सत्ता को पुनः पूरी तरह से स्थापित किया गया। सामूहिक उत्साह की नयी लहर ने बौद्ध धर्म के प्रति संघर्ष के दृष्टिकोण, एक अधिक समृद्ध तथा पूर्णतर जीवन की खोज में, युद्धदेवता कार्तिकेय के सम्प्रदाय में, भागवत सम्प्रदाय के पुनरुत्थान में तथा हिन्दू देवमण्डल में वासुदेव कृष्ण की प्रधानता में अभिव्यक्ति प्राप्त की।"

अश्वमेध यज्ञ के करने से ब्राह्मण–धर्म की मर्यादा बढ़ी। इसी काल में मनुस्मृति जैसा धर्म–शास्त्र, पातञ्जलि का महाभाष्य, भास के नाटक और महाभारत तथा रामायण के कई अंशों की रचना हुई। इस काल में ब्राह्मणों का चरित्र उन्नत दशा में था। संस्कृत का विकास हो रहा था और कला की भी पर्याप्त उन्नति होरही थी। चित्रकार मनोहर तथा सजीव चित्र बनाते थे। "विदिशा के समीप साँची के प्रसिद्ध स्तूप के सुन्दर द्वारों के बनाने वाले शिल्पकार शुङ्ग राज्य के विदिशा के हाथी दाँत के काम करने वाले कारीगर थे।" शुङ्ग कला के द्वारा अधिकांश जनता के मानस, सांस्कृतिक–आदर्श, तथा उसकी परम्परा का प्रतिबिम्ब प्राप्त होता है। इसमें तत्कालीन जन–जीवन का चित्र यथार्थ रूप में चित्रित है। लोगों के मकान, देवताओं की मूर्तियाँ, साधुओं के आश्रम, गाड़ियाँ, रथ, नौका, वेश–भूषा, शस्त्र, आभूषण यथार्थ रूप में प्रदर्शित किये गये हैं।

सामाजिक संगठन पर भी बल दिया गया। कुछ सुधारवादी धर्मों के कारण [illegible] [illegible] में ढील आगई थी और अपरिपक्व सन्यास तथा भ्रष्टाचार भी

फैल गये थे। अतः मनु ने इस बात पर बल दिया कि मनुष्य को क्रमशः एक आश्रम से दूसरे में प्रवेश करना चाहिये।

काण्व वंशः—शुङ्ग वंश का अन्तिम शासक देवभूति अपने मन्त्री वासुदेव काण्व द्वारा मार दिया गया। इस वंश का अन्त लगभग ७२ ई० पू० में हुआ। काण्व भी ब्राह्मण ही थे। काण्व वंश को काण्वायन भी कहा जाता है। इस वंश में चार राजा हुए— वासुदेव, भूमिमित्र, नारायण तथा सुशमर्ण। इनके इतिहास के बारे में हमें कोई विवरण प्राप्त नहीं हुआ है। इस वंश का अंत २८ ई० पू० में आन्ध्रों द्वारा कर दिया गया। काण्व वंश ने वैदिक-धर्म तथा समाज की रक्षा की। इनके शक्तिहीन होने के कारण मगध-साम्राज्य का ह्रास प्रारम्भ होगया और केवल बिहार तथा उत्तर प्रदेश ही काण्व शासकों के पास रह गये। अंतिम शासक सुशमर्ण को उसके मंत्री आन्ध्र शिमुक अथवा सिन्धुक ने मार डाला और आन्ध्र वंश की स्थापना की।

आन्ध्र-सातवाहन वंशः—आन्ध्र और सातवाहन वंशों की उत्पत्ति तथा पारस्परिक सम्बन्ध के बारे में इतिहासकारों में बहुत मतभेद हैं। पुराणों में शिमुक अथवा सिन्धुक को आन्ध्रजातीय बतलाया गया है। आन्ध्र जाति एक बड़ी प्राचीनतम जाति है और इस जाति का आदि स्थान गोदावरी और कृष्णा नदियों के बीच में था। इस वंश का उल्लेख हमें ऐतरेय ब्राह्मण, मेगस्थनीज के लेख तथा अशोक के शिला लेखों में मिलता है। किन्तु ये राजा अपने शिला लेखों तथा दान-पत्रों में अपने आपकों शातवाहन या शातकर्णी लिखते हैं। डा० ईश्वरी प्रसाद का कथन है कि इस वंश का आदि निवास-स्थान दक्षिण भारतवर्ष ही था और पीछे इन लोगों ने आन्ध्र प्रदेश पर अपना अधिकार कर लिया। शकों और आभीरों के आक्रमण से इन लोगों के हाथ से दक्षिण भारत निकल गया और इनका राज्य केवल गोदावरी और कृष्णा के बीच आन्ध्र देश में ही सीमित रह गया। तब से ही सातवाहन लोग आन्ध्र नाम से प्रसिद्ध हुए। सातवाहन भी ब्राह्मण ही थे। राजा गौतमीपुत्र ने एक शिलालेख में अपने आपको 'एक बम्हन' कहा है।

जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है, इस वंश का संस्थापक सिमुक या शिमुक अथवा सिन्धुक था। इसने काण्वों से विदिशा के निकट का प्रदेश छीना था। इसक राज्य दक्षिणापथ में ही था और इसकी राजधानी उत्तरी गोदावरी-तट पर स्थित पैठन थी। इसके बाद इसका भाई कृष्ण अथवा कन्ह सिंहासनारूढ़ हुआ। इसके समय में राज्य का विस्तार नासिक तक हो गया था। इसने भी दो बार अश्वमेध यज्ञ किया। यह भी ब्राह्मण-धर्म का पक्का अनुयायी था। इसके राजकुमार शतकर्णी ने सातवाहनों को "विन्ध्य-पार भारत के सर्वसत्ताधारी की स्थिति तक उठाया।" इसे महान कलिङ्ग शासक खारवेल से लोहा लेना पड़ा। खारवेल ने मूसिक नगर पर आक्रमण कर दिया किन्तु वह सातवाहनों की शक्ति का कुछ भी नहीं बिगाड़ सका।

शिमुख का पुत्र शतकर्णी सातवाहन कुल का तीसरा शासक था। यह बड़ा प्रतापी शासक हुआ है। इसने सैन्य-विजय तथा वैवाहिक सम्बन्धों से अपनी शक्ति बढ़ाई। उसकी मृत्यु के उपरान्त उसकी रानी नायनिका ने अपने अवयस्क राजकुमारों की संरक्षिका बनकर राज्य कार्य संभाला।
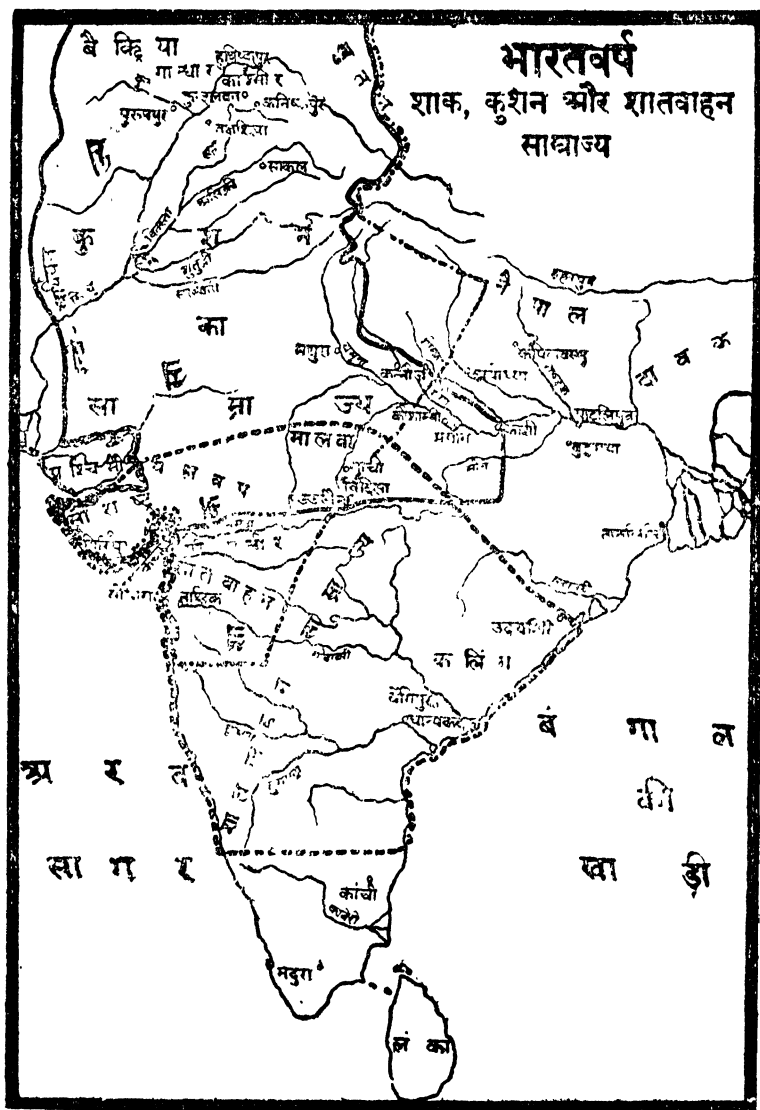
इस वंश का सबसे प्रतापी व पराक्रमी शासक गौतमीपुत्र शतकर्णी था। उसने अपने वंश के गौरव को पुनः बढ़ाया और शकों के आक्रमण को मार भगाया।

उसने शक–यवन–पहलव–क्षहरातों का नाश किया और सातवाहन कुल की मान-मर्यादा को बढ़ाया। विजेता होने के साथ साथ यह गुणवान भी था। वह मृदु स्वभाव का था और उसमें श्रेष्ठ शासक के समस्त गुण थे। उसने प्रजा के साथ अच्छा व्यवहार किया और अधिक कर नहीं लगाये।

इसके बाद उसका पुत्र पुलुमावी सिंहासनारूढ़ हुआ। उसने १५ वर्ष तक राज्य किया। उसने भी सैन्य–विजय तथा वैवाहिक सम्बन्ध की नीति को चालू रखा। सातवाहन वंश का अन्तिम प्रतापी शासक श्रीयज्ञ शातकर्णी था। उसने सन् १६५ ई० से० १९५ ई० तक राज्य किया। इसने भी साम्राज्य सीमा का विस्तार किया। गुजरात, काठियावाड़, मालवा आदि स्थानों पर उसके सिक्के प्राप्त हुए हैं। उसके समय में व्यापार की भी काफी श्रीवृद्धि हुई।

इसके शासन काल के उपरान्त सातवाहनों की राजनैतिक प्रभुता दिनों दिन गिरती ही गई। लगभग सन् २२५ ई० में विदेशी आक्रमणकारियों के कारण सातवाहन वंश का मूल गौरव नष्टप्राय होगया यद्यपि इनकी कुछ शाखाएँ कहीं कहीं शासन करती रहीं।

सातवाहनों के समय में दक्षिण की सभ्यता तथा संस्कृतिः—इस युग में सभ्यता व संस्कृति की काफी उन्नति हुई। दक्षिण भारत की धार्मिक विचार धारा बड़ी उदार तथा सहिष्णु थी और ब्राह्मण धर्म के अनुयायी होते हुए भी राजाओं ने अन्य धर्मावलम्बियों पर किसी प्रकार के अत्याचार नहीं किये। बौद्ध धर्म को फलने फूलने का पूरा अवसर मिला हुआ था। कला के क्षेत्र में बौद्धों ने महत्वपूर्ण योग दिया था। ब्राह्मण धर्म के उत्थान के लिए इन राजाओं ने पूरा यत्न किया। साथ ही इनके समय में दक्षिण भारत में शैव और वैष्णव धर्मों का सबसे अधिक प्रचार था। इस काल में ही काफी विदेशियों ने हिन्दू धर्म को ग्रहण किया और अपने नाम भी उसी प्रकार बदल डाले।

सामाजिक क्षेत्र में स्त्रियों की दशा अच्छी थी। इन्हें आदर की दृष्टि से देखा जाता था और वे शासन में भी कहीं कहीं हाथ बँटाती पाई जाती हैं। सामाजिक जीवन को व्यर्थ के नियंत्रणों द्वारा बोझिल नहीं बनाया गया था। राजा वर्णाश्रम धर्म के प्रचार हेतु सक्रिय रहते थे। चार वर्णों का उल्लेख मिलता है। समाज की इकाई कुटुम्ब ही था। कुटुम्ब के अध्यक्ष कुटुम्बिन का पूरा सम्मान था और उसकी आज्ञायें मान्य थी।

सातवाहनों के समय में आर्थिक दृष्टि से भी दक्षिण सम्पन्न था। कृषि, उद्योग-धन्धे और व्यापार–इन तीनों क्षेत्रों में दक्षिण सम्पन्न था। सिक्कों का खूब प्रचलन हो चुका था। सिक्के कई प्रकार के थे। सबसे मूल्यवान सिक्का सुवर्ण था और इसके

बाद चांदी का सिक्का कुषाण था इस समय ब्याज पर रुपये उधार दिये जाते थे। व्यापार काफी बढ़ा–चढ़ा था। व्यापारिक सुविधा के लिए सड़कें बनीं हुई थीं। दक्षिण भारत में पैठव, तगर, नासिक, जुन्नार आदि व्यापार के प्रसिद्ध केन्द्र थे। विदेशों से व्यापार भी काफी बढ़ा चढ़ा था।

कला के क्षेत्र में भी यह युग सक्रिय था। बौद्ध धर्म ने कला के बढ़ाने में महत्वपूर्ण योग दिया। वास्तु कला की विशेष उन्नति हुई। गुहा–मंदिर एवं चैत्यगृहों के रूप में वास्तुकला का पर्याप्त विकास हुआ। नासिक, कार्ले और भाजा में गुहा-विहार और गुहा–चैत्य के सुन्दर भवन उस समय ही निर्मित हुए थे। प्राकृत भाषा व उसके कवियों को राज्याश्रय मिला। सातवाहन शासक हाल स्वयं प्राकृत का प्रसिद्ध कवि हुआ है। इस काल की रचनाओं पर संस्कृत का प्रभाव स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है।

अध्ययन के लिए संकेत

(१) अशोक की मृत्यु के उपरान्त साम्राज्य की एकता का ह्रास होगया।
(२) अन्तिम मौर्य शासक बृहद्रथ का वध उसके सेनापति पुष्यमित्र शुङ्ग ने कर दिया।
(३) शुङ्ग वंश का सबसे प्रतापी शासक पुष्यमित्र था।
(४) शुङ्ग शासकों ने वैदिक अथवा ब्राह्मण धर्म को प्रोत्साहित किया।
(५) जब विदेशियों के आक्रमण के कारण सातवाहनों का राज्य केवल आन्ध्र में ही रह गया तो ये लोग आन्ध्र कहलाने लगे।
(६) इस वंश का सबसे प्रतापी शासक गौतमीपुत्र शतकर्णी था।
(७) सातवाहनों के समय दक्षिण में सभ्यता व संस्कृति की काफी उन्नति हुई।

अभ्यासार्थ प्रश्न

(१) शुङ्ग कौन थे? इस काल के सबसे प्रतापी शासक का तथा उस समय की सभ्यता व संस्कृति का वर्णन कीजिए।

1. Who were the Sungas? Describe the events of the reign of the most famous rulers of this dynasty as also give an account of the Civilization & Culture of those times.

(२) आन्ध्र सातवाहन के विषय में आप क्या जानते हैं? तत्कालीन दक्षिण भारत की सभ्यता एवं संस्कृति का निरूपण कीजिए।

2. What do you know of the Andhra-Satvahanas? Explain the civilization and culture of Southern India during their reign.

ग्यारहवां अध्याय

भारत में विदेशी जातियों का शासन

(१) प्रस्तावना (२) बाख्त्री–यवन (३) यूनान का भारत पर प्रभाव (४) शक (५) पह्लव (६) कुषाण (७) कुषाण–युगीन सभ्यता व संस्कृति।

प्रस्तावना:— मौर्यों ने भारत में एक सुव्यवस्थित तथा सुसंगठित साम्राज्य की स्थापना की थी जो एक दृढ़ राजनैतिक सूत्र में बँधा हुआ था। चन्द्रगुप्त मौर्य के शासन काल में सिकन्दर के सेनापति सेल्यूकस निकेटर ने भारत पर आक्रमण करने का साहस किया था। उसने एक करारी हार का सामना किया और उसे एक अपमानजनक सन्धि को मानने के लिए बाध्य होना पड़ा। मौर्यों की इस सैनिक शक्ति की धाक विदेशियों पर सैकड़ों वर्ष तक रही और वे तब तक भारत पर आक्रमण करने का विचार न ला सके जब तक कि यहाँ की राजनैतिक एकता मौर्य वंश के शक्तिहीन उत्तराधिकारियों के समय में छिन्न–भिन्न न हो गई।

अशोक ने अपने धर्म–प्रचारकों को सीरिया, मिश्र, साइरीन, मक्दूनिया तथा एपरिस के यवन राज्यों में भेजा और मैत्री की परम्परा को सुदृढ़ बनाया। किन्तु अन्त में यवनों ने भारत की अशान्तिपूर्ण अवस्था और आन्तरिक अराजकता से लाभ उठाकर यहां आक्रमण कर ही दिया और देश के कुछ भाग पर अपना अधिकार कर लिया। यवनों का यह आक्रमण चार विभिन्न यवन जातियों द्वारा हुआ।

बाख्त्री–यवन:—सेल्यूकस निकेटर द्वारा स्थापित सीरिया साम्राज्य दो भागों में बँट गया– बैक्ट्रिया तथा पार्थिया। बैक्ट्रिया में विद्रोहियों का नेता डियोडोटस प्रथम था तथा पार्थिया का अरसेकीज।

बैक्ट्रिया अथवा बाख्त्र के यवनों ने स्वतन्त्र होते ही सिकन्दर द्वारा जीते हुए भारतीय प्रदेशों पर अपना आधिपत्य स्थापित करने का प्रयत्न किया। इन्होंने सिकन्दर महान से भी अधिक प्रभावशाली व बलशाली आक्रमण किये। इस वंश के प्रथम शासक डियोडोटस प्रथम ने बैक्ट्रिया को स्वतन्त्रता प्रदान की और पूर्ण शक्ति से लगभग २४५ ई० पू० से २१० ई० पू० तक शासन किया। उसके पुत्र डियोडोटस द्वितीय की युथिडेमस ने हत्या करदी। उसे अपने राज्य की रक्षा करने के लिए घोर संघर्ष करना पड़ा किन्तु उसने एक विस्तृत साम्राज्य पर बहुत अधिक समय तक राज्य किया। उसके चाँदी के सिक्के बैक्ट्रिया तथा बुखारा में काफ़ी संख्या में पाये गये हैं। ऐसी मान्यता है कि उसने शासन के अन्तिम काल में दक्षिण में अफगानिस्तान के

निचले हिस्से तक तथा उत्तरी-पश्चिमी भारत के कुछ भागों तक भी अपना साम्राज्य बढ़ा लिया था। इसके उपरान्त हमें यूनानी लेखकों द्वारा डेमिट्रियस का ही उल्लेख एक भारतीय विजेता के रूप में मिलता है। डेमिट्रियस को पंजाब तक ही विजय करके संतुष्ट होना पड़ा क्योंकि प्रथम तो यूक्रेटाइड्स नामक व्यक्ति ने बैक्ट्रिया में ही जन-क्रान्ति का झंडा ऊँचा कर दिया और दूसरे पुष्यमित्र शुङ्ग ने यवनों को खदेड़ दिया। इस यूक्रेटाइड्स ने ही बाद में बैक्ट्रिया पर कब्जा कर लिया। उसने भारत के यूनानी भाग पर आक्रमण किया और उसे जीता जिससे भारत में यूनानी राज्य दो भागों में विभक्त हो गया। इस वंश का अंतिम शासक हेलियोक्लीज था क्योंकि उसके बाद शकों ने मध्य-एशिया पर अपना अधिकार स्थापित कर लिया था।

"भारत के यूनानी शासकों में केवल मिनेन्डर ही ऐसा राजा है जिसकी स्मृति भारत की साहित्यिक जनश्रुति द्वारा सुरक्षित है।" अन्य राजाओं का ज्ञान हमें तत्कालीन मुद्रा से प्राप्त होता है। मिनेन्डर अथवा मिलिन्द ने बौद्ध धर्म में बेहद रुचि दिखलाई और इस धर्म प्रियता तथा दार्शनिक प्रवृत्ति के कारण वह भारतीय इतिहास में अमर स्थान पागया है। "बौद्ध साहित्य में उसकी वैसी ही प्रतिष्ठा है जैसी उपनिषदों में सम्राट जनक की।" मिनेन्डर की राजधानी शाकल (स्यालकोट) थी और वह एक योग्य सेनानायक तथा शासक था। उसने बौद्ध धर्म को अपना लिया था। उसके सिक्कों पर धर्मचक्र और धमिक की उपाधि भी पायी जाती है। मिनेन्डर के उत्तराधि-कारियों का नाश शकों द्वारा हुआ।

यूनान का भारत पर प्रभाव:— जैसा कि ऊपर बतलाया जा चुका है सिकन्दर के आक्रमण का कोई स्थायी प्रभाव नहीं पड़ा। स्वयं मेगास्थनीज का कथन है कि भारतीय संस्कृति पर यूनान का कोई प्रभाव नहीं पड़ा। इतना अवश्य हुआ कि सिकन्दर के आक्रमण से भारत के विदेशों से सम्बन्ध स्थापित हो गये। डेमेट्रियस सिकन्दर के आक्रमण के बीस वर्ष बाद तक भारत में शासन करता रहा और उस समय अवश्य आदान-प्रदान हुआ किन्तु जैसा कि कुषाण शिलालेखों से स्पष्ट है, इस समय यूनानी हिन्दू-धर्म स्वीकार करने की मनोवृत्ति लिए हुए थे।

प्रथम तो भारतीय ज्योतिष पर यूनानी ज्योतिष का प्रभाव दिखाई पड़ता है। भारतीय ज्योतिषियों ने कुछ सिद्धान्तों को तो ज्यों का त्यों स्वीकार कर लिया। यहां तक कि बारामिहिर ने यूनानियों को म्लेच्छ बतलाते हुए भी ज्योतिष-शास्त्र के क्षेत्र में पूजनीय बतलाया है। यूनानियों से ज्योतिष-ज्ञान प्राप्त करके भारतवासियों ने अरबों को सिखलाया और उनसे योरप वालों ने सीखा।

दूसरे भारतवासियों ने यूनानियों से मुद्रा बनाने की कला सीखी। अब भारत में सुन्दर तथा सुडौल सिक्के बनाये जाने लगे। मुद्रा पर नाम उत्कीर्ण करवाने की प्रथा भी यूनान से ही सीखी गई।

तीसरा सबसे बड़ा दान कला के क्षेत्र में गान्धार शैली का है। इस शैली का नाम गान्धार शैली इस कारण पड़ा कि इसका जन्म गान्धार प्रदेश में हुआ था। वहां पर निर्मित भगवान बुद्ध की मूर्तियों पर स्पष्टतया यूनानी प्रभाव है। यह कला बाद में गुप्तकालीन कला द्वारा लुप्त प्रायः करदी गई।

चौथा प्रभाव साहित्यिक क्षेत्र में असत्य रूप से बतलाया जाता है। यूनानी कवि होमर की 'इलियड' तथा 'आडेसी' ने हमारे ग्रन्थ 'महाभारत' और 'रामायण' को प्रभावित किया, ऐसा यूनानियों का मत नितान्त निमूर्ल है। भारत में 'इलियड' की रचना के सहस्रों वर्ष पूर्व से दोनों महाकाव्यों की कथायें मौखिक रूप से प्रचलित थीं। जो कुछ भी प्रभाव इस समय सांस्कृतिक क्षेत्र में यूनानियों ने छोड़ा वह सब भारत-वासियों ने अपने ढाँचे में ढ़ाल लिया।

शकों का आक्रमणः—यह काल उत्तरी और मध्य-एशिया की विभिन्न जातियों में संघर्ष का काल था। लगभग १६५ ई० पू० चीन की पश्चिमोत्तर सीमा पर एक बर्बर जाति यूह-ची निवास करती थी। हूणों के आक्रमण से घबराकर इस जाति ने दक्षिण-पश्चिम की ओर बढ़ना प्रारम्भ किया जहां उसकी शक जाति से मुठभेड़ हुई। शकों को भी अपने स्थान से हटना पड़ा और वे बैक्ट्रिया के यूनानी राज्य को समाप्त करते हुए ई० पू० पहली शताब्दि में हिन्दूकुश के दक्षिण की ओर बढ़ गये। पुनः शकों को पार्थिया वालों ने खदेड़ दिया। अब शकों ने बोलन दर्रे की ओर से भारत पर आक्रमण किया। जैन ग्रन्थ कालकाचार्य-कथा में हमें इस आक्रमण का विस्तृत उल्लेख मिलता है। उज्जयिनी के मालव गर्दभिल्लों को इन्होंने भगा दिया किन्तु ५७ ई० पू० में मालव गणमुख्य विक्रमादित्य ने गणतन्त्रों की सहायता से शकों को अवन्ति, सौराष्ट्र और सिन्धु से बाहर निकाल दिया। शकों की एक शाखा सिन्धु के किनारे किनारे पश्चिमोत्तर भारत में पहुँच गयी और इसका संघर्ष यूनानी और पह्लव शासकों से हुआ। शकों ने पुनः एक बार ७८ ई० के लगभग भारत पर आक्रमण किया और अवन्ति के मालवों को बुरी तरह परास्त किया। अबसे लगभग ३०० वर्षों तक शकों ने अवन्ति तथा उसके आसपास के प्रदेशों पर राज्य किया। इस समय शक सत्ता के भारत में चार केन्द्र थे-उज्जयिनी, महाराष्ट्र, तक्षशिला तथा मथुरा। उज्जयिनी के शकों ने प्रसिद्धि प्राप्त की। यहां का रुद्रदामन सबसे प्रतापी शासक हुआ। शक अपने शासन काल में राजस्थान और मध्यभारत की जातियों से तथा आन्ध्रों से भी निरन्तर संघर्ष करते रहे। महाराष्ट्र का शक वंश आन्ध्रों के विस्तार से तथा उज्जयिनि का शक वंश चौथी शताब्दि के अन्त में गुप्त साम्राज्य के विस्तार से नष्ट हुआ।

पह्लवः—चूँकि शक पह्लव देश से होते हुए आये थे अतः उनकी भाषा तथा राजनीति पर पह्लवों की स्पष्ट छाप अंकित थी। जब यूनानी और शक निर्बल हो गये तो दक्षिणी अफगानिस्तान तथा पश्चिमोत्तर भारत पर पह्लवों ने अधिकार कर

लिया । इनके दो शासक अधिक प्रसिद्ध हुए । एक तो वनान अथवा वोनोनीज जिसने कन्धार के आसपास के प्रदेशों पर अपना आधिपत्य स्थापित किया और यहां से ही पह्लवों का राज्य उत्तर में तक्षशिला तक पहुँच गया । दूसरा शासक गुदकर्न था जिसके समय में ईसाई सन्त टामस भारत आये थे । पह्लव मुद्रा से ऐसा प्रतीत होता है कि इन शासकों ने भारतीय भाषा तथा धर्म अपना लिये थे । कुषाणों ने भारत में पार्थियन राजसत्ता को समाप्त कर दिया ।

कुषाण:—कुषाण भी एक विदेशी जाति थी । जितने भी विदेशी आक्रमण भारत पर हुए उन सबमें अधिक प्रभाव कुषाणों ने छोड़ा । राजनीति, कला तथा धार्मिक जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में इनका सबसे अधिक प्रभाव पड़ा । यूह्–ची जाति के आक्रमण के बारे में ऊपर कहा जा चुका है । पहले यह जाति नितान्त बर्बर थी । फिर उन्होंने बैक्ट्रिया तथा पार्थिया से सभ्यता का पाठ पढ़ा । इस जाति ने मध्य एशिया में अपना विस्तृत प्रसारण किया । यूह्–ची पाँच भागों में बँट गये । उनमें से ही एक का नाम कुषाण भी था ।

प्रथम शताब्दी में जन संख्या बढ़ रही थी तथा चीन और पार्थिया की ओर से दबाव भी था । कुषाणों के नेता कुजुल कदफिस ने इन कारणों से तथा सैनिक महत्वाकांक्षा से भी हिन्दुकुश को पार किया और काबुल और उसके आसपास के प्रान्तों में अपनी सत्ता स्थापित की । यहाँ के शासक हर्मियस के तथा कुजुल कदफिस के संयुक्त सिक्के काबुल की घाटी में पाये गये हैं । इसके बाद उसका उत्तराधिकारी विमकदफिस सिंहासनारूढ़ हुआ । इसने अपने साम्राज्य का सातवाहनों की सीमा तक विस्तार किया । इसके सिक्कों पर शिव, नन्दी तथा त्रिशूल आदि शैव मतावलम्बियों के चिह्न अंकित हैं ।

इस वंश का सबसे प्रतापी शासक कनिष्क हुआ । कनिष्क १२० ई० के लगभग गद्दी पर बैठा । इसने पुरुषपुर अथवा पेशावर को अपनी राजधानी बनाया । इसने पंजाब तथा उत्तर भारत को जीता और फिर यह पाटलीपुत्र तक बढ़ गया । यह बौद्ध धर्म से इतना प्रभावित हुआ कि भगवान बुद्ध के जलपात्र तथा विद्वान अश्वघोष को अपनी राजधानी ले गया । इसने काश्मीर पर भी आक्रमण किया । यहां पर ही कनिष्क ने बौद्ध धर्म की चौथी महासभा की । यहां उसने कई नगर व स्मारक बनवाये । उसने पामीर के रास्ते से चीन पर आक्रमण किया और चीनियों को परास्त किया । उसका राज्य एशिया के कई देशों में फैला हुआ था ।

कनिष्क ने एक सुदृढ़ और सुव्यवस्थित राज्य की स्थापना की । उसका राज्य सैनिक बल तथा क्षेत्रीय शासन–प्रणाली पर आधारित था । वह पक्का बौद्ध धर्म का अनुयायी था । उसे बौद्ध धर्म का बड़ा समर्थक माना जाता है और अशोक के बाद बौद्ध धर्म के फैलाने में उसका ही स्थान दूसरा आता है । बौद्ध धर्म की चौथी महासभा में जिसे उसने वसुमित्र की अध्यक्षता में काश्मीर में संपादित किया था त्रिपिटकों के भी यनान से ही सीखा गई ।

प्रामाणिक पाठ तैयार किये गये। उसके समय में बौद्ध धर्म का खूब प्रचार हुआ और उसने अनेक स्तूप चैत्य तथा विहार बनवाये। इस समय बौद्ध धर्म महायान तथा हीनयान दो भागों में बँट गया। "हीनयान धर्म में बुद्ध केवल एक शास्ता के रूप में ही थे परन्तु महायान धर्म में उन्हें देवता का स्थान दिया गया।" साहित्य और कला के क्षेत्र में भी कनिष्क की बड़ी देन है। उसके दरबार में अश्वघोष, नागार्जुन, पार्श्व और वसुमित्र आदि विद्वान आश्रय पाये हुए थे। चरक ने भी कनिष्क से सहायता प्राप्त की थी। उसके समय की मूर्तियों के अवशेष काफी पाये गये हैं। उसने लगभग २३ वर्ष तक राज्य किया और फिर उसके मंत्रियों ने ही षड़यन्त्र कर उसे मार डाला। उसके बाद हुविष्क तथा वासुदेव दो प्रसिद्ध राजा और सिंहासनारूढ़ हुए। और फिर इस वंश का पतन हो गया।

इसके पतन के कई कारण थे। कुषाणों का संगठन ठोस तथा स्थायी नहीं था। अत: निर्बल शासक के आते ही उसका ह्रास होने लगता था। कनिष्क के उत्तराधिकारी विलासी थे। भारत में भी राष्ट्रीय शक्तियां जाग्रत होने लगी जिससे कुषाणों के राज्य का अन्त हो गया।

कुषाण-युगीन सभ्यता व संस्कृति:—कनिष्क ने एक विशाल अन्तर्राष्ट्रीय साम्राज्य की स्थापना की जिससे यातायात की अनेक सुविधाएँ बढ़ गईं। व्यापारिक काफिले तथा धर्म-प्रचारक विदेशों की यात्रा अपने अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिए करने लगे। डा० राय चौधरी के कथनानुसार "कनिष्क के वंश ने भारतीय सभ्यता के लिए मध्य और पूर्वी एशिया का द्वार खोल दिया।' अत: बौद्ध धर्म के साथ साथ भारतीय संस्कृति का प्रचार होने लगा। विदेशों के सम्पर्क से भारत को दोहरा फायदा हुआ—अर्थात विदेशों में भारतीय संस्कृति का प्रसार और व्यापारिक श्रीवृद्धि के कारण विपुल धनराशि की प्राप्ति।

इस समय विशुद्ध साहित्यिक ग्रन्थों के अतिरिक्त दर्शन—शास्त्र तथा चिकित्सा विज्ञान के भी ग्रन्थ लिखे गये। अश्वघोष एक दार्शनिक, लेखक, नाटककार, संगीतज्ञ तथा महाकवि था। नागार्जुन प्रसिद्ध दार्शनिक था। चरक का प्रसिद्ध आयुर्वेदिक ग्रन्थ 'चरक संहिता' इसी समय रचा गया।

कला के क्षेत्र में हम महायान धर्म के प्रभाव से बुद्ध की मूर्तियों का निर्माण किया जाना पाते हैं। गान्धार कला अर्थात मूर्त्ति कला की वह विशिष्ट शैली जो गान्धार प्रदेश के आसपास फली फूली इस समय की महान देन है। गान्धार के अतिरिक्त सारनाथ, अमरावती तथा मथुरा भी उस समय महान कला-केन्द्र थे।

अध्ययन के लिए संकेत

(१) अशोक के बाद राजनैतिक एकता समाप्त हो गई जिसका लाभ विदेशी आक्रमण कारियों ने उठाया।

(२) यूनानी आक्रान्ता मिनेन्डर बौद्ध था।

(३) भारतीय ज्योतिष, मुद्रा तथा कला को यूनानियों ने प्रभावित किया। यह असत्य है कि 'रामायण' तथा 'महाभारत' पर 'ईलियड' व 'ओडेसी' का प्रभाव है।

(४) कुषाणों में सबसे महान शासक कनिष्क हुआ है जिसकी गणना बौद्ध शासकों में अशोक के बाद आती है।

अभ्यासार्थ प्रश्न

(१) मिनेन्डर कौन था ? उसके भारतीय आक्रमण पर प्रकाश डालिए। क्या हमने प्राचीन काल में यवन सभ्यता से कुछ आदान प्रदान किया था ?

1. Who was Menander? Discuss his attack on India. Can you describe the exchange of cultural ideas during this period between Indians and the foreigners?

(२) कुषाण वंश के सर्व श्रेष्ठ शासक का हाल लिखते हुए तत्कालीन भारतीय संस्कृति पर प्रकाश डालिये।

While describing the reign of the greatest of the Kushans throw light on the culture of that period.

भी यनान से ही सीखा गइ।

बारहवां अध्याय

गुप्त साम्राज्य का विकास

(राष्ट्रीय पुनरुत्थान)

(१) प्रस्तावना (२) गुप्त साम्राज्य की स्थापना और विकास (३) समुद्रगुप्त (४
चन्द्रगुप्त द्वितीय विक्रमादित्य (५) गुप्त शासन प्रबन्ध (६) गुप्त कालीन सभ्यता
संस्कृति (७) चीनी यात्री फाह्यान ।

प्रस्तावना:—हम ऊपर बतला चुके हैं कि २५० ई० के लगभग पश्चिम व
ओर से विदेशी दबाव के कारण तथा आन्तरिक दुर्बलता के कारण कुषाण साम्रा
दुर्बल होता जा रहा था। इस दुर्बलता से लाभ उठाकर राष्ट्रीय शक्तियां उत्थान क
रहीं थीं। इन शक्तियों में सबसे पहले पूर्वी पंजाब, मध्यभारत और राजस्थान की गण
जातियां और मध्यभारत के तथा विन्ध्यप्रदेश के नागवंश तथा चेदि और विदर्भ
वाकाटक थे। लगभग समस्त उत्तरी भारत में विदेशी सत्ता को समूल नष्ट कर दिया गया

किन्तु राष्ट्रीय पुनरुत्थान में पूर्ण सफलता गुप्त वंश को मिली थी। गुप्त वंश क
उत्पत्ति के बारे में इतिहासकारों के विभिन्न मत हैं। पुराणों में इस बात का उल्लेख
मिलता है कि गुप्त आन्ध्रों की सेवा में थे और बाद में उन्होंने ही आन्ध्रों को समा
किया। डा० जायसवाल के मतानुसार गुप्त पंजाब के जाट थे। कुछ भी हो गुप्त सम्रा
का विवाह सम्बन्ध ब्राह्मण तथा क्षत्रिय राजवंशों में हुआ था और अपने समय में उनक
गणना क्षत्रियों में होती थी।

गुप्त साम्राज्य की स्थापना और विकास:—इस वंश के संस्थापक श्रीगुप्त क
राज्य प्रयाग और अयोध्या के बीच में प्रसारित था। शायद श्रीगुप्त कुषाणों का ए
सामन्त था। उसके पुत्र घटोत्कच के बारे में कोई उल्लेखनीय घटना का हमें ज्ञान प्रा
नहीं होता है। उसके बाद चन्द्रगुप्त प्रथम बड़ा प्रतापी शासक हुआ जिसने स्वतन्त्र रूप
गुप्त वंश की स्थापना की। चन्द्रगुप्त नीतिनिपुण था। उसने वैवाहिक सम्बन्धों द्वारा अप
प्रभाव को बढ़ाया। लिच्छवी वंश की राजकुमारी से विवाह करके उसने अपने पड़ोस
कोटकुल की शक्ति को कमजोर कर दिया। साथ ही पाटलीपुत्र पर भी अधिकार जम
लिया। इस प्रकार कोसल, वत्स तथा मगध पर गुप्तों का आधिपत्य स्थापित हो गया
उसे अपने अन्तिम दिनों में षड़यन्त्रों का तथा विरोध का सामना करना पड़ा।

समुद्रगुप्त:—चन्द्रगुप्त प्रथम के समय तक गुप्तों का राज्य पाटलीपुत्र के आस
पास तक ही सीमित था किन्तु लिच्छवी वंश की राजकुमारी से उत्पन्न उसके पुत्र समुद्र
गुप्त ने अपनी दिग्विजय द्वारा एक विशाल साम्राज्य की स्थापना कर दी। [illegible]

भारतीय इतिहास में समुद्रगुप्त जैसा योद्धा तथा विजयी शासक नहीं मिलता है। अपने विजय के कारण उसे प्राचीन इतिहास में नेपोलियन का स्थान प्राप्त हुआ है। लगभग
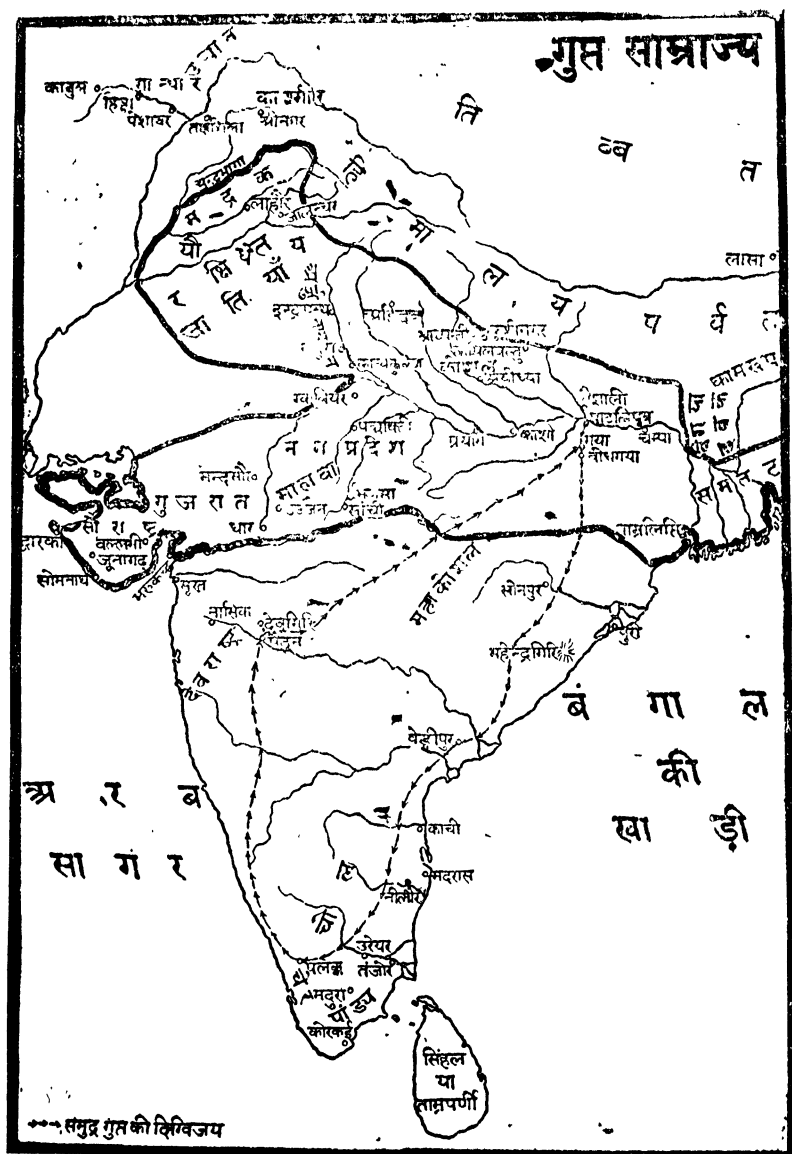
सभी कवि व भाट तथा चारणों ने मुक्त कण्ठ से प्रशंसा करते हुये उसकी विजय का वर्णन किया है। श्री 'नाहर' ने समुद्रगुप्त की विजयों को इन ६ भागों में वर्णित

(क) उन्मूलित राज्य जिसका समुद्रगुप्त ने असुर विजयी नृपति की भांति सर्वथा नाश कर दिया।

(ख) आटविक राज्य जिनके अधिपतियों को उसने अपना सेवक बनाने को बाध्य किया।

(ग) दक्षिणापथ के राज्य जिनके अधिकारियों को उसने धर्म-विजयी नृपति की भाँति पराजित करके श्री-विहीन कर दिया किन्तु उनके राज्य को पुनः उन्हें लौटा दिया।

(घ) प्रत्यन्त राज्य।

(ङ) गण राज्य जिन्होंने हतप्रभ होकर स्वयं आत्मसमर्पण कर दिया।

(च) भारतीय सीमा पर स्थित तथा कुछ विदेशी राज्य जिन्होंने समुद्रगुप्त के प्रति आत्मनिवेदन किया।

क—**उन्मूलित राज्यः**—इन राज्यों के अन्तर्गत समुद्रगुप्त की समस्त उत्तरी भारत की विजय मानी जाती है। अनेक राजा उदाहरणार्थ रुद्रदेव, नागदत्त, चन्द्र वर्मन्, नागसेन, अच्युत, बलवर्मा आदि पराजित हुये।

ख—**आटविक राज्यः**—दक्षिण की ओर बढ़ने से पूर्व सम्राट समुद्रगुप्त ने मार्ग में पड़ने वाले आटविक नरेशों को भी पराजित किया। आटविक राज्य मध्य भारतीय वन परम्परा में कहीं थे।

ग—**दक्षिणपथ के राज्यः**—डा० जायसवाल के अनुसार दक्षिणाथ के समस्त शासकों ने एक मित्र-संघ बना रखा था और कोलेरू तालाब के पास एकत्रित होकर सबने सम्मिलित रूप से समुद्रगुप्त का मुक़ाबला किया था। यह युद्ध लगभग ४५३ ई० के हुआ था। ये सब राजा पराजित हुये किन्तु समुद्रगुप्त उनके राज्य को अपने राज्य में मिलाने में सफल नहीं हुआ। दक्षिणापथ के पराजित राजाओं में कौसलक महेन्द्र, कैरलक मन्टराज, देवराष्ट्रक कुवेर तथा कोस्थलपुरक धनञ्जय आदि थे।

घ—**प्रत्यन्त राज्यः**—ये राजा सीमा प्रान्तीय थे। इन लोगों ने डरकर समुद्रगुप्त को सब प्रकार के कर आदि देना प्रारम्भ कर दिया। कुल पाँच प्रत्यन्त राज्य थे।

ङ—**गणराज्यः**—इसके उपरान्त समुद्रगुप्त ने पश्चिमके गणराज्यों को पराजित कर समाप्त किया और इस प्रकार भारत में संघ शासन के अन्तिम अवशेषों को भी समाप्त कर दिया। इनमें प्रसिद्ध मालव, अर्जुनायन, प्रार्जुन,

ब—**विदेशी राज्य:**—भारत के परे जब समुद्रगुप्त की विजय के समाचार पहुँचे तो विदेशी शासकों ने इससे मित्रता स्थापित की। इस मित्रता को उन्होंने आत्मनिवेदन, कन्याओं के विवाह अथवा अपने राज्य में गरुड़ की मुहर से मुद्रित अधिकार माँगकर दृढ़ किया। इनमें दैवपुत्र शाहिशाहानुशाही, शक, मरुण्ड तथा सैंहल व अन्य द्वीप थे।

इन महान विजयों के उपलक्ष में उसने एक अश्वमेध यज्ञ किया तथा अश्वमेध शैली के सिक्के भी चलाये।

उपरोक्त वर्णन से हमें यह नहीं समझना चाहिये कि समुद्रगुप्त केवल एक सैनिक तथा विजेता ही था अपितु वह एक कवि, विद्वान, साहित्यिक तथा उच्चकोटि का संगीतज्ञ था। उसने कई सुन्दर काव्यों की रचना की जो अब उपलब्ध नहीं हैं। उसके समय के सिक्कों में उसकी स्वयं की वीणा बजाते हुए मूर्ति अङ्कित है। उसका सामाजिक तथा धार्मिक क्षेत्र में भी बड़ा ऊँचा स्थान रहा था। उसके सिक्कों पर गरुड़ की अङ्कित मूर्ति यह सिद्ध करती है कि वह वैष्णव धर्मावलम्बी था। हमें इस बात का उल्लेख भी मिलता है कि वह बौद्ध व अन्य सम्प्रदायों को भी आदर की दृष्टि से देखता था। लगभग ३७५ ई० में उसका देहान्त हो गया था।

उसके बाद उसका बड़ा पुत्र रामगुप्त सिंहासन पर बैठा था। वह कायर था। उसके छोटे भाई चन्द्रगुप्त द्वितीय ने शकों से गुप्त राज्य की रक्षा की थी। और अन्त में उसे मारकर स्वयं राज्य की बागडोर सँभाली।

चन्द्रगुप्त द्वितीय विक्रमादित्य:—चन्द्रगुप्त द्वितीय ने अपने बड़े भाई रामगुप्त की पत्नी से विवाह कर लिया। समुद्रगुप्त की मृत्यु के पश्चात् रामगुप्त की दुर्बलता से शासन में ढीलापन आ गया था। विशेषतया शकों ने विद्रोह किया। चन्द्रगुप्त ने इन लोगों को बुरी तरह पराजित किया तथा पश्चिमी सीमा की ओर अपने राज्य का विस्तार किया। काठियावाड़ तथा गुजरात उसके राज्य में सम्मिलित हो गये। भारत के पाश्चात्य व्यापार पर गुप्तों का एकाधिकार हो गया। चन्द्रगुप्त ने अन्य कई और विजय की किन्तु हमें उनका विस्तृत उल्लेख नहीं मिलता है। उसका सेनापति महान योद्धा था। यह कहना कठिन है कि मेहरौली लौह स्तम्भ पर वर्णित 'चन्द्र' जिसने बलख़ के शासकों को हराया था यही चन्द्रगुप्त है।

चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य अच्छा राजनीतिज्ञ था। उसने भी अनेक विवाह-सम्बन्धों द्वारा अनेक राजवंशों से मित्रता दृढ़ कर ली। उसकी एक रानी नागवंश की राजकुमारी थी। इसी प्रकार उसकी पुत्री का विवाह वाकाटका वंश के राजा रुद्रसेन द्वितीय से हुआ। कुन्तल के कदम्बवंशी राजाओं के साथ भी उसका विवाह सम्बन्ध था। उसमें शासन

विस्तृत वर्णन किया है। वह इस व्यवस्था से बहुत प्रभावित हुआ था। वह विद्वानों का तथा विविध विद्या का ज्ञाता था। वह सब धर्मों का आदर करता था तथा स्वयं भी अनेक कलाओं का, समान रूप से आदर करता था, यद्यपि स्वयं विष्णु का भक्त था।

उसके बाद उसका पुत्र कुमारगुप्त सिंहासन पर बैठा। यद्यपि उसके शासनकाल में गुप्त साम्राज्य बड़ा समृद्धिशाली हुआ किन्तु उसके अन्तिमकाल में पुष्यमित्र व हूणों के भयङ्कर आक्रमण हुये। उसका पुत्र स्कन्दगुप्त बड़ा वीर योद्धा था और उसने हूणों को खदेड़ दिया फिर भी उसे सदा एक सुसंगठित सेना रखनी पड़ी और अन्तिम दिनों में भी पुनः भयंकर हूणों के आक्रमणों का सामना करना पड़ा। उसने फिर भी हूणों को टिकने नहीं दिया। उसके बाद आन्तरिक दुर्बलता तथा बाह्य आक्रमणों ने गुप्त वंश को समाप्त कर दिया। इनके अन्य राजा पुरुगुप्त, बुद्धगुप्त, बालादित्य आदि थे। लगभग ५०० ई० में हूणों ने आक्रमण कर पंजाब, राजस्थान तथा मध्यभारत पर अपना राज्य स्थापित कर लिया। धीरे धीरे गुप्त साम्राज्य के प्रान्त उससे अलग होने लगे और साम्राज्य का ह्रास हो गया।

गुप्त शासन प्रबन्ध:—गुप्त शासकों की सबसे बड़ी देन उनकी सुव्यवस्थित व सुसंगठित शासन प्रणाली है। विदेशी आक्रमणों के कारण मौर्यों के उपरान्त प्राचीन शासन प्रणाली समाप्त सी हो गई थी। गुप्तों ने उस प्रणाली को पुनः जागृत कर उसमें नवीन पुट देकर प्राण फूँक दिये।

गुप्त साम्राज्य अत्यन्त विशाल था फिर भी उसका संगठन उतना केन्द्रित न हो सका जितना मौर्यों का था। मगध पाटलीपुत्र तथा उसके आसपास गुप्त शासक सीधा शासन करते थे किन्तु उसके आगे गुप्तों का आधिपत्य ही स्वीकार कर लिया गया था और माण्डलिक राजा गुप्तों को वार्षिक कर व उपहार नियमित रूप से भेज दिया करते थे। अतः साम्राज्य के स्वरूप को हम माण्डलिक अथवा सांघिक की उपमा दे सकते हैं। गुप्त शासन एकतांत्रिक था। राजा राज्य का मालिक था तथा अन्तिम सत्ता उस ही के हाथों में निहित थी। उत्तराधिकारी योग्यता के आधार पर चुने जाते थे। सबसे बड़े लड़के को अधिकार स्वरूप उत्तराधिकार नहीं मिलता था। सम्राट कई प्रकार की राजनैतिक उपाधियाँ जैसे विक्रमादित्य, चक्रवर्ती, परमभट्टारक, परमेश्वर लेकर अपने को अलंकृत करता था। राजा एक मन्त्रिपरिषद् की सहायता से शासन करता था। मन्त्रि पद भी पैतृक होता था। मन्त्रियों के पास विभिन्न विभाग वितरित थे। प्रत्येक विभाग का एक अध्यक्ष भी होता था। इन्हें भिन्न-भिन्न नामों से जैसे आमात्य, कुमारामात्य, युवराज कुमारामात्य पुकारा जाता था।

जैसा कि ऊपर बतलाया जा चुका है, गुप्त साम्राज्य अत्यन्त विशाल था अतः वह कई प्रान्तों व प्रदेशों में बँटा हुआ था। [illegible]

प्रान्तों के शासक भोगिक, गोप्ता, स्थानिक आदि नामों से जाने जाते थे। प्रान्तों को पुनः प्रदेश अथवा विषय में विभाजित किया गया था। विषय लगभग जिले के समान होता था और इसका अधिकारी विषयपति कहलाता था। सब में छोटा भाग ग्राम कहलाता था। नगर का शासन सरकारी अध्यक्षता में एक परिषद् द्वारा होता था जिसके निम्न-लिखित सदस्य होते थे—नगर श्रेष्ठिन, सार्थवाह, प्रथम कुलिक, प्रथम कायस्थ, पुस्त-पाल आदि। गाँवों के प्रबन्ध के लिये ग्रामपरिषद् होती थी।

शासन कई विभागों में बँटा हुआ था। मुख्य विभागों में राजस्व अथवा माल के विभाग की गणना होती थी। भूमि नियमित रूप से नापी जाती थी और उसकी विस्तृत जानकारी लिखी जाती थी। भूमि कर को उद्रङ्ग कहते थे और यह उपज का छठा भाग होता था। अन्य करों में उपरि कर, हिरण्य, चाटभट, प्रवेश आदि मुख्य थे। सरकार के अन्य आय के साधनों में न्यायालय शुल्क, अर्थ दण्ड, राजाओं से कर व उपहार आदि मुख्य थे। सुवर्ण दीनार आदि सिक्के प्रयोग में लाये जाते थे। कौड़ियां भी प्रयोग में लाई जातीं थीं।

चार प्रकार के न्यायालय विद्यमान थे—कुल श्रेणी, गण तथा राजकीय न्याया-लय। प्रथम तीन न्यायालयों की, जो खानगी थे, अपील अन्तिम न्यायालय में होती थी और अन्तिम अपील राजा के पास होती थी। दण्ड कठोर नहीं थे। दण्ड की मात्रा अपराध की मात्रा के अनुपात में होती थी। न्याय व्यवस्था उत्तम थी और जनता नियमों का पालन करती थी। अनेक जनता के उपयोग के कार्य भी किये गये। सड़कों का निर्माण किया गया। सिंचाई की व्यवस्था आवश्यकतानुसार की गई। चिकित्सालय, औषधालय, विद्यालय, धर्मशाला आदि का निर्माण किया गया।

सेना का भी संगठन उत्तम था। हमें दुर्ग स्कन्धावार, शस्त्रागार तथा चतु-रङ्गिणी सेना आदि अनेक उल्लेख मिलते हैं। सेना का प्रधान अधिकारी सान्धि-विग्रहिक कहलाता था और उसके आधीन अनेक बड़े अधिकारी जैसे महा सेनापति, महादंडनायक बलाधिकृत, भटाश्वपति आदि होते थे। भीतरी रक्षा के लिये रक्षा-विभाग तथा पुलिस विभाग की अच्छी व्यवस्था थी। इस विभाग में भी कई अधिकारी होते थे। गुप्तचर भी होते थे। फाह्यान का कहना है कि "देश में काफी शान्ति और सुव्यवस्था थी और चौर डाकुओं का जरा भी भय नहीं था।"

गुप्तकालीन सभ्यता व संस्कृतिः—गुप्त काल इतिहास में स्वर्णयुग के नाम से प्रसिद्ध है क्योंकि इस युग में एक समुन्नत व सुसंगठित समाज विकसित हुआ तथा सांस्कृतिक क्षेत्र में भारी प्रगति हुई। जीवन के हर क्षेत्र में नवजीवन का निर्माण हुआ और स्फूर्ति आ गई।

सामाजिक अवस्थाः—हम देख चुके हैं कि जैन और बौद्ध जैसे सुधारवादी आन्दोलनों के विरोध में वैदिक प्रति सुधारणा के युग का जन्म हुआ। अनेक विदेशी

जातियां जैसे यूनानी, शक, पह्लव, कुषाण आदि इस देश में ही बस गये। उन्हें पचाने के लिये पुनः एक नये सामाजिक ढाँचे की आवश्यकता हुई। ये विदेशी जातियाँ अब भारतीय होती जा रहीं थीं। अतः वर्ण और आश्रम को कठोर न बनाकर अब उदार बनाया गया और मानव अब केवल कर्म के आधार पर अपना वर्ण चुन सकता था। चार वर्णों का—ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथ शूद्र—तथा इनके कर्तव्यों का हमें पूर्ण विवरण मिलता है और ऐसा उल्लेख भी मिलता है कि आपस में वर्ण परिवर्तन और सम्पर्क सम्भव था। परन्तु कुछ जंगली जातियाँ अथवा चाण्डाल व नीचवृत्ति वाली व घुमक्कड़ जातियाँ समाज से बहिष्कृत थी। फाह्यान ने बतलाया है कि चाण्डाल बस्ती के बाहर रहते थे।

उच्च वर्ण विशेषतः राजवंश आपस में अन्तर्जातीय विवाह करता था। गुप्तों नेनेनागवंश तथा ब्राह्मण वाकाटकों में विवाह किया। राजा व धनी बहु विवाह करते थे। विधवा-विवाह भी होते थे। विक्रमादित्य चन्द्रगुप्त ने अपने भाई की पत्नी ध्रुव देवी से विवाह किया था। समाज में स्त्रियों का स्थान काफी ऊँचा था। और यह लक्षण गुप्त राज्य के उत्थान का चिह्न था।

हमें मूर्तियों तथा चित्रों से तथा तत्कालीन साहित्य में उल्लेखित घटनाओं से गुप्त कालीन वस्त्राभूषण, वेशभूषा आदि का भी पर्याप्त ज्ञान होता है। वस्त्रों में शिरोवेष्ठन, अङ्गरखा, कंचुकी तथा धोती आदि का वर्णन मिलता है। इसी प्रकार आभूषणों में कुण्डल, कर्णफूल, कण्ठहार, करधनी, कङ्कण तथा पायल आदि मूर्तियों पर अङ्कित मिलते हैं। यहाँ की वेशभूषा विदेशियों से प्रभावित हो चुकी थी तथा भोजन व खानपान पर जैन और बौद्ध प्रभाव आ चुके थे। फाह्यान ने लिखा है कि चाण्डालों के अतिरिक्त अन्य जातियाँ माँस, मछली, प्याज तथा लहसुन आदि नहीं खातीं थीं। इसी प्रकार नशीली वस्तुओं का प्रयोग भी वर्जित था। जनता का सामान्य रहन-सहन व आचार-विचार का स्तर काफ़ी ऊँचा था।

धार्मिक जीवनः—इस युग को राष्ट्रीय पुनरुत्थान का युग कहा गया है। राष्ट्रीय भावना से ओत-प्रोत नागवंश, वाकाटक तथा गुप्त सम्राटों ने वैदिक धर्म को न केवल अपनाया ही अपितु उसके समस्त कर्मकाण्ड को पुनः जीवन प्रदान किया। इतना अवश्य है कि समयानुकूल अब देवताओं में ब्रह्मा, विष्णु, शिव तथा सूर्य को मानव रूप धारी अवतार मान लिया गया तथा यज्ञ के स्थान पर भक्तिमार्ग ने जन्म लिया। मन्दिर तथा मूर्तियाँ स्थापित किये जाने लगे। इसी प्रकार तीर्थों की, पूजा पाठ तथा दान-पुण्य की महिमा भी बढ़ गई। "आधुनिक हिन्दू धर्म की आधारशिला गुप्तों के समय में ही रख दी गई थी।"

बौद्ध धर्म के अनुयायी अब भी संख्या में काफी थे किन्तु वैदिक-प्रतिसुधारणा के फलस्वरूप उन्होंने भी अपने को सुधार लिया था और वैदिक धर्म के काफ़ी निकट आ

गये थे। इस समन्वय में सबसे बड़ा योग भक्ति-मार्ग ने दिया। जैन धर्म भी इसी प्रकार भक्ति मार्गी होता जा रहा था। आधुनिक जैन धर्म के मन्दिर, मूर्ति-पूजा, अर्चा, वन्दना आदि भी इस काल की ही उपज हैं। विदेशी आक्रमणकारियों से अपनी रक्षा करने के लिये जैन उत्तर भारत से दक्षिण की ओर हट चुके थे। यद्यपि गुप्त सम्राट वैष्णव अथवा शैव ही थे किन्तु वे सब धर्मों को समान दृष्टि से देखते थे और सब के साथ बड़ी उदारता का व्यवहार करते थे। यहाँ तक कि राज्याश्रय तथा दान सब को दिया जाता था। चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य का सेनापति अमरकदिव कट्टर बौद्ध था। फाह्यान ने भी राजवंश की इस उदार धार्मिक नीति की मुक्त कण्ठ से प्रशंसा की है और वह कहता है कि यहाँ किसी धर्म के अनुयायी पर अत्याचार नहीं होता है।

आर्थिक जीवन:—किसी काल को हम स्वर्ण-युग तब ही कह सकते हैं जब जन-जीवन आर्थिक क्षेत्र में सुसम्पन्न हो। गुप्त काल में कृषि, उद्योग-धन्धे तथा व्ययापारादि सब समान रूप से उन्नत हुये। व्यापारियों के संगठन थे तथा बैंक का काम भी होता था। व्याज पर ऋण देने का भी खूब प्रचलन था। क्योंकि गुप्तों का साम्राज्य खूब विस्तृत था अतः जल व थल दोनों मार्गों से व्यापार होता था। रोम में दीनार सिक्के पाये गये हैं। चीन का रेशमी कपड़ा भारत में आता था और भारत से कपड़ा, मसाले, हीरे-जवाहरात व आभूषण बाहर जाते ये। सुवर्ण, दीनार तथा चाँदी के कार्षापण सिक्के चलते थे। ताँबा और कौड़ियाँ भी काम में लाये जाते थे।

भाषा व साहित्य:—"गुप्त-युग की साहित्यिक समृद्धि की तुलना एथेन्स के इतिहास के पेरीक्लीयन युग और अंग्रेजी साहित्य के इतिहास के एलिजाबेथन युग से की जाती है।" अब संस्कृत को राज्याश्रय मिल गया, अतः संस्कृत साहित्य अपनी उन्नति की पराकाष्ठा पर पहुँच गया। यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता कि महाकवि कालिदास इस युग में ही थे। फिर भी इस काल में ही काश्मीर का राजा और कवि मातृगुप्त, भर्तृमेण्ठ, 'मृच्छकटिका' का लेखक शूद्रक, 'मुद्रा राक्षस' का लेखक विशाखदत्त तथा "वासवदत्ता" का लेखक सुबन्धु आदि हुए हैं। काका लङ्कार का लेखक भामह तथा प्रसिद्ध दर्शन शास्त्री ईश्वर कृष्ण, वात्सायन, प्रसिद्ध गणितज्ञ व ज्योतिषी आर्यभट्ट, ब्रह्मगुप्त, विष्णु शर्मा आदि इस समय ही हुए। नारद स्मृति व पाराशर स्मृति की रचना भी इसी समय हुई। इसी प्रकार पुराण व महाकाव्यों के अन्तिम संस्करण भी इसी समय लिखे गये। प्रसिद्ध बौद्ध लेखक आचार्य मैत्रेय, असङ्ग, वसुबन्धु, कुमार जीव, धर्मपाल आदि तथा जैनाचार्य चन्द्रमणि, सिद्धसेन, देवनन्दिन आदि भी इसी समय हुए थे।

कला:—कला के क्षेत्र में भी इस युग में आशातीत उन्नति हुई। विदेशी शैली विशेषतया गान्धार और मथुरा अब भारतीय हो गई और सौन्दर्य तथा भावाभिव्यक्ति में

[illegible]

भी भारतीय कला इस समय अपनी पराकाष्ठा पर पहुँची।" इस कला के आदर्श ने ही समस्त भारत की कला को प्रभावित कर दिया। अनेक विदेशी आक्रमणों के कारण अनेक कलाकृति नष्ट हो गई है, फिर भी जो उपलब्ध हैं वे उच्चकोटि की हैं।
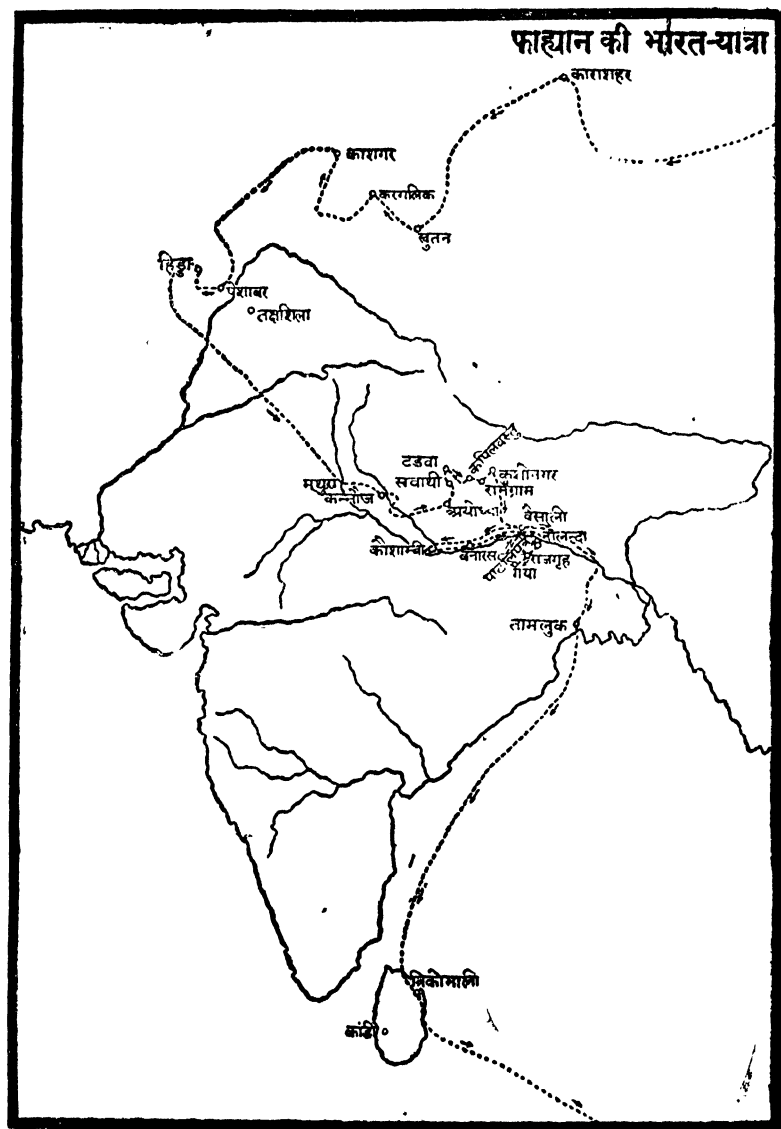
इस काल में ही सारनाथ का धामेख स्तूप तथा अजन्ता व इलोरा और बाघ के कुछ गुहा—विहार निर्मित हुए थे। इलोरा का विश्वकर्मा चैत्य, ऐहोल के दुर्गा व लाल

खाँ मन्दिर, बौध गया का महाबोधि मन्दिर, कुशी नगर के महापरिनिर्वाण स्तूप, महरौली लौह-स्तम्भ इस काल की अद्भुत रचनाओं के उत्कृष्ट नमूने हैं। गुप्तकाल में मूर्तिकला भी काफी उन्नत व विकसित हुई थी। मूर्तियों की भावाकृति, केशविन्यास, वस्त्राभूषण आदि प्रशंसनीय हैं। विष्णु, पार्वती, ब्रह्मा, बुद्ध, बोधिसत्व, पाँचो प्रमुख तीर्थङ्कर तथा अन्य और तीर्थङ्कर आदि की मूर्तियाँ प्राप्त होती हैं। सारनाथ में प्राप्त धर्म-चक्र प्रवर्तन मुद्रा में भगवान बुद्ध की मूर्ति, कला का उत्कृष्ट नमूना है। इसी प्रकार संगीत कला को भी राज्याश्रय मिला। समुद्रगुप्त स्वयं महान् संगीतज्ञ था। रंगमंच का भी विकास हुआ था।

अन्त में हम देखते हैं कि गुप्तकाल में सभ्यता व संस्कृति का सर्वाङ्गीण विकास हुआ। यहाँ तक कि हिन्द-चीन, सुमात्रा, जावा, बाली, बोर्नियो आदि पूर्वी द्वीप समूहों तक भारतीय व्यापारी व सांस्कृतिक प्रचारक पहुँचे।

चीनी यात्री फाह्यान—फाह्यान एक चीनी यात्री था जो विनय-पिटक की हस्त-लिपि की खोज करता हुआ भारत आया था। भारत में वह खोतान, गान्धार, तक्षशिला होता हुआ पुरुषपुर अर्थात् पेशावर आया। यहाँ से उसने सिन्धु को पार किया और मथुरा की ओर बढ़ा। फिर कान्यकुब्ज, श्रावस्ती, कपिलवस्तु, वैशाली, पटना, राजगृह, गया, बनारस आदि घूमता हुआ पटना आ गया। अन्त में ताम्र लिप्ति (मिदना पुर जिले में) होता हुआ जहाज द्वारा लङ्का गया और लङ्का से जावा होते हुये चीन लौटा।

उसने भारत के सामाजिक जीवन, रहन-सहन, आर्थिक दशा आदि का सुन्दर विवरण दिया है। उसने पाटलीपुत्र का भी सुन्दर वर्णन किया है। देश के अनेक भागों में पर्यटन करने के कारण उसने बौद्ध भिक्षुओं के जीवन को भी देखा और उसका सजीव वर्णन किया है। ऊपर लिखित भारतीय सामाजिक, धार्मिक व आर्थिक जीवन फाह्यान के विवरण पर ही आधारित है।

अध्ययन के लिए संकेत

(१) गुप्त-वंश ने राष्ट्रीय पुनरुत्थान में पूर्ण सफलता पाई।

(२) चन्द्रगुप्त प्रथम ने स्वतन्त्र रूप से गुप्तवंश की स्थापना की। समुद्रगुप्त ने दिग्विजय कर साम्राज्य को बढ़ाया। चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य ने साम्राज्य का व जनजीवन का सर्वाङ्गीण विकास किया।

(३) गुप्तकाल इतिहास में स्वर्णयुग कहलाता है।

अभ्यासार्थ प्रश्न

(१) गुप्तवंश की उत्पत्ति और उसकी शक्ति के विकास पर प्रकाश डालिये।

1. Throw light on the origin & development of power of the Guptas.

प्रा यताल स [illegible]

(२) समुद्रगुप्त को भारतीय इतिहास में गौरवपूर्ण स्थान प्राप्त हैं, इसका विवेचन कीजिये।

2. Describe the important place held by Samudragupta in the History of India.

(३) गुप्तकालीन समाज व संस्कृति पर एक निबन्ध लिखिये। इसे इतिहास में स्वर्ण-युग क्यों कहा जाता है ?

3. Write an essay on the society and culture of the Guptas. Why is it called a golden age in the History of India ?

तेरहवाँ अध्याय

कन्नौज का उत्थान व पतन

(१) प्रस्तावना (२) हूणों का आक्रमण (३) पुष्य भूति वंश (४) हर्षवर्धन (५) तत्कालीन सामाजिक, धार्मिक एवं आर्थिक अवस्था।

प्रस्तावना—गुप्त साम्राज्य के ह्रास का अन्तिम फल यह हुआ कि कई शताब्दियों तक उत्तर व दक्षिणी भारत एक दूसरे से अलग हो गये। भारत कई छोटे-छोटे टुकड़ों में बँट गया और प्रत्येक राजवंश अपना आधिपत्य जमाने का प्रयत्न करने लगा। उत्तरी भारत में पुष्यभूति वंश तथा दक्षिणी भारत में चालुक्य वंश ने अपनी सत्ता स्थापित कर ली।

हूणों के आक्रमण:—लगभग ५०० ई० में पुनः हूणों ने भारत पर आक्रमण किया। ये लोग चीन के पश्चिमोत्तर भाग के मूल निवासी थे किन्तु चीनी दबाव के कारण इन्हें धीरे धीरे अपने स्थान से हटना पड़ा। ये लोग दो शाखाओं में विभक्त हो गये। एक शाखा ने तीव्र आक्रमण कर यूराल पर्वत को पार करते हुए लगभग आधे योरप पर अपना अधिकार जमा लिया। दूसरी शाखा ने हिन्दूकुश को पार कर भारत की ओर प्रस्थान किया। सन् ५०० ई० के आक्रमणकारी दल का नेता तोरमाण था। भारत अपनी एकता खो चुका था और छोटे छोटे निर्बल भागों में बँट चुका था। अतः तोरमाण का मार्ग सरल हो गया। उसने सीमान्त प्रदेश, पंजाब, तथा राजस्थान के ऊपरी भाग को जीता और फिर वह मध्यभारत की ओर बढ़ा। किन्तु ये इधर सफल न हो सके क्योंकि ५१० ई० में भानुगुप्त बालादित्य ने मालवा के शासक यशोधर्मन की सहायता से इन्हें खदेड़ दिया। तोरमाण के बाद उसके पुत्र मिहिरकुल ने पंजाब, काश्मीर आदि प्रान्तों पर राज्य किया। शैव होने के कारण उसने बौद्धों के साथ कड़ा वर्ताव किया। पुनः यशोधर्मन ने उसे हराया और पंजाब से बाहर निकाल दिया।

हूणों के आक्रमण के कारण गुप्त साम्राज्य छिन्न-भिन्न हो गया। अनेक प्रान्तीय राज्य स्थापित हो गये जिनमें कान्यकुब्ज का मौखरि-वंश व स्थाण्वीश्वर अथवा थानेसर का पुष्यभूति वंश था। पहले मौखरी वंश व पुष्यभूति वंश में सत्ता के लिए युद्ध होता रहा। मौखरि वंश की राजधानी कन्नौज थी और यहाँ के राजा ईशानवर्मन ने आन्ध्रों क तथा चालुक्यों को परास्त किया। पुष्यभूति वंश के शासकों ने इसका विरोध किया किन्तु बाद में विवाह सम्बन्ध से दोनों वंशों में मेल हो गया।

पुष्यभूति वंश:—हूणों के आक्रमण के समय पूर्वी पंजाब में पुष्यभूति वंश ने शक्ति स्थापित कर ली थी। इन्होंने थानेसर को अपनी राजधानी बनाई। इस वंश का

संस्थापक पुष्यभूति था, जो शिव का पक्का भक्त था। उसके बाद इस वंश के नरवर्धन, राज्यवर्धन प्रथम तथा आदित्यवर्धन राजा हुए, जो धीरे धीरे अपने राज्य का विस्तार करते रहे। इस वंश का सबसे शक्तिशाली शासक आदित्यवर्धन का पुत्र प्रभाकरवर्धन था। 'हर्षचरित' में कवि बाण ने प्रभाकरवर्धन का वृतान्त इस प्रकार दिया है–"प्रभाकरवर्धन हूण रूपी हरिण के लिये सिंह, सिन्धुराज के लिये ज्वर, गान्धार–राज रूपी हाथी के लिये घातक महामारी, गुर्जर देश की निद्रा को भङ्ग करने वाला, लाटों की पटुता को रोकने वाला और मालव देश रूपी लता की शोभा को नष्ट करने वाला परशु था।" उसने दिग्विजय की और फिर अपने को महाराजाधिराज तथा परमभट्टारक की उपाधि से सुशोभित किया।

प्रभाकरवर्धन के बाद उसका बड़ा पुत्र राज्यवर्धन द्वितीय सिंहासन पर बैठा। राज्यवर्धन बौद्धानुयायी था और बड़े मृदु स्वभाव का था। उसकी बहिन राज्यश्री का विवाह कान्यकुब्ज शासक ग्रहवर्मन से हुआ था। गौड़ के राजा शशांक ने ग्रहवर्मन पर आक्रमण किया तो राज्यवर्धन ने उसकी रक्षा की। ग्रहवर्मन मार डाला गया। राज्यवर्धन ने कान्यकुब्ज की रक्षा कर ली किन्तु स्वयं भी षडयन्त्रों का शिकार हुआ और मारा गया।

हर्षवर्धनः—इस प्रकार जब राज्यवर्धन का अन्त हुआ तो उसका छोटा भाई हर्षवर्धन उसके बाद सिंहासन पर बैठा। बचपन से ही उसकी शिक्षा अच्छी हुई थी। वह अपने भाई के साथ युद्ध में भाग लेने जाया करता था। अतः अल्पायु में ही राज्य-भार सम्भालने की उसमें क्षमता आ गई थी। वह बड़ा प्रतिभाशाली, शक्तिशाली एवं योग्य शासक था। उसके सामने सिंहासनारूढ़ होते ही अनेक समस्यायें उत्पन्न हो गई और सोलह वर्ष के शासक के लिये वास्तव में वे बड़ी समस्यायें थीं किन्तु अपनी योग्यता, बुद्धिमत्ता व साहस से उसने सब का मुक़ाबला सफलतापूर्वक किया।

सबसे पहले उसे अपनी बहिन राज्यश्री को ढूँढ़ना था। राज्यश्री कान्यकुब्ज पर शशांक के आक्रमण के समय ही विन्ध्याचल के जंगलों की ओर भाग निकली थी। जंगलों में ढूँढ़कर हर्ष ने राज्यश्री की रक्षा की और उसे अपने साथ ले आया। हर्षवर्धन ने कान्यकुब्ज के मन्त्रियों की सलाह से थानेसर व कान्यकुब्ज के राज्यों को मिलाकर एक कर लिया और राज्यश्री के साथ संयुक्त शासन स्थापित किया। अब उसने कन्नौज अपनी राजधानी बना ली। इस प्रकार हर्ष की शक्ति बहुत बढ़ गई और उसने साम्राज्य प्रसारण की योजना बनाई। कन्नौज की प्रतिष्ठा अब पाटलीपुत्र के समान बढ़ गई।

कन्नौज का सबसे बड़ा शत्रु गौड़ का राजा शशांक था। हर्ष के हृदय में प्रतिशोध की अग्नि प्रज्वलित हो रही थी वह शशांक की ही नहीं वरन गौड़ के राजा के वंश को संसार से मिटा देने की शपथ खा चुका था। अतः उसने आक्रमण के लिये

सेना तयार की। आसाम का राजा भास्कर वर्मा शशांक का पड़ौसी था और उसका शत्रु भी। उसने सबसे पहले हर्षवर्धन का आधिपत्य स्वीकार किया। हर्ष ने शशांक के साथ कई युद्ध किये। वह उसे पूर्णतया पराजित नहीं कर सका किन्तु उत्तरी बङ्गाल पर अपना
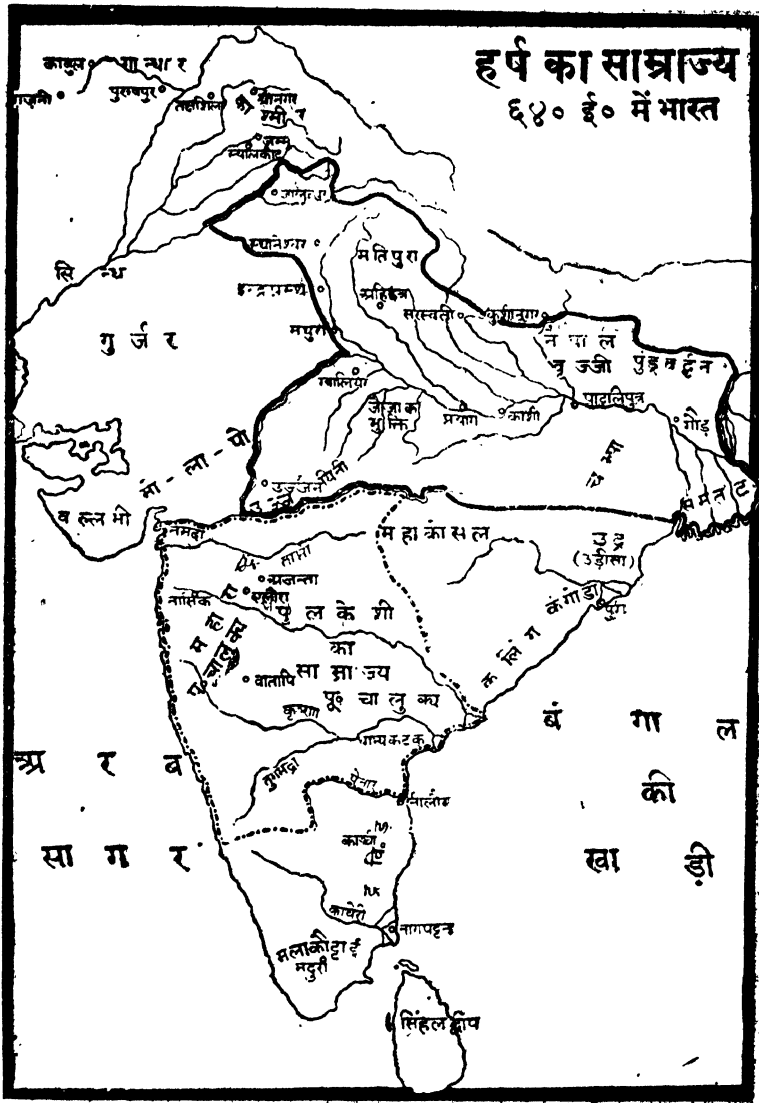
कब्जा करके उसने उसे दक्षिणी-पूर्वी बङ्गाल तक सीमित कर दिया। फिर हर्षवर्धन ने मालवापर अपना अधिकार जमाया। हर्ष ने ६ वर्ष तक उत्तरी भारत को रौंधा और लगभग समस्त प्रदेश को अपने आधिपत्य में कर लिया।

इसके बाद हर्ष ने अपना ध्यान दक्षिण की ओर दिया। दक्षिण का प्रतापी राजा चालुक्य-वंशी पुलकेशिन द्वितीय था। नर्बदा के मैदान में घमासान युद्ध हुआ। हर्ष की सेना को पुलकेशिन ने बुरी तरह पराजित किया। अब यह बात स्थापित हो गई कि नर्बदा नदी उत्तर व दक्षिण की सीमा रेखा का काम करेगी। ऐसा भी माना जाता है कि हर्ष ने पुनः एक बार दक्षिण में आक्रमण किया था और उसकी सेना कुन्तल तथा काञ्ची तक पहुँच गई थी। हर्ष ने एक विस्तृत साम्राज्य की स्थापना की थी। उसका राज्य उत्तर में काश्मीर और नेपाल से लेकर दक्षिण में नर्मदा नदी तक तथा पश्चिम में सौराष्ट्र से पूर्व में आसाम तक प्रसारित था। वह उत्तरी भारत का स्वामी था, जिसके कारण उसे "सकलोत्तरापथ नाथ" अर्थात् सारे उत्तर भारतवर्ष में स्वामी की उपाधि प्राप्त हुई थी।

हर्ष ने गुप्त शासकों की भाँति एक सुसंगठित व सुव्यवस्थित शासनप्रणाली स्थापित की। उसने गुप्त शासन-पद्धति का ही अनुकरण किया केवल अपनी सुविधा-नुकूल हेर-फेर कर लिया। वह एकतान्त्रिक शासक था। हर्ष शिव भक्त था। अतः उस भी अशोक की भाँति शासन को आदर्शवादी बनाया। अपने शासन के अन्तिम काल वह बौद्ध धर्म से प्रभावित हो गया था और दिन-रात शासन कार्य में लगा रहता था राज्य के छोटे से छोटे कार्य को वह स्वयं सम्भालता था। वह वेश बदल कर जनता के छोटे-छोटे कष्टों की जानकारी करता था। अपने केन्द्रीय शासन को उसने कई विभागों में बाँट रखा था। प्रत्येक विभाग का एक अध्यक्ष होता था। राजा को राज्य-कार्य में मन्त्रि परिषद सहायता करता था। उसने सारे राज्य को राष्ट्र, देश व मण्डल में विभक्त किया राष्ट्र को कई प्रान्तों में बाँटा गया जो भुक्ति कहलाये। भुक्ति को विषयों में और विषय को पठकों में तथा पठक को गाँवों में विभाजित किया गया। इनमें अनेक उच्च अधिकारी जैसे उपरिक महाराज, गोप्ता, भोगपति, राजस्थानीय, राष्ट्रीय तथा राष्ट्रपति होते थे जिनकी नियुक्ति स्वयं सम्राट करता था।

सरकारी आय के कई साधन थे, जिसके लिए राजस्व विभाग था। भूमि कर, अतिरिक्त कर, धान्य, हिरण्य आदि कई आय के साधन थे। न्यायालयों से भी आमदनी होती थी। जनता पर हलके कर लगाये जाते थे। भूमि की उपज का छठा भाग लिया जाता था। सरकार की ओर से भूमि सिंचाई का भी समुचित प्रबन्ध था। ह्वेनसांग के अनुसार, "राज्य की भूमि के चार भाग थे, एक भाग धार्मिक कामों और सरकारी कार्यों में खर्च होता था, दूसरा भाग सार्वजनिक अधिकारियों के ऊपर, तीसरा भाग विद्वानों को पुरस्कार और वृत्तियाँ देने में और चौथा दान-पुण्य आदि में।" न्याय की व्यवस्था भी सुन्दर थी। सामान्य अपराध के लिये अर्थदण्ड और सामाजिक नीति के विरुद्ध अपराध करने पर अङ्ग-भङ्ग, देशनिकाला आदि प्रकार के दण्ड का विधान था। फौजदारी कानून कड़ा था। अग्नि परीक्षा, जल परीक्षा, विष परीक्षा आदि का भी प्रयोग होता था।

हर्ष ने अनेक लोकोपकारी कार्य किये। उसने अनेक मन्दिर, चैत्य बिहार, स्तूप आदि बनवाये, सड़कों की रक्षा की और नई सड़कें बनवाईं। शिक्षा को भी राज्य के उत्तरदायित्व का रूप दिया। धार्मिक और सामाजिक कामों में अतुल सम्पत्ति व्यय की जाती थी। ह्वेनसांग ने उल्लेख किया है कि हर्ष प्रति पाँचवें वर्ष प्रयाग जाता था और समस्त धन सम्पत्ति बाँट दिया करता था।

हर्ष ने विशाल साम्राज्य की रक्षा के लिये एक बड़ी सेना, जिसमें लगभग ६ लाख सैनिक थे, स्थायी रूप से रख रखी थी। इस सेना में पैदल, अश्वारोही तथा हाथी भी थे। इस समय शायद रथ का प्रयोग नहीं के बराबर होता था। समय पड़ने पर अस्थाई सैनिक भी बुला लिए जाते थे। सेना के अध्यक्ष को महासन्धि विग्रहाधिकृत कहते थे। पुलिस तथा रक्षा विभाग भी सुसंगठित था, फिर भी शान्ति व सुव्यवस्था गुप्तों की तुलना में कम थी। चीनी यात्री फाह्यान निर्भीक होकर देश के एक कोने से दूसरे कोने तक घूमा, जब कि ह्वेनसाँग को रास्ते में कई बार लूट लिया गया।

तत्कालीन सामाजिक, धार्मिक व आर्थिक अवस्था:—

सामाजिक अवस्था:—इस समय भी वर्ण और आश्रम व्यवस्था पर समाज आधारित था। चार वर्ण के अतिरिक्त ह्वेनसाँग के अनुसार एक पाँचवीं मिश्रित जाति भी उत्पन्न हो गई थी। ब्राह्मण का समाज में उच्च स्थान था और वह राज्य कार्य में भाग लेता था। ह्वेनसाँग के अनुसार क्षत्रिय सरल, निर्दोष एवं मितव्ययी जीवन व्यतीत करते थे, वैश्य वाणिज्य-व्यापार में लगे हुए थे और शूद्र—जिनकी दशा पहले से सुधर गई थी—कृषि कार्य में लगे हुए थे। "मिश्रित जातियों की उत्पत्ति अनुलोम तथा प्रतिलोम विवाहों से हुई थी।" अछूत जिनमें मेहतर, कसाई, मछुए, नट, चांडाल आदि शामिल थे, नगर के बाहर रहते थे और अपने घरों पर एक विशेष चिह्न लगा कर रखते थे। स्वजाति विवाह प्रचलित थे और सती प्रथा भी प्रचलित थी। बहुपत्नित्व का भी प्रचार था।

अधिकांश जनता श्वेत वस्त्र पहनती थी और वस्त्र संख्या में कम होते थे। अनेक प्रकार के आभूषण जैसे हार, कुण्डल, कड़ा आदि प्रयोग में लाये जाते थे। मांस, लहसुन, प्याज आदि का प्रयोग निषिद्ध था। भोजन के प्रधान अङ्ग घी, दूध, दही, चीनी, मिश्री, रोटी आदि थे। प्रचलित मनोरंजन के साधनों में शतरंज तथा पासे का खेल था, और गाँव में मदारी तथा नट अपनी कला दिखाते थे। ऐसा अनुमान लगाया जाता है कि हर्ष कालीन समाज नाटकों के अभिनय में अवश्य ही बढ़ा चढ़ा था। 'प्रियदर्शिका' तथा 'रत्नावली' में चैत्र की पूर्णिमा को बसन्तोत्सव मनाने का उल्लेख है। यद्यपि स्त्रियाँ संगीत, नृत्य, चित्रकला तथा शिक्षा आदि में उन्नतिशील थीं किन्तु उनकी दशा शोचनीय थी। राजघरानों में इनकी दशा और भी दयनीय थी।

धार्मिक व्यवस्था:—इस समय बौद्ध धर्म में महायान सम्प्रदाय महत्वपूर्ण होता जा रहा था। सम्राट हर्ष भी उस सम्प्रदाय पर ही कृपा रखते थे। बौद्ध धर्म मठों और विहारों में सक्रिय था। ब्राह्मण धर्म के प्रमुख केन्द्र प्रयाग व वाराणसी थे। मन्दिरों में आदित्य, शिव और विष्णु की मूर्तियाँ प्रतिष्ठित की जाती थीं। अब शैव धर्म का रूप विकृत होता ज. रहा था। कन्नौज में भी ब्राह्मण धर्म विकसित हो रहा था। जैन धर्म अब केवल वैशाली पुण्ड्रवर्धन तथा समतट तक ही सीमित रह गया था और यहाँ भी दिगम्बर सम्प्रदाय का ही जोर था। ह्वेनसांग ने जैनों के बारे में बहुत कम विवरण दिया है।

आर्थिक दशा:- जनता का प्रमुख व्यवसाय कृषि था। किन्तु अब चूंकि वैश्य व्यापार तथा वाणिज्य की ओर अधिक आकृष्ट हो रहे थे, अत: कृषि कार्य शूद्रों तक ही सीमित होता जा रहा था। सरकार की ओर से सिंचाई की पर्याप्त व्यवस्था व सुविधा थी। चरागाह के लिये भी भूमि छोड़ी जाती थी। देशीय तथा अन्तर्देशीय व्यापार उन्नत था। बंगाल में ताम्रलिपि नामक बन्दरगाह था। पाटलिपुत्र से भड़ौंच तक के राजमार्ग से काफी व्यापार होता था। चीन और मध्य एशिया से काश्मीर के मार्ग से व्यापार होता था। जलमार्ग से भी काफी व्यापार होता था।

हर्षकालीन शिक्षा, साहित्य एवं कला:—ह्वेनसांग ने इस काल में भारतीय शिक्षा की बड़ी प्रशंसा की है। उसने कहा है कि सात वर्ष की अवस्था से ही बालक को वैद्यक, तर्कशास्त्र, व्याकरण, याँत्रिक कला, और दर्शनशास्त्र की शिक्षा दी जाती थी। उसने अनेक शिक्षा केन्द्रों का भी वर्णन किया है जिनमें वलभी का हीनयान विश्वविद्यालय तथा नालंदा का महायान विश्वविद्यालय विशेष थे। ह्वेनसांग के यात्रा के सयय नालंदा में दस सहस्र विद्यार्थी थे, जो संसार के प्रत्येक भाग से एकत्रित हुए थे। यहाँ निशुल्क शिक्षा के अतिरिक्त विद्यार्थियों के भोजन वस्त्र की भी व्यवस्था थी। आचार्य शीलभद्र यहां के कुलपति थे। इनसे पूर्व पिंगनाथ, स्थिरमति तथा धर्मपाल यहां के प्रसिद्ध पंडित या आचार्य रह चुके थे। सह शिक्षा थी किन्तु कक्षा में छात्रा छात्र से बात नहीं कर सकती थी। बाहर बात करने की आज्ञा थी। शिक्षा का माध्यम संस्कृत था। नालन्दा विश्वविद्यालय तथा वहां के छात्र अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त कर रहे थे ह्वेनसांग ने मठों और विहारों की कलात्मक सुन्दरता की प्रशंसा की है। उसने बुद्ध भगवान की आठ फिट ऊँची ताम्र मूर्ति की सराहना की है। सीरपुर राजपुर जिले में लक्षण का ईंटों वाला मन्दिर, हर्ष के समय की भवन निर्माण-कला का उत्कृष्ट नमूना है।

हर्ष साहित्य प्रेमी था। उसने वाण भट्ट को राज्याश्रय दिया। बाण के सम्बन्धी मयूर को भी हर्ष ने आश्रय दिया। मयूर ने अष्टक की रचना की। यह निश्चय पूर्वक नहीं कहा जा सकता कि. कवि भर्तृहरी को भी हर्ष ने आश्रय दिया था। हर्ष ने स्वयं 'रत्नावली' 'प्रियदर्शिका' तथा "नागानन्द" की रचना की।

ह्व नसांगः—चीनी बौद्ध यात्रियों में ह्व नसांग का सबसे ऊँचा स्थान है। ह्वेन-सांग ने हर्ष के समय में भारत की यात्रा की। यह गोबी तथा खोतान के रेगिस्तान से होता हुआ अफगानिस्तान पहुँचा और सन् ६२९ ई० में खैबर के दर्रे से भारत में आया। यह भारत में १५ वर्ष ठहरा और इसने लगभग सभी महत्वपूर्ण स्थानों की यात्रा की। भारत से वह सन् ६४४ ई० में चला गया। यह कुछ उदार विचारों का था अतः फाह्यान के विपरीत इसने अनेक राजसभाओं में व बौद्ध धर्म के अतिरिक्त अन्य कई बातों में भी भाग लिया। "सी-यूकी" नामक पुस्तक में उसने भारत का विवरण दिया है तथा भारतीय सामाजिक, राजनैतिक तथा सांस्कृतिक दशा का विस्तृत वर्णन किया है। उपर्युक्त विवरण ह्व नसांग के वर्णन पर ही आधारित है।

अध्ययन के लिए संकेत

(१) गुप्त साम्राज्य के ह्रास से भारत उत्तर व दक्षिण दो भागों में विभाजित हो गया।

(२) हर्षकालीन भारत से पूर्व भारत में हूणों के अनेक भयङ्कर आक्रमण हुए।

(३) हर्षवर्धन पुष्यभूति वंश का था और यह इस वंश का सबसे प्रतापी राजा था।

(४) हर्ष ने साम्राज्य का खूब प्रसार किया और सब समस्याओं को साहस से आसान कर लिया।

(५) सम्राट हर्षवर्धन का शासन प्रबन्ध गुप्तों की तरह एकतान्त्रिक व सुसंगठित व साहित्यिक था।

(६) इस काल में सामाजिक, व आर्थिक क्षेत्र में बड़ी प्रगति हुई।

(७) चीनी यात्री ह्व नसांग बौद्ध चीनी यात्रियों में सबसे प्रमुख था।

अभ्यासार्थ प्रश्न

(१) हर्षवर्धन के दिग्विजय और शासन प्रबन्ध का वर्णन कीजिये।

1. Discuss the Conquests and administration of Harhvardhan.

(२) हर्षकालीन सामाजिक, धार्मिक व सांस्कृतिक दशा जैसी कि हेनसांग के विवरण से मालुम होती है लिखिये।

2. Describe the Social, Religious and cultural conditon of India during the times of Harshvardhan as known from the description given by Hieun-Tsang.

चौदहवां अध्याय

भारतीय राजनैतिक संगठन का ह्रास

(प्रान्तीय राज्य)

(१) प्रस्तावना (२) उत्तर भारत के राज्य : नेपाल : पश्चिमोत्तर : मध्य प्रदेश पूर्वोत्तर (३) दक्षिण भारत (४) सुदूर दक्षिण ।

प्रस्तावना:—महाराज हर्षवर्धन की मृत्यु के बाद राजनैतिक एकता छिन्न भिन्न होगई । अब सम्पूर्ण भारत को अथवा उत्तरी भारत को अथवा देश के बड़े भूभाग को एक छत्रछाया में संगठित करने की क्षमता किसी में नहीं रही । राजनैतिक एकता का आदर्श लुप्त प्राय होने लगा । समस्त देश छोटे छोटे प्रान्तों में विभाजित हो गया और उनमें स्थानीयता तथा वंश का आदर्श जोर पकड़ने लगा । इसका परिणाम विदेशियों के आक्रमण के रूप में सामने आया । किसी प्रान्तीय राज्य में उस आक्रमण का सामना करने की शक्ति नहीं थी । फलत: देश को अपनी स्वतन्त्रता से हाथ धोना पड़ा ।

उत्तर भारत के राज्य:—(१) **नेपाल**—उस समय नेपाल का राज्य उत्तर प्रदेश व बिहार के उत्तर में तथा काश्मीर के पूर्व में लगभग ५०० मील की लम्बाई में फैला हुआ था । प्रारम्भ से ही नेपाल का भारत के साथ भौगोलिक, राजनैतिक व सांस्कृतिक सम्बन्ध प्रचुर मात्रा में बना रहा है । अशोक कालीन भारत में नेपाल मगध राज्य का अंग था । इसी प्रकार गुप्त व पुष्यभूति युग में भी नेपाल भारत का ही अंग था। हर्ष की मृत्यु के बाद वहाँ लिच्छवी वंश की स्थापना हुई । बारहवीं शताब्दि के आसपास वहाँ तिरहुत के कर्णाट वंश की स्थापना हुई । मुसलमान आक्रमणकारी नेपाल को दबाने में सफल नहीं हुए । आधुनिक राजवंश की स्थापना वहाँ पर १७६८ ई० में हुई थी ।

काश्मीर:—काश्मीर पंजाब के उत्तर में स्थित है । किसी समय यहाँ गोनन्द-वंश का राज्य था । सातवीं शताब्दि के उत्तरार्द्ध में नागवंश की स्थापना हुई । इस वंश के प्रतापी राजा ललितादित्य मुक्तापीड़ ने यशोवर्मन को हराया था और उसने विद्वानों व साहित्यकारों को अपने राज्य में आश्रय दिया था । इस वंश के बाद उत्पल वंश आया । इस काल में काश्मीर अपने वैभव को खो रहा था । इस वंश के एक मंत्री पर्वगुप्त ने काश्मीर पर कब्जा कर लिया । महमूद ग़जनवी ने राजा संग्राम के समय में असफल आक्रमण किया था । उसके बाद का काश्मीर का इतिहास 'विलासिता, अत्याचार, शोषण आदि का इतिहास है ।" सन् १३३९ में एक नव मुस्लिम शमसुद्दीन ने काश्मीर में मुस्लिम सल्तनत की स्थापना की ।

सिन्ध:—सिन्ध में शूद्र वंश का राज्य था। इसकी राजधानी एलोर थी। हर्ष के बाद भी यह वंश लगभग चार पीढ़ियों तक सिन्ध में राज्य करता रहा। अन्तिम शासक को उसके मंत्री चच ने, जो ब्राह्मण था, नष्ट करके अपना राज्य स्थापित किया। चच के बाद इसका पुत्र दाहिर सिंहासन पर बैठा। इस दाहिर के समय में ही अरबों ने ७१२ ई० में आक्रमण किया और सिन्ध पर अपना आधिपत्य स्थापित कर लिया।

पंजाब व काबुल:—यहाँ पर कुषाणों के वंशज शाही वंश का राज्य था। शाही क्षत्रिय थे और ये दो राजधानियों में राज्य करते थे—काबुल तथा भटिंडा। इन्होंने अरबों को आगे बढ़ने से रोका था। महमूद ग़ज़नवी के आक्रमण को ये लोग नहीं रोक सके थे। इस वंश के अन्तिम शासक जयपाल तथा आनन्दपाल ने मुहम्मद गौरी का मुक़ाबला किया था किन्तु अन्त में उन्हें पराजित होना पड़ा था।

मध्य देश के राज्य:—मध्य देश के राज्यों में प्रमुख राज्य मौखरी, आयुध, प्रतिहार, गढ़वाल, चाहमान, चन्देल, कलचुरी, परमार तथा चालुक्य-सोलंकी की गणना की जाती है।

मौखरी:—कान्यकुब्ज में हर्ष के बाद मौखरी वंश पुनः शक्तिशाली हो गया। आठवीं शताब्दि में इस वंश में यशोवर्मन नामक बड़ा प्रतापी तथा यशस्वी शासक हुआ। उसने अनेक प्रान्तों पर विजय पाई। इन विजित प्रान्तों में विशेषतया मगध, वंग, मलय, महाराष्ट्र सौराष्ट्र, मरु, पंजाब तथा हिमाचल प्रदेश थे। उसने कला और साहित्य को भी प्रोत्साहन दिया। भवभूति, वाक्पतिराज आदि महाकवि उसके दरबारी थे। काश्मीर के शासक ललितादित्य मुक्तापीड़ ने उसे बुरी तरह पराजित किया और इससे मौखरी शक्ति का ह्रास प्रारम्भ हो गया।

आयुध:—यशोवर्मन के बाद वज्रायुध, इन्द्रायुध और चक्रायुध नामक तीन शासक हुए। अवन्ति के प्रतिहार, बंगाल के पाल तथा महाराष्ट्र के राष्ट्रकूट उत्तरी भारत में आधिपत्य जमाने के लिए आपस में लड़े। प्रतिहारों के राजा नागभट्ट ने चक्रायुध को सन् ८१६ ई० में परास्त किया और कान्यकुब्ज पर अपना अधिकार कर लिया। अबसे लगभग १३ वीं शताब्दि के प्रारम्भ तक कान्यकुब्ज अथवा कन्नौज उत्तरी भारतवर्ष की राजधानी बना रहा।

प्रतिहार:—ये लोग गुर्जर-प्रतिहार के नाम से भी प्रसिद्ध हैं क्योंकि इनकी उत्पत्ति लगभग छठी शताब्दि में राजपूताना के दक्षिण-पश्चिम भाग में हुई थी। इन्होंने धीरे धीरे अपनी शक्ति को बढ़ाते हुए अवन्ति व उत्तरी गुजरात पर अपना आधिपत्य स्थापित कर लिया। इन्होंने अरबों को सिन्ध से आगे पंजाब की ओर नहीं बढ़ने दिया। इन्होंने पाल और राष्ट्रकूटों से युद्ध करके कान्यकुब्ज पर अपना आधिपत्य स्थापित कर लिया। यहां का प्रतिहार साम्राज्य संस्थापक नागभट्ट द्वितीय भी बड़ा प्रतापी शासक

हुआ है। उसका पुत्र रामभद्र विशेष शक्तिशाली नहीं था। किन्तु उसका पुत्र मिहिरभोज बड़ा विजयी शासक हुआ। उसने ही अरबों को रोका तथा राष्ट्रकूटों को दबाया। इस वंश में महेन्द्रपाल तथा महीपाल भी प्रतापी शासक हुए। दसवीं शताब्दि के अन्त में राज्यपाल सिंहासन पर बैठा। उसे महमूद गज़नवी का सामना करना पड़ा और अपनी कायरता के कारण उसे आधीनता स्वीकार करनी पड़ी। इसके बाद जेजाक-भुक्ति के चंदेल राजा ने उसे मारकर उसके लड़के त्रिलोचनपाल को सिंहासन पर बिठलाया। महमूद गज़नवी ने पुनः कन्नौज पर आक्रमण किया और त्रिलोचनपाल भाग गया। हमें सन् १०३६ ई० में यशस्पाल का उल्लेख मिलता है और इसके बाद का हमें कुछ भी हाल नहीं मिलता है।

गहड़वाल:—जिस समय प्रतिहार वंश का पतन हो रहा था और उत्तरी भारत में अराजकता फैल रही थी, उत्तर प्रदेश में मिरजापुर जिले में गहड़वाल वंश का उत्थान हुआ। गहड़वाल अपने को 'चन्द्रवंशियां की सन्तान मानते थे। सन् १०५० में इस वंश के शासक चन्द्रदेव ने कन्नौज पर अधिकार कर लिया। इसने तुर्कों से काशी, कोशल तथा इन्द्रप्रस्थ की रक्षा की। इसके पोते गोविन्द्रचन्द्र ने राज्य का विस्तार किया और तुर्कों से भारत की रक्षा की। यह बड़ा दानी तथा विद्वान व कलापारखी शासक था। जयचन्द्र इसका पोता था जो ११७० में गद्दी पर बैठा। यह एक महान सैनिक तथा विजेता था। सैन्य-बल से विजय करने के बाद उसने राजसूय यज्ञ किया। यह भी कवियों व विद्वानों को राज्याश्रय देता था। महाकवि श्री हर्ष इसका दरबारी था। 'नैषध–चरित' और 'खण्डन-खण्ड-काव्य' जैसे प्रसिद्ध ग्रन्थों की रचना श्री हर्ष ने की थी। तुर्कों के आक्रमण के समय गहड़वाल तथा अजमेर के चौहानों में शत्रुता थी और ११६३ के गौरी के अजमेर आक्रमण के समय में जयचन्द्र ने तुर्कों का साथ दिया था। इस पर भी सन् ११६४ ई० में गौरी ने कन्नौज पर आक्रमण कर जयचन्द्र को परास्त किया। अन्त में १२२५ ई० अल्तमश ने आक्रमण कर इस वंश को समाप्त कर दिया।

चाहमान:—हर्ष के साम्राज्य के पतन के बाद राजस्थान में शाकम्भरी के पास सूर्यवंशी चाहमान अथवा चह्वान वंश का उदय हुआ। इस वंश ने राजस्थान, पूर्वी पंजाब और दिल्ली के आसपास अपना आधिपत्य जमा लिया। इस वंश के बीसलदेव ने हिमालय की तराई तक अपना साम्राज्य बढ़ाया। यह एक महान् कवि और लेखक था जिसने 'हरकेलि' नाटक की रचना की। इसके दरबारी कवि सोमदेव ने एक अन्य नाटक 'ललित विग्रह राज' की रचना की। इन नाटकों के अंश अजमेर के 'अढ़ाई दिन का झौंपड़ा' में लगे हुए पत्थरों पर आज भी खुदे हुए विद्यमान हैं। इस वंश का यशस्वी व प्रतापी शासक पृथ्वीराज हुआ। इसके राजकवि चन्द वरदाई ने 'पृथ्वीराजरासो, की रचना की। सन् ११९१ ई० में महम्मद गौरी ने चौहानों पर आक्रमण किया।

पृथ्वीराज ने हिन्दू राजाओं के एक विशाल संघ का नेतृत्व करते हुए तराइन अथवा 'तलावड़ी' के मैदान में तुर्कों का मुकाबला किया और प्रथम बार तुर्को को बुरी तरह परास्त किया। किन्तु दूसरी बार गहड़वालों की पारिवारिक शत्रुता के कारण हिन्दू संघ दुर्बल होगया और पृथ्वीराज परास्त होकर मारा गया। अजमेर और दिल्ली पर तुर्कों का शासन होगया। पृथ्वीराज के भाई हरीराज ने एक बार पुनः चौहानों की स्वतंत्रता को स्थापित किया किन्तु कुतुबुद्दीन ऐबक ने अजमेर पर आक्रमण कर चौहानों का नाश कर दिया।

चन्देल: नवीं शताब्दी के प्रारम्भ में बुंदेलखंड में चन्देलों का उदय हुआ। ये लोग प्रतिहारों के आधीन थे और धीरे धीरे इन्होंने खजराहो में अपनी स्वतंन्त्र राजधानी स्थापित की। इनके राजा यशोवर्मन ने चेदि, मालवा, महाकोशल आदि स्थानों पर आधिपत्य स्थापित किया। इसका पुत्र धंग १० वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में प्रतापी शासक हुआ है। उसका पुत्र गंड भी शक्तिशाली था। इस वंश में कीर्ति वर्मा विद्या और कला का आश्रयदाता हुआ है। कुतुबुद्दीन ऐबक ने १२०३ ई० में इस राज्य को छिन्न भिन्न कर दिया, किन्तु फिर भी छोटा सा चन्देल राज्य अकबर के समय तक चलता रहा।

कलचुरी:—इस राज्य की राजधानी जबलपुर के पास त्रिपुरी थी और यहां चेदि वंश का राज्य था। इस वंश के प्रसिद्ध राजा गांगेय देव ने विक्रमादित्य की उपाधि ली। चालुक्यों के दबाव से यह वंश १२ वीं शताब्दी में समाप्त हो गया।

परमार:—मालवा में प्रतिहारों की शक्ति क्षीण होने पर परमारों का उदय हुआ। इन्होंने आबू के आसपास के क्षेत्र को तुर्कों से बचाने की शपथ ली थी। इस राज्य को वाम्पति मुंज ने बढ़ाया। उसने चेदि, लाट, कर्नाटक, चोल, केरल, चालुक्य आदि को हराया। अन्त में वह चालुक्यों द्वारा बन्दी होने पर मारा गया। वह बड़ा विजेता, विद्वान् और विद्वानों का आश्रयदाता था। उसका भतीजा भोज इस वंश का लोक प्रसिद्ध शासक हुआ है। उसने कल्याणी के चालुक्य तथा चेदि, कान्यकुब्ज, वाराणसी और पश्चिमी बिहार तक विजय प्राप्त की। इसने तुर्कों को गुजरात से मार भगाया। किन्तु चालुक्यों और चेदियों ने उसकी राजधानी 'धार' पर आक्रमण कर उसे मार डाला। भोज का भारतीय इतिहास व साहित्य में बड़ा ऊँचा स्थान है। उसे कविराज की उपाधि थी। उसने अनेक भवनों, राजप्रासादों और विद्यालयों का निर्माण किया। उसने प्रसिद्ध 'भोज सागर' तालाब बनवाया और साहित्य, व्याकरण, धर्म, दर्शन, गणित, वैद्यक, वास्तुकला, कोष, नाट्य शास्त्र तथा रीति शास्त्र आदि पर अनेक ग्रन्थ लिखे। १३०५ ई० अलाउद्दीन खिलजी के सेनापति ने इस राज्य का अन्त किया।

चालुक्य सोलंकी:—परमारों के पश्चिम-दक्षिण में गुजरात के चालुक्यों अथवा सोलंकियों का राज्य था। प्रसिद्ध राजा मूलराज ने गुजरात को जीता और

चौहानों तथा परमारों से लोहा लिया। वह शैव था, उसने बहुत से मन्दिर बनवाये तथा विद्वानों को आश्रय दिया। इस वंश के शासक भीम को महमूद ने परास्त किया। प्रसिद्ध शासक कुमार पाल के समय में जैन विद्वान् हेमचन्द सूरी हुए जिन्होंने धर्म दर्शन और व्याकरण के अनेक ग्रन्थ लिखे। उसने सोमनाथ के मन्दिर की भी मरम्मत कराई। अलाउद्दीन के सेनापति उलुगखां ने १३ वीं शताब्दी के अन्त में इस वंश का अन्त कर दिया।

पूर्वोत्तर

बंगाल:—बंगाल में आठवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में एक योद्धा गोपाल ने 'पाल वंश' की स्थापना की। उसके लड़के धर्मपाल ने प्रतिहारों और राष्ट्रकूटों को हराकर उत्तरी भारत में अपना आधिपत्य स्थापित किया। कन्नौज के चक्रायुध को भी उसने दास बनाया। वह बौद्ध था, जिसने अनेक चैत्य बिहार तथा भागलपुर का प्रसिद्ध 'विक्रमशिला महाबिहार' बनाया। उस का पुत्र देवपाल भी बड़ा यशस्वी तथा बौद्ध धर्म का समर्थक था। इस वंश के अन्तिम राजाओं में रामपाल सब से अधिक शक्तिशाली व प्रतापी हुआ। उसका सभाकवि 'सन्ध्याकर नन्दी' था जिसने 'राम चरित' में इसका वृतान्त लिखा है। पूर्व में सेनों के दबाव से तथा पश्चिम में गहड़वाल के आक्रमण से यह वंश दबता ही चला गया।

सेन वंश ११ वीं शताब्दी के अन्त में सामन्त सेन द्वारा बंगाल के पूर्व में स्थापित किया गया। इस वंश के लक्ष्मण सेन ने आसाम और कलिंग पर आक्रमण कर प्रयाग और काशी में जय स्तम्भों की स्थापना की। उसने गौड़ अथवा लक्ष्मणावती को अपनी राजधानी बनाया। वह भी विद्वानों तथा कवियों का आश्रयदाता था। उसकी सभा में, पवन दूत, के लेखक कवि 'धोइक' तथा 'गीत गोविन्द, के रचयिता जयदेव थे। कुतुबुद्दीन के सेनापति बख्त्यार ख़िलजी ने इस वंश को समाप्त किया।

उडीसा:—आठवीं शताब्दी के प्रारम्भ में कलिंग में 'गांगवंश' की स्थापना हुई। यहाँ के शासक आसाम, बंगाल और पूर्वी चालुक्यों से लड़ते रहे। इस वंश के प्रसिद्ध राजा अवन्ति वर्मन ने पुरी के प्रसिद्ध विष्णु मन्दिर को बनवाया। उड़ीसा में केशरी वंश ने ८ वीं शताब्दी के प्रारम्भ में राज्य स्थापित कर भुवनेश्वर को अपनी राजधानी बनाया। इस वंश की महती देन, कला और धर्म के क्षेत्र में है। प्रसिद्ध राजा लिंगराज ने अपने नाम का एक विशाल मन्दिर बनवाया। १३ वीं शताब्दी में यहां तुर्कों का शासन होगया।

आसाम:—बंगाल के पूर्व में कामरूप राज्य था। इस की राजधानी प्राग्ज्योतिषपुर थी। हर्ष के समय में यहाँ भास्कर वर्मन राज्य करता था। इस वंश का 'पाल वंश' से निरन्तर संघर्ष रहा। १३ वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में यहाँ 'अहोम' जाति का आधिपत्य रहा, जो १९ वीं शताब्दी के प्रारम्भ तक राज्य करते रहे। इस जाति के पीछे ही यहाँ का नाम आसाम पड़ा।

दक्षिण भारतः—दक्षिण भारत में आन्ध्र तथा वाकाटक वंश के समाप्त होते ही छोटे छोटे राज्य उत्पन्न होगये जो आपस में लड़ते झगड़ते रहे।

वातापी के चालुक्यः—चालुक्य शासक उत्तरी भारत के ही क्षत्रिय थे जो राजस्थान, मालवा तथा गुजरात की ओर से कर्नाटक पहुँचे थे। इस वंश के प्रथम राजा जयसिंह ने राष्ट्रकूटों और कदम्बों को दबाकर एक छोटे राज्य को स्थापित किया था। इसके बाद कई राजाओं ने चालुक्यों के राज्य का विस्तार किया। पुलकेशिन प्रथम ने वातापी को अपनी राजधानी बनाया। पुलकेशिन द्वितीय इस वंश का सबसे प्रतापी राजा हुआ। उसने पृथ्वीवल्लभ—सत्याश्रय की उपाधि ग्रहण की और अपने पड़ौसी राज्यों से युद्ध करके सम्पूर्ण दक्षिण पर अपना आधिपत्य स्थापित कर लिया। उसने हर्षवर्धन को भी युद्ध में परास्त किया। उसने फारस तथा एशिया के पश्चिमी देशों से दौत्य सम्बन्ध स्थापित कर रखे थे। स्वयं ह्वेनसांग इसके दरबार में गया था। उसने पुलकेशिन की प्रजाभक्ति की सराहना की है। यह जैन धर्म से प्रभावित था तथा कला व विद्या का आश्रयदाता था। प्रसिद्ध कवि रविकीर्ति उसका दरबारी था। उसके समय के बहुत से मन्दिर, चैत्य तथा चित्रकला के नमूने पाये जाते हैं। अन्य शासकों के समय में चालुक्य राजा की शक्ति का ह्रास होता चला गया।

राष्ट्रकूटः—आठवीं शताब्दी के मध्य में चालुक्यों के स्थान पर राष्ट्रकूटों के राज्य की स्थापना हुई। प्रथम शासक दन्तिदुर्ग ने चालुक्यों से वातापी छीन लिया और दक्षिण में एक बड़े राज्य की स्थापना की। इसका चाचा 'प्रथम कृष्ण', जो इसके बाद हुआ, इलौरा के प्रसिद्ध कैलाश मन्दिर का निर्माता था। राजा ध्रुव ने काँची के पल्लवों को हराया और मालवा के प्रतिहारों को हराती हुई उसकी सेना हिमालय तक पहुँच गई। अन्य शासकों में प्रथम अमोघवर्ष प्रसिद्ध हुआ है। इसने मयूर खंड के स्थान पर मान्यखेट को अपनी राजधानी बनाया। अरब यात्री सुलेमान ने इसकी गणना संसार के चार बड़े राजाओं में की थी। वह आचार्य जिनसेन का शिष्य था और जैन धर्म का अनुयायी था। ९४८ ई० में राजा तृतीय इन्द्र, जो शैव था, चोलों के साथ युद्ध करता हुआ मारा गया। राष्टकूटों को अपने पड़ौसी राज्यों से निरन्तर संघर्ष करना पड़ा; विशेषतया गुर्जर प्रतिहारों से। इन्होंने अरबों को व्यापारिक तथा कई अन्य प्रकार की सुविधायें प्रदान की थीं, जो इनके लिये घातक सिद्ध हुई और इनकी असफल विदेशी नीति का उदाहरण बनीं।

कल्याणी के चालुक्यः—१० वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में पुनः चालुक्य शक्तिशाली बने और द्वितीय तैलप ने कल्याणी (हैदराबाद) में राज्य स्थापित किया। गुजरात के अतिरिक्त पुनः प्राचीन चालुक्य राज्य पर इनका अधिकार होगया। इन्होंने मालवा के राजा मुंज को बन्दी बनाया और बाद में उसे मरवा डाला। इन्हें निरन्तर [illegible] और [illegible] दक्षिण के शासकों से युद्ध करना पड़ा। कई राजाओं के बाद

१०७६ ई० में विक्रमादित्य सिंहासन पर बैठा, जिसने चालुक्य विक्रम संवत् चलाया। इसका दरबारी विल्हण था जिसने 'विक्रमांक देव चरित्र' की रचना की। 'याज्ञवल्क्य स्मृति' की टीका तथा 'मिताक्षरा' के लेखक ज्ञानेश्वर इसके दरबारी थे। १२ वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में देवगिरि के यादवों ने इस वंश को समाप्त कर दिया।

यादव:—इस वंश की शक्ति की स्थापना भिल्लम चतुर्थ ने की। वह कृष्णा नदी के दक्षिण तक बढ़ता हुआ होयसाल वंशी वीर वल्लाल के साथ युद्ध करता हुआ मारा गया। इसके पुत्र जैत्रपाल ने तैलंगाना को जीता। जैत्रपाल का पुत्र सिंहन १३ वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में सबसे प्रसिद्ध शासक हुआ है। उसने शिलाहार परमार, चेदि बघेले, होयसाल आदि सबको परास्त किया। यह तथा इसका पुत्र कृष्ण, विद्या और कला के प्रेमी थे। कृष्ण के भाई महादेव के समय में सन्त ज्ञानेश्वर तथा चतुर्वर्ग चिन्तामणि के रचयिता हेमाद्रि और मुग्ध बोध व्याकरण के रचयिता गोपदेव हुए। राजा रामचन्द्र १२९४ ई० के समय में दक्षिण भारत में तुर्कों का प्रथम आक्रमण हुआ जब कि अलाउद्दीन ने अचानक आक्रमण कर रामचन्द्र को परास्त किया और बहुत बड़ा उपहार लिया। अन्त में तुर्कों ने इनकी शक्ति को १४ वीं शदाब्दी के मध्य में समाप्त कर दिया।

होयसाल:—होयसाल यादवों की ही एक शाखा थी, जिन्होंने द्वारसमुद्र में एक नया राज्य स्थापित किया। राजा विष्णु वर्धन ने अपने राज्य को खूब बढ़ाया। यह पहले जैन धर्म मानता था और फिर रामानुज के प्रभाव से वैष्णव धर्म को मानने लगा। इसने कई राजमहल व मन्दिर बनवाये। इस वंश का सब से प्रतापी शासक महाराजाधिराज वीरवल्लाल हुआ। जिसने चालुक्यों और यादवों को परास्त किया। १३२० ई० में अलाउद्दीन खिलजी के सेनापति मलिक काफूर ने 'द्वारसमुद्र' पर आक्रमण कर उसे खूब लूटा। तदुपरान्त कुछ समय के लिये होयसाल सामन्त के रूप में बने रहे।

सुदूर दक्षिण के राज्य :—सुदूर दक्षिण में चोल, पांड्य, केरल पुत्र, सत्यपुत्र और ताम्रपर्णी प्राचीन राज्य थे। ये सब कभी आंध्र, चालुक्य और राष्ट्रकूट के आधीन रहे तो कभी स्वतन्त्र। किन्तु चालुक्यों के पतन के बाद इन सबकी सत्ता भी विकेन्द्रित हो गई।

पल्लव :—पल्लव दक्षिण के 'वाकाटकों' की एक शाखा थे। इन्होंने दो राजधानियाँ बनाईं—धान्यकट, और काँची। वप्पदेव ने इस वंश की स्थापना की। विष्णु गोप ने समुद्रगुप्त का आधिपत्य स्वीकार किया। सिंह विष्णु ने चोल, पांड्य, कलभ्र, सिंहल आदि राजाओं को हराया। महेन्द्र वर्मन पुलकेशिन से युद्ध करता रहा। यह पहले जैन धर्म को मानता था। पीछे उदार शैव धर्म को मानने लगा। वह कला, तथा विद्या का आश्रयदाता था और स्वयं लेखक भी था। उसके पुत्र नरसिंह वर्मन ने पुलकेशिन द्वितीय को हराया और पूरे सुदूर-दक्षिण तथा लंका तक आधिपत्य स्थापित

किया। इसने 'महामल्लपुरम्' नामक नगर बसाया। इसके बाद कई राजा हुए और अन्त में प्रथम आदित्य चोल ने नवीं शताब्दी के अन्त में पल्लव वंश समाप्त किया।

चोल :—पल्लवों के बाद सुदूर दक्षिण के प्राचीन सूर्य वंशी क्षत्रिय चोल राजाओं की शक्ति बढ़ी। प्रथम आदित्य ने पल्लवों की शक्ति को समाप्त किया। वह शैव था और उसने अनेक मन्दिर बनाये। प्रथम परान्तक ने ९४५ ई० तक चोल साम्राज्य को सुदूर दक्षिण तक पहुँचा दिया। इस समय ही चोल सेना पांड्य साम्राज्य होती हुई लंका पहुँची। राज राज ने चोलों की शक्ति को बढ़ाया। वह योग्य शासक था तथा कला और विद्या को आश्रय देता था। उसने बड़े जहाजी बेड़े की सहायता से पूर्वी द्वीप समूह तक आक्रमण किया। उसकी गणना भारत के प्रसिद्ध विजेताओं में की जाती है। उसका पुत्र प्रथम राजेन्द्र और भी बड़ा विजयी शासक हुआ है। उसके समय में भारतीय व्यापार उपनिवेश और संस्कृति का बड़ा प्रसार हुआ। एक अन्य राजा अधिराजेन्द्र कट्टर शैव था, जिसने रामानुज का विरोध कर उन्हें काँची से निकाल दिया। मलिक काफूर के आक्रमण से सन् १३११ ई० में इस वंश का पतन हुआ।

चोल शासन अपने शासन प्रबन्ध, सभ्यता तथा संस्कृति के लिये भारतीय इतिहास में उच्च स्थान रखे हुए है। चोलों ने एक सुव्यवस्थित व सुसंगठित शासन प्रणाली का निर्माण किया। वे एकतांत्रिक शासक थे और उनके हाथ में ही राज्य की रक्षा, न्याय और शासन का पूरा दायित्व था। राजा अपनी सहायता के लिये मंत्री और अमात्य नियुक्त करता था। केन्द्रीय शासन के प्रत्येक विभाग की व्यवस्था एक अध्यक्ष के हाथ में थी। चोल 'राज्यम्' को कई प्रान्तों में बाँटा गया था। प्रान्त को 'मंडलम्' में और उन्हें 'कोट्टम्' तथा 'नाडू' में बाँटा गया था। एक नाडू में कई 'कुर्रम्' और एक कुर्रम में कई ग्राम होते थे। मंडल, नाडू और ग्राम में स्थानीय शासन था और प्रत्येक की अपनी सभा थी। इसी प्रकार इनमें व्यापार की श्रेणियाँ होती थीं। ग्राम सभा के सदस्य निर्वाचित होते थे और सभा अपने अपने काम के लिये लगभग १० समितियों में बंटी हुई थी। ग्राम सभा ही भूमिकर वसूल करती थी, और अपने पास धनराशि रखती थी। समस्त स्थानीय न्याय, शिक्षा, यातायात, मनोविनोद आदि इसी समिति के हाथ में थे। इतना अवश्य है कि इस सभा का, सरकारी निरीक्षक समय समय पर निरीक्षण करते रहते थे। राष्ट्र की आयका मुख्य साधन भूमि, उद्योग-धन्धे और व्यापार थे। उपज का छठा भाग लगान के रूप में लिया जाता था। खान, सिंचाई, चुंगी और न्यायालय से भी आमदनी होती थी। सोने का 'व्यासु' नामक सिक्का चलता था। चाँदी के सिक्के नहीं थे। कौड़ियाँ भी काम में लाई जाती थीं। सेना का संगठन भी विशाल पैमाने पर था।

साहित्य और कला के क्षेत्र में भी पर्याप्त प्रगति हुई। तामिल और संस्कृत दोनों लिपियों में उच्चकोटि के ग्रन्थ लिखे गये। स्थापत्य कला, मूर्तिकला तथा भवन

निर्माण के लिये यह काल संसार प्रसिद्ध है। इस समय बड़े बड़े महल, मन्दिर तथा पत्थर व धातु द्वारा निर्मित मूर्तियाँ तथा विशाल मन्दिरों के विशाल आँगन आदि बनाये गये। सिंचाई के लिये झीलों का निर्माण किया गया। यद्यपि धार्मिक क्षेत्र में अधिकांश चोल शैव थे फिर भी ये उदार थे और सब धर्मों को राजकीय सहायता प्रदान करते थे। अब धार्मिक क्षेत्र में सुदूर दक्षिण के प्रान्तों में मूर्ति पूजा, तीर्थयात्रा, दान, व्रत आदि का महत्व बढ़ता जा रहा था।

अन्य राज्यों में पांड्य, चेर तथा लंका अथवा सिंहल राज्य थे जिनका और राज्यों की तरह उत्थान व पतन हुआ।

अध्ययन के लिये संकेत

१. उत्तर भारत के स्वतंत्र राज्यों को तीन भागों में विभाजित किया जा सकता है। पश्चिमोत्तर, मध्य देश तथा पूर्वोत्तर।

२. जिस प्रकार गुप्त और पुष्यभूति साम्राज्य के पतन के बाद उत्तरी भारत छोटे छोटे राज्यों में विभाजित हो गया, ठीक उसी प्रकार आंध्र और वाकाटक के पतन के बाद दक्षिण भारत का हाल हुआ।

३. यद्यपि सुदूर दक्षिण के राज्य प्राचीन थे फिर भी वे आंध्र, चालुक्य और राष्ट्रकूटों के आधीन थे। उनकी शक्ति का ह्रास होते ही ये राज्य भी स्वतन्त्र हो गये।

४. चोल साम्राज्य अपनी कलात्मक प्रवृत्ति तथा शासन प्रबन्ध के लिये इतिहास प्रसिद्ध है।

अभ्यासार्थ प्रश्न

(१) पूर्व मध्य-युग में उत्तर भारत का राजनैतिक बँटवारा किस प्रकार हुआ था? किसी एक भाग का संक्षेप में वर्णन कीजिये।

1. How was Northern India politically divided during the pre-medieval period? Briefly describe one of these parts.

(२) चालुक्य, राष्ट्रकूट, यादव व होयसाल राजवंशों का इतिहास संक्षेप में लिखिये।

2. Briefly describe the history of the Chalukyas, the Rashtrakutas, the Yadavas of the Hoyasalas.

(३) चोलवंश की विजय, शासन-प्रबन्ध और सभ्यता व संस्कृति का संक्षिप्त वर्णन कीजिए।

3. Briefly describe the conquests, administration and Civilization and Culture of the Cholas.

अध्याय पन्द्रहवाँ

पूर्व मध्यकालीन संस्कृति व समाज

(१) प्रस्तावना (२) राजनैतिक अवस्था (३) सामाजिक अवस्था (४) धार्मिक अवस्था (५) साहित्यिक प्रगति (६) कला।

प्रस्तावना:—भारतीय इतिहास में पूर्व मध्य काल से अभिप्राय सातवीं शताब्दी से १२ वीं शताब्दी ई. तक का है। यद्यपि इस काल में राजनैतिक क्षेत्र में पर्याप्त उथल-पुथल हुई, तथापि राजनैतिक इतिहास की अपेक्षा इस युग का सांस्कृतिक इतिहास अधिक महत्व रखता है। इस काल में साहित्यिक तथा कलात्मक क्षेत्र में जो अभूत पूर्व प्रगति हुई उसका न केवल भारतीय इतिहास में अपितु संसार के इतिहास में भी ऊँचा स्थान है।

राजनैतिक अवस्था:—समस्त भारत इन पांच शताब्दियों में अनेक छोटे-छोटे प्रान्तों में बँटा हुआ था। पिछले अध्याय में हम इन राज्यों का वर्णन दे चुके हैं। कुछ राज्यों के प्रयत्न करने पर भी भारत एक राजनैतिक सूत्र में न बँध सका। अतः राजनैतिक शक्ति का ह्रास हुआ, और एकता की भावना दिनों दिन दुर्बल होती चली गई। चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य ने गणतान्त्रिक व्यवस्था को गणों का नाश कर समाप्त कर दिया, अतः राजनैतिक चेतना का भी लोप होगया और राज्य एकतान्त्रिक होने के साथ साथ ही निरंकुश भी होगये। ग्राम पंचायतें केवल स्थानीय व्यवस्था से ही संबंध रखती थीं। फलतः जनता अब राज भक्त चाटुकारिता आदि दुर्गुणों को आदर्श मान कर चलने लगी। अब सांघिक शक्ति का भी अभाव होगया और प्रान्तीय राज्य आपस में संघर्ष करते रहे। राष्ट्रीय भावना के अभाव में प्रान्तीय राज्य विदेशी नीति के प्रति उदासीन होगये और विदेशियों के आक्रमण से देश की रक्षा करने में असमर्थ होगये। सैनिक संगठन भी पुरानी लकीर पीट रहा था। संख्या में अधिक होते हुए भी भारतीय सेना विदेशी सेनाओं का सामना करने में असमर्थ रही।

सामाजिक अवस्था:—सामाजिक जीवन में भी विकेन्द्रीकरण होरहा था। अब वर्ण जाति जन्म से मानी जाने लगी, और इनमें स्थानीय, साम्प्रदायिक तथा व्यवसाय संबंधी अनेक वर्ग हो गये। समाज भी इन छोटी छोटी इकाइयों में बँट गया। यह भेद भोजन, विवाह, रीति-रिवाज, पूजा पद्धति आदि में विभिन्नता के कारण बढ़ता जारहा था। समाज में संकीर्णता, ऊँच नीच के विचार बढ़ रहे थे। निम्न वर्ग में चांडाल, शूद्र आदि समाज से बहिष्कृत कर दिये गये थे और इनका समाजीकरण रुक गया था। फिर भी अभी तक समाज में इतनी कट्टरता नहीं आई थी। समान

वर्ण के विवाह आदि उत्तम माने जाते थे, किन्तु अन्तर्जातीय तथा अन्तर्धार्मिक विवाह भी होते थे। कन्नौज के राजा गोविन्दचन्द का विवाह बौद्ध राजकुमारी कुमार देवी के साथ हुआ था। विवाह अधिकतर बड़ी आयु में ही होते थे। स्वयंवर की प्रथा प्रचलित थी। छुआ छूत बढ़ती जारही थी किन्तु उच्च वर्ण के समाज में अभी तक सहभोज होता था। वैदिक काल की तुलना में स्त्रियों का स्थान काफी गिर गया था फिर भी अभी तक उनका समुचित आदर होता था। कन्याओं की शिक्षा का उचित प्रबन्ध किया जाता था। हमें कई विदुषी स्त्रियों के उदाहरण प्राप्त होते हैं। उदाहरणार्थ मंडन मिश्र की पत्नी भारती, गणित शास्त्र में प्रवीण भास्कराचार्य की पुत्री लीलावती, काश्मीर की रानी विद्या और वारंगल की रुद्राम्बा, राजशेखर की पत्नी प्रसिद्ध कवियित्री अवन्ति सुन्दरी आदि। पर्दा प्रथा अभी तक चालू नहीं हुई थी। सती प्रथा का काफी प्रचलन था। सुदूर दक्षिण में देवदासी प्रथा चालू हो गई थी। विधवा-विवाह केवल छोटी जातियों में होता था।

धार्मिक अवस्था:—गुप्त काल में उत्पन्न धार्मिक प्रवृत्तियाँ इस काल के प्रारम्भ तक चलती रहीं। वैदिक प्रति सुधारणा के फलस्वरूप ब्राह्मण धर्म अधिक लोकप्रिय हो रहा था और अन्य सम्प्रदायों को अपने में पचा रहा था। आलोच्य काल में कुमारिल और शंकराचार्य जैसे सुधारक हुए। कुमारिल ने वैदिक कर्मकांड को पुनर्जीवित करने का प्रयास किया। शंकराचार्य ने अद्वैत वेदान्त का ऊँचा तत्व-ज्ञान दिया। इन्होंने जैन और बौद्ध दर्शन के अनेक सिद्धान्तों को वैदिक धर्म में सम्मिलित कर कट्टर बौद्धों को अन्य मत में कर दिया और इस प्रकार बौद्ध मत का घोर खंडन किया। इस काल में ही बुद्ध की गणना ब्राह्मणों के दस अवतारों में होने लगी। अपनी इस समन्वय शक्ति से वैदिक धर्म समाज का व्यापक धर्म होगया।

धार्मिक क्षेत्र में सबसे अहितकर बात धर्म का कई सम्प्रदायों व उपसम्प्रदायों में बँटना था। जैसे वैष्णव, शैव, शाक्त, ब्राह्म, सौर गाणपत्य आदि। इनमें भी अनेक उप-सम्प्रदाय थे। हम पीछे कह चुके हैं कि आंध्र और गुप्त युग में सरल भक्ति मार्ग था। अब बाह्याडम्बर बढ़ गया। वैष्णवों में गोपी लीला समाज, शैवों में पाशुपत, कापालिक तथा अघोर पन्थी समाज, शक्ति में आनन्द भैरवी, भैरवीचक्र, सिद्धि मार्ग आदि अनैतिक पन्थ उत्पन्न हो गये। ब्राह्मणों में भी तान्त्रिकवाद बढ़ता जा रहा था। इन भ्रष्टाचारी मार्गों से समाज की रक्षा करने के लिये कई महात्माओं का जन्म हुआ जिससे ब्राह्मण धर्म इस्लाम का सामना कर जीवित रह सका। इन सन्तों में शंकराचार्य, रामानुजाचार्य, तामिल में आलवार वैष्णव सन्त, नायनमार, काश्मीर में नन्द शैव धर्म, कर्नाटक में लिंगायत आदि उल्लेखनीय हैं।

ब्राह्मण धर्म की तरह बौद्ध धर्म में और भी उग्रता से बाह्याडम्बर, विलासिता तथा भ्रष्टाचार का समावेश होरहा था। बौद्ध भी तान्त्रिक और वाम मार्गी होगये थे।

इनके बिहार विलासिता के केन्द्र बन गये। तिब्बत और हिमालय प्रदेश की जातियों के सम्पर्क के कारण भ्रष्टाचारी प्रवृत्ति बढ़ती चली गई। ह्वेनसांग ने स्वयं इस प्रवृत्ति को सिन्ध में प्रचलित देखा। यह पतित दशा मुसलमानों के आक्रमण से पूर्व भी थी। ऐसे जर्जरित बौद्ध धर्म पर शंकर और रामानुज का आन्तरिक प्रहार और मुसमलानों का बाह्य आक्रमण घातक सिद्ध हुआ। परिणाम यह हुआ कि बौद्ध धर्म भारत से सदा के लिये लुप्त हो गया।

जैन धर्म ने भी अपना मार्ग बदला। मन्दिर, मूर्ति पूजा, अर्चना, बन्दना आदि प्रवृत्तियों के साथ साथ अब इसमें अन्धविश्वास भी घर कर गया। इनमें अनेक सम्प्रदाय व उप-सम्प्रदाय बन गये। फिर भी इनके कठोर आचार और उदासीन वृत्ति ने इनमें वाम मार्गी तथा भ्रष्टाचारी प्रवृतियों का समावेश नहीं होने दिया। कठोर आचार तथा तपस्या के कारण जैन धर्म के अनुयायियों की संख्या कम होरही थी और इस धर्म के मानने वाले गुजरात व महाराष्ट्र से कर्नाटक व द्रविड़ प्रदेश तक फैल रहे थे।

सारांश यह है कि सामान्य धार्मिक जीवन में कई एक अन्धविश्वास घर कर गये थे। जिससे जन जीवन में अपने भविष्य के प्रति अविश्वास, कलियुग की हीनता में विश्वास, भाग्यवाद, फलितज्योतिष, भूत प्रेत, जादू टोना आदि में विश्वास बढ़ता गया।

साहित्यिक प्रगति: - इस समय समस्त भारत की साहित्यक भाषा संस्कृत थी। यहाँ तक कि बौद्ध और जैन भी संस्कृत के माध्यम से अपने ग्रन्थ लिखने लगे थे। राजकीय दानपत्र, प्रशस्तिपत्र तथा साहित्य और शास्त्रीय ग्रन्थ संस्कृत भाषा में लिखे जाते थे। लगभग १० वीं शताब्दी के अन्त में प्रान्तीय भाषायें उदाहरणार्थ, हिन्दी, गुजराती, मराठी, बंगला, तामिल तेलगु, कन्नड़ और मलायालम आदि विकसित होरही थीं। गुप्त कालीन साहित्यिक प्रगति का प्रवाह अब भी बह रहा था, उसका वेग उतना तीव्र नहीं था। हर्ष और बाण की रचनाओं के अतिरिक्त भवभूति वाक्पतिराज, राजशेखर, क्षेमेन्द्र, कल्हण, विल्हण, जयदेव, भट्ट नारायण, भोज, विग्रह राज, माघ तथा श्रीहर्ष की रचनायें उल्लेखनीय हैं।

दर्शन के क्षेत्र में शंकर, रामानुज, धर्म कीर्ति आदि के महत्वपूर्ण ग्रन्थों की रचना हुई। व्याकरण, धर्म शास्त्र, आयुर्वेद, दण्डनीति, गणित, संगीत आदि विषयों पर अनेक ग्रन्थ लिखे गये। इस युग के साहित्य में सरलता के स्थान पर क्लिष्टता आगई। दर्शन में शुष्क तर्क का आविर्भाव हुआ। इस समय के लेखक दूरदर्शी व मौलिक नहीं थे। केवल अतीत का अनुकरण करने वाले थे। समाज में शिक्षा का उच्च स्थान था। प्राचीन शिक्षा प्रणाली ही प्रचलित थी। समस्त भारत में बौद्ध विहार, मन्दिर, मठ, आश्रम, और गुरुकुल फैले हुए थे। इस काल को मौलिक रचनाओं का काल नहीं कहा जा सकता है।

कला:—इस काल में राजाओं ने ललित कलाओं को न केवल प्रोत्साहन ही दिया बल्कि कलाकारों को आश्रय भी प्रदान किया। पूर्वमध्य काल में गुप्तकालीन कला की सरलता, सजीवता और मौलिक कल्पना का सर्वथा अभाव है, किन्तु यह कला लालित्य और शृंगार से परिपूर्ण हैं। मुसलमानों के आक्रमणों से कला के उच्च कोटि के नमूने नष्ट हो गये, फिर भी अनेक राजप्रासाद, देवालय, मूर्ति, द्वार अब भी तत्कालीन कला के उत्कृष्ट नमूनों के रूप में शेष हैं। उत्तर भारत में मन्दिरों की नागर शैली थी, जिससे ऊँचे ऊँचे शिखर बनाये जाते थे। दक्षिण भारत में वेसर शैली थी जिसके उदाहरण, बीजापुर और एलोरा के आस पास मिलते हैं। सुदूर-दक्षिण में द्रविड़ शैली थी जिससे मन्दिरों के ऊपर विशाल विमान या रथ बनाये जाते थे। मन्दिरों में अलंकार और सजावट अपनी चरम सीमा पर पहुंच चुके थे। उत्तरी भारत के मन्दिरी में बुंदेलखंड के देवगढ़ व खजुराहो मन्दिर उड़ीसा में भुवनेश्वर, आबू में दिलवाड़ा तथा ग्वालियर, उदयपुर, काश्मीर आदि के मन्दिर भी प्रसिद्ध हैं। इलोरा का कैलाश मन्दिर वेसर शैली का ऊँचा नमूना है। तंजोर, काँची, मदुरा, महामल्लपुरम् में द्रविड़ शैली के मन्दिर विद्यमान हैं। मन्दिर निर्माण में अतुल धनराशि व्यय की गई थी। मन्दिर कई भागों में विभाजित होने के कारण विशाल रूप धारण कर गये थे। अनेक सम्प्रदाय, उप-सम्प्रदाय बढ़ने के कारण देवी देवता, यक्ष, गन्धर्व, किन्नर, अप्सरा, नाग, पशु, पक्षी आदि की मूर्तियां बनती थीं। ब्राह्मण देवताओं में ब्रह्मा, विष्णु, शिव, दुर्गा, सूर्य, गणेश आदि बौद्धों में बुद्ध, अवलोकितेश्वर आदि, जैनियों में तीर्थङ्करों आदि की मूर्तियाँ बनती थीं। मूर्तियाँ कला की दृष्टि से उच्च कोटि की होती थीं। ये पत्थर, काँसा, तांबा, सोना आदि से निर्मित होती थीं।

चित्रकला विकसित थी फिर भी इसके उदाहरण इतने अधिक नहीं मिलते हैं जितने मन्दिर और मूर्तियों के। चित्रकला के कुछ नमूने अजन्ता, इलौरा के गुफा मन्दिरों में मीसन, लंका आदि के खण्डहरों में मिलते हैं।

अध्ययन के लिये संकेत

(१) सातवीं शताब्दी से बारहवीं शताब्दी के युग को पूर्व मध्यकाल के नाम से पुकारा जाता है।

(२) इस काल में छोटे-छोटे प्रान्तीय निरंकुश राज्य होगये। राजनैतिक चेतना लुप्त होगई। विदेशी नीति के प्रति उदासीनता आगई। विदेशियों के आक्रमण से देश की रक्षा नहीं की जासकी।

(३) सामाजिक जीवन में विकेन्द्रीकरण आगया। समाज छोटी-छोटी इकाइयों में बँट गया, व संकीर्ण होगया, फिर भी उसमें लचीलापन था।

(४) ब्राह्मण धर्म अधिक व्यापक व लोकप्रिय बन गया। जनता के धार्मिक जीवन में आडम्बर और बाह्याचरण की वृद्धि होगई। बौद्ध धर्म का भारत से लोप हो गया।

(५) साहित्य और राजनीति की भाषा संस्कृत थी। रचनाओं में सरलता, सजीवता और मौलिकता का अभाव था।

(६) ललित कलाओं को राज्याश्रय प्राप्त था।

अभ्यासार्थ प्रश्न

(१) भारतीय इतिहास में पूर्व मध्यकाल का क्या महत्व है। इस काल के राजनैतिक और सामाजिक जीवन में क्या परिवर्तन हुए और भारत पर उनका क्या प्रभाव पड़ा ?

1. What is the importance of Pre-Medieval period in the History of India ? What were the changes in the Political & Social life during this period and how did they affect India ?

(२) पूर्व मध्यकालीन भारत की धार्मिक और सांस्कृतिक अवस्था का वर्णन कीजिये।

2. Describe the religious and cultural condition of India during the Pre-Medieval period.

अध्याय सोलहवाँ

"वृहत्तर भारत"

(१) प्रस्तावना (२) मध्य–एशिया और तिब्बत (३) लंका, ब्रह्मा और सूदूर पूर्व (४) चीन और जापान (५) पश्चिमी देशों से सम्बन्ध (६) उपसंहार

१. प्रस्तावना:—प्राचीन काल में भारतीय सभ्यता और संस्कृति का प्रसार विदेशों में बड़े पैमाने पर हुआ था। सूदूर पूर्व, लंका, ब्रह्मा, श्याम, जावा, सुमात्रा, बाली द्वीप, मध्य एशिया इत्यादि अनेक भागों में भारतीय संस्कृति फैली। यदि आज भी इन देशों को देखा जाय तो वे अनेक बातों में हमारे देश के सदृश प्रतीत होते हैं। वहाँ के प्राचीन भवनों और मन्दिरों की सजावट, रहन सहन, नाम करण, पहनावा हमें भारत की याद दिलाते हैं। यही नहीं ऐतिहासिक तथ्यों के आधार पर यह भी कहा जा सकता है कि भारतीय संस्कृति भारत से सहस्त्रों मील दूर अमेरिका के महाद्वीप तक पहुँची।

अमेरिका की भाषा व सभ्यता बहुत कुछ अंशों में भारतीय संस्कृति से प्रभावित प्रतीत होती है। अनेक मूर्तियों तथा भवनों की बनावट भी हमें भारतीय कला और देवताओं की याद दिलाती है। इन तथ्यों के आधार पर यह स्पष्ट प्रकट हो जाता है कि प्राचीनकाल में हमारा देश जगद्गुरु था। हमने अनेक देशों में ज्ञान और सत्य का प्रकाश फैलाया। अज्ञान के अन्धकार को दूर करने के लिये इसी महादेश से प्रकाश की किरणें दूर दूर तक विकीर्ण हुईं जिन्होंने कि विश्व के अनेक भागों में सभ्यता फैलाई। भारत का अतीत इतना गौरवमय होते हुए भी अनेक कारणों से, जिनमें से कि देश की राजनैतिक एकता की कमी और दोषपूर्ण सामाजिक संगठन मुख्य हैं, मध्यकाल में हमारी प्रगति रुक गई और विदेशी आक्रमणकारियों के सामने भारत को झुक जाना पड़ा।

उपर्युक्त विवरण से प्राचीन काल में विश्व के अनेक भागों में सभ्यता और संस्कृति को फैलाने में भारत ने जो योग दान दिया उसके बारे में हमें संक्षिप्त जानकारी प्राप्त होती है। इन देशों में अनेक भारतीय धर्म प्रचारक और व्यापारी अपने अपने उद्देश्य से गये। भारतीयों के अनेक उपनिवेश स्थापित हुए। धर्म प्रचारकों में बौद्ध भिक्षु मुख्य थे। मध्य एशिया, चीन, जापान, सुदूर पूर्व और संसार के अन्य भाग "बुद्धं शरणं गच्छामि" और "धर्मं शरणं गच्छामि" की गगन भेदी आवाजों से गूंजने लगे। परन्तु भारत की सभ्यता और ज्ञान का यह प्रचार वर्तमान पश्चिमी देशों की साम्राज्यवाद नीति से सर्वथा भिन्न था। यद्यपि साम्राज्यवादी शक्तियां ने भी

संसार की असभ्य जातियों में सभ्यता और ज्ञान के प्रसार का बहाना ढूंढ़ा परन्तु दुनियां के सामने उनकी मक्कारी खुल ही गई। सभ्यता फैलाने के नाम पर इन्होंने जो अमानवीय अत्याचार मानव जाति पर किये वे अवर्णनीय हैं। इसके ठीक विपरीत भारत के धर्मप्रचारकों का मूल उद्देश्य इन देशों के निवासियों के प्रति परोपकार की भावना थी। उनका सुख दूसरों का सुख और उनका कार्य दूसरों की सेवा करना ही था। वे सत्य दया और मानवता की भावना से ओतप्रोत थे। उनका उद्देश्य शोषण नहीं था। दूसरे पर अत्याचार की भावना भारतीय आत्मा के सर्वथा विरुद्ध रही है। इस कारण भारतीय प्रचार, पूर्णतया आध्यात्मिक और परोपकारी प्रकृति का था। इसमें स्वार्थ, शोषण और अत्याचार का अंश लेश मात्र भी नहीं था। अतः हम देखते हैं कि अति प्राचीन काल में भारत ने सभ्यता के प्रचार की एक ऐसी परम्परा को जन्म दिया जिस पर चलकर विश्व बन्धुत्व और मानव एकता के आदर्शों को भली भांति प्राप्त किया जा सकता है। वस्तुतः इस सम्बन्ध में भारत ने विश्व को एक बड़ी निधि प्रदान की है। नीचे हम संसार के अनेक भागों में भारतीय संस्कृति और सभ्यता के प्रसार का विवरण दे रहे हैं।

मध्य एशिया और तिब्बत:—अशोक बौद्ध धर्म का एक महान समर्थक था। उसके उत्साह और अथक परिश्रम के फल स्वरूप बौद्ध धर्म संसार के अनेक भागों में फैल गया। इसके शासन काल में अर्थात् ईसा पूर्व तीसरी शताब्दी में मध्य एशिया के अनेक भागों में भारतीय उपनिवेश स्थापित होना प्रारम्भ होगया था। धीरे धीरे यह प्रदेश भारतीय भाषा रहन-सहन, रीति-रिवाज और धर्म के रंग में रँग गया। ईसा की पांचवी शताब्दी तक समस्त मध्य एशिया में भारतीय सभ्यता फैल गई। भारतीयों की मुख्य मुख्य बस्तियों काश्मीर, खोतान, यारकन्द, कूचा, तुरफान करा शहर इत्यादि स्थानों में थी। ये स्थान धर्म और भाषा की दृष्टि से पूर्णतया भारतीय होगये थे। कुमार जीव नाम के बौद्ध भिक्षु ने यहां बौद्ध धर्म का प्रचार किया। बाद में इस भिक्षु ने चीन में भी बौद्ध धर्म के प्रचार का कार्य किया। इसने अनेक संस्कृत ग्रन्थों का चीनी भाषा में अनुवाद करवाकर भारतीय संस्कृति और विचार धारा को चीन में फैलाने में सहयोग दिया। चीनी सम्राट् ने भारतीय विद्वान का अच्छा सम्मान किया। तत्कालीन भारत की भाषा 'प्राकृत' मध्य एशिया की भी भाषा बन गई। इन प्रदेशों में हुए अनेक अनुसन्धानों के फलस्वरूप यहाँ बहुत से विहार, बौद्ध, स्तूप, मूर्तियाँ, चित्र, हस्तलिखित प्राचीन ग्रन्थ इत्यादि प्राप्त हुए हैं। दूसरी शताब्दी में लिखित अश्वघोष के नाटकों की हस्तलिखित प्रतियाँ भी प्राप्त हुई हैं। अनेक बौद्ध ग्रन्थ तथा चिकित्सा शास्त्र के ग्रन्थ भी उपलब्ध हुए हैं। अकेले कूचा में ही दस हजार बौद्ध मन्दिर थे। यहाँ के निवासियों के नाम भी भारतीय ही होते थे। एक युग था जबकि सम्पूर्ण मध्य एशिया, वृहत् भारत, का ही एक भाग था। भारतीय धर्म, भाषा, आचार विचार यहाँ फलते फूलते थे। 'बुद्धं शरणं गच्छामि' और 'संघं शरणं गच्छामि' की मधुर

आध्यात्मिक आवाज यहां के निवासियों की आत्मा को शान्ति और हृदय को पवित्रता प्रदान करती थी।

लंका, ब्रह्मा और सुदूर-पूर्व:—लंका में बुद्ध धर्म का प्रचार अशोक महान के समय में हुआ था। अशोक के भाई महेन्द्र और बहिन संघमित्रा (कुछ इतिहासकारों के अनुसार पुत्र तथा पुत्री) ने स्वयं लंका में बौद्ध धर्म का प्रचार किया। लंका में अनुराधापुर, बौद्ध धर्म का एक महान केन्द्र बन गया और शीघ्र ही इस द्वीप के लगभग समस्त निवासियों ने बौद्ध धर्म ग्रहण कर लिया।

ब्रह्मा और सुदूर-पूर्व से भारत का बहुत प्राचीन सम्पर्क रहा है। स्थल तथा जलमार्ग द्वारा अनेक भारतीय व्यापारी धर्म प्रचार तथा साम्राज्य स्थापना के उद्देश्य से यहां आते थे। इन देशों में बहुत से भारतीय उपनिवेश थे। प्राचीन काल में भारतीयों ने इन प्रदेशों में अपने अनेक राज्य स्थापित किये।

ईसा की प्रारम्भिक शताब्दियों में ही ब्रह्मा में ब्राह्मण धर्म (हिन्दू धर्म) का प्रचार और दक्षिणी भारत की वर्णमाला का प्रयोग होने लगा था। ब्रह्मा के अनेक भागों में हिन्दू देवताओं की, मुख्यतया विष्णु की, मूर्तियां प्राप्त हुई हैं। लंका के धर्म प्रचारकों ने ईसा की तेरहवीं शताब्दी में यहां बौद्ध धर्म का प्रचार किया। ब्रह्मा का मुख्य धर्म बौद्ध धर्म ही है। इसी प्रकार स्याम में भी भारतीय धर्म और सभ्यता का प्रभाव था। यहां की राज्य सभाओं में अब भी भारतीय प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। ब्रह्मा से बौद्ध धर्म इस देश में फैला।

हिन्द-चीन तथा पूर्वी द्वीप समूहों में भारतीय धर्म, सभ्यता तथा आचार विचार का इतना गहरा प्रभाव पड़ा कि उसकी अमिट छाप आज भी इन प्रदेशों में देखी जा सकती है। अनेक बातों में ये प्रदेश हमें भारत की याद दिलाते हैं। हिन्द-चीन के दक्षिण पूर्व में चम्पा तथा दक्षिण में कम्बोज के हिन्दू-राज्य थे। यही नहीं प्राचीन काल में इन प्रदेशों में और भी हिन्दू राज्य थे जिनमें से यूनान और स्वर्ण भूमि का नाम उल्लेखनीय है। इन प्रदेशों का मुख्य धर्म ब्राह्मच धर्म ही था। धर्म, आचार, विचार, रहन-सहन, रीति-रिवाज तथा भाषा की दृष्टि से ये देश भारतीय ही थे। हिन्दचीन में बोलने व लिखने की भाषा संस्कृत ही थी। रामायण तथा महाभारत समस्त देश में लोकप्रिय थे। शिव और विष्णु की पूजा उस देश के कौने कौने में होती थी। नवीं शताब्दी में अनकोरवार (कम्बोदिया) में एक विशाल विष्णु मन्दिर का निर्माण हुआ। यह मन्दिर आज भी हमें भारतीय संस्कृति के गौरव की याद दिलाता है। चम्पा में भी भारतीय सभ्यता फैली। बाद में यहाँ बौद्ध धर्म का भी प्रचार हुआ।

पूर्वी द्वीप समूहों के अनेक भागों से जो प्राचीन लेख तथा अन्य ऐतिहासिक प्रमाण मिले हैं उनके आधार पर यह बिल्कुल स्पष्ट हो जाता है कि जावा, बोर्नियो,

मलाया प्रायद्वीप तथा पूर्वी द्वीप समूह के अन्य भागों में भारतीय धर्म, भाषा, लिपि तथा आचार–विचार का व्यापक प्रसार था। ये द्वीप भारतीयों के अधिकार में थे और यहां हिन्दू देवी–देवताओं की ठीक उसी प्रकार से उपासना होती थी जैसी कि भारत में । यहां वर्ण व्यवस्था (जाति–व्यवस्था) भी भारत के समान ही मानी जाती थी। बाली द्वीप में तो अब भी हिन्दू धर्म माना जाता है। यहां के रंगमंच तथा नृत्यों में भारतीय पौराणिक कथानक ही होते हैं। चम्पा में सात सौ तथा कम्बोज में तीन सौ संस्कृत के शिलालेख उपलब्ध हुए हैं जिनसे पता चलता है कि यहाँ संस्कृत भाषा का प्रचार कितने व्यापक रूप में था। बाद में यहां भी बौद्ध धर्म फैला।

जावा में पाई गई इमारतों पर भारतीय स्थापत्यकला का प्रभाव स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है। स्थापत्य कला के ये नमूने पूर्णतया भारतीय तो नहीं कहे जा सकते परन्तु इनमें भारत तथा जावा का बोरोबुदुर स्तूप संसार का आठवाँ आश्चर्य माना जाता है। स्थापत्यकला का यह एक अद्भुत नमूना है। पत्थर पर की गई खुदाई आश्चर्य जनक है। मूर्तियाँ तथा बौद्ध चित्र भी प्रशंसनीय हैं। इस स्तूप के प्रांगण में रामायण के कथानक पर आधारित अनेक चित्र बने हुए हैं। जावा की कला पर हिन्दू प्रभाव स्पष्ट दिखाई देता है। इस बारे में फर्ग्युसन का मत उल्लेखनीय है। वे कहते हैं "बोरो बुदूर के निर्माता पश्चिमी भारत से बुलाये गये होंगे। (भारत की) अजन्ता, नासिक तथा अन्य गुफाओं की चित्रकला और यहाँ की चित्रकला में इतना सादृश्य है कि जावा तथा पश्चिमी भारत के कलाकारों को निस्संदेह एक ही स्थान से धार्मिक प्रेरणा प्राप्त हुई प्रतीत होती है।"

चीन तथा जापान:–काश्यप मातंग तथा धर्मरत्न नामक दो बौद्ध भिक्षुओं ने भारत से चीन में बौद्ध धर्म फैलाया। सम्राट मिंगटी (५७–७६ ई. शासन काल) ने इनका स्वागत किया। इस सम्राट द्वारा बौद्ध धर्म का स्वागत किये जाने के फलस्वरूप ६२ ई. में बौद्ध धर्म चीन में फैल गया और धीरे धीरे बौद्ध धर्म चीन का मुख्य धर्म बन गया। मिंगटी ने अपनी राजधानी में एक बौद्ध बिहार भी बनवाया। बौद्ध धर्म की पुस्तकों का तेजी से चीनी भाषा में अनुवाद होने लगा। अनेक भारतीय धर्म प्रचार करने लगे। बौद्ध ग्रन्थों की खोज में बहुत से चीनी यात्री भी भारत आये, जिनमें कि फाह्यान (गुप्त काल में) तथा ह्वेनसांग (हर्ष के समय में) का नाम उल्लेखनीय है। सम्राट बू–तीं (५०२–५४६ ई. शासन काल) ने बौद्ध धर्म को सरकारी संरक्षण प्रदान किया। लाओत्से तथा कनफ्यूशियस से अधिक सम्मान महात्मा बुद्ध का होने लगा। गांव–गांव में बुद्ध के मन्दिर बनने लगे। बू–ती के शासन काल में चीन में बौद्ध मन्दिरों की संख्या ३० सहस्त्र से भी अधिक थी। चीन के लायोयांग प्रदेश में ही ३ सहस्त्र भारतीय बौद्ध भिक्षु और १० सहस्त्र भारतीय परिवार रहते थे। इन तथ्यों से भारत और चीन के घनिष्ट संबंधों का पता चलता है। ईसा की

चौथी शताब्दी के उत्तरार्ध में चीन से बौद्ध धर्म कोरिया पहुंचा और कोरिया से जापान। आज भी जापान का प्रमुख धर्म बौद्ध धर्म ही है।

पश्चिमी देशों से सम्बन्ध:—अति प्राचीन काल से ही भारत का व्यापरिक तथा सांस्कृतिक संबंध पश्चिमी देशों से रहा है। प्राचीन काल में भारतीय अति कुशल एवं साहसी नाविक थे। वे अपनी विशाल नौकाओं में बैठकर अथाह जल राशि को पार करके विदेशों से अतुल धन सम्पत्ति का उपार्जन करते थे। मैसोपोटामिया में प्राप्त हुई सिन्धुघाटी की मोहरों से पता चलता है कि सिन्धु सभ्यता काल (Indus Valley Civilization) में भारत का सुमेर तथा बेबीलोन से व्यापारिक संबंध था। इसके पश्चात् आर्य काल में ईरान तथा एशिया माईनर से आर्यों का निकट संबंध रहा। प्राचीन काल से ही भारत के दक्षिणी समुद्रतट पर अनेक प्रसिद्ध बन्दरगाह रहे हैं। भृगुकच्छ अथवा आधुनिक भड़ौच वैदेशिक व्यापार की दृष्टि से एक फलता फूलता बन्दरगाह था। भारतीय बन्दरगाहों से रूई, वस्त्र, चन्दन, कपूर, हाथीदांत की बनी हुई वस्तुएं तथा अनेक कलाकृतियाँ तथा अन्य सामग्री बिदेशों को निर्यात होती थीं। इस निर्यात व्यापार से भारत को अच्छी आय थी। ९७३ ई-पू० में यहूदियों के प्रसिद्ध सम्राट सुलेमान (Soloman) ने अपने महलों की सजावट के लिये बहुत सी भारतीय सामग्री मंगाई। भारतीय विचार धारा भी पश्चिमी देशों में फैल रही थी। पाइथोगोरस (Pythogoros) एम्पीडोकल्स तथा अन्य यूनानी दार्शनिकों के विचारों पर भारतीय दार्शनिक विचार धारा का स्पष्ट प्रभाव देखा जा सकता है। सिकन्दर के आगमन के पश्चात् भारत और यूनान के संबंध और भी निकट हो गये।

भारत और रोमन साम्राज्य के बीच कुषाण काल में घनिष्ठ व्यापारिक संबंध थे। ८० ई० के आसपास लिखित 'दी पेरीप्लस आफ दी एरीथ्रियनसी' नामक ग्रन्थ से पता चलता है कि भारतीय सामान से लदे हुए अनेक जहाज यूनान, रोम तथा मिश्र जाते थे। भारत से ही श्रृङ्गार विलास तथा कला की सामग्री सुन्दर वस्त्र आभूषण, रत्न अनेक प्रकार के लेप सुगन्धित पदार्थ तथा भोजन सामग्री पश्चिमी देशों को जाती थी। इन पदार्थों का प्रचार भारत से ही पश्चिमी एशिया तथा यूरोप में हुआ। रोम भारत से इतने अधिक मूल्य का सामान आयात करता था कि रोमन सम्राटों को इसके लिये चिन्तित होना पड़ा। प्लिनी ने बड़ी व्यग्रता के साथ लिखा है कि प्रति वर्ष १० लाख स्वर्ण मुहरें रोम से भारत केवल बिलास की सामग्री खरीदने के लिये भेजी जाती हैं। ईसाई धर्म की शिक्षाओं और ईसाई धर्म के संगठनों पर बुद्ध धर्म का प्रभाव भी देखा जासकता है।

यही नहीं भारतीय धर्म और संस्कृति का प्रभाव अमेरिका की प्राचीन भाषा व सभ्यता पर भी देखा जासकता है। इतिहासकारों का अनुमान है कि उस प्राचीन काल

में अमेरिका तथा एशिया महाद्वीप आपस में जुड़े हुए थे। जहां आजकल बेहरिंग जलडमरूमध्य है वहाँ स्थल था। इस स्थल मार्ग से अनेक भारतीय अमेरिका पहुँचते थे।

उपसंहार:—उपरोक्त विवरण से हमें भारत के गौरवमय अतीत की एक झांकी प्राप्त होती है। कैसा था वह युग जब कि भारत का धर्म, विचार धारा तथा सभ्यता संसार के दूर दूर भागों में फैली हुई थी ! भारतीय धर्म प्रचारक संसार के अज्ञात और अनजान देशों में जाकर वहाँ के निवासियों को अपना आध्यात्मिक संदेश देते थे। यह संदेश उनके मन को शान्ति और जीवन को मानवता प्रदान करता था। व्यापारी विदेशों में भांति भांति के मूल्यवान और उपयोगी पदार्थ पहुँचाते थे। अनेक स्थानों में भारतीयों ने अपने राज्य भी स्थापित किये। परन्तु भारतीय सभ्यता और संस्कृति के इस प्रसार में कहीं लेश मात्र भी शोषण की बू नहीं थी। भारतीयों का उद्देश्य केवल परोपकार और ज्ञान का प्रसार करना ही था। चाहे वे कहीं भी गये हों, उनका उद्देश्य धर्म प्रचार, व्यापार या साम्राज्य स्थापना कुछ भी रहा उन्हों ने किसीको भी अपना मत स्वीकार करने के लिये विवश नहीं किया। अत्याचार की भावना से वे सदा मुक्त रहे। दया और परोपकार के उत्तम आदेशों को उन्होंने कभी नहीं भुलाया। अत: हम गर्व के साथ कह सकते हैं कि ये भारतीय प्रचारक और व्यापारी शोषण, लालच, अत्याचार स्वार्थ परता और रक्तपात के उन दोषों से सर्वथा दूर रहे जो कि बाद में पश्चिमी देशों ने सभ्यता फैलाने के नाम पर संसार में किये।

अध्ययन के लिये संकेत

१—ब्रह्मा तथा सुदूर पूर्व में ब्राह्मण धर्म का प्रचार।

२—एशिया महाद्वीप के भिन्न २ भागों में बौद्धधर्म का प्रचार।

३—अमेरिका की भाषा सभ्यता पर भारतीय प्रभाव।

४—विदेशों से भारत का व्यापारिक संबन्ध।

५—भारतीय संस्कृति के प्रसार में शोषण का अभाव।

अभ्यास के लिये प्रश्न

१. भारतीय सभ्यता और संस्कृति के विदेशों में प्रसार पर एक विवरणात्मक निबन्ध लिखिये।

1. Write a descriptive note on the spread of Indian Civilization and Culture outside India during the Pre-Medieval age.

२. भारत से बुद्धधर्म किस प्रकार लंका, सुदूर पूर्व, चीन, और जापान पहुँचा। वर्णन कीजिये।

2. How did Budhism spread in Ceylon, Far East, China and Japan ? Discuss.

(३) प्राचीन काल में भारत का पश्चिमी देशों से किस प्रकार का व्यापारिक सम्बन्ध था ?

3. What was the Commercial relation of India with Western Countries during the ancient times ?

सत्रहवाँ अध्याय

भारत में इस्लाम का प्रवेश और सम्पर्क

(१) प्रस्तावना (२) अरबों का सिन्ध पर आक्रमण (३) अरब असफलता (४) सांस्कृतिक आदान प्रदान।

प्रस्तावना:—हर्ष के बाद भारत कई राजनैतिक भागों में बँट गया। ठीक उसी समय अरब में इस्लाम का उदय हुआ। अरब एक असभ्य देश था जो अज्ञान और अन्धकार से घिरा हुआ था। समुद्र के किनारे रहने वाले लोग मांझी थे और कुछ छोटे व्यापारी थे। ५०० ई० में मक्का में इस धर्म के संस्थापक हजरत पैगम्बर मोहम्मद साहब का जन्म हुआ। बालक मोहम्मद प्रारम्भ से ही चिन्तनशील था। वह व्यापार के लिये मिश्र, ईरान, सीरिया आदि देशों में जाता था, और अरबों की अज्ञानता, अन्ध विश्वास और लड़ाई-झगड़ों को देखकर दुःखी होता था। इसी प्रकार चिन्तन करते हुए ईश्वर से उन्हें इस्लाम शान्ति के रूप में प्रकाश मिला। मोहम्मद ने अपने को ईश्वर का पैगम्बर अर्थात् दूत बतलाया। उन्होंने बतलाया कि ईश्वर एक है मनुष्य आपस में भाई हैं। सीधी सच्ची पूजा से और पवित्र तथा सादे जीवन से मनुष्य ईश्वर को पा सकता है। मोहम्मद के अनेक अनुयायी होगये किन्तु स्वार्थी लोगों के विरोध के कारण मोहम्मद को ६२२ ई० में मक्का से मदीना भागना पड़ा। इस पलायन को 'हिजरी' कहते हैं जिससे मुसलमानों में 'हिजरी' सम्वत् चला। मदीना में मुहम्मद साहब के अनुयायी काफी संख्या में बढ़ गये और अपने विरोधियों को जबाब देने के लिये इन्होंने अपने आपको सैनिक रूप में संगठित कर लिया। यहां से ही 'जेहाद' अर्थात् सैनिक तरीके से धर्म के प्रचार और रक्षा करने की पद्धति का प्रारम्भ हुआ। मोहम्मद ने अपना समस्त जीवन इस्लाम प्रचार में बिताया।

इस्लाम के उदय से अरब के सामाजिक जीवन में एक नये जीवन का संचार हुआ। अब से इस्लाम और राजनीति एक साथ चलने लगी। मोहम्मद के उत्तराधिकारी खलीफा धार्मिक गुरु और राजनैतिक शासक दोनों थे। एक ही शताब्दी के अन्दर इस्लाम एशिया माइनर तक उत्तरी अफ्रीका और स्पेन तक, और पूर्व में अरब, फारस, अफगानिस्तान व तुर्किस्तान तक फैल गया। अब इस्लाम की राजधानी दमिश्क होगई। पश्चिम में सत्ता स्थापित होने के बाद स्वभावतया अरबों ने भारत की ओर दृष्टि डाली। खलीफा प्रथम वलीद के समय में (७०६ से ७१४) सिन्ध पर अरबों ने

[illegible]

[illegible] वर्षों से भारत और चीन के घनिष्ठ सम्बन्ध [illegible]

अरबों का सिन्ध पर आक्रमणः—पश्चिमी एशिया में इस्लाम फैल चुका था। सुदूर–पश्चिम में फ्रांस और कुस्तुन्तुनिया में इसे असफलता मिली। सुदूर पूर्व में चीन की ओर भी इस्लाम का प्रसारित होना कठिन था। अतः राजनैतिक क्षेत्र में छिन्न–भिन्न हुए भारत की ओर प्रस्थान करना सरल समझा गया। अरबों को बहाना भी मिल गया। उनका एक जहाज लंका से बहुमूल्य भेंट लेकर अरब जारहा था। इस जहाज को सिन्ध के बन्दरगाह 'देवल' पर लूट लिया गया। सिन्ध का राजा इस लूट के कारण का सन्तोषप्रद जवाब न दे सका। अरबों ने आक्रमण कर दिया। दो बार उनकी सेना परास्त हुई। अन्त में ७१२ ई० में हज्जाज ने अपने भतीजे और दामाद मोहम्मद बिन कासिम को ७१२ ई० में एक बहुत बड़ी सेना देकर आक्रमण के लिये भेज दिया। कासिम ने पहले देवल पर आक्रमण किया। वहां के राजा दाहिर से जनता अप्रसन्न थी। दाहिर भाग गया और देवल पर अरबों का अधिकार होगया। अनेक मन्दिर तोड़े गये व लूटे गये। बौद्ध भिक्षुओं को बन्दी बनाया गया। जनता को इस्लाम स्वीकार करने के लिये मजबूर किया गया। अब कासिम ने पूर्वी सिन्ध पर आक्रमण किया जहाँ दाहिर ने उसका कड़ा मुकाबिला किया। यह लड़ता हुआ मारा गया। रानी ने कई दिनों तक उसका मुकाबला किया, अन्त में उन्हें जोहर कर अपने प्राण देने पड़े। ७१३ ई० तक दक्षिण पश्चिम पंजाब और सिन्ध पर अरबों का राज्य होगया।

सिन्ध में खलीफा का प्रतिनिधि शासन करने लगा। वह अरब सत्ता को कायम रखता था और सैनिक जागीरदार के द्वारा सिन्ध के प्रत्येक भाग की एकता को कायम रखता था। सैनिक जागीरदार उसे कर वसूल करके देता था और समय पड़ने पर सैनिक सहायता करता था। लूट का माल, काफिरों पर जज़िया, भूमिकर जो उपज का $\frac{1}{3}$ भागो होता था, अन्य छोटे छोटे कर, क्रय–विक्रय पर चुंगी, आयात–निर्यात पर कर इत्यादि सरकारी आय के साधन थे। न्याय का आधार मुस्लिम धर्म था। फिर भी हिन्दुओं में सम्पत्ति के मुकदमों का फैसला पंचायत द्वारा होता था। अपराधों के लिये कठोर दंड था। प्रान्तीय शासक की सेना स्थायी होती थी और सरदारों की सेना केवल युद्ध के समय बुलाई जाती थी। अश्वारोही, ऊँट सवार, पैदल–ये सेना के मुख्य अंग थे।

शासन का आधार धर्म था। समस्त प्रजा मुसल्मान तथा जिम्मी इन दो भागों में बँटी हुई थी। धर्म–विजय अर्थात् जिहाद के विचार से आने के कारण मूर्तियों का तोड़ना, काफिरों को मारना, उनकी सम्पत्ति लूटना, उन्हें दास बनाना और उन्हें इस्लाम धर्म स्वीकार कराना, ये ही इनके विशेष कर्त्तव्य थे। जिम्मी अर्थात् गैर मुस्लिम के साथ बड़ी उपेक्षा और अपमान का व्यवहार किया जाता था। भारत में अरबों को कठिन समस्या का सामना करना पड़ा, क्योंकि अन्य देशों में इन्होंने समस्त जनता को मुसलमान बना कर अपनी समस्या हल करली थी। किन्तु भारत में इन्हें समन्वय की नीति से काम लेना पड़ा।

अरब असफलता:—अरब अपने लक्ष्य पूर्ति में सफल न हुए, वे सिन्ध के आगे नहीं बढ़ सके। इसके कई कारण थे। चाहे सिन्ध में चचवंश की दुर्बलता के कारण उन्हें सफलता मिल गई हो किन्तु फिर भी शक्तिशाली राज्यों जैसे प्रतिहार चालुक्य, राष्ट्रकूट आदि को–हराना असंभव था। अरबों में भी आपस में 'खिलाफत' के लिये वैमनस्य प्रारम्भ होगया था जिससे सिन्ध की सेना को सहायता नहीं मिल पाती थी। सिन्ध में भी अरब आपस में लड़ रहे थे। कालान्तर में उन्होंने खलीफा से स्वतन्त्र होकर सिन्ध में ही छोटे छोटे स्वतन्त्र टुकड़े स्थापित कर लिये थे। अरब रेगिस्तानी मार्ग से आये थे, जिधर से पूर्व की ओर बढ़ना कठिन था इस्लाम के स्वरूप में भी परिवर्तन होगया था। अब खलीफा विलासी होगये थे और उनमें प्रचार का उत्साह नहीं रहा था। इसके अतिरिक्त भारतीय पुरोहित वर्ग के कारण भारत की स माजिक व धार्मिक स्थिति इस्लाम के प्रतिकूल थी।

सांस्कृतिक आदान प्रदान:— लेनपूल ने कहा है कि "भारतीय इतिहास में अरब की सिन्ध विजय केवल एक घटना मात्र है —यह एक ऐसी विजय थी जिसका कोई परिणाम नहीं निकला।" यह कथन अक्षरश: सत्य है। भारतीय राजनीति, समाज, धर्म, साहित्य और कला अरबों की सिन्ध विजय से अप्रभावित रहे। अरब सैनिक थे, जो इस्लाम के गूढ़ सिद्धान्तों से अनभिज्ञ थे। भारतीय संस्कृति पूर्णतया विकसित व परिपक्क थी। उसका प्रचार विदेशों में भी हो चुका था। उसमें पाचनशक्ति थी और वह इस्लाम के आक्रमण को सहन कर सकती थी, अत: राजनैतिक क्षेत्र में पराजित होने पर भी भारतीय संस्कृति ने अरबों को प्रभावित किया। यहां की अनेक बहुमूल्य वस्तुएं बसरा, बगदाद और दमिश्क तक पहुँची। अरबों ने राजस्व–विभाग, स्थानीय शासन, भवन निर्माण, में सुन्दर और बड़ी मस्जिद का बनाना भारतवासियों से सीखा। खलीफा हारू अलरशीद के समय में अनेक भारतीय विद्वान बगदाद बुलाये गये और सैकड़ों अरब विद्वान विद्या, कला और साहित्य सीखने भारत आये।

साहित्य, दर्शन, गणित, ज्जोतिष, वैद्यक, शिल्प, रसायन, भूगोल आदि हजारों सस्कृत के ग्रन्थों का अरबी भाषा में अनुवाद कराया गया। भारतीय अङ्क और दशमलव अरबों ने अपनाया। आज भी अरबी अङ्क 'हिन्दसा' कहलाते हैं। वास्तव में भारत ने इस्लाम को उसके शैशव काल में कलात्मक व साहित्यिक प्रत्येक क्षेत्र में, प्रभावित किया।

अध्ययन के लिये संकेत

१. इस्लाम के प्रवर्तक हजरत पैगम्बर मोहम्मद थे।

२. लगभग एक शताब्दी में इस्लाम समस्त पश्चिमी एशिया, उत्तरी अफ्रीका, स्पेन और पूर्व में तुर्किस्तान तक फैल गया।

३. सिन्ध पर अरब आक्रमण आकस्मिक नहीं था।

४. सिन्ध के अतिरिक्त, अरब भारत में आगे नहीं बढ़ सके।

५. अरब शासन-नीति धर्म पर आधारित थी।

६. अरब असफलता के अनेक कारणों में सबसे बड़ा यह था कि भारत की सामाजिक व धार्मिक स्थिति इस्लाम के प्रतिकूल थी।

७. सांस्कृतिक क्षेत्र में भारत ने अरबों पर विजय प्राप्त की।

अभ्यासार्थ प्रश्न

१. "भारत में अरब विजय एक घटना मात्र थी। यह एक ऐसी राजनैतिक विजय थी जिसका भारत पर कुछ प्रभाव नही पड़ा" लेनपूल के उक्त कथन की सत्यता की सोदाहरण परीक्षा कीजिये।

1. "The Arab Conquest was a mere episode in the History of Islam—A triumph without result". How for do you agree with this view of Lanepole. Illustrate with examples.

अठारहवाँ अध्याय

भारत पर तुर्कों का आक्रमण

प्रस्तावना :—तुर्कों का उदय–गजनी वंश–महमूद गजनवी का सुल्तान बनना–महमूद गजनवी के भारत पर आक्रमण–आक्रमणों के प्रभाव—महमूद का व्यक्तित्व।

प्रस्तावना :—यह सच है कि मानव सोचता क्या है और होता क्या है। अरब के मुसलमान भारत में साम्राज्य स्थापित करने की इच्छा से आये थे। सिन्ध पर उन्होंने आक्रमण किया और उस पर अधिकार कर लिया। परन्तु उनका यह अधिकार चिरस्थायी न रह सका। वे आये और चले गये। उनका राज्य सिन्ध की मरु–भूमि में स्थापित हुआ और शीघ्र ही नष्ट हो गया। इसी कारण इतिहासकार लेनपूल के शब्दों में अरब के मुसलमानों का सिन्ध पर आक्रमण केवल एक घटना मात्र था। भारत विजय का श्रेय तुर्कों को है। दसवीं शताब्दी के अन्त में उत्तर पश्चिम की ओर से तुर्कों ने भारत का दरवाजा खट खटाया और उन्होंने अपने भीषण तथा सतत आक्रमणों से भारत में मुस्लिम–साम्राज्य स्थापित किया।

तुर्कों का उदय :—तुर्क मध्य एशिया में निवास करते थे। ऐसा कहा जाता है कि इनके पूर्वज हूण थे। परन्तु कालान्तर में इनमें शक तथा ईरानियों के रक्त का भी सम्मिश्रण हो गया था। डा० अवध बिहारी पाण्डेय की ऐसी मान्यता है कि वे **पहले बौद्ध–धर्म का पालन करते थे और नवीं शताब्दी में जब मध्य एशिया पर अरब के मुसलमानों का** आधिपत्य हो गया तो इन्होंने इस्लाम धर्म को अङ्गीकार कर लिया। यूरोप के अति प्राचीन इतिहासकार हेन्वे का मत है कि पहले तुर्क अब्दाली जाति के और हिरात के पूर्वी भाग में रहते थे। तुर्क स्वभाव से लुटेरे एवं निर्दयी होते हैं। सैनिक इस्लाम के धर्म को स्वीकार करने के उपरान्त उनमें युद्ध करने व लूट मार करने की अभिलाषा और भी प्रबल हो उठी। अपनी वीरता के कारण पतन के गर्त में निपतित खलीफाओं के ये अति प्रिय बन गये। उच्च सैनिक पदों पर खलिफाओं के द्वारा इन तुर्कों की नियुक्ति होने लगी। कालान्तर में तुर्क इतने सबल और खलीफा इतने निर्बल बन गये कि खलिफाओं ने तलवार सहर्ष तुर्कों के हाथ में सौंप दी। अवसर पाकर जब ईराक फारस और तुर्किस्तान के सूबेदारों ने अरब के मुसलमानों से मुक्त होकर अपने स्वतन्त्र राज्यों की स्थापना का प्रयास किया तो इस अवसर का लाभ उठा कर तुर्क भी स्वतन्त्र शासक बनने की चेष्टा करने लगे।

गजनी वंश :—खलीफाओं की निर्बलता के कारण जब इस प्रकार की उथल पुथल चल रही थी उस समय खुरासान पर समानी वंश का अधिकार था। इस वंश का पांचवाँ शासक अब्दुल मलिक था। वह इस वंश का सर्वाधिक योग्य शासक था।

इस के पास अलप्तगीन तुर्की गुलाम था। अलप्तगीन से अब्दुलमलिक बहुत प्रसन्न था। इस कारण सुल्तान ने अलप्तगीन को खुरासान का सूबेदार नियुक्त किया, परन्तु सुल्तान की मृत्यु के उपरान्त उसके पुत्र मनसूर ने अलप्तगीन के साथ कठोर व्यवहार करना आरंभ किया। इसका कारण यह बताया जाता है कि सुल्तान अब्दुल मलिक की मृत्यु पर अलप्तगीन ने मनसूर को सुल्तान बनाये जाने का विरोध किया था। स्वामी के कठोर व्यवहार से खीजकर अलप्तगीन गज़नी भाग गया। गज़नी को अपने अधिकार में कर अलप्तगीन ने अपने को एक स्वतन्त्र शासक घोषित किया। इसका वंश यामिनी वंश कहलाया।

अलप्तगीन की मृत्यु के उपरान्त उसका दामाद सुबुक्तगीन ९७६ ई० में गज़नी का सुल्तान बना। सुबुक्तगीन भी एक तुर्की गुलाम था। परन्तु वह एक होनहार मनुष्य एवं योग्य शासक प्रतीत होता था। इसी कारण से अलप्तगीन ने अपनी पुत्री का विवाह उससे कर दिया था और उसे उत्तरोत्तर उन्नति प्रदान की थी। अलप्तगीन की मृत्यु के पश्चात् उसका पुत्र इसाक सुल्तान बना था। परन्तु उसका दो वर्ष उपरान्त ही देहान्त हो जाने के कारण सुबुक्तगीन को सुल्तान बनने का अवसर प्राप्त हुआ था। यह एक महत्वाकांक्षी शासक था। इस कारण वह अपने स्वामी के छोटे से राज्य से सन्तुष्ट नहीं हुआ, अतः उसने अपने साम्राज्य की वृद्धि की ओर ध्यान दिया। सीस्तान पर अधिकार कर लेने के उपरान्त उसने भारत पर दृष्टि डाली। उस समय भारत की उत्तर पश्चिम सीमा पर जयपाल शासन करता था। वह एक योग्य एवं वीर राजा था। अतः वह तुर्कों की इस बढ़ती हुई शक्ति को चुप चाप बैठा नहीं देख सकता था। इसलिए उसने तुर्कों को भारत की ओर आने से रोकने का प्रयत्न किया। परन्तु लगम्न स्थान पर जयपाल की सेनाएँ तुर्कों से परास्त हो गईं। इस विजय के अनन्तर सुबुक्तगीन ने बीस हजार घुड़ सवारों के साथ पेशावर में एक विश्वासपात्र तुर्क को वहाँ का सूबेदार नियुक्त किया। ९९७ ई० में इस योग्य शासक की मृत्यु हो गई। सुबुक्तगीन के प्रशासन की प्रशंसा करते हुए फेरियर लिखता है कि **वास्तव में सुबुक्तगीन ही अफगानिस्तान का प्रथम शासक था जिसने कि उस पर उचित ढंग से शासन किया था।** उसकी मृत्यु के बाद उसका पुत्र महमूद सुल्तान बना।

महमूद गजनवी का प्रारम्भिक जीवनः—महमूद गज़नवी सुबुक्तगीन का ज्येष्ठ पुत्र था। उसका जन्म ९७१ ई० में हुआ था। उसकी शिक्षा का समुचित प्रबन्ध किया गया था। बाल्यावस्था से ही उसे रण-विद्या का भी ज्ञान कराया गया था। यही कारण था कि अपने पिता के साथ वह जयपाल से युद्ध करने आया था और कालान्तर में उसने अपने को एक योग्य एवं सफल सेनानायक सिद्ध किया। बचपन से ही धार्मिक कट्टरता उसमें घर कर गई थी। अतः उसने इस्लाम धर्म को प्रसारित करने का दृढ़ संकल्प कर लिया था। धन संग्रह की भी इसकी प्रबल पिपासा थी।

महमूद गजनवी का सुल्तान बनना:—अपने पिता सुबुक्तगीन की मृत्यु के समय महमूद गज़नी नहीं था। वह उस समय निशापुर था। अतः उसकी अनुपस्थिति से अनुचित लाभ उठा कर उसका छोटा भाई इस्माइल गज़नी का स्वामी बन बैठा। यद्यपि महमूद की अवस्था उस समय केवल १३ वर्ष की थी तथापि वह अपने अधिकारों से भली भाँति परिचित था। प्रसिद्ध इतिहासकार जे० बी० मैलसन लिखते हैं कि **महमूद बचपन से ही एक योग्य योद्धा एंव चुस्त कुमार था। वह अपनी शक्ति को पहिचानता हुआ मनुष्यों से बात करना** जानता था। इस कारण पहले तो महमूद ने अपने लघु भ्राता इस्माइल का खुले रूप में विरोध नहीं किया। उसने उसे समझा बुझा कर ठीक रास्ते पर लाने का प्रयास किया। परन्तु जब इस्माइल महमूद से सहमत नहीं हुआ तो एक दिन उसकी अनुपस्थिति में महमूद ने गजनी पर आक्रमण बोल दिया। इस्माइल बलख को छोड़कर शीघ्र गजनी की ओर रवाना हुआ। दोनों भाइयां में गजनी की गद्दी के लिये संघर्ष हुआ। संघर्ष में महमूद विजयी हुआ और इस्माइल बन्दी बना लिया गया। इस प्रकार महमूद ने गज़नी पर अधिकार कर लिया। परन्तु अभी तक वह गज़नी का पूर्णतः स्वतन्त्र सुल्तान नहीं बना था। बलख का समानी वंशीय सुल्तान गज़नी को अब भी अपने राज्य का ही एक भाग समझता था। महमूद गजनवी ने इसका विरोध किया और मर्व स्थान पर विजयी होकर समानी वंश के प्रशासन से सर्वदा के लिए विलग हो गया। इस लड़ाई के उपरान्त वह गज़नी का स्वतन्त्र सुल्तान बना।

महमूद का भारत पर आक्रमण:—महमूद एक महत्वाकांक्षी सुल्तान था। तुर्क होने के कारण वह अति निष्ठुर एवं निर्दयी शासक था। इस्लाम–धर्म का जोश उसकी रग रग में व्याप्त था। वह अपने धर्म का प्रचार करना चाहता था। धर्म प्रचार के अतिरिक्त वह धन–संचय भी करना चाहता था। उसने देखा कि ये दोनों उद्देश्य भारत पर आक्रमण करने से सुगमता से पूर्ण हो सकेंगे। इसलिए उसने १००० ई० से लेकर १०१६ ई० तक भारत पर सत्रह बार आक्रमण किये। अपने प्रथम आक्रमण से उसने सीमान्त–प्रदेश के कई किलों पर अधिकार कर लिया।

भारत के सीमावर्ती कुछ भागों को अपने अधिकार में कर १००१ ई० में उसने अपने पिता के पुराने शत्रु जयपाल पर हमला बोल दिया। २८ नवम्बर को पेशावर के समीप जयपाल ने शत्रु का सामना किया परन्तु स्वंय ही परास्त हुआ। वह पन्द्रह सम्बन्धियों के साथ बन्दी बना लिया गया। ढ़ाई लाख दीनार देने पर जयपाल मुक्त हुआ। जयपाल अपने इस अपमान को सहन नहीं कर सका। उसने स्वंय को अग्निदेव को भेंट कर दिया और राज्य अपने बेटे आनन्दपाल को सौं गया। इस विजय से महमूद को मान एवं गौरव के साथ अपार धन तथा लाखों भारतवासी गुलाम के रूप में प्राप्त हुए। इस विजय के उपरान्त उसने १००८ ई० में भीर के शासक के विरुद्ध आक्रमण किया। उसको दण्डित कर मुल्तान के शासक अबुलफतेह दाऊद को अपने

प्रभुत्व में लिया। इसके पश्चात् १००६ ई० में ही उसने आनन्दपाल पर हमला कर दिया। यद्यपि वह महमूद को बराबर कर दे रहा था। परन्तु उस पर यह दोष लगाया गया कि उसने अबुलफतेह दाऊद को सुल्तान के विरुद्ध सहायता दी थी। आनन्दपाल ने
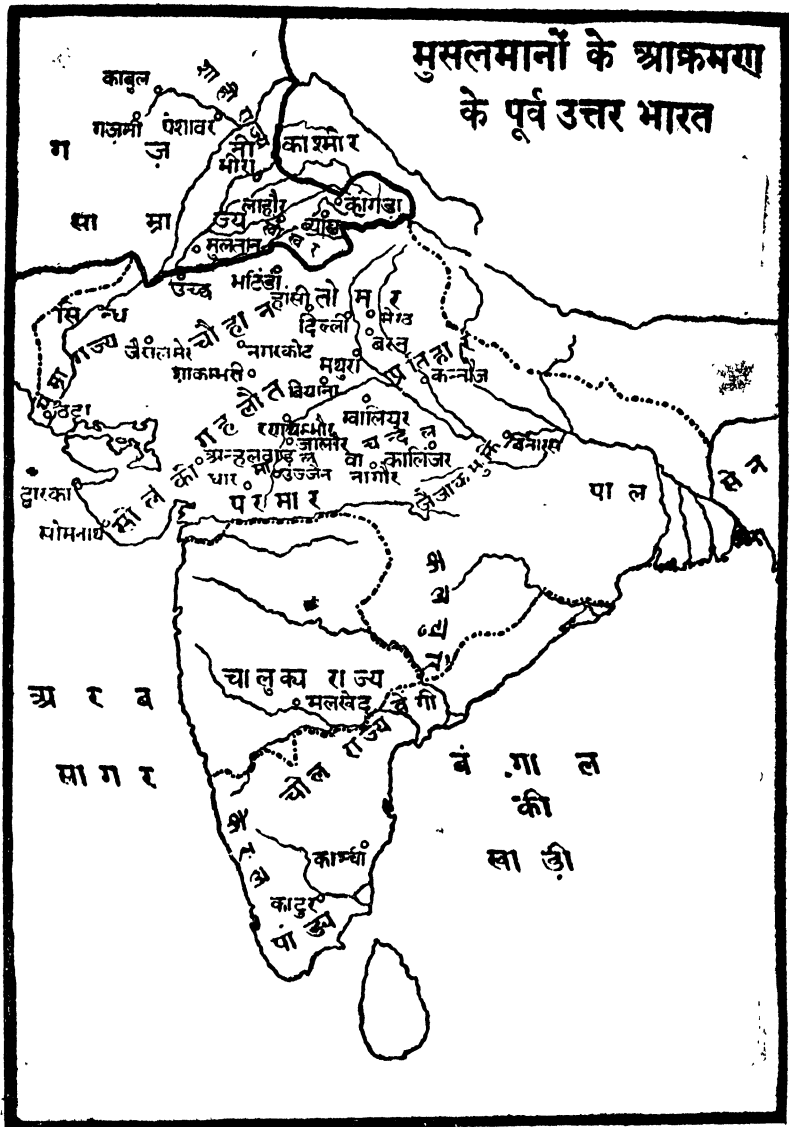
भी इस कठिन समय में उज्जैन, ग्वालियर, कालिंजर, कनौज, दिल्ली तथा अजमेर के राजाओं से सहायता मांगी। इस विशाल सेना से भयभीत होकर महमूद ने पेशावर के

मैदान में शत्रु सेना पर ४० दिन तक आक्रमण करने का साहस नहीं किया। एक मुसलमान इतिहासकार लिखता है कि " **हिन्दू स्त्रियों ने अपने आभूषण बेचकर दूर दूर से रुपया भेजा। दीन स्त्रियों ने दिनभर चर्खा कात कर या मजूरी कर के सैनिकों की सहायता के लिए पैसा भेजा** "। खोखर जाति भी इस समय हिन्दुओं की सहायता करने में पीछे नहीं रही। अन्त में युद्ध आरंभ हुआ। खोखर तीरन्दाज सुल्तान की सेना में घुस गये। यवन युद्ध भूमि से भागने लगे। सुल्तान स्वयं अवाक् था। वह युद्ध बन्द करने का आदेश देने वाला ही था कि आनन्दपाल का हाथी बिगड गया और उसे युद्ध भूमि से लेकर भाग खड़ा हुआ। इससे हिन्दू सेना भाग खड़ी हुई और सुल्तान विजयी हुआ।

इस युद्ध के परिणाम पर एक इतिहासकार लिखता है—**इस प्रकार विदेशी आक्रान्ता के विरुद्ध मध्यकालीन हिन्दू भारत के सबसे सुसंगठित, संकलित तथा शानदार राष्ट्रीय प्रवास की समाप्ति हुई।**" इस विजय ने महमूद के सामने से सुरक्षा की दृढ़ दीवार हटा दी। अतः इसी वर्ष सुल्तान ने नगरकोट पर चढ़ाई की। यहाँ के एक प्रसिद्ध मन्दिर में संग्रहीत अपार धन राशि को लूट कर महमूद ने अपनी धन-पिपासा को शान्त करना चाहा। परन्तु उसकी यह धन-पिपासा शान्त होने के स्थान पर अधिक प्रबल हो उठी। इसीलि उसने १०१४ ई० में थानेश्वर के राजा को और १०१६ ई० में कन्नौज के हिन्दू शासकों को परास्त किया। इसी वर्ष मथुरा का अपार धन व मन्दिरों का वैभव सुल्तान के चरणों में लोटने लगा। १०२१ ई० में ग्वालियर के शासक को अपनी आधीनता मानने को बाध्य कर कालिंजर की ओर बढ़ा। कालिंजर के शासक ने अपार धन देकर सुल्तान से अपना पीछा छुड़ाया। इस प्रकार इस जिहाद के नशे में मस्त उत्साह के पुतले के समक्ष समस्त उत्तरी भारत नत-मस्तक हो गया। परन्तु उसकी धन-क्षुधा अभी शान्त नहीं हुई थी। इसलिए १०२५ ई० में उसने भारत के विख्यात सोमनाथ के मन्दिर पर आक्रमण किया। यद्यपि उसके आस पास के राजों ने संयुक्त हो अपने प्राणों की बाजी लगा कर उस मन्दिर की रक्षा करने का प्रयास किया-परन्तु उनका प्रयत्न सब विफल गया। विजयश्री से माला पहिनने के उपरान्त सुल्तान ने मन्दिर में प्रवेश किया। पुजारियों ने प्रार्थना की कि हमारे देवता के हाथ लगाने के बदले वह मन चाहा धन ले जावे। परन्तु महमूद ने इसके प्रत्युत्तर में कहा "मैं मूर्ति भंजक हूँ, मूर्ति बेचने वाला नहीं।" यह कह कर उसने ५ फीट लंबी ठोस स्वर्ण-मूर्ति के अपनी गदा के प्रहार से टुकड़े टुकड़े कर दिए। सोमनाथ की पराजय वास्तव में हिन्दुओं की सुरक्षा एवं संस्कृति के पतन का द्योतक सिद्ध हुई। मन्दिर से प्राप्त अपार धन राशि के साथ सुल्तान सहर्ष गज़नी को विदा हुआ। मार्ग में जाटों ने उसे तंग किया। इसका पुरस्कार देने महमूद १०२६ ई० में भारत पुनः आया और उन्हें परास्त किया। यह महमूद का भारत पर अन्तिम आक्रमण था।

आक्रमण के प्रभाव:—पं० जवाहर लाल नेहरु ने अपनी पुस्तक 'भारत की खोज में' लिखा है कि **महमूद के आक्रमण भारत के इतिहास में एक बड़ी घटना है।** यह सच है कि जब उसके हमले भारत पर २६ वर्ष तक होते रहे तो उनका भारतवासियों के जीवन के विभिन्न क्षेत्रों पर प्रभाव पड़ना स्वाभाविक था। यह सत्य है कि प्रभाव स्थायी रूप में नहीं पड़े। परन्तु फिर भी भारत को इन आक्रमणों के परिणाम स्वरूप कई कठनाइयों का सामना करना पड़ा। उसके आक्रमण के कुछ प्रमुख परिणाम निम्नलिखित हैं:—

(१) **पंजाब का गजनी राज्य में विलय:**—महमूद गज़नवी भारत में साम्राज्य स्थापित करने की दृष्टि से नहीं आया था। वह तो भारत की अतुल संपदा को लूटने व देवमूर्तियों को तोड़ने आया था। इसी कारण उसने भारत में अपने विजित प्रदेशों पर अपना राज्य स्थापित नहीं किया। परन्तु पंजाब के लिए उसकी नीति यह नहीं रही। पंजाब को उसने १०२१ ई० में जीता और उसे अपने प्रशासन में ही रखा। पंजाब का मुस्लिम प्रभुत्व में रहना राजनीतिक दृष्टिकोण से कम महत्व का सिद्ध नहीं हुआ। पंजाब मुसलमानों को भारत की सीमा का एक ऐसा प्रदेश मिल गया जहाँ से वे भारत पर आक्रमण की तैयारी कर सकते थे। इसलिए बहुत से इतिहासकारों की मान्यता है कि पंजाब पर महमूद गज़नवी ने अधिकार कर भारत के आन्तरिक प्रवेश-द्वार अन्य आक्रमणकारियों के लिए खोल दिये।

(२) **देश की सुरक्षा संकट में पड़ना:**—महमूद गज़नवी के आक्रमण से भारत की दुर्बलता का पता विदेशी शक्तियों को स्पष्ट रूप से लग गया। भारत पर उसने सत्रह आक्रमण किये और उन सब में वह विजयी हुआ यह देश की निर्बलता का द्योतक नहीं तो और क्या था? पर इससे बढ़कर खेद की बात तो यह थी कि भारत के राजाओं ने फिर भी संगठित होने का प्रयास नहीं किया। छोटी छोटी रियासतों के शासक ज्यों के त्यों स्वतन्त्र बने रहे। इससे भारत की राजनैतिक एकता क्षत विक्षत ही बनी रही। डा० मजूमदार कहते हैं—**"भारतीय शासन तन्त्र में अनेकों दरारें आ गई और अब प्रश्न केवल समय का रहा, जब वह राज्य धराशायी हो जावेगा।"**

(३) **देश की अपार सम्पति की क्षति:**—अधिकांश इतिहासकारों की यह मान्यता है कि महमूद एक लुटेरा था। वह भारत में धन लूटने की लालसा से आया था। उसने अपनी इस मनोकामना को उत्तरी भारत के विशाल मन्दिरों को लूट कर पूर्ण किया। मथुरा, कन्नौज, वृन्दावन और काँगडा के विख्यात मन्दिरों की शताब्दियों से संचित अतुल धनराशि को वह गजनी ले गया। सोमनाथ के मन्दिर की लूट ने तो उसे स्पष्ट ही एक लुटेरे के रूप में प्रस्तुत किया है। कहते हैं कि इस मन्दिर से उसे इतना धन प्राप्त हुआ था कि ऊँट भी धन के बोझ से दबे जा रहे थे। इससे देश की

आर्थिक दशा शोचनीय हुई और कई वर्षों तक लूटे हुए प्रदेशों के निवासियों को इसके प्रभाव से प्रभावित रहना पड़ा।

(४) देश की अनुपम स्थापत्य कला एवं मूर्तिकला का बिनाश:—देवालयों को लूटने के साथ साथ महमूद ने उन जगत् विख्यात देवालयों को अपने धार्मिक जोश के कारण धराशायी भी कर दिया था। महमूद जब मथुरा पहुँचा तो उस सुन्दर नगरी के रमणीय देवालयों के अनुपम सौन्दर्य को देख वह स्तब्ध रह गया। महमूद के दरबार का इतिहासकार 'उतवी' लिखता है कि उसने मथुरा को उसकी सुन्दर इमारतों के कारण एक स्वर्ग की नगरी समझा। परन्तु वे सब भव्य एवं भारतीय स्थापत्य कला के अद्वितीय नमूने (मन्दिर) महमूद के द्वारा धराशायी कर दिए गये। इसी प्रकार भारत के अन्य सुन्दर कलापूर्ण एवं दर्शनीय स्थान उसके क्रोध से न बच सके। उन मन्दिरों के विनाश के साथ उनमें स्थापित देव मूर्तियाँ भी यवनों द्वारा खंडित करदी गईं। हमारे यहाँ की खंडित मूर्तियों को महमूद गजनवी ने गजनी की मस्जिदों की सीढ़ियाँ में लगाया। इससे भारत की मूर्तिकला का भी ह्रास बहुत हुआ।

(५) धार्मिक-प्रभाव :—महमूद के आक्रमण से देश का धर्म भी प्रभावित हुआ। प्रथम सोमनाथ के मन्दिर की देवमूर्ति के भंजन से भारतबासियों की मूर्ति पूजा में आस्था न रही इसके अतिरिक्त भारत में नास्तिकता भी अपने पाँव जमाने लगी। कालान्तर में भारत में जो भक्ति आन्दोलन चला था उसका बीजारोपण वास्तविक रूप से इसी काल में हो गया था। इसके अतिरिक्त हजारों हिन्दू मुसलमान बना लिये गये। ये प्रभाव तो हिन्दू-धर्म पर लक्षित हुए। परन्तु इस्लाम-धर्म पर भी महमूद की भारत-विजय का प्रभाव पड़ा। भारतवर्ष में महमूद ने जो अपनी निष्ठुरता एवं निर्दयता का परिचय दिया उससे जन साधारण की मान्यता हो गई कि इस्लाम धर्म एक निष्ठुर व हिंसात्मक धर्म है।

(६) महमूद गज़नवी का मुहम्मद गौरी का अगुआ प्रमाणित होना :—श्री के० एम० पन्निकर की ऐसी धारणा है कि यह सही है कि महमूद गज़नवी के आक्रमणों से भारत पर कम प्रभाव पड़े और जो पड़े वे अस्थाई प्रमाणित हुए। परन्तु आप इस कथन से सहमत हैं कि महमूद गज़नवी मुहम्मद गौरी का अगुआ साबित हुआ। यदि मुहम्मद गजनवी भारत पर आक्रमण नहीं करता तो संभव है कि मुहम्मद गौरी भारत पर दृष्टि नहीं डालता। मुहम्मद गोरी ने भी भारत पर आक्रमण कर यह प्रमाणित किया वह अपनी साम्राज्यवादी नीति में महमूद गजनवी का अनुसरण कर्ता था।

महमूद का व्यक्तित्व:—महमूद गज़नवी के चरित्र पर हमें विचार दो दृष्टि-कोण को सामने रखते हुए करना पड़ता है। भारतवासियों की दृष्टि में वह एक उच्च सेनानायक व विजेता होने के साथ साथ एक लुटेरा, हिन्दू-सभ्यता का विनाशक तथा

मानवता का शत्रु भी ठहरता है। इसके विपरीत यवनों की दृष्टि में महमूद अपने धर्म का सफल प्रचारक, सफल सेनानायक तथा इस्लाम की अपूर्व शान था। परन्तु जब हम तटस्थ होकर उसके चरित्र का मूल्याङ्कन करते हैं तो हमें उसके जीवन में निम्नलिखित गुण दृष्टिगोचर होते है —

सफल सेनानायक:—इसमें कभी दो राय नहीं हो सकती कि महमूद एक सफल सेना नायक नहीं था। उसने भारत पर १७ आक्रमण किये और उन सब में वह सफल हुआ – यह उसके सफल सेनापतित्व को बताता है। डा० ईश्वरी प्रसाद कहते हैं कि— **राजस्थान की रेतीली भूमि से होते हुए सोमनाथ के मन्दिर पर आक्रमण करना उसके दृढ़ निश्चय, मानसिक शक्ति और कठिनाइयों के सामने अडिग साहस को सिद्ध करता है।**" गजनी के एक छोटे से प्रदेश के स्वामी ने केवल भारत को ही अपनी अपूर्व विजय से आश्चर्य के सागर में निपातित किया था वरन् उसने ईरान के कई भागों को पद दलित कर मध्य एशिया में अपनी धाक जमादी थी। इसलिए डा० मजूमदार महमूद के विषय में लिखते है "**सुल्तान महमूद निस्सन्देह संसार के सबसे महान् सैनिक नेताओं में से एक था।**"

उसकी उच्च कोटि की न्याय-प्रियता:—जब हम महमूद का शासक के रूप में विश्लेषण करते हैं तो उसे एक न्याय–प्रिय प्रशासक पाते हैं। वह अशोक और शाहजहाँ की भाँति जनता की फरियाद सुनता था। न्याय करने में वह अमीर व गरीब का भेद भाव नहीं देखता था। उसके न्याय करने के विषय में कई कहानियां प्रचलित हैं। सेल्जूक वजीर निजामुलमुल्क ने जिसे लेनपूल ने मध्य–कालीन एशिया का एक उच्च राजनीतिज्ञ माना है, महमूद के विषय में कहा –"**महमूद न्याय प्रिय शासक था ....**"। वह न्याय करने में कठोरता का आश्रय लेने में भी नहीं हिचकता था। मुस्लिम इतिहासकार फरिश्ता महमूद के शासन काल के विषय में लिखता है "**उसके राज्य में भेड़ और बकरी एक घाट पर पानी पीते थे।**"

विद्या और कला से प्रेम:—बहुधा देखा जाता है कि महमूद जैसे योद्धाओं में विद्या व कला के प्रति प्रेम का अभाव होता है। परन्तु महमूद इसका प्रतिवाद था। यद्यपि वह स्वयं पढ़ा लिखा नहीं था परन्तु वह विद्वानों का आश्रय दाता था। उसके दरबार में उसके राज्य के तथा विदेशों से आमंन्त्रित विद्वानों का सदैव जमघट लगा रहता था। अलबरूनी उसके दरबार का एक महान गणितज्ञ, दार्शनिक तथा संस्कृत भाषा का ज्ञाता था। वह ९७३ ई० में खीवा प्रान्त में पैदा हुआ था। इस प्रकार वह सुल्तान से दो वर्ष छोटा था। उसकी मृत्यु सुल्तान के १८ वर्ष उपरान्त १०४८ ई० में हुई थी। वह महमूद के साथ साथ भारत आया था और कुछ समय यहाँ ठहरा था। उसने यहाँ के हिन्दुओं के रीति–रिवाजों, व्यवहारों तथा प्रथाओं का अध्ययन किया और उनका 'भारत वर्णन' नामक पुस्तक में उल्लेख किया। उसने [illegible]

राजनीतिक अवस्था का विशद वर्णन किया है। वह अपने स्वामी की आलोचना करता भी भय नहीं खाता था। वह लिखता है –"**हिन्दुओं की बिखरी हुई हड्डियां, मुसलमानों के प्रति अत्यन्त घृणा को जीवित रखे हुए हैं।**" इसके अतिरिक्त उतबी उसके दरबार का इतिहासकार तथा अन्सुरी व फारूखी उसके प्रसिद्ध कवि थे। फिरदौसी ने शाहनामा लिखा था। अत: लेनपूल का यह कथन कि महमूद भी अन्य महान सैनिकों की भाँति शिक्षित मनुष्यों की संगत पसन्द करता था—उचित प्रतीत होता है।

गज़नी को नाना प्रकार की भव्य इमारतों से सुसज्जित करने में भी वह पीछे नहीं रहा। जिस प्रकार नेपोलियन को अपनी राजधानी पैरिस को सुन्दर बनाने की सदैव चिन्ता बनी रहती थी उसी प्रकार महमूद को गजनी को बनाने की। उसने अपनी राजधानी को सुन्दर बनाने हेतु दूर दूर से कुसल कारीगर बुलाये। भारत के लूटे हुए धन को उसने उदारता से खर्च किया और गजनी में विश्वविद्यालय तथा एक उत्तम पुस्तकालय की स्थापना की। इनके अतिरिक्त उसने एक सुन्दर मस्जिद तथा अजायबघर का भी निर्माण कराया। मजिस्द अपनी सुन्दरता के कारण 'स्वर्गीय–दुलहन' के नाम से विख्यात थी। इसीलिये लेनपूल लिखता है कि यदि **महमूद को धन से प्रेम था तो वह यह भी भली प्रकार जानता था कि उसे खर्च किस प्रकार करना चाहिए।**

इनके अतिरिक्त महमूद एक अच्छे चरित्र का व्यक्ति था। भारत के आक्रमणों के समय उसने कभी किसी स्त्री का शील भंग करने का प्रयास नहीं किया। वह एक उच्च विचारक था तथा कुछ सीमा तक उदार भी। परन्तु इन गुणों का उल्लेख करते हुए हमें यह भी लिखना पड़ता है कि वह एक लालची शासक था। निजामुद्दीन तथा फरिश्ता दोनों ने लिखा है कि महमूद ने मरते समय अपनी सारी सम्पत्ति अपने सामने मंगवाई थी और यह सोच कर कि अब यह सब यहीं रह जावेगी—वह बड़ा दु:खी हुआ था और आहें भरीं थी। परन्तु उसने एक कौड़ी भी किसी को नहीं दी।" फिरदौसी को शाहनामा पूर्ण करने पर निश्चित धन न देना भी इसी तथ्य को प्रमाणित करता है। इसलिए कई इतिहासकार तो यहाँ तक कहते हैं कि महमूद तो बगदाद पर भी आक्रमण कर देता, यदि उसे सोमनाथ की भाँति वहाँ से भी धन मिलने की आशा होती।

इसके अलावा महमूद एक अच्छा राजनीतिज्ञ नहीं था। लेनपूल लिखता है कि **महमूद कोई रचनात्मक अथवा दूरदर्शी राजनीतिज्ञ नहीं था।** धार्मिक कट्टरता उसमें विद्यमान थी इसलिए कहा जाता है कि भारत में निर्दयता पूर्वक मंदिरों को तोड़ने वाला महमूद अपने देश के सभ्य सम्राटों का सिरमौर था। वह गजनी की मुसलमान प्रजा के लिए देवदूत और अन्य धर्मों के लिए राक्षस का अवतार था। पं० जवाहरलाल नेहरू की मान्यता है कि **वह धर्म से ऊपर रहकर एक योद्धा था और अन्य योद्धाओं की भाँति उसने विजय के लिए धर्म को साधन रूप बनाया।**

मध्य एशिया में अपने बाहु-बल से एक महान् साम्राज्य का संस्थापक महमूद २९ अप्रेल १०३० ई० को इस संसार से अपनी जीवन लीला समाप्त कर सदैव के लिए चला गया।

अध्ययन के लिए संकेत

(१) खलीफाओं की शक्ति के ह्रास होने पर तुर्कों का उदय हुआ वे मध्य एशिया के निवासी थे तथा हूण जाति से इनका सम्बन्ध था।

(२) अलप्तगीन ने गजनी वंश की स्थापना की व महमूद गज़नवी ने इसे एक स्वतन्त्र एवं शक्तिशाली राज-वंश का रूप दिया।

(३) महमूद ने भारत पर १७ आक्रमण किये जिनमें सर्वाधिक महत्वपूर्ण सोमनाथ का आक्रमण था।

(४) इसके आक्रमणों से पंजाब मुसलमानी राज्य का एक भाग बना, देश की सुरक्षा संकट मय हुई व आर्थिक अवस्था दयनीय बन गई। इनके अतिरिक्त देश की कलापूर्ण सुन्दर इमारतें विनाश को प्राप्त हुईं तथा भारतवासियों की धर्म में आस्था कम हो गई।

(५) महमूद वास्तव में एक उच्चकोटि का नायक एवं प्रशासक था। उसने गजनी को सुन्दर इमारतों से अलंकृत कर अपनी उदारता का परिचय दिया। न्याय करने में वह निष्पक्ष रहता था परन्तु इसके साथ में ही वह एक अच्छा राजनीतिज्ञ नहीं था। वह लालची था तथा धर्म का कट्टर अनुयायी था। उसका देहान्त १०३० ई० में हुआ।

अभ्यासार्थ प्रश्न

(१) महमूद गजनवी के आरंभिक जीवन और उसके महत्वपूर्ण आक्रमणों का वर्णन कीजिए।

1. Give an account of the early Career and the important invasions of Mahamud of Ghazni.

(२) महमूद का भारत आक्रमण करने का क्या प्रयोजन था तथा नसका भारत पर क्या प्रभाव पड़ा?

2. What were the motives and results of Mahamud's invasions on India?

(३) महमूद के चरित्र व उसकी सफलताओं की समालोचना कीजिए।

3. Discuss critically the Character and achievements of Mahamud of Gahzni.

(४) "महमूद न तो एक धर्म-प्रचारक ही था और न एक साम्राज्य-निर्माता।" इस कथन की व्याख्या कीजिए। (मजूमदार)

4. Mahmud of Ghazni was neither a missionary for the propagation of religion nor an architect of Empire." Discuss the statement. (Mazumdar)

गोताओं की भाँति उसने विजय के लिए

उन्नीसवाँ अध्याय

भारत में मुस्लिम साम्राज्य का संस्थापक मुहम्मद गोरी

प्रस्तावना—गोरवंश का उदय—मुहम्मद गोरी के भारत पर अक्रमण—मुस्लिम साम्राज्य का विस्तार—राजपूतों की पराज्य के कारण—गोरी के आक्रमणों के प्रभाव—गोरी का व्यक्तित्व तथा महमूद गजनवी से उसकी तुलना। सृष्टि का यह अटल नियम है कि उत्थान के पश्चात् पतन भी आता है। बड़े २ साम्राज्य स्थापित हुए और नष्ट हो गये।

प्रस्तावना:—यद्यपि महमूद गजनवी एक महान पराक्रमी तथा प्रतापी शासक था जिसकी धाक मध्य एशिया के लगभग समस्त भागों पर छाई हुई थी तो भी उसका साम्राज्य स्थायी न रह सका। उसकी व्यक्तिगत योग्यता, सेना तथा पशुबल पर स्थापित साम्राज्य की रक्षा उसके उत्तराधिकारी नहीं कर सके। महमूद गजनवी की मृत्यु के उपरान्त उसका पुत्र मसऊद सुल्तान बना। निःसन्देह वह एक वीर शासक था। परन्तु एक उच्च राजनीतिज्ञ नहीं था। उसने अपने साम्राज्य को सेल्जुक तुर्कों से बचाने की चिन्ता नहीं की और वह भारत का ही ध्यान करता रहा। इसी कारण १०४० ई० में भारत की ओर भागते समय उसकी हत्या करदी गई। मसऊद का उत्तराधिकारी उसका पुत्र मादूद बना। उसने अपने पिता के वध का बदला शत्रुओं से अवश्य लिया परन्तु गजनी साम्राज्य को पतन से वह न रोक सका। वह भी युद्ध करते करते इस संसार से शीघ्र ही चल बसा। उसकी मृत्यु के पश्चात कई सुल्तान बने। पर वे निरे निर्बल प्रमाणित हुए। बहरामशाह इस वंश का अन्तिम महत्व पूर्ण सम्राट था। परन्तु वह भी अलाउद्दीन द्वारा परास्त हो गया और ११५२ ई० में भारत में ही उसकी मृत्यु हुई। अलाउद्दीन गोर वंश का ही था। इसकी विजय के परिणाम स्वरूप महमूद गज़नवी का साम्राज्य लगभग २०० वर्ष के उपरान्त समाप्त हो गया और उसके स्थान पर गोर वशं के साम्राज्य की स्थापना हुई।

गोर वंश का उदय:—गजनी और हिरात के मध्य में गौर एक छोटा सा राज्य था फीरोज को ही इस प्रदेश का प्रसिद्ध एवं दृढ़ दुर्ग था। यहाँ सूर जाति के वीर अफ़गान शासन करते थे। इतिहासकार एलफिन्सटन तथा डार्न भी गोर के शासकों को अफ़गान ही मानते हैं। आरंभ में गोर के शासक गजनी के सुल्तान के आधीन थे। फिरोजकोह-दुर्ग को महमूद ने अपने आधीन कर लिया था। परन्तु जब महमूद के निर्बल उत्तराधि-कारियों से वह महान साम्राज्य न संभल सका तो गोर के शासक अपने को प्रबल बना स्वतन्त्र होने का प्रयास करने लगे। शनैः शनैः इनका वैमनस्य महमूद के यामिनी वंश से वृद्धि पाने लगा। यामिनी वंश के अन्तिम महत्वपर्ण शासक बहराम ने सर

राजकुमार कुतुबुद्दीन की हत्या करवा दी थी। इससे सूर वंशीय अफ़गान महमूद के उत्तराधिकारियों से और भी चिढ़ गये। कुतुबुद्दीन के भाई सैफुद्दीन ने अपने भ्राता के वध का प्रतिकार लेने की दृष्टि से गज़नी पर आक्रमण किया–परन्तु वह उद्देश्य प्राप्ति में असफल रहा। तदनन्तर सैफुद्दीन के भाई अलाउद्दीन ने गज़नी पर धावा बोला। उसने गज़नी के भव्य प्रासादों को धराशायी कर उन्हें अग्नि देवता की भेंट चढ़ा कर नगर का सारा वैभव मिट्टी में मिला दिया। कर्नल जे० बी० मेलीसन अपनी पुस्तक 'अफ़गानिस्तान का इतिहास' में लिखते हैं–"**महमूद तथा उसके उत्तराधिकारियों द्वारा निर्मित गजनी का सुन्दर नगर अग्नि की भीषण ज्वाला, कत्ल तथा विनाश के लिए छोड़ दिया गया। गजनवी वंशीय शासकों की समस्त यादगारें नष्ट करदी गई उनका प्रत्येक चिन्ह मिटा दिया गया।....... सात दिन तक यह कत्लेआम, लूटना व जलाना चलता रहा।**" फरिश्ता कहता है, "**जब अलाउद्दीन गजनी से विदा हुआ था तो अपने साथ गजनी के आदरणीय तथा विद्वान मनुष्यों को बन्दी रूप में अपनी विजय के चिन्ह स्वरूप फिरोजकोह ले गया और वहाँ उनके गले कटवा कर उनके रक्त से रंजित भूमि से नगर की दीवारों पर प्लास्टर करवाया गया।**" इसलिए इतिहास में अलाउद्दीन 'जलाने वाला' के नाम से विख्यात है। इस विजय से गज़नी गोर के शासकों के आधीन हो गई। जब ११६१ ई० में अलाउद्दीन की मृत्यु हो गई तो उसका पुत्र गोर का शासक बना। परन्तु वह केवल दो वर्ष के शासन के उपरान्त ही इस लोक से सदैव के लिए चल बसा। पुत्र की मृत्यु पर अलाउद्दीन का भतीजा गयासुद्दीन बोन सूरी शासक बना। उसने अपने भाई मुईजुद्दीन को ११७३ ई० में जो मुहम्मद गोरी के नाम से प्रसिद्ध है, गजनी का सूबेदार बनाया। इन दोनों भ्राताओं में अन्त तक प्रेम बना रहा। इसी कारण मुहम्मद गोरी गजनी को अपने राज्य की राजधानी रखते हुए एक विशाल मुस्लिम साम्राज्य स्थापित करने में सफल हुआ।

मुहम्मद गोरी के भारत पर आक्रमण तथा उनके उद्देश्य :-

उद्देश्य :—भारत के इतिहास में मुहम्मद गोरी के आक्रमण महमूद गज़नवी से कहीं अधिक महत्वपूर्ण प्रमाणित हुए हैं। गजनी पर अपनी सत्ता दृढ़ता से स्थापित हो जाने के उपरान्त उसने भारत की ओर दृष्टि डाली। भारत पर उसने निम्न तीन उद्देश्यों से आक्रमण किया था :—

(१) पंजाब में स्थापित महमूद गज़नवी के वंशजों की सत्ता का अन्त करना।

(२) इस्लाम धर्म का भारत में प्रचार करना तथा विधर्मी मुसलमानों को दण्ड देना।

(३) भारत में मुस्लिम–साम्राज्य की स्थापना।

...ओं की भाँति उसने विजय के ...

मुहम्मदगौरी के भारत पर प्रारंभिक आक्रमण :—मुहम्मद गौरी ११७३ ई० में गजनी का सूबेदार बना और कुछ काल के उपरान्त ही उसने भारत पर धावा बोलना आरंभ कर दिया। ११७५ ई० में उसने मुल्तान को विजय कर उसे अपने आधीन कर लिया। मुल्तान के विधर्मी मुसलमान भी उसके द्वारा दण्डित किये गये। ११७६ ई० में उसने धूर्तता की नीति अपना कर उच्छ को अपने आधीन कर लिया। सुल्तान ने गुजरात में स्थित अनहिलवाडा पर हमला किया। परन्तु वहां के वीर शासक ने उसकी वहाँ दाल न गलने दी। सुल्तान इस पराजय से हताश नहीं हुआ ११८० ई० में पेशावर उसकी साम्राज्यवादी क्षुधा का ग्रास बना। इस विजय के उपरान्त उसने जम्मू के राजा से मित्रता की और उसकी सहायता से ११८६ ई० में गजनवी वंश के अन्तिम शासक खुसरो मलिक की बन्दी के रूप में हत्या करवा कर उस वंश के टिमटिमाते दीप को सदैव के लिए बुझा दिया।

मुहम्मद गौरी द्वारा भारत विजय :—पंजाब की विजय ने मुहम्मद गौरी के लिए भारत-विजय के द्वार खोल दिए। पंजाब-विजय के उपरान्त मुहम्मद गौरी ने अपने मुस्लिम प्रतिद्वन्दियों से छुटकारा पा लिया था। अतः वह निश्चिन्त होकर भारत के हिन्दू राजाओं को परास्त करने का प्रयास करने लगा। इस समय उत्तरी भारत में राजपूतों के छः प्रमुख राज्य थे। दिल्ली और अजमेर चौहान वंशीय राजा पृथ्वीराज के आधीन थे कन्नौज में जयचन्द राजा राज्य करता था। गुजरात बघेले तथा बुन्देलखण्ड चंदेल राजपूतों द्वारा शासित होते थे। पाल वंश इस समय बिहार में राज्य करता था तथा सेन वंश बंगाल में।

पृथ्वीराज चौहान उस समय के हिन्दू नरेशों में सर्व शक्तिशाली समझा जाता था। जब पृथ्वीराज ने मुहम्मद गौरी को भारत के द्वार पर खड़ा पाया तो उसने उसका मुकाबला करने की दृष्टि से राजपूत नरेशों का एक संघ बनाया। सन् ११९१ ई० में थानेश्वर के समीप **तराइन** नामक स्थान पर मुहम्मद गौरी आ डटा। पृथ्वीराज बड़े उत्साह के साथ शत्रु का सामना करने के लिए युद्ध स्थल की ओर बढ़ा। इतिहासकार फरिश्ता का कथन है कि उसकी सेना में दो लाख घुड़सवार तथा तीन हजार हाथी थे। मुहम्मद गौरी इस लड़ाई में वीर राजपूतों द्वारा बुरी तरह घायल कर दिया गया और समर-भूमि से भाग खड़ा हुआ।

तराइन का दूसरा युद्ध :—यद्यपि मुहम्मद गौरी ११९१ ई० में तराइन के प्रथम युद्ध में राजपूत सेना से परास्त हो गया था परन्तु उसका दिल पस्त नहीं हुआ था। उसने दूसरे ही वर्ष (११९२) एक विशाल सेना के साथ भारत पर पुनः आक्रमण कर दिया और इसी रणस्थल में आ डटा। दोनों ओर से भयानक युद्ध हुआ राजपूत वीरता से लड़े। परन्तु इस युद्ध में सुल्तान की धूर्तता तथा अपनी पारस्परिक फूट के कारण [illegible]

के साथ मौत के घाट उतार दिया गया। परन्तु चन्दवरदाई द्वारा रचित 'पृथ्वीराज रासो' स्पष्ट करता है कि पृथ्वीराज मुहम्मद गौरी को मारकर गजनी में मरा था। तराइन का यह दूसरा युद्ध भारत के इतिहास में एक महत्वपूर्ण युद्ध माना जाता है। विन्सेण्ट स्मिथ इस युद्ध के विषय में लिखते हैं, **"तराइन का द्वितीय युद्ध एक निर्णायक युद्ध माना जा सकता है, जिसने हिन्दुस्तान पर मुस्लिम आक्रमण की अन्तिम सफलता निश्चित करदी।"**

कन्नौज की विजय :—जैसा कि हम ऊपर व्यक्त कर चुके हैं कि उस समय कन्नौज का शासक जयचन्द राठौड़ था। वह पृथ्वीराज चौहान का मौसेरा भाई तथा उस काल का एक शक्तिशाली शासक था। परन्तु अपनी पुत्री संयुक्ता के स्वयंबर में घटित घटना तथा अन्य कारणों से वह पृथ्वीराज का दुश्मन बन गया था। इसी कारण उसने तराइन के द्वितीय युद्ध में पृथ्वीराज का साथ न देकर उसकी पराजय पर प्रसन्नता व्यक्त की थी। परन्तु उसे उसकी गद्दारी का पुरस्कार ११९४ ई० में प्राप्त हुआ। उस वर्ष मुहम्मद गौरी ने उसे यमुना के किनारे चन्दावर नामक स्थान पर परास्त कर अपने मुस्लिम साम्राज्य की नींव को भारत में सुदृढ़ बनाया। इस विजय में सुल्तान को अपार धन प्राप्त हुआ तथा **प्रो० शर्मा के शब्दों में वह इस विजय से भारत की राजनीतिक तथा धार्मिक राजधानियों–कन्नौज और बनारस का स्वामी बन गया।** राजपूतों की इस पराजय से मुसलमान बिहार तक आसानी से पहुँच गये और उनके सन्मुख बंगाल की विजय भी सुलभ हो गई। इस प्रकार हम देखते हैं कि कन्नौज के पतन से भारत की दूसरी शक्ति का भी अन्त हो गया और राठौर इस पराजय के उपरान्त राजपूताने में आबाद हो गये, जहाँ कि उन्होंने जोधपुर राज्य की स्थापना की।

मुस्लिम साम्राज्य का विस्तार:—मुहम्मद गोरी का प्रधान सेनापति कुतुबुद्दीन ऐबक था। द्वितीय तराइन युद्ध (११९२) के उपरान्त वह कुतुबुद्दीन को भारत में अपना वाइसराय नियुक्त कर गया था। उसने दृढ़ता से मुस्लिम साम्राज्य का विस्तार किया। ११९३ ई० में दिल्ली पर मुस्लिम–सत्ता स्थापित हो जाने के अनन्तर उसने ११९७ ई० में गुजरात की राजधानी अन्हिलवाड़ा पर आक्रमण किया। वहाँ के नरेश भीमदेव ने वीरता से सामना किया, परन्तु अन्त में विजय कुतुबुद्दीन ऐबक की हुई। इस विजय के पश्चात् उसने १२०२ में कालिंजर को भी अपने आधीन कर लिया। बुन्देलखन्ड की राजधानी कालिंजर से उसे पर्याप्त धन प्राप्त हुआ तथा वहाँ के बहुत से मन्दिरों को उसने मस्जिदों में परिवर्रित कर दिया। यमुना के तट पर स्थित कालपी पर भी उसने मुस्लिम साम्राज्य का झन्डा फहरा दिया।

कुतुबुद्दीन ऐबक का उस समय प्रमुख सहायक बख्तियार ख़िलजी था। वह बहुत ही कुरूप था। परन्तु वह वीरता व साहस में कम नहीं था। उसने ११९७ ई० में २०० सवारों को लेकर बिहार पर आक्रमण किया और वहाँ के पाल वश के शासक को

परास्त कर दिया। बौद्ध-विहार नष्ट कर दिए गये। इस विजय से उसका उत्साह और बढ़ा और उसने ११६६ ई० में केवल १८ घुडसवारों की सहायता से बंगाल पर आक्रमण किया। बंगाल का नरेश लक्ष्मणसेन भाग गया और उसने बंगाल की राजधानी नवदीप अधिकार कर लिया। १२०५ ई० में बख्तियार ख़िलजी की मृत्यु हो गई।

राजपूतों की पराजय के कारण:—पृथ्वीराज चौहान भारत का अन्तिम हिन्दू-सम्राट गिना जाता है। अतः उसकी पराजय का परिणाम यह हुआ कि भारत से सदैव के लिए हिन्दू- साम्राज्य नष्ट हो गया। उसके पतन के उपरान्त जयचन्द का विनाश और उसके अनन्तर अन्य राजपूत नरेशों का विनाश हुआ। कहने का तात्पर्य यह है कि राजपूत, जो भारत में युद्ध करने में सर्वाधिक वीर तथा रण-कुशल होते थे—एक के बाद एक परास्त होते ही चले गये। अत: पाठकों के मस्तिष्क में यह विचार आना स्वाभाविक है कि इस पराजय के कारण क्या थे। इस पराजय के कारण ज्ञात करने के लिए हमें तत्कालीन भारतीय समाज तथा भारत में उस समय विद्यमान राजनीतिक व अन्य परिस्थितियों पर विचार करना पड़ता है और उस पर विचार करने के उपरान्त हम राजपूतों की पराजय के निम्नलिखित कारण पाते हैं।

(१) सामाजिक:—भारत को विभिन्न जाति व धर्मों का अजायबघर माना जाता है। भारत में जातियाँ इतनी अधिक संख्या में हैं कि वे विश्व के किसी अन्य देश में नहीं। इन विभिन्न जातियों ने भारतीय समाज का रूप भी विभिन्न बना दिया है। प्रथम अन्य सब जातियों की उस समय यह मान्यता हो गई थी कि देश की सुरक्षा केवल राजपूतों के कन्धों पर है। अत: युद्ध विद्या सिवाय राजपूतों के और कोई नहीं सीखते थे। इसके अतिरिक्त समाज में ऊंच नीच की भावना ने दृढ़ता से घर कर लिया था। ऊंच नीच की भावना ने समाज में से एकता तथा भ्रातृत्व की भावना को विनष्ट कर फूट के बीज बो दिए थे। इस कारण भारत के लोगों के दिलों से राष्ट्रीय भावना भी लुप्त होती जा रही थी। इसके विपरीत मुसलमान एक जाति से एकता के सूत्र में गुंथे हुए थे। उनमें ऊंच नीच की भावना विद्यमान नहीं थी। इसलिए उनमें भ्रातृत्व था और वे एक होकर शत्रु का सामना करते थे। यही कारण था मुसलमान राजपूतों पर विजय पा सके।

(२) धार्मिक:—भारतवासियों की आत्मा धर्म मानी जाती है। हम धर्म के नाम पर अपना सर्वस्व न्यौछावर कर सकते हैं। परन्तु उस समय धर्म भी अधोगति को प्राप्त हो रहा था। उसमें शनैः शनैः मिथ्याडम्बर के धुन लग रहे थे। इस कारण भारतवासी अन्धविश्वासी बनते जा रहे थे। इस मिथ्याडम्बर के कारण ही हिन्दूधर्म का ह्रास हुआ और उसके पतन पर बौद्ध धम तथा जैन धर्म का प्रादुर्भाव हुआ। इन दोनों धर्मों के आविर्भाव से भारत में अहिंसा की भावना प्रबल रूप धारण करने लगी। इसके अतिरिक्त तत्कालीन भारत में प्रचलित भक्ति-मार्ग ने भारतवासियों के दिलों में क्रोध, अन्याय तथा अत्याचार के प्रति असहिष्णुता घृणा के स्थान पर करुणा व कोमल भावों का सूत्रपात

करना आरंभ कर दिया था। क्षात्र-धर्म का अर्थ भी इस समय गलत लगाया जाने लग गया था। इस कारण भारतवासियों में अपने शत्रु से लड़ने में वह जोश व उत्साह शेष न रहा था जो मुसलमानों में धार्मिक विश्वास के कारण उस समय भी बना हुआ था।

(३) **नैतिक:**—'किसी भी राष्ट्र की सच्ची शक्ति उसके नैतिक जीवन व्यतीत करने वाले वासियों में केन्द्रीभूत रहती है। परन्तु कुछ इतिहासकारों की मान्यता है कि ग्यारहवीं-बारहवीं शताब्दी के भारतवासियों का जीवन वैसा नैतिक नहीं था जैसा वैदिक-काल तथा उत्तर वैदिककाल में था। देश की अतुल संपदा ने लोगों को विलासिता के गर्त में ढ़केल दिया था। भारतवासी अब वीरता की उपासना के स्थान पर सौन्दर्य की उपासना करने लगे थे। वीर राजपूतों को तलवारों की खनखनाहट के स्थान पर नूपुरों की झनकार अधिक आनन्दप्रद प्रतीत होती थी। इसका परिणाम यह हुआ कि राष्ट्र निर्बल हो गया और वह विदेशियों की दासता में जकड़ गया।

(४) **सैनिक:**—राजपूतों की पराजय का प्रमुख कारण सैनिक है। राजपूत लड़ना जानते थे। पर उनकी युद्धविधि मुसलमानों की युद्ध-विधि की तुलना में त्रुटिपूर्ण थी। राजपूतों ने मुसलमानों का सामना अपने पुरातन ढंग से ही किया। डा० स्मिथ का कहना है, **"यद्यपि स्वदेश की रक्षा के भावों से परिपूर्ण हिन्दू राजा साहस और वीरता में किसी प्रकार भी मुसलमानों से कम नहीं थे, तथापि युद्ध-कला में वे निश्चित रूप में उनसे हीन थे। इसलिए वे अपनी रक्षा नहीं कर सके।"** केवल राजपूत ही उस समय भारत के सैनिक होते थे। अतः देश की तीन चौथाई से भी अधिक जनता देश की सुरक्षा में रुचि नहीं रखती थी। राजपूत भी केवल अपने राजा के लिए युद्ध करते थे न कि भारत माता के लिए। अतः ज्योंही राजा युद्ध में धराशायी होता या किसी कारणवश युद्ध-भूमि से भाग जाता तो समस्त सेना समर भूमि से भाग जाती थी—चाहे वह जीत ही क्यों न रही हो। इसके अलावा हिन्दू राजा उस समय स्थाई सेना नहीं रखते थे। केवल अपने आधीन जागीरदार व सहयोगी नरेशों की सेना पर ही अवलंबित होते थे इस कारण उन्हें अपनी शक्ति का वास्तविक ज्ञान नहीं हो पाता था। इसके अतिरिक्त राजपूत स्वाभिमानी होते थे। इस कारण एक नेता चुनने में बड़ी कठनाई होती थी। युद्ध-विद्या में अधिक पारंगत न होने के कारण वे केवल आत्मरक्षीय युद्ध ही करते थे। शत्रु के बिनाश का कोई प्रयास नहीं करते थे और जब वे युद्ध-भूमि को कूंच करते तो अपनी समग्र शक्ति समर भूमि में ही लगा दिया करते थे। वे सुरक्षा के लिए कुछ सैनिक (सुरक्षा-पंक्ति) पीछे नहीं छोड़ते थे। इसके विपरीत मुसलमानों का सैन्य संगठन अच्छा था। वे घोड़ों की पीठ पर युद्ध करते थे, जो हाथी और रथों से अधिक द्रुतगामी होते थे।

(५) **राजनीतिक**—मुसलमानों से राजपूतों के हारने के कई राजनीतिक कारण [illegible] में विभक्त था। वे छोटे छोटे राज्य

राजाओं द्वारा शासित होते थे। राजा लोग अपने को पूर्ण स्वतन्त्र समझते थे। अतएव एक दूसरे से द्वेष रखते थे। एक इतिहासकार ने कहा है, **"इसलिए इसमें आश्चर्य की कोई बात नहीं कि राजपूत राज्य परिवार शहाबुद्दीन (गौरी) के आगे उसी प्रकार परास्त हो गये, जिस प्रकार नैपोलियन के आगे जर्मन-राज्य परास्त हो गये थे।"**

इसके अलावा तत्कालीन हिन्दू राजाओं में कूटनीतिज्ञता का अभाव था। वे बिना भावी परिणामों की चिन्ता किये कोरी आदर्शवादिता के झोके में प्रवाहित हो जोश में आकर कई अहितकर कार्य कर बैठते थे। वे अपने शत्रु की शक्ति का पता लगाने की चिन्ता नहीं करते थे और अन्य देशों की राजनीति से भी अपना सम्बन्ध विच्छेद ही रखते थे। इस कारण भी भारत के राजपूत नरेश मुसलमानों से भारत की रक्षा करने में असमर्थ रहते थे और उनके निरंकुश शासन के कारण जनता भी पूरी तरह उनकी सहायता नहीं करती थी।

(६) आर्थिक:—देश की संपदा ने भारतीय शासकों को तो विलासी बना दिया था और विदेशियों का ध्यान इधर आकर्षित कर दिया था। इस समय के मुसलमान आक्रमणकारी भारत की दौलत को लूटने की दृष्टि से आये थे। वे अपने सैनिकों को भारत की अतुल संपदा का प्रलोभन देकर भारत लाते थे और वे धन के लोभी मुसलमान सैनिक भी वीरता से लड़ते थे। इस कारण भी राजपूत सैनिक उनके आगे नहीं टिक पाते थे।

(७) विविध कारण—इन कारणों के अतिरिक्त राजपूतों की पराजय के कई अन्य कारण बताये जाते हैं। कई इतिहासकार कहते हैं कि भारत की गर्म जलवायु ने भी हिन्दुओं को परास्त होने में ही योग दिया। हिन्दू गर्म देश के होने के कारण आलसी तथा दुर्बल थे। परन्तु मुसलमान ठंड़े देश के थे। इस कारण वे अधिक हृष्ट पृष्ट तथा बलशाली थे। इसके अलावा मुसलमान आतंकित करने की नीति का सहारा लेकर युद्ध करते थे। सैनिक व जनसाधारण को तलवार से मौत के घाट उतार कर व नगरों को जला कर मुसलमान हिन्दुओं को भयभीत बना दिया करते थे। दास प्रथा भी मुसलमान शासकों को भारत विजय करने में सहायक सिद्ध हुई। मुसलमान शासकों के कई गुलाम अपने को योग्य शासक के रूप में प्रस्तुत कर सके। इस कारण भी भारत का शासन मुसलमानों के हाथों में चला गया। लेनपूल राजपूतों की पराजय पर लिखता है, **"साहसी कार्य करने, पृथ्वी पर भगवान का राज्य स्थापित करने के जोशीले प्रचार और इस लोक में सांसारिक पदार्थों को लूटने के जोश से प्रेरित हुए मुसलमानों के पास, हिन्दुओं के विपरीत ये विशेषताएँ थीं।"**

आक्रमणों के प्रभाव:—मुहम्मद गौरी के आक्रमण तूफान की भाँति सिद्ध न हुए। उसने भारत में जम-कर हमले किये और जब वह भारत से लौटता था तो यहाँ के

प्रबन्ध की व्यवस्था करके जाता था। इसलिए यह स्वाभाविक था कि उसके आक्रमण के प्रभाव भी भारत पर चिरस्थायी होते। हमें उसके आक्रमणों के भारत पर निम्नलिखित प्रभाव दृष्टिगोचर होते हैं:—

(१) **राजपूत शक्ति का ह्रास**:–राजपूत राजाओं की जो अपनी वीरता के लिए उस समय विख्यात थे–उसके आक्रमणों से शक्ति सदैव के लिए समाप्त हो गई। इस काल के उपरान्त वे स्वतन्त्र शासकों के रूप में शासन नहीं कर सके। डा० ईश्वरी प्रसाद कहते हैं, "**राजपूतों में ऐसा कोई राजा नहीं बचा, जो मुसलमानों का सामना करने के लिए अपने झण्डे के नीचे अन्य राजपूत राजाओं को संगठित करता।**'

(२) **हिन्दू साम्राज्य का सूर्य अस्त होना**:—मुहम्मद गौरी के आक्रमण से भारत में हिन्दू-साम्राज्य सदैव के लिए विनिष्ट हो गया। पृथ्वीराज चौहान अन्तिम हिन्दू-सम्राट माना जाता है और उसका विनाश तराइन की दूसरी लड़ाई में मुहम्मद गौरी ने कर दिया।

(३) **मुस्लिम–साम्राज्य की स्थापना** :—मुहम्मद गोरी को भारत में मुस्लिम साम्राज्य का संस्थापक माना जाता है। वास्तव में वही प्रथम मुस्लिम आक्रमणकारी था जिसका उद्देश्य भारत को न केवल लूटना था—वरन् उस पर शासन करना भी था। उसने भारत के जिन प्रदेशों को जीता, उनमें से अधिकांश पर उसने अपना शासन स्थापित किया। उसके शासन काल से पानीपत की तीसरी लड़ाई तक (११९२ ई० से १७६१ ई०) तक भारत में मुस्लिम–राज्य ही रहा।

(४) **हिन्दू धर्म का पतन** :—इसके आक्रमणों के परिणाम स्वरूप हिन्दू–धर्म का पतन आरम्भ हो गया। मुस्लिम शासन काल में हिन्दू धर्म के विकास में अनेक तरह से बाधाएं प्रस्तुत की जाती थीं। इसके कारण हिन्दुओं में अपने धर्म के प्रति उदासीनता उत्पन्न हुई। अन्त में सन्तों के प्रयास से वह उदासीनता दूर हुई।

(५) **आर्थिक क्षेत्र तथा कला के क्षेत्र में प्रभाव** :—मुहम्मद गौरी जब भारत से अतुल धन राशि ले गया तो इसके परिणाम स्वरूप देश की आर्थिक दशा का शोचनीय होना स्वभाविक था। इसके अतिरिक्त गौरी के आक्रमणों का मूर्तिकला तथा स्थापत्य कला पर भी प्रभाव पड़ा। आक्रमणों के समय विशाल एवं विख्यात मन्दिर धराशायी कर दिए गये तथा यवनों के नास्तिक होने के कारण मूर्ति कला का विकास अवरुद्ध होगया।

मुहम्मद गोरी का व्यक्तित्व—मुसलमान इतिहासकारों द्वारा मुहम्मद गौरी की पर्याप्त प्रशंसा की गई है। मिनहाजुस सिराज नामक एक तत्कालीन इतिहासकार ने मुहम्मदगौरी की उदारता तथा उसके विद्या–प्रेम की प्रशंसा की है। फरिश्ता के मतानुसार **मुहम्मदगौरी एक न्याय प्रिय शासक. ईश्वर से डरने वाला तथा प्रजा की भलाई**

का ध्यान रखने वाला था।" यह हो सकता है कि मुस्लिम इतिहास लेखकों ने उसे बढ़ा चढ़ा दिया है पर तो भी मुहम्मद गौरी का इतिहास में उच्च स्थान है। वह एक उच्च सेना नायक तथा योग्य प्रशासक था। भारत में आने वाले मुस्लिम आक्रमणकारियों में वह प्रथम मुसलमान शासक था जिसने अपनी योग्यता तथा शासन से भारत में मुस्लिम साम्राज्य का पौधा लगाया। वह राजनीति में भी अच्छी सूझ बूझ से काम लेने वाला था। उसने राजपूत नरेशों की पारस्परिक फूट का भली भांति अवलोकन किया तथा उनकी शोचनीय अवस्था का लाभ उठाकर ही वह भारत में मुस्लिम साम्राज्य स्थापित करने में सफल हुआ। यद्यपि अधिकतर उसकी आकांक्षाएँ पश्चिम की ओर थीं परन्तु फिर भी उसने जो भारत में कार्य किया वह ठोस था। यह सत्य है कि वह महमूद के तुल्य धर्मान्ध नहीं था, फिर भी उसने हिन्दू देवालयों तथा हिन्दू धर्म को विनिष्ट करने का पर्याप्त प्रयत्न किया। कुछ इतिहासकार कहते हैं कि उसने ये घृणित कार्य केवल युद्ध के समय ही किये थे। प्रसिद्ध इतिहासकार लेनपूल का कथन है, **"वह वास्तविक शासक तथा गजनी साम्राज्य का विस्तार करने वाला था।"**

मुहम्मद गौरी की महमूद गज़नवी से तुलना — महमूद गज़नवी और मुहम्मदगौरी दोनों मुस्लिम आक्रमणकारी थे। उन दोनों ने भारत पर अनेक हमले किये ग्यारहवीं शताब्दी में भारत तीस वर्ष तक यदि महमूद के आक्रमणों से उत्पीडित रहा तो बारहवीं शताब्दी में मुहम्मद गौरी ने भारत को अपनी साम्राज्यवादी क्षुधा को शान्त करने के लिए परेशान किया। परन्तु उनके हमले विभिन्न दृष्टिकोण से हुए थे और उनके प्रभाव भी विभिन्न ही दृष्टिगोचर हुए। अतः स्पष्ट है कि उनके उद्देश्य तथा आचार विचार में पर्याप्त अन्तर था।

सेनानायक के रूप में—महमूद विश्व के महान विजेताओं में गिना जाता है। उसने भारत पर १७ आक्रमण किये और वह उन सब में विजयी हुआ। इसके विपरीत मुहम्मद गौरी ने भारत पर न तो इतने आक्रमण किये न वह सब में विजयी ही हुआ इससे स्पष्ट है कि महमूद, मुहम्मद गौरी से अधिक सफल सेनानायक था। महमूद की सेना से राजपूतों की सेना भयभीत थी जब कि मुहम्मद गौरी की सेना को राजपूतों ने तराइन की पहली लड़ाई में बुरी तरह परास्त किया था। इसलिए मजूमदार लिखते हैं- **"सुलतान महमूद निस्संदेह संसार के सबसे महान सैनिकों में से था।"** परन्तु साथ में यह भी हमें विदित होना चाहिए कि मुहम्मद गौरी को महमूद गजनवी से युद्ध के कम साधन प्राप्त थे।

साम्राज्य-संस्थापक के रूप में :— दोनों मुस्लिम आक्रमणकारियों के भारत पर आक्रमण करने के उद्देश्य भिन्न थे। महमूद भारत को केवल लूटना चाहता था— जब कि मुहम्मद गौरी भारत को अपनी साम्राज्यवाद की क्षुधा का ग्रास बनाना चाहता था। यही कारण है कि महमूद ने भारत में [illegible]

नहीं किया जब कि मुहम्मद गोरी ने भारत के विजित प्रदेशों को अपने सुशासन-प्रबन्ध से लम्बे समय के लिये मुस्लिम शासकों के पराधीन बना दिया। महनूद की विजय का क्षेत्र अधिकतर पंजाब तक ही सीमित रहा जब कि मुहम्मद गोरी की विजय समस्त भारत पर व्याप्त थी। प्रशासक के रूप में महमूद गजनवी मुहम्मद गौरी की क्षमता में नहीं आता। यही कारण था कि मध्य-एशिया में, जहाँ कि महमूद का राज्य गोरी से अधिक बिस्तृत था, उसका राज्य उसके मरते ही नष्ट हो गया। इसके विपरीत मुहम्मद गोरी का राज्य भारत में उसकी मृत्यु पर्यन्त उसके साथियों के हाथ में रहा। इसी कारण उसे भारत में मुस्लिम साम्राज्य का संस्थापक माना जाता है। इस तथ्य का समर्थन करते हुये लेनपूल लिखते हैं कि **"मुहम्मद गोरी के समय से लेकर १८५७ ई० के विद्रोह तक दिल्ली पर कोई न कोई मुसलमान राजा अवश्य राज्य करता रहा।"**

राजनीतिज्ञ के रूप में :—यह सत्य है कि महमूद गजनवी सुल्तान गोरी से अधिक धैर्यवान, साहसी तथा उच्च सेनानायक था —परन्तु राजनीति में मुहम्मद गोरी अधिक पारंगत था। वह एक दूरदर्शी राजनीतिज्ञ था। भारत की दयनीय अवस्था उसकी तीक्ष्ण दृष्टि से ओझल न हो सकी। अत: उसने तत्कालीन राजपूत नरेशों की पारस्परिक फूट का पूरा फायदा उठाया और भारत में मुस्लिम साम्राज्य की स्थापना में सफलता प्राप्त की। डा० **ईश्वरी प्रसाद ने मुहम्मद तथा महमूद की तुलना करते हुए लिखा है** कि मुहम्मद **उतना कट्टर न तथा जितना महमूद। परन्तु मुहम्मद महमूद से कहीं बड़ा राजनीतिज्ञ था।**

धर्मान्धता: — धर्मान्धता में दोनों ही सुल्तान (महमूद गजनवी तथा मुहम्मद-गोरी) बढ़े चढ़े थे। दोनों सुल्तानों की इच्छा थी कि भारत में इस्लाम धर्म का प्रचार किया जावे। परन्तु इस दिशा में महमूद, मुहम्मद से अधिक आगे था। यद्यपि हिन्दुओं के देवालय दोनों ही मुस्लिम-आक्रमणकारियों द्वारा ध्वंस किये गये परन्तु जिस तरह उनका विनाश महमूद ने किया वैसा मुहम्मद ने नहीं। इसके अलावा मुहम्मद गोरी ने मन्दिरों का विनाश केवल युद्ध के समय ही किया और शान्ति के समय उन पर दृष्टि उठाकर भी नहीं देखा। परन्तु प्रो० श्री नेत्रपांडेय इस मत का प्रतिपादन करते हैं — **"धार्मिक कट्टरता दोनों शासकों में ही नहीं थी। महमूद ने अपनी सेना में हिन्दुओं को भी स्थान दिया बताया जब कि मुहम्मद ने हिन्दू नरेशों से मित्रता के सम्बन्ध स्थापित किये बताये।"**

साहित्य तथा कला:—यद्यपि महमूद शिक्षित शासक नहीं था, तथापि वह शिक्षा का महत्व समझता था। उसने अपने शासन काल में गज़नी में बहुत से स्कूल, एक विश्व-विद्यालय, एक अजायबघर तथा एक पुस्तकालय आदि का निर्माण किया था। इसके अतिरिक्त वह विद्वानों का आदर करता था। उनबी, अन्सारी, फारूखी तथा फिरदोसी जैसे विद्वान उसके दरबार में विद्यमान थे। परन्तु मुहम्मद गौरी ने विद्वान होते

हुए भी शिक्षा को उन्नत बनाने के लिए कुछ भी नहीं किया। इसलिए इतिहासकार लेनपूल लिखते हैं, "**महमूद के मुकाबले में मुहम्मद गोरी का नाम लगभग अन्धेरे में रहा है। वह साहित्य का कोई संरक्षक न था और न किसी कवि या इतिहासकार ने उसकी महानता तथा शक्ति की प्रशंसा करने के लिए होड़ ही लगाई।**"

ठीक यही दशा कला के क्षेत्र में थी। महमूद गजनवी नैपोलियन महान की भाँति अपने विजित प्रदेशों से उच्च कोटि के कलाकारों को गजनी ले गया। परन्तु मुहम्मद गोरी ने इस प्रकार का कोई कार्य अपने शासन काल में नहीं किया।

मुहम्मद गोरी की मृत्यु:— जैसा कि इससे पूर्व व्यक्त कर आये हैं मुहम्मद का ध्यान भारत से पश्चिम में अधिक केन्द्रीभूत रहता था। मध्य एशिया के देशों को वह अपने साम्राज्य का अंग बनाने का विचार किया करता था। अत: १२०४ ई० में उसने एक महान सेना के साथ ख्वारिज्म पर आक्रमण कर दिया। परन्तु उसे यहाँ विजय के स्थान पर करारी हार नसीब हुई। सुल्तान की इस पराजय से उसके राज्य में अशान्ति तथा अव्यवस्था ने सिर उठाना आरंभ किया। पंजाब में खोखरों ने विद्रोह का झंडा खड़ा कर दिया। निडर सुल्तान खोखरों को दण्डित करने के लिये पंजाब की ओर बढ़ा। झेलम नदी के तट पर उन्हें परास्त भी कर दिंया। परन्तु विजयी सुल्तान जब लाहौर से गजनी लौट रहा था तो १५ मार्च १२०६ ई० में धमियाक नामक स्थान पर खोखरों के एक दल द्वारा उसका वध कर दिया गया।

अध्ययन के लिए संकेत

(१) महमूद गजनवी की मृत्यु के २०० वर्ष उपरान्त उसका विशाल साम्राज्य नष्ट हो गया। उसके वंश का अन्तिम महत्वपूर्ण शासक बहरामशाह था। बहरामशाह को परास्त कर अलाउद्दीन ने 'गोर' वंश की नींव डाली।

(२) गोर गजनी और हिरात के मध्य एक छोटा सा राज्य था। महमूद गजनवी के निर्बल उत्तराधिकारियों के कारण गोर स्वतन्त्र हो गया। यहां के शासक सूर वंशीय अफगान थे। मुहम्मद गोरी इसी वंश का था। उसने गजनी को राज्य की राजधानी बना अपने साम्राज्य विस्तार हेतु भारत पर कई आक्रमण किए। उनमें तराइन के तथा चन्दावर के युद्ध अति विख्यात हैं।

(३) तराइन के दूसरे युद्ध में पृथ्वीराज चौहान की पराजय ने हिन्दू साम्राज्य को भारत में सदैव के लिये नष्ट कर दिया तथा चन्दावर की लड़ाई में जयचन्द की हार ने राजपूत शक्ति को नष्ट करवा दिया।

(४) महमूद ने अपने सहयोगी कुतुबुद्दीन ऐबक तथा बख्तियार खिलजी की सहायता से उत्तरी भारत में मस्लिम साम्राज्य स्थापित किया।

(५) राजपूत लोग अपने सामाजिक ऊंच नीच जातीय भेद तथा धार्मिक विभिन्नता के कारण मुसलमानों से परास्त हुए। उनका पतित नैतिक स्तर व प्राचीन रूढ़ि-पूर्ण सैनिक संगठन भी उनकी पराजय के मूल कारण सिद्ध हुए।

(६) मुहम्मद गोरी के इन आक्रमणों के परिणाम स्वरूप राजपूतों की शक्ति नष्ट हो गई तथा भारत में मुस्लिम साम्राज्य की स्थापना हुई। हिन्दू साम्राज्य नष्ट होने के साथ साथ हिन्दू धर्म तथा कला का भी ह्रास हुआ।

(७) महमूद गजनवी तथा मुहम्मद गोरी की तुलना से प्रतीत होता है कि महमूद एक उच्च सेनानायक तथा मुहम्मद गोरी एक उत्तम राजनीतिज्ञ दिखाई देते हैं। महमूद गजनवी केवल लुटेरा तथा धन के लोभी के रूप में भारतीयों के सम्मुख आता है जबकि मुहम्मद गौरी एक मुस्लिम साम्राज्य संस्थापक के रूप में।

(८) १५ मार्च १२०६ ई० में मुहम्मद गोरी धमियाक नामक स्थान पर खोखर जाति के एक दल द्वारा मौत के घाट उतार दिया गया।

अभ्यासार्थ प्रश्न

१. मुहम्मद गोरी ने किस प्रकार भारत में मुस्लिम साम्राज्य की नींव डाली ?
How did Mohammad Ghori establish the Muslim Empire in India ?

२. तराइन के युद्ध के विषय में आप क्या जानते हैं ? इन युद्धों का भारतीय इतिहास पर क्या प्रभाव पड़ा ?
What do you know of the battle of Tarain ? How did these battles affect Indian History ?

३. मुहम्मद गोरी और महमूद गजनवी की परस्पर तुलना कीजिए।
Compare and contrast Mahamud of Ghazni with Mohammad of Ghori ?

४. "मुहम्मद गोरी भारत में मुस्लिम-साम्राज्य का संस्थापक था।" इस कथन की विवेचना कीजिए।
"Muhammad Ghori was the real founder of Muslim Empire in India". Explain.

५. राजपूत संगठन में कौनसी राजनीतिक, सैनिक और धार्मिक कमजोरियाँ थीं, जिसके कारण मुसलमानों की विजय और राजपूतों की पराजय हुई।
Narrate the political, social, military and religious weaknesses due to which the Muslims conquered and the Rajputs lost.

बीसवाँ अध्याय

गुलाम वंश का शासन

प्रस्तावना– कुतुबुद्दीन ऐबक (उसका प्रारंभिक काल, आरंभिक कठिनाइयाँ, विजय, शासन–प्रबन्ध, व्यक्तित्व तथा मृत्यु)

ईल्तुतमिश (गद्दी पर बैठना, प्रारंभिक कठिनाइयाँ तथा विजय–साम्राज्य–संस्थापक, मृत्यु तथा चरित्र) उसके उत्तराधिकारी: सुल्ताना रजिया– गद्दी पर बैठना, कठिनाइयाँ व उसका पतन, चरित्र। ईल्तुतमिश के अन्य उत्तराधिकारी: बहरामशाह, मसूदशाह और नासिरुद्दीन।

प्रस्तावना—मुहम्मद गोरी के कोई पुत्र न था। अतः उसका महान साम्राज्य उसके गुलामों द्वारा विभक्त कर लिया गया। वह अपने साम्राज्य को गुलामों को ही देने के पक्ष में था। एक बार उसके जीवन काल में उसका ध्यान इस ओर आकर्षित किया गया था कि उसके पुत्र तो है नहीं अतः उसकी मृत्यु के पश्चात उसके साम्राज्य का क्या होगा। इस पर मुहम्मद गौरी ने सहर्ष उत्तर दिया कि दूसरे मुसलमानों के एक पुत्र होता है या दो होते हैं। मेरे तो हजारों तुर्की गुलाम पुत्र हैं जो मेरे बाद मेरे साम्राज्य के उत्तराधिकारी होंगे तथा समस्त विजित प्रदेशों के खुतबों में मेरे नाम को बनाये रखने का प्रयास करेंगे। मुहम्मद गौरी के इस कथन से स्पष्ट होता है कि वह अपने साम्राज्य को अपने तुर्की गुलामों के हाथों में देने से सहमत था। जब १२०६ ई० में मुहम्मद गौरी इस दुनियाँ से सदैव के लिए चल बसा तो वास्तव में ऐसा ही हुआ। उसका साम्राज्य उसके शक्तिशाली गुलामों द्वारा हथिया लिया गया। दिल्ली प्रदेश का स्वामी कुतुबुद्दीन ऐबक बना। शनैः शनैः वह उत्तरी भारत का शासक बन बैठा। इसके शासन–काल से १२९० ई० तक जितने भी मुसलमान शासक दिल्ली के राज्य सिंहासन पर बैठे, वे या तो स्वयं गुलाम थे या गुलाम–शासकों के वंशज थे। इसलिए इस वंश को गुलाम वंश कहते हैं।

कुतुबुद्दीन ऐबक (१२०६–१२१०) उसका बाल्य-काल :—गुलाम–वंश का प्रथम शासक कुतुबुद्दीन ऐबक था। वह तुर्किस्तान का रहने वाला था। उसे निशापुर के क़ाज़ी फ़करुद्दीन ने खरीद लिया था। फकरुद्दीन एक उदार वृत्ति का मनुष्य था। अतः उसने कुतुबुद्दीन का अपने पुत्र के समान पालन किया। इसकी निगरानी में कुतुबुद्दीन शिक्षा पाने में भी समर्थ रहा। परन्तु जब फकरुद्दीन का देहान्त हो गया तो उसके उत्तराधिकारियों ने उसे एक सौदागर के हाथों बेच दिया। सौदागर उसे

गजनी ले आया। कुतुबुद्दीन एक सुन्दर मनुष्य नहीं था। गजनी में उस पर मुहम्मद गौरी की दृष्टि पड़ी, सुल्तान ने उसकी कुरूपता का तनिक भी ध्यान न करते हुए उसे खरीद लिया। शनैः शनैः वह अपने गुणों के कारण सुल्तान का विश्वास भाजन बन गया। शीघ्र ही वह सुल्तान द्वारा 'अमीर आखूर' (घुड़साल का अफसर) नियुक्त किया गया। भारत-विजय में भी कुतुबुद्दीन अपने स्वामी मुहम्मद गौरी के साथ था। तराइन के युद्ध में उसने अपनी अभूतपूर्व वीरता का परिचय दिया था। इसी कारण जब ११९२ ई० में मुहम्मद गोरी पृथ्वीराज चौहान को परास्त कर गजनी लौटा तो वह कुतुबुद्दीन को यहाँ का प्रबन्ध सौंप गया। इस प्रकार तुर्किस्तान का एक साधारण व्यक्ति भारत का वाइसराय बन गया।

उसकी प्रारम्भिक कठिनाइयां :— ऐबक को भारत का शासक बनते ही अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। मुहम्मद गौरी की मृत्यु के उपरान्त उसका साम्राज्य उसके गुलामों में विभक्त हो गया था। गजनी का स्वामी ताजुद्दीन यल्दोज और मुल्तान का स्वामी नासिरुद्दीन कुबाचा था। स्वयं कुतुबुद्दीन के अधिकार में दिल्ली था और लखनौती का शासन इखतियारुद्दीन के हाथ में था। यल्दोज जो गजनी का स्वामी बन बैठा था—दिल्ली को भी गजनी का ही एक भाग समझता था। परन्तु ऐबक ने यल्दोज को सन् १२०८ ई० में परास्त कर अपने एक प्रबल शत्रु को दबा दिया। यल्दोज ने अपनी पुत्री का विवाह भी ऐबक के साथ कर दिया। नासिरुद्दीन कुबाचा के विरोध को समाप्त करने के लिए कुतुबुद्दीन ने उस के साथ अपनी बहिन की शादी करदी। इन सरदारों के विरोध के अतिरिक्त कुतुबुद्दीम के समक्ष दूसरी कठिनाई यह थी कि गुलाम होने के कारण मुसलमान उसे गद्दी का वास्तविक अधिकारी नहीं समझते थे। इतिहासकार इब्नबतूता उसे प्रभुता—सम्पन्न शासक नहीं मानता। परन्तु फिरोजकोट के सुलतान महमूद ने उसे मान्यता—पत्र प्रदान किया। इसके अलावा कुछ इतिहासकार इस मत का प्रतिपादन करते हैं कि सुल्तान मुहम्मद गोरी की मृत्यु पर मुसलमानों ने ऐबक को लाहौर निमन्त्रित किया तथा उसे अपना शासक निर्वाचित किया। कुछ भी हो कुतुबुद्दीन ने शनैः शनैः अपनी दूरदर्शिता तथा शासन करने की योग्यता से इन कठिनाइयों पर शीघ्र ही विजय पा ली और वह उत्तरी भारत का प्रभुता—सम्पन्न शासक बन बैठा।

उसकी विजय:— कुतुबुद्दीन अपने एक अच्छे विजेता होने का परिचय सुल्तान बनने से पूर्व ही दे चुका था। अपने वायसराय काल में उसने गुजरात पर ११९५ ई० में तथा १२०२ ई० में कालिंजर पर आक्रमण किया। कालिंजर पर मुसलमानों का अधिकार हो गया। ग्वालियर ११९६ ई० में उसके आधीन हो गया। इनके अतिरिक्त उसने बनारस तथा कोल पर विजय प्राप्त की। बुन्देलखण्ड के वीर राजपूत भी उसके आक्रमण से नहीं बच सके।

इस प्रकार जब यह वायसराय था तभी इसने अपने मालिक के हृदय में अच्छा स्थान जमा लिया था। उत्तरी भारत के लोग उसके आतंक से आतंकित हो उठे थे। शासक के रूप में केवल उसने १२०८ ई० में गजनी पर आक्रमण किया था और वहाँ उसने विजय भी प्राप्त करली थी।

कुतुबुद्दीन एक शासक के रूप में—ऐबक एक योग्य तथा दूरदर्शी शासक था। यद्यपि उसने कुल चार वर्ष ही शासन किया था तथापि उसने एच. जी. केनी के मतानुसार अपने को अल्पकाल में कुशल योद्धा और सुयोग्य शासक प्रमाणित कर दिखाया। उसने प्रथम दूरदर्शिता का कार्य यह किया कि अपने विपच्छियों को उनके साथ वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित करके दबा दिया। इसका शासन सेना तथा धर्म पर आधारित था। परन्तु राज्य में शान्ति थी और व्यापार सुरक्षित था। सड़कों पर चोर व डाकुओं का भय नहीं था। उसके समय के प्रसिद्ध इतिहासकार 'हसन निजामी' ने उसके शासन के विषय में लिखा है, **"देश का राज्य प्रबन्ध अच्छा था। देश में शान्ति थी और सब लोग बड़े सुखी थे। सब के साथ न्याय का व्यवहार किया जाता था।"** उक्त इतिहासकार ऐबक से इतना प्रसन्न था कि उसने उसके शासन की प्रशंसा में यहां तक लिखा है कि उसके राज्य में भेड़ और भेडिया एक घाट पानी पीते थे।

व्यक्तित्व तथा मृत्यु--गुलाम वंश का संस्थापक तथा मुस्लिम साम्राज्य का संस्थापक केवल चार वर्ष के उपरान्त ही लाहौर में (चोगान) पोलो खेलते हुए घोड़े से गिर जाने के कारण १२१० ई० के नवम्बर मास में इस दुनिया से सदैव के लिए विदा हो गया। वास्तव में वह एक चतुर शासक तथा उच्चकोटि का सेना नायक था। उसमें सैन्य संचालन की अभूत पूर्व योग्यता थी। यही कारण था कि वह समस्त युद्धों में विजयी हुआ। यह सत्य है कि उसमें धार्मिक भावना उग्र रूप में विद्यमान थी और उसने कई मन्दिरों को धराशायी कर कई मस्जिदों का निर्माण भी किया। परन्तु उसने यह सब कुछ केवल युद्ध के समय ही किया था। अन्यथा हिन्दुओं के प्रति उसका व्यवहार उदार था। दान देने की भावना उसकी इतनी प्रबल थी कि वह 'लालबख्श' की उपाधि से विभूषित किया गया था। इसके साथ ही उसका स्थापत्य कला की ओर भी अनुराग था। कहते हैं कि दिल्ली में स्थित कुतुबमीनार का निर्माण इसी ने आरंभ कराया था। इसके अतिरिक्त उसने कुछ मस्जिदें भी बनवाई थीं। ऐसा कहा जाता है कि अजमेर का "ढ़ाई दिन का झोंपड़ा" भी इसी के द्वारा बनाया गया था। परन्तु डा० स्मिथ ने इस **शासक की गणना, मध्य एशिया के क्रूर तथा निर्दयी विजेताओं में की है।**

ईल्तुतमिश (१२११-१२३६)

राज्यगद्दी पर बैठना:—जब कुतुबुद्दीन सन् १२१० ई० के नवम्बर में मर गया तो उसका पुत्र आरामशाह गद्दी पर बैठा। परन्तु आरामशाह आराम में व्यस्त रहने वाला तथा एक निकम्मा शासक सिद्ध हुआ। इस कारण उसके गद्दी पर बैठते ही राज्य

में चारों ओर अशान्ति के बादल मंडराने लगे। अमीर लोग अपने अस्तित्व को स्वतन्त्र रूप में व्यक्त करने लगे। इस स्थिति का फायदा उठाकर बदायूँ का सूबेदार ईल्तुतमिश
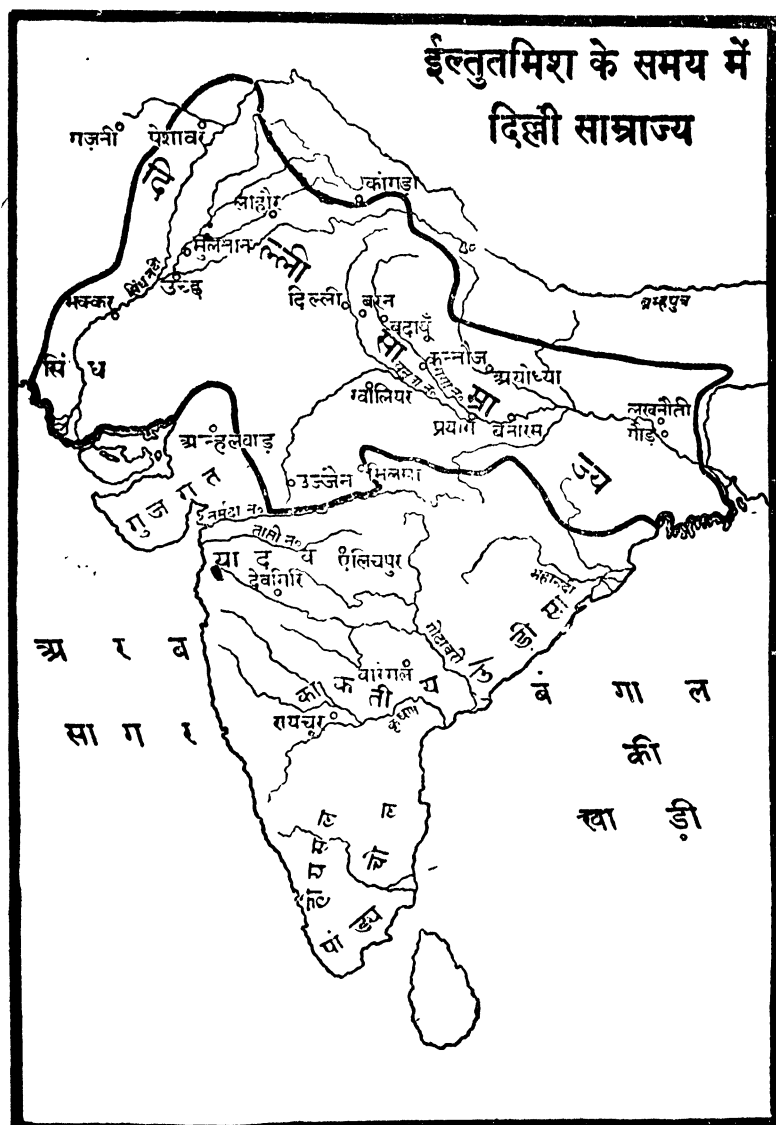
आरामशाह को गद्दी से हटाकर स्वयं दिल्ली का शासक बन गया। वह गुलामों का गुलाम समझा जाता है। परन्तु वह इस उच्च पद पर शनैः शनैः अपनी योग्यता के कारण पहुँचा था।

वह अल्बारी कबीले का तुर्क था। इसकी विलक्षण बुद्धि का विकास इसके बाल्य-काल से ही आरंभ हो गया था। इससे इसके अन्य भ्राताओं को जलन हुई और उन्होंने उसे धूर्तता से घर से निकलवा दिया। इस असहाय अवस्था में वह बुखारा के एक व्यापारी जलालुद्दीन द्वारा खरीद लिया गया। जलालुद्दीन उदार वृति का था। उसने ईल्तुतमिश को अपने पुत्रवत समझा और उसकी शिक्षा का यथोचित प्रबन्ध किया। परन्तु व्यापारी की मृत्यु के पश्चात् ईल्तुतमिश उसके उत्तराधिकारियों द्वारा कुतुबुद्दीन ऐबक को बेच दिया गया। अपने इस स्वामी को भी ईल्तुतमिश ने अपनी प्रखर प्रतिभा से प्रसन्न कर लिया। कई इतिहासकारों का ऐसा कथन है कि जितना ऐबक मुहम्मद गौरी के लिए महत्व पूर्ण था उतना ही ईल्तुतमिश ऐबक के लिए महत्व पूर्ण था। इसी कारण कुतुबुद्दीन ऐबक ने अपनी एक पुत्री की शादी ईल्तुतमिश के साथ करदी थी और उसे बदायूँ का शासक भी नियुक्त कर दिया था।

उसकी प्रारंभिक कठिनाइयाँ तथा उन पर विजय;— जैसा कि हम ऊपर व्यक्त कर चुके हैं ईल्तुतमिश गुलामों का गुलाम था। अतः यह स्वाभाविक था कि उसकी प्रभुता स्वीकार करने में अमीर लोग आनाकानी करते। यही कारण था कि उसे राज्य का भार सम्भालते ही चारों ओर कठिनाइयों का सामना करना पड़ा और अपना समस्त शासन-काल इन विद्रोहियों के दबाने में ही लगाना पड़ा। उसकी कठिनाइयों को हम निम्न भागों में विभक्त करते हैं-

(१) अमीरों द्वारा सत्ता स्वीकार करने से इन्कार करना।

(२) सूबेदारों के विद्रोह को दबाना।

(३) चंगेजखाँ का आक्रमण।

(४) हिन्दू-राजाओं को अपनी आधीनता स्वीकार कराना

अमीरों को दबाना :— उसने सर्व प्रथम अमीरों की ओर ध्यान दिया और उनको दिल्ली के समीप जूद नामक स्थान पर परास्त किया। इस पराजय के उपरान्त राज्य के लगभग सभी बड़े अमीर ईल्तुतमिश की प्रभुता मानने को बाध्य हो गये और उन्होंने शासन में शान्ति बनाये रखी।

सूबेदारों को दबाना :— सूबेदारों में सबसे प्रबल गजनी का शासक यल्दोज था। वह अपने को स्वतन्त्र शासक समझता था। यद्यपि कुतुबुद्दीन ने उसे १२०८ ई० में परास्त कर अपने आधीन बना लिया था-परन्तु उसकी मृत्यु- उपरान्त वह पुनः स्वयं को एक स्वतन्त्र शासक समझने लगा। यह सत्य है कि वह एक वीर तथा विद्वान शासक था। इस कारण जब वह ख्वारिज्म के शाह से परास्त हो गया तो उसने कुबाचा को परास्त कर १२१४ ई० में पंजाब पर अधिकार कर लिया। शत्रु को समीप आया जान

के युद्ध में परास्त कर दिया। यल्दोज बन्दी बनाया गया और बाद में मौत के घाट उतार दिया गया।

कुबाचा का दमन:— यल्दोज़ की भाँति नासिरुद्दीन कुबाचा भी ईल्तुतमिश की आधीनता मानने को उद्यत नहीं था। वह मुल्तान तथा उच्च का एक स्वतन्त्र शासक बन गया था। अत: १२१७ ई० में ईल्तुतमिश ने उसके विरुद्ध युद्ध आरम्भ किया और १२२७ ई० में उससे पूर्ण छुटकारा पाया जब कि वह भागने का प्रयास करते हुए इसी वर्ष सिन्धु नदी में डूब कर मर गया।

अली मरदनखाँ का दमन—बख्तियारुद्दीन की मृत्यु के बाद अलीमरदनखाँ बंगाल का शासक नियुक्त हुआ। ऐबक की मृत्यु के उपरान्त वह स्वतन्त्र हो गया। उसने अपने नाम के सिक्के चलाये तथा उसके नाम का खुतबा भी पढ़ा गया। परन्तु अलीमरदनखाँ एक क्रूर तथा निर्दयी शासक था। अतः वह मुसलमान अमीरों द्वारा मौत के घाट उतार दिया गया। उसकी मृत्यु के पश्चात गयासुद्दीन खिलजी वहाँ का शासक बना। उसकी भी यही नीति रही और उसने जाज नगर, (आसाम) तिरहुत, कामरूप (आसाम) आदि पर अधिकार कर लिया। ईल्तुतमिश इसे सहन नहीं कर सका और उसने १२१५ ई० में बंगाल पर चढ़ाई कर दी। गयासुद्दीन ने सुल्तान की अधीनता अंगीकार करली और बहुत सा धन देकर अपना पिंड छुड़ाया। परन्तु ज्योंही सुल्तान दिल्ली की ओर मुड़ा कि गयासुद्दीन ने पुनः स्वतन्त्र शासक होने का दावा किया। ईल्तुतमिश के पुत्र नासिरुद्दीन ने, जो उस समय अवध का सूबेदार था गयासुद्दीन को पूर्णत: परास्त कर सुल्तान के आधीन बना दिया।

चंगेजखाँ का आक्रमण—सन् १२२१ ई० में ईल्तुतमिश को इन सब आपत्तियों से भी भयंकर आपत्ति का सामना करना पड़ा। इस वर्ष मंगोल जाति का नेता चंगेजखाँ ख्वारिज्म के शाह जलालुद्दीन का पीछा करता हुआ भारत आ पहुंचा। चंगेजखाँ का जन्म सन् ११५५ ई० में हुआ था और उसका समस्त जीवन संघर्ष मय रहा। इस कारण उसमें वीरता व क्रूरता कूट कूट कर भरी हुई थी। मंगोल जाति को सुसंगठित तथा सुदृढ़ बनाने वाला यह पहला व्यक्ति था। समस्त मध्य एशिया में इसका आतंक छाया हुआ था। इससे परास्त हुए जलालुद्दीन ने भारत आकर सिन्धु नदी के तट पर चंगेज के विरुद्ध युद्ध करने की पुन: ठानी। इसके अलावा ईल्तुतमिश से सहायता प्राप्त करने की दृष्टि से उसने उसके दरबार में अपना एक दूत भेजा। दूत ने जब सुल्तान के समक्ष यह व्यक्त किया कि जलालुद्दीन आपकी शरण में दिल्ली रहना चाहता है तो इसके प्रत्युत्तर में ईल्तुतमिश ने उस दूत का वध करवा दिया और शाह को कहला भेजा कि दिल्ली की गर्म जलवायु आपके माफिक नहीं है। इस पर शाह भारत छोड़कर फारस की ओर भाग गया और उसके चले जाने पर मंगोल लोग भी भारत

प्रकार भारत पर आई एक भीषण आपत्ति सुगमता से ही टल गई। इसके उपरान्त सुल्तान ने पश्चिम की सुरक्षा को और भी दृढ़ कर दिया।

हिन्दू राजाओं का दमनः—जैसा कि हमें विदित है कुतुबुद्दीन हिन्दू नरेशों को पूर्णतया अपने अधिकार में नहीं ला सका था। अतः उसकी मृत्यु होते ही वे पुनः अपने को पूर्ण स्वतन्त्र समझने लगे और ईल्तुतमिश के विरुद्ध अपनी शक्ति बढ़ाने लगे। जब सुल्तान मुसलमान अमीरों तथा सूबेदारों के भय से मुक्त हो गया तो उसने विद्रोही हिन्दू नरेशों को दबाना आरम्भ किया। १२२६ ई० में उसने रणथम्भौर तथा १२२८ ई० में जालौर के राजपूत राजाओं को परास्त कर अपनी अधीनता स्वीकार करने को बाध्य किया। सन् १२३२ ई० में ग्वालियर का राजा मलय वर्मा तथा कालिंजर का राजा त्रिलोक्य वर्मा ईल्तुतमिश द्वारा परास्त हुए। इस प्रकार अन्य कई हिन्दू राज्यों को अपने आधीन कर उसने हिन्दू नरेशों के विरोध को समाप्त कर दिया।

मुस्लिम साम्राज्य का संस्थापक :—कई इतिहासकारों की धारणा है कि मुस्लिम राज्य का वास्तविक संस्थापक ईल्तुतमिश ही था। मुहम्मद गोरी भारत में केवल एक विजेता के रूप में आया था और उसके विजित प्रदेशों की रक्षा उसके वाइसराय कुतुबुद्दीन ऐबक ने की थी। कुतुबुद्दीन अपने शासन के अल्प काल में युद्ध ही करता रहा। उसे शासन को संगठित करने का अवसर प्राप्त नहीं हुआ। परन्तु ईल्तुतमिश ने उत्तरी भारत को जीत कर अपने राज्य को संगठित किया। एक सुव्यवस्थित शासन व्यवस्था उसी के शासनकाल में स्थापित हो पाई थी। इसके अलावा कुतुबुद्दीन का ध्यान लाहौर पर ही केन्द्रीभूत रहा। ईल्तुतमिश प्रथम मुस्लिम शासक था जिसने सच्चे अर्थ में दिल्ली को अपने राज्य की राजधानी बनाई। इससे पूर्व का सुल्तान स्वयं अपने को शासक नहीं समझता था। वह केवल अपनी शक्ति के सहारे शासक बना था। इसी कारण उसने अपने शासन-काल में न कोई सिक्के चलाए और न अपने नाम का खुतबा पढ़ा। परन्तु ईल्तुतमिश को बगदाद के खलीफा ने दिल्ली का शासक माना। इसी कारण उसने अपने नाम के सिक्के भी चलाये और खुतबा भी अपने नाम का पढ़ा। इन्हीं कारणों से इतिहासकार डा० एस० आर० शर्मा कहते हैं कि वह दिल्ली सल्तनत का वास्तविक संस्थापक था।

इतिहासकारों की मान्यता है कि यह उसी के सद्प्रयत्नों का परिणाम था कि राज्य में अराजकता समाप्त हुई और शान्ति की स्थापना हुई। यदि वह नहीं होता तो शायद है कि गुलाम वंश समाप्त हो जाता। इसीलिए सर वुल्जले तथा डा० के० दत्त तो उसे गुलाम वंश का सबसे महान शासक समझते हैं। परन्तु इस पर अन्य इतिहासकार सहमत नहीं होते। वे यह स्थान बलबन को देते हैं। यह तो सत्य ही है कि वह गुलाम वंश में एक श्रेष्ठ सुल्तान हुआ तथा भारत में मुस्लिम साम्राज्य की नींव को दृढ़ करने वाला हुआ।

उसकी मृत्यु तथा चरित्र:—जैसा कि ईल्तुतमिश के शासन काल से स्पष्ट होता है उसका समस्त जीवन संघर्ष एवं लड़ाइयों में व्यतीत हुआ। इस कठोर परिश्रम के कारण उसका स्वास्थ्य शीघ्र ही खराब हो गया। वह सन् १२३६ ई० में बीमार पड़ा और उसी वर्ष २६ अप्रेल को इस दुनियाँ से बिदा हो गया।

ईल्तुतमिश एक महान वीर तथा सफल सेनानायक था। अपने राज्य के समस्त बिद्रोहियों पर विजय पाना इस बात का स्पष्ट प्रमाण है। परन्तु ईल्तुतमिश इतिहास में केवल एक विजेता के रूप में ही नहीं आता वरन् वह एक उच्च कोटि का प्रशासक भी था। उसने राज्य में व्याप्त अराजकता को समाप्त कर एक संगठित तथा व्यवस्थित राज्य की स्थापना की। धार्मिक मामलों में वह एक अन्धविश्वासी के रूप में हमारे सामने आता है। परन्तु विद्वान एवं पवित्र मनुष्यों का स्वागत करने को वह सदैव उद्यत रहता था। विजेता होते हुए भी वह कला प्रेमी था। कुतुबुमीनार को पूर्ण कराने का कार्य उसी का था और जिसके विषय में इतिहासकार लेनपूल ने बड़ी प्रशंसा की है। हिन्दू स्थापत्य कला से भी उसे अनुराग था। इन सब उपर्युक्त विशेषताओं से मुग्ध हुआ उसका समकालीन इतिहासकार मिनहाजुस्सिराज लिखता है- "आज तक ऐसा कोई शासक नहीं हुआ जिसमें इतनी आदर्श धर्मनिष्ठा, दरवेशों एवं मौलवियों, मुल्लाओं के प्रति इतनी श्रद्धा रही हो।"

ईल्तुतमिश के उत्तराधिकारी:—ईल्तुतमिश स्वयं एक गुलाम था। पर अब वह अपने साम्राज्य को अपने वंशजों के अधिकार में ही रखना चाहता था। अत: उसने अपने जीवनकाल में ही अपने ज्येष्ठ पुत्र नासिरुद्दीन को अपने राज्य का उत्तराधिकारी नियुक्त कर दिया था। नासिरुद्दीन एक योग्य प्रबन्धक तथा वीर सेनानी था। परन्तु अभाग्यवश उसकी मृत्यु अपने पिता ईल्तुतमिश के समय में ही हो गई। पुत्र की मृत्यु पर सुल्तान को बहुत दु:ख हुआ। राज्य के उत्तराधिकारी का प्रश्न जटिल बन गया था क्योंकि वह अपने शेष पुत्रों को विलासी होने के कारण राज्य के उत्तराधिकारी नहीं समझता था। अत: उसने अपने राज्य के उत्तराधिकारी पद पर अपनी पुत्री रजिया को नियुक्त किया।

रुकुनुद्दीन फिरोज:—यद्यपि ईल्तुतमिश ने अपनी मृत्यु से पूर्व अपना उत्तराधिकारी नियुक्त कर दिया था परन्तु वह उत्तराधिकारी उसके सरदारों को स्वीकार नहीं हुआ—क्योंकि वह उत्तराधिकारी उसकी पुत्री थी। अत: सरदारों ने उसके दूसरे पुत्र रुकुनुद्दीन फिरोज को सुल्तान बनाया। परन्तु यह शासक सर्वथा अयोग्य साबित हुआ। वह विलासी एवं निर्बल था। वह सदैव अपने को विलासिता में निमग्न रखता था। राज्य के खजाने को उसने खाली कर दिया। इतिहासकार लेनपूल उसका चरित्र चित्रण इस प्रकार करता है "फिरोजशाह प्रथम सुन्दर, दयालु, उदार हृदय, ऐय्याशी, मूर्ख नौजवान था, जो अपना धन गवैयों, मसखरों और बुरी बातों में उड़ाता था। शराब

के नशे में चूर धुत्त होकर अपने हाथी पर झूमता हुआ प्रशंसकों की भीड़ पर चम चमाती सोने की मोहरें फैंकता था।"

इस निकम्मे शासक का शासन उसकी माता शाह तुर्कान ने चलाना चाहा। परन्तु वह भी बड़ी क्रूर थी। माता और बेटे दोनों ने मिलकर ईल्तुतमिश के अन्य पुत्र कुतुबुद्दीन की निर्दयता से आँखें निकल वालीं। इससे सरदार सुल्तान के विरुद्ध हो गये। इनके विरुद्ध होने के कारण राज्य की सुरक्षा को संकट तथा राज्य में बढ़ती हुई अराजकता भी थे। इसलिए ६ नवम्बर १२३६ ई० को उसका सरदारों ने वध कर दिया।

सुल्ताना रजिया (१२३६–१२४०) गद्दी पर बैठना :— जैसा कि हम ऊपर स्पष्ट कर चुके हैं कि ईल्तुतमिश के लड़के अयोग्य थे। अत: उसने अपने जीवन काल में ही अपनी पुत्री रजिया को अपना उत्तराधिकारी घोषित करते हुए कहा था, "मेरे पुत्र जवानी की ऐय्याशी में गर्क हैं—और उनमें से कोई भी सुल्तान बनने के लायक नहीं है। रजिया ही देश का शासन चलाने योग्य है और कोई नहीं है।" परन्तु उसके प्रधान मन्त्री मुहम्मद जुनैदी ने रजिया का विरोध किया और ईल्तुतमिश की मृत्यु पर उसके पुत्र रुकुनुद्दीन को ही सुल्तान बनाया। पर उसकी क्रूरता व विलासिता के कारण सरदारों ने उसका बध कर दिया और उसके स्थान पर रजिया को राज्य–गद्दी पर बिठाया।

उसका कठिनाइयों का सामना करना तथा पतन:— यद्यपि सुल्ताना रज़िया ने शासन–प्रबन्ध ठीक तरह से चलाया था– परन्तु वह अपने कट्टर मुसलमान अमीरों को सन्तुष्ट न कर सकी। वह दरबार में खुले रूप से आती तथा स्वयं न्याय करती थी। पर्दा को उठाकर उसने ताक में रख दिया था। युद्ध संचालन में भी वह घोड़े की पीठ पर बैठा करती थी। इस कारण कट्टर विचार वाले मुसलमान अमीर उसके विरोधी बन गये। इस विरोध के प्रोत्साहन में मुहम्मद जुनैदी ने विशेष सहयोग दिया। उसने बदायूँ, मुल्तान, हांसी तथा लाहौर के सूबेदारों को उसके विरुद्ध भड़का कर अपना समर्थक बना लिया। उसने उनकी सेनाओं के साथ दिल्ली की ओर कूंच किया। इस लड़ाई में रजिया ने बड़ी कूटनीति से काम लिया और अपने विपक्षियों को दबा दिया। इस विजय के परिणाम स्वरूप उसका पंजाब पर आधिपत्य हो गया और बंगाल तथा सिन्ध के सूबेदारों ने भी रानी की सत्ता निर्विरोध स्वीकार करली।

अल्तूनिया का विद्रोह:— सुल्ताना रजिया ने अपनी योग्यता तथा वीरता से विरोधी सूबेदारों पर विजय प्राप्त करली थी। परन्तु अभी वह संकटों के परे न हुई थी। जब रजिया पंजाब के सूबेदार अयाजखाँ को दबा कर राजधानी लौट रही थी तब उसे एक भंयकर आपत्ति का सामना करने को बाध्य होना पड़ा। सुल्ताना रजिया का इस समय तक एक याकूत हब्शी से प्रेम हो गया था। मुसलमानों को यह बात अच्छी न

लगी। यद्यपि इतिहासकार मजूमदार व लेनपूल इस मत का प्रतिपादन करते हैं कि रानी का उससे बुरा सम्बन्ध नहीं था पर फिर भी मुसलमान रानी की इस बात से नाराज थे। अल्तूनिया ने इस बात को लेकर सुल्ताना के विरुद्ध बगावत का झंडा खड़ा कर दिया। जब सुल्ताना रजिया विद्रोह को शान्त करने भटिंडा पहुंची तो उसके प्रेमी याकूत को मौत के घाट उतार दिया गया और स्वयं रानी कैद करली गई। इस भयंकर विपदा में पड़कर भी रजिया घबराई नहीं। उसने अपनी कूट–नीति से विद्रोहियों के नेता अल्तूनिया को अपना बना लिया और उसके साथ शादी भी करली। इसी बीच में विरोधी मुसलमान अमीरों ने रजिया के भाई बहराम को दिल्ली का सुल्तान घोषित कर दिया। ऐसा होने पर रजिया अल्तूनिया के साथ अपना खोया राज्य प्राप्त करने की दृष्टि से दिल्ली की ओर बढ़ी। परन्तु अक्टूबर १२४० ई० को बहराम की सेना ने उसे परास्त कर दिया। इस युद्ध का परिणाम यही निकला कि अल्तूनिया और सुल्ताना रजिया दोनों ही इस विश्व में न रहे।

चरित्र:—रजिया दिल्ली की बड़ी ही योग्य शासिका थी। वह प्रथम व अन्तिम दिल्ली की सुल्ताना थी। उसने दिल्ली पर लगभग ३½ वर्ष शासन किया। परन्तु उस अल्प काल में भी उसने राज्य को भली भाँति संभाले रखा। वह एक साहसी, राजनीतिक तथा प्रतिभा सम्पन्न शासिका थी। उसका चरित्र चित्रण करते हुए तत्कालीन इतिहासकार मिनहाज-उस-सिराज लिखते हैं "वह एक महान साम्राज्ञी, प्रजा-न्यायी, प्रजा-उपकारी, राजनीति विशारद, प्रजा रक्षक, और सेनानेत्री थी।" इन गुणों के रहते हुए भी वह अपने विद्रोही अमीरों द्वारा क्यों शीघ्र ही काल का ग्रास बनादी गई—यह प्रश्न उठना स्वाभाविक है। परन्तु इसका उत्तर हमें एक इतिहासकार के कथन में मिलता है "एक शासक के सभी गुण उसमें वर्तमान थे। उसमें अगर दोष था तो यह था कि वह लड़का न होकर लड़की थी। केवल लड़की होने के कारण ही वह अपने अमीरों की प्रिय नहीं बन सकी। स्वयं हज़रत मुहम्मद साहब ने स्त्रियों के विषय में लिखा है, "संसार में सबसे अमूल्य एक पवित्र वस्तु है–परन्तु जो लोग स्त्री को अपना शासक बनायेगें उन्हें कभी मन की शांति प्राप्त नहीं हो सकती।" हजरत मुहम्मद के इस कथन ने सुल्ताना को मुसलमान–प्रजा का आदर का भाजन नहीं बनने दिया। इसके अलावा उस सुयोग्य सुल्ताना का पतन चालीस गुलामों के विरोध के कारण भी हुआ।

बहरामशाह (१२४०–४२):—बहरामशाह को सुल्ताना रजिया के जीवन काल में ही चालीस गुलामों द्वारा शासक घोषित कर दिया था। परन्तु उन चालीस गुलामों में एकता नहीं थी ! इस कारण देश में सुव्यवस्थित शासन स्थापित नहीं हो सका। बहरामशाह भी अपने ज्येष्ठ भ्राता रूकुनुद्दीन की भाँति क्रूर था। यद्यपि उसने वीरता से कई विद्रोह दबा दिए थे। परन्तु जब उसने अयूब दरवेश के प्रभाव में आकर एक काजी की हत्या करवा दी तो अमीर लोग उससे क्रुद्ध हो गये। अमीरों को क्रुद्ध देख

सेना ने सुल्तान के विरुद्ध विद्रोह कर दिया। सेना ने सुल्तान को दिल्ली में घेर लिया और उसे १० मई १२४२ ई० को बन्दी बना कर कुछ दिनों पश्चात् यमलोक पहुँचा दिया। एक इतिहासकार का कथन है कि उसके दो वर्ष षड़यन्त्रों और प्रति-षड़यन्त्रों, कपट, हत्याओं और क्रूर हत्याओं में व्यतीत हुए।

मसूदशाह (१२४२-४६) :—बहरामशाह की मृत्यु के अनन्तर रजिया का भतीजा मसूदशाह दिल्ली का स्वामी बना। यद्यपि इसके शासन-काल का पूरा विवरण प्राप्त नहीं होता है—तथापि कहा जाता है कि वह भी एक क्रूर शासक था। उसके हाथ में राज्य की सत्ता नहीं थीं। वह अपनी विलासिता के कारण अपनी सत्ता खो बैठा था। सूबेदार लोग उसके आधिपत्य से मुक्त होने का प्रयास करने लगे। इसके शासन काल में मंगोलों का आक्रमण भी हुआ। इस कारण असन्तुष्ट अमीरों ने उसे १२४६ ई० में पदच्युत कर दिया।

नासिरुद्दीन (१२४६-१२६६) :—जब अमीरों द्वारा मसूदशाह पदच्युत कर दिया गया तब ईल्तुतमिश का सबसे छोटा बेटा गद्दी पर बैठा। वह एक अत्यन्त दयालु तथा ईश्वर भक्त शासक था। अत: उसकी गणना सन्त-सम्राटों में की जाती है। परन्तु इसका आशय हमें यह नहीं लेना चाहिए कि वह नाम मात्र का शासक था। वह राज्य-कार्य देखता था—परन्तु अधिकांश राज्य-कार्य उसके प्रधान मन्त्री बलबन द्वारा सम्पन्न होते थे। वह रक्त रञ्जन की भावना नहीं रखता था। वह विद्वानों का आदर करता था। इसलिए एक इतिहासकार उसके विषय में लिखता है—"सत्य यही मालूम होता है कि नवयुवक शासक, सादगी, मितव्ययिता और व्यावहारिक पवित्रता के गुणों से परिपूर्ण था—जो तब के शासकों में लगभग अप्राप्य थे। वह धार्मिक वृत्ति का शासक १२६५ ई० में बीमार पड़ा और १८ फरवरी १२६६ ई० में इस दुनियाँ से चल बसा।

अध्ययन के लिए संकेत

जब सन् १२०६ ई० में मुहम्मद गोरी का देहान्त हो गया तो उसके कोई पुत्र न होने के कारण उसका विशाल साम्राज्य उसके गुलामों द्वारा हथिया लिया गया। दिल्ली का शासक उसका गुलाम कुतुबुद्दीन ऐबक बना। यह प्रथम गुलाम शासक था और इसके शासन काल से १२९० ई० तक गुलाम ही दिल्ली पर शासन करते रहे। अत: कुतुबुद्दीन को गुलाम वंश का संस्थापक मानते हैं।

कुतुबुद्दीन :—एक कुरूप दास था। परन्तु उसने अपनी योग्यता से अपने स्वामी मुहम्मद गोरी के हृदय में घर कर लिया था। उसने अपनी योग्यता से गजनी के स्वामी यल्दोज को परास्त कर उसकी पुत्री से शादी की और इसी प्रकार कुबाचा के विरोध को शान्त करने के लिए अपनी बहिन उसे व्याह दी।

यद्यपि उसने राज्य केवल चार वर्ष ही किया। परन्तु इस अल्पकाल में ही उसने अपनी शासन-पटुता की धाक सब पर जमा दी, उसका शासन धार्मिक था। उसने हिन्दुओं के देवालयों को भी धराशायी किया—किन्तु केवल युद्धों में। अन्यथा उसका व्यवहार हिन्दुओं के प्रति उदार था। कुतुब मीनार का निर्माण आरम्भ कर उसने स्थापत्यकला से अपने अनुराग का परिचय दिया। सन् १२१० में वह लाहोर में पोलो खेलता हुआ इस दुनियाँ से चल बसा।

ईल्तुतमिश : - सन् १२१० ई० में कुतुबुद्दीन की मृत्यु पर उसका पुत्र आरामशाह दिल्ली का सुल्तान बना परन्तु वह विलासी था। अतः बदायूं के सूबेदार ईल्तुतमिश को सुल्तान बनने का अवसर मिल गया वह अल्बारी कबीले का तुर्क था। अपने भाइयों द्वारा निष्कासित किये जाने पर वह जलालुद्दीन द्वारा खरीद लिया गया और जलालुद्दीन के उत्तराधिकारी ने इसे कुतुबुद्दीन ऐबक को बेच दिया था। अतः वह गुलाम का गुलाम था।

प्रारम्भ में उसे बहुत सी कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। सर्व प्रथम उसने बड़े अमीरों को दबाया और तदुपरान्त उसने १२१४ ई० में यल्दोज तथा १२२७ ई० में कुबाचा को पूर्णतया: दबा दिया। इसके शासन काल में बंगाल के शासकों ने स्वतन्त्र होने का प्रयास किया—परन्तु ईल्तुतमिश ने उनको भी कुचल दिया। परन्तु इसके समय की सबसे महान आपत्ति चंगेजखाँ का आक्रमण था उसने ख्वारिज्म के शासक जलालुद्दीन को अपने यहाँ शरण देने से इन्कार कर चंगेजखाँ के आक्रमण से देश को बचाया। इसके अलावा यदाकदा जब कुछ हिन्दू नरेशों ने सिर ऊँचा करने का प्रयास किया गया तो उन्हें भी दबा दिया गया। इस प्रकार इसने अपने शासन में पूर्ण शान्ति तथा सुव्यवस्था कायम रखी। इसीलिए इसे मुस्लिम साम्राज्य का संस्थापक कहा जाता है। उसकी १२३६ ई० में मृत्यु हो गई।

सुल्ताना रजिया:— ईल्तुतमिश की मृत्यु के उपरान्त उसका दूसरा पुत्र रुकुनुद्दीन सुल्तान बना। परन्तु वह निर्बल एवं निकम्मा था। अतः जब नवम्बर १२३६ ई० में उसका सरदारों द्वारा वध कर दिया गया तो सुल्ताना रजिया ने शासन की बाग डोर संभाली। वह एक सुयोग्य शासिका थी। परन्तु उसके द्वारा पर्दा प्रथा का उल्लंघन करने तथा स्वयं द्वारा सेनापतित्व करने के कारण दरबारी उससे क्रोधित हो गये। इसके अलावा जब उसने एक याकूत हब्शी से प्रेम करना आरम्भ किया तो सरदारों ने अल्तूनिया के नेतृत्व में बगावत कर दी। परन्तु उसने धूर्तता से अल्तूनिया को अपनी ओर मिला लिया। सरदार इससे और भी बिगड़ गये और उन्होंने ईल्तुतमिश के पुत्र बहराम को दिल्ली का सुल्तान घोषित कर दिया। बहराम की सेना ने १२४० ई० में सुल्ताना रजिया तथा उसके प्रेमी अल्तूनिया दोनों को परास्त कर दिया और दोनों को मौत के घाट उतार दिया गया।

ईल्तुतमिश के अन्य उत्तराधिकारी:— सन् १२४० ई० में बहराम सुल्तान बना परन्तु वह राज्य की अराजकता को दूर न कर सका। उसने जब एक दरवेश आयूब के प्रभाव में आकर एक काजी की हत्या करवा दी तो अमीरों तथा उसकी सेना ने उसके विरुद्ध बगावत करदी। और १२४२ ई० में उसका बध करवा दिया। उसकी मृत्यु के उपरान्त सुल्ताना रजिया का भतीजा मसूदशाह दिल्ली का सुल्तान बना। यद्यपि वह १२४६ ई० तक राज्य करता रहा। परन्तु विलासी एवं क्रूर होने के कारण शासन सत्ता उसके हाथों में नहीं थी। १२४६ ई० में उसके पदच्युत हो जाने के कारण ईल्तुत-मिश का सबसे छोटा पुत्र नासिरुद्दीन दिल्ली का सुल्तान बना। उसने १२६६ ई० तक राज्य किया। परन्तु वह दयालु तथा ईश्वर भक्त शासक था। अत: उसके समय में शासन का समस्त भार उसके मन्त्री बलबन के हाथों में ही निहित था।

अभ्यासार्थ प्रश्न

(१) ईल्तुतमिश के शासन काल का हाल लिखिए।

Describe the reign of Iltutmish.

*

इक्कीसवाँ अध्याय

गुलाम वंश का अन्तिम प्रतापी शासक बलबन

प्रस्तावना:—बलवन का प्रारम्भिक जीवन:— बलवन प्रधान मन्त्री के रूप में – बलवन शासक के रूप में – उसकी प्रारम्भिक कठिनाइयाँ – शासन प्रबन्ध – मृत्यु तथा चरित्र – गुलाम वंश का सबसे प्रतापी शासक कौन? – गुलाम वंश का अन्त।

प्रस्तावना:—ईल्तुतमिश की मृत्यु के ३० वर्ष बाद तक दिल्ली के शासन में अराजकता का ही साम्राज्य व्याप्त रहा। यद्यपि ईल्तुतमिश की सुयोग्य पुत्री सुल्ताना रजिया ने साम्राज्य में व्याप्त अराजकता को विनिष्ट कर सुव्यवस्थित राज्य स्थापित करने का प्रयास किया था, परन्तु वह एक स्त्री शासिका होने के कारण सन् १२४० ई० में मौत के घाट उतार दी गई। सन् १२४० ई० से १२४६ ई० तक का काल अशान्ति का काल था। सुल्ताना रजिया के अयोग्य तथा विलासी भ्राताओं द्वारा शासन न संभल सका। सन् १२४६ ई० में ईल्तुतमिश का अन्य पुत्र नासिरुद्दीन गद्दी पर बैठा। जैसा कि हम पहले स्पष्ट कर चुके हैं कि नासिरुद्दीन एक दरवेश बादशाह था। वह उदार व दीनों का सहायक था। परन्तु वह शासन व्यवस्था स्थापित करने के योग्य नहीं था। भाग्यवश उसे बलबन जैसा योग्य प्रधान मन्त्री मिल गया जिसके कारण उसके शासन के बीस वर्ष (१२४६ – ६६) शान्ति से व्यतीत हो गये। राज्य की शासन सत्ता वास्तव में बलवन के ही हाथों में थी। जैसा कि किसी इतिहासकार ने कहा है "**नाम का शासक अल्तमश का तीसरा पुत्र नासिरुद्दीन था लेकिन सत्ता की डोर बलबन के मजबूत हाथों में थी।**"

प्रारम्भिक जीवन:— गयासुद्दीन बलवन का जन्म अल्बारी कबीले में हुआ था। इसका पिता दस हजार परिवारों का सरदार था परन्तु बाल्यावस्था में वह मंगोलों द्वारा बन्दी बना लिया गया था। मंगोलों ने उसे ख्वाजा जमालुद्दीन को बेच दिया था। जमालुद्दीन उसे १२३२ ई० में दिल्ली लाया। दिल्ली में ईल्तुतमिश ने उसे खरीद लिया और उसे अपना 'खासा बरदार' नियुक्त किया। सुल्ताना रजिया ने उसे 'अमीरे शिकार' बनाया। रजिया के विरुद्ध उसने बगावत में भाग लिया था। इस बात से प्रसन्न होकर बहराम ने उसे रेवाड़ी और हांसी का सूबेदार बना दिया। ऐसा प्रतीत होता था कि इसकी प्रतिभा पर स्वयं परमात्मा मुग्ध था। वह इसे उन्नति के निरन्तर अवसर प्रदान कर रहा था। सन् १२४५ ई० में मंगोलों ने सिन्ध पर आक्रमण किया। बलवन ने वीरता से उनका सामना किया। मंगोलों को वापिस जाना पड़ा। इससे बलवन की ख्याति और फैली

और जब १२४६ ई० में नासिरुद्दीन सुल्तान बना तो बलवन को योग्य व्यक्ति समझ उसे अपने प्रधान मन्त्री पद पर नियुक्त कर दिया।

बलबन प्रधान मन्त्री के रूप में (१२४६–६६):— बलबन वास्तव में एक प्रतिभा सम्पन्न शासक था। उसने एक नीचे पद से उच्च पद अपनी बुद्धिमानी तथा चतुराई के बल पर ही प्राप्त किया था। नासिरुद्दीन का वह शीघ्र ही विश्वास पात्र बन गया। १२४६ ई० में सुल्तान ने अपनी पुत्री की शादी भी बलबन से करदी और उसे उलुगखाँ की पदवी से सुशोभित किया। बदाऊनी का कहना है कि सुल्तान का उस पर पूरा विश्वास था। उसने उलुगखाँ का पद देते हुए कहा था – **'मैंने शासन यंत्र तुम्हारे हाथों में दे दिया है। कोई ऐसा कार्य मत करना जिससे तुम्हें और मुझको परमात्मा के सम्मुख लज्जित होना पड़े।''** बलबन ने अपने को पूरी तरह इस के योग्य प्रमाणित किया। परन्तु उसके इस उत्कर्ष पर दरबारी जलने लगे। इमामुद्दीन के बहकाने से सुल्तान ने १२५३ ई० में बलबन को प्रधान मन्त्री पद से मुक्त कर दिया था। परन्तु दरबारी इमामुद्दीन जोकि एक हिन्दू था तथा इस पद के अयोग्य था इस पर अधिक दिन न टिक सका और १२५४ ई० में ही बलबन को अपना पद पुनः प्राप्त हो गया। इसके उपरान्त बलबन सुल्तान नासिरुद्दीन की मृत्यु (१२६६) तक इस पद पर कार्य करता रहा और उस काल में उसने निम्न कार्य किए—

विद्रोही हिन्दुओं का दमन—गुलाम वंश के कमजोर शासकों के समय में हिन्दू नरेश पुनः अपनी शक्ति प्राप्त करने का प्रयास कर रहे थे। बलबन एक कट्टर मुसलमान था। वह हिन्दू नरेशों को स्वतन्त्र होता नहीं देख सकता था। अतः रणथम्भोर, ग्वालियर और चन्देरी के राजाओं के विरुद्ध उसने सेनायें भेजीं और उन्हें दिल्ली के आधीन बनाया।

खोखर जाति का दमन :—नासिरुद्दीन के सुल्तान बनने से पूर्व राज्य में अराजकता का साम्राज्य था। चारों ओर अशान्ति छाई हुई थी। उत्तर में खोखर जाति उत्पात मचा रही थी और वे लोग मंगोलों को सहायता देते रहते थे। राज्य में व्यवस्था स्थापित करने की दृष्टि से बलबन ने १२४६ ई० में उनका भी दमन किया।

मेवातियों का दमन:—मेवातियों ने दिल्ली के चारों तरफ लूट मार मचा रखी थी। व्यापारियों का आना जाना सुरक्षित नहीं था। बलबन ने उन मेवातियों को दबाने के लिए एक विशाल एवं संगठित सेना भेजी। मेवातियों का निर्दयता से दमन किया गया और दिल्ली के आस पास शान्ति स्थापित की गई।

विद्रोही सूबेदारों का दमन :—सूबेदार सुल्तान के आधीन तब तक ही रहते हैं जब तक कि सुल्तान शक्तिशाली होता है। इतिहासकार ज़ियाउद्दीन बर्नी रजिया की मृत्यु के उपरान्त राजनीतिक परिस्थितियों पर प्रकाश डालता हुआ लिखता है, **"सरकार का भय जो सुशासन का आधार तथा राज्य के वैभव और सम्पत्ति का स्रोत है**

लोगों के हृदय से जाता रहा था ." सूबेदार लोग पुनः स्वतन्त्र होने का प्रयास कर रहे थे। १२५५ ई० में अवध के सूबेदार कुतुबखाँ और सिन्ध के सूबेदार किशलुखाँ ने विद्रोह किया। दिल्ली के बहुत से अमीरों ने भी उनका साथ दिया परन्तु बलबन ने अपने अदम्य उत्साह से उनको भी निर्दयता से दबा दिया। इन सूबेदारों के अलावा बलबन ने शम्सी सरदारों का भी दमन किया। कई सरदारों की जागीरें छीन लीं परन्तु कोतवाल फखरुद्दीन के कहने पर पुनः उनके साथ उदारता का व्यवहार किया।

मंगोलों से राज्य की सुरक्षा :—आन्तरिक शान्ति स्थापित करने के अनन्तर बलबन ने बाह्य सुरक्षा की ओर ध्यान दिया। इस समय तक मंगोल पुनः बहुत शक्तिशाली हो गये थे। उन्होंने गज़नी तथा ट्रांस ऑक्सीयाना पर अधिकार कर लिया था तथा बगदाद के खलीफा को मौत के घाट उतार दिया था। सिन्ध और पंजाब पर उनके निरन्तर आक्रमण होने लग गये थे। उनके आक्रमणों को रोकने के लिए बलबन ने एक शक्तिशाली सेना को सीमा पर तैनात किया और सीमा पर दृढ़ दुर्गों का निर्माण किया। इस प्रकार से बलबन ने नासिरुद्दीन के राज्य को बाह्य संकट से मुक्त किया।

इस प्रकार हम देखते हैं कि बलबन ने अपने प्रधान–मंत्री–काल के २० वर्ष में महान् कार्य किये। नासिरुद्दीन एक धार्मिक प्रवृति का मुसलमान था। वह शासन–व्यवस्था में दक्ष न था। अतः उसके शासन–काल में अराजकता को विनष्ट कर शान्ति स्थापित करने का श्रेय बलबन को ही जाता है। उसने हिन्दू विद्रोहियों को दबाया तथा असन्तुष्ट मुसलमान अमीरों को कुचल कर देश में आन्तरिक शान्ति स्थापित की। भयंकर लड़ाकू मंगोलों के आक्रमण से राज्य को सुरक्षित रखने की शक्ति बलबन की ही थी। अतः डा० ईश्वरी प्रसाद लिखते हैं— **"यदि बलबन की शक्ति न होती तो सम्भवतः दिल्ली का साम्राज्य इतने आन्तरिक झगड़ों एवं बाह्य आक्रमणों को बर्दाश्त न कर पाता।"**

बलबन शासक के रूप में (१२६६–८६) उसकी प्रारंभिक कठिनाइयाँ :— नासिरुद्दीन १८ फरवरी १२६६ ई० को चल बसा। उसके कोई पुत्र न था। अतः उसका दामाद, जो अपने प्रधान–मन्त्री काल में अपने कार्यों से जनता का अति प्रिय बन गया था, उसके स्थान पर १२६६ ई० में दिल्ली के तख्त पर बैठा। यह सत्य है कि उसने अपने मन्त्री काल में राज्य की कई कठिनाइयों को दूर कर दिया था—परन्तु अब भी दिल्ली का तख्त कोमल कुसुमों का तख्त न था। उसके सामने तीन कठिनाइयाँ प्रमुख रूप से प्रस्तुत थीं वे ये थीं—(१) मुस्लिम सरदारों पर नियन्त्रण, (२) मंगोलों से राज्य को सुरक्षित रखना और (३) राज्य को सुसंगठित करना। यद्यपि ये समस्यायें

लगभग सभी गुलामवंश के सुल्तानों के सामने विद्यमान थीं —परन्तु इनके निवारण में बलबन सर्वाधिक सफल रहा।

(१) मुस्लिम सरदारों पर नियन्त्रण करना :—बलबन के समय तक मुसलमान अमीरों का एक गुट बन गया था। यह गुट शनैः शनैः शक्तिशाली बन कर शासक के समक्ष एक भयंकर समस्या के रूप में प्रस्तुत था। यद्यपि बलबन नासिरुद्दीन के द्वारा ही राज्य का उत्तराधिकारी नियुक्त कर दिया गया था। परन्तु फिर भी उन्होंने बलबन का विरोध किया। बलबन उन मुस्लिम सरदारों के लिए इङ्गलैण्ड का बादशाह हेनरी सप्तम् साबित हुआ। जिस हेनरी सप्तम ने अपने सामन्तों (बैरन्स) को सर्वथा शक्तिहीन बना दिया था—उसी प्रकार बलबन ने कई कानून बना कर उन मुस्लिम सरदारों की शक्ति को दबा दिया। बलवन ने मुस्लिम सरदारों का परस्पर मिलना व जुआ खेलना बंद कर दिया। सरदारों को परस्पर वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित करने में भी सुल्तान की अनुमति लेना आवश्यक था। दरबार में सरदार न हँस सकते थे और न आपस में मज़ाक ही कर सकते थे। इन नियमों का जो उल्लंघन करता वही सुल्तान से कड़ी सजा पाता था।

परन्तु बंगाल का सूबेदार तुगरिल बेग सुल्तान की वृद्ध अवस्था तथा राजधानी से दूर होने का फायदा उठाना चाहता था। तुगरिल बेग बंगाल का सूबेदार तथा बलबन का एक खरीदा दास था। तुगरिल एक योग्य तथा अनुभवी शासक था। सन् १२७६ ई० में उसने अपने को सुल्तान की उपाधि धारण कर दिल्ली से स्वतन्त्र घोषित कर दिया। यह सुनकर बलबन बड़ा क्रुद्ध हुआ। उसने अमीरखां की अध्यक्षता में एक सेना भेजी परन्तु वह परास्त हुआ और उसके परिणाम स्वरूप उसे अपने प्राणों से हाथ धोना पड़ा। उसका सिर काटकर दिल्ली के दरवाजे पर लटकवा दिया। दूसरी सेना मलिक तारगी के नेतृत्व में भेजी गई। परन्तु वह भी तुगरिल से परास्त हुआ। इस पर बलबन आग बबूला हो गया और दिल्ली का शासन कोतवाल फखरुद्दीन को सौंप कर अपने पुत्र बुगराखां के साथ बंगाल की ओर रवाना हुआ। विद्रोहियों का क्रूरता से दमन किया गया। तुगरिल के सहायकों को लखनौती के बाजार में फांसी पर लटकाया गया। बलबन ने अपने पुत्र बुगराखां को बंगाल का सूबेदार बनाया और सूचित किया कि यदि तुमने किसी बुरे आदमी के बहकावे में आकर ऐसा कार्य किया तो यही दशा तुम्हारी होगी। प्रसिद्ध इतिहासकार बर्नी इसके विषय में लिखता है, **'जैसा दण्ड लखनौती में दिया गया था, वैसे दण्ड के बारे में कभी किसी ने दिल्ली में नहीं सुना और न ही हिन्दुस्तान में किसी को और कोई ऐसी घटना याद है।"**

(२) मंगोलों के आक्रमण से राज्य को सुरक्षित रखना --यद्यपि बलबन ने अपने प्रधान-मन्त्री काल में मंगोलों के आक्रमण से बचने के लिए सीमा पर

किलों आदि का निर्माण कर दिया था परन्तु उनके हमले बन्द न हुए। सन् १२७६ ई० में मंगोलों ने भारत पर पुनः आक्रमण किया और सतलज नदी को पार कर गये। परन्तु बलबन के ज्येष्ठ पुत्र मुहम्मद ने अपने कनिष्ठ भ्राता बुगराखां की सहायता से उन्हें हरा दिया। मंगोल हार अवश्य गये थे पर उन्होंने हिम्मत न हारी थी। १२८५ ई० में उन्होंने पुनः तातारखां के नेतृत्व में भारत पर भयंकर आक्रमण किया। इस युद्ध में बलबन का प्रिय पुत्र मुहम्मद काम आ गया। यद्यपि मंगोल लोग पुनः परास्त हो भारत से भाग गये, परन्तु बलबन का दीप वे अवश्य बुझा गये।

(२) **राज्य का संगठन (शासन-प्रबन्ध)**—जब बलबन गद्दी पर बैठा था उस समय राज्य का संगठन बड़ा ही अव्यवस्थित था। उसके पूर्वजों के शासन में राज्य-भय जनता में नहीं था। अतः बलबन ने सुशासन-व्यवस्था स्थापित कर राज्य को सुसंगठित करने का प्रयास किया। यह सत्य है कि बलबन ने अपने काल में कोई नया प्रदेश नहीं जीता। परन्तु उसने अपने पूर्वजों के राज्य को दृढ़ रूप में बनाये रखा। बलबन का शासन एकतान्त्रिक था। वह अपने को परमात्मा का भेजा हुआ समझता था। अतः वह एक निरंकुश शासक था। शासन की समस्त सत्ता उसके हाथों में केन्द्रीभूत थी।

सेना का संगठन—निरंकुश शासक की शक्ति उसकी सेना में केन्द्रीभूत रहती है। अतः उसने अपनी सेना के संगठन की ओर ध्यान दिया। उसने अपनी सेना को अनुभवी एवं स्वामि-भक्त सरदारों के अधीन किया। सैनिक कर्मचारी युद्ध-विद्या का ज्ञान रखते थे। कुतुबुद्दीन ऐबक ने सैनिकों को सैनिक सेवा के बदले भूमि दी थी और ईल्तुतमिश ने भी यही प्रथा चालू रखी। परन्तु बलबन ने इसके विपरीत सैनिकों को नकद वेतन देने की प्रथा प्रचलित की। यह सत्य है कि वह सरदारों के विरोध के कारण इस कार्य में पूर्ण सफल नहीं रहा। इसके अलावा उसने अपनी सेना में हाथी और घुड़-सवारों की संख्या बढ़ादी। सेना की व्यवस्था व्यवस्थित ढंग से रखने की दृष्टि से सेना को इमादुलमुल्क के नियन्त्रण में दे दी। इमादुलमुल्क एक अनुभवी एवं उच्च कोटि का सैनिक पदाधिकारी था। इसके नेतृत्व में सेना ने अनुशासन में रहना सीखा। यह उसकी शक्तिशाली सेना ही थी जिसकी सहायता से बलबन डाकुओं का सफाया कर सका और मंगोलों से टक्कर ले सका।

गुप्तचर विभाग की व्यवस्था—गुप्तचर शासक के कानों के समान होते हैं। वे राज्य में घटने वाली घटनाओं से शासक को सूचित करते रहते हैं। एक इतिहासकार का मत है कि एक सुव्यवस्थित गुप्तचर विभाग किसी भी निरंकुश राज्य का आवश्यक प्रतिरूप है। अतः बलबन जैसा दूरदर्शी एवं सफल राजनीतिज्ञ इस विभाग के महत्व से किस प्रकार अनभिज्ञ रह सकता था। उसने भी अपने राज्य में एक गुप्तचर विभाग स्थापित किया। सम्पूर्ण राज्य में जासूसों का जाल बिछा दिया गया। वे जासूस बलबन के

पास प्रत्येक अमीर व सूबेदार की खबर भेजा करते थे। यहां तक कि बलबन ने अपने पुत्र बुगराखां के पीछे भी अपने गुप्तचर छोड़ रखे थे।

न्याय-व्यवस्था—बलबन 'दैवी सिद्धान्त' में विश्वास रखता था। वह शासन करने में बड़ा कठोर तथा न्याय करने में निष्पक्ष रहता था। शासक में न्याय प्रियता इतनी थी कि अपराध करने पर वह अपने सम्बन्धियों को भी कड़ा दण्ड देने में नहीं हिचकता था। बदायूं के जागीरदार मलिक बकबक को अपने एक नौकर के प्राण लेने के अपराध में उचित दण्ड मिला था। इस प्रकार हम देखते हैं अमीर व गरीब न्याय की तराजू पर बलबन के लिये समान थे। इतिहासकार बर्नी लिखता है- "न्याय **में वह सख्त था, उसमें वह अपने सम्बन्धियों, सहयोगियों और नौकरों के साथ पक्षपात नहीं करता था**............... ।"

बलबन का गौरवपूर्ण दरबार—बलबन इस तथ्य से भली भांति परिचित था कि विदेशों में अपनी सत्ता की धाक जमाने के लिए एक शानदार दरबार की अत्यन्त आवश्यकता है। अतः बलबन ने ईरान के सम्राटों की भांति एक शानदार दरबार बनाया। दरबार के संचालन में भी ईरान के नियम अपनाये गये। वह दरबार में अच्छे वस्त्र पहिनकर आता था और इसी प्रकार उसके दरबारियों को भी अच्छे वस्त्र पहिन कर दरबार में आना पड़ता था। दरबार में अनुशासन उच्चकोटि का था। सुल्तान न स्वयं हँसता था और न दरबारियों को हँसने देता था। दरबार में हँसी मजाक करना सर्वथा वर्जित था। संगीत दरबार की चार दीवारियों में नहीं फटक पाता था। दरबार में सुल्तान द्वारा इतिहासकार विद्वान तथा कवि आदर पाते थे। प्रसिद्ध कवि अमीर खुसरो बलबन के दरबार का प्रमुख कवि था।

मृत्यु तथा चरित्रः—६ मार्च सन् १२८५ ई० में बलबन का ज्येष्ठ पुत्र मंगोलों से युद्ध करता हुआ युद्ध में काम आ गया। बलबन बुढ़ापे में पुत्र-वियोग के दुःख को सहन नहीं कर सका और ८० वर्ष की आयु में १२८६ ई० में वह भी इस दुनियां से सदैव के लिए चल बसा।

बलबन का गुलाम वंश के शासकों में बहुत ऊँचा स्थान है। वह एक उच्च कोटि का प्रशासक था। शान्ति स्थापित करने के लिए उसने कठोर नीति का अनुसरण किया। इस कारण यदि उसकी तुलना बिस्मार्क और भारत के लोह पुरुष सरदार पटेल से की जाय तो अनुचित न होगा। यह सत्य है कि बलबन का शासन मुस्लिम धर्म की भीति पर खड़ा था। बरनी लिखता है कि बलबन ने न्याय करने में धर्म को दीवार नहीं बनने दिया। एक बार उसने स्वयं कहा था, "**मेरा काम अत्याचारियों का दमन करना और कानून की दृष्टि में सब लोगों को समानता प्रदान करना है। राजा का धर्म अपनी प्रजा को सुखी और समृद्ध बनाने का है।**" कठोर होने के साथ वह दयालु तथा उदारवृति का भी था। अपंग व दीन मनुष्यों की वह सदैव

सहायता करने को उद्यत रहता था। वह विद्या प्रेमी तथा विद्वानों का आदर करने वाला था। उसने अपने जीवन का अधिकांश भाग राज्य की सेवा में व्यतीत किया। डाकुओं का दमन, मंगोलों के आक्रमणों का सामना व तुगरिल बेग की बगावत दबाना उसके अदम्य उत्साह व एक सफल सेनानायक के परिचायक हैं। जैसा कि डा० ईश्वरी प्रसाद लिखते हैं, **"बलबन एक महान् योद्धा, शासक तथा राजनीतिज्ञ था और उसने संकट कालीन अवस्था में नवजात मुस्लिम राज्य को विनाश से बचाया। भारत के मध्यकालीन इतिहास में बलबन का नाम महत्वपूर्ण है।"**

गुलाम वश का अन्त :— बलबन ने अपने जीवन काल में ही अपने ज्येष्ठ पुत्र मुहम्मद के पुत्र खुसरों को अपना उत्तराधिकारी नियुक्त कर दिया था। परन्तु उसकी मृत्यु पर कोतवाल फखरुद्दीन के नेतृत्व में अमीरों ने विरोध किया और बुगराखाँ के पुत्र कैकुबाद को गद्दी पर बिठाया। कैकुबाद सत्रह अठारह वर्ष का युवक था। अत: उसने सुल्तान बनते ही शासन कार्य से विरक्ति ली और अपना जीवन विलासिता से व्यतीत करने लगा। इसका परिणाम यह हुआ कि शहर के कोतवाल निजामुद्दीन ने सत्ता हथिया ली। निजामुद्दीन चालाक तथा एक महत्वाकांक्षी व्यक्ति था। उसने खुसरो की हत्या करवादी और कैकुबाद का अन्त करने का भी षड़यन्त्र रचा। परन्तु इस षड़यन्त्र का पता चल गया। निजामुद्दीन को कुचल दिया गया। पर इससे राज्य में अराजकता फैल गई और इस समय खिलजी व तुर्क दल बन गये। ख़िलजी दल का नेता जलालुद्दीन था। उसने कैकुबाद को मौत के घाट उतार कर १३ जनवरी १२६० ई० को दिल्ली की शासन – सत्ता अपने हाथों में ले ली।

गुलाम वंश में सबसे महान् शासक कौन ? :— गुलाम वंश में १२०६ ई० से १२६० तक कुल दस शासक हुए। उनमें ६ शासक तो निर्दयता पूर्वक मौत के घाट उतार दिये गये। रजिया बेगम भी इन्हीं ६ शासकों में थी। यद्यपि वह एक अच्छी शासिका थी। परन्तु एक स्त्री होने के कारण वह सफल न रह सकी। इसके अलावा उसने शासन भी केवल ३½ वर्ष ही किया। इस अल्प काल में वह अपनी योग्यता का विशेष परिचय न दे सकी। शेष शासन करने वालों में चार सुल्तान रहे। उनमें सर्व प्रथम था कुतुबुद्दीन ऐबक।

कुतुबुद्दीन गुलाम वंश का प्रथम सुल्तान था। अत: उसे गुलाम वंश का संस्थापक कहा जाता है। नि:सन्देह वह एक अच्छा सेनानायक व उच्च कोटि का राजनीतिज्ञ था। उसने राज्य में सुव्यवस्था भी स्थापित की। परन्तु अपने शासन के अल्पकालीन होने के कारण वह अपनी स्वयं की कोई योजना प्रस्तुत नहीं कर सका। इसी कारण उसका राज्य उसकी मृत्यु होते ही अराजकता के भँवर में फँस गया। यदि ईल्तुतमिश नहीं होता तो कुतुबुद्दीन ऐबक द्वारा स्थापित गुलाम वंश समाप्त हो जाता। [illegible] सुल्तान नहीं माना था। उसको स्वयं को भी

अपने सुल्तान होने में आशंका दृष्टिगोचर होती थी। इसी कारण उसने अपने शासन काल में कोई सिक्का नहीं चलाया।

नासिरुद्दीन तो एक धर्मात्मा सुल्तान था। उसने राज्य-कार्य से विरक्ति ले रखी थी और उसके राज्य का शासन उसके प्रधान मन्त्री बलबन द्वारा संचालित होता था इतिहासकारों की ऐसी मान्यता है कि राज्य का वास्तविक शासक बलबन ही था और नासिरुद्दीन तो उसके हाथ की कठपुतली बना हुआ था। अतः इसका गुलाम वंश में सुयोग्य शासक होने का कोई प्रश्न नहीं उठता।

अब हमारे सामने ईल्तुतमिश और बलबन दो गुलाम वंश के शासक रह जाते हैं। दोनों ही सुल्तान इस वंश के प्रतापी शासक थे। कई इतिहासकार ईल्तुतमिश को महान बताते हैं और कई बलबन को।

सेनानायक के रूप में :—ईल्तुतमिश एक अच्छा सेनानायक था और उसे राज्य गद्दी पर बैठते ही बलबन से भी अधिक कठिनाइयों का सामना करना पड़ा था। बलबन ने तो अपने मन्त्री काल में ही बहुत सी कठिनाइयों को दूर कर लिया था और शासन को सुव्यवस्थित कर लिया था। मंगोलों के आक्रमणों का दोनों को मुकाबला करना पड़ा था। ईल्तुतमिश ने भय को केवल अपनी दूरदर्शिता से ही टाल दिया था और इस क्षेत्र में उससे कोई ठोस एवं स्थायी कदम नहीं उठाया गया। पर बलबन ने उन भयंकर शत्रुओं से देश को सुरक्षित रखने की एक स्थायी योजना बनाई थी जो उसके बाद में आने वाले शासकों द्वारा भी अपनाई गई थी। विजय के क्षेत्र में ईल्तुतमिश बलबन से आगे था। उसने स्वयं ने उत्तरी भारत पर अधिकार कर वहाँ अपना व्यवस्थित शासन स्थापित किया था जबकि बलबन को राज्य जमा जमाया प्राप्त हुआ था। आन्तरिक विद्रोहियों को दबाने में दोनों शासक सफल रहे। परन्तु अधिक तथा प्रबल विद्रोही ईल्तुतमिश के समय में ही थे।

प्रशासक के रूप में :— यद्यपि शासन व्यवस्था स्थापित करने का ईल्तुतमिश को बलबन के समान समय नहीं मिला परन्तु फिर भी उसका शासन-प्रबन्ध दूषित नहीं था। बलबन ने प्रधान मन्त्री के रूप में शासन सुधारा और शासक के रूप में भी। उसने अपने दरबार की शान बढ़ाई और कई नियम भी बनाये परन्तु उसकी शासन व्यवस्था स्थायी सिद्ध न हो सकी। उसका राज्य उसके द्वारा संचालित शासन प्रबन्ध पर अधिक समय नहीं चल सका जब कि ईल्तुतमिश की शासन-व्यवस्था स्थायी सिद्ध हुई। उसके अयोग्य उत्तराधिकारी होने के कारण जो राज्य-अराजकता व अशान्ति के गर्त में गिर चुका था वह फिर भी नष्ट न हुआ। धर्म में दोनों कट्टर थे। परन्तु ईल्तुतमिश धर्म को राज्य- प्रबन्ध में भी ले लिया करता था- जब कि बलबन धर्म को शासन से दूर रखता था। वह न्याय निष्पक्ष ही कर करता था। बलबन की नीति ईल्तुतमिश से अधिक कठोर थी।

व्यक्ति के रूप में—दोनों सुल्तान दयालु व उदार वृत्ति के थे। परन्तु विद्रोहियों के दमन करने में बलबन अधिक कठोर था। दोनों ही विद्वानों का आदर करते थे तथा उन्हें अपने यहां स्थान देते थे। कला के विकास में सहयोग देकर दोनों ने कलानुराग का परिचय दिया। परन्तु सांस्कृतिक विकास जितना बलबन के काल में हुआ वह ईल्तुतमिश के काल में नहीं। दोनों ही निरंकुश शासक थे। परन्तु प्रजा की भलाई करना बलबन एक शासक का परम एवं प्रमुख कर्त्तव्य समझता था। बलबन का मान विदेशों में ईल्तुतमिश से अधिक था। व्यक्तिगत जीवन दोनों सुल्तानों का निष्कलंक था।

उपर्युक्त तुलनात्मक विवेचन से भी यह कठिन प्रतीत होता है कि गुलाम वंश का सर्वोच्च शासक किसे कहा जाय। सरवुल्जले हेग और डा० के० दत्त ईल्तुतमिश को ऊँचा स्थान देते हैं और उसे गुलाम वंश का सब से महान सुल्तान मानते हैं। परन्तु डा० एस० आर शर्मा की मान्यता है कि ईल्तुतमिश तो गुलाम वंश का निर्माता था और इस वंश का महान सुल्तान बलबन था।

अतः प्रसिद्ध इतिहासकारों द्वारा भी यह प्रश्न विवाद ग्रस्त बना दिया गया है। वास्तव में देखा जाय तो दोनों ही सुल्तान उच्च प्रशासक, सफल राजनीतिज्ञ तथा सुयोग्य सेनानायक थे। दोनों शासक कर्त्तव्यपरायण तथा दूरदर्शी थे। अतः हम तो यह कहना उचित समझते हैं कि दोनों ही सुल्तान गुलामवंश के महान सुल्तान थे और उन दोनों ने परिस्थितियों के अनुसार कार्य किये। दोनों सुल्तानों ने तत्कालीन परिस्थितियों के अनुसार शासन-संचालन किया और वह उस समय के दृष्टिकोण से उचित ढंग से किया गया।

अध्ययन के लिए संकेत

प्रारंभिक काल—बलबन का जन्म अल्बारी कबीले में हुआ था। बचपन में ही वह मंगोलों द्वारा बन्दी बना लिया गया था। सन् १२३२ ई० में वह ईल्तुतमिश द्वारा खरीद लिया गया और वह उसके शासन-काल में 'खासा बरदार' नियुक्त हुआ। रजिया ने उसे 'अमीरे शिकार' तथा बहराम ने उसे रेवाड़ी व हाँसी का सूबेदार बना दिया था। नासिरुद्दीन के शासन-काल (१२४६-६६) में उसने प्रधान मन्त्री पद पर कार्य किया।

प्रधान-मन्त्री—प्रधान-मन्त्री की हैसियत से उसने विद्रोही हिन्दुओं का दमन किया तथा खोखर व मेवातियों को अराजकता फैलाने के अपराध में दण्डित किया। उस समय मंगोलों के आक्रमण का सदा डर बना रहता था। इस कारण उसने एक शक्तिशाली सेना को सीमा पर तैनात किया तथा सीमा पर सुदृढ़ दुर्गों का निर्माण किया।

शासक के रूप में—जब १२६६ ई० में नासिरुद्दीन की मृत्यु हो गई तो बलबन सुल्तान बना और उसने १२८६ ई० तक शासन किया। अपने शासन काल में उसने देश में सुव्यवस्था स्थापित की। अपने को शक्तिशाली बनाने के लिए उसने मुस्लिम सरदारों पर नियन्त्रण रखा। बंगाल के सूबेदार ने दूरी का फायदा उठाकर अपने को स्वतन्त्र शासक बनाने का प्रयत्न किया। परन्तु बलबन स्वयं वहां सेना लेकर गया और तुगरिल वंश को उचित दण्ड देकर उसके स्थान पर अपने पुत्र बुगराखां को बंगाल का सूबेदार नियुक्त किया। मंगोलों के आक्रमण से अपने देश को सुरक्षित रखने के लिए वह सदैव राजधानी में उपस्थित रहा तथा अपने ज्येष्ठ पुत्र मुहम्मद को वहां सीमा पर तैनात किया।

शासन प्रबन्ध—बलबन ने राज्य की अराजकता को दूर कर सुशासन की स्थापना का प्रयास किया। सर्व प्रथम उसने सेना के संगठन की ओर ध्यान दिया। उसने सेना में योग्य सैनिक भर्ती किये तथा उन्हें नकद वेतन देने की व्यवस्था की। सेना को पूर्ण अनुशासन में रखा जाने लगा और हाथी तथा अश्वारोहियों की संख्या बढ़ा दी।

बलबन ने प्रत्येक सूबे में गुप्तचर रखे जो कि सुल्तान को प्रत्येक बात की सूचना दिया करते थे। न्याय व्यवस्था भी बलबन के समय अच्छी थी। यद्यपि वह दैवी सिद्धान्त में विश्वास रखता था परन्तु न्याय निष्पक्ष होकर करता था।

बलबन का दरबार—उसके दरबार की धाक न केवल भारत में थी वरन् कई एशिया के देशों में व्याप्त थी। उसने अपने दरबार के नियम ईरान के दरबार के अनुसरण पर बनाये थे। दरबार के नियम बड़े कठोर थे। दरबार में हँसना तथा हँसी-मजाक करना सर्वथा वर्जित था।

चरित्र :—बलबन एक उच्च चरित्र का शासक था। वह एक पक्का मुसलमान था। परन्तु न्याय करने में वह धर्म का हस्तक्षेप सहन नहीं करता था। यद्यपि वह एक कठोर शासक था तथापि दया व उदारता उसके हृदय से दूर नहीं थी। गुलाम वंश के शासकों में सबसे ऊँचा स्थान बलबन को दिया जाता है।

गुलाम वंश का अन्त :—बलबन ने अपने जीवन-काल में ही अपने पुत्र मुहम्मद के पुत्र खुसरो को अपना उत्तराधिकारी नियुक्त किया था। परन्तु कोतवाल फखरुद्दीन के नेतृत्व में अमीरों ने बगावत की और बुगराखाँ के पुत्र कैकुबाद को दिल्ली का सुल्तान बनाया। परन्तु उसने शासन की ओर उदासीनता दिखाई। इस कारण कोतवाल निजामुद्दीन ने सत्ता हथियाली। निजामुद्दीन ने अपने शासन को सुरक्षित रखने के लिए खुसरो को मरवा दिया तथा कैकुबाद का भी अन्त करने के लिए षडयन्त्र रचा। परन्तु इस षडयन्त्र का पता चल गया और राज्य में खिलजी व तुर्क दो दल

बन गये। खिलजी दल का नेता था जलालुद्दीन। उसने कैकुबाद का अन्त कर १२९० ई० में दिल्ली का शासन अपने हाथ में ले लिया।

गुलाम वंश का महान शासक ? :—यह प्रश्न भी एक विवाद ग्रस्त है कि गुलाम वंश का सबसे महान सम्राट कौन था ? जब हम बलबन को एक सेनानायक तथा प्रशासक के रूप में देखते हैं तो वह अपने पूर्वजों से अधिक योग्य एवं सफल शासक उतरता है। इसके साथ ही उसका व्यक्तिगत जीवन भी अच्छा था। अतः बलबन को ही इतिहासकार गुलाम वंश का एक उच्च सुल्तान ठहराते हैं परन्तु ईल्तुतमिश भी इससे कम योग्य न था।

अभ्यासार्थ प्रश्न

(१) बलबन के शासन काल का (क) प्रधान मंत्री के रूप में तथा (ख) शासक के रूप में वर्णन कीजिए।

Describe the reign of Balban as (a) Prime Minister and as (b) King.

(२) गुलाम शासकों में कौन महान था ? कारण सहित उत्तर दीजिये।

Who was the greatest king of the slaves ? Give your answer with reasons.

बाइसवाँ अध्याय

खिलजी वंश (१२९०–१३२०)

प्रस्तावना—जलालुद्दीन का गद्दी पर बैठना—उसके शासनकाल की प्रमुख घटनाएं—मृत्यु व चरित्र—अलाउद्दीन खिलजी का प्रारम्भिक जीवन व सुल्तान बनना उसका मंगोलों से मुकाबला—विजय—(उत्तरी भारत व दक्षिणी भारत)—शासन-प्रबन्ध मृत्यु व चरित्र। खिलजी वंश का अन्त।

जलालुद्दीन खिलजी (१२९०–९६)

प्रस्तावना—खिलजी कौन थे और ये भारत में कहां से आये, यह प्रश्न विवादग्रस्त है। इस विषय में इतिहासकारों का मत एक नहीं है। कुछ इतिहासकारों की मान्यता है कि खिलजी अफगान थे। ये मुहम्मद गौरी के साथ भारत आये थे। भारत में मुस्लिम साम्राज्य स्थापित होने के उपरान्त ये अफगानिस्तान में बस गये। बर्नी उनके सम्बन्ध में लिखता है कि इनका फिरका तुर्क नहीं था। इनमें और तुर्कों में परस्पर विश्वास के चिन्ह नहीं मिलते। वि० ए० स्मिथ भी इसी धारणा की पुष्टि करते हुए लिखते हैं कि खिलजी लोग अफगान अथवा पठान थे। परन्तु अधिकांश आधुनिक इतिहासकारों की मान्यता है कि खिलजी तुर्क थे। सर हेग लिखते हैं कि खिलजी लोग मूलतः तुर्क थे परन्तु बहुत दिनों से अफगानिस्तान में आबाद हो गये थे और उन्होंने अफगान रीति रिवाजों को ग्रहण कर लिया था। डा० किशोरीलाल भी इस विषय पर पर्याप्त अन्वेषण कर इसी परिणाम पर पहुंचे हैं कि खिलजी लोग वास्तव में तुर्क थे। बार थोल्ड भी इसी मत का प्रतिपादन करते हैं। मुसलमान इतिहासकार इस्तखारी का भी यही विचार है कि खिलजी लोग तुर्क थे और वे प्राचीन काल से ही अफगानिस्तान में रहते थे। जलालुद्दीन इसी फिरके का था।

जलालुद्दीन का गद्दी पर बैठना—जलालुद्दीन तुर्क था और इसके पूर्वज अफगानिस्तान में बस गये थे। जलालुद्दीन का प्रारम्भिक नाम फीरोज था। वह भारत चला आया और उसने दिल्ली के सुल्तानों के यहां नौकरी करली। गुलाम वंश के अन्तिम शासक कैकुबाद ने उसे सैन्य-मन्त्री बनाया था। परन्तु जब उसका वध कर दिया गया तो दरबार में दो दल बन गये। एक दल का नेता फीरोज तथा दूसरे का मलिक छज्जू था। अपने सहयोगियों की सहायता से फीरोज दिल्ली की गद्दी हथियाने में सफल हुआ और वह १३ जून १२९० ई० में दिल्ली का सुल्तान बना। उस समय उसकी अवस्था ७० वर्ष की थी। उसने जलालुद्दीन की उपाधि धारण की परन्तु वृद्ध होने के कारण

जलालुद्दीन अब दयालु एवं क्षमाशील बन गया था। तेरहवीं शताब्दी में ऐसे शासकों की आवश्यकता नहीं थी। अतः उसके सुल्तान बनते ही राज्य में चारों ओर उपद्रव होने लगे। उसके शासन काल की प्रमुख घटनाएं निम्नलिखित हैं जिनसे कि यह सिद्ध होता है कि वह उस काल में शासक बनने के योग्य नहीं था।

शासन-काल की प्रमुख घटनाएं :— (१) छज्जू का विद्रोह :— यह बलबन का भतीजा था और इतिहास में वह किशलूखां के नाम से विख्यात है। यद्यपि वह जलालुद्दीन का विरोधी था परन्तु सुल्तान ने उसे गद्दी पर बैठते ही कड़ा का जागीरदार बना दिया था। १२९१ ई० में उसने शासक के विरुद्ध बगावत का झंडा ऊंचा किया। वह दिल्ली की ओर रवाना हुआ परन्तु बदायुँ के समीप वह जलालुद्दीन के पुत्र अरकालीखां द्वारा परास्त कर दिया गया। छज्जू सिंह बन्दी बनाकर सुल्तान के सम्मुख पेश किया गया। क्षमाशील सुल्तान ने उसे क्षमा कर दिया। उसके इस कार्य से उसके सरदार नाराज हो गये।

(२) दरवेश सिद्दी मौला का वध—यह एक फकीर था। वह बलबन के शासन काल से ही दिल्ली में निवास कर रहा था। उसका दिल्ली में काफी आदर था। यद्यपि उसकी आय का पता नहीं था पर फिर भी वह नवागन्तुकों का स्वागत बड़े ठाट-बाट से करता था। सुल्तान को उसने बहका दिया कि वह उसे गद्दी से उतार कर स्वयं दिल्ली का स्वामी बनना चाहता है। सुल्तान के विरोधी अमीरों ने स्वर्गीय सुल्तान नासिरुद्दीन की पुत्री की शादी भी उसके साथ करनी चाही थी ताकि गद्दी पर उसका अधिकार मान लिया जावे। जब वह सुल्तान के सामने पेश किया गया तो उसने सुल्तान से वादविवाद करना आरम्भ किया। इससे जलालुद्दीन ने क्रुद्ध हो उसे हाथी के पैर के नीचे कुचलवा कर मरवा दिया। जलालुद्दीन के इस हिंसक कार्य से दिल्ली की आम जनता उसके विरोध में हो गई। उसकी मृत्यु के उपरान्त दिल्ली में अकाल पड़ा। इस कारण सुल्तान और भी बदनाम हो गया।

(३) ठग और डाकुओं के साथ व्यवहार—शासक की उदार प्रवृत्ति से दिल्ली में चारों ओर ठगों ने फिर सिर उठा लिया। जब इन डाकुओं को भारी संख्या में बन्दी बनाकर सुल्तान के समक्ष पेश किया गया तो सुल्तान ने उन्हें केवल उपदेश देकर बंगाल की ओर भेज दिया।

(४) रणथम्भोर पर आक्रमण—१२९० ई० में जलालुद्दीन ने रणथम्भौर पर आक्रमण किया। वहां के चौहान राजा ने मुसलमानों का बहादुरी से मुकाबला किया। जब सुल्तान को किला जीतना कठिन प्रतीत हुआ तो उसने अपनी सेना को वापिस चलने का आदेश दिया। इस पर अहमद चाप ने विरोध किया तो सुल्तान ने कहा, "वह मुसलमान के एक बाल को एक किले से अधिक कीमती समझता है।" इस आक्रमण का उसकी सेना पर बुरा प्रभाव पड़ा।

(५) मंगोलों का आक्रमण—१२९२ ई० में मंगोलों ने पुनः हलाकुखां के पौत्र के नेतृत्व में भारत पर आक्रमण कर दिया परन्तु सुल्तान की सेना ने उन्हें परास्त कर दिया। इस दयालु शासक ने उन भयानक मंगोलों को भी दण्डित नहीं किया और इसके विपरीत उन्हें इस्लाम–धर्म स्वीकार करने पर दिल्ली के समीप मुगलपुरी में बसने की आज्ञा दे दी। ये ही मंगोल आगे चलकर दिल्ली के सुल्तानों को महान कष्टप्रद साबित हुए। अतः इसमें भी सुल्तान ने गलती की।

(६) मालवा पर आक्रमण—सन् १२९३ ई० में सुल्तान ने मालवा के राजा के विरुद्ध सेना भेजी। सुल्तान का भतीजा व दामाद अलाउद्दीन वहां गया और भिलसा को उसने खूब लूटा। जब अलाउद्दीन वहां से पर्याप्त धन लेकर चला तो सुल्तान ने प्रसन्न होकर उसे अवध का सूबेदार और बना दिया। इस घटना ने अलाउद्दीन को महत्वाकांक्षी बनाने में सहायता दी।

मृत्यु और चरित्र—मालवा विजय से अलाउद्दीन के हृदय में राज्य करने की लिप्सा जाग्रत हो उठी। १२९४ ई० में वह ८००० घुडसवारों के साथ सुल्तान की आज्ञा से दक्षिण की ओर रवाना हुआ। विंध्याचल पर्वत को उलांघता हुआ ७०० मील की यात्रा पूरी कर वह एलिचपुर पहुंचा। देवगिरी का यादव वंशीय राजा रामचन्द्र इस अचानक आक्रमण से स्तम्भित रह गया। उसने लसूरा नामक स्थान पर मुसलमानी सेना का सामना किया परन्तु वह परास्त हुआ। इस पराजय की खबर सुन उसका ज्येष्ठ पुत्र शंकरदेव अलाउद्दीन से लड़ने आया। परन्तु अभाग्यवश वह भी हार गया। इस पराजय के फलस्वरूप देवगिरी के राजा को ५० मन सोना, ५ मन मोती, ४० हाथी तथा हजारों घोड़े उपहार में देने पड़े। इस विजय के उपरान्त अलाउद्दीन कड़ा पहुंचा। जब सुल्तान को इस विजय के समाचार प्राप्त हुए तो वह फूला न समाया। सुल्तान के शुभचिन्तकों के समझाने पर भी वह अपने दामाद से मिलने नाव द्वारा १२९६ ई० में कड़ा पहुंचा। जब श्वसुर तथा दामाद परस्पर मिल रहे थे तो अलाउद्दीन द्वारा इसी कार्य हेतु नियुक्त इख्तियारउद्दीन ने सुल्तान का सिर धड़ से अलग कर दिया।

जलालुद्दीन एक दयालु, क्षमाशील तथा धार्मिक प्रवृति का शासक था। यद्यपि उसने बलबन के उत्तराधिकारियों से राज्य छीना था परन्तु राज्य को अधीनस्थ करने के उपरान्त उसने बलबन के वंशजों के साथ दया व सहानुभूति का व्यवहार किया। वह सरल हृदय का शासक था। उसी कारण उसे अपने दामाद के विश्वासघात का शिकार बनना पड़ा। वह सबके साथ मित्रता कासा व्यवहार करता था। परन्तु ये गुण १३ वीं शताब्दी के शासक के उपयुक्त नहीं थे। इसी कारण वह एक असफल शासक रहा। यह सब होते हुए भी डा० आशीर्वादीलाल कहते है कि वह पहला मुसलमान शासक था जिसने उदार स्वेच्छाचारी शासन का आदर्श अपनाया।

अलाउद्दीन खिलजी (१२९६-१३१६)

अलाउद्दीन का प्रारम्भिक जीवन—अलाउद्दीन के पिता का देहान्त इसके बाल्यकाल में हीं गया था। इस कारण इसका पालन इसके चाचा जलालुद्दीन ने किया
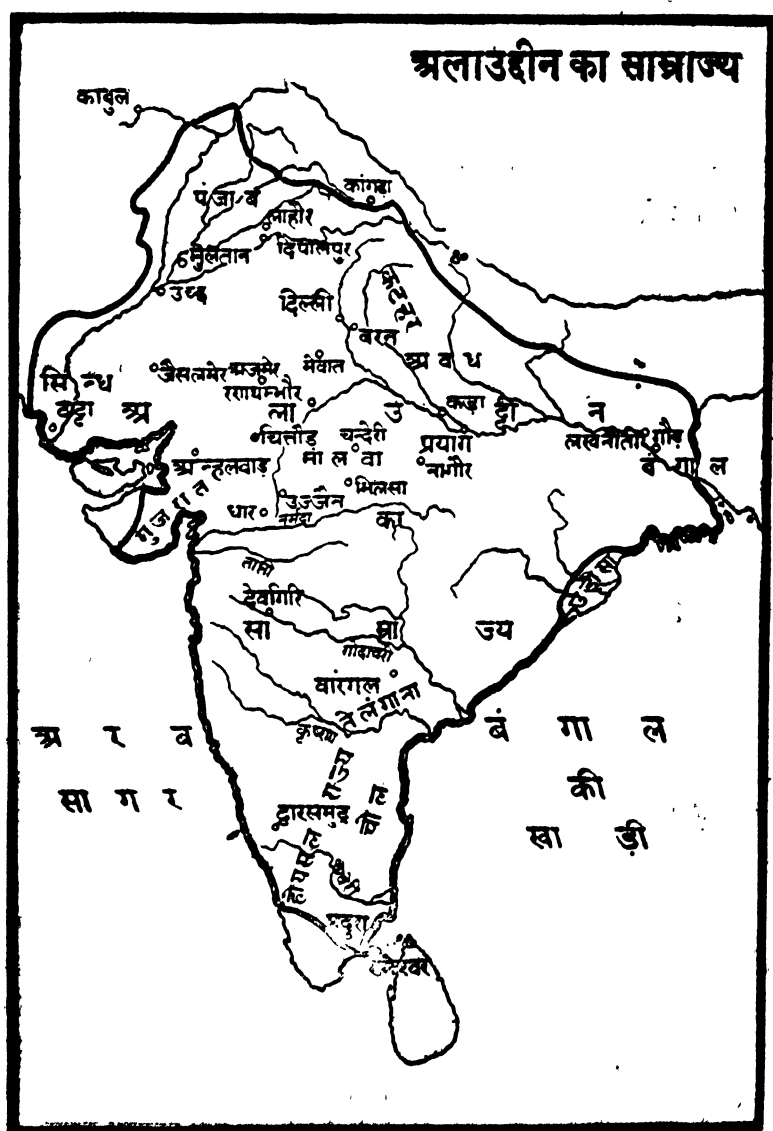
था। जब अलाउद्दीन बड़ा हुआ था तो उसने उसे इलाहाबाद जिले में कड़ा का सूबेदार बना दिया। अलाउद्दीन बचपन से ही एक महत्वाकांक्षी युवक था। १२९२ ई० में उसने

मालवा प्रदेश में भिलसा को लूट कर अपनी अद्‌भुत सैन्य शक्ति का परिचय दिया। इससे सुल्तान जलालुद्दीन बहुत प्रसन्न हुआ। उसने उसके साथ अपनी पुत्री का विवाह करके उसे अवध का सूबेदार और बना दिया। इतिहासकार मजूमदार की मान्यता है कि इसी जागीर की प्राप्ति के उपरान्त अलाउद्दीन के मस्तिष्क में महत्वाकांक्षा के बीज उगे थे। तत्कालीन मुस्लिम इतिहासकार बर्नी लिखता है, "**इस प्रदेश के प्राप्त होते ही उसके मस्तिष्क में दूसरे भागों की ओर बढ़ने तथा धन जमा करने की प्रबल इच्छा होने लगी।**" इस इच्छा की पूर्ति उसने १२९४ में देवगिरी पर आक्रमण करके की। देवगिरी की विजय अलाउद्दीन के जीवन व भारतीय इतिहास में एक अति महत्वपूर्ण घटना थी।

अलाउद्दीन का सुल्तान बनना—मिलने आये बूढ़े सुल्तान को कत्ल कर अलाउद्दीन ने १९ जुलाई १२९६ ई० को अपने को दिल्ली का सुल्तान घोषित किया। इसका जलालुद्दीन के समर्थक अमीरों ने विरोध किया। अलाउद्दीन एक महान धूर्त व्यक्ति था। उसने देवगिरी से प्राप्त अतुल धन-राशि को अमीरों में खुले हाथ से बांट दी। इससे अमीर अलाउद्दीन से मिल गये। बर्नी लिखता है, "**उसने दगाबाज लोगों में इतना सोना बखेरा कि वे अपने पूर्व सुल्तान का वध भूल गये और अलाउद्दीन के राज्य-रोहण से हर्षित होने लगे।**" अमीरों का सहयोग प्राप्त कर अलाउद्दीन ज्योंही दिल्ली की ओर अग्रसर हुआ कि जलालुद्दीन का छोटा पुत्र कादिरखां, जो कि उसकी माता द्वारा रुकुनुद्दीन के नाम से सुल्तान बना दिया गया था, अलाउद्दीन का सामना करने आगे बढ़ा। उसकी धन-लोलुप सेना ने उसके साथ विश्वासघात किया। इस कारण वह परास्त हो मुल्तान की ओर भाग गया। उसे परास्त कर अलाउद्दीन २० अक्टूबर १२९६ को दिल्ली के तख्त पर बैठा।

अलाउद्दीन ने रुकुनुद्दीन तथा उसके ज्येष्ठ भ्राता अरकलीखां को बन्दी बनाकर उनकी आंखें फुड़वा दीं। इसके उपरान्त स्वर्गीय सुल्तान जलालुद्दीन के समस्त समर्थकों को या तो उसने पदच्युत कर दिया या उन्हें मौत के घाट उतार दिया। इस प्रकार हम देखते हैं कि मानव रक्तपात से भय खाने वाले अत्यन्त दयालु एवं सरल प्रकृति वाले अपने चाचा व ससुर जलालुद्दीन की हत्या का पाप-भार लिए व उसके समर्थकों के खून से रक्तरंजित अलाउद्दीन सुल्तान बन कर अपनी महत्वाकांक्षा की पूर्ति करने लगा।

अलाउद्दीन और मंगोल (१२९७-१३०७)—यद्यपि गुलाम वंश के प्रतापी सुल्तान बलबन ने मंगोलों के आक्रमण से देश को सुरक्षित करना चाहा पर वह स्थायी रूप से न हो सका। राज्य के लिए हो रहे घरेलू झगड़ों से उत्पन्न अराजकता ने मंगोलों को पुनः भारत पर आक्रमण करने को प्रोत्साहित किया। सन् १२९७ ई० में एक लाख मंगोलों के साथ अमीर दाउदखां भारत आया। उसने मुल्तान, पंजाब व सिंध आदि

कई प्रदेशों पर अधिकार कर लिया। परन्तु सुल्तान के दामाद अलगखां ने उसे भारत छोड़ने को बाध्य कर दिया। सन् १२६८ ई० में मंगोलों का पुनः आक्रमण हुआ और उस समय रुस्तम जाफरखां ने उन्हें परास्त किया और दो हजार मंगोलों को बन्दी बना लिया। परन्तु इन पराजयों से मंगोल लोग निराश नहीं हुए। उन्होंने १२६८ ई० में फिर कुतलगखां के नेतृत्व में भारत पर आक्रमण किया। इस समय उनकी संख्या दो लाख थी और वे दिल्ली तक बढ़ आये। उनके इस आक्रमण से दिल्ली व उसके आसपास के स्थानों पर अशान्ति फैल गई। आसपास के लोग मंगोल लोगों के भय से भयभीत हो दिल्ली में शरण पाने का प्रयास करने लगे। कहते हैं उस समय दिल्ली की समस्त मस्जिदें भी इन भयभीत लोगों से पूर्ण थीं। इस कठिन समय में अलाउद्दीन के अमीरों ने उसे सलाह दी कि वह मंगोल लोगों से सन्धि करले। परन्तु अलाउद्दीन इस सलाह की अवहेलना करने और बारह हजार सैनिकों के साथ मंगोल आक्रमणकारियों से टक्कर लेने आगे बढ़ा। इस लड़ाई में भी अलाउद्दीन अपने सहायक जाफरखां तथा अलगखां की सहायता से विजयी हुआ। यद्यपि इस लड़ाई में जाफरखां काम आ गया पर उसने मंगोल लोगों को पूर्णतया भयभीत बना दिया था। इस पराजय के उपरान्त भी मंगोल लोगों ने भारत लूटने का इरादा नहीं छोड़ा। १३०४ ई० में वे अलीबेग की तथा १३०७ ई० में इकबाल मन्दा की अध्यक्षता में मंगोलों ने पुनः भारत पर आक्रमण किये। इन अवसरों पर भी उनको सदा की भांति पराजय ही प्राप्त हुई। १३०७ ई० के आक्रमण में बहुत से मंगोल बन्दी बनाये गये तथा सुल्तान की आज्ञा से वे हाथी के पैरों से कुचवालकर यमलोक पहुँचा दिए गये। इस पराजय से ,वे इतने निराश एवं भयभीत हो गये कि उन्होंने फिर भारत पर हमला करने का इरादा नहीं किया।

यद्यपि अलाउद्दीन ने मंगोलों को पूरी तरह कुचल दिया था तथापि उसने उनसे देश की रक्षा के लिए स्थायी प्रबन्ध भी किया। उनके भविष्य में आक्रमण रोकने के लिए अलाउद्दीन ने भी बलबन की भांति कठोर नीति का अनुसरण किया। उसने भारत की उत्तरी पश्चिम सीमा पर पुराने दुर्गों की मरम्मत कराई तथा समाना, दीपालपुरा व मुल्तान आदि स्थानों पर नवीन किलों का निर्माण कराया। इसके अलावा उसने सेना की वृद्धि की तथा युद्ध के शस्त्रों का निर्माण भी अधिक करवाना आरम्भ किया। उसकी इस नीति तथा इस प्रकार के प्रबन्ध से मंगोल लोगों ने पुनः भारत की ओर आंख ही नहीं उठाई।

अलाउद्दीन की विजय (१२६७ से १३११)

उत्तरी भारत की विजय (१२६७ से १३०५)—इन प्रारम्भिक सैनिक सफलताओं से अलाउद्दीन का दिमाग फिर गया। वह महत्वाकांक्षी तो पहले ही था। इन विजयों के उपरान्त वह अपने समय का सिकन्दर बनने का प्रयास करने लगा।

उसके मस्तिष्क में तो एक नवीन धर्म चलाने तक का विचार उत्पन्न हुआ। परन्तु वह दिल्ली के कोतवाल काजी अलाउल्मुक ने अपनी नेक सलाह से उसका यह विचार तो समाप्त करवा दिया। उसने उसको एक महान विजेता होने की सलाह अवश्य दी। इसके अनन्तर अलाउद्दीन ने इस उद्देश्य–पूर्ति के लिए सर्व प्रथम उत्तरी भारत के स्वतन्त्र प्रदेशों की ओर नजर डाली।

१२६७ ई० में सुल्तान की आज्ञा से उसके भाई अलगखां तथा वजीर नसरतखां ने **गुजरात** पर आक्रमण किया। वहां का बघेल राजा कर्णदेव परास्त हुआ और उसकी रूपवती रानी कमलादेवी सुल्तान को प्राप्त हुई। इस विजय के उपरान्त मुसलमानों ने खम्भात जैसे धनिक बन्दरगाह को लूटा। इस लूट में सबसे अमूल्य धन मलिक काफूर था जो कि आगे चलकर सुल्तान का एक योग्य सेनानी तथा साम्राज्य बढ़ाने वाला सिद्ध हुआ। मलिक काफूर एक सुन्दर युवक था। उसमें सैनिक गुण कूट कूट कर भरे हुए थे। कई इतिहासकारों की मान्यता है कि वह हिन्दू था।

रणथम्भोर को ईल्तुतमिश ने जीत लिया था किन्तु कालान्तर में वह स्वतन्त्र हो गया था। अलाउद्दीन ने १२६६ ई० में इस पर फिर आक्रमण किया। इस आक्रमण का मूल कारण रणथम्भोर के तत्कालीन वीर नरेश हम्मीरदेव द्वारा नये मुसलमानों (जलालुद्दीन द्वारा बसाये मुसलमान) को अपने यहां शरण देना था। इस आक्रमण में वीर राजपूत विजयी हुए और नसरतखां मारा गया। इस पराजय से क्रुद्ध होकर अलाउद्दीन १३०१ ई० में स्वयं रणथम्भोर पहुँचा। इस बार हम्मीरदेव युद्ध में अपनी अभूतपूर्व वीरता दिखाते हुए काम आये। स्त्रियों ने अपनी वीरता का परिचय 'जौहर' द्वारा दिया।

रणथम्भौर के अनन्तर **चित्तौड़गढ़** की बारी आई। कहते हैं कि सुल्तान ने वहां राणा रत्नसिंह की अति सुन्दरी रानी पद्मिनी को लेने के हेतु आक्रमण किया था। परन्तु आधुनिक इतिहासकार अब इसे केवल कल्पित गाथा की संज्ञा देते हैं। खैर कुछ भी हो १३०३ ई० में भारी रक्तपात के पश्चात् चित्तौड़गढ़ पर मुसलमानों की विजय पताका लहराने लगी और वहां अलाउद्दीन ने अपने पुत्र खिजरखां को सूबेदार नियुक्त किया। परन्तु आठ वर्ष के उपरान्त सुल्तान ने चित्तौड़गढ़ राजा मालदेव को दे दिया था।

इन विजयों से अलाउद्दीन को साम्राज्य बढ़ाने का और प्रोत्साहन प्राप्त हुआ। उसने १३०५ ई० में **मालवा** पर आक्रमण कर दिया। वहां का नरेश राय महलक देव वीरता से लड़ा परन्तु परास्त हुआ। इसके विजय के अनन्तर सुल्तान के सैनिकों ने मांडू, उज्जैन तथा धारा नगरी पर भी अधिकार कर लिया। इस प्रकार हम देखते हैं कि १३०५ ई० तक अलाउद्दीन का समस्त उत्तरी भारत पर प्रभुत्व स्थापित हो गया।

दक्षिण विजय (१३०५-१३११)—मंगोलों के भय को समाप्त कर तथा उत्तरी भारत को पूर्णत' अपने अधिकार में कर उसने दक्षिणी 'भारत की ओर दृष्टिपात किया। साम्राज्यवाद के प्रबल समर्थक अलाउद्दीन ने मलिक काफूर के नेतृत्व में १३०६ ई० में देवगिरी पर आक्रमण करने पुनः अपनी सेना भेजी। काफूर ने देवगिरी के शासक रामचन्द्र को परास्त करके राजधानी को भेज दिया और इसी आक्रमण में उसे गुजारात के राजा कर्णदेव की पुत्री, देवलदेवी जो १२६७ ई० में अपने पिता के संग भागने में सफल हो गई थी, पकड़ी गई। उसे दिल्ली भेज दिया गया, जहां कि उसकी शादी अलाउद्दीन के बेटे खिजरखां से कर दी गई।

रामचन्द्र की ओर से निश्चिन्त होकर काफूर अपने स्वामी की आज्ञा से १३०६ ई० में **तेलंगाना** पर हमला किया। वहां के शासक प्रताप रूद्रदेव काकतीय को परास्त कर उससे अतुल धनराशी प्राप्त की।

इस विजय से अलाउद्दीन की साम्राज्यवादी क्षुधा इतनी प्रबल हो उठी कि उसने १३१० ई० में **द्वारसमुद्र** पर आक्रमण करने का आदेश दे दिया। १८ नवम्बर को शाही सेना काफूर के सेनापतित्व में गहरी नदियां घाटियों व कन्दराओं को पार करती हुई द्वारसमुद्र पहूंची। द्वारसमुद्र उस समय बल्लालवंशीय राजाओं की एक शक्ति-सम्पन्न राजधानी थी। परन्तु बल्लाल भी मुसलमानो सेना के आगे टिक नहीं सका। परास्त राजा ने मुसलमानों को अतुल धन देकर सन्धि करली। इस विजय के उपरान्त काफूर **मदुरा** की ओर रवाना हुआ। उस समय वहां पाण्डय नरेश के अयोग्य पुत्रों—सुन्दर पाण्डय तथा वीर पाण्डय में वैमनस्य चल रहा था। काफूर के आगमन की सूचना पाते ही वीर पाण्डय भाग छूटा और राजधानी को मुसलमानों की लूट के लिए स्वतन्त्र छोड़ गया। काफूर ने राजधानी को लूटा तथा कई मन्दिरों को धराशायी कर दिया। इस विजय के उपरान्त काफूर अपनी दक्षिण-विजय से उल्लासित होता हुआ १३११ ई० में दिल्ली लौटा।

इस प्रकार दक्षिण का मुसलमानों द्वारा विजित होने का यह प्रथम अवसर था और अलाउद्दीन खिलजी पहिला मुसलमान सुल्तान था जिसने दक्षिण भारत पर विजय प्राप्त की थी। यह सत्य है कि अलाउद्दीन ने दक्षिण को मूल रूप से वहां की अतुल सम्पदा को प्राप्त करने की दृष्टि से आक्रमण किया था। परन्तु इन आक्रमणों का राजनीतिक प्रभाव भी बहुत हुआ। अलाउद्दीन के आक्रमणों ने अन्य मुसलमानी शासकों को दक्षिण में हमला करने के लिए मार्ग खोल दिया।

शासन-प्रबन्ध—अलाउद्दीन खिलजी एक उच्च कोटि का विजेता था। उसने अपनां समस्त जीवनकाल साम्राज्य की वृद्धि में व्यतीत किया। इसका यह अर्थ नहीं था कि वह शासन-प्रबन्ध की जानकारी नहीं रखता था। यद्यपि वह अशिक्षित

परन्तु फिर भी राज्य-कार्यों को भलीभांति समझता था। उसका शासन इतना अच्छा था कि उसका महान साम्राज्य होते हुए भी उसके जीवन-काल में शान्ति रही और उसकी वह शासन-प्रणाली उसके बाद में होने वाले शासकों की अनुकरणीय रही। उसका शासन-प्रबन्ध निम्न प्रकार का था :—

लौकिक राज्य का सिद्धान्त—अलाउद्दीन में भी धार्मिक कट्टरता व्याप्त थी। उसने एक बार कहा था—"मैंने कुरान नहीं पढ़ी किन्तु मैं मुसलमान वंश में उत्पन्न हुआ हूं और मुसलमान हूं।" उसने इस कट्टरता को शासन-कार्यों से दूर रखा। वह प्रथम मुस्लिम शासक था जिसने अपने शासन को धर्म से दूर रखा। वह शासन सम्बन्धी कार्यों में मुल्ला व मौलवियों का हस्तक्षेप सहन करने को उद्यत नहीं था। उसका कथन था—"**कानून सुल्तान की इच्छा पर अवलंबित है, पैगम्बर से इसका कोई सम्बन्ध नहीं .. ...मैं नहीं जानता कि यह शरीयत के अनुसार है या नहीं, मैं जिस चीज को राज्य के लिए हितकर अथवा परिस्थिति के अनुकूल समझता हूँ उसको करता हूँ। कयामत के दिन क्या होगा यह मुझे मालूम नहीं।**" इससे स्पष्ट है कि उसने राजनीतिक सत्ता की प्रधानता के सिद्धान्त का प्रतिपादन किया।

केन्द्रीय शक्ति को संगठित करना—अलाउद्दीन खिलजी भी फ्रांस के सम्राट् लुई चौदहवें की भांति अपने को राज्य का सर्वेसर्वा मानता था। वह सिद्धान्त और व्यवहार में बहुत कुछ निरंकुश शासक था। उसकी मान्यता थी कि "**मैं ही राज्य हूँ**" अतः वह चाहता था कि राज्य के समस्त लोग प्रजा के रूप में उसके आदेश को माने और उसमें हस्तक्षेप न करें। इसलिए उसने अपने को पूर्ण रूपेण निरंकुश बनाये रखा। वह जानता था कि शासक के निरंकुश अधिकारों में सूबेदारों द्वारा समय समय पर विघ्न उत्पन्न किये जाते हैं। अतः उसने इंगलैण्ड के सम्राट हेनरी सप्तम की भांति इन अमीरों को शक्तिहीन बनाने के हेतु सक्रिय कदम उठाया। अमीरों के दमन के विषय में बर्नी लिखता है, "**सुल्तान ने अमीरों के लिए आज्ञा निकाली जिसके अनुसार उनका एक दूसरे के यहां जाना आना, दावतें देना, सभाएँ करना और आपस में विवाह करना तथा अपरिचित लोगों को अपने यहां ठहराना आदि पूर्ण तरह से बन्द कर दिया गया।**" इसके अलावा अलाउद्दीन ने अमीरों को शक्तिहीन करने तथा केन्द्रीय शासन को दृढ़ करने के लिए गुप्तचर विभाग भी स्थापित किया। बर्नी लिखता है कि "**सुल्तान ने साम्राज्य में गुप्तचरों का जाल बिछा दिया। राज्य में किया गया अच्छा या बुरा काम सुल्तान से न छिपता था। सरदारों, अमीरों और सरकारी अफसरों के घर में जो कुछ होता था उसकी सूचना सुल्तान को इन गुप्तचरों से मिल जाती थी.........अमीरों को इतना भय लगा रहता था कि वे अपने महलों**

में भी जोर से न बोलते थे और इशारे से बातें करते थे। गुप्तचरों के भय से वे दिन रात अपने घरों में कांपा करते थे।"

इसके अलावा उसने अपने राज्य में मद्य-निषेध कर दिया। शराब के विक्रेताओं को शहर से बाहर निकाल दिया। उसने स्वयं ने भी सुरा-पान का त्याग किया। दावतों में भी शराब का पीना वर्जित कर दिया गया। इस पर एक इतिहास लेखक का कथन है कि **"मद्यपान के निषेध के उपरान्त षडयन्त्रों का जोर कम हो गया और विद्रोह की आशंका दूर हो गई।"**

अलाउद्दीन हिन्दुओं को भी अपनी निरंकुशता में बाधक समझता था। वह जानता था कि दोआब के धनी हिन्दुओं ने गुलामवंश के शासकों को कभी चैन से नहीं रहने दिया। अतः उसने उनको दरिद्र बनाने हेतु उनसे दुगना लगान लेना आरम्भ किया। उनसे पशु-कर भी लेना आरम्भ किया। इसके अलावा कर वसूल करने वाले उनके साथ कठोर व्यवहार करते थे। हिन्दुओं के दमन के सम्बन्ध में बर्नी लिखता है, **"हिन्दुओं को इतना दबा दिया गया कि वे न घोड़ा रख सकते, न अच्छे वस्त्र पहन सकते और न किसी प्रकार की विलास की वस्तुएँ ही इस्तेमाल कर सकते थे। उनके घरों में सोना चांदी का निशान तक न रह गया था। उनमें सिर भी उठाने की हिम्मत न थी। गरीबी के कारण उनकी स्त्रियां मुसलमानों के घरों में काम करती थीं।"**

सैनिक प्रबन्ध—अलाउद्दीन राज्य को हथियाने वाला व्यक्ति था। अतः उसको अपनी शक्ति बनाये रखने के लिए एक विशाल सेना की परम आवश्यकता थी। इसके अलावा मंगोलों के आक्रमण से देश को सुरक्षित रखने की दृष्टि से भी शक्तिशाली सेना का होना आवश्यक था। उसका महत्वाकांक्षी एवं साम्राज्यवादी होना भी विशाल सेना रखने का एक प्रमुख कारण था। इन्हीं कारणों से उसने अपनी सेना की वृद्धि की तथा उसे योग्य सैनिकों से पूर्ण करने के लिए कई सुधार किए। सैनिकों को वेतन नियमित रूप से दिया जाने लगा। उन्नति केवल योग्य सैनिकों की ही होती थी। सैनिकों को भ्रष्टाचार से दूर रखने के लिए घोड़ों को दागने की प्रथा चालू की। सैनिकों की भर्ती के लिए अरीज-ए-ममालिक नामक एक अफसर नियुक्त किया गया। सैनिकों का हुलिया भी दर्ज किया जाता था। सैनिक तीन वर्गों में विभक्त थे। प्रथम श्रेणी के सैनिक को २३४ टंक प्रति वर्ष, द्वितीय श्रेणी को १५६ टंक तथा तृतीय श्रेणी के सैनिकों को केवल ७८ टंक प्रति वर्ष मिलता था। इस प्रकार हम देखते हैं कि अलाउद्दीन प्रथम मुसलमान शासक था जिसने ४,७५,००० घुड़सवारों की एक स्थायी सेना रखने की व्यवस्था की थी।

आर्थिक सुधार—अलाउद्दीन ने देश में शांति व सुव्यवस्था कायम रखने के लिए एक विशाल सेना की व्यवस्था की। परन्तु वह जानता था कि इस विशाल सेना

को रखने के लिए एक बड़ी धनराशि की आवश्यकता होगी। अतः उसने निम्नलिखित तरीकों से अपने राज्य की आमदनी बढ़ाई—

(१) व्यक्तिगत सम्पत्ति का अपहरण—बलबन की भांति अलाउद्दीन जानता था कि व्यक्तिगत सम्पत्ति बनाये रखना भी आन्तरिक कष्टों का कारण बन जाता है। अतः उसने अमीरों को दबाने व अपने खजाने की आय बढ़ाने की दृष्टि से व्यक्तिगत सम्पत्ति जब्त करना आरम्भ कर दिया।

(२) दान की भूमि पर अधिकार करना—उसने अमीरों को इनाम में प्रदत्त व पैन्शन रूप में प्रदत्त भूमि पर पुनः अधिकार कर लिया। इसके अलावा गरीब मुसलमानों के भरण-पोषण के लिए जो भूमि राज्य द्वारा स्वीकृत थी वह भी सुल्तान ने ले ली। परन्तु इस प्रकार की समस्त भूमि को हथियाने में सुल्तान पूर्णरूपेण सफल नहीं हुआ।

(३) जागीरों का अपहरण—जैसा कि हम सैनिक प्रबन्ध में देख चुके हैं उसने सैनिकों को नकद वेतन देना आरम्भ कर दिया था। अतः अब राज्य में जागीर देने की आवश्यकता न रही। जागीर रूप में स्वीकृत भूमि से राज्य-खजाने में बहुत थोड़ा धन पहुंचता था। परन्तु जागीरें जब्त करने से राज्य की आय में वृद्धि हुई।

(४) हिन्दुओं से दुगना कर लेना—अलाउद्दीन के शासन से पूर्व जो हिन्दू मालगुजारी वसूल करते थे उन्हें कुछ विशेष अधिकार प्राप्त थे। अलाउद्दीन ने उनके विशेष अधिकार छीन कर उनका वेतन भी निश्चित कर दिया। इसके अलावा उसने हिन्दुओं से जजिया कर वसूल किया और उन पर भूमि कर दुगना कर दिया। इससे भी राज्य की आय बढ़ी।

(५) कर वसूली की नई व्यवस्था—अलाउद्दीन ने मालगुजारी के लिए मलिक कदूल उलुक खानी नियुक्त किया। वह इस कार्य में बड़ा दक्ष था। उसने भूमि की नांप करवाई और सरकारी लगान तीन प्रकार से निश्चित किया जाने लगा। लगान वसूली के लिए राज्य कई भागों में विभक्त कर दिया गया। इस व्यवस्था से लगान सुविधा से वसूल किया जाने लगा और सरकारी रकम पूरी मात्रा में राजकीय कोष में जमा होने लगी। कर वसूल करने में सख्ती बरती जाती थी। मजूमदार का कथन है कि सख्ती के कारण मालगुजारी वसूल करने वाले कर्मचारी ज्वर से भी बुरे समझे जाते थे।

(६) वस्तुओं पर नियन्त्रण—अलाउद्दीन एक सैनिक शासक तथा प्रथम श्रेणी का साम्राज्यवादी सुल्तान था। अतः उसे एक विशाल सेना की व्यवस्था करना अत्यन्त आवश्यक था। परन्तु वह धन का लोभी था अतः सेना पर अधिक व्यय भी नहीं करना

चाहता था। उस दूरदर्शी शासक ने वस्तुओं के भाव तथा मूल्य नियत कर दिए। इससे यह हुआ कि अलाउद्दीन बिना व्यय में वृद्धि किये ही एक विशाल सेना रखने में समर्थ हो सका।

दैनिक जीवन के प्रयोग में आने वाली वस्तुओं की सुल्तान ने एक सूची तैयार कराई। तदुपरान्त उन वस्तुओं के भाव निश्चित किये गये। बाजार की देखभाल करने के लिए 'दीवान-रियासत' और 'शहना-मण्डी' नामक दो अधिकारी नियुक्त किये। ये कर्मचारी बाजार पर कड़ी निगरानी रखते थे। कम तोलने वालों का मांस काट लिया जाता था। वितरण की सुव्यवस्था की दृष्टि से शाही गोदामों में अन्न जमा किया जाने लगा। व्यापारियों को अन्न-संग्रह करने का लाइसेन्स प्राप्त करना पड़ता था। अन्न एवं खाद्य पदार्थों के अतिरिक्त अन्य वस्तुओं के दाम भी निश्चित कर दिए गये। युद्ध में काम आने वाले घोड़ों के दाम भी तय कर दिए गये। इन वस्तुओं के नियन्त्रण से कुछ लोगों को नुकसान अवश्य हुआ, परन्तु जनसाधारण को इससे बड़ा लाभ पहुंचा। बर्नी लिखता है "**अनाज का भाव सदैव एक सा रहता था। यह उस युग में एक अत्यन्त आश्चर्य की बात थी।**" इस प्रकार हम देखते हैं कि वह भारत का प्रथम शासक था जिसने आधुनिक कंट्रोल (नियन्त्रण) प्रणाली को जन्म दिया।

आर्थिक व नियन्त्रण कानून का प्रभाव—इन आर्थिक सुधारों तथा भाव नियन्त्रण कानून से अलाउद्दीन एक विशाल सेना की व्यवस्था करने में समर्थ रहा जिसके कारण वह देश को मंगोलों के आक्रमणों से सुरक्षित कर सका तथा भारत में अपने को सबसे बड़ा प्रथम मुस्लिम साम्राज्यवादी शासक सिद्ध कर सका। जन-साधारण का आर्थिक जीवन सुखी रहा। हिन्दुओं के विद्रोह का भय न रहा तथा राजकीय कोष उत्तरोत्तर वृद्धि पाने लगा। राजनीतिक तथा आर्थिक सुधार के अतिरिक्त लोगों का नैतिक सुधार भी हुआ। व्यापारी लोग ईमानदारी से सौदा बेचने लगे। सैनिकों को नकद वेतन मिलने से उनके आचरण में भी सुधार हुआ और वे अपना कार्य तत्परता एवं सच्चाई से करने लगे। इसका परिणाम यह निकला कि चारों ओर शान्ति स्थापित हो गई।

परन्तु इन सुधारों का कुछ हानिप्रद प्रभाव भी पड़ा। व्यापारी वर्ग इस नियन्त्रण कानून से व्यथित थे। अमीर लोग जो विलासमय जीवन व्यतीत करने के आदी हो गये थे – सुल्तान के इन सुधारों से अप्रसन्न थे। हिन्दू रजवाड़े इसके करों से दब गये थे। अतः वे सुल्तान की नीति से असन्तुष्ट थे। राजपूत राजा अपनी खोई स्वतन्त्रता को प्राप्त करने का पुनः प्रयास करने लगे थे। अतः अलाउद्दीन के ये सुधार उसके जीवनकाल में ही अशान्ति उत्पन्न करने वाले सिद्ध हो गये थे।

अलाउद्दीन की मृत्यु तथा उसका चरित्र—एक मुसलमान इतिहासकार के शब्दों में, "ऐश्वर्य साधारण और परिवर्तनशील सिद्ध हुआ, भाग्य ने उसे नष्ट करने

के लिए अपनी कटार खैंची" अलाउद्दीन जब अपने सामने ही अपने कानूनों का उल्लंघन देखता तो उसे बड़ा क्रोध आता था और वह क्रोधवश अपना मांस काटने लगता था। उसके अन्तिम दिनों में राज्य में अशान्ति के चिन्ह स्पष्ट दृष्टिगोचर होने लग गये थे। उसी समय वह प्राणघातक रोग के पंजे में जकड़ गया और जनवरी सन १३१६ ई० में इस महान साम्राज्य को अस्त-व्यस्त होने के लिए छोड़कर इस दुनियां से सदा के लिए चल बसा। इतिहासकार एलफिन्सटन का मत है कि उसे काफूर ने विष देकर मारा था।

अलाउद्दीन मध्यकाल का एक महानतम मुस्लिम शासक था। उसके शासन-काल में मुस्लिम साम्राज्य उत्कर्ष की चरम सीमा पर पहुंच गया था। सर वुल्जले हेग के शब्दों में अलाउद्दीन के शासन काल से **"दिल्ली सल्तनत का साम्राज्यवादी युग आरम्भ होता है जो लगभग ५० वर्ष तक चला।"** यह सत्य है कि अला-उद्दीन स्वभाव से निर्दयी तथा महत्वाकांक्षी था। उसकी इच्छाशक्ति इतनी प्रबल थी कि वह किसी के साथ रियायत नहीं करता था। इसलिए इतिहासकार वी० ए० स्मिथ कहता है कि **"वह अत्यन्त नृशंस अत्याचारी था और उसके शासन में श्रेष्ठता की कोई बात नहीं थी।"** परन्तु स्मिथ का यह कथन हमें पूर्णतया सत्य प्रतीत नहीं होता। वह एक योग्य सिपाही तथा उच्च कोटि का सेनानायक था। साहस और वीरता उसके जीवन की विशेषताएं थीं। इसके अलावा वह एक महान विजेता तथा साम्राज्य निर्माता ही न था वरन् एक योग्य शासक भी था। वह प्रथम मुस्लिम शासक था जिसने धर्म में कट्टर होते हुए भी मुस्लिम उलमा का राज्य-कार्यों में हस्तक्षेप सहन नहीं किया। नागरिक-प्रबन्ध में उसने अपूर्व बुद्धिमानी का तथा भाव-नियन्त्रण में अपनी अद्वितीय मौलिकता का परिचय दिया। सैनिकों को नकद वेतन देकर उसने एक दूर-दर्शिता का कार्य किया था। इसलिए कहा जाता है कि वह योग्य प्रबन्ध के जन्मजात गुणों से पूर्ण था। एल्फिन्सटन इतिहासकार की धारणा है कि **अलाउद्दीन का शासन उत्तम व श्रेष्ठ था।**

यद्यपि वह स्वयं अशिक्षित था परन्तु विद्वानों का आदर करता था। अमीर खुसरो तथा मीर हसन जैसे प्रतिभासम्पन्न कवि उसके दरबार में विद्यमान थे। स्थापत्य-कला से भी उसे रुचि थी। उसने अपने शासनकाल में कई दुर्गों का निर्माण तथा जीर्ण मस्जिदों का जीर्णोद्धार करवाया था। यह सब गुण होते हुए भी वह ईर्षालु और कृतघ्न था। जलालुद्दीन की हत्या उसके जीवन पर अमिट कलंक है। एक रक्तपिपासु, स्वार्थी, कृतघ्न एवं निर्दयी होते हुए भी उसे एक योग्य शासक होने से कोई इन्कार नहीं कर सकता।

खिलजी वंश का अन्त—सुल्तान के अन्तिम दिनों में मलिक काफूर बहुत शक्तिशाली बन गया था। उसके दिल में भी अपने मालिक की तरह कृतघ्नता समा

गई थी। अतः अलाउद्दीन के मरते ही उसने राज्य हथियाना चाहा। खिजरखाँ पहले ही अन्धा किया जा चुका था। अतः मलिक काफूर ने अलाउद्दीन के ६ वर्षीय पुत्र शाहबुद्दीन को गद्दी पर बिठाया और शासन की समस्त सत्ता अपने हाथ में ले ली। उसने अमीरों व स्वर्गीय सुल्तान के सम्बन्धियों के साथ निर्दयता का व्यवहार किया। इसका परिणाम यह निकला कि वह दुष्ट ३५ दिन बाद मौत के घाट उतार दिया गया। उसके वध के बाद अमीरों ने अलाउद्दीन के अन्य पुत्र मुबारक को गद्दी पर बिठाया। उसने प्रारम्भ में अच्छा कार्य किया। अपने पिता के सुधारों में महान परिवर्तन कर दिया। भाव-नियन्त्रण हटा दिया तथा अमीरों की छीनी हुई जागीरें पुनः लौटा दी। इस प्रकार वह जनता तथा अमीरों दोनों का प्रिय बन गया। परन्तु अन्त में वह भोग विलास में फँस गया।

शिष्टता तथा सदाचार का उसने सर्वथा परित्याग कर दिया और वेश्याओं के संसर्ग में रहने लगा। राज्य-कार्यों की ओर से उदासीनता ले ली। इस कारण गुजरात के एक नीच खुसरोंखां ने अपनी प्रभुता सुल्तान पर जमा ली। इससे राज्य में चारों ओर उपद्रव मचने लगे। उन विद्रोहों को दबाने में खुसरोंखां ने बड़ी तत्परता दिखाई। इस कारण उसका प्रभाव दरबार में और भी जम गया। इन विजयों से उसका मस्तिष्क फिर गया और उसने १३२० ई० में उसने अपने स्वामी मुबारकशाह का वध कर दिया।

मालिक के खून से रक्तरंजित खुसरोंखां नासिरुद्दीन की उपाधि धारण कर दिल्ली का सुल्तान बना। वह चार महीने ही शासन कर पाया था कि १३२१ ई० में गाजी तुगलक के नेतृत्व में हुई बगावत में वह परास्त हुआ और अपने विरोधियों द्वारा मार दिया गया। अलाउद्दीन खिलजी का कोई वंशज शेष न रहने के कारण गाजी तुगलक ही दिल्ली का शासक बन बैठा।

अध्ययन के लिए संकेत

जलालुद्दीन—वह १२८० ई० में दिल्ली का सुल्तान बना। वह एक तुर्क था और उसके पूर्वज अफगानिस्तान में बस गये थे। गुलाम वंश के अन्तिम सुल्तान कैकुबाद ने उसे सैन्य-मन्त्री बना लिया था। उसका प्रारम्भिक नाम फ़ीरोज था। कैकुबाद का वध करके वह सुल्तान बना था।

वृद्ध होने के कारण वह एक दयालु शासक बन गया था। उसके शासन के प्रारम्भ में बलबन के भतीजे छज्जू ने विद्रोह किया। वह दबा दिया गया। दूसरी इसके काल की प्रमुख घटना सिद्दीमौला का वध था। वह एक दरवेश था। इसके वध से जलालुद्दीन जनता में बदनाम हो गया। इसके अलावा उसने रणथम्भौर के किले पर आक्रमण किया तथा राज्य में फैले डाकू तथा मंगोलों से राज्य को सुरक्षित करना चाहा। परन्तु इन सब कार्यवाहियों में सुल्तान की दुर्बलता ही दृष्टिगोचर होती

है। इस दुर्बलता तथा भोलेपन के कारण ही वह १२९६ ई० में अपने दामाद व भतीजे अलाउद्दीन द्वारा समाप्त कर दिया गया।

अलाउद्दीन खिलजी—पिता का देहान्त बचपन में ही हो जाने के कारण इसका पालन-पोषण इसके चाचा जलालुद्दीन द्वारा किया गया था। १२९३ ई० में मालवा प्रदेश में भिलसा के लूटने में उसने अपनी सैन्य-शक्ति का परिचय दिया। इससे प्रसन्न होकर जलालुद्दीन ने अपनी पुत्री का विवाह अलाउद्दीन से कर दिया और उसे अवध का सूबेदार बना दिया। वह एक महत्वाकांक्षी व्यक्ति था। अतः उसने देवगिरी पर आक्रमण किया और जब विजयी होकर लौट रहा था अपने चाचा जलालुद्दीन को, जो उससे मिलने आया था, मौत के घाट उतार दिया।

अलाउद्दीन और मंगोल—यद्यपि बलबन ने मंगोलों को दबाने का भरसक प्रयत्न किया था और दबा भी दिया था परन्तु दिल्ली की आन्तरिक अवस्था ने उन्हें भारत पर पुनः आक्रमण करने को प्रोत्साहन दिया। अतः इसके शासन-काल में मंगोलों के १३०७ ई० तक कई आक्रमण हुए परन्तु उन्हें हार खानी पड़ी।

उसकी विजय—अलाउद्दीन एक महत्वाकांक्षी सुल्तान था। वह अपने साम्राज्य को बढ़ाना चाहता था। १२९७ ई० से १३०५ ई० तक का समय तो उसने उत्तरी भारत को विजय करने में लगाया। इस काल में उसने गुजरात के नरेश कर्णदेव को परास्त किया तथा रणथम्भोर को अपने आधीन किया। चित्तौड़गढ़ भी उसकी क्रूर दृष्टि से न बच सका। इनके अतिरिक्त सुल्तान ने मांडू, उज्जैन तथा धार नगरी पर भी अधिकार कर लिया।

१३०५ से १३११ ई० का समय सुल्तान ने दक्षिणी भारत की विजय में व्यतीत किया। इस विजय में सुल्तान को मलिक काफूर से महान सहयोग मिला। मलिक काफूर ने देवगिरी के नरेश रामचन्द्र को परास्त कर तेलंगाना पर चढ़ाई की। वहां के नरेश रूद्रदेव काकतीय को परास्त कर द्वार समुद्र पर आक्रमण कर दिया। मदुरा भी मलिक काफूर के आक्रमण से न बच सका। इस प्रकार अलाउद्दीन खिलजी प्रथम मुसलमान शासक था जिसने कि दक्षिणी भारत परअधिकार किया था।

शासन–प्रबन्ध—अलाउद्दीन केवल एक विजेता ही नहीं था वरन एक उच्च प्रशासक भी था। यद्यपि वह एक कट्टर मुसलमान था परन्तु शासन-कार्यों में वह धर्म का प्रवेश नहीं चाहता था। वह अपने को राज्य का सर्वेसर्वा मानता था। राज्य की शासन-सत्ता पूर्ण रूप से उसके हाथों में थी। अपनी शक्ति को निरंकुश बनाये रखने के लिए उसने अमीरों की शक्ति को दबा दिया तथा समस्त राज्य में गुप्तचरों का जाल बिछा दिया, मद्य-पान को भी निषिद्ध ठहराया गया और हिन्दुओं को अपने आधीन करने के लिए उसने उन पर कर बढ़ा दिया।

अलाउद्दीन का सैनिक प्रबन्ध बहुत अच्छा था। उसने एक योग्य सैनिकों की सेना का संगठन किया तथा उनको नकद वेतन देने की व्यवस्था की। इसकी सेना तीन वर्गों में विभक्त थी। कम खर्चे में एक महान् सेना रखने के हेतु उसने कुछ आर्थिक सुधार किये। खाद्य—सामग्री के भाव निश्चित कर दिये गये। नियमों का उल्लंघन करने वालों को कठोर दण्ड दिया जाता था।

चरित्र—अलाउद्दीन मध्यकाल का एक महान् मुस्लिम शासक माना जाता है। वह एक महान् विजेता, साम्राज्य निर्माता तथा उच्च कोटि का प्रशासक था। विद्वानों का वह आदर करता था।

खिलजी वंश का अन्त—अलाउद्दीन की मृत्यु पर मलिक काफूर ने राज्य सत्ता हथियानी चाही। उसने स्वर्गीय सुल्तान के ६ वर्षीय पुत्र शाहबुद्दीन को गद्दी पर बिठाया। उसके वध के उपरान्त मुबारक गद्दी पर बैठा। परन्तु वह एक निकम्मा शासक था। अतः खुसरोखां राज्य का मालिक बना परन्तु उसे गाजी तुगलक ने समाप्त कर दिया।

अभ्यासार्थ प्रश्न

(१) "अलाउद्दीन एक महत्वाकांक्षी शासक था जो अपने साम्राज्य को बढ़ाना चाहता था और इस लक्ष्य में वह सफल भी हुआ। इस कथन की सत्यता पर प्रकाश डालिए।

"Alauddin was an ambitious monarch who wanted to extend his Empire and he succeeded in fulfilling this aim" Throw light on the validity of this statement.

(२) "अलाउद्दीन केवल एक विजेता ही नहीं था, वह एक उच्च प्रशासक भी था" विवेचना कीजिए।

"Alauddin was not merely a conqueror but he was a great administrator also". Discuss.

*

तेबीसवाँ अध्याय

तुग़लक वंश (१३२०—१४१४)

गयासुद्दीन तुग़लक— प्रारंभिक जीवन— गद्दी पर बैठना— शासन सुधार सैनिक सफलता— मृत्यु व चरित्र।

मुहम्मद तुग़लक— गद्दी पर बैठना— उसकी विभिन्न योजनाएं— विद्रोहों को शान्त करना— मृत्यु— इतिहास में उसका स्थान।

फिरोज तुग़लक— प्रारंभिक जीवन— गद्दी पर बैठना— सैनिक सफलताएं— शासन—प्रबन्ध— सुल्तान की धार्मिक नीति— मृत्यु व चरित्र तुग़लक वंश के अन्तिम सुल्तान तथा तैमूर का आक्रमण।

गयासुद्दीन तुग़लक (१३२०—१३२५)

प्रारंभिक जीवन— तुग़लक वंश का संस्थापक गयासुद्दीन तुग़लक था। आरंभ में उसका नाम गाज़ी तुग़लक था। वह एक साधारण वंश में जन्मा था। डा० ईश्वरी-प्रसाद के मतानुसार उसका पिता करौना तुर्क तथा माता एक जाटनी थी। अतः ऐसा माना जाता है कि तुग़लक एक मिश्रित जाति के थे। परन्तु ईब्नबतूता की मान्यता है कि तुग़लक लोग तुर्क थे और वे सिन्ध तथा तुर्किस्तान में रहते थे। परन्तु 'तारीखे रसीदी' का रचयिता मिरजा कहता है कि तुग़लक लोग मंगोल थे। इब्नबतूता का कथन ही आज अधिक विश्वसनीय माना जाता है।

गाज़ी तुग़लक ने एक साधारण सैनिक की भांति कार्य आरंभ किया था। उसने अलाउद्दीन खिलजी के समय मंगोलों को परास्त करने में अपूर्व वीरता का प्रदर्शन किया था। इसी कारण वह सुल्तान का प्रिय बन गया था और बाद में सुल्तान ने उसे दीपालपुर का सूबेदार नियुक्त कर दिया था। मंगोलों को निरन्तर कई बार हराने के उपलक्ष्य में ही उसे मलिक—उल—गाजी की उपाधि मिली थी और इसी कारण भारत के मुसलमानों में उसका नाम हो गया था।

गद्दी पर बैठना—हमने इससे पूर्व अध्याय में देखा कि चंचला लक्ष्मी अलाउद्दीन की जीवित अवस्था में ही उससे किनारा करने लग गई थी और उसके स्थान पर अराजकता अपने पैर फैला रही थी। अतः उसके मरते ही शासन में विद्रोह होना स्वाभाविक था। जब मुबारकशाह अपनी विलासिता की क्रीड़ास्थली में व्यस्त रहता था तो उसके कृपापात्र कृतघ्न खुसरो को अपना प्रभुत्व जमाने का अवसर मिल गया।

मौका पाकर उसने अपने स्वामी का वध किया और जन्म से हिन्दू होने के कारण उसने हिन्दुओं के प्रति उदारता की व मुसलमानों के प्रति कठोर नीति का अवलम्बन किया। इससे मुसलमान उससे नाराज हो गये। अमीरों ने वीर तथा वयोवृद्ध गाजी तुग़लक को इस बात की सूचना भेजी। सूचना पाते ही गाजी तुग़लक ने दिल्ली की ओर कूंच किया। युद्ध–भूमि से भागे हुए खुसरो को बन्दी बनाया गया और उसका सिर धड़ से अलग कर दिया गया। इसके अनन्तर सब अमीरों ने एक स्वर से गाजी तुग़लक को अपना सुल्तान निर्वाचित किया। इतिहासकार बर्नी उसके सुल्तान पद स्वीकार करने पर लिखता है—"**इस्लाम को नव जीवन प्रदान किया गया तथा उसमें नई शक्ति आई। नास्तिकता की ध्वनि धराशायी हो गई। मनुष्यों के हृदय सन्तुष्ट हुए। सब अल्लाह से दुआ करने लगे।**"

गाजी तुग़लक इस प्रकार ८ सितम्बर १३२० को दिल्ली का सुल्तान बना और उसने अपना नाम गयासुद्दीन तुग़लक रखा। तुग़लक वंश का वह संस्थापक था।

शासन सुधार—सुल्तान बनते ही उसके समक्ष दो प्रमुख कठिनाइयां प्रस्तुत थीं—उपद्रवों से लड़खड़ाते तुर्क साम्राज्य की रक्षा तथा (२) अराजकता को दूर कर शासनसुधारों के द्वारा राज्य में शान्ति स्थापित करना। प्रथम उसने शासन में सुधार करना चाहा। सर्व प्रथम उसने अलाउद्दीन के सम्बन्धियों के साथ सहानुभूति पूर्ण व्यवहार करके अपनी उदारता का परिचय दिया। उसने उनको उच्च पदों पर आसीन किया तथा उजड़े परिवारों को बसाने का भी उसने प्रयास किया।

आर्थिक—गयासुद्दीन जानता था कि वित्तीय व्यवस्था उस समय प्रशासन की कुंजी थी। मुबारक और खुसरो ने इसकी अवहेलना की थी। इस कारण राज्य–कोष खाली हो गया था। परन्तु उसने सब जागीरों की जांच करवाई। जो जागीरें खुसरो द्वारा अनुचित रूप से प्रदान की गई थीं उन्हें सुल्तान ने पुनः अपने अधिकार में कर ली। परन्तु उसने कृषकों के साथ बहुत उदारता का व्यवहार किया। वह लगान केवल $\frac{१}{१०}$ भाग लेता था। कहते हैं कि जितना कृषकों की ओर ध्यान उसने दिया उतना शेरशाह के अतिरिक्त किसी ने नहीं दिया। आर्थिक सुधार करते समय उसका मुख्य उद्देश्य यह था कि न तो कोई इतना अमीर रहे जो कि राज्य में विद्रोही बन सके और न कोई इतना दरिद्र रहे जिसका कि भरण—पोषण भी न हो सके। इसके अलावा कृषि के विकास के लिए नहरें बनाई गईं। राज्य—कर्मचारी रिश्वत नहीं ले सकते थे।

सैनिक—गयासुद्दीन स्वयं एक अच्छा सेनापति था। उसने सेना को सुव्यवस्थित करने की ओर भी ध्यान दिया। सैन्य—प्रबन्ध में उसने अलाउद्दीन का अनुकरण किया। सैनिकों में राज—भक्ति की भावना भरने की दृष्टि से सुल्तान सैनिकों को पुत्रवत समझता था। सेना का निरीक्षण वह स्वयं करता था।

उसका शासन-प्रबन्ध न्याय व समानता पर आधारित था। न्याय तथा पुलिस की व्यवस्था इतनी अच्छी थी कि मुस्लिम इतिहासकार कहते हैं कि........**शेर तथा हिरन एक घाट पर पानी पीते थे**। राज्य में शान्ति स्थापित हो गई थी। इसके अलावा सुल्तान ने डाक की व्यवस्था भी अच्छी की थी।

सैनिक सफलता—जैसा कि हम ऊपर स्पष्ट कर आये हैं कि खिलजी शासन के अन्तिम दिनों में राजधानी से दूरस्थ भागों में विद्रोह की अग्नि भड़कने लग गई थी वारंगल के नरेश ने दिल्ली को कर देना बन्द कर दिया था। सुल्तान ने अपने पुत्र फखरुद्दीन को एक विशाल सेना के साथ भेजा। यद्यपि वह प्रथम लड़ाई में असफल रहा—परन्तु दूसरी लड़ाई में उसने वहां के काकतीय वंश के राजा प्रताप रुद्रदेव द्वितीय को हरा दिया। राज-परिवार दिल्ली भेज दिया गया और वारंगल का नाम सुल्तानपुर रखा गया।

१३२४ ई० में वह लखनौती के राजकुमारों को जिन्हें उसके भाई बहादुर ने गद्दी से उतार दिया था-पुन: सिंहासन पर बिठाने के लिए रवाना हुआ। सुल्तान अपने उद्देश्य में सफल हुआ।

मृत्यु तथा चरित्र—जब सुल्तान बंगाल विजय से लौट रहा था तो राजधानी से ६ मील की दूरी पर उसके पुत्र जूनाखां ने उसका एक लकड़ी के भवन में स्वागत किया। जब सुल्तान अपने कनिष्ट पुत्र के साथ भोजन कर रहा था—वह उस काष्ठ भवन की छत गिर जाने के कारण दब कर १३२५ के आरंभ में इस लोक से विदा हो गया।

गयासुद्दीन तुगलक एक उदार तथा बुद्धिमान सुल्तान था। उसका जीवन सादा तथा धार्मिक था। हिन्दुओं के प्रति उसमें सहिष्णुता न थी। परन्तु फिर भी उसमें मुसलमान शासकों की सी कट्टरता न थी। वह अपनी प्रजा की समृद्धि तथा राज्य में शान्ति चाहता था। सौजन्यता तथा न्याय प्रियता उसके जीवन की विशेषतायें थीं। अधिकार तथा शक्ति से वह कभी अन्धा नहीं होता था। मूलत: वह कर्मनिष्ठ तथा एक अनुभवी शासक था।

मुहम्मद तुगलक (१३२५—५१)

गद्दी पर बैठना—अलाउद्दीन खिलजी की भांति मुहम्मद तुगलक भी एक कृतघ्न व्यक्ति निकला। इब्नबतूता की मान्यता है कि वह अपने पिता का वध करके सिंहासन पर बैठा था। यह घटना फरवरी सन् १३२५ ई० में घटी थी। इसका प्रारंभिक नाम जूनाखां था। जब वह सुल्तान बना तो उसने अपना नाम मुहम्मद तुगलक रखा इसका राजगद्दी पर बैठने से किसी ने विरोध नहीं किया। प्रथम तो यह गयासुद्दीन का वास्तविक उत्तराधिकारी था और दूसरे वह महान् विद्वान् व शासन-कार्यों में अनुभवी

था। इसके अलावा यदि थोड़ा किसी अमीर ने विरोध किया भी तो इसने उसको अलाउद्दीन खिलजी की भांति आर्थिक प्रलोभन देकर अपना बना लिया। इसके शासन-काल को हम दो भागों में विभक्त करते हैं—प्रथम (१३२५ से ३५) योजना काल व दूसरा (१३३५—५१) विद्रोह आदि को दबाने का काल है। वह भारत के इतिहास में अपने प्रथम काल की घटनाओं से अधिक विख्यात है और उन्हीं घटनाओं के परिणाम के आधार पर इतिहासकार इसके विषय में विभिन्न धारणाएँ बनाये हुए हैं। अतः प्रथम उसके प्रथम-काल की योजनाओं का हम वर्णन करते हैं।

(१) दोआब पर कर बढ़ाना—मुहम्मद तुग़लक निःसन्देह एक असाधारण योग्यता का व्यक्ति था। उसकी बुद्धि अति प्रखर तथा स्मरण शक्ति अपूर्व थी। उसने अपनी उस अद्भुत प्रतिभा का प्रमाण अपने मालगुजारी बन्दोबस्त में दिया। उसने अपने राज्य की भूमि का निरीक्षण करवाया और दोआब पर कर बढ़ा दिया। बर्नी लिखता है कि **वह बढ़ाया हुआ कर आज से दस गुना या बीस गुना था।** परन्तु आधुनिक इतिहासकार ऐसा मानते हैं कि वह कृषकों से पैदावार का पचास प्रतिशत लेता था। इस कर बढ़ा देने से दो आब जैसे उपजाऊ प्रदेश के धनी हिन्दू भी दरिद्रता के रोग से ग्रसित हो गये। हिन्दू औरतों को मुसलमान अमीरों के यहां निम्न कोटि का कार्य करने को बाध्य होना पड़ा। अभाग्य वश इसी समय दोआब में भयंकर अकाल पड़ गया। वर्षा के अभाव में कृषि सूख गई। पैदावार न होने पर भी राज्य कर्मचारी अकाल से पीड़ित किसानों से लगान लेने में न चूके। राजकर्मचारियों के अत्याचारों से दुखी होकर दोआब किसान अपने खेत व ग्राम छोड़ भागे। लगान वसूली में जब सुल्तान असफल रहा तो उसके क्रोध का पार न रहा। एक इतिहासकार के कथनानुसार **"लगान वसूली की असफलता से रुष्ट हो सुल्तान गरीब हिन्दुओं को जंगली जानवरों की तरह चुन चुन कर मारने लगा—उन्हें जंगलों में शेरों की तरह घेर लिया गया और उनका कत्ले आम किया गया।"** इसी कारण कई इतिहासकार उसे नृशंस व रक्त पिपासु भी कहते हैं। यह सत्य है कि अकाल का पता लगने पर सुल्तान ने तकावी बांट कर कृषकों की सहायता करना चाहा। परन्तु वह सहायता उचित समय पर न की जा सकी। इसी कारण दोआब में प्रजा का सर्वनाश हो गया।

उस सर्वनाश का दोष कई इतिहासकार मुहम्मद तुग़लक के माथे मंढ़कर उसे ही दोषी ठहराने का प्रयास करते हैं। पर हमें यह विदित होना चाहिए कि मुहम्मद तुग़लक ही प्रथम मुस्लिम शासक नहीं था जिसने कि दोआब के किसानों से पैदावार का ½ भाग लगान रूप में वसूल किया था। उससे पूर्व अलाउद्दीन खिलजी भी वहां से इसी दर पर लगान वसूल कर चुका था। पर किसी इतिहासकार ने उसकी इस नीति की

आलोचना नहीं की अतः मुहम्मद तुग़लक का यह कार्य अनुचित नहीं कहा जा सकता। इसके अलावा दो आब पर कर बढ़ाने के और भी कारण थे—वह राज्य की आय बढ़ाना चाहता था और दोआब के विद्रोही हिन्दुओं को दबाना चाहता था। गार्डनर ब्राउन का कथन है कि **"दोआब साम्राज्य का सबसे अधिक धनी तथा समृद्धि-शाली भाग था—अतएव इस भाग से अधिक कर वसूल किया जा सकता था"** इसके अलावा यह भी सच है कि दोआब के धनी हिन्दू सदैव इन मुस्लिम शासकों का विरोध किया करते थे। अतः यदि उसने अपने राज्य की सुरक्षा के लिए ऐसा किया हो तो इसमें क्या अन्याय था। इतिहासकार बदऊनी भी यही कहता है कि **"यह कर दोआब की विद्रोही प्रजा को दण्ड देने तथा उस पर नियन्त्रण रखने के लिए लगाया गया था।"** सर हेग बदऊनी के इस कथन का समर्थन करते हैं। तत्कालीन इतिहासकार बर्नी इस घटना का सारा दोष सुल्तान पर डालता है तथा गार्डनर ब्राउन उसे सर्वथा इस अपराध से बचाना चाहता है। परन्तु इस प्रकार का प्रयत्न उन दोनों का ही न्यायोचित नहीं लगता। दोआब के सर्वनाश से मुहम्मद तुग़लक सर्वथा नहीं बच सकता। उसे चाहिए था कि अकाल का पता लगते ही वहाँ के निवासियों की यथाशक्ति सहायता करता तथा अपने कर्मचारियों को कठोर नीति अपनाने से रोकता।

(२) **राजधानी का बदलना**—मुहम्मद का दूसरा कार्य था राजधानी बदलना। उसने १३२७ में दिल्ली के स्थान पर देवगिरी को अपने राज्य की राजधानी बनाया और उसका नाम दौलताबाद रक्खा। दौलताबाद को उसने सुन्दर भवनों से सुशोभित किया। राजधानी परिवर्तन में उसने केवल अपने कार्यालय ही हस्तान्तरित नहीं किये वरन् राजधानी के समस्त निवासियों को दौलताबाद जाने का आदेश दिया। सुल्तान के इस आदेश का पालन इतनी कठोरता से किया गया कि राजधानी में कोई भी मनुष्य न ठहर सका। बर्नी लिखता है, **"दिल्ली में एक भी आदमी को नहीं रहने दिया। एक अन्धे और लंगडे को भी घसीट कर दौलताबाद ले जाया गया।............ दिल्ली उजड़ गयी। आदमी तो क्या वहाँ कुत्ते भी नजर नहीं आते थे।"** दिल्ली निवासियों को अपना घर छोड़ने में बहुत कठिनाई उठानी पड़ी। एक इतिहास-कार का कथन है कि **"थकान के मारे कई रास्ते में मर गये, उनमें कई नये प्रदेश में निर्वासितों के जीवन की परेशानियों और घोर निराशा से मर गये—दौलता-बाद एक विपथोन्मुख कार्य में लगाई शक्ति का स्मारक था।"** सब कुछ करने पर भी सुल्तान अपनी प्रजा को सन्तुष्ट नहीं कर सका। इसलिये उसने पुनः दिल्लीवासियों को दिल्ली लौटने की आज्ञा प्रदान की। परन्तु दिल्ली अपने प्राचीन वैभव को पुनः प्राप्त न कर सकी। कई इतिहासकार उसके इस कार्य को भी मूर्खतापूर्ण बताते हैं।

राजधानी परिवर्तन एक नवीन घटना न थी। इससे पूर्व भी हिन्दू राजाओं ने राजधानी परिवर्तन किया था। इसके अतिरिक्त राजधानी सदैव राज्य के केन्द्र में होनी

चाहिए जहाँ से कि राज्य के प्रत्येक भाग पर निगाह रक्खी जा सके और शासन व्यवस्था को व्यवस्थित रूप दिया जा सके। दक्षिणी भारत अभी अलाउद्दीन खिलजी के शासनकाल में ही जीता गया था। उस नवविजित भाग पर सुल्तान का ध्यान रहना आवश्यक था और दिल्ली से वह दूर पड़ता था। इसके अलावा दिल्ली अब सुरक्षित स्थान न रहा था। मंगोलों के भारत पर निरन्तर आक्रमण होरहे थे और वे कई बार राजधानी के समीप पहुंच गये थे। इसके विपरीत देवगिरी दक्षिण में चारों ओर से घिरा होने के कारण एक सुरक्षित स्थान था। इसलिए हम देखते हैं कि राजधानी बदलने में मुहम्मद तुगलक ने कोई मूर्खता का कार्य नहीं किया। अब जो प्रजा की कठि-नाइयों का सहारा ले उसे दोषी ठहराते हैं—यह भी सर्वथा न्यायसंगत नहीं है। उसने यात्रियों की सुविधा के लिए सड़क का निर्माण किया तथा मार्ग में खाने पीने की व्यवस्था के लिए धर्मशालाएं बनाईं। यदि इस पर भी कोई उसें दोषी ठहराये तो ठीक नहीं प्रतीत होता। इतिहासकार लेनपूल लिखता है, **"मुहम्मद तुगलक ने दौलताबाद राजधानी ले जाने में अपनी शक्ति का केवल दुरुपयोग किया। सामरिक दृष्टिकोण से भी दौलताबाद इतना उपयुक्त स्थान न था क्योंकि साम्राज्य की उत्तरी सीमाएं वहाँ से बहुत दूर थी............। दौलताबाद से उत्तरी सीमा पर उस युग में शासन करना असम्भव था।"** परन्तु लेनपूल का यह कथन सर्वथा सत्य नहीं है। वास्तव में मुहम्मद तुगलक ने राजधानी परिवर्तन मंगोलों के भय से बचने तथा दक्षिण के नव विजित प्रदेशों पर अधिकार बनाये रखने के दृष्टिकोण से किया था और यह उचित भी था। सुल्तान का दोष केवल इतना ही था कि उसने केवल सरकारी कार्यालय ही नहीं भेजे और नागरिकों को भी धीरे धीरे हस्तान्तरित नहीं किया।

(३) **तांबे के सिक्के चलाना**—सन् १३३० ई० में उसने तांबे के सिक्के चलाये। सिक्कों का प्रचलन तो हो गया परन्तु उन सिक्कों पर अपना विशेष प्रकार का कोई चिन्ह अंकित नहीं कराया। परिणाम यह हुआ कि घर घर में जाली सिक्के बनने लगे। तत्कालीन इतिहासकार बर्नी लिखता है, **"हर हिन्दू का घर टकसाल बन गया। बाजारों में सिक्कों की भरमार हो गई।"** इन सिक्कों की भरमार का परिणाम यह निकला कि राज्य का व्यापार ठप्प हो गया। बाहर के व्यापारियों ने सामान भेजना बंद कर दिया। जन साधारण ने सरकारी लगान व अन्य टैक्स भी इन तांबे के सिक्कों में ही देना आरम्भ कर दिया। इससे राज्य की आर्थिक दशा दयनीय हो गई। सुल्तान को अपनी त्रुटि का ज्ञान हुआ। उसने फौरन तांबे के सिक्कों का प्रचलन बन्द कर दिया और तमाम तांबे के सिक्कों को सोने व चांदी के सिक्कों द्वारा सरकार ने बदला। कहते हैं कि राज्य सरकार के खजाने में तांबे के सिक्कों का ढेर लग गया और उनके स्थान पर सोने-चांदी के सिक्के दिए गये। इस नीति के अवलम्बन से सरकारी

खजाना रिक्त हो गया। इस योजना को भी मुहम्मद तुग़लक की मूर्खता का परिचायक कहते हैं।

मुहम्मद तुग़लक एक आदर्शवादी सुल्तान था। निःसन्देह वह योजना-प्रेमी भी था। उसे सिक्कों का भी अच्छा ज्ञान था। उसने 'दीनार' नामक स्वर्ण-मुद्रा चलाई। इसके अतिरिक्त उसने प्राचीन रजत मुद्राओं का उद्धार भी किया। वह इस कार्य में पूर्ण सफल रहा। इसी कारण टामस जैसे सिक्कों के प्रसिद्ध ज्ञाता ने मुहम्मद को मुद्रा निर्माताओं का राजा (Prince of Moneyers) कहा है। इसी समय उसका ध्यान चीन के मंगोल सम्राट कुबलाईखां तथा फारस के सम्राट जाईखांतू की ओर गया। उन्होंने अपने शासनकाल (तेरहवीं शताब्दी) में कागज के सिक्के चलाये थे। अतः उसने तांबे के सिक्के चलाने का निश्चय किया था। इसके अलावा उसके समय में आन्तरिक शान्ति कायम रखने व मंगोलों को भारत से विदा करने में उसका पर्याप्त धन व्यय हो चुका था। अतः राज्य की आर्थिक अवस्था को सुदृढ़ बनाये रखने के दृष्टिकोण से उसने तांबे के सिक्के चलाये थे। हज्जी उदबीर भी यही मानता है। वह लिखता है—स्वर्ण मुद्रा बचाने के लिए उसने तांबे के सिक्के चलाए थे। निजामुद्दीन अहमद के मतानुसार "उसने विश्व-विजय की पूर्ति के लिए सिक्के चलाए। परन्तु जनता उसकी योजना को समझ न सकी। डा० ईश्वरीप्रसाद भी इस बात से सहमत नहीं है कि उसने शोचनीय आर्थिक अवस्था के कारण ही तांबे के सिक्के चलाये थे उनका कहना है कि "सरकार अन्यायी थी और उसका दिवाला निकल गया।" परन्तु यह भी सत्य नहीं। उसने अपने दूसरे काल (१३२५-५१) में कई विजय योजना बनाई जिसमें कि सरकार को काफी व्यय करना पड़ा। अब यदि उसे केवल तांबे के सिक्के ही चलाने पर मूर्ख समझा जावे तो हम उसकी विकासोन्मुखी प्रतिभा के साथ न्याय नहीं करते। हमारी ब्रिटिश सरकार नेभी भारत में कागज के नोट चलाये और आज स्वतन्त्र भारत में भीप्रचलित हैं। अन्तर इतना ही है कि उसने टकसाल की समुचित व्यवस्था नहीं की और न सिक्कों पर विशेष प्रकार का चिन्ह अंकित किया। इस कारण वह अपनी योजना में असफल रहा।

(४) **सुल्तान की विजय योजना**—मुहम्मद तुग़लक भी अलाउद्दीन खिलजी की भांति एक साम्राज्यवादी शासक था। वह भारत के अपने अधीनस्थ राज्य से सन्तुष्ट न था। अतः वह अपना साम्राज्य बढ़ाना चाहता था। उस समय सुल्तान के दरबार में खुरासानी अमीर आ बसे थे। उन पर सुल्तान की अनुकम्पा भी थी इस कारण उन खुरासानी अमीरों ने सुल्तान को खुरासान पर आक्रमण करने के लिए प्रोत्साहित किया। मुहम्मद उनसे सहमत हो गया और उसने अपने मनोरथ को पूर्ण करने की दृष्टि से ३,७०,००० सैनिकों की एक सेना तैयार की। इस महान सेना का सुल्तान एक वर्ष तक खर्चा उठाता रहा और अन्त में अपने उद्देश्य में सफल भी न हुआ।

सुल्तान की इस विजय योजना की भी इतिहासकार कटु आलोचना करते हैं। वे कहते हैं कि जब राजधानी के परिवर्तन दोआब के अकाल और तांबे के सिक्के चलाने से उसका खजाना पहले ही खाली हो चुका था ऐसी परिस्थितियों में इतनी महान सेना पर व्यय करना उसकी मूर्खता का द्योतक था। इसके अतिरिक्त उसने खुरासान की योजना बनाते समय खुरासान की प्राकृतिक अवस्था पर ध्यान नहीं दिया। यह सत्य है कि उसने उस विशाल सेना को एक वर्ष का वेतन देकर अपनी आर्थिक जटिलता को और भी विषम बना लिया। परन्तु उस समय खुरासान की आन्तरिक अवस्था इतनी दयनीय थी कि कोई भी उस पर आक्रमण करने की योजना बना सकता था। इसके अतिरिक्त मिश्र के शासक ने फारस के शासक से शत्रुता होने के कारण मुहम्मद तुगलक को खुरासान पर आक्रमण करने के लिए उकसाया तथा सैनिक सहायता देने का भी वायदा किया। ऐसी परिस्थितियों में उसकी विजय योजना मूर्खतापूर्ण न थी। परन्तु उसकी यह योजना शोचनीय आर्थिक अवस्था तथा मिश्र के राजा द्वारा पुनः फारस के शासक से मित्रता कर लेने के कारण पूर्ण नहीं हो सकी।

फरिश्ता के अनुसार मुहम्मद तुगलक ने चीन पर भी आक्रमण करने की योजना बनाई थी। परन्तु बर्नी व इब्नबतूता के लेखों से स्पष्ट है कि उसने चीन पर आक्रमण करने की कल्पना भी नहीं की थी। उन दोनों इतिहासकारों की मान्यता है कि सुल्तान ने कराजल पर आक्रमण करने के लिये एक सेना अवश्य भेजी थी। सम्भवत: वह आधुनिक कुमाऊँ गढ़वाल का प्रदेश था। इस पहाड़ी भाग पर सुल्तान ने आक्रमण क्यों किया था ? इस विषय में इतिहासकारों की विभिन्न धारणाएँ हैं। बर्नी लिखता है कि सुल्तान ने खुरासान पर सुगमता से विजय पाने के लिए इस पर आक्रमण किया था और जब कि हजीउद्दीर लिखता है कि कराजल की सुन्दर युवतियों को अपने रनिवास में लाने के लिए सुल्तान ने वहां आक्रमण किया था। परन्तु आधुनिक इतिहासकार इन दोनों धारणाओं से ही सहमत नहीं हैं। उनकी मान्यता है कि सुल्तान ने तराई के किसी विद्रोही सरदार को दबाने हेतु वहां चढ़ाई की होगी। यह सत्य है कि सुल्तान की सेना को उस पहाड़ी भाग में सफलता न मिली और इब्नबतूता के अनुसार कुल १० आदमी बचकर वापिस आये।

सुल्तान की यह असफलता भी उसकी कटु आलोचना की सहचरी हो गई। आलोचक लोग कहते हैं कि सुल्तान ने बिना पहाड़ी दशा का अवलोकन किए ही सेना भेज दी और अन्त में धन और जन की हानि उठाई। यह सही है कि सुल्तान की सेना परास्त हुई परन्तु डा० ईश्वरीप्रसाद के मतानुसार पर्वतीय राजा ने सुल्तान से सन्धि करली और वार्षिक कर देना भी स्वीकार कर लिया। इस प्रकार हम देखते हैं कि अन्त में सुल्तान अपने उद्देश्य में अवश्य सफल रहा। इस सफलता के उपरान्त सुल्तान ने इब्नबतूता को चीन में राजदूत नियुक्त किया। इब्नबतूता अफ्रीका में तांजियर इसा दर पर [illegible]

का निवासी था। वह १३३३ ई० में भारत आया था और उसने सुल्तान का आश्रय ग्रहण किया था। सन् १३४२ में सुल्तान ने उसे चीन भेजा था। १३४६ ई० में वह अपने देश वापिस गया था। इस प्रकार सुल्तान विदेशों से अच्छे सम्बन्ध स्थापित करने में सफल हुआ।

विद्रोह-काल (१३३५-५१)

सुल्तान के शासन-काल के प्रथम दस वर्ष कुछ शान्ति में पर विभिन्न योजनाएँ बनाने में व्यतीत हुए परन्तु शेष १६ वर्ष अशान्ति में व्यतीत हुए। दस वर्ष के शासन की असफलताओं से मुहम्मद तुग़लक का मान जन साधारण में घट गया था। जनता न सुल्तान से भय खाती थी और न उसके हृदय में राजभक्ति की भावना ही थी। इसी प्रकार अमीर व सूबेदार भी सुल्तान से असन्तुष्ट हो गये थे। सुल्तान की असफलताओं से उन्हें भी शासन की कमजोरियों का पता चल गया। अब वे स्वतन्त्र होने का प्रयास करने लगे थे। अतः मुहम्मद तुग़लक के जीवन में ही राज्य में अराजकता अपने पांव फैलाने लग गई थी। राज्य में चारों ओर विद्रोह होने लग गये थे। उनमें से कुछ प्रमुख निम्नलिखित हैं :—

(१) माबर का विद्रोह—सन् १३३५ ई० में माबर के सूबेदार जलालुद्दीन एहसानशाह ने विद्रोह किया। उस समय वहां अकाल अलग पड़ गया था, इस कारण जनता में असन्तोष व्याप्त था। इस परिस्थिति का जलालुद्दीन ने फायदा उठाना चाहा। सुल्तान स्वयं दक्षिण की ओर रवाना हुआ परन्तु ज्योंहि उसकी सेना तेलंगाना पहुंची कि वहां हैजा फैल गया और हैजे के प्रकोप से सुल्तान के बहुत से सैनिक मर गये। इस कारण सुल्तान आगे न बढ़ सका और माबर का सूबेदार स्वतन्त्र हो गया। माबर की स्वतन्त्रता के साथ दक्षिण में अनेक स्थानों पर सुल्तान की शक्ति का विरोध होने लगा।

(२) बंगाल का विद्रोह—उस समय बंगाल का सूबेदार बहरामखां था। सन १३३७ ई० में वह अपने अंगरक्षक फखरुद्दीन द्वारा मार दिया गया। फखरुद्दीन अपने स्वामी का वध कर स्वयं बंगाल का स्वामी बन बैठा। उसने अपने नाम के सिक्के भी चला दिए। जब यह खबर सुल्तान को पहुँची तो उसने लखनौती के सूबेदार को आदेश दिया कि वह बंगाल जाकर फखरुद्दीन को सही मार्ग पर लावे। पर लखनौती का सूबेदार फखरुद्दीन से परास्त हुआ और उधर सुल्तान स्वयं हिमाचल प्रदेश पर आक्रमण करने में व्यस्त था। इस कारण वह ध्यान न दे सका और बंगाल स्वतन्त्र हो गया।

(३) अवध में विद्रोह—ऐनुल्मुल्क अवध और जफराबाद का सूबेदार था। वह मुहम्मद तुग़लक का एक स्वामीभक्त सेवक था। परन्तु १३४० ई० में जब सुल्तान

ने अचानक उसे दक्षिण में जाने का आदेश दिया तो उसने सुल्तान के विरुद्ध बगावत कर दी। सुल्तान स्वयं विद्रोह को दबाने के लिए गया। सुल्तान सफल रहा और अवध को स्वतन्त्र होने से बचा लिया गया।

(४) मलिक साहू का विद्रोह—इस प्रकार सुल्तान को चारों ओर से मुसीबतों में फंसा देख मलिक साहू ने सुल्तान के सूबेदार को बन्दी बना लिया और स्वयं स्वतन्त्र शासक बन गया। सुल्तान ज्योंहि बगावत को दबाने हेतु रवाना हुआ कि मार्ग में उसकी माता की मृत्यु का समाचार ज्ञात हुआ। इसी समय सुल्तान के पास मलिक साहू का क्षमा-याचना पत्र भी आ पहुँचा था। इस कारण सुल्तान आगे न बढ़ा।

(५) दक्षिण का विद्रोहियों के गढ़ में रूपान्तर होना—जिस दक्षिणी भारत को अलाउद्दीन ने मलिक काफूर के सहयोग से अपने आधीन किया था वह अब सुल्तान की शोचनीय अवस्था देख विद्रोहों का एक दृढ़ दुर्ग बनता जा रहा था। १३३६ ई० में हरिहर तथा बुक्का ने विजयनगर राज्य की स्थापना की। १३३४ ई० में प्रताप रुद्रदेव के पुत्र कृष्णनायक ने मुसलमानों के विरुद्ध एक संघ बनाया था। दक्षिणी राज्यों के राजा इस संघ में सम्मिलित हो गये और उन्होंने वारंगल, द्वारसमुद्र तथा करीममुडला आदि के समस्त प्रदेशों को मुहम्मद तुग़लक से स्वाधीन बना दिए। इसी प्रकार देवगिरी में आबाद विदेशी अमीरों ने सुल्तान के विरुद्ध बगावत की और अलाउद्दीन बहमनशाह ने बहमनी राज्य की नींव डाली। सुल्तान इन विद्रोहों से तंग आ चुका था।

सुल्तान की मृत्यु इस प्रकार हम देखते हैं कि सुल्तान के दूसरे काल में साम्राज्य में चारों ओर विद्रोह हो रहे थे। सुल्तान एक विद्रोह को दबाता तो दूसरा विद्रोह तैयार रहता था। गुजरात के विद्रोह को शान्त कर जब सुल्तान बागी को दंडित करने सिंध की ओर जा रहा था तो उसको ज्वर आया। उस बुखार से निराशा सागर में निमग्न सुल्तान अच्छा न हो सका और २० मार्च १३५१ ई० को वह संसार से चल बसा। बदाऊनी लिखता है, "**सुल्तान को उसकी प्रजा से तथा प्रजा को सुल्तान से मुक्ति मिल गई।**"

सुल्तान का इतिहास में स्थान—मुहम्मद तुग़लक अपने समय का एक अनुपम एवं प्रतिभाशाली सम्राट था। वह मध्यकालीन शासकों में सर्वाधिक विद्वान था। तर्क, दर्शन, गणित, ज्योतिष और विज्ञान में उसकी योग्यता अपूर्व थी। उसका अध्ययन क्षेत्र व्यापक था। अरबी और फारसी का वह प्रकाण्ड पण्डित था। उसे अपनी लेखनी की सिद्धहस्तता पर गर्व था। तर्क में वह इतना निपुण था कि वह अपने समय का अरस्तू माना जाता था। उसे शासन-कार्यों में पूरा अनुभवी था। उसने लौकिक राजतन्त्र की स्थापना करने का प्रयत्न किया। अपने धर्म में कट्टर होते हुए भी उसने

शासन से धर्म को अलग रखा। शासक होने के साथ ही वह एक योग्य सेनापति भी था। उदारता उसके जीवन की परम विशेषता थी। परन्तु ये सब गुण उसमें विद्यमान होते हुए भी उसका शासन-काल क्रमबद्ध असफलताओं की एक कहानी है। मध्यकाल में शासक की सफलता उसके विशुद्ध चारित्रिक गुणों पर अवलंबित न होकर शासक की नीति की सफलता पर निर्भर रहती थी। जब हम मुहम्मद तुग़लक के जीवन को इस कसौटी पर कसते हैं तो उसका शासन इतिहासकारों के समक्ष एक रहस्य के रूप में प्रस्तुत होता है।

सुल्तान विरोधी गुणों की एक गठरी था—एस० आर० शर्मा ने मुहम्मद तुग़लक को एक रहस्यमय सुल्तान बताया है। इतिहासकारों को आश्चर्य होता है कि मुहम्मद तुग़लक इतने गुणों से पूर्ण होता हुआ भी अपने शासनकाल में असफल क्यों रहा ? अपने पिता से प्राप्त विशाल साम्राज्य उसके जीवनकाल में अस्त-व्यस्त होने लग गया था। जब हम उसकी असफलता के कारणों को जानने का प्रयास करते हैं तो वह हमारे सम्मुख विरोधी गुणों की एक गठरी के रूप में प्रस्तुत होता है। फरिश्ता कहता है कि **"इन गुणों के होते हुए भी वह दया से बिल्कुल शून्य था तथा प्रजा के हित का तनिक भी ध्यान नहीं रखता था।"** इतिहासकार फरिश्ता के इस कथन को इतनी मान्यता प्रदान नहीं करते जितनी कि इब्नबतूता और बर्नी के उल्लेख को, क्योंकि दोनों इतिहासकार सुल्तान के समकालीन तथा उसके दरबारी थे। इब्नबतूता सुल्तान का चरित्र चित्रण करते हुए लिखता है, **"मुहम्मद दान देने तथा रक्तपात करने में सबसे आगे है। उसके द्वार पर सदैव कुछ दरिद्र मनुष्य धनवान होते तथा प्राणदण्ड पाते देखे जाते हैं। अपने उदार तथा निर्भीक कार्यों और निर्दय तथा कुछ हिंसात्मक व्यवहारों के कारण जन साधारण में उसकी बड़ी प्रसिद्धि है। यह सब होते हुए भी वह बड़ा ही विनम्र तथा न्यायप्रिय व्यक्ति है।"** डा० मेहदी हुसैन ने भी इसी तथ्य को प्रमाणित करने का प्रयास किया है कि सुल्तान में विरोधी गुण विद्यमान थे। परन्तु आधुनिक इतिहासकार इन मुस्लिम इतिहासकारों से सहमत नहीं हैं।

यह सत्य है कि सुल्तान को आजीवन असफलताओं को ही गले लगाना पड़ा। उसकी असफलता के कारण उसमें विरोधी गुणों का समन्वय होना नहीं था। उसकी असफलता का प्रमुख कारण—उसमें राजनीतिक तथा व्यावहारिक ज्ञान का अभाव था। इसके अलावा वह जल्दबाज था तथा आवेश में क्रोधी भी हो जाया करता था। लेनपूल उसकी असफलता पर इस तरह लिखते हैं—**उसमें सन्तुलन का पूर्ण अभाव था—वह स्पेन के राजा फिलिप द्वितीय की भांति शासन की पूर्ण योजनाओं के विषय में एक बार में ही प्रयत्न करता था—परन्तु उसमें राजनीतिकता का पूर्ण अभाव था।** आधुनिक इतिहासकारों में भारतीय इतिहासकार डा० ईश्वरीप्रसाद ने

मुहम्मद तुगलक के विषय में पर्याप्त खोज की है आप लिखते है, **"ऊपर से देखने पर सुल्तान आश्चर्यजनक विरोधाभासों का पुतला मालुम होता है, किन्तु वास्तव में ऐसा नहीं है, परवर्ती लेखकों ने रक्त पिपासा और पागलपन के जो आरोप उस पर लगाये हैं—वे सर्वथा असत्य हैं।"**

मुहम्मद तुगलक एक पागल के रूप में—मुहम्मद तुगलक को उसकी असफलताओं के कारण इतना गिरा दिया गया कि उसे कुछ इतिहासकार पागल बादशाह के नाम से सम्बोधित करते हैं और उसकी समता इंगलैण्ड के शासक जेम्स प्रथम से करते हैं। एलफिन्स्टन ने सर्व प्रथम मुहम्मद तुगलक को पागल बादशाह सिद्ध करने का प्रयास किया है। उसके समकालीन इब्नबतूता तथा बर्नी ने उसके अवगुणों का खूब खुलकर वर्णन अवश्य किया है परन्तु सुल्तान को पागल होने का दोषी कभी नहीं ठहराया। यह सत्य है कि एक ओर उसके मस्तिष्क तथा हृदय में ऊंचे गुण थे—दूसरी ओर उसके स्वभाव में पागलपन की उड़ान, अव्यावहारिकता, अधीरता, कठोरता और क्रूरता दृष्टिगोचर होती है। वह वास्तव में पागल नहीं था। उसकी योजनाएं समय से आगे थीं। वे जन साधारण की समझ के बाहर थीं। यदि वही सुल्तान आज के युग में जन्म लेता तो उसकी गणना अवश्य ही महान सम्राटों में हुई होती। बर्नी लिखता है, **"वह सृष्टि का वास्तविक आश्चर्य था जिसकी योग्यता पर अरस्तू तथा अफलातून भी आश्चर्यचकित हो जाते।"** निःसन्देह मुहम्मद तुगलक एक स्वेच्छाचारी तथा निरंकुश शासक था पर उसका शासन बड़ा ही उदार था। उसकी योजनाएं कल्पनामात्र नहीं थी वे परिस्थितियों के कारण कल्पनामात्र बन गई थीं। राजधानी-परिवर्तन व दो आब पर कर बढ़ाना उसके पागलपन के द्योतक नहीं वरन् चतुर शासक तथा दूरदर्शी होने के परिचायक थे। अतः उसे पागल बताना उसके साथ न्याय करना नहीं है।

फीरोज तुगलक (१३५१–१३८८)

प्रारम्भिक जीवन—फीरोज का जन्म १३०६ ई० में हुआ था। उसके पिता का नाम रजबशाह था। वह गयासुद्दीन तुगलक का छोटा भाई था। गयासुद्दीन की रजबशाह पर महान अनुकम्पा थी। इसीलिए उसने शक्ति के सहारे रजब की शादी एक हिन्दू स्त्री से कराई थी। फीरोज इसी हिन्दू स्त्री बीबी नैला का पुत्र था। फीरोज पर मुहम्मद तुगलक की मेहरबानी थी। अतः मुहम्मद तुगलक ने अपने शासन-काल में फीरोज को कई उत्तरदायी पदों पर नियुक्त किया था। इन विभिन्न पदों पर कार्य करने से उसे शासन सम्बन्धी विषयों का पर्याप्त अनुभव हो गया था। १३४५ ई० में उसे उत्तरी भारत के शासन की देखरेख के लिए नियुक्त किया गया था।

गद्दी पर बैठना—मुहम्मद तुगलक के मरते ही उसके विशाल साम्राज्य में चारों ओर उपद्रव होने लगे। कई प्रान्त तो उसके शासन-काल में ही स्वतन्त्र हो गये थे

और उसकी मृत्यु पर अन्य अमीर भी स्वतन्त्र होने का प्रयास करने लगे। मुहम्मद तुग़लक का स्वामिभक्त मंगोल नेता अल्तून बहादुर भी सुल्तान के कैम्प को लूटने व राज्य का स्वामी बनने का प्रयत्न करने लगा। इस प्रकार तुग़लक वंश के अस्तित्व के लिए बड़ा कठिन समय आ प्रस्तुत हुआ। मुहम्मद तुग़लक के कोई पुत्र न था–इस बात ने इस समस्या को और भी जटिल बना दिया। ऐसे कठिन समय में राज्यलोभ के वशीभूत हो स्वर्गीय सुल्तान की बहिन खुदाबन्दे ने अपने पुत्र दादर मलिक को सुल्तान बना दिया। परन्तु तुग़लक वंश के वास्तविक राज-भक्त अमीरों ने विचार किया कि इस कठिन समय में हमें ऐसा शक्तिशाली नेता निर्वाचित करना चाहिए जो कि तुग़लक वंश को विनाश से बचा सके। बहुत वादविवाद के उपरान्त उन्होंने मुहम्मद तुग़लक के चचेरे भाई फीरोजखां को इस पद के लिए उपयुक्त समझा। धार्मिक प्रवृत्तियों में लीन फीरोज ने सुल्तान बनने के प्रस्ताव को प्रथम तो अस्वीकार कर दिया। परन्तु जब अमीरों ने उससे बहुत अनुग्रह किया तो वह २४ मार्च १३५१ ई० में गद्दी पर बैठा। बर्नी की 'तारीख फीरोजशाही' से भी यह विदित होता है कि मुहम्मद तुग़लक की भी इच्छा फीरोज को ही सुल्तान बनाने की थी!

फीरोज की सैनिक सफलताएँ—फीरोज अलाउद्दीन खिलजी व अपने पूर्वज मुहम्मद तुग़लक की भांति महत्वाकांक्षी न था। इसके अलावा वह एक सामरिक प्रवृत्ति का मनुष्य न होने के कारण एक सफल एवं वीर सैनिक भी न था। इसलिए उसके हृदय में साम्राज्य वृद्धि की कोई इच्छा न थी। परन्तु वह स्वर्गीय सुल्तान के साम्राज्य को अपने आधीन अवश्य रखना चाहता था। इस कारण उसे अपने जीवन-काल में कुछ लड़ाइयां लड़नी पड़ीं। उनमें से कुछ प्रमुख निम्नलिखित हैं:—

बंगाल पर आक्रमण—बंगाल दिल्ली से दूर होने के कारण वहां का सूबेदार मुहम्मद तुग़लक के अन्तिम दिनों में स्वतन्त्र हो गया था। स्वतन्त्र शासक हाजी इलियास ने 'शमसुद्दीन इलियास शाह' की उपाधि ग्रहण कर तिरहुत पर आक्रमण कर दिया। मुहम्मद तुग़लक के साम्राज्य को बनाये रखने की कामना से फीरोज ने १३५३ ई० में बंगाल पर आक्रमण किया। सुल्तान के आगमन की सूचना पाते ही इलियास ने अपने को इकदला के किले में बन्द कर लिया। सुल्तान ने अपनी कुशल नीति से इलियास को किले से बाहर निकाल लिया और परास्त कर दिया। उसकी यह विजय व्यर्थ रही क्योंकि उसने यह विजित प्रदेश पुनः इलियास को दे दिया। यह उसकी शासक के रूप में एक महान भूल थी। शम्स-ए-सिराज अफीफ का कहना है कि **"किले में घिरी हुई स्त्रियों के विलाप और करुण-क्रन्दन से सुल्तान का हृदय द्रवित हो गया और इसलिए उसने बंगाल छोड़ देना ही अच्छा समझा।"** कुछ इतिहासकारों की मान्यता है कि सुल्तान ने वर्षा में अपनी सेना के नष्ट हो जाने के भय से बंगाल को शीघ्र ही छोड़ना श्रेयस्कर समझा।

सुल्तान ने ऐसा कर अपनी निर्बलता का ही परिचय दिया। इलियास की मृत्यु हो जाने पर उसका पुत्र सिकन्दर बगाल का शासक बना। उसने अपने आसपास के प्रदेशों को हथियाना चाहा। इसी कारण उसकी फखरुद्दीन से अनबन हो गई। इस कारण फीरोज को १३५९ ई० में बंगाल पर पुनः आक्रमण करना पड़ा। सिकन्दर शाह ने इकदाल के दुर्ग में आश्रय लिया। महीनों फीरोज की सेना ने किले के घेरा डाल रखा। अन्त में वर्षा ऋतु के आरम्भ होने के कारण सुल्तान ने सन्धि करली और बंगाल की स्वतन्त्रता उसने स्वीकार कर ली। इस प्रकार हम देखते है कि उसने बंगाल पर दो बार आक्रमण कर धन का अपव्यय किया तथा अपनी निर्बलता का प्रदर्शन किया। उसका कथन था, **"दुर्ग पर आक्रमण करना और अधिक मुसलमानों का वध करना तथा उच्च घराने की महिलाओं के साथ अत्याचार करने की आज्ञा देना एक ऐसा अपराध होगा जिसके लिए मैं कयामत के दिन उत्तर न दे सकूंगा और मुझमें और मंगोलों में कोई विशेष अन्तर न रह जायगा।"**

जाजनगर की विजय—बंगाल से लौटते समय फीरोज तुग़लक ने जाजनगर (उड़ीसा) पर सन् १३६० ई० में आक्रमण किया। उस समय जाजनगर पर ब्राह्मण राजा राज्य करता था। सुल्तान के आने की सूचना पाते ही राजा तेलंगाना की ओर भाग गया। अन्त में उसने सुल्तान से सन्धि करली। उसने फीरोज को पर्याप्त धन दिया और वार्षिक कर देने का वायदा किया। इतना धन मिलने पर भी कट्टर धार्मिक एवं धन लोलुप फीरोज ने जगन्नाथ के मन्दिर को लूटा। हिन्दू धर्म के प्रति असहिष्णुता की नीति बरतने वाले फीरोज ने मन्दिर की देव-मूर्ति को समुद्र में फिंकवा दिया और धन को लूट कर दिल्ली ले गया।

कांगड़ा की विजय—मुहम्मद तुग़लक ने १३३७ ई० में कांगड़ा को जीत लिया था। परन्तु सुल्तान के अन्तिम दिनों में राज्य में फैली अराजकता का अनुचित लाभ उठा वहां का नरेश स्वतन्त्र हो गया था। फीरोज ने सुल्तान बनते ही इसे पुनः अपने आधीन करना चाहा। इसके अतिरिक्त कांगड़ा का ज्वालामुखी मन्दिर का अतुल धन भी फीरोज का ध्यान उस ओर आकर्षित कर रहा था। फीरोज ने आक्रमण किया और ६ महीने तक घेरा डाले रखा। इतने लम्बे समय के उपरान्त सुल्तान ने कांगड़ा पर विजय प्राप्त की। ज्वालामुखी मन्दिर से सुल्तान को कई संस्कृत के ग्रन्थ प्राप्त हुए जिनमें से कुछ का उसने फारसी में अनुवाद करवाया। तत्कालीन इतिहासकार लिखता है कि सुल्तान ने मन्दिर में उपस्थित रईस तथा जमींदारों से पूछा, **"इस पत्थर की पूजा से क्या लाभ? इसकी स्तुति करने से तुम्हारी कौनसी कामनाएँ पूर्ण होंगी? हमारे पवित्र धर्म के अनुसार हमारे विरुद्ध कार्य करने वाले को नरक में जाना पड़ेगा।"** इस कथन से स्पष्ट होता है कि सुल्तान की हिन्दू धर्म के प्रति कैसी नीति थी। लेनपूल का कथन है कि **फीरोज़ ने अपने शासन-काल में केवल यही विजय प्राप्त की थी।**

सिन्ध पर आक्रमण—मुहम्मद तुग़लक की मृत्यु सिन्ध के विद्रोह को दबाते समय सिन्ध में ही हुई थी। फीरोज के हृदय में सिन्धवासियों से प्रतिकार लेने की भावना जाग्रत हुई। उसने १३७१ ई० में ६० हजार घुड़सवार, ४८० हाथी, ५००० नाव तथा असंख्य पैदल सेना के साथ सिन्ध पर आक्रमण किया। सुल्तान का वहां के शासक जाम बाबीनिया ने २० हजार घुड़सवार तथा ४ लाख पैदल सैनिकों के साथ मुकाबला किया। **डा० ईश्वरीप्रसाद के कथनानुसार अकाल तथा महामारी के कारण आवश्यक पदार्थों की कमी पड़ गई, फलतः सेना का दसवाँ और अश्वारोरियों का एक चौथाई भाग नष्ट हो गया।**" अन्य इतिहासकारों की ऐसी मान्यता है कि जाम बाबीनिया ने सुल्तान के आने की खबर पाते ही आसपास की खड़ी फसल कटवा दी। इस कारण सुल्तान के सामने खाद्य संकट उत्पन्न हो गया। अपनी इस समस्या को दूर करने की दृष्टि से सुल्तान गुजरात को रवाना हुआ। परन्तु मार्ग भूल जाने के कारण कई महीने इधर उधर भटकता रहा। अन्त में गुजरात से खाद्य सामग्री प्राप्त कर तथा अपनी सेना को पुनः संगठित कर उसने सिन्ध पर फिर आक्रमण किया। इस बार सुल्तान ने थट्टा पर हमला किया। परन्तु सुल्तान विजयी न हो सका। इसी समय सुल्तान के पास दिल्ली से खाँजहां ने सेना भेज दी। इस सेना की सहायता से सुल्तान विजयी हुआ। जाम बाबीनिया ने सुल्तान की अधीनता स्वीकार करली। सुल्तान ने सिंध का शासन उसी (जाम बाबीनिया) के भाई को सौंप दिया। जाम को दिल्ली लाया गया तथा उसके साथ उदारता का व्यवहार किया गया। इतिहासकारों की ऐसी मान्यता है कि सुल्तान की सिन्ध-विजय भी बंगाल-विजय की भांति उसकी अदूरदर्शिता व निर्बलता की परिचायक बनी और इस युद्ध में ढ़ाई वर्ष का समय तथा अपार धन का अपव्यय भी हुआ।

फीरोज तुगलक तथा दक्षिण—जैसा कि हम पहले स्पष्ट कर आये हैं कि मुहम्मद तुग़लक के अन्तिम दिनों में दक्षिण भी स्वतन्त्र हो गया था। वहां अहमदनगर तथा बहमनी नये स्वतन्त्र राज्य स्थापित हो गये थे। फीरोज का ध्यान इन राज्यों की ओर आकर्षित किया गया। यहाँ तक कि बहमनी राज्य के कुछ असन्तुष्ट अमीरों ने सुल्तान को दक्षिण में विजय प्राप्त करने लिए प्रोत्साहित भी किया। परन्तु इसके प्रत्युत्तर में उसने केवल यही कहा, "**मैंने प्रण कर लिया है कि कभी भी इस्लाम को मानने वालों के विरुद्ध युद्ध नहीं करूंगा।**" कुछ इतिहासकार उसके इस कथन से यह अभिप्राय लेते हैं कि सुल्तान ने इस बात का पूर्ण रूप से अनुभव कर लिया था कि एक विस्तृत किन्तु अव्यवस्थित साम्राज्य से एक सीमित किन्तु सुव्यवस्थित साम्राज्य कहीं अधिक लाभदायक तथा शांतिदायक होता है।

फीरोज का शासन-प्रबन्ध—फीरोज एक शांत प्रकृति का शासक था। वह युद्ध करने में आनन्द नहीं लेता था। उसे शासन-सम्बन्धी कार्यों में अधिक रुचि थी।

इसके अलावा तेलंगाना के एक योग्य हिन्दू व्यक्ति ने प्रशासन कार्यों में सुल्तान को पर्याप्त सहायता दी। उसने बाद में इस्लाम-धर्म को अंगीकर कर लिया था और वह खानजहां मकबूल के नाम से सुल्तान के प्रधानमन्त्री पद पर कार्य करने लगा। मुहम्मद तुग़लक के समय में किये गये सुधारों के अनुभव तथा खानजहां की सहायता से फ़ीरोज ने अपनी शासन-व्यवस्था में पर्याप्त परिवर्तन किया।

केन्द्रीय शासन—फ़ीरोज उस समय के अन्य शासकों की भांति एक स्वेच्छाचारी तथा निरंकुश शासक था। इसके अलावा उसमें धार्मिक कट्टरता बहुत बड़ी मात्रा में विद्यमान थी। वह अपने को पक्का मुसलमान समझता था। अतः वह 'कुरान' के नियमानुसार शासन करता था तथा प्रत्येक कार्य में उलमा लोगों की सलाह लेना अपना परम धर्म समझता था। सुल्तान स्वयं राज्य का प्रधान था। उसको सलाह देने के लिए एक प्रधानमन्त्री था। परन्तु उसकी सलाह स्वीकार करना वह आवश्यक नहीं समझता था। सुल्तान की अनुपस्थिति में राजधानी का समस्त भारप्रधानमन्त्री पर ही होता था।

न्याय-व्यवस्था—फ़ीरोज एक दयालु व्यक्ति था। जनता से उसे प्रेम था। *परन्तु उसने अपने समय में न्याय* व्यवस्था भी कुरान के आदेशानुसार प्रचलित की। उसका कानून शरीयत का था। मुफ्ती कानून बनाता—काजी फैसला सुनाता था। किन्तु सुल्तान उस समय के कठोर दण्ड-विधान को हेय समझता था। वह अपनी 'आत्म-कथा' में लिखता है, "**इससे पूर्व छोटे-छोटे अपराधों के लिए मुसलमानों का रक्त बहाया जाता था। अपराधियों के हाथ-पैर, नाक-कान काट लिए जाते थे......परमात्मा ने मुझे शक्ति प्रदान की जिससे मैं इन प्रथाओं का अन्त कर दूँ।** अतः फ़ीरोज ने वास्तव में इन कठोर यातनाओं को समाप्त कर दिया। वी० ए० स्मिथ का कहना है, "**एक सुधार अङ्गच्छेद तथा यातनाओं का पूरा अन्त प्रशंसा के योग्य है।**

सैनिक प्रबन्ध—मुहम्मद तुग़लक में एक अच्छे सेनापति के गुण विद्यमान थे। उसने अपने काल में सेना को सुसंगठित भी करना चाहा था। परन्तु निरन्तर युद्ध करने व उसकी असफल योजनाओं के कारण से उसकी सेना नैतिक स्तर से गिर गई थी। सैनिकों को सुल्तान की योग्यता में कम विश्वास रह गया था। इस कारण सेना की अवस्था उसी के काल में दयनीय हो गई थी। फ़ीरोज तुग़लक एक उच्च सेनापति न था। इस कारण उसमें सेना को सुदृढ़ एवं सुव्यवस्थित करने की क्षमता न थी। उसने सैनिकों को सन्तुष्ट करने के लिए जागीर प्रथा को अपनाया। यद्यपि जागीर प्रथा को अलाउद्दीन खिलजी तथा बलबन जैसे सुयोग्य शासकों ने हटा दिया था। परन्तु इस सुल्तान ने उस मृत प्रायः प्रथा को पुनः जीवित किया। स्थायी सैनिकों के लिए जागीरों का प्रबन्ध किया गया। कुछ सैनिकों को किसी गांव की भूमि का कुछ भाग, वेतन के रूप में दे दिया जाता था। सुल्तान के पास लगभग ९ लाख घुड़सवार सेना थी।

अश्वारोहियों को अपने अश्वों की रजिस्ट्री करानी पड़ती थी और उनकी देखरेख 'अर्ज-मुमालिक' करता था। सुल्तान सैनिकों के साथ दया का बर्ताव करता था। वृद्ध सैनिक अपने स्थान की पूर्ति अपने पुत्रों से कर सकते थे। इस अवगुण से फीरोज की सेना योग्य सैनिकों की सेना न होकर एक दान संस्था सी बन गई।

दास प्रथा—दास प्रथा केन्द्रीय शासन को सुदृढ़ बनाने में कितनी बाधक थी इसका अनुभव बलबन ने भली भांति किया था। इसीलिए उसने स्वयं एक दास होते हुए भी दास प्रथा को समाप्त करने का प्रयास किया था। परन्तु उदारवृत्ति के शासक फीरोज ने इसे पुनः बड़े पैमाने पर चलाया। इसके शासन में दासों की संख्या १,८०,००० हो गई। उनकी सुव्यवस्था करने की दृष्टि से उसने 'दीवाने बन्दगान' नाम का एक अलग विभाग खोला। ४० हजार गुलामों को सुल्तान ने विभिन्न पदों पर नियुक्त किया। ये दास शान्त न रहे। धीरे धीरे इन्होंने राजनीति में सक्रिय कदम उठाना आरम्भ किया। इस कारण इस दास प्रथा का प्रभाव आर्थिक तथा राजनीतिक दोनों ही क्षेत्रों पर बुरा पड़ा।

कृषि की व्यवस्था—मुहम्मद तुग़लक के शासन में कृषक भी परेशान थे। उसके शासन-काल में उन्हें ऊंची दर पर लगान देना पड़ता था। परन्तु फीरोज ने हिसामुद्दीन नामक व्यक्ति को भूमि नापने के लिए नियुक्त किया। ६ वर्ष तक जगह जगह घूम कर उसने जमीन की नाप की और सुल्तान ने पैदावार का कुल $\frac{1}{10}$ भाग लगान में लेना आरम्भ किया। इससे कृषकों की दशा में बड़ा सुधार हुआ।

सिंचाई की व्यवस्था—फीरोज ने कृषि के उत्थान की ओर विशेष ध्यान दिया। वह नहीं चाहता था कि अनावृष्टि के कारण राज्य के किसी भाग में अकाल पड़े और वहां की जनता भूखी मर जाय। इसलिए सिंचाई की व्यवस्था की ओर ध्यान दिया गया। 'तारीखे मुबारकशाही' के अध्ययन से हमें पता चलता है कि फीरोज ने चार नहरें बनवाई थीं। एक नहर सतलज से निकलकर घग्घर तक जाती थी। दूसरी नहर सिरमूर की पहाड़ियों से निकलकर हिसारफीरोजा जाती थी। तीसरी नहर घग्घर से फीरोजाबाद और चौथी यमुना से फीरोजाबाद जाती थी। इन नहरों से भूमि की सिंचाई पर्याप्त मात्रा में होने लगी। नहरों के अतिरिक्त सुल्तान ने कुवे भी बनवाये। इन साधनों के अपनाने से राज्य की पैदावार बढ़ी तथा स्वर्गीय सुल्तान के शासन के उजड़े कृषक पुनः सम्पन्न होने लगे।

कर नीति—जैसा कि हम इससे पूर्व व्यक्त कर आये हैं सुल्तान कुरान के आधार पर शासन करता था। कुरान में जिन चार करों (खिराज, जकात, ज़जिया तथा खाम) को उचित बताया गया है, उसने केवल वे ही कर जनता पर लगाये। इनके अतिरिक्त उसने कई कर हटा दिए। 'फ़तूहाते फीरोजशाही' से विदित होता है कि

फीरोज ने २३ कर हटा दिए थे। इसके अलावा युद्ध में प्राप्त लूट का माल भी सेना तथा राज्य में कुरान में निर्धारित नियम के अनुसार विभक्त होने लगा। सुल्तान की इस कर नीति का जन साधारण पर अच्छा प्रभाव पड़ा। मुसलमान तो प्रायः कर देने से मुक्त ही हो गये। परन्तु हिन्दुओं पर भी इसका भार कम पड़ा। इससे राज्य का व्यापार वृद्धि पाने लगा था।

सुल्तान के लोक-सेवा कार्य—फीरोज का स्वभाव परोपकारी था। वह सच्चे हृदय से अपने भाइयों का भला करना चाहता था। बर्नी लिखता है कि फीरोज ने ५० बाँध, ४० मस्जिद, ३० कालेज, २० महल, १०० सराय, २०० नगर, ३० झील, १०० औषधालय बनाये। इनके अलावा भी उसने कई लोकसेवा के कार्य किए। उद्यान लगाने का तो उसे बड़ा चाव था। कहते हैं कि राजधानी दिल्ली के आसपास उसने १२०० बाग लगवाये थे। इतिहासकार हेग का कथन है, **"उसे निर्माण कार्यों का इतना चाव था कि इस दृष्टि से वह रोमन सम्राट् आगस्टस से यदि बढ़ा चढ़ा नहीं तो कम से कम उसके समान अवश्य था।"** इन कार्यों का निरीक्षण करने के लिए फीरोज ने दो अफसर नियुक्त किये। मलिक गाजी शाहना तथा अब्दुल हक। इन दोनों अधिकारियों के अधीन कई उच्च कारीगर थे। फीरोज को स्थापत्यकला से बहुत प्रेम था। नवीन प्रासादों का निर्माण करने के अतिरिक्त उसने प्राचीन ऐतिहासिक इमारतों को धराशायी होने से बचाया। वी० ए० स्मिथ का कहना है, **यह एक नियम सा है कि एशियायी शासक अपने पूर्वजों के भवनों में दिलचस्पी नहीं लेते ....फीरोजशाह इसका अपवाद था।"**

शिक्षा तथा साहित्य—यह सत्य है कि फीरोज मुहम्मद तुगलक की भांति विद्वान न था—फिर भी वह विद्याप्रेमी अवश्य था। वह विद्वानों का आदर करता था। होनहार व्यक्तियों के लिए वजीफे स्वीकृत किये जाते थे। 'अंगूरी महल' में विद्वानों को बुलाता व उनका यथोचित आदर करता था। इसके दरबार में बर्नी, शम्से-सिराज आदि विद्वान विद्यमान थे। सुल्तान को इतिहास से भी प्रेम था। शम्से-सिराज ने अपनी इतिहास की पुस्तक इसी के शासन-काल में लिखी थी। मौलाना जलालुद्दीन रूमी इस काल का एक महान धर्म-विशारद था। साहित्य के विकास की दृष्टि से फीरोज ने कई संस्कृत के ग्रन्थों का फारसी में भी अनुवाद कराया। शिक्षा के विकास के लिये स्कूल खोले। शिक्षा के साथ इस्लाम धर्म का भी विकास हो—इस कारण से उसने प्रत्येक स्कूल के साथ एक मस्जिद का भी निर्माण किया। उसके बनाये हुए स्कूलों में 'फीरोजशाही मकतब' सर्वश्रेष्ठ था।

सुल्तान की धार्मिक नीति—फीरोज एक कट्टर मुसलमान शासक था। हिन्दुओं के प्रति उसका व्यवहार कठोर व असहिष्णुता का द्योतक था। वह यथा सम्भव कुरान के नियमों के विरुद्ध कोई कार्य न करता था। फतूहात-ए-फीरोज शाही के अध्ययन

से वी० ए० स्मिथ इस परिणाम पर पहुंचता है कि "**सुल्तान को हिन्दू और मुसलमानों को समान देखना कठिन था।**" उसने हिन्दुओं के प्राचीन मन्दिरों को धराशायी कर नवीन देवालयों का निर्माण वर्जित कर दिया। मूर्ति-पूजा पर भी उसने रोक लगाई थी। वह लिखता है, "**मैंने अपनी काफिर प्रजा को पैगम्बर का धर्म को स्वीकार कराने के लिए उत्साहित किया और मैंने यह घोषित कर दिया कि जो मुसलमान हो जावेगा उसे जजिया से मुक्त कर दिया जावेगा।**" उसने एक ब्राह्मण पर यह दोष लगाकर कि वह मुसलमानों को इस्लाम धर्म के त्यागने के लिए उकसाता है उसे राजप्रासाद के सामने जिन्दा जलवा दिया। ब्राह्मणों पर भी जजिया लगाने वाला यह प्रथम मुस्लिम शासक था। परन्तु उसका यह कठोर व्यवहार केवल हिन्दुओं के प्रति ही न था। उसका शिया सम्प्रदाय के मुसलमानों के साथ भी अच्छा व्यवहार न था। शिया मुसलमानों के प्रति वह लिखता है, "**मैंने उन सभी को पकड़ा और उन पर गुमराही का दोष लगाया। जो बहुत उत्साही थे उनको मैंने प्राण दण्ड दिया। मैंने उनकी पुस्तकों को आम जनता के बीच जला दिया और ईश्वर की कृपा से इस सम्प्रदाय का प्रभाव दब गया।**" इसी धार्मिक कट्टरता के कारण उसकी बर्नी तथा शम्से-सिराज अति प्रशंसा करते हैं तथा वह एक 'आदर्श मुसलमान शासक' माना गया है।

सुल्तान के अन्तिम दिन - सुल्तान फिरोज के अन्तिम दिन शान्ति से व्यतीत न हो सके। जगीरदारी प्रथा पर विभाजित राज्य में चारों ओर अराजकता फैलने लगी। गुलामों के प्राबल्य से राज्य में दलबन्दी जोर पकड़ने लगी। सुल्तान वृद्ध होने के कारण इन समस्याओं के समाधान में असमर्थ था। उसकी वृद्धावस्था में उसका विश्वासपात्र मन्त्री खान जहां अपना प्रभाव उत्तोरत्तर बढ़ाने लगा। जैसा कि इससे पूर्व व्यक्त कर आये हैं, खान जहाँ तेलंगान का एक हिन्दू था। उसे राज्य-कार्यों में पर्याप्त अनुभव था। इस कारण प्रथम तो वह मुहम्मद तुगलक द्वारा मुल्तान का जागीरदार बनाया गया और जब फीरोज सुल्तान बना तो अहमद बिन आयज को पदच्युत कर उसे प्रधान-मन्त्री पद पर नियुक्त किया गया। शनैः शनैः उसने सारी राज्य-सत्ता अपने हाथों में हथियाली। सुल्तान के वृद्ध होने पर उसने अपने भविष्य का मार्ग निष्कंटक बनाना चाहा। उसने सुल्तान को उसके पुत्र मुहम्मद के विरुद्ध भड़का दिया। खानजहाँ (मकबूल) ने सुल्तान से कहा कि आपका शाहजादा कुछ अमीरों के सहयोग से आपका वध करना चाहता है। सुल्तान ने शीघ्र ही कथित विद्रोहियों को बन्दी बनाने का आदेश दे दिया। परन्तु मुहम्मद बड़ा चालाक था। वह अन्तःपुर देखने के बहाने से सुल्तान के समक्ष उपस्थित होगया और दयालु सुल्तान ने उसे क्षमा कर अपना उत्तराधिकारी घोषित कर दिया। शाहजादा सुल्तान की इस अनुकम्पा के कारण पुनः विलासी जीवन व्यतीत करने में व्यस्त हो गया और उसके सहयोगी ऊच्च पदों पर अपनी

मनमानी करने लगे। इससे अमीर शाहजादा का विरोध करने लगे। अमीरों के इस विरोध ने गृह-युद्ध को जन्म दिया। शाहजादे के सहायक ज्योंही 'सुल्तान को पदच्युत करने व शाहजादे के विरोधियों को दबाने की दृष्टि से आगे बढ़े कि सुल्तान की उपस्थिति में वे सब उत्साहीन होगये। शाहजादा सिरमूर की पहाड़ियों की ओर भाग गया। फीरोज ने पुनः शासन का भार संभाला परन्तु वृद्धावस्था के कारण चला नहीं सका। इस पर उसने अपने पोते तुगलक शाहबीन फतह खां को राज्याधिकारी नियुक्त किया और स्वयं ऐसे अशान्त वातावरण में अक्टूबर १३८८ ई० में ८० वर्ष की आयु में इस लोक को छोड़ परलोकवासी हुआ।

फीरोज का चरित्र—फीरोज तुगलक एक बहुत दयालु शासक था। अपने मुसलमान भाइयों के प्रति उसकी उदारता सदैव बनी रहती थी। उसने विधवाओं के निवास के लिए प्रबन्ध किया। दीन माता पिता की कन्याओं का विवाह-प्रबन्ध सरकार की ओर से कराया गया था। तत्कालीन इतिहासकार बर्नी लिखता है, "नासिरुद्दीन महमूद के उपरान्त इतना उदार, दयालु, न्याय-प्रिय, शिष्ट तथा ईश्वर से डरने वाला कोई अन्य सुल्तान नहीं हुआ।" शम्से-सिराज ने फीरोज को धर्म निष्ठ बताया है। परन्तु आधुनिक इतिहासकार इन दोनों पूर्वोक्त कथनों से पूर्णतया सहमत नहीं हैं। बहुत से इतिहासकारों का कहना है कि सम्राट औरंगजेब की भांति संकीर्ण विचारों का शासक था। धर्म को यह राज्य शासन से विलग नहीं कर सका। राजनीति का उसमें सर्वथा अभाव था। हिन्दुओं के प्रति उसका व्यवहार कठोर था। हिन्दुओं को जबरन मुसलमान बनाने का भी उसने प्रयत्न किया। इतिहासकार एलफिन्सटन ने उसे दिल्ली सल्तनत का अकबर बताया है। परन्तु हमें यह कथन न्यायसंगत प्रतीत नहीं होता क्योंकि उसमें अकबर के समान न तो धार्मिक सहिष्णुता ही थी और न सैन्य संचालन की पटुता। फीरोज के धार्मिक कार्यों की समालोचना करता हुआ वी० ए० स्मिथ कहता है "उस युग में फीरोज के लिए यह संभव नहीं था कि वह अकबर की भांति इतना ऊंचा उठ सकता कि अपनी हिन्दू तथा मुसलमान प्रजा को एक दृष्टि से देख सकता।" वी० ए० स्मिथ के कहने का तात्पर्य यह है कि फीरोज को परिस्थितियों के कारण तथा अपना साम्राज्य बनाये रखने के लिये इस प्रकार की धार्मिक नीति अपनानी पड़ी थी। परन्तु उसके शासन कार्यों से यह भी भली भांति विदित होता है कि वे परिस्थितियां स्वयं निर्मित न थीं वरन् सुल्तान के द्वारा बनाई गई थी। इतिहासकार हेग फीरोज के शासन-सुधारों पर टिप्पणी करता हुआ लिखता है कि "फीरोज के राज्यकाल के साथ एक अत्यन्त उज्जवल युग का अवसान होता है।" डा० ईश्वरीप्रसाद् लिखते हैं, "फीरोज का नाम उसके शासन सुधारों के लिये इतिहास में प्रसिद्ध है पर उसमें अलाउद्दीन खिलजी या मुहम्मद तुगलक जैसी योग्यता, निर्भयता और शक्ति नहीं थी। वह कच्चे दिमाग का व्यक्ति था और मुफ्ती तथा मौलवियों की बात को बहुत महत्व देता था।"

तुगलक वंश के अन्तिम उत्तराधिकारी--बूढ़े फीरोज के शासन में उसका साम्राज्य भी बूढ़ा हो चुका था। अत: उसकी मृत्यु होते ही साम्राज्य में अशान्ति फैल गई। फीरोज के पौत्र तुगलक शाह ने राज्य की बागडोर संभाली। उसने गयासुद्दीन द्वितीय की उपाधि धारण की। परन्तु वह अल्प-वयस्क तथा अनुभवहीन व्यक्ति था। अतः उस गंभीर परिस्थिति को वह नहीं संभाल सका। अत: असन्तुष्ट अमीरों ने उसे १६ फरवरी १३८६ को मौत के घाट उतार दिया। उसकी मृत्यु के उपरान्त महमूद का चचेरा भाई अबूबक्र सुल्तान बना। उसने साम्राज्य में फैली अराजकता को दूर कर शान्ति स्थापित करना चाहा। परन्तु उसे शीघ्र ही फीरोज के छोटे पुत्र शाहजादा मुहम्मद के लिए गद्दी का परित्याग करना पड़ा। वह नासिरुद्दीन मुहम्मद के नाम से राज्य करने लगा। उसने भी राज्य की अराजकता का निवारण कर व्यवस्था स्थापित करनी चाही। उसने मेवात के विद्रोह को दबाने का सफल प्रयास अवश्य किया। परन्तु इससे उसके स्वास्थ्य पर बुरा प्रभाव पड़ा और १५ जनवरी १३६४ को वह भी इस लोक से सदा के लिये चल बसा। उसकी मृत्यु पर उसका पुत्र हुमायूं (सिकन्दर) गद्दी पर बैठा। परन्तु उसकी मृत्यु ८ मार्च १३६४ ई० में ही होगई। इस कारण मुहम्मद के सबसे छोटे पुत्र महमूद को गद्दी पर बैठने का अवसर प्राप्त हुआ। उसने अपना नाम नासिरुद्दीन महमूद रखा। यह तुगलक वंश का अन्तिम सुल्तान था। यह निर्बल एवं अयोग्य उत्तराधिकारी था। अत: उसके सुल्तान बनते ही फतेहखां के पुत्र नसरत शाह ने गद्दी प्राप्त करने का प्रयास किया परन्तु वह असफल रहा। तैमूर का आक्रमण इसी के शासन काल में हुआ था। प्रथम उसने तैमूर का सामना करने का प्रयास किया परन्तु जब परास्त होगया तो गुजरात की तरफ भाग गया। तैमूर के चले जाने पर इसके वजीर ने पुन: दिल्ली पर अधिकार कर लिया और अपने अयोग्य स्वामी की निर्बलता का अनुचित लाभ उठाने की दृष्टि से उसके वजीर इकबाल ने उसे पुनः दिल्ली आने का निमन्त्रण दिया।

अपनी दशा में सुधार होने के उद्देश्य से वह दिल्ली लौट आया। परन्तु वह नाम-मात्र का शासक रहा। अपने को अपने मन्त्री के हाथों अशक्त पा वह कन्नौज चला गया और वहीं अपना दरबार लगाता रहा। परन्तु १२ नवम्बर १४०५ को इकबाल खिजर खां के विरुद्ध युद्ध करता हुआ मारा गया। उसकी मृत्यु के उपरान्त महमूद पुनः दिल्ली आ गया। लेकिन वह फिर भी अपने शासन में कुछ नहीं कर सका। 'तारीख मुबारक शाही' का रचियता वर्णन करता है—**"सम्पूर्ण व्यापार अव्यवस्थित रूप में था। सुल्तान अपने कर्तव्य पर ध्यान नहीं देता था तथा सिंहासन की स्थिरता की उसे कुछ भी चिन्ता नहीं थी। उसका सम्पूर्ण समय विनोद एवं विलास प्रियता में नष्ट होता था।"** इस प्रकार यह महमूद भी एक अयोग्य शासक सिद्ध हुआ और वह १३ फरवरी १४१३ ई० में कैथल पर स्वर्गवासी

होगया। फरिश्ता का कहना है कि उसकी मृत्यु के साथ ही तुर्क जाति का राज्य जो दो शताब्दी से अधिक समय से स्थापित था मिट गया।

तैमूर का आक्रमण (१३९८)

तैमूर का परिचय—तैमूर का जन्म १३३६ ई० में समरकन्द से ५० मील दक्षिण में मावरा-उन्नहर के केश नामक स्थान पर हुआ था। इसके पिता का नाम अमीर तुर्ग था जो कि एक प्रतिष्ठित तुर्क जाति बरलस की शाखा गुरकन का नायक था। बाल्यावस्था में तैमूर की शिक्षा की समुचित व्यवस्था की गई थी। तैमूर ने कुरान का अध्ययन बड़ी दिलचस्पी से किया था। परन्तु सैनिक शिक्षा में तैमूर बहुत ही होशियार सिद्ध हुआ। वह शीघ्र ही तलवार चलाने में तथा घुड़सवारी में दक्ष हो गया। वह अल्प आयु में ही एक छोटे से भू-भाग का शासक बना दिया गया था। परन्तु स्वामी से अनबन हो जाने के कारण उसको आरम्भ में बहुत कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। शत्रु से बचने के प्रयास में ही उसकी एक टांग टूटी थी जिसके कारण उसका नाम तैमूर लंग पड़ा था। परन्तु १३६९ ई० में ३३ वर्ष की आयु में वह अपने शत्रुओं से विजयी हुआ और १३६९ ई० में समरकन्द का स्वामी बन गया।

तैमूर बचपन से ही एक महत्वाकांक्षी नवयुवक था। उसने समरकन्द का सुल्तान बनते ही अपने साम्राज्य-वृद्धि की ओर ध्यान दिया। शीघ्र ही उसने ख्वारिज्म, फारस, मैसोपोटामिया और रूस के कुछ भागों पर अधिकार कर लिया। इन विजयों से उल्लासित तथा धर्म में अटूट श्रद्धा रखने वाले तैमूर का ध्यान फिर भारत की ओर गया।

आक्रमण का उद्देश्य—तैमूर का उद्देश्य महमूद गजनवी की भांति भारत में इस्लाम-धर्म का प्रचार करना तथा भारत के अतुलधन को लूटना था। वह भारत में अपना राज्य स्थापित करना नहीं चाहता था। कई इतिहासकारों की मान्यता है कि जब उसके सैनिक भारत जैसे दूरवर्ती देश पर आक्रमण करने को उद्यत नहीं हुए तो उसने अपने युद्ध को मूर्ति-पूजा तथा बुतपरस्ती के विरुद्ध एक जेहाद का रूप दिया। परन्तु हमें यह सत्य नहीं प्रतीत होता। भारत की विजय के समय उसके किए हुए कर्म इसको स्पष्ट करते हैं कि वह हिन्दुओं के विरुद्ध सच्चे दिल से जेहाद बोलने आया था।

भारत पर आक्रमण—तैमूर भी उन निर्दयी विजेताओं में से एक है जिसकी निर्दयता आज भी याद की जाती है। तैमूर ने पहले अपने पौत्र पीर मुहम्मद को भारत में भेज दिया था। पीर मुहम्मद ने सिन्ध के पश्चिमी भाग को रौंद डाला और मुल्तान पर अपना आधिपत्य जमा लिया। इसके उपरान्त २४ सितम्बर को तैमूर ने सिन्ध नदी को पार किया और पंजाब के सूबेदार मुबारकशाह को परास्त कर अपने पौत्र पीर मुहम्मद के साथ दिल्ली की ओर रवाना हुआ। तैमूर की सेना में ९२ हजार घुड़सवार थे। तैमूर ज्यों ज्यों भारत में बढ़ रहा था मार्ग में तथा विजित प्रदेशों में हिन्दुओं का कत्ले

आम मचाता तथा उन्हें लूटता चला आ रहा था। जब वह दिल्ली के समीप पहुंचा उसके पास एक लाख हिन्दू बन्दी थे। उन्हें दिल्ली के सुल्तान महमूद से युद्ध करने से पूर्व कत्ल करवाने का आदेश दिया। इस कत्ले आम से महमूद की सेना भयभीत हो

गई। यद्यपि महमूद अपने मन्त्री मल्लू इकबालखां के साथ १० हजार घुड़सवार, ४० हजार पैदल तथा १२५ हाथी लेकर तैमूर का सामना करने को आ डटा था परन्तु महमूद की सेना तैमूर के घुड़सवारों के सामने नहीं टिक सकी। सुल्तान महमूद तथा इकबाल दोनों युद्ध भूमि से भाग गये।

तैमूर ने दिल्ली में १८ दिसम्बर को प्रवेश किया। विजय के उपरान्त तैमूर ने फीरोज की कब्र के पास अल्लाह को धन्यवाद दिया। यद्यपि तैमूर ने प्रारम्भ में वायदा कर लिया था कि वह दिल्ली में कत्ले आम नहीं मचायेगा परन्तु कहते हैं कि लूट पर उसके सैनिक तथा भारतीय सैनिकों में झगड़ा हो गया। इस पर क्रोधित तैमूर ने दिल्ली को लूटने का खुले आम आदेश दिया। यह कत्ले आम दिल्ली में तीन दिन तक चलता रहा। डा० ईश्वरीप्रसाद लिखते हैं कि "शहर पूर्णतया लूटा गया और निवासी कत्ल कर दिए गये। हजारों स्त्री–पुरुष गुलाम बनाये गये। लूट का धन शत्रु के हाथों लगा। कई सहस्रों शिल्पकार तथा यन्त्रकार शहर से बाहर लाये गये और युद्ध में सहायता देने वाले राजाओं, अमीरों को अफगानों में बांटा गया।" 'जफर नामा' का लेखक मजदी दिल्ली के घेरे के विषय में लिखता है "नगर को लूटा गया और जहांपनाह तथा सिरी के अनेक महल नष्ट कर दिए गये। हिन्दुओं के सिरों को काट काट कर उनके ऊँचे ढेर लगा दिए गये और उनका धड़ हिंसक पशु व पक्षियों के लिए छोड़ दिया गया........जो निवासी किसी प्रकार मृत्यु से बच गये वे बन्दी बना लिए गये।" श्रीनिवास शास्त्री लिखते हैं, "दिल्ली के इतिहास में यह लूटमार अत्यन्त दुःख व करुणा का स्थान रखती है।" इतिहासकार लेनपूल का कथन है कि इस लूट के पश्चात् तैमूर का प्रत्येक सैनिक धनवान बन गया तथा उन्हें बीस से दो सौ तक गुलाम अपने देश ले जाने को मिले। तैमूर स्वयं लिखता है "मश (काबू) के बाहर हो, मेरी पूरी फौज शहर में बिखर गई और उसने लूटमार और कैद के अलावा और कुछ परवाह न की।"

दिल्ली को लूटने के उपरान्त सुल्तान मेरठ की ओर बढ़ा और वहां के गवर्नर इलियास को परास्त कर १३९८ ई० में हरिद्वार जा पहुंचा। हिन्दुओं के पवित्र स्थान हरिद्वार को उसने बुरी तरह लूटा। कहते हैं उसने प्रत्येक घाट पर गाय का वध किया। लेनपूल लिखता है कि कत्ले आम के यथार्थ उत्सव के उपरान्त धर्म के सैनिक तैमूर ने अल्लाह को धन्यवाद दिया और समझा कि उसका भारत आने का उद्देश्य सफल हुआ। हरिद्वार विजय के उपरान्त उसने सवालिक प्रदेश पर विजय प्राप्त की और तदनन्तर जम्मू के हिन्दू नरेश को इस्लाम धर्म स्वीकार करने को बाध्य किया। जब तैमूर ने सोचा कि मेरी भारत विजय का कार्य सम्पूर्ण हो गया तो उसने वापिस जाने का विचार किया। लौटते समय खिज्रखां को पंजाब का सूबेदार नियुक्त कर दिया गया। इतिहासकार मजूमदार लिखते हैं कि इस प्रकार भारत पर एक ही आक्रमण में सर्वाधिक दुःख ढाहकर १९ मार्च १३९९ को उसने पुनः अपने देश जाने को सिन्ध नदी को पार किया। तैमूर के भारत आक्रमण पर पंडित जवाहरलाल नेहरू ने 'भारत की खोज' में लिखा है, "उसने अपने समस्त मार्ग को उजाड़ दिया तथा कत्ल किए गये मनुष्यों की

खोपड़ियों से बने पिरेमिड्स द्वारा उसे सजाया और दिल्ली वास्तव में एक मृतकों का शहर हो गया था।

आक्रमण के प्रभाव—तैमूर का आक्रमण भारत के लिए एक महान तूफान की भांति सिद्ध हुआ। इस तूफान से तुग़लक शासन का वृक्ष उखड़ गया और राज्य में चारों ओर अराजकता का साम्राज्य हो गया। समस्त उत्तरी भारत में तैमूर के आक्रमण कई वर्षों तक स्पष्ट दृष्टिगोचर होते रहे। तैमूर की लूट के कारण उत्तरी भारत के लोग दरिद्रनारायण के दास हो गये। लाखों नर नारियों के बध से उत्तरी भारत उजड़ गया और इसके बाद ही प्लेग तथा अकाल ने अपने पांव पंसार लिए। दिल्ली शहर के विषय में तत्कालीन इतिहासकार लिखता है—"**दिल्ली शहर बिल्कुल नष्ट भ्रष्ट हो गया। तैमूर के नर संहार से अवशिष्ट व्यक्ति महामारी के शिकार** हुए। **दो महीने तक नगर में एक पक्षी भी दिखाई न पड़ा।**" इसके अलावा राजनीतिक व्यवस्था भी नष्ट हो गई। चारों ओर छोटे छोटे स्वतन्त्र राज्य पनपने लगे। दिल्ली पर नवीन राज्य वंश की स्थापना हुई—पर अन्त में तैमूर का आक्रमण उसके वंशजों (मुगल) का शासन भारत में स्थापित कराने में सहायक सिद्ध हुआ। इस उत्तर की अराजकता से दक्षिणी भारत को उन्नत होने का अवसर प्राप्त हो गया। इस प्रकार हम देखते हैं कि तैमूर का आक्रमण जो एक तूफान की भांति था भारत पर कई महत्वपूर्ण प्रभाव छोड़ गया।

अध्ययन के लिए संकेत

गयासुद्दीन तुग़लक—यह तुग़लक वंश का संस्थापक था। आरंभ में यह एक साधारण व्यक्ति था। अलाउद्दीन खिलजी के समय इसने मंगोलों को दबाने में वीरता दिखाई थी। अतः सुल्तान ने इसे दीपालपुर का सूबेदार बना दिया था। अलाउद्दीन खिलजी की मृत्यु पर वह खुसरो का बध करके राज्य का स्वामी बन गया।

शासन-प्रबन्ध—उसने राज्य में व्याप्त अराजकता को दूर करने का प्रयास किया। राज्य की शोचनीय आर्थिक अवस्था को ठीक करने के हेतु जागीरों की जांच करवाई और अमीर खुसरो द्वारा अनुचित रूप से प्रदत्त जागीरों पर पुनः उसने अधिकार कर लिया। इसके अतिरिक्त उसने कृषकों की दशा सुधारने की ओर भी ध्यान दिया।

उच्च प्रशासक के साथ साथ वह एक योग्य सेनापति भी था। उसने अलाउद्दीन खिलजी की तरह सैन्य-संगठन को सुदृढ़ बनाने का प्रयास किया। वारंगल के नरेश को वह ठीक रास्ते पर लाया।

चरित्र—गयासुद्दीन एक उदार तथा बुद्धिमान शासक था। उसका जीवन सादा तथा धार्मिक था। वह सदैव अपनी प्रजा की भलाई का ध्यान रखता था। वह एक सफल प्रशासक तथा उच्च सेनानायक था।

मुहम्मद तुग़लक—इसका प्रारंभिक नाम जूनाखां था। वह अपने पिता का बध करके गद्दी पर बैठा था। इसका शासन-काल दो भागों में विभक्त किया जा सकता है। (१) १३२५ से ३५ ई० तक योजना-काल तथा (२) १३३५ ई० से ५१ ई० तक बिद्रोह आदि को दबाने का काल।

योजना-काल—दो आब के हिन्दुओं को दबाये रखने के लिए उसने दो आब के कृषकों पर कर बढ़ा दिया। इसी समय वहां अकाल पड़ा। इस कारण सुल्तान बदनाम हो गया। उसने अकाल से पीड़ित हिन्दू-कृषकों की सहायता अवश्य की-परन्तु वह विलंब से की।

राजधानी परिवर्तन—राज्य की सुरक्षा की दृष्टि से उसने देवगिरी को राजधानी बनाना चाहा। देवगिरी को वह राज्य के मध्य में समझता था—इसके अतिरिक्त वहां से वह नव विजित दक्षिणी भारत पर भी निगाह रखना चाहता था। परन्तु जब उसने आबादी के परिवर्तन का आदेश दिया तो लोगों को अनेक कठोर यातनाएँ सहन करनी पड़ीं और इस योजना से भी वह आम जनता में बदनाम हुआ।

तांबे के सिक्के चलाना—राज्य की दयनीय आर्थिक अवस्था को सुधारने के लिए ताँबे के सिक्के चलाए। परन्तु राज्य का समुचित प्रबन्ध न होने के कारण वह इस योजना में भी असफल रहा। घर घर में टकसालें खुल गईं। राज्य का व्यापार ठप्प हो गया। सुल्तान को तांबों के सिक्कों के बदले में सोने व चांदी के सिक्के देने पड़े।

विजय योजना—मुहम्मद तुगलक में साम्राज्यवादी भावना भी थी। अत: उसने खुरासान पर आक्रमण करने का साहस किया। परन्तु इस योजना में सुल्तान को काफी व्यय करना पड़ा और वह भी उसकी मूर्खता की द्योतक ही रही।

विद्रोह-काल—जब सुलतान अपनी योजनाओं को कार्यान्वित करने में निरन्तर असफल होता चला गया तो उसकी निर्बलता स्पष्ट हो गई। सूबेदारों ने स्वतन्त्र होने का प्रयास किया। चारों ओर विद्रोह होने लगे। मावर में जलालुद्दीन एहसान शाह ने विद्रोह किया तथा बंगाल में सूबेदार बहराम खां ने। अवध भी इस विद्रोह की अग्नि से दूर नहीं रह सका। सुल्तान को इन विद्रोहों को दबाने की चिन्ता हुई। परन्तु वह पूर्ण रूप से इधर ध्यान नहीं दे सका। अत: चारों ओर अशान्ति का वातावरण बढ़ता ही चला गया।

मुहम्मद तुगलक अपने समय का प्रतिभाशाली तथा एक विद्वान शासक था। परन्तु फिर भी वह एक अच्छा तथा उदार शासक था। असफलता सदैव साथ रहने पर भी उसने अपनी विभिन्न योजनाओं को कार्यान्वित करने का प्रयास किया।

फ़ीरोज तुग़लक—इसके पिता का नाम रजबशाह था और इसकी माता एक हिन्दू स्त्री थी। मुहम्मद तुग़लक की इस पर महान कृपा थी। अत: उसने फ़ीरोज को

अपने शासन-काल में कई उत्तरदायी पदों पर नियुक्त किया था। मुहम्मद तुग़लक की मृत्यु पर अमीरों ने तुग़लक वंश को बनाये रखने के लिए वृद्ध फीरोज को अपना सुल्तान चुना।

सैनिक सफलताएँ—यह सत्य है कि फीरोज एक साम्राज्यवादी शासक नहीं था। परन्तु वह मुहम्मद तुग़लक के साम्राज्य को बनाये रखना चाहता था। इसके शासन-काल में बंगाल के सूबेदार हाजी इलियास ने स्वतन्त्र होने का प्रयास किया। सुल्तान स्वयं सेना लेकर बंगाल पहुंचा परन्तु धार्मिक अन्ध विश्वास के कारण विजित बंगाल को इलियास को सौंप कर चला आया। यह उसकी महान् भूल थी। लौटते समय फीरोज ने जाजनगर को लूटा। १३३७ ई० में सुल्तान ने काँगडा पर भी विजय प्राप्त कर ली थी। परन्तु तदनन्तर मौका पाकर वहां का सुल्तान पुनः स्वतन्त्र हो गया था। मुहम्मद तुग़लक के समय सिन्ध भी स्वतन्त्र हो गया था। परन्तु अनेक कठिनाइयों का सामना करने के उपरान्त उसने उस पर अधिकार कर लिया।

फीरोज तुग़लक और दक्षिण—मुहम्मद तुग़लक के अन्तिम दिनों में दक्षिण स्वतन्त्र हो गया था और वहां बहमनी तथा अहमदनगर राज्यों की स्थापना भी हो गई थी। फीरोज तुग़लक का ध्यान इन राज्यों की ओर आकर्षित किया गया। परन्तु मुस्लिम राज्य होने के कारण उसने उन पर आक्रमण करने से इन्कार कर दिया।

फीरोज तुग़लक का शासन-प्रबन्ध

फीरोज एक शान्तिप्रिय शासक था। अतः उसने युद्ध के स्थान पर शासन-प्रबन्ध में अधिक रुचि दिखाई।

केन्द्रीय शासन—फीरोज तुग़लक एक निरंकुश शासक था। परन्तु वह कुरान की आयतों के आधार पर शासन करता था। इस कारण उसके शासन में उल्मा लोगों का प्रभाव था।

न्याय-व्यवस्था—न्याय-व्यवस्था कुरान पर आधारित थी। उसका कानून शरीयत था। कठोर दण्ड हेय समझा जाता था।

सैनिक-प्रबन्ध—फीरोज एक उच्च सेनानायक न था। उसने सैनिकों को संतुष्ट करने के लिए जागीर प्रथा को पुनः प्रचलित किया।

दास-प्रथा—इसने दास-प्रथा को पुनः चालू किया और इसके समय दासों की संख्या १,८०,००० तक पहुंच गई थी।

कृषि-व्यवस्था—फीरोज ने भूमि की नाप कराके पैदावार का १/५ भाग लगान के रूप में निश्चित किया।

सिंचाई-व्यवस्था—खेतों की सिंचाई के लिए उसने चार नहरें बनवाईं।

कर नीति—फीरोज ने २३ कर हटा कर केवल कुरान द्वारा अनुमोदित चार कर (खिराज, जकात, जजिया व खाम) ही रखे ।

सुल्तान के सेवा कार्य—फीरोज उदार वृत्ति का सुल्तान था। उसने कई बाग लगवाये, यात्रियों के विश्राम के लिए १०० सराय, जनता को रोग से मुक्त करने के लिए १०० औषधालय तथा अनेक बांध व मस्जिदें बनवाईं ।

शिक्षा तथा साहित्य—मुहम्मद तुग़लक की भांति विद्वान न होने पर भी वह अपने अंगूरी महल में विद्वानों को आमंत्रित करता तथा उनका यथोचित आदर करता था। शिक्षा के विस्तार के लिए स्कूल खोले गये तथा अनेक इतिहास की पुस्तकें लिखी गईं ।

सुल्तान की धार्मिक नीति—सुल्तान मुसलमानों के प्रति उदार था तथा हिन्दुओं के प्रति असहिष्णु ।

सुल्तान के अन्तिम दिन—जागीर प्रथा को बलशाली बनाने के कारण वह अपने अन्तिम दिन सुख से नहीं बिता सका। अमीरों ने स्वतन्त्र होने के लिए जगह जगह उपद्रव मचाये ।

फीरोज का चरित्र—फीरोज दयालु, उदार तथा पक्का मुसलमान था। हिन्दुओं के प्रति उसके विचार संकीर्ण थे। वह एक उच्च सेनानायक न था। इस कारण साम्राज्य विस्तार में भी उसकी रुचि अधिक न थी ।

तुग़लक वंश के अन्तिम उत्तराधिकारी—फीरोज तुग़लक के शासन काल में ही तुग़लक वंश के पतन के चिन्ह स्पष्ट होने लग गये थे। उसकी मृत्यु पर उसका पौत्र गयासुद्दीन तुग़लक के नाम से सुल्तान बना। परन्तु वह अनुभवहीन था। इस कारण उसे १३८६ में समाप्त कर अबूबकर सुल्तान बना। परन्तु उसे फीरोज के छोटे पुत्र शाहजादा मुहम्मद ने पदच्युत कर दिया। वह नासिरुद्दीन के नाम से सुल्तान बना। १३९४ ई० में उसकी मृत्यु हो जाने पर उसका पुत्र हुमायूँ (सिकन्दर) सुल्तान बना। परन्तु इसकी मृत्यु उसी वर्ष हो गई। उसके पश्चात् मुहम्मद का सबसे छोटा पुत्र नासिरुद्दीन महमूद के नाम से सुल्तान बना। यह इस वंश का अन्तिम सुल्तान था। तैमूर से परास्त हो वह भाग गया और उसके वजीर ने राज्य हथिया लिया ।

तैमूर का आक्रमण

तैमूर समरकन्द का सुल्तान था। उसने १३९४ ई० में भारत पर आक्रमण किया ।

उद्देश्य—महमूद गजनवी की भांति वह भारत की अतुल सम्पदा लूटना चाहता था ।

तैमूर ज्यों ज्यों भारत में बढ़ रहा था [illegible]

भारत पर आक्रमण—२४ सितम्बर १३९४ में उसने सिन्ध नदी को पार किया। उसने भारत की सम्पदा को ही नहीं लूटा वरन् हिन्दुओं का उसने निर्दयता से कत्लेआम मचाया।

आक्रमण के प्रभाव—यद्यपि तैमूर का आक्रमण एक तूफ़ान की भांति था परन्तु फिर भी उसके आक्रमण के कई प्रभाव पड़े। तुग़लक वंश का राज्य समाप्त हो गया तथा उत्तरी भारत की आर्थिक अवस्था शोचनीय हो गई। दिल्ली नगर बिल्कुल नष्ट हो गया। उसके आक्रमण के बाद दिल्ली प्लेग का शिकार हो गया। इस आक्रमण से दिल्ली में नवीन राज्य-वंश की नींव पड़ी तथा अन्त में मुगल साम्राज्य की स्थापना के लिए यह आक्रमण मार्ग-प्रदर्शक के रूप में सिद्ध हुआ।

अभ्यासार्थ प्रश्न

(१) गयासुद्दीन तुग़लक कौन था? उसके राज्य व शासन के विषय में आप क्या जानते हैं?

Who was Ghyas-ud-din Tughluq? What do you know about his reign and administration?

(२) मुहम्मद तुग़लक के चरित्र व नीति का वर्णन कीजिए।

Sketch the character and policy of Muhammad Tughluq.

(३) "मुहम्मद तुग़लक का शासनकाल उच्च विचारों के आत्म-पराभव का एक दुखान्त था।" इस कथन पर अपने विचार व्यक्त कीजिए।

"Muhammad Tughluqs' reign was a tragedy of intentions self-defeated". Discuss.

(४) "मुहम्मद तुग़लक अंशतः असाधारण विद्वान और अंशतः महान मूर्ख था।" इसका औचित्य ठहराइये।

"Muhammad Tughluq was half-a-genius and half-a-mad man". Justify.

(५) फीरोज तुग़लक के प्रशासनिक सुधारों का मूल्यांकन कीजिए।

Form an estimate of the administrative measures of Feroz Tughluq.

(६) "फीरोज इतिहास में अपने प्रशासनिक सुधारों के लिए प्रसिद्ध है। किन्तु उसमें अलाउद्दीन खिलजी अथवा मुहम्मद तुग़लक की सी योग्यता, धैर्य और तेजी का अभाव था।" इस कथन की विवेचना कीजिए।

"Firoz is well known in history for his administrative reforms, but he had nothing of the ability, interpidity, and vigour of Ala-ud-din Khilji or Muhammad Tughluq" Discuss.

(७) "फीरोज तुगलक की नीति अच्छाई और बुराई का मेल है।" इस कथन की आलोचना कीजिए।

"The policy of Feroze is a curious blending of the good and evil". Discuss.

(८) तैमूर के आक्रमण का वर्णन कीजिए। भारत के इतिहास पर उसके क्या प्रभाव पड़े ?

Describe the invasion of Taimur. What were its effects on the history of India ?

चौबीसवाँ अध्याय

सैयद व लोदी वंश और दिल्ली सल्तनत के पतन के कारण

सैयद वंश (१४१४-५१)

प्रारम्भ—तुगलक वंश का अन्तिम सुल्तान महमूद १४१३ ई० में इस लोक से बिदा हो गया। उसकी मृत्यु के उपरान्त साम्राज्य में चारों तरफ अशान्ति फैल गई। अमीर लोग स्वतन्त्र होने लगे व दिल्ली की सत्ता हथियाने का प्रयास करने लगे। इस अराजकता का परिणाम यह हुआ कि स्वर्गीय सुल्तान के वजीर दौलतखां को सत्ता हथियाने का अवसर प्राप्त हो गया परन्तु उसकी यह प्रभुता क्षणिक सिद्ध हुई। तैमूर के पंजाब स्थित वाइसराय ने उससे दिल्ली का राज्य छीन लिया और स्वयं ने दिल्ली पर शासन कर एक नवीन राज्य वंश की नींव डाली। वह वंश इतिहास में 'सैयद-वंश' के नाम से विख्यात है।

सैयद कौन थे?—ऐसा माना जाता है कि खिज्रखां सैयद था। इसीलिए सैयद जलालुद्दीन ने मुल्तान के गवर्नर मलिक मरदाने के यहां यह स्पष्ट किया कि खिज्रखां तथा उसका भ्राता सुलेमान सैयद था। इसके अतिरिक्त कई इतिहासकार कहते हैं कि वह अपने जीवन के दैनिक कर्मों से भी सैयद ही था। अतः खिज्रखां को 'सैयद वंश' का संस्थापक माना जाता है।

खिज्रखां (१४१४-२१ ई०)—खिज्रखां का भरण पोषण सुल्तान के सूबेदार मलिक नसीरुमुल्क मरदान दौलत के यहां हुआ था। अपने स्वामी की मृत्यु के उपरान्त वह मुल्तान का सूबेदार बन गया था। १३९५ ई० में सरंगखां ने उसे बन्दी बना लिया था। परन्तु वह जेल से भाग गया और १३९८ ई० में तैमूर का साथी बन गया। जब तैमूर भारत को नष्ट-भ्रष्ट कर वापिस अपने देश लौट रहा था तो वह खिज्रखां को पंजाब का वाइसराय नियुक्त कर गया था। दौलतखां को पद-च्युत कर वह २३ मार्च १४१४ ई० में दिल्ली के तख्त पर आसीन हुआ।

जब खिज्रखां दिल्ली का सुल्तान बना तो राज्य की स्थिति डांवाडोल थी। जौनपुर, मालवा और गुजरात के शासकों ने दिल्ली की प्रभुता मानने से इन्कार कर दिया था। कन्नौज, कटेहर और बदायूं के सूबेदारों ने भी कर देना बंद कर दिया था। अतः खिज्रखां के सामने दो कठिनाइयां प्रमुख रूप से प्रस्तुत थीं—(१) दोआब के हिन्दू जमींदारों को अपने अधिकार में करना तथा (२) दिल्ली के आसपास के भागों पर

अपना आधिपत्य पूर्ण रूप से स्थापित करना। इनके अलावा पंजाब में खोखर जाति का आतंक भी दिनों दिन बढ़ रहा था।

खिज्रखां एक उत्साही तथा वीर शासक था। अतः उसने इन कठिनाइयों पर विजय पा एक व्यवस्थित राज्य की स्थापना करने का प्रयास किया। यद्यपि वह इस कार्य में पूर्ण सफल न हो सका तो भी उसने अपने साम्राज्य की स्थिति को अवश्य संभाला। कटेहर तथा बदायूं के शासकों को उसने सख्ती से दबा दिया। मेवातियों का दमन कर दिल्ली के समीप के भागों में शान्ति स्थापित की गई। मेवातियों के दमन के उपरान्त जब खिज्रखां ग्वालियर के नरेश को परास्त कर लौट रहा था तो मार्ग में उसे ज्वर आया और वह २० मई १४२१ ई० को इस संसार से विदा हो गया।

डा० ईश्वरीप्रसाद की मान्यता है कि खिज्रखां जीवन से सच्चा सैयद था। उसमें प्रतिकार लेने की भावना नहीं थी। वह व्यर्थ में लोगों का खून बहाना उचित नहीं समझता था। उसने अपने जीवन के समस्त काल में राज्य की बिगड़ी अवस्था को सुधारने का प्रयास किया। जीवन में उचित विश्राम न मिलने के कारण ही उसे इस जगत् से शीघ्र ही विदा लेनी पड़ी। फरिश्ता लिखता है कि खिज्रखां एक महान तथा बुद्धिमान शासक था। वह दयालु तथा अपने वचनों का पक्का था। उसकी प्रजा उससे प्रेम करती थी।

मुबारकशाह (१४२१-३४ ई०)—मुबारकशाह खिज्रखां का पुत्र था। खिज्रखां ने मरते समय उसको अपना उत्तराधिकारी नियुक्त कर दिया था। यद्यपि खिज्रखां ने अपने सम्बन्ध तैमूर के पुत्र शाहरूख से विच्छेद नहीं किये थे परन्तु मुबारक शाह ने अपना सम्बन्ध समरकन्द से सर्वथा विच्छेद कर लिया और एक स्वतन्त्र शासक के रूप में दिल्ली के तख्त पर राज्य करने लगा। उसने अपने नाम का खुतबा पढ़ा तथा अपने नाम के सिक्के भी चलाये जिन पर मुइज़ुद्दीन मुबारकशाह अंकित रहता था। इस प्रकार से कहा जाता है कि मुबारकशाह ही सैयद वंश का प्रथम स्वतन्त्र सुल्तान था।

उसने अमीरों के प्रभाव को कम करने के लिए उनका एक सूबे से दूसरे सूबे को तबादला करना आरम्भ किया। पंजाब में खोखर जाति ने जसरथ के नेतृत्व में पुनः विद्रोह करना आरम्भ किया। उसने १४३३ ई० में काबुल के शासक शेखअली की सहायता से पंजाब के कई भागों को लूटा। मुबारकशाह ने शत्रु का सामना किया और विजयी हुआ। परन्तु २० फरवरी, १४३४ ई० को जब वह मुबारकाबाद का निरीक्षण कर रहा था तब उसके वजीर सरवार ने उसका वध कर दिया।

सुल्तान मुहम्मद (१४३४-४५ ई०)—मुबारकशाह के कोई पुत्र न था। अतः उसकी मृत्यु के पश्चात् उसका दत्तक पुत्र मुहम्मद दिल्ली का सुल्तान बना। परन्तु

मुहम्मद नाम मात्र का शासक रहा और वास्तविक सत्ता वजीर सरवार के हाथों में ही रही और उसने खांनेजहां की पदवी धारण की। इस कारण अमीर सुल्तान से असन्तुष्ट हो गये। अतः सुल्तान ने कमाल-उल-मुल्क की सहायता से सरवार का वध करवा दिया।

अब सुल्तान मुहम्मद अपने नये वजीर कमाल-उल-मुल्क की सहायता से शासन चलाने लगा। परन्तु राज्य में चारों ओर अराजकता ही वृद्धि पाती रही। ग्वालियर के नरेश ने पुनः कर देना बन्द कर दिया। मालवा के शासक महमूद खिलजी ने तो सुल्तान तक पर आक्रमण करने का साहस किया। सुल्तान ने लाहौर के सूबेदार बहलोल खां लोदी की सहायता से उसे परास्त कर दिया। बहलोलखां की इस सहायता से सुल्तान ने प्रसन्न होकर उसे 'खानखाना' की उपाधि प्रदान की। इसके उपरान्त बहलोलखां दिनोंदिन अपना प्रभाव बढ़ाने लगा और सुल्तान मुहम्मद १४४५ ई० में इस दुनिया से चल बसा।

अलाउद्दीन आलमशाह (१४४५–५१ ई०)—सुल्तान मुहम्मद की मृत्यु के पश्चात उसका पुत्र अलाउद्दीन आलमशाह अमीरों द्वारा दिल्ली का सुल्तान बनाया गया। परन्तु वह एक दुर्बल तथा राज्य-कार्यो में उदासीन रहने वाला व्यक्ति था। इस कारण राज्य की स्थिति और भी दिनोंदिन शोचनीय होने लगी।

बहलोलखां लोदी जैसा महत्वाकांक्षी व्यक्ति दिल्ली पर अपनी दृष्टि लगाये बैठा था। उसने सुल्तान के वजीर हमीदखां की सहायता से दिल्ली का तख्त १४५१ ई० में हथिया लिया। अलाउद्दीन आलमशाह बदायूँ चला गया और वहां वह १४७८ ई० में इस लोक से बिदा हुआ। इस सैयद वंश का राज्य १४५१ ई० में समाप्त हो गया।

लोदी वंश (१४५१–१५२६)

बहलोल लोदी (१४५१–८६)—भारत में लोदी वंश की स्थापना करने वाला बहलोल लोदी था। वह सरहिन्द के सूबेदार सुल्तान शाह लोदी का भतीजा था। बहलोल की प्रतिभा से प्रसन्न होकर उसने उसको अपना उत्तराधिकारी नियुक्त किया। १४५१ ई० में सैयद वंश की नींव को खोखली समझ उसने दिल्ली पर अधिकार कर लिया।

जब बहलोल दिल्ली का सुल्तान बना था उस समय दिल्ली साम्राज्य की दशा अति शोचनीय थी। सैयद वंश के शासकों के समय साम्राज्य की सीमा अति सीमित बन चुकी थी। दिल्ली के आसपास के सभी सूबेदार अपने को स्वतन्त्र बनाने की चेष्टा कर रहे थे। परन्तु बहलोल लोदी अपने पूर्वाधिकारियों की अपेक्षा कहीं अधिक साहसी, महत्वाकांक्षी, युद्धप्रिय तथा क्रियाशील व्यक्ति था। अतः उसने सुल्तान बनते ही दिल्ली राज्य की लुप्त-प्रतिष्ठा को प्राप्त करने का पुनः प्रयास किया।

पंजाब में फैली हुई तत्कालीन अव्यवस्था को दूर करने के लिए उसने पंजाब को सुव्यवस्थित किया। इसके उपरान्त उसने जौनपुर की स्वतन्त्रता को समाप्त कर दिया। यह सत्य है कि जौनपुर का सुल्तान महमूदशाह शर्की ने बहलोल को आजन्म कष्ट दिया—परन्तु वह एक स्वतन्त्र शासक न बन सका। इसके अनन्तर उसने मेवात, संभल, कौल, मैनपुरी, इटावा, रेवाड़ी आदि स्थानों के शासकों को दिल्ली का आधिपत्य मानने को बाध्य किया। १४८९ ई० में उसकी ज्वर के कारण मृत्यु हो गई।

इस प्रकार बहलोल लोदी ने अपने शासन के लगभग अड़तालीस वर्ष संघर्ष में ही व्यतीत किये। उसने अपने समय से पूर्व फैली अराजकता व अशान्ति को दूर किया। इसके अलावा उसके सद्प्रयत्नों से दिल्ली साम्राज्य ने अपनी लुप्त प्रतिष्ठा को पुनः प्राप्त किया। वह दयालु तथा उदार था। धर्म में उसकी निष्ठा महान थी। विद्वान न होते हुए भी विद्वानों का आदर करता था तथा उन्हें अपने यहां आश्रय देता था। न्याय में विश्वास रखता था तथा यथासंभव प्रजा के साथ न्याय करता था। 'तारीखे-दाऊदी' के लेखक का कथन है कि **बहलोलखां किसी बड़े समारोह के समय भी सिंहासन पर नहीं बैठता था और न वह अपने अफगान सरदारों को दरबार में खड़ा रहने को बाध्य करता था। वह एक सम्राट की भांति सरकारी आज्ञा-पत्र भी नहीं निकालता था। उसकी वेशभूषा भी बिल्कुल सादी थी :**

सिकन्दर लोदी (१४८९-१५१७)—बहलोलखां लोदी की मृत्यु के पश्चात् अमीरों ने उसके छोटे पुत्र निजामखां को सिकन्दरशाह के नाम से दिल्ली का सुल्तान बनाया। यद्यपि उसके ज्येष्ठ भ्राता बारबक शाह ने, जो जौनपुर का सूबेदार था, उसका विरोध किया। परन्तु वह असफल रहा। वह अपने पिता के तुल्य एक साहसी सैनिक तो था ही परन्तु साथ में एक सफल प्रशासक भी था।

अपने भ्राता के विरोध को शान्त करने के उपरान्त उसने हुसैनशाह शर्की की ओर ध्यान दिया जो कि अपने खोये राज्य को पुनः प्राप्त करने का प्रयास कर रहा था। इसको दबाने के पश्चात् उसने अपने अफगान अमीरों की ओर ध्यान दिया। यह उन्हें जमींदारी देकर प्रसन्न करने के पक्ष में नहीं था। इसके विपरीत उसने उन जमींदारों से हिसाब देने का आदेश दिया और स्वयं भी हिसाब देखना आरम्भ किया। यद्यपि अमीर लोग सुल्तान की इस नीति से असन्तुष्ट हुए और उन्होंने षडयन्त्र रचना आरम्भ किया परन्तु सुल्तान ने साहस से कार्य किया और उन सबको निर्दयता से दबा दिया। इटावा, बेयाना, कोल, ग्वालियर तथा जौनपुर के जमींदारों पर कड़ी निगाह रखने के लिए उसने वर्तमान आगरे के समीप एक सैनिक छावनी स्थापित की जो कि अन्त में आगरे शहर में परिणित हो गई। इस प्रकार आगरा शहर की नींव १५०४ ई० में डाली गई

वह समझता था कि देश के व्यापार को उन्नत करने में ही साम्राज्य की समृद्धि निहित है। अतः उसने बहुत से कर हटा कर व्यापार को उन्नत करना चाहा। इसके अलावा उसने व्यापारियों का जीवन सुरक्षित किया। राज्य के सभी भागों से समाचार प्राप्त करने की दृष्टि से उसने गुप्तचर विभाग की भी स्थापना की थी। 'तारीखे दाउदी' में लिखा है, **"सुल्तान को प्रतिदिन साम्राज्य के भिन्न भिन्न भागों की घटनाओं तथा वस्तुओं के मूल्यों की सूचनाएँ मिला करती थीं।"** कृषि को विकसित करने का भी उसके द्वारा प्रयास किया। इस प्रकार हम देखते हैं कि उसने शासन-सुधार के लिए श्लाघनीय प्रयत्न किये परन्तु वह अपनी धर्म-संकीर्णता के कारण एक सफल शासक न बन सका। हिन्दुओं के प्रति वह अनुदार था। उसने मथुरा के देवालयों को धराशायी किया तथा हिन्दुओं को यमुना में स्नान करने से रोका।

इस प्रकार हम देखते हैं कि सिकन्दर बड़ा ही योग्य तथा प्रतिभाशाली शासक था। यह सत्य है कि वह एक स्वेच्छाधारी तथा निरंकुश शासक था परन्तु जनता की फरियाद सुनने को सदा उद्यत रहता था। इस्लाम धर्म में उसकी महान अनुरक्ति थी। मुल्ला व मौलवी सदैव उससे आदर पाते थे। नीच प्रवृति व हिन्दुओं से उसे घृणा थी। उसे विद्या से बड़ा अनुराग था। वह स्वयं एक अच्छा कवि था। विद्वानों को अपने दरबार में सदैव आश्रय देने को उद्यत रहता था। विद्वान होते हुए भी रूढ़िवादिता से अपने को मुक्त न कर सका था। आकृति भी उसकी सुन्दर थी। संक्षेप में हम यह कह सकते हैं कि धार्मिक सहिष्णुता के अतिरिक्त उसमें शासक के लगभग सभी गुण विद्यमान थे।

इब्राहीम लोदी (१५१७-१५२६)—इब्राहीम लोदी सिकन्दर लोदी का ज्येष्ठ पुत्र था। पिता की मृत्यु पर वह २१ नवम्बर १५१७ को दिल्ली का सुल्तान बना। यद्यपि उसके पिता सिकन्दर लोदी ने राज्य की अव्यवस्थित दशा को व्यवस्थित करने का प्रयास किया था-पर वह पूर्णरूपेण न सुधर सकी थी। इसके अलावा उसकी नीति समझौते की थी। वह समय को पहिचानकर अपने अफगान अमीरों के साथ सख्ती व रिआयत करता था। इब्राहीम में यह गुण न था। उस शासन की पूर्ण सत्ता को अपने हाथों में केन्द्रीभूत करना चाहता था और कहता था कि शासन को दृढ़ बनाने में इन अमीरों की शक्ति ही प्रमुख रूप से बाधा उत्पन्न करती है। अतः उसने अपने अमीरों के साथ कठोरता का व्यवहार करना आरम्भ किया।

विद्रोहों को दबाना इब्राहीम की कठोर नीति का परिणाम यह निकला कि उसके लोहनी तथा फारमूली अफगानों ने सुल्तान का विरोध करना आरम्भ कर दिया। इब्राहीम के समस्त शासनकाल में विद्रोह होते रहे। इस कारण उसका शासन-काल विद्रोहों का काल भी कहलाता है। सर्व प्रथम उसके कनिष्ठ भ्राता जलालखां, ने जो कि कालपी का सूबेदार था. जौनपुर पर अधिकार कर अपने को स्वतन्त्र शासक बनाने

का प्रयास किया। उसे कालिंजर के सूबेदार अजीम हुमायूँ ने सहायता दी। परन्तु वे दोनों टिक नहीं सके। जलालखां ने भाग कर ग्वालियर के किले में शरण ली। वह बन्दी बनाया गया और मौत के घाट उतार दिया। यही दशा उसके साथी अजीम हुमायूँ की हुई। सुल्तान के इस कठोर व्यवहार से अफगान लोग और भी क्रोधित हो गये। बिहार के गवर्नर दरियाखां ने अपने को स्वतन्त्र शासक घोषित किया और उसके पुत्र मुहम्मद ने अपने नाम के सिक्के चलाये। इब्राहीम ने उदयपुर के राणा संग्रामसिंह को भी दबाने के लिए एक सेना भेजी थी--परन्तु उस सेना को परास्त होना पड़ा। इसके अनन्तर इब्राहीम की पंजाब के सूबेदार दौलतखां लोदी से उसकी अनबन हो गई। इस कारण इब्राहीम ने उसके पुत्र दिलावरखां का निर्दयता से वध करवा दिया। इस पर दौलतखां लोदी आग बबूला हो गया और उसने अपने पुत्र के वध का बदला लेने की दृष्टि से काबुल के तत्कालीन शासक बाबर को भारत आने का निमन्त्रण दिया।

पानीपत की लड़ाई तथा इब्राहीम लोदी की मृत्यु—बाबर प्रारम्भ से ही एक महत्वाकांक्षी सुल्तान था। वह इस निमन्त्रण को कब अस्वीकार करने वाला था। उसने १५२६ ई० में भारत पर आक्रमण किया। २१ अप्रेल को पानीपत के मैदान में यह लड़ाई लड़ी गई। इस लड़ाई का अन्त हुआ बाबर की विजय में तथा इब्राहीम की मृत्यु में।

इब्राहीम का चरित्र—इब्राहीम लोदी अपने पिता के तुल्य एक साहसी तथा सफल सेनापति था। वह अपनी प्रजा की भलाई सच्चे हृदय से चाहता था। इस कारण जन साधारण लोग उससे प्रसन्न थे। राज्य का व्यापार व कृषि उत्तरोत्तर उन्नत हो रही थी। परन्तु वह अपने पिता की तरह समय देखकर कार्य नहीं करता था। डा० ईश्वरीप्रसाद का कथन है कि **उसका स्वभाव हठी तथा चिड़चिड़ा था। उसने अपने घमण्ड और धृष्टता से अफगान सरदारों की सहानुभूति खोदी थी।** अतः हम देखते हैं कि इब्राहीम ने अफगानों को असन्तुष्ट एवं क्रुद्ध करके ही अपने तथा दिल्ली सल्तनत के विनाश के बीज बो दिए थे।

दिल्ली सल्तनत के पतन के कारण

यह सत्य है कि जो चढ़ता है वह अवश्य गिरता है। उन्नति के पीछे अवनति छिपी रहती है। ठीक यह बात दिल्ली सल्तनत के लिए कही जा सकती है। सन् १२०६ ई० में इसकी स्थापना कुतुबुद्दीन ऐबक के द्वारा हुई और यह सल्तनत गुलाम वंश के सुल्तानों के शासनकाल में अपने बाल्यावस्था के सुनहरे दिन व्यतीत करती हुई अलाउद्दीन खिलजी के समय प्रौढ़ अवस्था को प्राप्त हुई। तुगलक वंश के उत्तरार्द्ध में यह सल्तनत वृद्धावस्था को प्राप्त हुई। वृद्ध अवस्था में अपने दुःखमय दिवसों का यापन करते करते लोदीवंशीय शासकों के समय यह सल्तनत अस्थिपिंजर अवशेषों में अपने

अन्तिम दिन गिन रही थी कि बाबर के आक्रमण ने उसे पंचतत्वों को प्राप्त करा दिया। अतः इस सल्तनत का पतन तो अवश्यम्भावी था ही परन्तु उसके पतन के दोष इतिहासकार कालचक्र के साथ न लगाकर तत्कालीन शासकों के माथे ही मंढ़ते हैं। इतिहासकारों के मतानुसार उनमें से कुछ प्रमुख आपत्ति कारण निम्नलिखित थे :—

(१) **दिल्ली सल्तनत का सैनिक स्वरूप**—१२०६ ई० से १५२६ ई० तक के अधिकांश दिल्ली के शासक निरंकुश तथा स्वेच्छाचारी थे। शासन की समस्त सत्ता वे अपने हाथों में केन्द्रीभूत रखते थे। जन साधारण की शासन-कार्यों में कोई आवाज नहीं थी। विधर्मी हिन्दुओं के साथ तो इससे और भी कठोर व्यवहार था। अतः शासकों को शासन करने में अपनी सेना पर ही विश्वास करना पड़ता था। वे अपनी सैन्य-शक्ति के सहारे भारत में शासन करना चाहते थे और उन्होंने किया भी। परन्तु एक अंग्रेज विद्वान का कहना है कि "**हम भाले की नौक से और सब कुछ कर सकते हैं, परन्तु उस पर बैठ नहीं सकते।**" वास्तव में यह बात तथ्यपूर्ण है कि सैन्य बल से किसी देश व जाति को जीता तो जा सकता है परन्तु जीत लेना एक बात है और उस पर स्थायी सुदृढ़ राज्य की स्थापना दूसरी बात है।

(२) **साम्राज्य-विस्तार**—अलाउद्दीन खिलजी भारत के एक महान भाग पर अपना राज्य स्थापित करने में सफल हुआ था और मुहम्मद तुग़लक के शासन-काल में तो मुस्लिम-साम्राज्य अति विस्तीर्ण हो चुका था। परन्तु यह विशाल साम्राज्य यातायात के विकसित साधन उस काल में उपलब्ध न होने के कारण सुसंगठित व सुशासित न रह सका। इसके अलावा सूबों के जो सूबेदार होते थे वे सर्वदा स्वतन्त्र होने के फिराक में रहते थे। अतः वे सूबेदार भी सुल्तान के विश्वसनीय कर्मचारी नहीं हो सकते थे। अतः राज्य में सर्वदा अव्यवस्था तथा अराजकता ही बनी रहती थी।

(३) **मुस्लिम शासन का धर्मतान्त्रिक होना**—इस काल के मुस्लिम शासकों का शासन धर्मतान्त्रिक था। वे कुरान के नियमों के अनुसार शासन करते थे। मुल्ला-मोलवियों का शासन में प्रभुत्व था। हिन्दुओं को विधर्मी कहा जाता था और उन्हें धर्म परिवर्तन करने को बाध्य किया जाता था। सैनिकों को उल्लेमा लोग हिन्दुओं के कत्ले आम करने को प्रोत्साहित करते थे। कत्ले आम में यवनों की पैनी तलवारों के आघातों से न स्त्रियां बच सकती थीं और न बच्चे। और इस काल के लगभग सभी शासक यही कहते थे कि यह अल्लाह का पैगाम है कि मूर्तिपूजकों का विनाश किया जाय। इस कारण हिन्दू लोग इन शासकों के सदैव कट्टर शत्रु रहे और समय पर इनकी जड़ खोदने का प्रयास करते ही रहते थे।

(४) **स्थायी सेना का न होना**—जैसा कि हम ऊपर व्यक्त कर चुके हैं कि इस काल के मुस्लिम शासकों का शासन सैनिक था। परन्तु आश्चर्य है कि सिवाय

अलाउद्दीन खिलजी के किसी अन्य शासक ने सैन्य-शक्ति के सहारे शासन-संचालित करते हुए भी कभी स्थायी सेना रखने की चिन्ता नहीं की। वे सूबेदारों की सेना पर निर्भर रहते थे जो कि न तो सुल्तान के प्रति अधिक वफादार ही होती थी और न युद्ध-संचालन में सुशिक्षित। इसके अतिरिक्त उन्हें सैन्य-शक्ति को बनाये रखने के लिए जागीरदारी प्रथा को बनाये रखना पड़ा जिसके कारण कि उनका राज्य सुसंगठित होने के स्थान पर सदैव छोटे छोटे भागों में विभक्त रहता था।

(५) मुसलमानों का नैतिक तथा शारीरिक पतन—मुसलमान भारत में मध्य एशिया के पर्वतीय भागों से आये थे जहां कि लक्ष्मी की हीनता के कारण वे अपने जीवन के सुख की सामग्री अधिक नहीं जुटा सकते थे। भारत की अतुल धनराशी को लूट कर उन्होंने अपने को वैभवशाली बनाया और उस वैभवता का प्रदर्शन किया उन्होंने अपने विलासी जीवन से। सुरा और सुन्दरी उनकी सदैव सहचरी बनके रहने लगी। इस कारण वे अपनी प्राचीन वीरता से शनैः शनैः विरक्ति पाने लगे। इसके अतिरिक्त यह भी कहा जाता है कि शीत-जलवायु वाले प्रदेश से आने वाले ये मुसलमान भारत जैसे गर्म देश में आकर सुस्त व आलसी हो गये। शारीरिक गठन भी उनका पूर्व जैसा न रहा। इस कारण राज्य का पतन हुआ।

(६) मुहम्मद तुग़लक व फीरोज़ तुग़लक की दोषपूर्ण नीति—मुहम्मद तुगलक से तो अपनी कल्पनापूर्ण तथा असामयिक योजनाओं को अपने शासन-काल में पूर्ण करना चाहा। इससे राज्य-कोष खाली हो गया। जन साधारण भूख से मरने लगे। विदेशी नीति ने सुल्तान का एशिया में मान घटा दिया। इस कारण उसका इस काल का सर्वाधिक विस्तीर्ण साम्राज्य क्षत विक्षत होने लगा। फीरोज के शासन में उसके शासन सुधारों से उसकी मुस्लिम जनता सुखी अवश्य हुई परन्तु उनको सुखी बनाने के लिए उसे गुलाम-प्रथा तथा जागीर प्रथा को पुनः जीवित करना पड़ा। दयालुता के कारण उसने सैनिक पद भी वंशानुगत बना दिए। इस कारण दिल्ली सल्तनत इन शासकों के काल में ही वृद्धावस्था को प्राप्त हुई थी।

(७) लोदी वंशीय शासकों की नीति—अर्सकीन के मतानुसार "**अफगान सब जागीरों के स्वामी थे। वे यह समझते थे कि तलवार के बल पर वे जागीरों के स्वामी हैं ताकि वे जागीरें उन्हें उपहार के रूप में सुल्तान की देन है।**" लोदी वंश का सर्वश्रेष्ठ सुल्तान सिकन्दर लोदी तो फिर भी समय को पहिचान कर अपने अफगान भाइयों से कभी नर्मी तथा कभी कठोरता से काम निकाल लिया करता था। परन्तु इब्राहीम लोदी की नीति अपने पिता के सर्वथा विरुद्ध थी। उसने अपने अफगान भ्राताओं को नवीन नियमों की बेड़ियों से जकड़ कर अपमानित करना आरम्भ किया। इस कारण समस्त अफगान अमीर उससे असन्तुष्ट हो गये और वे

बाहरी सहायता से इब्राहीम के राज्य को समाप्त करने का प्रयास करने लगे—जिसमें वे अन्त में सफल भी हुए।

(८) विदेशी आक्रमण—वैसे भारत में विदेशी आक्रमण समय समय पर होते ही रहे हैं—परन्तु इस काल में जो आक्रमण हुए वे अधिक भयंकर थे। प्रथम इस काल के शासकों को मंगोलों के हमलों से निरन्तर परेशान रहना पड़ा। परन्तु इन आक्रमणों को तो इस सल्तनत ने अपनी युवावस्था में फिर भी सहन कर लिया। परन्तु तैमूर ने आक्रमण ऐसे समय में किया जब कि दिल्ली सल्तनत वृद्धावस्था को पहुँच चुकी थी। अतः उसके भयंकर आक्रमण ने दिल्ली सल्तनत की जड़ हिला दी और वीर बाबर ने दिल्ली सल्तनत के उस विशाल वृक्ष को सदैव के लिए धराशायी ही कर दिया।

इन कारणों के अतिरिक्त मुसलमानों में राज्य-सिंहासन पर बैठने का कोई नियम न होना, मुसलमानों का अन्तर्जातीय विवाह करना, शासकों में धार्मिक सहिष्णुता का अभाव तथा शासकों के निर्बल उत्तराधिकारी होना भी दिल्ली सल्तनत के पतन के कारण माने जाते हैं। इस प्रकार दिल्ली सल्तनत १५२६ ई० में समाप्त हो गई और भारत में एक नवीन राजवंश की स्थापना हुई। इस नवीन मुगल वंश के हाथों में भारत की शासन सत्ता लगभग ६०० वर्षों तक रही। इस राजवंश का वर्णन हम अगले अध्यायों में करेंगे।

अभ्यासार्थ प्रश्न

(१) सैयद वंश की स्थापना किन परिस्थितियों में हुई ? खिज्रखां की सफलताओं का वर्णन कीजिए।
Under what circumstances was Sayid Dynasty founded ? Relate the achievements of Sultan Khizer Khan.

(२) सिकन्दर लोदी के कार्यों तथा चरित्र का उचित मूल्यांकन कीजिए।
Form a correct estimate of the achievements and character of Sikandar Lodi.

(३) इब्राहीम लोदी स्वयं को अपने पतन का दोषी ठहराना कहां तक उचित है।
To what extent is it correct to say that Ibrahim Lodi was himself responsible for his downfall ?

(४) दिल्ली सल्तनत के पतन के कारणों का उल्लेख कीजिए।
Enumerate the causes of the downfall of the Delhi Sultanate.

पच्चीसवाँ अध्याय

दिल्ली सल्तनत के पतन के समय नवीन राज्यों का उदय : तत्कालीन भारतीय जीवन

तराई के युद्ध (११६२ ई०) में जब पृथ्वीराज चौहान मुहम्मद गौरी से परास्त हो गया तो भारत में मुस्लिम साम्राज्य की स्थापना का श्रीगणेश हुआ। गुलाम वंश के शासकों ने तुर्क साम्राज्य की नींव को दृढ़ किया तथा उसे विस्तीर्ण भी किया। तदनन्तर खिलजी वंश के समय में भारत में तुर्क साम्राज्य दिनों दिन वृद्धि पाने लगा और अलाउद्दीन खिलजी के समय वह साम्राज्य दक्षिण में रामेश्वरम् तक पहुंच गया। मुहम्मद तुग़लक के समय दिल्ली सल्तनत अपने उत्कर्ष की चरम सीमा पर पहुंची और तत्पश्चात् अवनति की ओर अग्रसर होने लगी। निर्बल सुल्तानों के हाथ में सत्ता जाने से केन्द्रीय शासन उत्तरोत्तर क्षीण होने लगा और उसके स्थान पर प्रान्तों के सूबेदार शनैः शनैः स्वतन्त्र होने लगे। इसका परिणाम यह हुआ कि दिल्ली सल्तनत केवल दिल्ली और उसके समीप के भागों तक ही सीमित रह गई और उसके चारों ओर स्वतन्त्र राज्य स्थापित हो गये। उनमें से प्रमुख निम्नलिखित हैं :—

बंगाल—बंगाल राज्य दिल्ली से दूर था और उन दिनों में यातायात के साधन भी विकसित एवं सुगम्य नहीं थे। इस कारण वहां के सूबेदार सुविधापूर्वक अपने को स्वतन्त्र घोषित कर सकते थे। इसका सर्व प्रथम श्रेय बख्तियार खिलजी को प्राप्त हुआ। अधिक महत्वाकांक्षी होने के कारण उसने समीप के प्रदेशों को अधीनस्थ कर अपना राज्य बढ़ाया तथा लखनौती को अपने राज्य की राजधानी बनाई। इल्तुतमिश ने इसे बहुत प्रयत्नों के उपरान्त अपने आधीन पुनः कर लिया। परन्तु उस पर समुचित ध्यान न देने के कारण वह पुनः स्वतन्त्र हो गया। अन्त में बलबन स्वयं वहां गया। वहां के स्वतन्त्र शासक तुर्ग़रिल बेग को निर्दयता से समाप्त कर अपने पुत्र बुगराखां को वहां का गवर्नर नियुक्त किया। १३३८ ई० तक उसके वंशज वहां पर शासन करते रहे। इसके अनन्तर बंगाल में गृह युद्ध आरम्भ हो गया। गयासुद्दीन तुग़लक ने नासिरुद्दीन के विरोधी बहादुरशाह को परास्त कर उसे दिल्ली के आधीन बना लिया। परन्तु मुहम्मद तुग़लक के शासनकाल में फखरुद्दीन ने बंगाल के तत्कालीन गवर्नर को समाप्त कर स्वयं वहां का स्वतन्त्र शासक बन बैठा। १३५० ई० में समस्त बंगाल पर इलियास शाह ने अपनी प्रभुता स्थापित करली। १३५६ ई० में फीरोज ने उसे अपने आधीन करने की दृष्टि से बंगाल पर आक्रमण किया। परन्तु परिणाम यह निकला कि इलियास

को बंगाल का स्वतन्त्र शासक स्वीकार कर लिया गया। इलियास एक योग्य शासक था। उसने अपनी प्रजा को सुखी बनाने का प्रयास किया। उसकी मृत्यु के उपरान्त उसका पुत्र सिकन्दर १३८९ ई० तक बंगाल पर शासन करता रहा। सिकन्दर भी अपने पिता के तुल्य एक योग्य शासक तथा कला में अनुराग रखने वाला था। परन्तु यह वंश सिकन्दर के पुत्र की मृत्यु के पश्चात १४१४ ई० में समाप्त हो गया।

यह सत्य है कि भारत पर मुस्लिम साम्राज्य स्थापित हो चुका था और धार्मिक असहिष्णुता से भरे मुसलमान शासक हिन्दुओं को सतत निर्दयता एवं निष्ठुरता से दबाते भी रहे थे। इसका तात्पर्य यह नहीं कि हिन्दू अपनी वीरता को सर्वथा तलाक दे चुके थे। अवसर पाकर बंगाल पर राजा गणेश ने पुनः अपना आधिपत्य स्थापित कर लिया। उसका यह आधिपत्य क्षणिक प्रमाणित हुआ और १४४२ ई० में उसका वंश समाप्त हो गया और बंगाल की प्रभुता पुनः इलियास के वंशजों के हाथ में चली गई। गतिवान काल के चपेट में यह वंश पुनः समाप्त हो गया। १४९३ ई० में हुसैनशाह सैयद बंगाल का स्वतन्त्र शासक बन बैठा। इतिहासकारों की ऐसी धारणा है कि वह मध्यकाल का सर्वश्रेष्ठ शासक था। उसने आसाम तथा उड़ीसा पर भी अपना राज्य स्थापित कर लिया। उसकी मृत्यु पर १५१८ ई० में उसका पुत्र नसरतशाह वहां का शासक बना। नसरतशाह कलाप्रेमी तथा विद्वानों का आश्रयदाता था। परन्तु वह साम्राज्य-वादी था और बिहार को जीत कर उसने अपने साम्राज्य को विस्तीर्ण किया। उसने बाबर से सन्धि कर ली थी। बंगाल का अन्तिम स्वतन्त्र शासक गयासुद्दीन महमूद था। हुमायूँ तथा शेरशाह; दोनों ने बंगाल प्रदेश को अपने आधीन करना चाहा—परन्तु इस सफलता का श्रेय अकबर महान को १५७६ ई० में प्राप्त हुआ।

जौनपुर—इस नगर को फीरोज तुग़लक ने मुहम्मद तुग़लक की स्मृति में बसाया था। सूबेदार ख्वाजा-जहां प्रथम सूबेदार था जिसने कि अपने को स्वतन्त्र शासक घोषित किया था। मुहम्मद तुग़लक ने उसे 'मलिक-उल-शर्क' की उपाधि दी थी। अतः उसका वंश 'शर्की' कहलाया। उसने बिहार, तिरहुत और कोल (अलीगढ़) पर अपना आधिपत्य जमा लिया। तैमूर के आक्रमण से उसे अपने राज्य को संगठित करने का अवसर प्राप्त हो गया और उसने अतावक-ए-आजम की उपाधि धारण की। उसकी मृत्यु के उपरान्त उसका दत्तक पुत्र मुबारकशाह शासक बना। परन्तु वह शीघ्र इस दुनियां से चल बसा। उसके उपरान्त उसका भ्राता इब्राहीम शमसुद्दीन इब्राहीम शाह शर्की के नाम से जौनपुर का शासक बना। वह एक चतुर शासक एवं एक विद्वान व्यक्ति था। उसके शासन-काल में शिक्षा व साहित्य पर्याप्त रूपेण विकसित हुआ। यही कारण था कि जौनपुर उस काल में मुस्लिम साहित्य का केन्द्र बन गया। स्थापत्यकला के क्षेत्र में भी जौनपुर पिछड़ा न रहा और अटाला की मस्जिद आज सुल्तान के स्थापत्य-कला के अनुराग का परिचय दे रही है। इब्राहीम जब १४४० ई० में इस

दुनियां से चल बसा तो उसका पुत्र महमूदशाह जौनपुर का शासक बना। वह साम्राज्य-वादी वृत्ति का शासक था। उसने चुनार को आधिपत्य में कर दिल्ली तक पर आक्रमण करने का साहस किया। परन्तु दिल्ली के सुल्तान ने बहलोल लोदी की सहायता से उसे परास्त कर दिया। महमूद की मृत्यु के उपरान्त उसका भाई हुसैनशाह जौनपुर का सुल्तान बना। इसने भी अपने राज्य की वृद्धि करनी चाही। बहलोल लोदी ने इसे परास्त कर उसकी मुराद पूरी नहीं होने दी। लोदी ने बारबक को जौनपुर का सूबेदार नियुक्त किया। हुसैनशाह बंगाल भाग गया और इस प्रकार ८० वर्ष के उपरान्त जौनपुर का स्वतन्त्र शासन समाप्त हो गया। शर्की सुल्तानों के शासन-काल में जौनपुर ने कला व साहित्य में आशातीत उन्नति की। इसी कारण जौनपुर उस समय 'भारतीय शीराज' कहलाता था।

मालवा—बारहवीं शताब्दी के अन्त तक राजपूत नरेशों ने मालवा की स्वतन्त्रता कायम रखी। इल्तुतमिश प्रथम मुस्लिम सुल्तान था जिसने कि मालवा पर अपना प्रभुत्व जमाया। वह मुस्लिम प्रभुत्व क्षणिक सिद्ध हुआ। उसके पश्चात् साम्राज्यवाद की क्षुधा से पीड़ित अलाउद्दीन खिलजी ने १३१० ई० में मालवा पर पुनः अधिकार किया। फीरोज ने अपने शासन काल में मुहम्मद गोरी के वंशज दिलावर खां को मालवा का सूबेदार नियुक्त किया था। १४०१ ई० में उसने अपने को एक स्वतन्त्र शासक घोषित किया। उसने उज्जैन से हटाकर मांडू को अपनी राजधानी बनाई। वह अपने पुत्र द्वारा विष देकर मार डाला गया। १४०६ ई० में स्वर्गीय शासक का पुत्र होशंगशाह के नाम से मालवा का शासक बना। उसने नर्मदा नदी के तट पर होशंगाबाद नामक एक नगर बसाया। उसने गुजरात के शासक मुजफ्फरशाह से झगड़ा मोल ले लिया। इसके परिणाम स्वरूप होशंगशाह को मांडू छोड़ने को बाध्य होना पड़ा। १४३५ ई० में जब उसकी मृत्यु हो गई तो उसका पुत्र मालवा का शासक बना। वह एक अयोग्य एवं निकम्मा शासक सिद्ध हुआ। उसकी दुर्बलता का फायदा उठाकर उसके मन्त्री महमूद खिलजी ने उसको मौत के घाट उतार दिया।

महमूद खिलजी को वीरता में डा० ईश्वरी प्रसाद ने स्वीडन के चार्ल्स बारहवें के समान बताया है। उसने १४३६ ई० से १४६९ ई० तक राज्य किया। उसका शासन-प्रबन्ध उत्तम था। इसी कारण वह मालवा के शासकों में सर्वोत्तम माना जाता है। वह एक कट्टर मुसलमान था। उसके समय में मालवा का विस्तार भी पर्याप्त हुआ। उसकी मृत्यु पर उसके पुत्र गयासुद्दीन ने १५०० ई० तक मालवा पर शासन किया। वह भी अपने पुत्र नासिर द्वारा जहर देकर मार डाला गया। नासिर क्रूर, विलासी तथा एक निकम्मा शासक था। उसने १५१० ई० में झील में डूब कर अपनी जीवन-लीला समाप्त कर ली।

उसकी मृत्यु पर उसका पुत्र महमूद खिलजी द्वितीय शासक बना। यह भी अपने

पिता की भांति एक निर्बल शासक था। अतः वह मेवाड़ के महाराणा संग्रामसिंह से परास्त हुआ और १५३१ ई० में गुजरात के सुल्तान बहादुर शाह ने उसे सपरिवार मौत के घाट उतार दिया। इस प्रकार मालवा बहादुरशाह के आधीन हो गया। १५३५ ई० में मुगल सम्राट हुमायूँ ने बहादुरशाह को वहां से मार भगाया। लेकिन मालवा शीघ्र ही कादिरखां के नेतृत्व में पुनः स्वतन्त्र सूबा बन गया। प्रतापी मुगल सम्राट अकबर ने १५६१ ई० में मालवा को पूर्णतया मुगल राज्य में मिला लिया।

खानदेश—नर्मदा नदी के दक्षिण में स्थित यह एक छोटासा राज्य था। चारों ओर पर्वतों व नदियों की घाटियों से घिरा होने के कारण उसकी प्राकृतिक स्थिति सुरक्षा की दृष्टि से अच्छी थी। उस समय यह भारत का एक अच्छा बन्दरगाह था। फीरोज तुगलक ने इस प्रदेश में मलिक राजा फारूखी को सूबेदार नियुक्त किया। यह सूबेदार शीघ्र ही एक स्वतन्त्र शासक बन गया। वह एक उदार नीति का शासक था। इस कारण हिन्दू लोग भी उससे प्रसन्न थे। इसी कारण वह ३० वर्ष तक खानदेश में शान्ति से शासन करता रहा।

१३६६ ई० में उसकी मृत्यु हो जाने पर मलिक नासिर उसका उत्तराधिकारी बना। असीरगढ़ के दुर्ग को अपने प्रभुत्व में कर उसने समस्त खानदेश पर अपना अधिकार कर लिया। ताप्ती नदी के तट पर उसने बरहामपुर नगर बसाया और इसी नगर को उसने अपने राज्य की राजधानी बनाया। उसकी मृत्यु १४३७ ई० में हो गई। १५१० ई० तक उसके वंशज शान्ति से शासन करते रहे। १४५७ ई० से १५०३ ई० तक यह प्रदेश आदिल खां द्वारा शासित किया गया। आदिल एक योग्य शासक था। इसके शासन-काल में खानदेश व्यापार का केन्द्र बन गया। इसकी मृत्यु के उपरान्त उसके उत्तराधिकारी निर्बल हुए। उनकी निर्बलता का फायदा गुजरात के सुल्तान लिगाड़ ने उठाया और उसने अपने समर्थक आदिल खां तृतीय को खानदेश का शासक बनाया। वह भी एक निकम्मा शासक सिद्ध हुआ। इसके उपरान्त इस प्रदेश का शासन १६ वीं शताब्दी के अन्त तक यों ही चलता रहा। अन्त में १६०१ ई० में मुगल सम्राट अकबर ने इसे जीत कर अपने राज्य में मिला लिया।

काश्मीर—काश्मीर की भौगोलिक स्थिति ने उसे स्वतन्त्र राज्य बने रहने में महान सहायता दी। इसके अतिरिक्त वहां यातायात के साधन भी सुगम नहीं थे। इन्हीं कारणों से वह तेरहवीं शताब्दी तक हिन्दू नरेशों के आधिपत्य में एक स्वतन्त्र राज्य बना रहा। चौदहवीं शताब्दी के प्रारम्भ में कन्धार के शाह ने काश्मीर को लूटा और १३४६ ई० में शाह मिर्जा हिन्दू नरेश को पदच्युत कर स्वयं काश्मीर का स्वतन्त्र शासक बन बैठा। इस शासक ने काश्मीर के हिन्दुओं को भारी संख्या में मुसलमान बनाया। उसकी मृत्यु के उपरान्त उसके उत्तराधिकारी सिकन्दर ने उस वंश का नाम रोशन

किया। सिकन्दर एक निरंकुश तथा धर्मान्ध शासक था। उसे हिन्दुओं को मुसलमान बनाने व उनके देवालयों को धराशायी करने में बड़ा आनन्द आता था। जिन हिन्दुओं ने इस्लाम धर्म अंगीकार करने से इन्कार किया उन्हें काश्मीर छोड़ने को बाध्य होना पड़ा परन्तु १४१७ ई० में जब जैनुल आब्दुल काश्मीर का सुल्तान बना तो उसने सिकन्दर की नीति का परित्याग किया।

जैनुल आब्दीन एक उदार तथा योग्य शासक था। उसने हिन्दुओं के प्रति उदार नीति का अवलम्बन कर उन्हें मुसलमान बनने को बाध्य नहीं किया। निर्वासित हिन्दुओं को पुनः काश्मीर में बसने की आज्ञा प्रदान करदी गई। इसीलिए उसे काशमीर का 'अकबर' कहते हैं। उसके शासन काल में काश्मीर ने व्यापार व कला और साहित्य में पर्याप्त उन्नति की। परन्तु उसके उत्तराधिकारी भी निर्बल एवं निकम्मे सिद्ध हुए। उनकी कमजोरी का फायदा उठाकर बाबर के चचेरे भाई मिर्जा हैदर दौलत ने काश्मीर पर अधिकार कर लिया। एक बार फिर पुराने राज वंश ने राज सत्ता प्राप्त कर ली थी जो वह अस्थायी रही और चक्कवंश ने सत्ता हथिया ली। इस वंश के गाजी शाह ने करीब ३० वर्ष काश्मीर पर शासन किया। उसके निर्बल होते ही १५८६ ई० में अकबर द्वारा इस पर अधिकार कर लिया गया।

सिन्ध—सिन्ध भी काश्मीर की भांति अपनी भौगोलिक स्थिति के कारण बहुत समय तक एक स्वतन्त्र सूबा बना रहा। आठवीं शताब्दी के आरम्भ में अरब के मुसलमानों ने सिन्ध पर अधिकार कर लिया था। वह अधिकार अस्थायी सिद्ध हुआ। इसके अनन्तर १३ वीं शताब्दी में दास वंश के शासकों ने सिन्ध को अपने आधिपत्य में कर लिया था। १३३६ ई० में जाम वंशीय राजपूतों ने पुनः सिन्ध को एक स्वतन्त्र सूबा बना लिया। १५२० ई० में वे कन्धार के शासक से परास्त किये गये। इस प्रकार सिन्ध की स्वतन्त्रता पुनः नष्ट हो गई और १५६० ई० में अकबर ने इसे जीत कर मुग़ल साम्राज्य का एक भाग बना दिया।

दक्षिणी भारत के राज्य

जब दिल्ली के सुल्तान निर्बल हो गये तो उनकी निर्बलता का फायदा उत्तरी भारत के शासकों ने ही नहीं उठाया वरन् दक्षिणी भारत के प्रान्त भी स्वतन्त्र होने लगे थे। दक्षिण में सर्वाधिक प्रभाव अलाउद्दीन खिलजी का रहा। वह आधिपत्य उसके व्यक्तिगत साहस के कारण रहा। मुहम्मद तुगलक के शासन में दक्षिणी राज्य भी उत्तरी भारत के राज्यों की भांति दिल्ली सल्तनत से मुक्त होने लगे। उनमें बहमनी और विजयनगर दो राज्य प्रमुख हैं।

बहमनी राज्य—दक्षिणी भारत के लोग दिल्ली के सुल्तानों से सदैव अप्रसन्न रहे। हिन्दू लोग तो उनकी धार्मिक असहिष्णुता के कारण विरुद्ध थे तथा मुसलमान

विदेशी थे और शिया धर्म के मानने वाले थे। अतः वे भी दिल्ली के सुन्नी मुसलमान शासकों से अप्रसन्न ही थे। अतः चौदहवीं शताब्दी के मध्य में देवगिरी के मुसलमानों ने इस्माइल मख के नेतृत्व में बगावत कर दी। जब बगावत को बिना दबाये ही मुहम्मद तुगलक गुजरात चला गया तो बागी स्वतन्त्र हो गये और उन्होंने इस्माइल मख को अपना सुल्तान घोषित कर दिया।

इस्माइल मख वृद्धावस्था के कारण तथा विलासी होने के कारण शासन-भार संभालने के लिए असमर्थ था। अतः उसने राज्य का भार हसन गंगू को सौंप दिया। हसन गंगू का जन्म १२६० ई० में हुआ था। वह आरम्भ में दिल्ली के एक ब्राह्मण के यहां नौकरी करता था। ब्राह्मण ने भविष्यवाणी की थी कि वह एक दिन सुल्तान बनेगा। ब्राह्मण की अनुकम्पा के कारण हसन मुहम्मद तुगलक की सेना में सैनिक हो गया। मुहम्मद तुगलक हसन से अति प्रसन्न था। इस कारण उसने देवगिरी रहने का आदेश दिया था। हसन एक योग्य व मिलनसार व्यक्ति था। उसने वहां के व्यक्तियों से अच्छा सम्पर्क बना लिया था। अतः अवसर पाने पर वह १३४७ ई० में हसन अब्दुल मुज़फ्फर अलाउद्दीन बहमनशाह के नाम से सुल्तान बना।

बहमनी नाम कैसे पड़ा ?—फरिश्ता कहता है कि हसन ने अपने प्राचीन स्वामी ब्राह्मण के प्रति कृतज्ञता व्यक्त करने की दृष्टि से इस नव निर्मित राज्य का नाम बहमनी रखा था। परन्तु कर्नल हेग की मान्यता है कि उसने इस राज्य का नाम फारस के शाह स्फन्दयार के पुत्र बहमन के नाम पर रखा था। इसका कारण यह बताया जाता है कि हसन अपने को इसी का वंशज मानता था।

जब हसन सुल्तान बना था उस समय उसकी आयु ५७ वर्ष की थी। उसने अपने स्वामी ब्राह्मण को अपना मंत्री बनाया था। इसने राज्य को सुव्यवस्थित करने के लिए उसे चार भागों में विभक्त कर दिया। सूबेदारों को अधिक शक्तिशाली होने से बचाने के लिए वह स्वयं उनका समय समय पर दौरा करता रहता था। उसके काल में जो विद्रोह हुए उन्हें चतुराई से दबा दिया गया। योग्यता से शासन संचालित करता हुआ वह १५३८ ई० में इस दुनियां से चल बसा।

मुहम्मद शाह प्रथम—हसन की मृत्यु पर उसका पुत्र मुहम्मद शाह प्रथम सुल्तान बना। उसने अपना समस्त काल विजयनगर के हिन्दू नरेश से संघर्ष करने में व्यतीत किया। उसने वारंगल के हिन्दू नरेश को भी परास्त किया था। उसका शासन कठोर था। वह दुराचारियों का दमन निर्दयता से करता था। उसने शासन को सुचारू रूप से चलाने हेतु आठ मन्त्रियों की एक परिषद बनाई। उसकी १३७५ ई० में मृत्यु होगई।

मुजाहिद शाह—मुहम्मद शाह की मृत्यु हो जाने पर उसका बड़ा पुत्र

मुजाहिद गद्दी पर बैठा। उसने भी अपने पिता की भांति विजयनगर के राजा से संघर्ष किया। इस संघर्ष का परिणाम उसके लिए घातक सिद्ध हुआ। वह अपने चाचा द्वारा मौत के घाट उतार दिया गया। मुजाहिद शाह का व्यवहार अमीरों के साथ अच्छा न था। उसकी फारसी तथा तुर्की अमीरों पर विशेष कृपा रहती थी। इस कारण दक्षिणी भारत के अमीर उसे सन्देह की दृष्टि से देखने लगे।

मुहम्मद शाह द्वितीय—जब १३७८ ई० में मुजाहिद शाह कत्ल कर दिया गया तो मुहम्मद शाह द्वितीय सुल्तान बना। वह एक शान्ति प्रिय सुल्तान था। अतः उसके शासन काल में कोई संघर्ष नहीं हुआ। शान्ति के कारण राज्य में साहित्य व कला की पर्याप्त् उन्नति हुई। वह स्वयं विद्या प्रेमी तथा विद्वान था। इसलिए वह अपने राज्य का अरस्तु कहा जाता है। जनता भी उसे प्रेम करती थी। १३९७ ई० में उसका ज्वर के कारण देहान्त हो गया।

इसकी मृत्यु के उपरान्त गयासुद्दीन तथा शम्सुद्दीन क्रमशः बहमनी राज्य के सुल्तान बने। गयासुद्दीन एक चिड़चिड़े स्वभाव का व्यक्ति था। उसका शासन-काल अराजकता व क्रान्तियों का काल कहलाता है। शम्सुद्दीन भी एक निर्बल तथा मन्द बुद्धि शासक था। ये दोनों शासक अन्धे करके मार दिये गये।

फीरोजशाह—शम्सुद्दीन के मारे जाने पर फीरोजशाह १३९७ ई० में सुल्तान बना और उसने १४२२ ई० तक राज्य किया। यह इस वंश का आठवाँ सुल्तान था। इसके शासनकाल में बहमनी राज्य का पर्याप्त उत्कर्ष हुआ। वह दयालु, उदार एवं निष्पक्ष शासक था। उसने उच्च पदों पर ब्राह्मणों को नियुक्त किया। उसने भी विजयनगर व वारंगल के हिन्दू नरेशों को परास्त किया। धर्मान्धता से वह भी नहीं बच सका। अन्तिम दिनों में वह भी विलासी होगया था। उसका हरम विभिन्न जाति की सैकड़ों स्त्रियों से परिपूर्ण था। कुछ भी हो वह एक अच्छा निर्माता था। उसने फीरोजाबाद का नगर बसाया तथा गुलबर्गा को भव्य प्रासादों से अलंकृत किया।

उसकी मृत्यु पर उसका पुत्र हसनशाह सुल्तान बना। परन्तु वह एक निर्बल तथा विलासी सम्राट था। अत: अमीरों ने उसके स्थान पर अहमदशाह को सुल्तान बनाया।

अहमदशाह—अहमदशाह १४२२ में सुल्तान बना। उसने भी अपने पूर्वजों की भांति विजयनगर के विरुद्ध संघर्ष किया और वहां के नरेश देवराय को २० हजार स्त्री पुरुषों के कत्ले आम के उपरान्त अपनी आधीनता स्वीकार करने को वाध्य कर दिया। वह साम्राज्यवादी मनोवृत्ति का सुल्तान था। अत: उसने वारंगल पर आक्रमण कर वहां काकतीय वंश की स्वतन्त्रता को सदैव के लिए नष्ट कर दिया और मालवा पर आक्रमण कर होशंगशाह को परास्त किया। अपने विस्तीर्ण साम्राज्य की सुरक्षा के लिए

उसने गुलबर्गा के स्थान पर बीदर को राजधानी बनाया। मीडोज टेलर का कहना है कि **"राजधानी का बदलना ठीक था। एक तो बीदर का जलवायु अच्छा था, दूसरे किलेबन्दी एवं युद्धनीति की दृष्टि से इसका महत्त्व अधिक था।"** अहमदशाह भी एक क्रूर एवं अन्धविश्वासी शासक था। उसकी १४३५ ई० में मृत्यु होगई।

अलाउद्दीन—अहमदशाह की मृत्यु के पश्चात उसका पुत्र जफरखां अलाउद्दीन के नाम से सुल्तान बना। उसके समय में उसके भ्राता मुहम्मद की सहायता से विजय-नगर के नरेश देवराय द्वितीय ने रायचूर के दोआब पर आक्रमण किया था। अलाउद्दीन ने विजयनगर के राजा को परास्त कर दिया। परन्तु उसके शासन-काल में ही मुसलमानों में पारस्परिक वैमनस्य के बीज अंकुरित होने लग गये थे। यद्यपि वह एक विलासी शासक था। परन्तु वह प्रजाहित में उदासीन नहीं रहता था। अपराधियों को दण्ड कड़ा देता था। उसकी १४५७ में मृत्यु होगई।

हुमायूँ—हुमायूँ अलाउद्दीन का सबसे छोटा पुत्र था। अपने पिता के स्वर्गवास होने पर वह सुल्तान बना। यद्यपि वह एक उच्च कोटि का विद्वान था। उसका स्वभाव उग्र तथा क्रूर था। कहते हैं कि जब अमीर उसे प्रातः सलाम करने जाते तो वे अपने स्त्री बच्चों से अन्तिम विदा लेकर चलते थे। उन्हें वापिस लौटने में सदैव शंका बनी रहती थी। एक इतिहासकार का कहना है कि **उसका जालिम क्रोध हिन्दू और मुसलमान किसी को नहीं छोड़ता था, अपराधी और निर्दोषी दोनों ही उसकी चक्की में पिसते थे और एक के कसूर करने पर समस्त परिवार को मौत के घाट उतार दिया जाता था।** इसलिए वह इसिहास में 'जालिम हुमायूँ' के नाम से विख्यात है।

निजामशाह—नौ या दस वर्ष की आयु में पिता की मृत्यु पर उसके पुत्र निजामशाह को बहमनी का सुल्तान बनने का अवसर प्राप्त हुआ। उसकी माता मखदूमजहां ने उसे शासन-संचालन में सहयोग दिया। परन्तु उसकी अल्प आयु का लाभ उठाकर उड़ीसा तथा तेलंगाना के हिन्दू नरेशों ने उस पर आक्रमण कर दिया। महमूद गवां की सहायता से उसने अपनी तथा अपने राज्य की रक्षा की और १४६३ ई० में इस दुनियां से चल बसा।

मुहम्मदशाह तृतीय—निजामशाह के मरने के अनन्तर मुहम्मद शाह तृतीय सुल्तान बना। यह बहमनी सुल्तानों में अन्तिम महान शासक था। उसने भी बहमनी राज्य को बढ़ाया तथा सुरक्षित किया। उसके शासनकाल में बहमनी राज्य अपनी उन्नति की चरम सीमा पर पहुँच गया था। उसके शासन-काल में सत्ता वास्तव में महमूद गवां के हाथों में थी।

महमूद गवां एक योग्य एवं अनुभवी प्रबन्धक था। वह फारस में जन्मा था।

उसके पूर्वज गिलन के शाह के मन्त्री रह चुके थे। वह भारत में एक सौदागर के रूप में आया था। उसकी प्रतिभा एवं योग्यता पर रीझ कर हुमायूँ ने इसे अपने यह नौकरी दी। अल्पवयस्क निजामशाह के काल में इसे सत्ता प्राप्त हुई और मुहम्मद शाह तृतीय ने इसे अपना प्रधानमन्त्री नियुक्त किया। उसने २५ वर्ष तक बहमनी सुल्तानों की सेवा की।

महमूदशाह—सन १४८२ ई० में जब सुल्तान महमूद इस लोक से चल बस तो उसका बारह वर्षीय पुत्र महमूदशाह सुल्तान बना। राज की बागडोर उसके मन्त्री बरीद के हाथ में थी और वह स्वयं एक विलासी जीवन व्यतीत करता था। उसके राज्य-कार्यों के प्रति उदासीन रहने के कारण आसपास के सूबेदार धीरे धीरे स्वतन्त्र होने लगे। उसका शासन काल निरन्तर हत्याओं व षडयन्त्रों का काल था। उसने १५१८ ई० में इस दुनियाँ से विदा ली।

उसकी मृत्यु पर उसका पुत्र कलीमुल्लाह सुल्तान बना। वह भी अपने पिता की भाँति नाम मात्र का शासक रहा। सन् १५२६ ई० में उसके मन्त्री बरीद ने उसे गद्दी छोड़ कर बीजापुर भागने के लिए बाध्य कर दिया। वह इस वंश का अन्तिम शासक था। इस प्रकार बहमनी साम्राज्य छिन्न भिन्न हो गया और वह मुख्य रूप से पांच प्रान्तों में विभक्त हो गया। अहमद नगर, बीजापुर और बरार बहमनी राज्य के ही भाग थे। सन् १५१२ ई० में गोलकुण्डा की नींव पड़ी थी। यद्यपि बहमनी साम्राज्य लगभग पौने दो सौ वर्ष (१३४७ ई० से १५२६ ई०) तक रहा परन्तु इस दीर्घ काल में भी इस साम्राज्य का भारत पर विशेष प्रभाव न पड़ा। डाक्टर वी. ए. स्मिथ ने लिखा है—**"यह ठीक-ठीक बताना कठिन है कि इस वंश की भारत को क्या देन है या उससे भारत को किस रूप में लाभ पहुँचा है।"**

विजय नगर राज्य—अलाउद्दीन के सेना नायक मलिक काफूर ने दक्षिण में रामेश्वरम् तक मुस्लिम साम्राज्य की स्थापना कर दी थी और मुहम्मद तुगलक ने दक्षिण को अपने साम्राज्य में बनाये रखने के लिए ही दौलताबाद को अपनी राजधानी बनाना चाहा था। परन्तु इस काल तक दक्षिणी भारत के हिन्दुओं को यह स्पष्ट हो चुका था कि यदि दक्षिणी भारत में बढ़ते हुए मुस्लिम प्रभाव को न रोका जावेगा तो उत्तरी भारत की तरह दक्षिण के हिन्दुओं की राजनीतिक स्वतन्त्रता के साथ साथ धार्मिक स्वतन्त्रता भी नष्ट हो जावेगी। इस कारण दक्षिण के हिन्दू हरिहर और बुक्का के नेतृत्व में संगठित होने लगे। इन दोनों भ्राताओं को यह प्रेरणा तत्कालीन धर्म गुरु 'माधव' तथा प्रख्यात विद्वान 'सादण' से प्राप्त हुई थी। ये दोनों भ्राता संगम नामक व्यक्ति के पुत्र थे और आरम्भ में द्वार समुद्र के होयसल-वंशीय राजा की सेवा में थे। हरिहर ने विजय नगर की नींव रखी थी जो कालान्तर में दक्षिण का एक महान स्वतन्त्र राज्य बन गया। कई इतिहासकार यह भी मानते हैं कि नगर की नींव

होयसल वंशीय नरेश बल्लाल तृतीय ने रखी थी और हरिहर ने उसे पूर्ण किया था।

हरिहर—तुङ्गभद्रा नदी के तट पर विजयनगर जैसे सुन्दर एवं सुरक्षित नगर को बसा कर हरिहर ने अपना साम्राज्य बढ़ाना चाहा। इस नगर की सुरक्षित स्थिति पर एक एतिहासकार कहता है—**हेमकूट इसके लिए परकोटे का काम करता था, तुङ्गभद्रा खाई का काम देती थी, इसका रक्षक विश्वरक्षक विरूपाक्ष और शासक राजाओं का राजा हरिहर था।**" हरिहर ने १३३६ ई० में नवीन राज्य की स्थापना का प्रयास किया था और वह १३४३ ई० में ही इस दुनियां से विदा हो गया था। इस तरह यद्यपि हरिहर अल्प समय के लिए ही एक नरेश के रूप में रह सका परन्तु फिर भी उसने विजयनगर राज्य की नींव भली भांति अवश्य लगा दी थी।

बुक्का—हरिहर की मृत्यु के उपरान्त राज्य का कार्यभार उसके छोटे भ्राता बुक्का पर पड़ा। बुक्का एक योग्य शासक व उच्च कोटि का सेना नायक था। बुक्का ने अपने साम्राज्य का विस्तार करना आरम्भ किया। उत्तर में तो बहमनी राज्य के कारण वह साम्राज्य विस्तार नहीं कर सका पर दक्षिण में उसका राज्य समुद्र तक पहुँच गया। हिन्दू नरेश बिना संघर्ष किये उसकी अधीनता मानने को उद्यत हो गये। वह अपने पुत्र कम्पन की सहायता से कांजीवरम् के समीप के भाग को तथा मदुरा के सुल्तान को अपने प्रभुत्व में लाने में सफल हुआ। विजेता के अलावा बुक्का एक निर्माता तथा स्थापत्यकला प्रेमी भी था। उसने श्रीरंगम तथा मदुरा को नवीन एवं भव्य देवालयों से अलंकृत किया। हिन्दू प्रेम में अनुराग रखने के कारण उसने तामिल देश में पुनः हिन्दू धर्म का प्रचार किया। बुक्का की वीरता एवं योग्यता की धाक इतनी जम गई थी कि उसने १३७५ ई० में एक राजदूत चीन सम्राट के दरबार में भेजा था। इस प्रकार योग्यता से शासन संचालित करते हुए उसकी १३७६ ई० में मृत्यु हो गई।

हरिहर द्वितीय—जब बुक्का इस दुनियां में न रहा तो हरिहर द्वितीय विजयनगर का नरेश बना। वास्तव में संगम वंश का प्रथम नरेश यही था। उसने महाराजाधिराज की उपाधि धारण की। आरम्भ में इसका शासन-काल शान्तिमय व्यतीत हुआ क्योंकि बहमनी राज्य का सुल्तान उस समय मुहम्मदशाह था जो कि एक शान्तिप्रिय सुल्तान था। अतः इस शान्त वातावरण में हरिहर द्वितीय को अपना साम्राज्य बढ़ाने का अवसर प्राप्त हो गया। उसने मैसूर, चिंगलपुर और त्रिचनापल्ली स्थानों को अपने राज्य में मिला लिया। उसने गोआ में स्थित मुसलमानों को भी वहां से खदेड़ने का प्रयास किया। परन्तु जब फीरोजशाह बहमनी का सुल्तान बन गया तो स्थिति बदल गई। विजयनगर और बहमनी राज्य में संघर्ष आरम्भ हो गया और इसका परिणाम विजयनगर की पराजय में निकला। इस पराजय के उपरान्त हरिहर द्वितीय भी १४०४ ई० में इस लोक से चल बसा।

देवराय प्रथम—हरिहर की मृत्यु होते ही उसके दो पुत्रों में सिंहासन प्राप्ति के लिए संघर्ष हुआ और अन्त में देवराय अपने भ्राता बुक्का द्वितीय को परास्त कर विजयनगर का राजा बना। यह एक विलासी राजा था। निहाल नामक स्त्री के मामले पर विजयनगर और बहमनी राज्य में संघर्ष पुनः आरम्भ हो गया। इस बार भी संघर्ष का परिणाम विजयनगर के लिए हानिप्रद सिद्ध हुआ। देवराय को अपनी पुत्री फीरोजशाह को देनी पड़ी। इस पर भी युद्ध की अग्नि शान्त न हुई और १४०२ ई० में फिर इन दोनों राज्यों के बीच लड़ाई छिड़ गई। यह सत्य है कि इस लड़ाई में विजयश्री विजयनगर के नरेश के साथ रही और विजयनगर की सेना ने बहमनी राज्य को बुरी तरह नष्ट भ्रष्ट कर दिया, पर आगे चलकर इसका परिणाम भी विजयनगर के लिए घातक सिद्ध हुए। १४२२ ई० में अटल काल ने देवराय प्रथम को दबोच डाला।

विजयराय—देवराय प्रथम की मृत्यु के उपरान्त विजयराय विजयनगर के सिंहासन पर बैठा। उसका शासन अति अल्पकालीन रहा और उसके शासन-काल में कोई विशेष घटना भी नहीं घटी।

देवराय द्वितीय—देवराय द्वितीय को गद्दी पर बैठते ही बहमनी राज्य की सेना का मुकाबला करना पड़ा। १४२० ई० के आक्रमण का बदला फीरोजशाह ने अब लिया। विजयनगर के निहत्थे हजारों स्त्री व बच्चे मौत के घाट उतार दिए गये। इस पराजय से देवराय द्वितीय हताश नहीं हुआ। उसने अपनी सेना को भी मुस्लिम ढंग से संगठित करना आरंभ किया। मुस्लिम सैनिक भी सेना में भर्ती किये गये। परन्तु जब १४४३ ई० में पुनः बहमनी राज्य से लड़ाई हुई तो अभाग्यवश देवराय को पुनः मुँह की खानी पड़ी। अन्त में विवश होकर देवराय द्वितीय ने बहमनी राज्य की आधीनता स्वीकार करली।

देवराय द्वितीय विजयनगर के अच्छे शासकों में गिना जाता है। १४२१ ई० में इटली यात्री निकोली कौन्टी तथा १४४३ ई० में फारस का राजदूत अब्दुर्ररजाक भारत आये थे। दोनों यात्रियों ने विजयनगर की भूरि भूरि प्रशंसा की है। इटली निवासी निकोली कौन्टी ने विजयनगर की तत्कालीन सामाजिक तथा आर्थिक अवस्था पर अच्छा प्रकाश डाला है। वह लिखता है कि **विजयनगर का महाराजा भारत के अन्य सभी राजाओं से अधिक शक्तिशाली था……।**" अब्दुर्ररजाक लिखता है—"**विजयनगर एक ऐसा शहर है जिसका सानी पहले कभी देखने में नहीं आया न कभी सुना गया कि इस तरह का कोई दूसरा शहर दुनियां में और कहीं है।**" इस प्रकार से हम देखते हैं कि देवराय द्वितीय के शासन-काल तक विजयनगर पर्याप्त उन्नति कर चुका था। उसके समय में व्यापार व साहित्य भी काफी उन्नत हुआ। वह भी १४४६ ई० में अपनी जीवन-लीला समाप्त कर इस दुनिया से सदैव के लिए चला गया।

अन्तिम उत्तराधिकारी—देवराय द्वितीय इस वंश का अन्तिम महान शासक था। उसकी मृत्यु के उपरान्त अल्लिकार्जुन तथा विरुपाक्ष दो उत्तराधिकारी विजयनगर की गद्दी पर बैठे। वे दोनों निर्बल एवं अयोग्य सिद्ध हुए। अतः इनके शासन-काल में राज्य में अराजकता अपने पांव पसारने लगी और चारों ओर उपद्रव होने लगे। इस अराजकता का फायदा उठा विरुपाक्ष के मन्त्री नरसिंह सलुव ने १४८६ में विजयनगर पर अधिकार कर लिया।

सलुव वंश—नरसिंह इस वंश का प्रथम राजा था। वह एक वीर योद्धा तथा योग्य शासक था। उसने सब उपद्रवों को शान्त किया तथा प्रजा को सुखी बनाने का प्रयास किया। इस कारण प्रजा उससे पूर्ण सन्तुष्ट थी। उसकी मृत्यु के उपरान्त उसका पुत्र इमादी नरसिंह राजा बना। वह एक अच्छा व समझदार शासक न था। इस कारण राज्य की सत्ता उसके हाथों में न होकर उसके सेनानायक नरसनायक के हाथ में थी। नरसनायक की मृत्यु के बाद सत्ता उसके पुत्र वीर नरसिंह के हाथ चली गई। उसने सलुव वंश की समाप्ति कर तुलुव वंश की स्थापना की।

तुलुव वंश—वीर नरसिंह इस वंश का प्रथम राजा था। परन्तु उसकी मृत्यु शीघ्र ही होगई और उसका स्थान उसके छोटे भाई कृष्णदेव राय ने लिया। उसके गद्दी पर बैठने के समय विजयनगर की अवस्था अति शोचनीय थी। इसने उसमें आशातीत सुधार किया। इसी कारण उसकी गिनती विजयनगर के शासकों में ही नहीं वरन् भारत के महान शासकों में होती है। उसने आसपास के विरोधी नरेशों को परास्त कर विजयनगर के उत्कर्ष में पर्याप्त योग दिया। परन्तु १५२६ ई० में जब उसकी मृत्यु होगई तो उसका भाई अच्युत उसका उत्तराधिकारी बना। वह भी अयोग्य शासक था। उनकी मृत्यु पर उसके भाई का पुत्र सदासिव राजा बना। उसके अयोग्य होने के कारण राज्य सत्ता उसके महत्वाकांक्षी मंत्री रामराव के हाथ चली गई। जब वह १५६५ ई० में तालीकोटा की लड़ाई में मुसलमानों से हार गया तो विजयनगर का नाश होगया।

तत्कालीन भारतीय जीवन

पण्डित जवाहरलाल नेहरू ने 'भारत की खोज' में लिखा है कि तुर्क आक्रमण के समय विदेशी थे। परन्तु जब उन्होंने भारत में शासन करना आरम्भ कर दिया तो वे अपने को जड़ से भारतीय समझने लगे और भारत के अतिरिक्त अन्य देशों को उन्होंने विदेशी समझा। इसी प्रकार भारतवासियों ने मुसलमानों को आरम्भ में विदेशी आक्रमणकारी समझा। परन्तु जब वे उनको भारत से निकालने में असमर्थ रहे तो उनके निष्ठुर तथा दुराचारी होते हुए भी उनको अपना पड़ोसी समझने लगे। इस प्रकार जब लगभग तीन सौ वर्ष तक भारत मुसलमानों द्वारा शासित होता रहा तो भारतवासियों तथा मुसलमानों के जीवन में आपसी रहन सहन तथा आचार विचार में

समन्वय होना स्वाभाविक है। प्रो० मार्शल का कहना है—**"मानवता के इतिहास में दो व्यापक और समुन्नत किन्तु भिन्न सभ्यताओं के परस्पर मेल का ऐसा दृश्य कहीं नहीं मिलता।"**

राजनीतिक जीवन—भारतवर्ष की राजनीतिक एकता तो हर्षवर्धन की मृत्यु के उपरान्त ही समाप्त हो गई थी और जो कुछ राजपूत कालीन राजनीतिक जीवन छोटे छोटे प्रदेशों में विभक्त भारत में विद्यमान था वह अन्तिम हिन्दू नरेश पृथ्वीराज चौहान की पराजय के पश्चात समाप्त हो गया। भारत में मुस्लिम सत्ता का प्रारम्भिक काल था। परन्तु इस अपरिपक्व राजनीतिक अवस्था का भी भारतवासियों पर प्रभाव पड़ा, क्योंकि हम देखते हैं कि समाज और जीवन राजनीतिक परिस्थितियों और तत्कालीन शासन-व्यवस्था से प्रभावित होता है।

दिल्ली के सुल्तान स्वतन्त्र एवं स्वेच्छाचारी थे। वे निरंकुश होकर शासन करते थे। यही कारण था कि उन्होंने खलिफाओं का नियंत्रण अङ्गीकार करना शनैः शनैः समाप्त कर दिया था। यद्यपि सुल्तान कुछ मन्त्रियों की भी नियुक्तियां करते थे परन्तु वे मन्त्री केवल सलाहकार के रूप में होते थे। अन्तिम निर्णय सुल्तान का ही माना जाता था। इसलिए हम एस० आर० शर्मा के शब्दों में कह सकते हैं कि वास्तव में भारत में मुस्लिम राज्य सभी अर्थों में स्वाधीन होता था और सुल्तान सारी प्रशासनात्मक व्यवस्था में रोडा होता था। कर्मचारियों की नियुक्तियों में उसकी अनुकम्पा ही नियुक्त होने वाले अमीरों की योग्यता मानी जाती थी। अमीरों का अस्तित्व सुल्तान की इच्छा पर आधारित होता था। अतः सुल्तान राज्य का सर्वेसर्वा होता था। वही सम्पूर्ण शक्ति तथा न्याय का स्रोत होता था। वह राज्य का प्रभुत्व-सम्पन्न प्रमुख तथा सेना का अध्यक्ष होता था। उसकी इच्छा ही कानून थी।

मुस्लिम शासन धर्म पर आधारित था। उलेमा लोग सुल्तान के सलाहकार होते थे। न्याय काजी करते थे। अतः हिन्दू लोगों को काफर कह कर पुकारते थे और उन्हें मारना वे अल्लाह की नाजा का पालन करना समझते थे। राजनीतिक अधिकारों से उन्हें वंचित रखा जाता था। राज्य में उच्च पद उन्हें नसीब न थे। अधिकांश सुल्तान इसी धारणा के थे कि हिन्दुओं को इतना दीन बना दिया जावे कि उन्हें दोनों वक़्त भोजन नसीब न हो। घुड़सवारी को वे अपने सामर्थ्य के बाहर समझें। अलाउद्दीन कहा करता था कि मैं इन हिन्दुओं को मेरे भय से भयभीत इस प्रकार घरों में घुसा देखना चाहता हूं जिस प्रकार कि बिल्ली के भय से चूहे बिलों में घुस जाते हैं। अतः हम देखते हैं कि इन दिनों में हिन्दुओं का राजनीतिक जीवन में कुछ प्रभाव न रहा था।

राज्य कई प्रांतों में विभक्त होता था। यद्यपि उनके सूबेदारों की नियुक्ति स्वयं सुल्तान करता था और उन्हें हटाना भी सुल्तान के हाथ में निहित था परन्तु ये सूबेदार

सुल्तान को कर देकर अपने को अन्य कार्यों में पूर्ण स्वतंत्र समझते थे। इनके पास खुद की सेना होती थी, जिस पर सुल्तान को भी निर्भर रहना पड़ता था। इसी कारण ये सूबेदार लोग अक्सर स्वतन्त्र होने का प्रयास करते थे, क्योंकि उन दिनों में राज्य-सिंहासन का कोई नियम न था। शक्ति ही शासक की कसौटी होती थी। राजनीतिक जीवन में यह सब परिवर्तन होते हुए भी भारत के प्राचीन स्थानीय स्वराज्यीय संस्थाओं पर मुस्लिम शासन का कुछ प्रभाव न पड़ा।

आर्थिक जीवन—मुसलमान भारत के शासक बन गये थे। अतः उनके हाथ भारत का अतुल धन लगा। मुस्लिम शासकों ने हिन्दू जनता से करों के रूप में खूब धन इकट्ठा किया। भूमि कर, धार्मिक कर (जजिया) उस समय के प्रमुख कर थे। जजिया तो उस समय मुस्लिम शासकों की आय का तथा हिंदुओं को अपमानित करने का प्रमुख साधन था। भूमि कर की दर उस समय १/३ से लेकर १/२ तक थी। अलाउद्दीन खिलजी तथा मुहम्मद तुगलक ने भूमि कर ५० प्रतिशत वसूल किया। इसके अलावा लूट तथा लावारिसों की सम्पत्ति को जब्त कर लेना भी दिल्ली के सुल्तानों की आमद का एक अच्छा साधन था। लूट के माल से तो सुल्तान क्या, कभी कभी तो सैनिक भी धनवान हो जाता था। परन्तु उन्होंने यह धन प्रजाहित में व्यय न कर अपने आमोद-प्रमोद में व्यय किया। यही कारण था कि उनका जीवन विलासी बन गया था और उधर हिन्दू लोग निरे दरिद्र बन गये थे। जैसा कि हम पहले लिख आये हैं हिन्दू औरतों को मुसलमानों के यहां निम्नकोटि के कार्य करने को बाध्य होना पड़ा था। देश का व्यापार तब भी हिंदुओं के हाथ था। व्यापार बराबर उन्नत होता जा रहा था। अतः हिंदू व्यापारियों की आर्थिक अवस्था अधिक शोचनीय नहीं हुई थी। कृषि की अवस्था इनके आक्रमण के कारण तथा सिंचाई के साधनों को उपलब्ध न बनाने के कारण अवनत हुई और उनका शोषण भी सर्वाधिक हुआ। इसलिए तत्कालीन विख्यात कवि अमीर खुसरो ने लिखा है कि "**शासकों के मुकुट का हर मोती किसानों के रक्त बिंदुओं से बना है।**" गृह उद्योग धन्धे निरन्तर विकसित होते रहे।

सामाजिक-जीवन—यद्यपि भारतवासियों के जीवन में इस काल में कोई महान परिवर्तन नहीं हुआ परन्तु सैकड़ों वर्षों के सहवास से मुस्लिम जीवन का भारतवासियों पर प्रभाव पड़ा और हिन्दुओं का मुसलमानों पर। हिन्दुओं की राजपूत कालीन सामाजिक अहमन्यता अब क्षीण होने लगी। मुसलमान तो प्रारंभ में हिन्दू-सभ्यता को समाप्त करने पर तुले थे। लाखों हिन्दुओं को यवन बनाया और हजारों देवालयों को धराशायी किया। कत्लेआम तथा जबरन धर्म परिवर्तन के पश्चात भी जब वे भारत को मुसलमानों का देश न बना सके तो उन्होंने शान्ति से उनके साथ रहने का प्रयास किया। जब मुसलमानों ने जबरन हिन्दू स्त्रियों से शादी करना आरंभ किया तो उन हिन्दू-स्त्रियों ने उनके हरम में हिन्दू रीति-रिवाजों का प्रचलन प्रारंभ किया और मसलमानों के [illegible]

हृदय में सरसता का संचार कर उनकी निष्ठुरता एवं कठोरता को कोमलता में परिणित करने का प्रयास किया। उधर हिन्दू-समाज पर इसका उलटा प्रभाव पड़ा। स्त्रियों ने अपनी इज्जत बचाने के लिए सति-प्रथा का सख्ती से पालन करना आरम्भ किया तथा उनमें पर्दा-प्रथा भी चालू होगई। माता-पिता ने अपनी इज्जत रखने के लिए अपनी पुत्रियों की बाल्यावस्था में ही शादी करना प्रारंभ किया। यद्यपि हिन्दुओं को अपनी जाति-प्रथा की हानियां स्पष्ट होने लगीं थी—परन्तु फिर भी अपने सामाजिक अस्तित्व को बनाये रखने के लिए उन्होंने जाति-प्रथा का दृढ़ता से पालन किया। जैसा कि सर जार्ज बर्डवर्ड ने कहा है—**जब तक हिन्दू जाति-प्रथा को कायम रखेंगे तब तक ही हिन्दुस्तान हिन्दुस्तान रहेगा और जब उन्होंने जाति-प्रथा का परित्याग किया कि हिन्दुस्तान हिन्दुस्तान नहीं रहेगा।**

धार्मिक जीवन—भारतवर्ष धार्मिक देश माना जाता है। भारतवासी सदा से धार्मिक रहे हैं और हिन्दू लोग सदा धार्मिक आचरण पर चलते आये हैं। परन्तु मुसलमानों के भारत पर आक्रमण तथा आक्रमण के समय बरती गई नीति ने हिन्दुओं की धार्मिक भावना को बड़ी ठेस पहुँचाई। जब महमूद गजनवी ने भारत की विख्यात् सोमनाथ की मूर्ति को मंत्रित कर दिया तो हिन्दुओं की मूर्ति-पूजा से कुछ श्रद्धा उठने लगी थी और उनको परमात्मा के अस्तित्व में कुछ शंका होने लगी थी। कहने का तात्पर्य यह है कि उनके धार्मिक जीवन में शनैः शनैः उदासीनता प्रवेश कर रही थी। फिर भी हिन्दुओं के हृदय में सदियों से जमा हुआ हिन्दू धर्म शीघ्रता से अपना स्थान नहीं छोड़ सका। इसके विपरीत धार्मिक भावना उनके हृदय में दृढ़ता से गहरी बैठती गई। हमारा इतिहास बताता है कि भारतीय संस्कृति की रक्षा सदैव महात्मा लोग करते आये हैं। अतः इस समय भी कुछ ऐसे महात्मा उत्पन्न हुए जिन्होंने हिन्दू-धर्म में प्रविष्ट बुराइयों को दूर कर भक्ति-प्रसार से उनके नीरस जीवन को सरस बनाने का प्रयास किया। महात्माओं के इस प्रयास को इतिहास में 'भक्ति आन्दोलन' का नाम देते हैं। यद्यपि यह भक्ति-मार्ग भारत में कोई नया मार्ग न था और उपनिषदों में इसका बीज मिलता है तथा गीता तथा भागवत में इसका विशद् विश्लेषण किया गया है। किन्तु विभिन्न समय पर विभिन्न धर्माचार्यों ने विभिन्न प्रकार से इस पर जोर दिया है। १३ वीं, १४ वीं तथा १५ वीं शताब्दी में भक्ति-आन्दोलन में सहयोग देने वाले निम्न महात्मा थे:—

रामानुजाचार्य—भक्ति आन्दोलन के प्रथम प्रवर्तक आचार्य रामानुज थे। उनका जन्म १०१६ ई० में कांजीवरम में हुआ था। रामानुज विशिष्ट द्वैतवादी थे। वे स्वामी शंकराचार्य द्वारा प्रतिपादित ब्रह्मात्मैक्यवाद से सन्तुष्ट नहीं थे। उन्होंने वैष्णव मत के आधार पर एकेश्वरवाद का प्रचार किया। उनका मन्तव्य था कि ईश्वर किसी शून्यता का नाम नहीं, किन्तु प्रेम तथा सौन्दर्य की मूर्ति को ही ईश्वर कहते हैं। उनका कहना था कि विष्णु सर्वेश्वर हैं और वे मनुष्य पर दया कर इस पृथ्वी पर जन्म

लेते रहते हैं। वे सगुण मार्गी थे। उन्होंने कई ग्रन्थ लिखे तथा अपने विचारों के लिए ७०० मठों की स्थापना की।

रामानन्द—रामानन्दजी ब्राह्मण कुल में उत्पन्न हुए थे। आप भी वैष्णव थे। परन्तु आप जाति प्रथा में विश्वास नहीं करते थे। इनकी समाज में सभी वर्ग के शिष्य थे। कबीरदास भी इन्हीं के शिष्य थे। इनके समय से पूर्व कृष्ण-भक्ति प्रधान बनी हुई थी। पर आप ने राम-भक्ति का प्रचार किया। इनके शिष्य ग्राम ग्राम में घूम कर राम-भक्ति का प्रचार लोक-भाषा हिन्दी में करने लगे।

कबीर—१३६८ ई० में आपका जन्म एक विधवा हिन्दू स्त्री से हुआ था। आपका पालन पोषण नीरू तथा नीमा नाम के एक मुस्लिम परिवार ने किया था। आप एक अच्छे सुधारक थे और अद्वैतवादी थे। ईश्वर की एकता में उनका अटल विश्वास था। वे निराकार निर्गुण ब्रह्म के उपासक थे। जाति प्रथा से आप भी घृणा करते थे और साथ में मूर्ति पूजा में भी आपकी आस्था न थी। वे अपनी स्पष्टवादिता के लिए विख्यात हैं। हिन्दू व मुसलमान दोनों को बाह्य आडम्बर के लिए आपने फटकारा है। कबीर को एक रहस्यवादी कवि माना जाता है। जब इनके प्रचार से सिकन्दर लोदी नाराज हो गया तो ये घूमते घूमते मगहर गये और वहीं पंच तत्व को प्राप्त हुए।

नामदेव—दक्षिण के भक्त कवियों में नामदेव का नाम अति विख्यात है। आप एक निम्न जाति के मराठा साधु थे। आपने जाति के बन्धनों की कटु आलोचना की। मूर्ति पूजा का विरोध करते हुए आपने ईश्वर की एकता पर जोर दिया। ईश्वर में उनकी भक्ति अटल थी तथा भक्ति को ही वे मोक्ष का प्रमुख साधन समझते थे।

गुरू नानक—कबीरदास की भांति गुरू नानक भी एक आदर्शवादी सुधारक थे। आपका जन्म १४६४ ई० में लाहौर के निकट तालबन्दी नामक ग्राम में हुआ था। इस्लाम धर्म की सादगी का आप पर गहरा प्रभाव पड़ा! आप भी एकेश्वरवादी थे और जाति-प्रथा को मान्यता नहीं देते थे। सिक्ख धर्म के आप प्रवर्तक थे। सन्यास धारण करने के उपरान्त आप अपने विचारों के प्रचार के लिए देश के विभिन्न भागों में घूमते रहे और १५३८ ई० में करतारपुर के समीप आप ने इस दुनियां से विदा ली।

वल्लभाचार्य—वैष्णवों की एक दूसरी शाखा के प्रधान पोषक श्री वल्लभाचार्य थे। आपका जन्म सन् १४७६ ई० में बनारस के समीप एक ब्राह्मण कुल में हुआ था। आप कृष्ण के महान भक्त थे तथा उन्हें विष्णु का अवतार मानते थे। आपने 'शुद्धाद्वैत' का प्रसार किया। उनकी मान्यता थी कि मोक्ष प्राप्ति के लिए पहले संसार से विरक्ति लेना आवश्यक है। इनके सिद्धान्तों का प्रचार विशेष रूप से बृजमण्डल, गुजरात तथा राजस्थान में हुआ।

चैतन्य महाप्रभु—बंगाल के महान सुधारकों में से आप थे। आपका जन्म १४८५ ई० में नदिया में हुआ था। आपने २५ वर्ष की आयु में वैराग्य ले लिया था। सन्त चैतन्य अपने विचारों का प्रचार करने के लिए इधर उधर घूमते रहे। आप भी जाति प्रथा से घृणा करते थे। आप कर्म से भी अधिक भगवान की भक्ति को स्थान देते थे। कृष्ण आपके इष्ट देव थे। आप जनसाधारण को भगवान श्रीकृष्ण की उपासना करने का उपदेश देते थे। आचरण की शुद्धता पर आप विशेष रूप से जोर देते थे। अपने विचारों का प्रचार करते करते आप १५३३ ई० में इहलोक को त्याग कर परलोक वासी बने।

भक्ति आन्दोलन १५ वीं शताब्दी में ही समाप्त नहीं हुआ वरन् आगे भी चलता रहा। महात्मा तुलसीदास, महात्मा सूरदास तथा मीराबाई ने इसका संचालन सफलतापूर्वक किया और भारतवासियों को भगवद्-भक्ति का पाठ पढ़ाया।

भक्ति आन्दोलन के प्रभाव—इस आन्दोलन के परिणामस्वरूप भारत में एकेश्वरवाद का प्रचार हुआ। हिन्दू धर्म में से मिथ्याडम्बर को दूर किया गया। किसी सीमा तक हिन्दू समाज में से ऊँच नीच की भावना भी कम हुई। निम्न वर्ण के लोगों को भी समाज में आदर मिलने लगा। संस्कृत के स्थान पर सरल हिन्दी भाषा का प्रयोग होने लगा। इस आन्दोलन से हिन्दू-समाज में एक नई स्फूर्ति उत्पन्न हुई जिसके कारण वे मुसलमानों के सामाजिक जीवन के आगे पूर्णतया घुटने नहीं टेक सके। इसका एक परिणाम यह भी निकला कि हिन्दुओं ने मुसलमानों को और मुसलमानों ने हिन्दुओं को समझने का प्रयास किया।

अध्ययन के लिए संकेत

तराई के युद्ध में (११९२) जब पृथ्वीराज परास्त हो गया तो भारत में तुर्कों का शासन स्थापित हुआ। अलाउद्दीन खिलजी के समय में मुस्लिम साम्राज्य लगभग समस्त भारत में फैल गया। परन्तु तुगलक वंश के समय यह राज्य छिन्न-भिन्न हो गया और भारत में कई स्वतन्त्र राज्य स्थापित हो गये। उनमें से प्रमुख निम्न हैं—

बंगाल—राजधानी से दूर होने के कारण यहां के सूबेदार बख्तियार खिलजी ने इसे स्वतन्त्र घोषित किया। बलबन ने उसे पुनः अपने आधीन कर अपने लड़के बुगराखां को सूबेदार नियुक्त किया। मुहम्मद तुगलक के शासन-काल में यह पुनः स्वतन्त्र हो गया और फीरोज के प्रयत्न करने के उपरान्त भी यह स्वतन्त्र रहा। इलियास स्वतन्त्र बंगाल का अयोग्य शासक था।

जौनपुर—यह नगर मुहम्मद तुगलक की स्मृति में फिरोज ने बसाया था। उसके मुख सूबेदार ख्वाजाजहां ने ही इसे स्वतन्त्र सूबा बना लिया था। उसके दत्तक पुत्र

मुबारकशाह तथा उसके भ्राता इब्राहीम शमसुद्दीन के शासन काल में जौनपुर ने पर्याप्त प्रगति की। यहां कई मुस्लिमकालीन बड़ी २ इमारतें आज भी मौजूद हैं।

मालवा:—इल्तुतमिश प्रथम मुस्लिम सम्राट था जिसने मालवा को अपने अधीन किया था। सन् १४०१ में फिरोजखां द्वारा नियुक्त सूबेदार दिलावरखां ने अपने को मालवा का स्वतन्त्र शासक घोषित कर दिया।

खानदेश:—दक्षिण भारत में एक महत्वपूर्ण राज्य था। फिरोज तुगलक के सूबेदार फारुखी ने इसको अपने अधीन एक स्वतन्त्र राज्य बना लिया और सन १५१० तक उसके वंशज यहां राज्य करते रहे।

काश्मीर:—काश्मीर की भौगोलिक स्थिति ने उसे स्वतन्त्र राज्य बनाने में बहुत सहायता दी है। इस कारण १३ वीं शताब्दी तक यह एक स्वतन्त्र हिन्दू राज्य बना रहा। १४ वीं शताब्दी में कन्धार के शाह ने काश्मीर को लूटा और १३४६ में शाह मिर्जा ने हिन्दू नरेशों को पदच्युत कर दिया। वह स्वयं वहां का स्वतन्त्र शासक बन बैठा।

सिन्ध:—१३ वीं शताब्दी में दास वंश के शासकों ने इसे अपने आधीन कर लिया था। पर १३४६ में जाम वंशीय राजपूतों ने इसे पुन: एक स्वतन्त्र राज्य बना लिया। १५२० ई० में कन्धार के शासक ने इसकी स्वतन्त्रता को पुन: नष्ट कर दिया।

बहमनी राज्य—यह राज्य मुहम्मद तुगलक के शासन काल में इस्माइल मख के नेतृत्व में स्वतन्त्र हुआ था। इस्माइल मख ने अपने को अयोग्य समझ राज्य का भार हसन गंगू को दिया। इसके उपरान्त बहमनी राज्य निरन्तर उन्नति करता गया।

विजयनगर राज्य—दक्षिण में बढ़ते हुए मुस्लिम प्रभाव से हिन्दू चिन्तित थे। अत: दक्षिण के हिन्दू अपने धर्म की रक्षा के निमित्त हरिहर और बुक्का इन दोनों भ्राताओं के नेतृत्व में संगठित हुए। विजयनगर की स्थापना करने वाले ये ही दोनों भाई थे।

दिल्ली सल्तनत के समय भारतीय जीवन

राजनीतिक:—शासक निरंकुश थे। मुस्लिम शासक धर्म के आधार पर शासन करते थे। राजपूत शक्ति का ह्रास हो चुका था। मुस्लिम राज्य कई प्रान्तों में विभक्त था। निर्बल सुल्तान के समय में सूबेदार अपने को स्वतन्त्र बनाने का प्रयास कर रहे थे।

आर्थिक:—लूट के माल से मुस्लिम शासक व मुस्लिम सेना दोनों धनी होते थे। मुसलमानों का जीवन विलासी था। हिन्दुओं का आर्थिक जीवन शोचनीय था। वे करों के भार से दबे रहते थे। हिन्दू औरतों को मुसलमान अमीरों के कार्य करने को बाध्य होना पड़ता था।

सामाजिक:—मुस्लिम आक्रमण तथा मुस्लिम शासन से हिन्दुओं के सामाजिक जीवन में महान् परिवर्तन हुआ। मुसलमानों के आने से हिन्दू समाज में पर्दा प्रथा तथा बाल विवाह आरंभ हुआ।

धार्मिक:—हिन्दू प्रारंभ से धर्मनिष्ठ होते हैं। लेकिन मुसलमानों के आक्रमण तथा उनके द्वारा बरती गई नीति से हिन्दुओं की धार्मिक वृत्ति को बड़ी ठेस पहुँची। हिन्दुओं की निष्ठा मूर्तिपूजा की ओर न्यून होने लगी और परमात्मा के अस्तित्व के सम्बन्ध में भी हिन्दू-समाज में विभिन्न धारणायें उत्पन्न होने लगी। इस काल में भारत में रामानुजाचार्य, रामानंद, कबीर, नामदेव, गुरू नानक, बल्लभाचार्य तथा चैतन्य महाप्रभू महात्मा पैदा हुए। उन्होंने अपने उपदेशों से भारत में विभिन्न प्रकार की भक्ति का सूत्रपात किया। इस भक्ति आंदोलन से हिन्दू धर्म की रक्षा हुई।

अभ्यासार्थ प्रश्न

1. Trace briefly the rise of Bahmani kingdom.
   बहमनी राज्य के उत्कर्ष पर संक्षेप में प्रकाश डालिए।

2. Trace briefly the rise of Vijayanager empire and describe its administration.
   विजयनगर साम्राज्य का उदय संक्षेप में बताते हुए उसके शासन प्रबन्ध का विवरण दीजिये।

3. What do you mean by "Bhakti movement ?" Show its importance in the History of India.
   भक्ति आन्दोलन से आप क्या समझते हैं ? इसका भारत के इतिहास में महत्व बताइये।

4. Describe the economic, social and religious condition of the people in mediaeval India under the Delhi Sultanate.
   दिल्ली सल्तनत के आधीन मध्यकालीन भारत की आर्थिक, सामाजिक तथा धार्मिक अवस्था का वर्णन कीजिए।

5. Write short notes on the following:—
   Mahmud Gawan, Hasan Gangu, Battle of Talikot, Abdur Razak. Kabir, Guru Nanak, Chaitanya and Amir Khusrau.
   निम्नलिखित पर टिप्पणियां लिखो:—
   महमूद गवां, हसन गांगू, तालीकोट की लड़ाई, अब्दुल रजाक, कबीर, गुरू नानक, चैतन्य और अमीर खुसरो।

अध्याय पहला

मुगल साम्राज्य का संस्थापक बाबर

प्रस्तावना :—बाबर का प्रारम्भिक जीवन—भारत पर प्रारम्भिक आक्रमण—आक्रमण के समय भारत की दशा—पानीपत की लड़ाई—बाबर और राणा सांगा—बाबर की अन्य सैनिक कार्यवाही—मृत्यु तथा चरित्र।

प्रस्तावना :—दिल्ली-सल्तनत की समाप्ति पर भारतीय इतिहास में एक नये युग का आरम्भ हुआ। इस युग के प्रवर्तक मुगल थे। भारत का यह मुगल वंश मंगोल तथा चगताई तुर्कों का एक समन्वय था। इस युग की प्रमुख विशेषता यह थी कि भारत की शासन-सत्ता तुर्की सुल्तानों से विलग हो मुगलों के दृढ़ हाथों में केन्द्रीभूत हो गई। सन् १३६८ ई० तैमूर लंग ने तुगलक कालीन दिल्ली-साम्राज्य रूपी जीर्ण-शीर्ण विशाल वृक्ष को धराशायी कर नवीन शासन के स्वरूप को उत्पन्न करने का अवसर प्रदान किया था। परन्तु जब लोदी वंश के अफगान शासक इसमें असमर्थ रहे तो तैमूर के वंशज बाबर ने ही भारत की अस्त-व्यस्त शासन—व्यवस्था को नवीन रूप देने का प्रयत्न किया।

बाबर का प्रारम्भिक जीवन :—बाबर का जन्म १४ फरवरी १४८३ ई० में हुआ था। इसके पिता का नाम उमरशेख मिर्जा तथा स्वयं के बचपन का नाम जहीरुद्दीन था। इसका पिता तैमूर का वंशज तथा माता चंगेजखां की वंशज थी। अतः बाबर में एशिया की दो वीर जातियों का रक्त प्रवाहित हो रहा था। इसलिये उसका नाम बाबर जिसका अर्थ है 'शेर' रखा गया था। इसमें मंगोलों की क्रूरता तथा तुर्कों की योग्यता व साहस विद्यमान था। संघर्ष करते हुए इसके पिता उमरशेख का ८ जून १४६४ को देहान्त हो गया है। अतः उसे ११ वर्ष की उम्र में ही फरगना का शासन-भार संभालना पड़ा।

बाबर अल्पवयस्क अवश्य था परन्तु उसकी आकांक्षा अल्प नहीं थी। १४६६ ई० में उसने तैमूर की राजधानी समरकन्द पर अधिकार जमाने का प्रयास किया, परन्तु वह अपने उद्देश्य में असफल रहा। यह असफलता बाबर को अपने लक्ष्य से विचलित नहीं कर सकी। संस्कृति तथा सुख के केन्द्र समरकन्द पर वह अवश्य अपना अधिकार करना चाहता था। वह स्वयं लिखता है, **"बसने योग्य सम्पूर्ण पृथ्वी पर भी ऐसा अन्य नगर नहीं है"**। अतः १४६७ ई० में उसने पुनः समरकन्द पर चढ़ाई की। इस बार वह सफल रहा। किन्तु केवल सौ दिन राज्य करने के उपरान्त ही उसे

समरकन्द फिर छोड़ना पड़ा। उसकी इस अनुपस्थिति में उसके छोटे भाई जहांगीर ने फरगना पर अधिकार कर लिया। इसके कारण बाबर अब शासक के स्थान पर एक दर दर भटकने वाला साधारण व्यक्ति हो गया था। फरिश्ता लिखता है—"भाग्य की गेंद अथवा शतरंज के बादशाह की भांति वह इधर उधर मारा मारा फिरा जैसे समुद्र के किनारे ककड़ धक्के खाते फिरते हैं"।
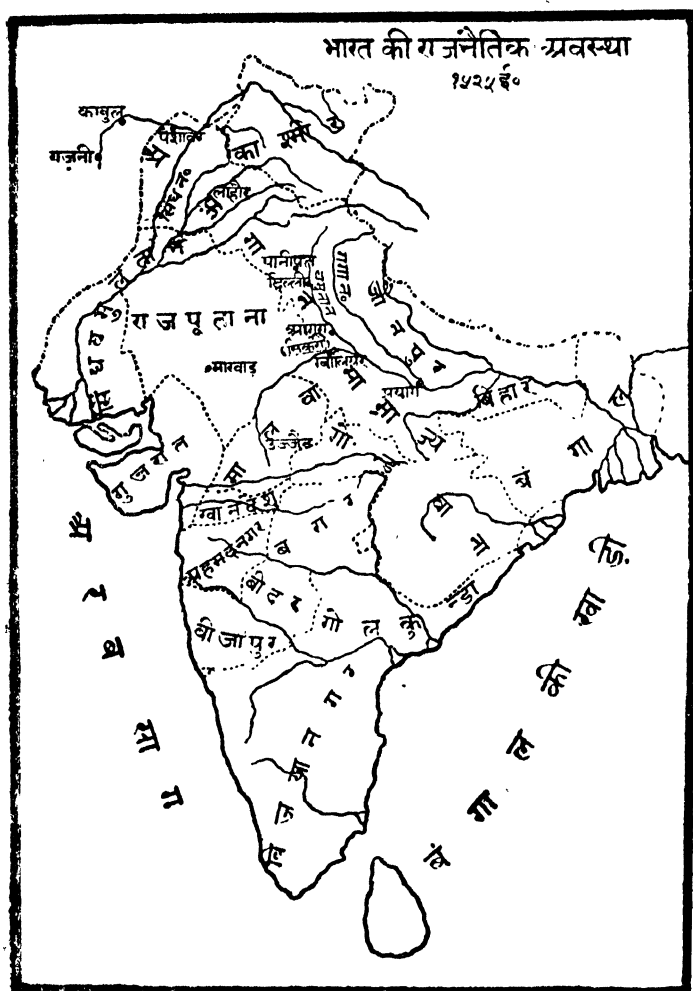
बाबर एक वीर तथा धैर्यवान व्यक्ति था। अतः वह इन मुसीबतों से निराश नहीं हुआ। १४९८ ई० में उसने फरगना पर पुनः अधिकार कर लिया—किन्तु फिर हाथ से निकल गया। इसी प्रकार १५०१ ई० में उसने समरकन्द पर तीसरी बार अधिकार किया और वह फिर अधिकार से निकल गया। इस प्रकार १४९४ ई० से १५०३ ई०

तक वह कभी शासक तो कभी भटकने वाला बना रहा। अन्त में यहां से निराश हो वह १५०४ ई० में काबुल आया और उस पर उसने अधिकार कर लिया। यहीं उसने मिर्ज़ा के स्थान पर 'बादशाह' की पदवी धारण की।

उसके भारत पर प्रारम्भिक आक्रमण :—बाबर की भारत पर गिद्ध दृष्टि बहुत पहले से लगी हुई थी! उसने अब काबुल को खुरासान तथा भारत के मध्य का केन्द्र माना और भारत विजय की तैयारी करने लगा। दिल्ली पर आक्रमण करने से पूर्व उसने सीमावर्ती भागों पर अधिकार करना चाहा। काबुल पर अपना शासन दृढ करके वह १५०७ ई० में भारत की ओर बढ़ा और जलालाबाद तक आ पहुंचा। १५१६ ई० में उसने पुन: भारत की ओर प्रस्थान किया और सिन्धु नदी को पार कर बजौर को घेर लिया। बजौर पर अधिकार करने के उपरान्त उसने भीर को घेर लिया। यहां दौलतखां लोदी का पुत्र अलीखां गवर्नर था। यहां से उसने इब्राहीम लोदी के पास एक राजदूत भेजा। जिसके द्वारा उसने दिल्ली के बादशाह को कहलाया कि पंजाब पर तैमूर का अधिकार था। अत: मेरे वंशजों का राज्य मुझे लौटाया जावे। उत्तर न मिलने और भारत में अधिक न ठहरने की इच्छा के कारण वह वापिस काबुल लौट गया। १५२० ई० में उसने फिर भारत पर आक्रमण किया। अफगान कबीलों का दमन करता हुआ वह आगे बढ़ा और सियालकोट पर उसने अधिकार कर लिया। परन्तु इसी समय उसे सूचना प्राप्त हुई कि कन्धार के शासक शाहबेग अरगुन से उसे युद्ध करना है। इस कारण वह वापिस चला गया। इसके पश्चात् १५२४ ई० में बाबर ने पुन: भारत पर आक्रमण किया। इस बार पंजाब के सूबेदार दौलतखां लोदी का भी उसे निमन्त्रण प्राप्त था। बाबर ने लाहौर और दीपालपुर पर अधिकार कर लिया। दौलतखां लोदी अपने पुत्र दिलावर खां के साथ बाबर से जा मिला। परन्तु दौलत खां लोदी को लाहोर न मिलने के कारण वह बाबर के पास से भाग गया। इससे बाबर समझ गया कि अब मुझे भारत पर अपनी ही पूरी शक्ति से आक्रमण करना है। इन प्रारम्भिक आक्रमणों से भारत की तत्कालीन अवस्था का उसे भली भांति ज्ञान हो गया।

बाबर के आक्रमण से पूर्व भारत की दशा

राजनीतिक :—१५ वीं शताब्दी भारत में एक अशान्ति की शताब्दी रही। इस सदी में शासकों व सूबेदारों के पारस्परिक वैमनस्य तथा शासकों की अयोग्यता के कारण देश में सुव्यवस्था के स्थान पर अराजकता फैल गई थी। लेनपूल के शब्दों में—"विजेताओं की एक जाति अशांतिकारियों की एक भीड़ के रूप में संगठित हो गई थी जो कि राजगद्दी के मोह के लिए एक दूसरे से प्राय: लड़ा करते थे। किन्तु किसी में भी राज-पाट संभालने की शक्ति नहीं थी.......दिल्ली

का साम्राज्य समाप्त हो गया था। वृहत्तर प्रान्तों के अलग अलग शासक थे"। इस प्रकार भारत छोटे छोटे राज्यों में विभक्त था। इन राज्यों के शासक अपने को स्वतन्त्र समझते थे और सदैव एक दूसरे से लड़ा करते थे। लोदी शासकों का प्रभाव तनिक भी नहीं रहा था। इब्राहीम से उसके सरदार क्रुद्ध थे। यही कारण था कि पंजाब के सूबेदार दौलतखां लोदी ने बाबर को भारत पर आक्रमण करने के लिए आमन्त्रित किया था। राणा सांगा अपने को समस्त भारत का सम्राट देखना चाहता था। इस तरह भारत की राजनीतिक अवस्था उस समय बड़ी दयनीय थी।

सामाजिक दशा :—बाबर के आक्रमण से पूर्व भारत में मानसिक उथल पुथल मची हुई थी। भारतीय समाज अपनी सामाजिक कुरीतियों को दूर करने के लिये चिंतित था। भाग्य वश इस काल में कई समाज सुधारक भी हुए। उन सुधारकों ने हिन्दू और मुसलमानों के बीच उत्पन्न साम्प्रदायिक भावना को समाप्त करने का प्रयास किया। गुरू नानक तथा कबीर ने हिन्दू–मुस्लिम एकता पर जोर दिया। इसके अलावा दीर्घ काल के सहवास से मुसलमान भारतीय वातावरण को अपना रहे थे और भारत-वासी कुछ इस्लाम के समीप आने का प्रयास कर रहे थे। हिन्दू-मुसलमानों का भेद-भाव अवश्य मिट रहा था-परन्तु मुसलमानों की संख्या दिनोंदिन बढ़ रही थी।

मुसलमानों के आगमन के परिणाम स्वरूप भारतीय सामाजिक जीवन में दासता की अवांछनीय प्रथा ने अपना स्थान जमा लिया था। दास रखना उस युग की सामान्य प्रथा थी। दास स्त्री पुरुष दोनों होते थे। इस प्रकार समाज का विकास अवरुद्ध होगया था।

स्त्रियों के लिये पर्दा प्रथा अनिवार्य होगई थी। उनका कार्य क्षेत्र केवल घर की चार दिवारें होती थी। स्त्रियों का बाहर जाना वर्जित था। इस पर भी हिन्दू कन्यायें मुसलमानों द्वारा बलात हरली जाती थी। इस कारण घर में कन्या का जन्म लेना सम्भवतः अशुभ माना जाता था।

मुसलमानों की वेष–भूषा का भारतवासियों पर प्रभाव पड़ रहा था। हिन्दू-समाज ... ... सुरा की मादकता पागल बना रही थी। हिन्दू नरेशों का जीवन दिनोंदिन विलासिता की ओर झुक रहा था।

धार्मिक-अवस्था :—मुस्लिम शासकों ने दिल खोल कर भारत में इस्लाम का प्रचार किया। इसके परिणाम स्वरूप भारत में एकेश्वरवाद का प्रभाव जमने लगा। इस काल में सुधारक भी ऐसे हुए जिन्होंने मूर्ति पूजा का खण्डन तथा एकेश्वर वाद का प्रसार किया। पुरोहित वर्ग की प्रभुता अब विनष्ट हो गई। हिन्दू धर्म से मिथ्या आडंबर शनैः शनैः हट रहा था। जन साधारण मोक्ष प्राप्ति के लिये अब कर्म पर विशेष ध्यान देने लगा था। हिन्दू और मुसलमानों के साथ साथ रहने से उनमें धार्मिक सहिष्णुता भी धीरे धीरे उत्पन्न हो रही थी।

साहित्यिक :—कुछ मुसलमान शासक साहित्य सेवी भी थे । उन्होंने अपने दरबार में विद्वानों को आश्रय दिया। जिसके कारण उस समय साहित्य का विकास हो सका। अमीर खुसरो, मीर हसन देहलवी, अहमद थानेसरी आदि दिल्ली-सुल्तानों के समय के विख्यात् विद्वान् थे। मुहम्मद तुगलक के दरबार में तो कई दार्शनिक, वैद्य तथा तर्क-शास्त्री भी विद्यमान थे। १४ वीं शताब्दी में फीरोज तुगलक ने दर्शन-शास्त्र तथा ज्योतिष के कई ग्रन्थों का फारसी में अनुवाद करवाया।

इस प्रकार मुस्लिम शासकों के शासन में अरबी और फारसी भाषा तो विकसित हुई परन्तु देश में प्रान्तीय भाषाओं का भी पर्याप्त विकास हुआ। धर्म-आन्दोलन के कारण प्रान्तीय भाषाएँ खूब फली फूली क्योंकि सुधारक तथा सन्त लोग जनसाधारण के समक्ष अपने विचार प्रान्तीय भाषा में प्रस्तुत किया करते थे।

स्थापत्य कला :—जिस प्रकार धार्मिक विचारों में हिन्दू व मुसलमानी धर्मों का समन्वय हुआ उसी प्रकार स्थापत्य कला में भी दोनों संस्कृतियों का समन्वय हुआ है। मुस्लिम स्थापत्य कला धर्म तथा उपासना की आवश्यकताओं से प्रभावित थी। इसीलिए मुस्लिम कला की विशेषताएं- विशाल भवन, विराट गोल गुम्बद, ऊंची मीनारें खुले आंगन तथा साफ-सुथरी दीवारें, यहां विशद रूप से भारतवासियों को देखने को उपलब्ध हुई। इसके विपरीत भारत की उस समय स्थापत्य कला की प्रमुख विशेषताएं थीं विशालता, स्थूलता, विविधता तथा सम्पन्नता। मुसलमानों के आने से दोनों कलाओं में समन्वय हुआ। इस प्रकार के समन्वय से पूर्ण स्थापत्य कला के दर्शन जौनपुर व बीजापुर में होते हैं। इन दोनों कलाओं के सामंजस्य को फर्ग्यूसन ने 'इण्डोसर सैनिक' नाम दिया है। परन्तु हैविल ने उन कला कृतियों को पूर्ण भारतीय बताया है। उन्होंने भवन निर्माण में सादगी के स्थान पर भारतीय अलंकरण प्रथा को अपनाया। भवन को विविधि रंग का दर्शाने की दृष्टि से उन्होंने विविध रंगों के पत्थरों का प्रयोग किया। भवन भारतीय स्वरूप के निर्मित किये गये। केवल उनको अपनी कला कृति दिखाने के लिए उन पर मेहराब, गुम्बद आदि बनादी गई। दिल्ली भी उस काल की स्थापत्य कला का एक महान केन्द्र था।

आर्थिक दशा :—भारत अतीत से एक धनाढ्य देश था। परन्तु मुस्लिम लुटेरों ने भारत के उस वैभव का अपहरण करना चाहा। पर वे असफल रहे। बाबर स्वयं लिखता है—**भारत एक विशाल देश है और इसमें सोने चांदी की प्रचुरता है। सभी व्यवसाय तथा व्यापार करने वालों की संख्या गणनातीत है।'** 'तारीखे दाउदी' से जो जहांगीर के समय लिखी गई थी—पता चलता है कि इब्राहीम लोदी के शासन काल में अन्न-कपड़ा तथा अन्य व्यापार की वस्तुओं के दाम गिरे हुए थे। इससे स्पष्ट है कि बाबर से पूर्व भारत की आर्थिक अवस्था अच्छी थी।

पानीपत की पहली लड़ाई :—श्री के. एम. पनिकर का मत है कि "बाबर व्यवसाय से शासक था अतः यह भावना कभी उसके मस्तिष्क से लुप्त नहीं होती थी।" वह भारत को अपने आधीन देखना चाहता था। इस कारण १५२५ ई० में फिर बाबर ने भारत पर चढ़ाई करदी। पंजाब के सूबेदार दौलत खां लोदी को परास्त करता हुआ वह १२ अप्रेल को दिल्ली के समीप पानीपत के प्रसिद्ध स्थान पर पहुंच गया। इतिहासकारों की मान्यता है कि बाबर के पास केवल २५ हजार सैनिक थे जबकि इब्राहीम के पास एक लाख। परन्तु बाबर की सेना में ७०० तोपची थे। इसके अलावा उसके सैनिक रण कुशल भी थे जबकि इब्राहीम के सैनिक किराये के टट्टू थे। २१ अप्रेल को प्रातः दोनों सेनाओं में युद्ध आरंभ हुआ।

'एक ओर निराशा जनित साहस और वैज्ञानिक युद्ध प्रणाली के कुछ साधन थे, दूसरी ओर मध्यकालीन सैनिकों की भीड़ थी जो भालों और धनुष बाणों से सुसज्जित थी ओर जो मूर्खता पूर्ण तथा अव्यवस्थित ढंग से एकत्रित हो गई थो।"
—एस. आर. शर्मा

बाबर ने 'तुलगमा' की नीति तथा तोपों के प्रयोग से भारतीय सेना को चारों ओर से घेर लिया और मध्यान्ह में ही शत्रु को पछाड़ दिया। इब्राहीम लोदी ग्वालियर के नरेश विक्रमाजीत के साथ युद्ध में काम आया। इस विजय पर बाबर स्वयं लिखता है-- "जिस समय युद्ध आरंभ हुआ, सूर्य आकाश में चढ़ चुका था और मध्यान्ह तक लड़ाई चलती रही। अन्त में शत्रु दल छिन्न भिन्न हो गया और खदेड़ दिया गया और मेरे योद्धा विजयी हुये। ईश्वर की अनुकम्पा तथा प्रताप से कठिन कार्य मेरे लिए सरल हो गया"। विजयी होने के उपरान्त उसने दिल्ली में प्रवेश किया और अपने ज्येष्ठ पुत्र हुमायूँ को उसने आगरे भेजा। आगरे पर हुमायूँ ने अधिकार कर विश्व का अमूल्य 'कोहनूर' हीरा प्राप्त किया। बाबर २७ अप्रेल को भारत का बादशाह घोषित हुआ।

इब्राहीम की पराजय के कारण:—इब्राहीम के व्यवहार से उसके सारे सरदार उससे नाराज थे। उसकी सेना संगठित एवं शक्तिशाली न थी। इसके अलावा स्वयं इब्राहीम भी एक अच्छा सेनापति न था। इसके विपरीत बाबर एक अच्छा सेनापति तथा उसकी सेना युद्ध-विद्या में पारंगत थी। बाबर प्रथम आक्रमणकारी था जो भारत में तोपों के साथ आया था। तुलगमा नीति ने भी बाबर को विजयी बनाने में पर्याप्त सहयोग दिया।

लड़ाई का महत्व:—पानीपत की पहली लड़ाई को अधिकांश इतिहासकार भारतीय इतिहास में महत्वपूर्ण मानते हैं। लेनपूल का कथन है, कि "अफगानों के लिए पानीपत का युद्ध बड़ा भयंकर सिद्ध हुआ। इससे उनका साम्राज्य मिट

गया तथा उनकी शक्ति का अन्त हो गया"। राजनैतिक दृष्टिकोण से भी यह युद्ध महत्वपूर्ण सिद्ध हुआ क्योंकि पठानों के विनाश से राजपूतों की अवनति का मार्ग प्रशस्त हो गया। इधर उधर भटकने वाला बाबर भारत का बादशाह बन गया। जैसा कि इतिहासकार रशब्रुक विलियम ने लिखा है, यह ठीक है कि बाबर के इधर उधर भटकने के दिन समाप्त हो गये और अब उसे अपने प्राणों की रक्षा के लिए अथवा सिंहासन को सुरक्षित रखने के लिए चिन्तित होने की आवश्यकता नहीं रही"। इस विजय के उपरान्त में भारत एक नवीन युग आरम्भ हुआ। मुगल शासन काल में बौद्धिक, सांस्कृतिक, धार्मिक एवं कलात्मक विकास हुआ।

बाबर और राणा सांगा :—राणा सांगा को मेवाड़ का सर्वाधिक प्रभावशाली एवं शक्तिशाली राणा माना जाता है। उसका जीवन भी बाबर की भांति प्रारम्भ से ही कठिनाइयों के पालने में पला था। बाबर की भांति वह भी एक महत्वाकांक्षी नरेश था। उसने भारत में निर्बल लोदी वंश के शासन को देखकर हिन्दू साम्राज्य की स्थापना का विचार किया था। आधुनिक इतिहासकारों की ऐसी मान्यता है कि उसने बाबर को भारत आने का निमन्त्रण दिया था और साथ में सैनिक सहायता भी देने का वायदा किया था। परन्तु राणा सांगा ने यह इस दृष्टिकोण से किया था कि बाबर भी तैमूर लंग की भांति लूट-खसोट कर भारत से लौट जावेगा और बाबर के आक्रमण से क्षीणता को प्राप्त इब्राहीम की सेना को परास्त कर मैं दिल्ली का सम्राट बन जाऊँगा।

परन्तु यह सत्य कहा गया है कि मनुष्य सोचता क्या है और होता क्या है। जब राणा सांगा ने देखा कि बाबर लुटेरा नहीं वरन् शासक भी है और भारत में भी वह शासक ही बन कर रहेगा तो उसने अपनी सारी इच्छाओं पर पानी फिरता देखा। इस कारण बाबर को भारत से निकालने के लिये वह युद्ध की तैयारी करने लगा और बाबर भी पानीपत की लड़ाई के उपरान्त उत्पन्न कठिनाइयों में इसे ही प्रधान कठिनाई समझ राणा सांगा से युद्ध करने की तैयारी करने लगा। १६ मार्च १५२७ को दोनों सेनाएँ सीकरी से १० मील की दूरी पर कनवाह नामक स्थान पर भिड़ गईं। दोनों ओर से भयंकर संग्राम हुआ। वीर तथा जन्म जात लडाकू राजपूतों के आगे मुगल सैनिक टिक नहीं सके। बाबर ने अपने को कठिन समय में जान कर प्रथम शराब नहीं पीने की शपथ ली और तदुपरान्त अपने सैनिकों को ओजस्वी भाषण में बताया कि जो मनुष्य इस दुनियाँ में आया है उसे एक दिन अवश्य मरना है। फिर हम युद्ध में पीठ दिखा कर कायर की मौत क्यों मरें? सैनिकों पर इसका बहुत प्रभाव पड़ा। मुगल सैनिक राजपूतों पर भूखे भेडिये की भाँति टूट पडे और तोपों के अंगारों के सामने सिंह रूप राजपूत भी कुछ न कर सके। राणा सांगा युद्ध में घायल हो गये। राजपूत सेना में

भगदड़ मच गई। भारी संख्या में राजपूतों का कत्ले आम हुआ। जेम्स टॉड का कहना है कि मृतक राजपूतों के मस्तकों की मुगल सैनिकों द्वारा मीनारें बनाई गई।

इतिहासकार कनवाह के युद्ध का महत्व पानीपत की लड़ाई से अधिक मानते हैं। रशब्रुक विलियम का कहना है कि " भारतीय राजनीति में राजपूतों की प्रमुखता जाती रही।" इस विजय ने बाबर को निर्विघ्न भारत का शासक बना दिया। और अब वह निश्चिन्त हो अफगानों का दमन करने लगा।

बाबर की अन्य सैनिक कार्य वाही :—कनवाह के युद्ध से निश्चिन्त हो बाबर ने चन्देरी के नरेश मेदिनी राय पर आक्रमण किया और उसे ९ दिसंबर १५२७ को युद्ध में परास्त कर दिया। इसके उपरान्त बाबर ने अफगानों को दबाने का प्रयास किया। पानीपत के मैदान में परास्त होने के उपरान्त अफगान लोग बिहार में संगठित हो रहे थे और उन्होंने बाबर को युद्ध में फँसा देख दो आब के प्रदेशों पर भी आक्रमण करना आरंभ कर दिया था। उनका दमन करने की दृष्टि से बाबर २ फरवरी १५२९ को दिल्ली से रवाना हुआ और ६ मई १५२९ को उसने अफगानों को घाघरा के युद्ध में परास्त किया। इस पराजय से अफगानों की शेष शक्ति भी समाप्त हो गई।

बाबर की मृत्यु तथा चरित्र :—घाघरा की लड़ाई बाबर की अन्तिम लड़ाई थी। इसी समय उसका प्रिय पुत्र हुमायूं बीमार पड़ा। जब उसका किसी प्रकार इलाज न हो सका तो एक पंडित ने कहा तुम अपनी अमूल्य वस्तु का दान दो तुम्हारा पुत्र बच जावेगा।" बाबर ने अपने प्राणों को सर्वाधिक मूल्यवान समझते हुए हुमायूं की चारपाई के तीन परिक्रमा लगाई और अल्लाह से इबादत की कि हे मालिक हुमायूं का सारा दुःख मुझ पर डाल दे। कहते हैं कि उसी दिन से हुमायूं अच्छा होने लगा और बाबर की तबीयत खराब होने लगी। अन्त में २६ दिसम्बर १५३० को उसकी मृत्यु हो गई।

वी. ए. स्मिथ का मत है कि **बाबर अपने युग के समस्त एशिया के बादशाहों में सबसे अधिक बुद्धिमान बादशाह था तथा सभी युगों के बादशाहों में एक महत्वपूर्ण एवं प्रशसनीय स्थान रखता था।** बाबर का व्यक्तित्व अत्यन्त ऊँचा तथा सर्वांगीण था। फरिश्ता उसकी सुन्दर आकृति के विषय में लिखता है—" **बाबर सुन्दर था, उसकी बात चीत में आकर्षण तथा अकृत्रिमता थी। आकृति मनोहर तथा स्वभाव कोमल था।**" शारीरिक बल के कारण ही वह अपने जीवन में इतनी कठिनाइयों को सहन कर सका था। स्वभाव उसका उदार तथा स्नेहपूर्ण था। रशब्रुक विलियम लिखता है कि बाबर **एक महान् सम्राट तथा भद्र पुरुष था।** स्वामित्व की प्रतिभा उसमें आरभ से विद्यमान थी। वीर एवं उत्साही होने के

साथ वह एक उच्चकोटि का सेना नायक था। वह एक कुशल निशाने बाज तथा अश्वारोही था। शत्रु की निर्बलता को वह पहले ही भांप लेता था। योद्धा होते हुए भी वह अच्छा विद्वान् था। तुर्की भाषा का वह एक उच्च कवि था। उसके द्वारा रचित उसकी स्मृति (Memoirs) उसकी विद्वत्ता तथा सिद्धहस्त लेखक होने की एक अनुपम निशानी है। वह नियामानुकूल कार्य करता था। वह एक कट्टर सुन्नी मुसलमान था और हिन्दुओं को घृणा की दृष्टि से भी देखता था। किन्तु तैमूर की भाँति वह कत्ले आम में विश्वास नहीं रखता था। ये सब गुण थे- परन्तु वह एक अच्छा प्रशासक नहीं था। इसी अभाव के कारण कभी यह उक्ति कही जाती है कि मुगल साम्राज्य का संस्थापक बाबर नहीं वरन् अकबर था। परन्तु इतना हम अवश्य कह सकते हैं कि बाबर का शासन लोदी शासकों से अच्छा था और उसके राज्य में अराजकता व्याप्त नहीं थी। इन उपर्युक्त गुणों के विवेचन से हमें हैवेल की यह उक्ति—"अपने मनोरथ, व्यक्तित्व, कलात्मक स्वभाव तथा अद्भुत चरित्र के कारण वह इस्लाम के इतिहास में सबसे अधिक चित्ताकर्षक था। सही जान पड़ती है।

अध्याय-सार

प्रस्तावना:—सोलहवीं शताब्दी में भारत में एक नया युग आरम्भ हुआ। बाबर इस नव-युग का प्रवर्त्तक था जिसने कि लोदीवंश के शासकों से सत्ता छीन कर भारत में मुगल साम्राज्य की नींव डाली थी।

प्रारंभिक जीवन:—बाबर के बचपन का नाम जहीरुद्दीन था और उसका जन्म १४८३ ई० में हुआ था। उसके पिता का नाम उमरशेख मिर्जा था जोकि फरगना का सुल्तान तथा तैमूर का वंशज था। पिता की आकस्मिक मृत्यु के कारण बाबर को १४९४ ई० में ही सुल्तान बनना पड़ा। बाबर एक महत्वाकांक्षी व्यक्ति था। उसने गद्दी पर बैठते ही अपने पूर्वज तैमूर की राजधानी समरकन्द को अपने अधिकार में करना चाहा। इस उद्देश्य की पूर्ति में वह शासक के स्थान पर दर-दर भटकने वाला हो गया। अन्त में जब १५०४ ई० में उसने काबुल पर अधिकार कर लिया तो उसका खानाबदोश का जीवन समाप्त हुआ।

भारत पर उसके प्रारंभिक आक्रमण:—पानीपत की लड़ाई से पूर्व उसने भारत पर चार आक्रमण (१५०७, १५१६, १५२० तथा १५२४) किये। ये आक्रमण भारत पर अपना राज्य स्थापित करने को एक भूमिका रूप में थे।

आक्रमण से पूर्व भारत की दशा

राजनीतिक:—लोदी वंश के निर्बल शासन के कारण राज्य में अराजकता

थी तथा भारत छोटे-छोटे स्वतन्त्र राज्यों में विभक्त था। इन राज्यों के नरेश बहुधा परस्पर झगड़ा करते थे।

सामाजिक:—मुसलमानों के आगमन से भारत में पर्दा प्रथा तथा दास प्रथा आरम्भ हुई। उनके सम्पर्क से हिन्दू राजा विलासी व जन साधारण मदिरापान की ओर झुक रहा था। धीरे धीरे सांप्रदायिक भावना दोनों समुदायों से लुप्त हो रही थी।

धार्मिक:—हिन्दुओं को जबरन मुसलमान बनाया जा रहा था। परन्तु समाज सुधारकों के धर्म प्रचार से धार्मिक अवस्था में सुधार हुआ। मुसलमानों के सम्पर्क से हिन्दुओं में 'एकेश्वरवाद' अपने जड़ें जमाने लगा।

साहित्यिक:—अरबी और फारसी भाषा का विकास हुआ। धर्म सुधारकों के उपदेशों के कारण प्रान्तीय भाषाएं विकसित तथा उन्नत हुईं।

स्थापत्य-कला:—मुसलमानों के विशाल प्रांगण व सीधी दीवार वाले भवन हिन्दू-स्थापत्य कला से प्रभावित होने के कारण रंग बिरंगे पत्थरों के बनाये जाने लगे। हिन्दू मन्दिरों के अनुकरण से मस्जिदों पर पत्थर की छोटी मीनारें बनने लगीं। स्थापत्य कला की आत्मा भारतीय थी तथा ऊपरी आवरण मुस्लिम था।

पानीपत की पहली लड़ाई:—यह लड़ाई २१ अप्रेल १५२६ ई० को पानीपत के मैदान में लड़ी गई। इसके परिणाम स्वरूप बाबर विजयी होने के कारण भारत का स्वामी बना और इब्राहीम लोदी युद्ध में मारा गया।

पराजय के कारण:—(१) इब्राहीम का अशिष्ट व्यवहार, (२) असंगठित सेना, (३) सेना केवल वेतन भोगी थी, (४) इब्राहीम का अच्छा सेना नायक न होना, (५) बाबर का स्वयं वीर तथा योग्य सेना नायक होना, (६) बाबर की तोपें तथा (७) तुलगमा नीति का अनुसरण।

परिणाम:—(१) इब्राहीम की पराजय तथा बाबर का स्वामी बनना, (२) राजपूतों का विनाश की ओर अग्रसर होना, (३) अफगान-साम्राज्य की समाप्ति, (४) बाबर का बादशाह बनना तथा (५) भारत में एक नवीन युग का आरम्भ।

बाबर और राणा सांगा:—राणा सांगा उस समय का एक वीर हिन्दू नरेश था जिसने भारत का सम्राट बनने की दृष्टि से बाबर को भारत आने के लिए आमन्त्रित किया था। जब पानीपत की लड़ाई में राणा सांगा ने बाबर की सहायता न की तो वह राणा सांगा पर सन्देह करने लगा। इसका परिणाम यह हुआ कि १६ मार्च १५२७ ई० को दोनों सेनाएं कनवाह में भिड़ गईं। दुर्भाग्यवश राणा सांगा परास्त

हुआ और बाबर भारत का बादशाह बना। इस पराजय के कारण राजपूत शक्ति नष्ट हो गई और बाबर पूर्णतः दिल्ली और आगरे का स्वामी बन गया !

बाबर की अन्य सैनिक कार्यवाही:—राणा सांगा को परास्त कर उसके सहायक चन्देरी के नरेश मेदिनीराय को १५२८ ई० में परास्त किया तथा १५२९ ई० में घाघरा के स्थान पर अफगानों के विरोध को दबाया।

मृत्यु व चरित्र:—अपने पुत्र हुमायूं के प्राण बचाने में उसने अपने प्राण २६ दिसम्बर १५३० को दे दिये।

बाबर एक वीर, उत्साही सैनिक तथा एक योग्य सेना नायक था। वह शत्रुओं की निर्बलता जानने में बड़ा कूटनीतिज्ञ था। स्वयं विद्वान तथा सुलेखक था और विद्वानों का आदर करता था। धार्मिक भावना उसकी कट्टर थी। राज्य में उसने शान्ति स्थापित की परन्तु वह एक प्रशासक नहीं था।

प्रश्न

(१) बाबर के आक्रमण के समय भारत की क्या दशा थी।

What was the condition of India on the eve of Babar's invasion ?

(२) "पानीपत में इब्राहीम की सेना की पराजय बाबर के कार्य का आरंभ मात्र ही था।" इस कथन की विवेचना कीजिये।

"The defeat of Ibrahim's army at Panipat was but the beginning of Babar's task." Discuss.

(३) "बाबर का इतिहास में स्थायित्व भारत विजय पर निर्भर है।' ' (लेनपूल) इस कथन की विवेचना कीजिए।

Babar's permanent place in history rests upon his Indian Conquests (Lanepoole.) Discuss the statement.

अध्याय दूसरा

मुगल साम्राज्य का संक्रमण काल

(हुमायूं)

प्रस्तावना:—हुमायूँ का प्रारंभिक जीवन—उसकी कठिनाइयां—हुमायूँ और बहादुर शाह—हुमायूँ और शेरशाह—हुमायूँ का भारत से निष्कासन, पुनः राज्य प्राप्ति-हुमायूँ की असफलता के कारण—मृत्यु व चरित्र ।

प्रस्तावना:—बाबर ने भारत विजय के साथ न जानें कितनी कल्पनाएँ की होंगी यह कौन समझ सकता है । वह अपनी कल्पनाओं को अपने साथ ही ले गया। उसने भारत को अपने आधीन बनाया ही था कि उसकी मृत्यु हो गई । १५२६ ई० में उसने पानीपत के मैदानमें दिल्ली को जीता और तदनन्तर उस राज्य को स्थायी बनाने तथा शत्रु से सुरक्षित रखने के लिए उसे निरन्तर युद्ध करते रहना पड़ा और १५३० ई० में केवल चार वर्ष के उपरान्त ही वह इस लोक से चल बसा । इस प्रकार बाबर अपनी विजय के फलों का आस्वादन स्वयं न कर सका । उसकी मृत्यु के समय उसका राज्य सुव्यवस्थित न था । उसका छोड़ा हुआ राज्य राज्यों का संगठन मात्र था । ऐसी परिस्थिति में उसने अपने ज्येष्ठ पुत्र हुमायूँ को अपना उत्तराधिकारी बनाया । परन्तु उसके मन्त्री अली मुहम्मद खलीफा के षड़यन्त्र के कारण हुमायूँ पिता की मृत्यु के तीन दिन उपरान्त २९ दिसम्बर १६३० को दिल्ली के राज्य सिंहासन पर बैठा । हुमायूँ का अर्थ है 'भाग्यशाली' । परन्तु जैसा कि उसके जीवन-काल से स्पष्ट होगा कि वह अपने पिता के तुल्य नाम का समर्थक न था । वह सदैव अभागी रहा ।

हुमायूँ का प्रारम्भिक जीवन:—हुमायूँ का जन्म काबुल में ६ मार्च १५०८ को हुआ था । उसकी माता का नाम महम सुल्ताना था जिसे कि बाबर बहुत चाहता था । अतः यह स्वाभाविक था कि हुमायूँ पर भी बाबर का अधिक मोह हो । उसने हुमायूँ को शिक्षा दिलाने का पर्याप्त प्रबन्ध किया । परन्तु वह अपने पिता के तुल्य विद्वान एवं योग्य न बन सका । सन् १५२० ई० में वह बदख्शां का सूबेदार नियुक्त हुआ । पानीपत की पहली लड़ाई में वह उपस्थित था और युद्ध चातुर्य का भी उसने प्रदर्शन किया था । उसकी इस सैनिक कार्यवाही से सन्तुष्ट हो बाबर ने उसे आगरे पर अधिकार करने भेजा था । आगरे को उसने आधीन किया तथा विक्रमाजीत नरेश के परिवार से 'कोहनूर' हीरा प्राप्त किया । कनवाह के युद्ध में भी हुमायूँ ने अपूर्व रण-

कुशलता दिखाई थी। इस प्रकार बाबर को उसके प्रति किसी प्रकार का असन्तोष नहीं था। इसीलिये उसने अपने जीवन काल में ही हुमायूँ को भारत का शासक घोषित कर दिया था।

हुमायूं की प्रारंभिक कठिनाइयां--

(१) **साम्राज्य की दशा:**—आर. एस त्रिपाटी के मतानुसार बाबर का साम्राज्य निर्बल नींव पर आधारित था। बाबर के सुप्रशासन स्थापित न करने के कारण केन्द्रीय सरकार तथा प्रान्तीय सरकारों का सम्बन्ध निश्चित न था। जैसा कि ऊपर स्पष्ट किया कि वह राज्य केवल राज्यों का संगठन मात्र था जिसमें एकता का सूत्र न था। रशब्रुक विलियम के शब्दों में "**बाबर ने अपने पुत्र के लिए ऐसा राज्य छोड़ा था जो निरन्तर युद्ध की दशा में ही टिक सकता था और जो शान्ति के समय दुर्बल तथा सहायक-स्तम्भ हीन सिद्ध हुआ।**" आर. एस त्रिपाठी कहते हैं कि हुमायूं की प्रकृति युद्ध की नहीं थी। वह शान्ति चाहता था।

(२) **अफगान सरदार:**—घाघरा के मैदान में अफगान रूपी सर्प बिल्कुल मरा नहीं था। अफगान अब भी बिहार में संगठित हो रहे थे। इब्राहीम लोदी का भाई महमूद लोदी इन्हें संगठित कर रहा था और बगाल का शासक इनकी सहायता कर रहा था। भाग्यवश इसी समय अफगानों को शेरखाँ जैसा योग्य नेता मिल गया जिसने एक बार कहा था—यदि भाग्य ने सहायता दी तो मैं इन मुगलों को हिन्दुस्तान से निकाल बाहर करूंगा।

(३) **बहादुरशाह का शक्तिशाली होना:**—मालवा तथा गुजरात में बहादुरशाह दिनों दिन शक्ति बढ़ा रहा था। उसने अपने यहां कई अफगान विद्रोहियों को शरण दे रखी थी।

(४) **दुर्बल सैन्य-संगठन:**—मुगल सेना में उस समय एकता का सर्वथा अभाव था। उसमें चगताई, उजबेग, मुगल, ईरानी, अफगानी तथा हिन्दुस्तानी सैनिक थे। उनमें वैमनस्य था। अतः हुमायूं सेना पर भी विश्वास नहीं कर सकता था।

(५) **रिक्त-कोष:**—बाबर के निरन्तर संघर्ष करने तथा उसकी उदार वृत्ति के कारण राजकीय कोष खाली हो चुका था। इस पर हुमायूं ने भी उसे अपनी उदार वृत्ति से खाली ही किया न कि तत्कालीन दयनीय आर्थिक अवस्था को सुधारने का कोई प्रयत्न किया।

(६) **हुमायूँ के भ्राता:**—हुमायूं तो अपने मृत पिता के आदेशानुसार सदैव अपने अन्य तीन भ्राताओं (कामरान, हिन्दाल, और अस्करी) के प्रति उदार एवं

दयालु ही रहा। परन्तु उसके भ्राताओं ने सदैव उसकी पीठ में छुरा भौंकने का कार्य किया।

इन उपरोक्त कठिनाइयों के बीच हुमायूं ने राज्य संभाला और उसने धीरे २ अपनी योग्यता के अनुसार इन कठिनाइयों के निवारण का प्रयास किया।

हुमायूं और बहादुर शाह:—बहादुरशाह मालवा तथा गुजरात का शासक था वह ११ जुलाई १५६२ को शासक बना था। गुजरात उस समय एक धनाढ्य प्रांत था। अबुल फजल के शब्दों में—"आय के असंख्य कुंजों के साथ गुजरात एक आम के बगीचे के तुल्य था। आर-एस त्रिपाठी के मतानुसार बहादुर शाह एक युवक महत्त्वाकांक्षी तथा योद्धा राजकुमार था। अतः वह दिनों दिन अपनी शक्ति बढ़ाने लगा। हुमायूं को इससे भय मालूम हुआ और वह इसे दबाने के लिए ८ नवम्बर १५३४ को आगरे से रवाना हुआ। जब वह सारंगपुर (जनवरी १५३५) पहुंचा तो बहादुरशाह ने चितौड़ का दुर्ग का घेरा डाल रखा था। यदि इस समय हुमायूँ बहादुरशाह पर आक्रमण कर देता तो बहादुरशाह परास्त हो जाता और साथ में राजपूत हुमायूँ के मित्र हो जाते क्योंकि इसी समय मेवाड़ की महारानी कर्णवती ने हुमायूँ को राखी भेज कर सहायता की आशा की थी।

जब बहादुरशाह राजपूतों से निश्चिन्त हो गया तो उसने हुमायूँ से लड़ने की तैयारी की। इनकी प्रथम टक्कर मंदसोर नामक स्थान पर हुई। यहां से परास्त हो (२५ अप्रेल १५३५) बहादुरशाह ने माण्डू में शरण ली। माण्डू में भी जब उसे विजय की आशा न रही तो एक रात्रि को वह अपने कुछ साथियों के साथ चम्पानेर (जून १५३५) भाग गया। परन्तु मुगल सेना ने बहादुरशाह का पीछा नहीं छोड़ा। अतः वह अहमदाबाद चला गया और जब यहां भी शत्रु सेना ने पीछा नहीं छोड़ा तो उसने भगकर ड्यू में शरण ली। इस लड़ाई की विजय ने हुमायूँ का सिर फेर दिया। उसने बहादुरशाह की शक्ति को पूर्णतः समाप्त करने का प्रयास न कर वहां भोग-विलास में लिप्त हो गया। इधर जब शेरखां ने हुमायूँ को राजधानी से अनुपस्थित देखा तो उसने बगाल पर आक्रमण कर दिया। यह खबर पाते ही हुमायूँ अपने भ्राता अस्करी को गुजरात का भार सौंप कर स्वयं राजधानी की ओर रवाना हुआ। हुमायूँ के गुजरात से विदा लेते ही अस्करी भी गुजरात से रवाना हो गया। इस अवसर पर बहादुरशाह ने पुनः गुजरात पर अपना आधिपत्य जमा लिया। इस प्रकार हुमायूं का यह बना हुआ कार्य भी उसकी लापरवाही के कारण व्यर्थ हो गया।

हुमायूँ और शेरशाह:—गुजरात से लौट कर हुमायूँ ने एक वर्ष तो राजधानी में विश्राम किया और २७ जुलाई १५३७ ई० में शेर खां को दबाने के लिए वह

बंगाल की ओर रवाना हुआ। हुमायूँ ने बंगाल सीधा न जाकर मार्ग में चुनार पर आक्रमण कर दिया। यहां उसे ६ मास व्यतीत करने पड़े और इसी अरसे में शेरखां ने अपनी शक्ति को दृढ़ कर लिया और बंगाल की राजधानी गौड़ पर अधिकार कर लिया। शेरखां ने इस समय अपनी सेना व खजाना रोहतास के गढ़ में जमा कर लिया। हुमायूँ गौड़ में आकर शत्रु को नष्ट करने की बात भूल कर पुनः विलास में संलग्न हो गया।

चौसा की लड़ाई:—इधर जब गौड़ में हुमायूँ धूर्त शेरखां द्वारा छोड़ी गई नर्तकियों के साथ विलासिता का जीवन बिता रहा था शेरखां ने बिहार को अपने अधिकार में कर लिया। इसी समय भीषण वर्षा के कारण नदियों में बाढ़ आगई। इस कारण दिल्ली से रसद का आना बन्द हो गया। इस प्रकार स्वयं को परेशानी में देखकर हुमायूँ दिल्ली लौटने लगा। युद्ध का यह उचित अवसर जानकर शेरखां ने २६ जून १५३९ को चौसा के स्थान पर हुमायूँ को परास्त कर दिया।

कन्नौज की लडाई:—चौसा की लड़ाई में परास्त हुमायूँ आगरे पहुँचा और वह पुन: दुश्मन को हराने के लिए युद्ध की तैयारी करने लगा। पर शेरखां इतना मूर्ख नहीं था जो कि हुमायूँ को युद्ध की तैयारी का अवसर देता। उसने हुमायूँ का पीछा किया। इस संकट के समय में हुमायूँ के भाइयों ने भी सहायता न दी। अन्त में निराश हो वह स्वयं ही अपनी निज की सेना के साथ शेरखां का सामना करने को आगे बढ़ा दोनों सेनाओं की १७ मई १५४० को कन्नोज के पास मुठभेड़ हुई। इस युद्ध में भी विजय श्री शेरखां को ही प्राप्त हुई। यह लड़ाई मुगल व अफगानो के बीच एक निर्णयक लड़ाई थी। इस विजय के परिणाम स्वरूप शेरखां भारत का बादशाह बना और हुमायूँ को भारत छोड़ना पड़ा।

हुमायूँ का निष्कासन:— कन्नोज के युद्ध में परास्त होते ही हुमायूँ आगरे गया और शीघ्र ही वहां से सरहिन्द होता हुआ लाहोर पहुंचा। पहले हुमायूँ ने काश्मीर जाने का इरादा किया। परन्तु उसे भी सुरक्षित स्थान न समझ उसने सिन्ध जाने का इरादा किया। इसी समय उसे जोधपुर नरेश मालदेव का भी निमन्त्रण प्राप्त हुआ था किन्तु शीघ्र ही हुमायूँ को पता चल गया कि मालदेव उसके साथ विश्वासघात करना चाहता है। अत: वह अमरकोट चला गया। इसी स्थान पर ११ अक्टूबर १५४२ को हुमायूँ के मीर बाबा की पुत्री हमीदा बेगम से अकबर का जन्म हुआ।

इस काल में हुमायूँ ने सिन्ध पर अधिकार करने का प्रयास किया था। सफलता न मिलने से वह निराश हुआ और उसने भारत छोड़ने का इरादा कया। इस समय में उसने कामरान से भी सहायता लेने का प्रयास किया था। परन्तु कामरान

ने सहायता देने के स्थान पर हुमायूं को गिरफ्तार करने की कोशिश की। ऐसी हालत में १ वर्ष के अकबर को बैरामखां की निगरानी में छोड़ हुमायूं फारस की ओर रवाना हो गया। फारस के शाह तहमस्य ने हुमायूं का अपने देश में महान् स्वागत् किया और उसे किसी प्रकार का कष्ट नहीं होने दिया। ऐसा कहा जाता है कि इस काल में फारस के सुल्तान ने हुमायूं को शिया-धर्म अंगीकार करने को बाध्य किया बताया।

राज्य की पुनः प्राप्तिः—सन् १५४४ में हुमायूं को परसिया से १४००० सैनिकों की सहायता प्राप्त हुई। परन्तु यह सैनिक सहायता हुमायूं को दो शर्तों पर दी गई बताई-(१) हुमायूं शिया धर्म का अपने राज्य में प्रचार करे-(२) कन्धार जीतने पर फारस को दे दिया जावे। इस सैनिक सहायता से इसी वर्ष हुमायूं ने कन्धार और काबुल जीत लिया। परन्तु १५४६ ई० में जब हुमायूं बीमार पड़ा तो कामरान ने इस अवसर का अनुचित लाभ उठाकर पुनः काबुल पर अधिकार कर लिया। हुमायूं इस घटना से विचलित नहीं हुआ और अच्छा होने पर १५४७ में उसने फिर काबुल को ले लिया। कामरान भय से भाग गया। परन्तु १५४८ ई० में उसने फिर हुमायूं के साथ संघर्ष किया। वह परास्त हुआ और हुमायूं द्वारा क्षमा कर दिया गया। परन्तु १५४९ में कामरान ने फिर हुमायूं के साथ विश्वासघात किया। हुमायूं इस संघर्ष में घायल हुआ। किन्तु बदख्शां के सुल्तान की सहायता से वह कामरान को परास्त करने में सफल हुआ। इस बार कामरान बन्दी बनाया गया और सरदारों की राय से अन्धा बना दिया गया और १५५७ ई० में मक्का में उसका देहान्त हो गया।

शेरशाह इस लोक से १५४५ ई० में ही विदा हो गया था। उसकी मृत्यु के उपरान्त उसका पुत्र इस्लाम शाह गद्दी पर बैठा। परन्तु उसने भी केवल १५५३ तक ही राज्य किया। इस्लाम शाह की मृत्यु के बाद उसका लड़का आदिलशाह दिल्ली का शासक बना। परन्तु वह विलासी एवं आराम पसन्द सुल्तान था। इस कारण राज्य में पुनः अराजकता अपने पांव पसारने लगी हुमायूं ऐसे अवसर को कब चूकने वाला था। १५५४ में वह भारत की ओर रवाना हुआ। इसी वर्ष फरवरी में लाहौर पर तथा मार्च में दीवानपुर पर अधिकार कर लिया। इन विजयों के उपरान्त मैचवाड़ा स्थान पर हुमायूं ने अफगान सेना से टक्कर ली। और इसमें वह विजयी हुआ। ज्यों ही वह खबर सिकन्दर सूर ने सुनी वह विशाल सेना के साथ हुमायूं से लड़ने के लिये रवाना हुआ। सरहिन्द के पास मुगल व अफगान सेना में लड़ाई हुई। इस लड़ाई में भी विजय श्री हुमायूं के ही हाथ रही। सिकन्दर सूर युद्ध की भूमि से भाग खड़ा हुआ। इस विजय के बाद हुमायूं दिल्ली की ओर बढ़ा

और जुलाई १६५५ में उसने दिल्ली पर अधिकार कर लिया। इस प्रकार १५ वर्ष के उपरान्त हुमायूं ने अपना खोया हुआ राज्य पुनः प्राप्त कर लिया।

हुमायूं की असफलता के कारण :-

हुमायूँ का योग्य सेनापति न होना :—

जैसा कि हम पूर्व व्यक्त कर चुके हैं कि बाबर राज्य संगठन की दृष्टि से एक निर्बल एवं एक अस्त-व्यस्त राज्य हुमायूं के लिए छोड़ गया था। इसके अतिरिक्त सेना भी विभिन्न जातियों की थी। ऐसी स्थिति में उसे अच्छे सेनापति के गुण ग्रहण करने चाहिए थे। परन्तु वह उसके विपरीत था। एलफिन्सटन के मतानुसार हुमायूं स्वभाव से महत्वाकांक्षी होने के अतिरिक्त आराम पसन्द भी अधिक था।

राज्य का विभाजन :—

यह सही है कि राज्य का विभाजन कर उसने अपने स्वर्गीय पिता के वचनों को रखा परन्तु यह उसकी राजनैतिक भूल थी। इस विभाजन से उसकी सैन्य शक्ति का ह्रास हुआ और उसके भाई शत्रु हो गये।

हुमायूँ विलासी एवं चंचल चित्त का था :—

हुमायूं का जीवन शासक के रूप में अधिकांश विलासमय रहा। राजधानी में तो उसका जीवन विलासमय रहता ही था इसके अतिरिक्त युद्ध के समय तथा कठिन समय भी उसका जीवन विलासी ही रहता था। गुजरात के आक्रमण के समय भी उसकी यही दशा थी और बंगाल की राजधानी गौड़ में भी उसका ऐसा ही जीवन रहा। इससे शत्रुओं को मौका मिल जाता था। इसके अलावा वह कोई भी निर्णय दृढ़ता से नहीं लेता था। सदा दूसरों पर निर्भर रहता था।

हुमायूँ का अपव्ययी होना :—

बाबर तो खजाने को खाली छोड़ ही गया था परन्तु हुमायूं ने अपने विलासी जीवन तथा सदा सरदारों को दावतें देने और खिल्लतें बांटने में खजाना खाली कर दिया। इससे देश की सैनिक शक्ति को बड़ा धक्का पहुँचा।

उसकी मृत्यु तथा चरित्र

जैसा कि हुमायूँ के जीवन से स्पष्ट है कि वह सदैव मुसीबतों से ही खेलता रहा और जो बड़ी कठिनाइयों का सामना करने के उपरान्त उसने भारत के खोये राज्य को पुन: प्राप्त किया भी तो इसका आनन्द वह अधिक दिन नहीं ले सका। एक दिन

मध्यान्ह काल में वह अपने पुस्तकालय में पुस्तक पढ़ रहा था उस समय उसने नमाज पढ़ने की अजान सुनी तो वह जब नीचे उतर रहा था कि उसका पांव सीढ़ियों से फिसला और २४ जनवरी १५५६ को वह इस दुनियां से सदा के लिये विदा ले गया।

अर्सकाइन के मतानुसार **हुमायूँ बहुत जल्दबाज था परन्तु वह गम्भीर विचारक तथा दृढ़ संकल्प का न था इसी कारण** वह हर स्थान पर शत्रुओं से पराजित हुआ। यह सही है कि हुमायूँ अपने योग्य पिता का आदर्श पुत्र था। परन्तु राजकार्यों के प्रति वह सदैव उदासीन रहा। इतिहासकार निजामुद्दीन अहमद लिखता है, **"हुमायूं का दिव्य चरित्र पौरुष के प्रत्येक गुण से विभूषित था। तथा वीरता में वह अपने काल के सभी राजाओं सेबढ़ कर था....।"** फरिश्ता ने लिखा है, **"हुमायू बड़े ही भद्र स्वभाव का था। उदारता व दयालुता उसमें अत्याधिक थी।"** परन्तु हम देखते हैं कि यही गुण उस समय हुमायूँ को एक समय शासक बनने के लिये पर्याप्त नहीं था। वह एक अच्छा राजनीतिज्ञ नहीं था। रानी कर्णवती द्वारा भेजी हुई राखी से कुछ भी लाभ न उठा सका। उसके अलावा वह समय की भयंकरता को नहीं समझ पाता था। इसी कारण उसकी सेना भी युद्ध में सदा पीठ ही दिखाती रहती थी। वह विद्वान था और कई भाषाऐं जानता था। कुछ कविताऐं भी उसने रची थीं। परन्तु इस क्षेत्र में भी वह अपने पिता की समता न कर सका। इन्ही कारणों से हुमायूँ को इतिहास में विशेष स्थान नहीं दिया जाता।

अध्याय—सार

प्रस्तावना:—बाबर के भारत-विजय के चार वर्ष उपरान्त ही मर जाने के कारण हुमायूँ १५३० ई० में भारत का बादशाह बना। यद्यपि बाबर के प्रधान मन्त्री खलीफा ने उसका विरोध किया था परन्तु वह अपने उद्देश्य में असफल रहा।

प्रारम्भिक जीवन:—हुमायूँ १५०८ ई० में काबुल में महम सुल्ताना से पैदा हुआ था। बाबर इसे बहुत प्यार करता था। उसने हुमायूं की शिक्षा का पर्याप्त प्रबंध किया था। १५२० में वह बदखशों का सूबेदार रहा तथा पानीपत की लड़ाई में उसने अच्छी बहादुरी दिखाई थी। आगरा इसी के द्वारा आधीन किया गया था। कनवाह की लड़ाई में भी उसने अच्छा रण-चातुर्य दिखाया था।

कठिनाइयां:—(१) साम्राज्य की दशा, (२) अफगान सरदार (३) बहादुर शाह (४) दुर्बल सैन्य संगठन (५) रिक्त कोष तथा इसके धूर्त भ्राता।

हुमायूँ और बहादुरशाह:—बहादुर शाह मालवा व गुजरात का शासक था। वह अपने साम्राज्य को बढ़ाना चाहता था। हुमायूं उसकी बढ़ती शक्ति को रोकने के लिये गुजरात की ओर रवाना हुआ। बहादुर शाह को मंदसोर, माण्डू, चम्पानेर आदि कई स्थानों पर पराजित किया। अन्त में बहादुरशाह ने ड्यू में शरण

ली। परन्तु हुमायूं ज्योंही असकरी को गुजरात का भार संभाल कर राजधानी की ओर रवाना हुआ बहादुरशाह ने पुनः गुजरात पर अधिकार कर लिया।

हुमायूँ और शेरशाह:—जब हुमायूं गुजरात में बहादुरशाह के उत्कर्ष को समाप्त कर रहा था तो पूर्व में शेर खां दिनोंदिन अपनी शक्ति बढ़ा रहा था। जब हुमायूं ने शेरखां के बंगाल आक्रमण की बात सुनी तो १५३७ में हुमायूं ने बंगाल को प्रस्थान किया। मार्ग में चुनार का दुर्ग जीता। परन्तु हुमायूं की यह भूल थी। गौड़ पर अधिकार कर वहां विलासी जीवन व्यतीत करने लगा। वर्षा के आरंभ मे जब राजधानी में रसद आना बन्द हो गया तो हुमायूं ने राजधानी लौटने का इरादा किया। १५३९ में चौसा के स्थान पर हुमायूं को शेरखां ने परास्त किया और इसके उपरान्त १५४० में कनौज के समीप शेरखां ने पुनः हुमायूं को परास्त कर दिया व स्वयं बादशाह बन गया।

हुमायूँ का निष्कासन:—कन्नौज में परास्त होते ही हुमायूँ लाहौर की ओर भगा। यहां से सिन्ध गया। १५४२ में अमरकोट में अकबर उत्पन्न हुआ। सिन्ध से वह फारस गया, जहां कि वहां के शाह तहमस्प ने अच्छा स्वागत किया।

असफलता के कारण :—(१) योग्य सेनापति न होना, (२) राज्य का विभाजन, (३) विलासी जीवन तथा (४) अपव्ययी होना।

राज्य प्राप्ति:—फारस की सेना की सहायता से हुमायूं ने कन्धार पर अधिकार किया। इसके उपरान्त कई लड़ाइयों के उपरान्त उसने कामरान को परास्त कर काबुल पर अधिकार किया। इधर जब अफगान शासन शिथिल हुआ तो हुमायूं १५५४ में भारत की ओर रवाना हुआ और अफगान सेना को माचिवाड़ा तथा सरहिन्द स्थान पर हरा कर १५५५ में दिल्ली का स्वामी बन गया। इस प्रकार उसने पुनः अपने खोये राज्य को प्राप्त कर लिया।

मृत्यु व चरित्र:—१५५६ में सीढ़ियों से पांव फिसलकर गिर जाने से उसका देहान्त हो गया।

हुमायूं उदार वृत्ति व अच्छे स्वभाव का था। वह विद्वान भी था। परन्तु विलासी एवं चंचल चित्त का होने के कारण वह सफल शासक न बन सका। अच्छा राजनीतिज्ञ न होने के कारण वह सदैव कठिनाइयों में फंसता रहा। विलासी होने के साथ वह अपव्ययी भी था।

प्रश्न

(१) हुमायूं को राजगद्दी पर बैठते ही किन कठिनाइयों का सामना करना पड़ा?

What were the difficulties which Humayun had to face at the time of his accession to throne ?

(२) हुमायूं अपने पिता द्वारा छोड़े गये राज्य को सुरक्षित रखने में क्यों असफल रहा ?

Why did Humayun fail to retain the Empire that he inherited from his father ?

(३) "हुमायूं गिरते-पड़ते इस जीवन से मुक्त हो गया ठीक उसी तरह जिस तरह तमाम जिन्दगी भर वह गिरते पड़ते चलता रहा"।

इस कथन की विवेचना कीजिए।   (लेनपूल)

"Humayun tumbled through life and he tumbled out of it". Explain the statement.   (Lanepoole)

अध्याय तीसरा

अफगान वंश का अन्तिम सम्राट

(शेरशाह)

प्रस्तावना:—प्रारंभिक जीवन—शेरशाह एक जागीरदार के रूप में—संरक्षक के रूप में शेरशाह और हुमायूं—भारत का शासक बनना—शेरशाह की अन्य विजय—शासन प्रबन्ध—मृत्यु—शेरशाह का इतिहास में स्थान:—

प्रस्तावना:—पानीपत की पहली लड़ाई (१५२६) में अफगान वंश के शासक इब्राहीम लोदी को बाबर ने परास्त कर भारत में एक नवीन वंश की स्थापना की थी। इस लड़ाई में अफगानों की शक्ति का ह्रास अवश्य हुआ था पर उनकी शक्ति पूर्णतः नष्ट नहीं हुई थी। पानीपत के मैदान से कई अफगान सरदार भाग कर बिहार चले गये थे। यहां ये लोग शनैः शनैः अपने को संगठित कर अपनी शक्ति को बढ़ा रहे थे। भाग्यवश इन लोगों को शेरखां नाम का एक योग्य नेता प्राप्त हो गया था। यही शेरखां आगे चलकर इतिहास में शेरशाह के नाम से विख्यात हुआ जिसने कि मुगल शासक हुमायूँ को परास्त कर भारत छोड़ने को बाध्य कर दिया और स्वयं भारत का शासक बन गया।

प्रारम्भिक जीवन:—शेरशाह के बचपन का नाम फरीद था। इसके पिता का नाम हसन खां था। इसका जन्म कोई १४७२ मानते हैं और कई १४८६। कानूनगो और डा० ईश्वरी प्रसाद १४८६ मानते हैं। फरीद का जन्म हसन की पहली अफगान पत्नी से हुआ था जबकि हसन खां अपनी छोटी हिन्दुस्तानी पत्नी को प्रेम करता था। इस कारण पिता का भी प्रेम फरीद पर कम ही था। इसकी सौतेली मां इससे घृणा करती थी। अतः अपनी सौतेली माता के व्यवहार से तंग आकर फरीद जौनपुर चला गया। जौनपुर उस समय 'भारत का सीराज' कहलाता था। यहां आकर इसने अध्ययन आरम्भ किया और अरबी एवं फारसी का उसे अच्छा ज्ञान हो गया। इसकी बुद्धि की प्रखरता के कारण इसके पिता का संरक्षक जमाल खां इससे बहुत प्रभावित हुआ। जब उसका पिता जागीर के किसी कार्य के कारण जौनपुर आया तो जमाल खां ने पिता और पुत्र में समझौता करा दिया।

जागीरदार के रूप में:—फरीद एक स्पष्ट वक्ता था। जब जमाल खां ने उससे अपने पिता की जागीर संभालने को कहा तो उसने उत्तर दिया कि ये (हसन खां)

आपके सामने जागीर देने को हां भरते हैं और सहसराम जाते ही अपनी हिन्दुस्तानी बीबी की उपस्थिति में ना कह देंगे। पिता के पूर्ण आश्वासन पर फरीद अपने घर गया और पिताजी से स्पष्ट कह दिया कि आप मेरे प्रबन्ध में हस्तक्षेप नहीं करेंगे। उसने २१ वर्ष तक जागीर का कार्य चलाया और इन २१ वर्षों में उसने अपनी जागीर में शान्ति व व्यवस्था कायम करदी। जिन किसानों ने वर्षों से लगान नहीं दिया था उनके साथ सख्ती करके बकाया कर वसूल किया। उसका कहना था कि **बिना न्याय के कोई राज्य कायम नहीं रह सकता और बिना दण्ड के न्याय नहीं रह सकता।** शान्ति-प्रिय कृषकों को इसने शान्ति प्रदान की। उन्हें लगान देने में किसी प्रकार का कष्ट नहीं होता था। चोरों का भय उसकी जागीर में बिल्कुल नहीं रहा। उसकी इस सुव्यवस्था से उसकी कीर्ति फैलने लगी। इससे उसकी सौतेली मां को जलन हुई और उसने उसको १५१८ में घर छोड़ने को पुनः बाध्य कर दिया।

एक संरक्षक के रूप में:—जागीर का परित्याग कर फरीद इब्राहीम लोदी की सेवा में गया। पानीपत के मैदान में उसने बाबर के विरुद्ध युद्ध किया था। इब्राहीम के परास्त होने पर उसने बिहार में बहार खां की नौकरी करली। इस सेवा काल में उसने एक दिन जंगल में तलवार से शेर का शिकार किया था। इस कारण उसका नाम फरीद से शेरखां हो गया। दो वर्ष सेवा करने के उपरान्त अपने पिता की जागीर पाने की दृष्टि से वह बाबर के पास गया। बाबर ने उसकी महानता को फौरन पहिचान लिया। वह उसे बन्दी बनाना चाहता था। परन्तु शेरखां को इसका पता चल गया। वह फौरन बिहार चला गया। इस समय बहार खां की मृत्यु हो गई थी। अतः शेरखां ने उसके पुत्र जलाल खां की नौकरी करली। जलाल खां एक नाबालिग था। इस कारण वह उसका संरक्षक बन गया और धीरे धीरे शासन की सत्ता अपने हाथों में हथियाली। इसी काल में उसने चुनार पर अधिकार कर लिया था। जागीर का सारा प्रबन्ध इसके अधिकार में होने के कारण बिहार के अन्य सरदार उससे जलने लगे और उन्होंने इसके विरुद्ध जलाल खां के कान भरना शुरू कर दिया। परन्तु उसका कोई भी कुछ बिगाड़ न कर सका और अन्त में शेरखां ने बिहार व बंगाल की संयुक्त सेना को परास्त कर बिहार पर अपना अधिकार कर लिया।

शेरखां और हुमायूँ:—बिहार पर पूर्ण रूप से अधिकार करने के उपरान्त उसने बंगाल पर दृष्टि डाली। १५३६ ई० में उसने बंगाल की राजधानी गौड़ पर अधिकार कर लिया। इस समय हुमायूँ गुजरात में बहादुर शाह को दबा रहा था। शेरखां की बंगाल विजय की सूचना पाते ही हुमायूँ शेरखां को दण्ड देने के लिए रवाना हुआ। परन्तु धूर्त एवं राजनीतिज्ञ ने १५३६ में हुमायूँ को चौसा के स्थान

पर हरा दिया और इसके एक वर्ष बाद ही १५४० में हुमायूँ को फिर कन्नौज की लड़ाई में हराया। इस विजय के परिणाम स्वरूप हुमायूँ को देश छोड़ना पड़ा और शेरशाह उसके स्थान पर दिल्ली व आगरा का शासक बन गया।

शेरखां का बादशाह बनना:—कन्नौज के युद्ध में परास्त हुमायूँ देश छोड़कर सिन्ध होता हुआ फारस चला गया। इस प्रकार हुमायूँ का रिक्त सिंहासन इसके अधिकार में आ गया और वह अब शेरशाह कहलाने लगा।

शेरशाह की अन्य विजय:—हुमायूँ के पलायन के उपरान्त शेरशाह की सेना ने उत्तरी भारत पर अधिकार कर लिया। पंजाब का सूबेदार शेरशाह के भय से बिना युद्ध किए ही काबुल लौट गया। इसके पश्चात शेरशाह ने मध्यभारत तथा राजपूताने की ओर ध्यान दिया। ग्वालियर पर अधिकार के अनन्तर १५४२ ई० में उसने मालवा को अपने आधीन कर लिया। मालवा की विजय के पश्चात उसने रायसीन के नरेश पूरनमल पर आक्रमण किया और उसे हथियार डालने को बाध्य किया। शेरशाह का सबसे कठिन आक्रमण मारवाड पर हुआ। मारवाड के नरेश मालदेव को पराधीन करने में शेरशाह को धन और जन की अपार हानि उठानी पड़ी। इसी कारण विजय प्राप्ति पर शेरशाह ने कहा—एक **मुट्ठी भर बाजरे के लिए मैंने समस्त साम्राज्य खो दिया।** उसका अन्तिम आक्रमण कालिंजर पर था। यह आक्रमण १५४५ ई० में किया गया था और बारूद खाने में आग लग जाने के कारण शेरशाह जल गया और स्वर्गगति को प्राप्त हुआ।

शेरशाह का शासन प्रबन्ध :—

शेरशाह एक योग्य सेनानायक तथा राज्य निर्माता ही न था। वह एक कुशल शासक भी था। यही कारण था उसका शासन काल इतिहास में अल्पकालीन होता हुआ भी इतना महत्वपूर्ण समझा जाता है। उसका जागीरदारों के साथ ऐसा व्यवहार था जैसा कि हैनरी सप्तम का सामन्तों के साथ था। आन्तरिक शान्ति स्थापित करने में वह उसी प्रकार सफल रहा जिस प्रकार कि प्रशा का फ्रेडरिक विलियम। उसने प्रशासन में एक नवीन धारा को जन्म दिया। उसके पूर्वज दिल्ली के शासक सर्व प्रथम अपने वंश को सुरक्षित रखने की ओर ध्यान देते थे और हिंदुओं को वे अपना दुश्मन समझते थे। परन्तु इसके प्रशासन का मुख्य उद्देश्य जनसाधारण का भला करना था। वह धर्म के बहाने हिन्दुओं को सरकारी उच्च पदों से वंचित नहीं करना चाहता था। आर. पी. त्रिपाठी तथा परमात्मा शरण की मान्यता यह है कि—**शेरशाह एक सुधारक मात्र था और उसे नई व्यवस्थाओं का प्रवर्त्तक मानना बड़ी भूल है।** उसने अपने शासन के पांच वर्षों में शासन के विभिन्न विभागों में विभिन्न प्रकार के सुधार किए।

केन्द्रीय शासनः—शेरशाह का शासन स्वेच्छाचारी तथा निरंकुश था। शासन का वह स्वयं प्रधान था और उसके मन्त्री केवल उसके सचिव मात्र थे। शासन की समस्त बागडोर उसके हाथ में थी। अब्बास लिखता है कि शेरशाह शासन के प्रत्येक कार्य को स्वयं देखता था चाहे वह कार्य छोटा हो या बड़ा। धार्मिक सहिष्णुता के कारण वह हिन्दुओं को भी उच्च पदों पर आसीन करता था। अपराध करने पर कठोर दण्ड दिया जाता था। उसके राज कर्मचारी अकारण राज्य-कार्यों में हस्तक्षेप नहीं करते थे और न वे जनता को ही परेशान करते थे। राज्य-कोष की देखभाल भी वह स्वयं ही करता था। इस प्रकार स्पष्ट है कि उसका शासन एक-तन्त्रात्मक रूप धारण किये हुए था।

प्रान्तीय शासनः—शासन की सुविधा के लिए साम्राज्य ४७ विभागों में विभक्त था। ये भाग 'सरकार' कहलाते थे। प्रान्तपतियों की नियुक्ति शेरशाह स्वयं करता था और वे प्रत्येक कार्य में केन्द्रीय सरकार के प्रति उत्तरदायी होते थे। ये सरकार परगनों में विभक्त थे। परगनों की देखभाल के लिए एक अमीन, एक शिकदार, एक कोषाध्यक्ष, एक हिन्दू और एक मुस्लिम लेखक होता था। गांव की देखरेख पटवारी तथा चौधरी के द्वारा होती थी।

सैनिक प्रबन्धः—सैनिक प्रबन्ध में उसने अलाउद्दीन का अनुकरण किया। सेना की व्यवस्था केन्द्र के आधीन थी। जैसा कि हम उसके अन्य सुधारों से देखेंगे कि वह प्रजा से सीधा सम्पर्क में आना चाहता था—ठीक यही उद्देश्य उसकी सैनिक प्रबन्ध में था। प्रत्येक सैनिक के विषय में वह जानकारी रख सके और उसे वह अपना स्वामिभक्त बना सके—इस दृष्टिकोण से सैनिकों की भर्ती वह स्वयं करता था। उनकी समय समय पर वेतन वृद्धि भी उसकी निगरानी में होती थी। सेना पर नियन्त्रण कठोर था। उनको वेतन नकद दिया जाता था। जागीरदारी प्रथा नहीं थी। घोड़ों को दगवाया जाता था ताकि एक अमीर दूसरे अमीर के घोड़ों से अदला बदली न कर सके। हिन्दुओं को सेना में रखा जाता था। सैनिकों को आज्ञा थी कि वे किसानों के खेतों को नष्ट न करें। उसके पास १,५०,००० अश्वारोही, २५,००० पैदल तथा ५ हजार हाथी थे। सेना युद्ध-विद्या में दक्ष थी। इस सेना के सहारे ही शेरशाह अपने इस अल्पकालीन तथा संघर्षमय जीवन में सफल रहा।

भूमि प्रबन्धः—शेरशाह के भूमि-सम्बन्धी सुधार उसकी मौलिकता के परिचायक हैं। जिस प्रकार के सुधार उसने अपनी जागीर में प्रचलित किए थे उन्हीं को विकसित उसने अपने शासन काल में किया। शेरशाह से पूर्व भूमि की कोई ठीक नांप नहीं करवाई गई थी। इसके अलावा लगान की दर भी निश्चित नहीं थी। मुस्लिम

शासक मनमाने ढंग से लगान वसूल करते थे। लगान वसूली में उनका उद्देश्य किसानों को समृद्ध बनाना नहीं था वरन् उनका शोषण करना था। शेरशाह इसके विपरीत था। शेरशाह की मान्यता थी कि कृषकों की समृद्धि में साम्राज्य की समृद्धि निहित है। अतः उसने भूमि की नाप करवाई और पैदावार का कुल $\frac{1}{3}$ भाग लगान के रूप में लेने का आदेश दिया। कृषकों को यह छूट थी कि वे लगान चाहे नकद दें या अनाज के रूप में। यदि किसी कारणवश कोई किसान समय पर लगान देने में असमर्थता प्रकट करता तो उसे मोहलत दी जाती थी। किसानों से न कोई राज कर्मचारी रिश्वत ले सकता था और न उनको परेशान कर सकता था।

न्याय व्यवस्था:—शेरशाह न्यायरूपी रत्न से अलंकृत था और वह प्रायः यह कहा करता था—"**धार्मिक कृत्यों में न्याय सर्वश्रेष्ठ है**। उसकी धारणा थी कि बिना दण्ड के न्याय रह नहीं सकता।" अपराधी के अपराध की जानकारी वह पूरी सतर्कता से करता था और जब उसे पता लग जाता कि यह वास्तव में अपराधी है तो उसे अवश्य दण्ड देता था। उसके राज्य में कानून सब लोगों के लिए समान रूप से थे। प्रत्येक स्थान पर उसने न्याय व्यवस्था की थी। फौजदारी के अभियोगों का निर्णय प्रधान शिकदार द्वारा तथा मालगुजारी अभियोगों का प्रधान मुन्सिफ द्वारा होता था। यह उसकी सुन्याय व्यवस्था का ही परिणाम था कि उसके राज्य में चोरी चकोरी का भय नहीं रहा था। तवकाते अकबरी का निजामुद्दीन अहमद लिखता है—"**शेरशाह के शासन में कोई भी सौदागर रेगिस्तान में यात्रा करता हुआ सो भी सकता था और लुटेरों द्वारा माल असबाब के लूटे जाने का कोई भय नहीं रहता था**"।

पुलिस प्रबन्ध:—आन्तरिक शान्ति की व्यवस्था के लिए शेरशाह ने पुलिस की व्यवस्था की थी। डाक्टर आर्शीवादीलाल श्री वास्तव का मत है कि शेरशाह के काल में पुलिस विभाग पृथक नहीं था वरन् सेना को ही दोहरे कर्त्तव्यों का पालन करना पड़ता था। राज्य में होनेवाली चोरियों तथा हत्याओं का पता पुलिस को ही लगाना पड़ता था। जो पुलिस कर्मचारी इसमें असफल होता उसे कठोर दण्ड दिया जाता था। सरकार में शान्ति रखने का कार्य शिकदार का था तथा गांवों में अमन चैन रखना चौधरी का कार्य था। मुखिया को अपने गांव में होने वाली चोरी व हत्या का पता लगाना पड़ता और यदि वह इस कार्य में असफल रहता तो चोरी के जुर्म हर्जाना तथा हत्या के मामले में उसे अपना सिर देना पड़ता था। इस कारण शेरशाह के राज्य में चोरी का भय बिल्कुल नहीं था। शेरशाह के पुलिस प्रबन्ध के विषय में अब्बास सरवानी ने लिखा है—"**शेरशाह के राज्य-काल में राहगीर अपनी चीज-बस्तों की निगरानी रखने की चिन्ता से मुक्त थे।**"

गुप्तचर विभागः—शेरशाह भी अलाउद्दीन की भांति बलापहरन वाला था। वह जानता था कि अपने राज्य को बनाये रखने के लिये मुझे साम्राज्य में घटने वाली प्रत्येक घटना का हाल मालुम होना चाहिए। इस कारण उसने भी अलाउद्दीन ख़िलजी की भांति अपने यहां एक गुप्तचर विभाग स्थापित किया। शेरशाह के ये गुप्तचर राज्य के उच्च पदाधिकारियों तथा अमीरों की सब खबरें उसके पास भेज दिया करते थे। शेरशाह के शासन की सफलता का श्रेय बहुत कुछ इस गुप्तचर विभाग को ही है।

यातायात के साधन तथा डाक प्रबन्धः—गूढ़ राजनीतिज्ञ शेरशाह इस तथ्य से भली भांति परिचित था कि राज्य की शान्ति तथा समृद्धि में यातायात के साधनों का स्थान प्रमुख है। देश का व्यापार तभी उन्नत होगा जबकि वहां सड़कें अच्छी हों। अतः उसने अपने काल में चार बड़ी सड़कें बनवाईं। वर्तमान ग्राण्ड ट्रंक रोड का निर्माण शेरशाह ने कराया था। ग्रान्ड ट्रंक कलकत्ते से पेशावर जाती है। एक सड़क आगरे से बुरहानपुर तक तथा अन्य आगरे से बियाना तक जाती है। चौथी सड़क मुल्तान से लाहौर तक जाती थी। सड़कों पर यात्रियों के विश्राम के लिए उसने धर्मशालाएँ बनवाई थी। धर्मशाला में हिन्दू व मुसलमानों को पूजा व नमाज पढ़ने का उचित प्रबन्ध था। इसके अलावा यात्रियों को अन्य सुविधाएँ प्राप्त थीं। इन सरायों से शेरशाह ने डाक चौकियों का भी काम लिया। घुड़सवार एक सराय से दूसरी सराय तक डाक पहुंचाते थे। डा. कानूनगो के शब्दों में ये सराय–**"साम्राज्य रूपी शरीर की धमनियां थीं"**।

शेरशाह का इतिहास में स्थानः—यद्यपि शेरशाह ने मुश्किल से पांच वर्ष राज्य किया तो भी इन पांच वर्षों में ही वह वे कार्य कर गया जिनसे आज भी वह जगत में अमर बना हुआ है। वह केवल भारत के ही महान् शासकों में नहीं गिना जाता वरन् उसकी गिनती विश्व के महान् शासकों में होती है। शेरशाह एक साधारण जागीरदार का लड़का था और वह अन्त में भारत का सम्राट बन गया। इससे स्पष्ट है कि वह कितना प्रभावशाली एवं योग्य शासक था। शासन कार्यों में वह पूर्ण पटु था। एलफिन्सटन लिखता है–**"शेरशाह एक दूरदर्शी तथा योग्य शासक था"**। बी० ए० स्मिथ ने तो यहां तक लिखा है कि **"यदि वह कुछ समय और जीवित रह जाता तो महान् मुगल सम्राट इतिहास के रंगमंच पर नहीं आते"**। यद्यपि शेरशाह कट्टर मुसलमान था। परन्तु उसमें धार्मिक सहिष्णुता थी। धर्म के नाम पर उसने कभी हिन्दुओं पर अत्याचार नहीं किये। इस कार्य में वह अपने पूर्वज मुस्लिम शासकों तथा बाद के कतिपय मुगल सम्राटों से आगे था। प्रशासन के दृष्टिकोण से आर० पी० त्रिपाठी लिखता है–**"दिल्ली के समस्त मुस्लिम**

शासकों में शेरशाह ही प्रथम शासक था जिसे कि प्रशासन कार्यों का पूर्ण अनुभव था।" शेरशाह प्रथम मुस्लिम शासक था जिसने प्रजा की भलाई को अपने शासन का आधार बनाया और एक आधुनिक ढंग की सुव्यवस्थित शासन व्यवस्था की नींव डाली जिसको **उसके** बाद में आने वाले मुगल सम्राटों तथा ब्रिटिश शासकों ने भी अपनाया। मि० कीनी लिखते हैं—"किसी भी सरकार ने, ब्रिटिश सरकार ने भी इतनी बुद्धिमता का परिचय नहीं दिया जितना कि इस अफगान शासक शेरशाह ने।" एच० एल० ओ० गैरेट लिखता है—**"पांच वर्ष के थोड़े समय में ऐसे योग्यतापूर्ण बुद्धिमता से काम करने वाले बहुत ही कम हुए हैं।"** साम्राज्य में फैली अराजकता को इसने दूर किया तथा जनसाधारण पर होने वाले अत्याचारों को उसने रोका व चोरी के भय से जनता को मुक्त किया। यह कार्य उसका एक महान् प्रशंसनीय कार्य था। ई० बी० हैवेल की मान्यता है कि—**"अनवरत अत्याचारों से पीड़ित प्रजा को लूटमार से छुटकारा दिलाकर शांति एवं सुरक्षापूर्ण वातावरण पैदा करने का श्रेय इसी अफगान बादशाह को है।"**

अध्याय सार

प्रस्तावना:—पानीपत की पहिली लड़ाई में परास्त अफगान सरदारों ने बिहार में आश्रय लिया। अफगान सरदार मुग़ल साम्राज्य को नष्ट करना चाहता था। शेरशाह बाबर के पुत्र हुमायूँ को पदच्युत कर इस उद्देश्य में सफल हुआ।

प्रारम्भिक जीवन:—शेरशाह के बचपन का नाम फरीद था। इसका पिता हसनखां सहसराम का जागीरदार था। पिता का प्रेम इसकी सौतेली (हिन्दुस्तानी) मां से अधिक था। सौतेली माता के व्यवहार से तंग आकर वह जौनपुर भाग गया।

जागीरदार के रूप में:—जौनपुर के सूबेदार जमाल खां के आग्रह से यह अपने पिता के साथ वापिस आ गया। पिता की जागीर का कार्य इसने बड़ी योग्यता से चलाया। जागीर के गांव में इसकी ख्याति होते देख इसकी सौतेली मां ने इसे फिर घर छोड़ने को बाध्य कर दिया।

संरक्षक के रूप में:—कई जगह नौकरी करता हुआ वह बिहार गया। वहां जलाल खां की सेवा करने लगा। परन्तु जलाल खां एक नाबालिग था। इस कारण वह ही उसका संरक्षक हो गया।

शेरखां तथा हुमायूँ:—बिहार में शेर का शिकार करने के कारण फरीद अब शेरखां हो गया था। बिहार पर अधिकार हो जाने पर उसने बंगाल पर आक्रमण किया। इस पर हुमायूँ के और उसके बीच चौसा तथा कन्नौज आदि दो स्थानों में लड़ाई

हुई। शेरखां दोनों लड़ाइयों में विजयी रहा और दिल्ली का सम्राट बन गया।

अन्य विजयः—शेरशाह एक महत्वाकांक्षी शासक था। दिल्ली और आगरे पर अधिकार करते ही उसने पंजाब, ग्वालियर, मालवा, रायसीन तथा मारवाड़ आदि प्रदेशों को जीत लिया। उसका अन्तिम आक्रमण कालिंजर पर हुआ जहां कि वह बारूद खाने में आग लग जाने के कारण मर गया।

शासन प्रबन्ध

केन्द्रीय शासनः—शेरशाह अपने राज्य का एकछत्र शासक था। उसके मन्त्री केवल सचिव थे और राज्य का समस्त कार्य वही करता था।

प्रान्तीय शासनः—समस्त साम्राज्य ४७ विभागों में विभक्त था। ये विभाग सरकार कहलाते थे जो कि परगनों में विभक्त थे। सूबेदारों की नियुक्ति स्वयं शेरशाह करता था।

सैनिक प्रबन्धः—सैनिकों की भर्ती तथा उनका वेतन निश्चित वह स्वयं करता था। सेना में कठोर नियन्त्रण था। सैनिकों को नकद वेतन दिया जाता था व घोड़ों को दगवाया जाता था।

भूमि प्रबन्धः—इसका भूमि प्रबन्ध किसानों की भलाई पर आधारित था। भूमि की नांप कराकर पैदावर का ⅓ भाग लगान के रूप में लगाया। लगान किसान नकद व अनाज दोनों में दे सकते थे। किसानों को कोई तंग नहीं कर सकता था।

न्याय व्यवस्थाः—न्याय को शेरशाह सबसे बड़ा धार्मिक कार्य समझता था। इस कारण न्याय की तराजू में सबको समान समझते हुए वह अपराधियों को कठोर दण्ड देता था।

पुलिस प्रबन्धः—आन्तरिक शान्ति के लिए पुलिस का पर्याप्त प्रबन्ध था।

गुप्तचर विभागः—राज्य की घटनाओं का समय २ पर पता लगाने की दृष्टि से उसने गुप्तचर विभाग की स्थापना की थी।

यातायात के साधन तथा डाक प्रबन्धः—यातायात के साधनों का सही महत्व समझते हुए उसने चार बड़ी सड़कों का निर्माण कराया। ग्रान्ड ट्रंक उनमें प्रमुख है। सड़कों पर सरायें बनाईं। सरायें यात्रियों के विश्राम के लिए तो थी ही परन्तु साथ में वे डाक चौकियों का भी काम देती थी।

शेरशाह का इतिहास में स्थानः—राजनीतिज्ञ व सफल प्रशासक की हैसियत से शेरशाह का स्थान न केवल भारत के महान् वरन् विश्व के महान् सम्राटों में माना जाता है। प्रशासन में वह ब्रिटिश शासकों से भी बढ़कर था।

प्रश्न

१. शेरशाह के व्यक्तित्व पर प्रकाश डालते हुये उसका चरित्र-चित्रण कीजिए।

Give an estimate of the character and the personality of Shershah.

२. शेरशाह ने अपनी सरकार को स्थाई व जनता को सुखी बनाने के लिये क्या प्रयत्न किया ?

What were the measures which were adopted by Shershah for the stability of the Government and the property of the people.

३. आप किस आधार पर कहते हैं कि शेरशाह भारत के महान् सम्राटों में से एक था ?

On what grounds do you hold that Shershah was one of the greatest Sovereigns of India.

४. किन किन बातों में शेरशाह अकबर का अगुवा कहा जा सकता है ?

In what respects may Shershah be regarded the forrunner of Akabar.

५. शेरशाह द्वारा किए गये विभिन्न सुधारों का उल्लेख कीजिए और उसके राजतन्त्र सम्बन्धी सिद्धान्तों पर प्रकाश डालिए।

Enumerte the various reforms introduced by Shershah and discuss his Concept of Monarchy.

६. "शेरशाह ने बिना जाने ही अकबर के महान् बनने की नीव डाली" समझाइये।

"Shershah unconsciously laid the foundation of Akabar's greatness" Discuss.

अध्याय चौथा

मुगल साम्राज्य का विकास काल

(अकबर)

प्रस्तावना–अकबर का गद्दी पर बैठना तथा भारत की तत्कालीन दशा–प्रारम्भिक कठिनाइयां–राज्य का विस्तार–अकबर का राजपूतों के साथ व्यवहार–धार्मिक नीति–सामाजिक सुधार–कला व साहित्य का विकास–शासन प्रबन्ध–अन्तिम दिन–इतिहास में स्थान

प्रस्तावना:—मुगल वंश के दूसरे शासक हुमायूँ ने अभी अपना खोया हुआ साम्राज्य अफगानों के चंगुल से मुक्त कराया ही था कि परमपिता परमात्मा ने उसको (१४ जनवरी १५५६) इस सांसारिक जीवन से मुक्ति दिलादी। जो अफगान लोग शक्तिशाली बन गये थे उनको हुमायूँ दबा नहीं पाया था। वह केवल दिल्ली व आगरे का स्वामी ही बन पाया था। बाबर की भांति हुमायूँ भी अपने आपको विदेशी समझता था। अतः भारतवासियों से उसका सीधा सम्पर्क नहीं था। मुगल साम्राज्य की स्थिति डांवाडोल थी। अफगान लोग मुगलों को भारत से खदेड़ने का प्रयास कर रहे थे। इसी कारण जब हुमायूँ अचानक सीढ़ी से फिसलकर इस लोक से विदा हो गया तो यह दुखद समाचार १३ वर्षीय अकबर ने उत्तरी पंजाब में सुना, जबकि वह मनकोट स्थान पर सिकन्दर सूर से युद्ध कर रहा था। इसी तेरह वर्षीय बालक ने नाना प्रकार की कठिनाइयों का सामना करते हुए अस्थिर मुगल साम्राज्य की नींव को दृढ़ कर उस पर मुगल साम्राज्य का भव्य प्रासाद खड़ा किया।

अकबर का गद्दी पर बैठना व भारत की तत्कालीन दशा:—जब हुमायूँ भारत से फारस जा रहा था तो अमरकोट में उसकी बैरामखां से मुलाकात हुई। बैरामखां इस काल से सदा हुमायूँ के साथ रहा। वह एक बड़ा स्वामीभक्त नौकर था। हुमायूँ उसे 'परिवार का दीप' कहता था। इस मनकोट के संघर्ष में बैरामखां अकबर के साथ था। उसने देश की परिस्थिति को समझते हुए अकबर को १४ फरवरी १५५६ को कलानूर नामक स्थान पर बादशाह घोषित कर दिया।

जैसा कि स्पष्ट है कि अफगान लोग मुगलों को निकालने का सतत प्रयास कर रहे थे। अकबर जब पंजाब में था तो दिल्ली पर आदिलशाह के सेनापति हेमू ने अधिकार कर लिया। इसलिए स्मिथ का यह कहना सही है कि कलानूर स्थान की घोषणा से अकबर केवल नाम मात्र का बादशाह बना था। अफगानों के अतिरिक्त

राजपूताने की समस्त राजपूत रियासतों के शासक स्वतन्त्रता से शासन चला रहे थे। बंगाल और बिहार में अफगानों का शासन कायम था। दक्षिणी भारतवर्ष में अहमदनगर, गोलकुण्डा, बीदर, बरार तथा बीजापुर के स्वतन्त्र राज्य स्थापित हो ही चुके थे। इस प्रकार से हम देखते हैं कि अकबर के राज्य सिंहासन के समय मुगल साम्राज्य अति सीमित तथा नाममात्र का था।
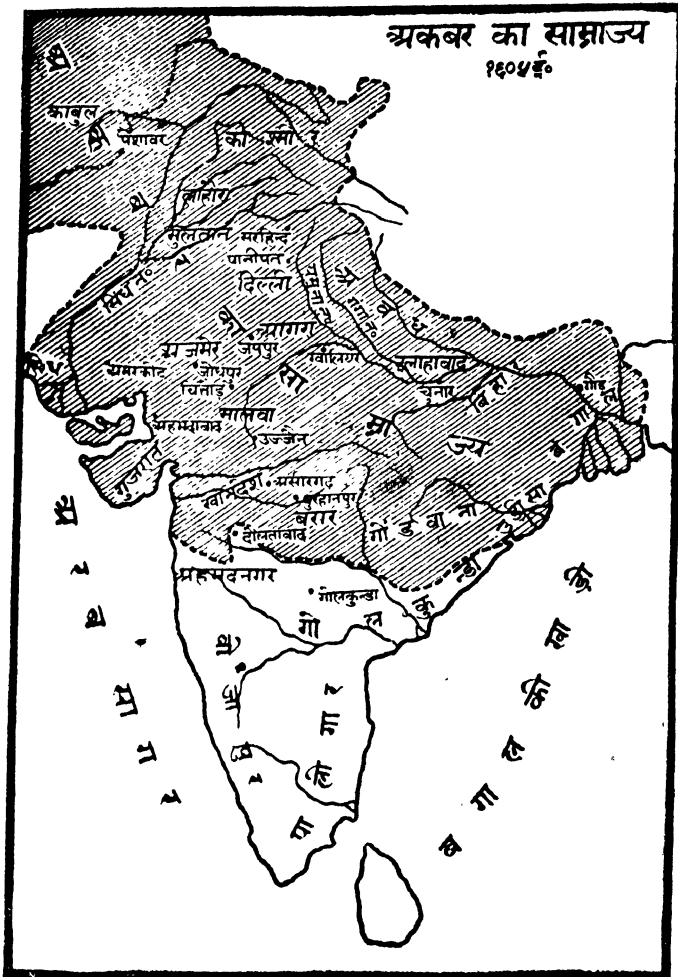
प्रारम्भिक कठिनाइयां

अकबर और अफगान:—अकबर बैरामखां के संरक्षण में सिकन्दर सूर की सेना को परास्त कर दिल्ली की ओर बढ़ ही रहा था कि उसे दिल्ली के सूबेदार

हार्डीबेग द्वारा पता चला कि दिल्ली पर हेमू ने अधिकार कर लिया है। हेमू रेवाड़ी का बनिया था और वह अपने रण चातुर्य से आदिलशाह की सेना का प्रधान बन गया था। दिल्ली पर अधिकार कर लेने के उपरान्त वह विशाल सेना के साथ वहीं जम गया और अपने आपको विक्रमाजीत की पदवी से विभूषित किया। दिल्ली की हालत इस समय खराब थी। मानव और पशु दोनों को खाद्य सामग्री उपलब्ध नहीं थी। लेकिन इसके एक लाख सैनिक तथा १५०० हाथी पानीपत के मैदान पर जमे हुये थे। इसकी विशाल सेना की खबर सुनते ही मुगल सैनिक घबरा गये और उन्होंने पीछे पांव रखना आरम्भ किया। परन्तु वीर बैरामखां ने उनको आगे बढ़ने के लिए प्रोत्साहन दिया। अकबर ने इसका समर्थन किया।

५ नवम्बर १५५६ को दोनों सेनाएँ उसी पानीपत के मैदान में आ डटी जहां पर कि बाबर ने इब्राहीम लोदी को परास्त कर मुगल साम्राज्य की नींव डाली थी। हेमू इस लड़ाई में बहुत वीरता से लड़ा और उसके पहले आक्रमण ने ही अकबर की समस्त सेना को तितर बितर कर दिया। इतिहासकार ऐसा मानते हैं यदि हेमू की आंख में तीर नहीं लगता तो विजय हेमू की होती। परन्तु इस समय अकबर के भाग्य का सितारा उत्कर्ष पर था। हेमू बन्दी बनाया गया। और बैरामखां द्वारा मौत के घाट उतार दिया गया। पानीपत की यह दूसरी लड़ाई भी बड़ी निर्णायक सिद्ध हुई। यदि पहली लड़ाई ने मुगल साम्राज्य की नीव डाली तो दूसरी लड़ाई ने उसको सुदृढ़ किया। अफगानों की शक्ति सदैव के लिए अस्त हो गई और मुगल साम्राज्य भारत में मजबूती से कायम हो गया।

बैरामखां का विद्रोह:—बैरामखां सिया मजहब का मानने वाला था। और बदखशाह का रहने वाला था। इसने अपने नये मालिक की भी ४ साल तक अच्छी तरह सेवा की। ग्वालियर और जौनपुर भी इसके द्वारा मुगल साम्राज्य में मिलाये गये परन्तु यह मुगल साम्राज्य का पायलट १५६० में अकबर द्वारा उसी प्रकार गिरादिया गया जिस प्रकार कि १८६० में जर्मन का बिस्मार्क विलियम केसर द्वारा गिरा दिया गया था। बैरामखां के पतन के कारण इस प्रकार बताये जाते हैं :— (i) शिया मजहब का अनुयायी होना। (ii) तार्डी बेग का कत्ल करना। (iii) अकबर के जेब खर्च पर नियन्त्रण करना। (iv) अपने कृपा पात्रों को उच्च पदों पर आसीन करना और (v) हरम की बेगमों का उसके प्रति अविश्वास होना।

बन्दी बनाये जाने पर उसने मक्का जाने की इच्छा प्रकट की। अकबर ने उसको अनुमति देदी। परन्तु जब वह मक्का गुजरात होता हुआ जा रहा था तो एक अफगान द्वारा वह कत्ल कर दिया गया। उसका छोटा पुत्र अब्दुलरहीम बच गया जा कि आगे जाकर अब्दुल रहीम खानखाना के नाम से प्रसिद्ध हुआ। अबुलफजल जो

कि उसका विरोधी था उसने भी यह माना है कि बैरामखां वास्तव में एक नेक तथा एक अच्छे गुणों वाला व्यक्ति था । वूल्जे की तो यहां तक मान्यता है कि यह बैरामखां ही था। जिसके कारण अकबर साम्राज्य का मालिक बन सका।

अन्तःपुर का शासनः—बैरामखां के पतन के उपरान्त भी अकबर एक स्वतन्त्र शासक न बन सका। बैरामखां के नियन्त्रण के समाप्त होते ही वह अन्तःपुर के शासन के प्रभाव में आ गया। उस पर उसकी धाय माहम अंगा का प्रभाव बहुत था। उसने अपने कृपा पात्रों को ऊँचे पद देना आरंभ किया। माहम का पुत्र अधमखां उदण्ड हो गया था। एक दिन अधमखां ने शम्सुद्दीन अतकखां की हत्या करवा दी। इस पर अकबर को बड़ा क्रोध आया। और उसने अधमखां को किले के परकोटे से (१५६२) गिराकर मरवा दिया। जब अकबर ने अधमखां की मृत्यु के समाचार उसकी माता माहम को सुनाया तो उसने कहा, "जहांपनाह ने जो कुछ किया वह ठीक ही किया है।" पुत्र के वियोग से ४० दिन उपरान्त माता का भी देहान्त हो गया। इस प्रकार अकबर अन्तःपुर के शासन से मुक्त हुआ और राज्य की समस्त सत्ता अपने हाथों में लेकर वह स्वतन्त्रता से देश का शासन चलाने लगा।

राज्य का विस्तारः—अकबर एक महत्वाकांक्षी शासक था। वह आगरे और दिल्ली के साम्राज्य से सन्तुष्ट रहने वाला नहीं था। उसकी धारणा थी कि सम्राट को सदैव साम्राज्य विस्तार में संलग्न रहना चाहिये अन्यथा उसके पड़ौसी उसे कभी शान्त नहीं रहने देंगे। इसी कारण वह अपने राज्यारोहण से १६०१ ई. तक निरन्तर संघर्ष करता रहा और भारत के विभिन्न प्रदेशों को अपने अधीनस्थ करता रहा। उसके समय की प्रमुख विजयें निम्नलिखित हैं:—

अजमेर, ग्वालियर तथा जौनपुर की विजयः—सिकन्दर सूर के समाप्त होते ही मेवात और अजमेर पर अकबर का अधिकार हो गया। बैरामखां ने ग्वालियर को मुगल राज्य में विलीन कर लिया। ग्वालियर के प्रसिद्ध दुर्ग पर अधिकार हो जाने से अकबर की प्रतिष्ठा काफी बढ़ी। १५५६ ई० में खान जमान ने जौनपुर पर अधिकार कर लिया।

मालवा पर विजयः—अकबर मालवा पर १५५६ ई० में ही आक्रमण करने वाला था परन्तु बैरामखां के विद्रोह से उसे यह आक्रमण स्थगित करना पड़ा। १५६१ ई० में अकबर ने अधमखां को मालवा विजय के लिये भेजा। मालवा का इस समय शासक बाज बहादुर था। बाज बहादुर परास्त हुआ। लूट का सारा सामान अधमखां ने अपने पास रख लिया और बन्दियों के साथ भी उसने बड़ी क्रूरता का

बर्ताव किया। इस पर अकबर को बड़ा क्रोध आया और वह स्वयं अचानक मालवा पहुँचा। वहां उसने वीर मुहम्मद को मालवा का सूबेदार नियुक्त किया। परन्तु वीर मुहम्मद की सरकार को निर्बल देखकर बाज बहादुर ने पुनः मालवा पर अधिकार कर लिया। इस पर अकबर ने अब्दुला खां उजबेग को मालवा भेजा और उसने मालवा को फिर से अकबर के आधीन कर दिया।

गौंड़वाना की विजयः—गौंड़वाना उस समय एक छोटी सी रियासत थी। उसका शासक वीर नारायण था। वह एक अल्पवयस्क था और उसकी माता रानी दुर्गावती उसकी संरक्षिता थी। साम्राज्यवाद की क्षुधा ही ऐसी होती है कि वह न कभी सन्तुष्ट होती है और न उचित अनुचित का ध्यान रखती है। अकबर ने आसफखां को गौंड़वाना विजय करने भेजा। रानी दुर्गावती बड़ी बहादुरी से लड़ी। परन्तु उसकी आंख में तीर लग जाने से वह घायल हो गई। वीर नारायण व रानी दुर्गावती दोनों वीर गति को प्राप्त हुए और गौंडवाने पर मुगल प्रभुत्व जम गया।

राजपूताने की विजयः—राजपूत जाति भारत में एक वीर जाति समझी जाती थी। उनका त्याग व देश प्रेम सराहनीय था। महमूद गजनवी के आक्रमण के पश्चात् जब निरन्तर मुसलमानों के भारत पर आक्रमण होने लग गये तो बहुत से राजपूत अरावली पहाड़ के आश्रय में आ गये थे। धीरे धीरे इन्होंने यहीं छोटे-छोटे राज्य स्थापित कर लिये जो कालान्तर में राजपूताना के नाम से कहलाने लगे। ये रियासतें अकबर के शासन से पूर्व स्वतन्त्र थीं। अकबर एक सफल राजनीतिज्ञ था। वह अपने साम्राज्य को बनाये रखने के लिये राजपूतों से मित्रता करना चाहता था। भाग्यवश १५६२ में जब वह ख्वाजा मुईनुद्दीन की दरगाह के दर्शन के लिये अजमेर आ रहा था तो आमेर के नरेश बिहारीमल से उनकी मुलाकात हुई। यह मुलाकात शीघ्र ही मित्रता में परिणित हो गई। बिहारीमल ने योद्धाबाई की शादी अकबर के साथ करके मित्रता के सम्बन्ध को और भी दृढ़ कर लिया। बिहारीमल का पुत्र मानसिंह अकबर का सेनापति नियुक्त हुआ।

डा० बेनी प्रसाद का कहना है–"**इससे भारतवर्ष के इतिहास में एक नये युग का प्रारम्भ हुआ।**" राजपूत जो अब तक मुसलमानों के शत्रु बने हुये थे, वे मुगल सम्राट के मित्र हो गये। आमेर नरेश के इस कार्य का अनुकरण बीकानेर व जैसलमेर नरेशों ने भी किया। इस प्रकार राजपूताने की बहुत सी रियासतें तो बिना युद्ध के ही मुगल साम्राज्य में विलीन हो गईं। अन्य रियासतों को अकबर ने युद्ध के द्वारा मिलाया उनमें मेवाड़ प्रमुख है।

मेवाड़ के महाराणा अपने त्याग व वीरता के लिये सदा से विख्यात रहे हैं। परन्तु उदयसिंह इतने वीर न थे जितने कि राणा संग्रामसिंह। इस कारण उन्होंने

मुगलों का अधिपत्य मान लिया था। परन्तु जब १५७२ में महाराणा उदयसिंह इस लोक से विदा हो गये तो उनका स्थान राणा प्रताप ने लिया। राणा प्रताप में राणा संग्राम सिंह का रक्त बह रहा था। वह स्वतन्त्रता का सच्चा उपासक था। उसने राणा बनते ही मेवाड़ को स्वतन्त्र कराने का प्रण किया। यद्यपि १५७६ हल्दीघाटी की लड़ाई में महाराणा प्रताप असफल रहे, परन्तु धीरे धीरे उन्होंने सिवाय चित्तौड़गढ़ के सारे मेवाड़ को मुगलों से मुक्त करा लिया था। राणा प्रताप से लोहा लेना अकबर को बहुत मेंहगां पड़ा।

राजस्थान में चित्तौड़गढ़ के दुर्ग के बाद दूसरा नम्बर रणथम्भौर के दुर्ग का आता है। अकबर के समय में सुर्जन हाड़ा वहां के राजा थे। अकबर ने धूर्तता से इसे भी विजय कर लिया। जोधपुर नरेश चन्द्र सेन ने बिना युद्ध के ही मुगलों की आधीनता स्वीकार कर ली। राजपूताने की विजय अकबर के शासनकाल की एक महान् विशेषता मानी जाती है। वास्तव में देखा जाय तो **मुगल साम्राज्य मुगल शक्ति और कूटनाति तथा राजपूत वीरता एव सेवा के सामंजस्य का परिणाम है।**

गुजरात विजयः—रणथम्भौर की विजय के पश्चात् अकबर ने उपजाऊ भूमि के प्रदेश गुजरात पर अधिकार करना चाहा। वहां का शासक मुजफ्फरशाह था। मुगल सेना के भय से वह भाग गया और १५७३ ई० में गुजरात मुगल साम्राज्य का एक भाग बन गया।

बंगाल विजयः—१५७४ ई० में अकबर स्वयं बंगाल गया। वहां के शासक दाऊदखां पर आक्रमण किया और उसे परास्त कर दिया। परन्तु थोड़े दिनों के उपरान्त ही उसने पुनः बंगाल पर अधिकार कर लिया। किन्तु १५७६ ई० में वह राजमहल के युद्ध में मारा गया और बंगाल मुगल साम्राज्य का एक अंग बन गया।

उत्तर पश्चिमी सीमा प्रान्तः—

(i) काबुल—जब तक काबुल का सूबेदार हकीम मिर्जा रहा अकबर ने वहां कुछ भी हस्तक्षेप नहीं किया। परन्तु १५८५ ई० में जब वह मर गया तो काबुल को मुगल साम्राज्य में मिला लिया गया।

(ii) काश्मीर—काश्मीर के प्राकृतिक सौन्दर्य पर रीझ कर अकबर ने १५८६ ई० में भगवान दास के नेतृत्व में वहां एक सेना भेजी। काश्मीर का शासक यूसुफखां था। यूसुफ ने सन्धि करली और अकबर की अधीनता स्वीकार करली।

(iii) सिन्ध—अकबर ने मुल्तान के सूबेदार मिर्जा अब्दुर रहीम को सिन्ध पर आक्रमण करने के लिए कहा। दो लड़ाइयों के उपरान्त सिन्ध के शासक जनी बेग ने अकबर की दासता स्वीकार करली।

(iv) कन्धार—भारत की सुरक्षा के लिए कन्धार का भारत में होना अत्यन्त आवश्यक था। इसलिये कन्धार को मुगल साम्राज्य का एक अंग बनाये रखने का प्रयत्न सभी मुगल शासकों ने किया। अकबर उस पर अपना शासन स्थापित करने के लिए बहुत उत्सुक था। उसने फारस के शाह अब्बास को इस समय उजबेग व तुर्कों के आक्रमण से परेशान देख १५६४ ई० वहां एक सेना भेजी और बिना युद्ध किए ही उसे १५६५ में कन्धार मिल गया। कन्धार पर अधिकार करना अकबर की गूढ़ राजनीति का परिचायक था।

दक्षिणी भारत की विजयः—

(i) अहमदनगर—उत्तरी भारत की विजय को पूर्ण कर अकबर ने पुनः दक्षिणी भारत पर दृष्टि डाली। अहमदनगर पर उस समय चांद बीबी शासन कर रही थी। जब १५६५ में मुगल सेनायें वहां पहुँची तो चांदबीबी ने वीरता से सामना किया। परन्तु अन्त में बरार का प्रदेश मुगलों को देकर उसने सन्धि करली और १६०० में अहमदनगर पूर्णतया अकबर द्वारा जीत लिया गया।

(ii) असीरगढ़—असीरगढ़ का आक्रमण अकबर का महत्वपूर्ण तथा अन्तिम आक्रमण था। असीरगढ़ व्यापार की दृष्टि से महत्वपूर्ण था। मुगल सेनाओं को ६ महिने तक यहां घेरा डाले पड़ा रहना पड़ा। अन्त में १६०१ ई० में अकबर ने उसे रिश्वत द्वारा जीता।

अकबर का राजपूतों के साथ व्यवहारः—अकबर एक बड़ा राजनीतिज्ञ शासक था और वह जन्म से शासक था। उसने अपने आपको विदेशी न समझकर भारतीय समझा। यही कारण था कि उसने भारत में प्रारम्भ से ही स्थाई सरकार की स्थापना की ओर ध्यान दिया। उसने इस बात को जान लिया कि यदि मुझे हिन्दुस्तान में शासन करना है तो बिना हिन्दुओं के सहयोग के यह सम्भव नहीं हो सकता। उसके बाद उसने यह भी देखा कि हिन्दुओं की शक्ति राजपूतों पर अवलम्बित है। अतः उसने राजपूतों को मिलाने की ओर विशेष ध्यान दिया। राजपूतों से अच्छे सम्बन्ध रखना ही अकबर की अपूर्व सूझ थी। उसकी इस नीति ने भारत में नया अध्याय आरम्भ किया।

इससे पूर्व के मुस्लिम शासकों की नीति यह थी कि राजपूतों को उच्च पद न दिया जाय। परन्तु उसने इस नीति को बदल दिया। उसने राजपूत नरेशों को प्रसन्न करने की दृष्टि से जजिया और पोल टेक्स बन्द कर दिया। इसके अतिरिक्त उसने हिन्दू मन्दिरों को धराशायी नहीं किया। इसलिए राजपूत अकबर से नाराज नहीं हुये। जैसा कि डा० त्रिपाठी ने लिखा है–"कोई भी प्राचीन हिन्दू राज्य सदैव के लिए नष्ट नहीं किया गया इसके अतिरिक्त जयपुर व बीकानेर और भी शक्तिशाली बनाये गये जिससे कि राजपूताने में शक्ति का संतुलन बना रहे।" इसके अतिरिक्त राजपूतों से मित्रता चिरस्थाई एवं प्रभावशाली बनाये रखने के लिए उसने उनके साथ वैवाहिक सम्बन्ध भी स्थापित किये। इससे मुगल एवं राजपूतों का गठन दृढ़ हुआ। यद्यपि यह कार्य सर्वप्रथम आमेर नरेश बिहारीमल द्वारा किया गया था तो भी इसका अनुकरण अन्य राजपूतों नरेशों द्वारा शीघ्र ही किया गया। यह इसी नीति का परिणाम था कि उसे मानसिंह जैसा योग्य सेनापति मिला और राजपूताने को अधीनस्थ करने के लिए उसे बहुत कम लड़ाई लड़नी पड़ी। जिस प्रकार अलाउद्दीन खिलजी के राज्य विस्तार में मलिक काफूर ने सहयोग दिया था उसी प्रकार अकबर को राज्य विस्तार में मानसिंह ने साथ दिया था। वह मानसिंह ही था जिसके कारण अकबर सीमान्त प्रान्त पर भी विजय कर सका। इसलिए उसके साम्राज्य काल में राजपूत नरेशों की ओर से कम विप्लव हुए और उन्हों के सहयोग से इतने विशाल मुगल साम्राज्य की स्थापना हो सकी।

धार्मिक नीतिः—अकबर एक सुन्नी मुसलमान था। परन्तु उसमें अपने पूर्वज तैमूरलंग तथा बाबर की तरह धार्मिक कट्टरता न थी। उसकी माता हमीदाबानू शिया थी। तथा उसका शिक्षक अब्दुल लतीफ भी उदार विचारों का व्यक्ति था। उसके अलावा कई इतिहासकारों की यह भी मान्यता है कि हुमायूँ ने फारस में शिया मजहब को स्वीकार कर लिया था। इस तरह अकबर में धार्मिक कट्टरता का न होना स्वाभाविक ही था। इसके अतिरिक्त ज्यों ज्यों समय गुजरता गया उसके धार्मिक विचारों में और भी उदारता आती गई। इसमें उसकी हिन्दू औरतों का प्रभाव भी सन्नहित था। इतिहासकार उसे अपने युग का वास्तविक प्रतिनिधि मानते हैं और जैसा कि प्रोफेसर सिन्हा लिखते हैं कि "सोलहवी शताब्दी विश्व के इतिहास में धार्मिक पुनुरुत्थान का युग है।........भारत में भी एक नवीन जागृति हुई।" इसका श्रेय अकबर को दिया जाता है। वह हिन्दुओं को काफिर न समझकर अपने प्रजानन समझता था। देवालयों के प्रति उसमें द्वेष भाव नहीं था। उसने अपने शासन काल में किसी देवालय को न तो धराशायी किया न किसी देवमूर्ति को खंडित किया। जजिया टेक्स ही ऐसा टेक्स था जो कि हिन्दू मुसलमानों में भेद की

भित्ति खड़ा करता था। इसलिए उसने उसको तथा साथ में ही धार्मिक स्थानों पर लिया जाने वाला पोलटेक्स भी हटा दिया।

उसने हिन्दू धर्म को मुस्लिम कट्टरता के आघात से बचाया ही नहीं बल्कि स्वयं ने उसका अनुकरण करना आरम्भ किया। अकबर सफेद पगड़ी पहिनता था। सिर पर तिलक लगाता था तथा माला जपता था। यह उसकी हिन्दू धर्म के प्रति निष्ठा का ज्वलंत उदाहरण है। हिन्दू औरतों के सम्पर्क में आकर उसने प्याज, लहसुन आदि खाना ही बन्द नहीं किया बल्कि कालान्तर में वह मांसाहारी भी नहीं रहा। उसने अपने काल में झरोखा दर्शन तथा तुलादान की प्रथा चालू की। होली, दशहरा आदि हिन्दू त्यौहार भी अकबर के महल में खुशी से मनाये जाते थे। इन सब बातों से स्पष्ट होता है कि अकबर हिन्दू धर्म के प्रति सहिष्णु था, और यही उसके राष्ट्रीय सम्राट होने का द्योतक है।

दीने इलाही:—अकबर के उदार धार्मिक विचारों का प्रभाव केवल उसके व्यक्तिगत जीवन तक ही सीमित न रहा वरन् वह सार्वजनिक सिद्ध हुआ। अब्दुल लतीफ व बैरामखां के प्रभाव से वह शिया मजहब से प्रभावित था तो हिन्दू बेगमों के सम्पर्क से वह हिन्दू धर्म से प्रभावित था। उसके काल में योरुपवासी भी आने लग गये थे। इससे वह पाश्चात्य धार्मिक विचारों के सम्पर्क में भी आया। जैनियों की अहिंसा से भी वह अप्रभावित न रहा। इसलिये इन धार्मिक विचारों पर वाद-विवाद करने के लिए उसने फतहपुर सीकरी मे एक इबादतखाना बनवाया। उस पर यहां सभी धर्मों के प्रचारक इकट्ठे होते थे। और अकबर उनके वाद-विवादों को सुनता था। इन सब का उस पर इतना गहरा प्रभाव पड़ा कि १५८२ में उसने अपना एक नया धर्म चलाया जिसे 'दीन इलाही' कहते हैं।

दीन इलाही इतिहासकारों के मत में कोई नया धर्म नहीं है वरन् वह हिन्दू मुसलमान, जैन व शिया मजहब का एक समन्वय था। इस धर्म के सिद्धान्त निम्न-लिखित हैं:—

(i) ईश्वर एक है और अकबर उसका सर्वोच्च पुजारी है। (ii) इस धर्म में मांस खाना वर्जित था। (iii) इस धर्म के अनुयायियों को अकबर के सामने साष्टांग प्रणाम व सिजदा करना पड़ता था। (iv) सूर्य और अग्नि की पूजा अनिवार्य थी। इस से स्पष्ट है कि उस पर पारसी धर्म का भी प्रभाव था। (v) इस धर्म के अनुसार जब इसके अनुयायी एक दूसरे से मिलते थे तो 'अल्ला हो अकबर, तथा जल्ला जल्लालहू' कहकर एक दूसरे का अभिवादन करते थे। (vi) मृत्यु-भ,ज जीवित अवस्था में देना पड़ता था। (vii) इसके अनुयायियों को अपनी वर्ष-

गांठ पर दावत देनी पड़ती थी। और (viii) रविवार धर्म परिवर्तन के लिये शुभ दिन माना जाता था।

यद्यपि इस धर्म का प्रसार अधिक व्यापक न बन सका। अकबर के समय में ही इसके कुछ सदस्य थे। उनमें राजा बीरबल ही हिन्दू थे। किन्तु कई इतिहासकार कहते हैं कि इसकी सदस्य संख्या हजारों की तादाद में थी। किन्तु कुछ भी हो धर्म व्यापक नहीं था तथा वह अकबर के मरते ही समाप्त हो गया। इतिहासकार स्मिथ और ऊल्ने हेग दोनों ही अकबर के इस नवीनधर्म की आलोचना करते हैं। स्मिथ तो यहां तक कहता है कि—"दीन इलाही अकबर की बुद्धिमत्ता का नहीं बल्कि उसकी नासमझी का उदाहरण है।" बदायूँ ने भी अकबर की धार्मिक नीति तथा इस दीन इलाही की कटु आलोचना की है। परन्तु यह आलोचना पूर्ण सत्य प्रतीत नहीं होती। दीन इलाही के प्रवर्तक के रूप में अकबर ने जो किया वह सार्वजनिक सहिष्णुता की नीति का परिणाम तथा राष्ट्रीय आदर्शवाद का प्रमाण था। डा० एस० आर० शर्मा के मतानुसार दीन इलाही अकबर के राष्ट्रीय विचारों का व्यक्तिकरण था। डा० ईश्वरी प्रसाद का मत है कि—"दीन इलाही अन्य सब धर्मों के गुणों का समन्वय था।

सामाजिक सुधार:—यद्यपि अकबर में व्यवहारिक प्रतिभा बहुत थी, फिर भी वह आदर्शवादी तथा स्वप्नों के जगत् में बसने वाला था। विजयों तथा प्रशासन संगठन के अतिरिक्त उसने अबुल फजल के मतानुसार लोगों के आचरण को भी सुधारना चाहा। अकबर तत्कालीन समाज की जातीय और धार्मिक संकीर्णता से परे एक ऐसी मानव-स्वभाव-प्रिय राजनीति निर्मित करने में समर्थ हुआ जहां पर जातीय एवं वर्ग-विशेष की पक्षपात पूर्ण चेतना नितान्त रूप से तिरोहित हो जाती है। अकबर भारत का प्रथम सम्राट था जिसने भारत में प्रचलित सती प्रथा को बन्द करना चाहा। अकबर बाल-विवाह, कन्या-वध के भी विरुद्ध था। मुसलमान होते हुये भी उसने गो-वध तथा मांस भक्षण का विरोध किया। हिन्दू और मुसलमानों में सामाजिक समन्वय लाने के दृष्टिकोण से उसने अन्तर्जातीय विवाह प्रथा को प्रोत्साहन दिया। इससे स्पष्ट है कि अकबर संकुचित मनोवृत्ति का शासक न था। इसके द्वारा विधवा विवाह को भी प्रोत्साहन मिला।

कला व साहित्य का विकास:—

कला:—अकबर केवल अच्छा योद्धा एवं गूढ़ राजनीतिज्ञ ही नहीं था। उसे कला से बड़ा अनुराग था। अतः उसके समय में कलाओं का विकास अवरुद्ध नहीं हुआ। अकबर को संगीत से बड़ा प्रेम था। वह संगीतज्ञों का आश्रय दाता था।

फारस, ईरान, तूरान व काश्मीर के संगीतज्ञ उसके दरबार में अपनी कला का प्रदर्शन करने आते थे। तानसेन, जो हिन्दू तथा ग्वालियर का रहने वाला माना जाता है इसके दरबार का सर्वश्रेष्ठ गायक था अबुलफजल लिखता है कि उसके पहिले एक हजार वर्ष तक उसके समान कोई दूसरा संगीतज्ञ नहीं हुआ था। रामदास व हरिदास उसके दरबार के अन्य हिन्दू गायक थे।
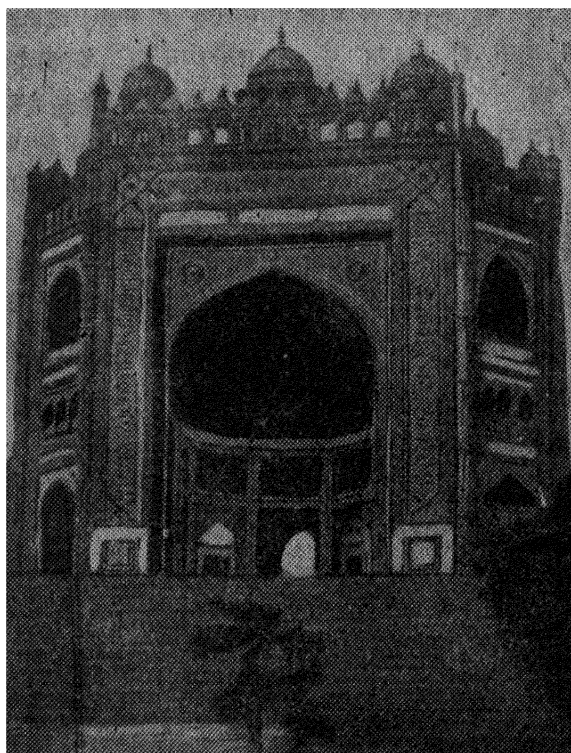
बुलन्द दरवाजा

चित्रकला को अकबर ईश्वर की अनुभूति का साधन समझता था। अन्य कलाओं की भाँति चित्रकला भी उसके यहां धीरे २ विकसित होने लगी। फारस के विख्यात चित्रकार अकबर के दरबार में प्रस्तुत थे। 'आइने अकबरी' में अबुल फजल ने १७ चित्रकारों के नाम दिये हैं। अब्दुस समद उसके काल का विख्यात चित्रकार था। अब्दुस समद फारस का था। इस कारण भारत की चित्रकला पर फारस की चित्रकला का पर्याप्त प्रभाव पड़ा है।

स्थापत्य कला में अकबर दक्ष था। उस उच्च विचारों वाले अकबर ने अपने उच्च विचारों को स्थापत्य कला के द्वारा साकार रूप प्रदान किया। अबुल

फजल लिखता है "सम्राट भव्य भवनों की कल्पना करता और अपने मस्तिष्क तथा हृदय की कृति को प्रस्तर तथा मृत्तिका के वस्त्र से परिवेष्टित करता है। उसके शासन काल में भारत में बहुत ही सुन्दर इमारते बनी। इन भवनों की रचना निम्न तीन शैलियों के आधार पर हुई। —

(१) शुद्ध मुस्लिम शैली (२) हिन्दू शैली तथा (३) मिश्रित शैली। अकबर द्वारा निर्मित भवनों में हुमायूं का मकबरा तथा बुलन्द दरवाजा मुस्लिम शैली पर फतहपुर सीकरी में जोधाबाई का महल व आगरे के किले में जहांगीर का महल हिन्दू शैली पर और राजा बीरबल का महल व इबादत खाना मिश्रित शैली पर आधारित हैं।

साहित्यः—यद्यपि अकबर स्वयं शिक्षित नहीं था परन्तु उसके हृदय में विद्वान मनुष्यों के प्रति आदर था। उसका दरबार विद्वान एवं साहित्यकारों के लिए सदैव खुला रहता था। इसके शासनकाल में हिन्दी साहित्य तथा फारसी का काफी विकास हुआ और विभिन्न भाषाओं में कई ग्रन्थ लिखे गये। ऐतिहासिक ग्रन्थ उसके काल में प्रचुर मात्रा में लिखे गये। अकबर नामा इसी के समय अबुल फजल द्वारा लिखा गया था। यह ग्रन्थ तत्कालीन हिन्दू रीति-रिवाजों का एक सुन्दर चित्र प्रस्तुत करता है। इसी लेखक ने 'आईने अकबरी' नामका दूसरा ग्रन्थ लिखा। इस पुस्तक में अकबर की राजनीतिक तथा सैनिक व्यवस्था अवलोकनार्थ मिलती है। 'तारीखे बदाऊनी' जो कि बदायूँ द्वारा रचित है, इस काल का महत्वपूर्ण ऐतिहासिक ग्रन्थ है। अकबर के शासन काल में केवल मौलिक ग्रन्थों की ही रचना नहीं हुई वरन् कई फारसी भाषा के ग्रन्थों का हिन्दी में अनुवाद भी किया गया। हिन्दी भाषा का इसके समय में आशातीत विकास हुआ। सूर, तुलसी जो हिन्दी साहित्य के सर्वोच्च कवि माने जाते हैं—इसी समय में जन्में थे। तुलसीदास का लोकप्रिय ग्रन्थ है रामायण तथा सूरदास का है 'सूरसागर'।

शासन-प्रबन्ध

अकबर बाबर की भांति केवल एक विजेता ही नहीं था वरन् शेरशाह की भांति उसमें सुप्रशासक के भी गुण विद्यमान थे। अकबर इस तथ्य से भली भांति परिचित था कि सुदृढ़ तथा लोक हितैषी शासन-व्यवस्था के बिना किसी भी शासन की नींव गहरी नहीं जम सकती है। इसके पूर्वज मुस्लिम शासकों का शासन उनके व्यक्तित्व तथा उनकी सुशासन व्यवस्था दोनों पर आधारित था। उसने अपने काल में कई प्रकार के शासन-सुधार किए। उसका शासन सुधार कुछ क्षेत्र तक उसकी मौलिकता तथा प्रधानतया न्याय व सहिष्णुता पर अवलम्बित था।

केन्द्रीय शासनः—अकबर स्वेच्छाचारी तथा निरंकुश शासक था। परन्तु उसका शासन प्रजा की भलाई के निमित था। अतः वह भी फ्रेडरिक, जोसफ तथा कैथेराइन द्वितीय की भांति एक प्रबुद्ध स्वेच्छाचारी शासक था। शासन की सत्ता पूर्ण रूपेण उसके शक्तिशाली हाथों में केन्द्रीभूत थी। मन्त्री केवल उसके सलाहकार के रूप थे परन्तु वे जनता पर अत्याचार नहीं कर सकते थे। प्रत्येक विभाग उसी के नियन्त्रण में रहता था। उसके समय के मुख्य पदाधिकारी ये थे–वजीर, बख्शी, खानसामा, काजी उल कुजात, सदर-उस सदूर तथा महतासिव।

प्रान्तीय शासनः—मध्यकालीन मुसलमान शासक अपने विजित प्रदेशों को फौजी अफसरों को जागीर के रूप में बांट दिया करते थे। परन्तु अकबर ने शासन की सुविधा की दृष्टि से अपने महान् साम्राज्य को कई प्रान्तों में विभक्त कर दिया था। प्रो० यदुनाथ सरकार का कहना है–"**मुगलों का प्रान्तीय शासन केन्द्रीय शासन का छोटा रूप था।**" प्रान्त का सर्वोच्चाधिकारी सूबेदार होता था। सूबेदार प्रान्त में सम्राट का प्रतिनिधि होता था। वह सिविल तथा फौजी शासन का प्रमुख होता था। सूबा सरकारों तथा सरकार परगनों में विभक्त थे। सूबेदार काजी के द्वारा दिये गये निर्णयों के विरुद्ध अपील सुनता था। उसके नीचे अन्य अधिकारी ये थे–फौजदार, कोतवाल, सदर, आमिल। इनमें दीवान का पद महत्वपूर्ण होता था।

भूमि–प्रबन्धः—अकबर के भूमि सम्बन्धी सुधार मौलिकता से परे थे। इसमें उसने शेरशाह का ही अनुकरण किया था। गुजरात विजय के उपरान्त १५७३ में अकबर ने टोडरमल की निगरानी में भूमि की नाप कराई और लगान भूमि के क्षेत्रफल तथा उपजाऊपन के आधार पर निश्चित किया गया। १५७५ ई० में बंगाल, बिहार तथा गुजरात को छोड़कर समस्त साम्राज्य को १८२ परगनों में विभक्त कर दिया गया और प्रत्येक परगने की आमद एक करोड़ थी। लगान वसूल करने वाले 'करोडी' कहलाते थे। १५८२ ई० में टोडरमल राज्य के दीवाने–ए असरफ नियुक्त हुए। उसने भूमि को श्रेणियों में विभाजित किया–(१) पलोज–जिसमें हर साल कृषि हो, (२) परोती–जो एक-दो साल के लिए परती छोड़ दी जाय, (३) चाचर–जो तीन या चार साल के लिये परती छोड़ी जाय, (४) बंजर–जो पांच वर्ष से अधिक के लिए बंजर छोड़ी जाय। लगान में पैदावार का ⅓ लिया जाता था। लगान नकद देने के अतिरिक्त 'गल्ला बख्श' प्रणाली के अन्तर्गत कृषक अनाज के रूप में भी लगान का भुगतान कर सकते थे। अकबर की इस भूमि व्यवस्था को 'रैयतवाड़ी' कहा जाता है। लगान वसूल करने के लिए अमीन, कानूनगो, पटवारी तथा पोद्दार आदि होते थे।

सैनिक प्रबन्ध:—जैसाकि इससे पूर्व स्पष्ट कर चुके हैं कि अकबर एक साम्राज्यवादी सम्राट था। अतः उसे एक विशाल एवं सुव्यवस्थित सेना की परम आवश्यकता थी। हुमायूं के समय में सैनिक दशा अतिशोचनीय थी। हुमायूं के शासन काल में जागीरदारी थी। अकबर ने सैनिक संगठन में मौर्य वंश के राजा तथा शेरशाह का अनुकरण किया। सैनिकों की केन्द्रीय सरकार द्वारा सीधी भरती होने लगी। अकबर की सेना तीन भागों में विभक्त थी। (१) आधीन राजाओं की सेना, (२) मनसबदार सेना तथा (३) सम्राट की निजी सेना।

जिन राजाओं ने मुगल सम्राट की पराधीनता अंगीकार करली थी उन्हें कर देने के अतिरिक्त समय पड़ने पर सेना भी देनी पड़ती थी।

परन्तु अकबर प्रधानतया मनसबदारों की सेना पर निर्भर रहता था। मनसब एक प्रकार का सैनिक पद था। हर मनसबदार को सम्राट की सैनिक व अन्य प्रकार की सेवा करनी पड़ती थी। अकबर ने अपने मनसबदारों को ३३ वर्गों में विभक्त कर रखा था। मनसबदार को अपने पद के अनुसार सैनिक रखने पड़ते थे। सबसे निम्न वर्ग के मनसबदार को १० सैनिक तथा सबसे उच्चकोटि के मनसबदार को १० हजार सैनिक रखने होते थे। मनसबदारों की नियुक्ति बिना किसी धार्मिक भेद-भाव के सम्राट द्वारा होती थी और उन्हें इच्छानुसार हटाया भी जा सकता था। परन्तु यह मनसबदारी प्रथा भी दोषों से रहित न थी। इतिहासकार इनवाईन लिखते है, "बहुत कम मनसबदार ऐसे थे जो अपने पद के अनुसार पूरी सेना रखते थे।"

स्थायी सेना अकबर के पास अधिक न थी। कुछ इतिहासकार इसकी संख्या केवल २५ हजार निश्चित करते हैं। सेना के चार विभाग थे-(१) पैदल, (२) घुड़सवार, (३) तोपखाना तथा नौ सेना। अकबर के सैनिक संगठन के विषय में वी. ए. स्मिथ लिखता है—"यह पूर्णतया स्पष्ट है कि अकबर का सैनिक संगठन बुनियादी दृष्टि से कमजोर था, वह केवल अपने सराहनीय व्यक्तिगत गुणों के कारण दुर्बल सैनिक यन्त्र का आश्चर्य जनक प्रयोग कर सका।"

न्याय-व्यवस्था:—न्याय शासन-व्यवस्था का प्रधान अंग होता है। उसी शासक का शासन स्थायी रह सकता है जो कि न्याय की सुदृढ़ नींव पर आधारित हो। इस प्रकार की न्याय व्यवस्था की स्थापना में अकबर असफल रहा। सम्राट स्वयं न्याय का स्रोत था। वह साम्राज्य का सर्वोच्च न्यायाधीश था। अन्तिम अपील उसी के पास होती थी। महत्वपूर्ण अभियोग सीधे अकबर द्वारा तय किये जाते थे। न्याय

करने के दिन निश्चित थे। दरबार में अकबर फरियाद सुनता था और उस समय प्रत्येक मनुष्य को अपनी फरियाद सुनाने की पूर्ण स्वतन्त्रता प्राप्त थी।

सम्राट के नीचे सदर-ए-सदुर होता था जो माल व अर्थ सम्बन्धी विषयों पर निर्णय देता था। काजी-उल-कुजात न्याय विभाग में सबसे ऊंचा पदाधिकारी होता था। न्याय सम्बन्धी सारे विषय उसी से सम्बन्धित रहते थे। एक अदालत में काजी, मुफ्ती और मीर अदल तीन अफसर बैठते थे। काजी का कार्य मामले की जांच करना और मुफ्ती का कार्य कानून की व्याख्या करना होता था। मीरअदल निर्णय सुनाता था। काजियों में उस समय भ्रष्टाचार व्याप्त था। शासन सम्बन्धित विषयों में मोलवी व उलेमाओं का हस्तक्षेप नहीं होता था।

अकबर के अन्तिम दिनः—

जिस प्रकार अकबर का प्रारम्भिक काल दुखमय व्यतीत हुआ उसी प्रकार उसके अन्तिम दिन भी सुखमय व्यतीत नहीं हुए। १५५६ से १६०१ तक वह निरन्तर संघर्ष करता रहा। अपनी साम्राज्यवादी क्षुधा को शान्त करने के निमित उसने कई राजाओं का मान चूर कर दिया परन्तु १६०१ में जब वह असीरगढ़ को जीतने में व्यस्त था तो सलीम अकबर के विरुद्ध बगावत करने की तैयारी कर रहा था। यह सुनकर उसे बहुत दुख हुआ और वह आगरे की ओर रवाना हो गया। इससे पूर्व उसके पुत्र मुराद और दनियाल की मृत्यु हो चुकी थी। १५६५ में उसके अभिन्न मित्र अबुलफैजी की भी मृत्यु हो गई थी। इससे वह बहुत परेशान था। और जब उसने अपने एक मात्र पुत्र सलीम की इन हरकतों को देखा तो उसका हृदय दुःख से दब गया। जब १६०२ में अकबर ने अबुलफजल को सलीम की बगावत के बारे में लिखा तो अबुलफजल ने बादशाह को सलीम के खिलाफ सख्त कार्यवाही करने की सलाह दी। अबुलफजल इस समय दक्षिण में था। जब अबुलफजल आगरे आ रहा था तो रास्ते में १२ अगस्त १६०२ में वीरसिंह बुन्देला द्वारा वह मौत के घाट उतार दिया गया। यह वध जहांगीर ने कराया था। क्योंकि वह जानता था यदि अबुलफजल अकबर के पास पहुँच जायगा तो अकबर उसकी सलाह अवश्य मानेगा और मुझे कठोर दण्ड देगा। अबुलफजल की इस हत्या का अकबर को मर्मान्तिक दुःख हुआ। इधर सलीम फिर आगरे जाकर षडयन्त्र रच रहा था और इधर अबुलफजल की मृत्यु का दुख अकबर को दबाये जा रहा था। इस कारण इस दारुण दुख से अकबर की १६ अक्टूबर १६०५ को मृत्यु हो गई।

अकबर का इतिहास में स्थानः— अकबर भारत के ही नहीं अपितु विश्व के महान् सम्राटों में गिना जाता है। वह एक साहसी सैनिक, महान् विजेता, महत्वाकांक्षी. साम्राज्य निर्माता और कुशल प्रजापालक था। विजेता होने का अर्थ

यह नहीं कि वह साहित्य व कला से बिल्कुल दूर रहे, कला व साहित्य में भी उसका पूरा पूरा अनुराग था। जैसा कि गैरेट लिखता है कि–"**अकबर एक साहसी सैनिक, महान् सेनानायक तथा बुद्धिमान शासक था। उसमें जन्म से ही सफल नेता के गुण विद्यमान थे। उसकी गणना इतिहास के महानतम सम्राटों में की जा सकती है।**"

परन्तु अकबर का इतिहास में उच्च स्थान केवल उसकी कुशल सेनानायक तथा उसके बनाये हुए महान साम्राज्य पर निर्भर नहीं है। अकबर की विशेषता यह थी कि उसने अपने साम्राज्य को एक सुदृढ़ शासन व्यवस्था पर खड़ा किया। कर्नल मैलसन अकबर की प्रशंसा करते हुए लिखता है–"**अकबर का महान उद्देश्य था समस्त भारत को एक सूत्र में बांध देना। उसके सिद्धांत एक शासक तथा साम्राज्य निर्माता के लिए महान सिद्धान्त थे।**" यदि साम्राज्य निर्माण में हम उसकी तुलना नेपोलियन से करें तो उसके शासन सम्बन्धी सुधारों के कारण उसकी तुलना इंगलैंड की साम्राज्ञी विक्टोरिया तथा भारत के सम्राट अशोक महान् से की जा सकती है। साहित्य व कला के विकास में उसका शासनकाल हमें गुप्त वंश के राजाओं के शासनकाल की भांति प्रतीत होता है। उसके राज्य में न्याय था, हिन्दू और मुसलमानों का भेदभाव विद्यमान नही था। उसने सबके साथ समानता का बर्ताव किया। इसलिए लोरेंस बिनियान अकबर के इन कार्यों की प्रशंसा करते हुये लिखता है–"**एक शासक के रूप में उसकी महान् सफलता यह थी कि उसने भिन्न भिन्न राज्यों, जातियों तथा धर्मों को एक सूत्र में बांध दिया।**"

अकबर यद्यपि अशिक्षित था परन्तु वह विद्वानों का आदर करता था। विद्वानों से वाद विवाद करता तथा उनके वाद विवाद सुनता था। वी. ए. स्मिथ उसकी इस प्रकार की रुचि के विषय में लिखता है, "जो कोई उसे किसी वाद ग्रस्त विषय पर सूक्ष्म तथा स्पष्ट उक्तियों के साथ बहस करते हुए सुनता वह उसके विषय में यही धारणा बनाता कि उसका अध्ययन गम्भीर और ज्ञान अत्यन्त विस्तृत था और उसे उसके निरक्षर होने का कभी संदेह भी न होता।" लेनपूल अकबर की प्रशंसा करते हुए लिखता है, "**यह भारत का सर्वश्रेष्ठ शासक था। साम्राज्य का वास्तविक संस्थापक तथा संगठन कर्ता वही था।**" वास्तव में उसके सुदृढ़ एवं सुव्यवास्थित शासन के कारण ही वह मुगल साम्राज्य का वास्तविक संस्थापक माना जाता है। तथा उसकी धार्मिक नीति व हिन्दू व राजपूतों के साथ उसके विवाह के कारण वह एक राष्ट्रीय सम्राट कहा जाता है।

अध्याय सार

प्रस्तावना:—हुमायूँ ने अपना राज्य पुनः अफगानों के चुंगल से मुक्त

कराया ही था कि उसकी मृत्यु १५५६ में हो गई। इस आकस्मिक मृत्यु के कारण अकबर को तेरह वर्ष की आयु में ही गद्दी पर बैठना पड़ा।

राज्याभिषेक तथा भारत की दशा:—कलानूर नामक स्थान पर बहरामखां की संरक्षता में अकबर का राज्याभिषेक हुआ। उस समय भारत की अवस्था अच्छी नहीं थी। अफ़गान लोग शक्तिशाली हो गये थे। राजपूताने की रियासतें स्वतन्त्र हो गई थीं और दक्षिण में बीदर, बरार, बीजापुर, गोलकुंडा तथा अहमदनगर अब भी स्वतन्त्र रियासतें बनी हुई थीं।

प्रारम्भिक कठिनाइयां:—(i) अकबर को पानीपत के मैदान में आदिलशाह के सेनापति हेमू को १५५६ ई० में परास्त करना पड़ा।

(ii) बैरामखां दिन पर दिन अपनी शक्ति बढ़ाता जा रहा था। जब अकबर ने उसके नियन्त्रण से निकलने का प्रयास किया तो उसने विद्रोह किया। परास्त बैरामखां १५६० में मक्का जाता हुआ गुजरात में एक अफ़गान द्वारा मौत के घाट उतार दिया गया।

(iii) अकबर ज्योंही बैरामखां के संरक्षण से मुक्त हुआ कि अन्तःपुर के शासन के नियन्त्रण में आ गया। परन्तु अधमखां के वध से उसकी यह कठिनाई भी दूर हो गई।

राज्य का विस्तार:—अकबर जब राज्य सिंहासन पर बैठा था तो वह आगरे और दिल्ली का मुश्किल से स्वामी था। परन्तु साम्राज्यवादी होने कारण वह १५५६ से १६०१ तक निरन्तर युद्ध करता रहा। इसका परिणाम यह हुआ कि उसने अजमेर, ग्वालियर, जौनपुर, मालवा, गौंड़वाना, समस्त राजपूताना, गुजरात, बंगाल तथा कन्धार पर अपना अधिकार कर लिया। इस प्रकार उत्तरी भारत पर अधिकार करने के उपरान्त दक्षिण में अपना साम्राज्य बढ़ाने की दृष्टि से उसने अहमदनगर तथा असीरगढ़ को भी अपने आधीन कर लिया।

अकबर का राजपूतों के साथ व्यवहार:—अकबर ने राजपूतों के न्याय व वीरता के महत्व को समझते हुए उनके साथ समानता का व्यवहार किया। उनको सरकारी ऊँचे पदों पर नियुक्त किया। अपने सम्बन्ध बनाये रखने के दृष्टिकोण से उसने राजपूत राजकुमारियों के साथ विवाह सम्बन्ध भी स्थापित किए।

धार्मिक नीति:—अकबर अपने पूर्वजों की भांति कट्टर न था। उसने हिन्दूओं के साथ आदर का व्यवहार किया। उनके देवालियों का विनाश नहीं किया। जजिया व पोलटेक्स भी उसने हटा दिया। हिन्दू धर्म के अलावा उसने अन्य धर्मों के प्रति भी अपने विचारों को उदार ही रखा। उसकी धार्मिक उदारता के परिणाम

यह निकाला कि उसने १६८१ में एक नवीन धर्म का सूत्रपात किया जिसे कि 'दीन इलाही' कहते हैं।

सामाजिक सुधार:—अकबर ने भारत की केवल शोचनीय राजनीतिक अवस्था को ही सुधारने का प्रयास नहीं किया वरन् उसने समाज की तत्कालीन बुराइयों को भी दूर करना चाहा जैसे सती-प्रथा, कन्या-वध, बाल-विवाह। विधवा-विवाह का वह समर्थक था।

कला व साहित्य:—अकबर के काल में संगीत, चित्र तथा स्थापत्य इन तीन कलाओं का विकास हुआ। संगीत कला में तानसेन सबसे आगे बढ़ा हुआ था। स्थापत्य कला में तो अकबर ने बहुत ही सक्रिय कदम रखा। उसके समय में तीन शैलीयां प्रचलित थीं-(१) मुस्लिम-शैली (२) हिन्दू-शैली (३) मिश्रित शैली। अकबर ने इन तीनों शैलियों के आधार पर जगह जगह कई भवन खड़े किये।

साहित्य के क्षेत्र में पर्याप्त विकास हुआ। कई फारसी ग्रन्थों का हिन्दी में अनुवाद हुआ और इसी प्रकार हिन्दी के ग्रन्थों का फारसी में। रामायण के रचियता श्री तुलसीदास तथा सूर सागर के लेखक श्री सूरदास इसी के काल में भारत में पैदा हुए थे।

शासन-प्रबन्ध

अकबर के शासन सम्बन्धी सुधार मौलिक नहीं थे। उसने शेरशाह का अनुकरण किया था। उसकी शासन व्यवस्था निम्न प्रकार की थी:—

केन्द्रीय-शासन:—सम्राट निरंकुश एवं स्वेच्छाचारी था। शासन का मूल स्रोत वहीं था। प्रत्येक विभाग की वह स्वयं देखभाल करता था।

प्रान्तीय-शासन:—प्रान्तीय शासन केन्द्रीय शासन का एक छोटा रूप था। प्रान्तपति सूबेदार कहलाते थे। उनकी नियक्ति स्वयं सम्राट करता या। सबे सरकार में तथा सरकार परगने में विभक्त थे।

भूमि-सम्बन्धो:—भूमि सुधार शेरशाह के सुधारों के आधार पर किये गये थे। भूमि की पैमाइश कराई गई तथा पैदावार के आधार पर लगान निश्चित किया लगान नकद व अनाज दोनों रूप में भुगताया जा सकता था। भूमि का वर्गीकरण चार श्रेणियों में किया गया था। ये सब सुधार टोडरमल के नेतृत्व में हुए थे।

सैनिक-प्रबन्ध:—सेना को व्यवस्थित रूप से संगठित करने के दृष्टिकोण से उसने सेना को तीन श्रेणियों में बांट दिया था। अकबर के सैनिक प्रबन्ध की प्रधान विशेषता 'मनसबदारी' प्रथा थी।

न्याय-व्यवस्था:—अकबर न्याय का राज्य स्थापित करना चाहता था परन्तु वह पूर्ण सफल नहीं हुआ। वह स्वयं सर्वोच्च न्यायाधीश था। वही अभियोग की अपील सुनता था। दरबार में फरियाद करने क सबको अनुमति थी। न्याय में मोलवी व उलेमाओं का हस्तक्षेप नहीं था। धार्मिक अभियोगों का निर्णय काजियों द्वारा किया जाता था। वे भ्रष्टाचार से दूर नहीं थे।

अकबर के अन्तिम दिन:—अकबर के अन्तिम दिन सुख में नहीं बीते। उसके पुत्र सलीम की बगावत तथा सलीम के द्वारा कराये गये अबुल-फजल के वध से उसकी आत्मा को असहनीय ठेस पहुँची। इस कारण वह १६०५ में इस दुनियां से विदा हो गया।

अकबर का इतिहास में स्थान:—अकबर एक गूढ़ राजनीतिज्ञ तथा योग्य सेना नायक था। धार्मिक क्षेत्र में उसके भाव उदार थे। प्रशासन उसके राज्य को सुदृढ़ करने में समर्थ था। अतः अकबर भारत का ही नहीं वरन् समस्त विश्व का एक बड़ा सम्राट था।

प्रश्न

१. पानीपत की दूसरी लड़ाई के क्या कारण थे। उसने मुगल साम्राज्य को किस प्रकार दृढ़ बनाया।

What were the causes which led to Second Battle of Panipate and how did it strengthen the Mughal Empire ?

२. अकबर का हिन्दुओं और विशेषकर राजपूतों के प्रति क्या व्यवहार था।

What was Akabar's attitude towards Hindus particularly with Rajputs ?

३. अकबर की धार्मिक नीति क्या थी ? नीति का वर्णन करते हुए दीने–इलाही पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखो।

"What was Akabar's Religious policy ? Write a short note on Din-I-Ilahe.

४. "बाबर ने मुगल राज्य की नींव डाली थी पर वास्तविक संगठन कर्त्ता अकबर ही था।" समझाइये।

"While Babars was only the founder of Mughal Empire, it was Akbar who gave internal solidarity" Explain.

५. अकबर के व्यक्तित्व व चरित्र के विषय में क्या जानते हो ? भारतीय इतिहास में अकबर का क्या महत्व है ?

What do you know about the personality and character of Akabar ? What is Akabar's significance in the history of India.

६, बैरमखां कौन था ? उसके पतन के कारणों का उल्लेख कीजिए।

Who was Barim Khan ? Enumerate the causes of his down fall.

७. अकबर की विजयों का वर्णन कीजिए तथा तर्कपूर्ण विवेचन कीजिए कि वास्तव में वह साम्राज्यवादी था।

Describe the conquest of Akbar and discuss critically that he was an imperialist to the core.

८. "अकबर एक राष्ट्रीय सम्राट था।" व्याख्या कीजिए।

"Akabar was a national Monarch" Discuss.

९. "अकबर द्वारा निस्संदेह सैनिक संगठन में काफी सुधार किया गया था।" इस कथन पर अपने विचार स्पष्ट कीजिए।

"Akabar undoubtedly improved immensly the military organisation" Explain fully.

१०. "युद्ध साम्राज्य को बना सकता है परन्तु यह केवल अच्छा एवं सुव्यवस्थित प्रशासन ही है जो उसे स्थाई बनाता है।" इस कथन की अकबर के शासन के आधार पर समालोचना कीजिए।

"War can built an empire but it is good and sound adminstration alone that can maintain it" Explain it with the reference the reign of Aakabr.

अध्याय पांचवाँ

जहांगीर

प्रस्तावना-जहांगीर का राज्याभिषेक व प्रारम्भिक जीवन-जहागोर का प्रारम्भिक शासन-प्रबन्ध-शाहजादा खुसरो की बगावत-जहांगीर का नूरजहां से विवाह-जहांगीर की राजपूत-नीति-दक्षिण की विजय-कन्धार का मुगल-प्रभुत्व से अलग होना-शाहजादा खुर्रम की बगावत-महावतखां की बगावत-कला का विकास-यूरोपवासियों से सम्पर्क-अन्तिम दिन व मृत्यु-उसका इतिहास में स्थान।

प्रस्तावना:—कहा जाता है कि धन और प्रेम से बच्चे बहुधा बिगड़ जाते हैं। अकबर ने बड़ी कठिनाई से राज्य प्राप्त किया था। परन्तु उसने अपने संघर्षमय जीवन से उसे काफी विस्तृत एवं सुदृढ कर लिया था। उसके शासन-काल में चारों ओर शान्ति रही। किसी प्रदेश के सूबेदार का सम्राट के विरुद्ध बगावत करने का साहस न हुआ। राज्य-कोष दिनों दिन भर रहा था। परन्तु अकबर का ग्रहस्थी जीवन सन्तान के अभाव में दुःखी रहता था। बड़ी मिन्नतें करने के उपरान्त उसके सलीम उत्पन्न हुआ था। उसके उपरान्त और भी पुत्र जन्में। परन्तु उनकी जीवन लीला सम्राट से पूर्व ही समाप्त हो गई। इस कारण सम्राट का सारा प्रेम शाहजादा सलीम पर केन्द्रीभूत हो गया। परन्तु पिता के इस प्रेम से उसका सिर फिरने लगा। पिता द्वारा विस्तृत साम्राज्य को वह शीघ्रातिशीघ्र प्राप्त करने का प्रयत्न करने लगा। इसी उद्देश्य से उसने १६०१ में बगावत की तथा १६०२ में अबुल फजल का वध कराया। इन घटनाओं के आगे अकबर ने अपनी जीवन लीला समाप्त कर सलीम को गद्दी पर बैठने का अवसर दिया।

जहांगीर का राज्याभिषेक:—अकबर की मृत्यु पर शाहाजादा सलीम जहांगीर के नाम से भारत का सम्राट बना। डा० बेनी प्रसाद के मतानुसार जहांगीर २४ अक्टूबर १६०५ में गद्दी पर बैठा था। डा० ईश्वरी प्रसाद व डा० आर० एस० त्रिपाठी इसी मत का समर्थन करते हैं। परन्तु कैम्ब्रिज हिस्ट्री तथा मुगल कालीन भारत (डा० आशीर्वादी लाल) से ज्ञात होता है कि जहांगीर ३ नवम्बर १६०५ में गद्दी पर बैठा था। अकबर ने अपने जीवनकाल में ही सलीम को क्षमा कर दिया था तथा उसे अपना उत्तराधिकारी घोषित कर दिया था।

उसका प्रारम्भिक काल:—जहांगीर को बहुत प्रार्थनाओं का राजकुमार कहा जाता है। कहने का तात्पर्य यह है माता-पिता की लाखों मिन्नतें, प्रार्थनाओं, तथा

तीर्थयात्राओं के उपरान्त फतेहपुर सीकरी में शेख सलीम के आशीर्वाद से यह पुत्र ३० अगस्त १५६६ ई० को उत्पन्न हुआ था। इलिलिए इसका नाम सलीम रखा गया था। यद्यपि अकबर स्वयं अनपढ़ था परन्तु उसने सलीम की शिक्षा का उचित प्रबन्ध किया। बैरामखां का पुत्र अब्दुल रहीम खानाखाना उसका शिक्षक नियुक्त हुआ। उससे सलीम ने फारसी, तुर्की व हिन्दी सीखी। १५ वर्ष की अवस्था में आमेर के राजा भगवानदास की पुत्री से सलीम की सगाई हुई और १३ फरवरी १५८५ को उसका हिन्दू रीति से विवाह हुआ। अकबर ने शाहजादा को दस हजार का मनसबदार बना दिया। १६ वीं शताब्दी के अन्तिम चरण से ही उसका दिमाग फिरने लग गया था। १६०१ में उसने बगावत की। अकबर द्वारा क्षमा करने पर भी उसका दिमाग नहीं सुधरा। परन्तु बेगमों के बीच बचाव करने व एकमात्र पुत्र होने से अपना अन्तिम समय नजदीक देख अकबर ने उसे अपना उत्तराधिकारी घोषित कर दिया।

जहांगीर का शासन प्रबन्धः—जहांगीर का शासनकाल दो भागों में विभक्त किया जा सकता है। पहिला काल १६०५ से १६११ का है जिसमें कि जहांगीर ने पूर्ण स्वतन्त्र हो कर शासन किया। दूसरा काल १६११ से आरम्भ होता है जिसमें कि जहांगीर ने स्वयं कुछ न किया और उसकी बेगम नूरजहां ने शासन सूत्र का पूर्णतः अपने हाथ में रखा। आरम्भ में जहांगीर ने बहुत ही उदार वृत्ति से शासन चलाया क्योंकि वह जानता था कि अभी जनता खुसरो के पक्ष में है। इसलिए उसने अपने कृपा पात्रों को उच्चपद दिये तथा सूबेदारों को स्थायी बना दिया। बहुत से सामन्तों व सरदारों को उसने इनामें बांटी। मीर बाहरी, जो टेक्स माल पर लगाते थे उससे उसने प्रजा को मुक्त कर दिया। न्याय की व्यवस्था की दृष्टि से उसने शाहबुर्ज पर एक घंटी लटकादी जिससे कोई भी व्यक्ति बादशाह तक अपनी फरियाद कर सकता था। उसका प्रारम्भिक शासन निम्नलिखित १२ नियमों पर आधारित है—(i) जकात के कर को बन्द करना। (ii) चोरी को रोकने के लिए नियम बनाना। (iii) मृत पुरुषों की सम्पत्ति उनके वशजों को दिलाना। (iv) शराब की बिक्री बन्द करना। (v) अपराधियों को अंगभंग देने की सजा को बन्द करना। (vi) राजकर्मचारियों को जनता की सम्पत्ति पर बलात अधिकार करने से रोकना। (vii) जगह जगह स्कूल व औषधालय बनवाना। (viii) कुछ खास अवसरों पर पशुवध बन्ध कराना। (ix) रविवार के दिन आदर करना। (x) मनसबदारों व जागीरदारों को उनके पदों पर स्थाई करवाना। (xi) धार्मिक स्थानों को दी गई जागीरें स्थाई करना और (vii) राज्याभिषेक के उपलक्ष में बन्दियों का मुक्त करना।

इन शासन सूत्रों से प्रारम्भ में जहांगीर बड़ा लोक प्रिय शासक रहा।

शाहजादा खुसरो की बगावत:—खुसरो जहांगीर का अत्यन्त सुन्दर, शिष्ट व सचरित्र शाहजादा था। अकबर उसे बहुत चाहता था। जहांगीर के मस्तिष्क में विद्रोह की भावना घर करने लगी तो अकबर का इरादा खुसरो को ही बादशाह बनाने का हो गया था। मानसिंह उसके समर्थन में था। परन्तु अन्त में अकबर के और सलीम के समझौता हो गया था। किन्तु जहांगीर के बादशाह बन जाने के बाद भी खुसरो के दिमाग से बादशाह बनने की बू दूर नहीं हुई थी। इसलिए एक दिन बाबा अकबर के दरगाह की समाधि को देखने के बहाने से वह कुछ साथियों के साथ लाहौर चला गया और लाहौर में वहां के दीवान अब्दुलरहीम की सहायता से जहांगीर के खिलाफ बगावत का झंडा खड़ा कर दिया। जहांगीर स्वयं बड़ी सेना लेकर लाहौर पहुँचा और उसे भारोवाल नामक स्थान परास्त कर दिया। जब खुसरो ने भागने की कोशिश की तो उसकी नाव चिनाब नदी के रेत में फंस जाने के कारण वह बन्दी बना लिया गया। १५ वर्ष बाद उसको बुरहानपुर के दुर्ग में शाहजादा खुर्रम ने मरवा दिया।

इस बगावत के समय खुसरो सिक्खों के पांचवे गुरु अर्जुनदेव के पास आशीर्वाद लेने गया था। जहांगीर ने इस अपराध का गुरु पर २॥ लाख रुपया जुर्माना किया और जुर्माना अदा न करने पर उसका वध कर दिया। अर्जुनदेव के वध के आधार पर जहांगीर को भी इतिहासकार कट्टर मुसलमान बतलाने का प्रयत्न करते हैं। परन्तु डा० बेनीप्रसाद इस बात का खंडन करते हुए लिखते है-"वास्त में **जहांगीर की इस महान् गल्ती की गम्भीरता पर पर्दा न डालते हुए यह कहना उचित होगा कि इस मृत्यु दंड का मुख्य कारण राजनीतिक था।**" वी० ए० स्मिथ इसका समर्थन करते हुए लिखते हैं-"यह दंड राजद्रोह के लिए दिया गया था। **इसे धार्मिक अत्याचार का उदाहरण नहीं कह सकते।**"

जहांगीर का नूरजहां से विवाह

जहांगीर से शादी होना भी इतिसाह का बड़ा ही रोचक एवं विवादग्रस्त विषय बना हुआ है। नूरजहां का बचपन का नाम मेहरुन्निसा था। उसके पिता मिर्जा गियास बेग जब ईरान से भारत आ रहे थे तो निर्धनता के कारण उसका जंगल में जन्म होने के कारण उसे वहीं छोड़ आये। भाग्य वश यह मेहरुन्निसा एक सौदागर द्वारा अकबर के दरबार में लाई गई। महल में रहते रहते सलीम व नूरजहां में प्रेम हो गया था। अकबर को जब यह पता चला तो उसने मेहरुन्निसा की शादी अली कुली बेग के साथ करदी। जहांगीर के समय अली कुली बेग को बंगाल में बर्द्धमान की जागीर

देकर शेर अफगन की पदवी से विभूषित किया । १६०७ में बंगाल के गवर्नर कुतुबुद्दीन को शेर अफगन को दबाने के लिए भेजा गया । शेर अफगन लड़ाई में मारा गया और मेहरुन्निसा को शाही दरबार में भेज दिया गया। समझाने बुझाने पर १६११ में मेहरुन्निसा ने जहांगीर से शादी करली । मेहरुन्निसा एक बहुत ही सुन्दर एवं गुणवान स्त्री थी। शादी होते ही जहांगीर उस पर इतना रीझा कि उसको पहिले नूर महल के नाम से सम्बोधित किया । परन्तु इस पर भी संतोष न मिलने पर उसने उसका नाम नूरजहां रखा। नूरजहां सुन्दरी होने के साथ २ कुशाग्र बुद्धि भी थी। परन्तु साथ में उसमें सत्ता की बड़ी भूख थी । अतः बेगम बनते ही उसने शासन सत्ता अपने हाथों में लेना शुरू कर लिया । इसी कारण नूरजहां की शादी से शासन में तथा राजनैतिक अवस्था में कई महान परिवर्तन हुए ।

जहांगीर की राजपूत नीतिः—समस्त राजपूत रियासतों ने सम्राट् अकबर की अधीनता स्वीकार करली थी । केवल मेवाड़ के राणा प्रताप ही ऐसे थे जिन्होंने कि मुगलों की गुलामी स्वीकार नहीं की थी। परन्तु जब वे १५९७ में परलोक सिधार गये तो उनका स्थान उनके पुत्र अमरसिंह ने लिया । अकबर अन्तिम दिनों में उदयपुर पर अधिक ध्यान न दे सका। इस कारण जहांगीर ने बादशाह बनते ही उदयपुर की ओर ध्यान दिया। जहांगीर की राजपूत नीति उसके पिता के तुल्य थी। वह राजपूतों से बिगाड़ करना नहीं चाहता था। मेवाड़ से उसका संघर्ष इसी कारण हुआ कि वह स्वतन्त्र था और उसको वह उसे मुगल साम्राज्य में मिलाना चाहता था।

गद्दी पर बैठते ही जहांगीर ने अपने पुत्र परवेज के नेतृत्व में २० हजार सैनिकों की एक सेना उदयपुर पर आक्रमण करने भेजी। परन्तु उससे कुछ परिणाम न निकलने पर जहांगीर ने १६०८ ई० में पुनः महावतखां की अध्यक्षता में एक सेना भेजी। परन्तु आंतरिक कलह के कारण महावतखां भी सफल न हो सका। इस कारण १६१३ ई० शाहजादा खुर्रम के सेनापतित्व में वहां एक विशाल सेना भेजी और बादशाह स्वयं अजमेर आगया। खुर्रम ने बड़ी चतुराई से राजपूत सेना को घेर लिया । रसद बन्द हो जाने के कारण राजपूत विचलित हो गये और १६१५ ई० में राणा ने निम्नलिखित शर्तों पर जहांगीर से सन्धि करलीः—(१) राणा ने सम्राट की अध्यक्षता स्वीकार करली, (२) सम्राट ने अकबर द्वारा विजयी मेवाड़ का भाग राणा को लौटा दिया, (३) राणा को हिदायत दी गई कि वह पुराने किलों की मरम्मत एवं नवीन दुर्गों का निर्माण न करवाये, (४) राणा अमरसिंह को मुगल दरबार में उपस्थित होना अनिवार्य नहीं समझा गया (५) मेवाड़ के महाराणा को अन्य राजपूत नरेशों की भांति अपनी पुत्रियों की शादी शाही वंश से करना आवश्यक नहीं ठहराया गया।

इस सन्धि का इतिहास में बड़ा महत्व है। इस सन्धि से जहांगीर के गौरव में वृद्धि हुई तथा मेवाड़ में वर्षों बाद शान्ति स्थापित होने की संभावना हुई। राणा अमरसिंह के पुत्र कर्ण का मुगल दरबार में बड़ा सम्मान हुआ।

दक्षिण-विजय अकबर ने अपने जीवन काल में अहमदनगर तथा असीरगढ़ पर अधिकार कर लिया था। परन्तु सलीम के बागी होने के कारण वह अहमदनगर पर पूर्ण ध्यान नहीं दे सका था। जहांगीर ने दक्षिण की नीति अपनाने में अपने पिता का ही अनुसरण किया। जहांगीर के समय अहमदनगर का शासन मलिक अंबर के आधीन था। मिलक अम्बर दक्षिणी भारत के महान राजनीतिज्ञों में से एक था। उसका जन्म १५४६ ई० में एक अबीसीनियन परिवार में हुआ था।उसने भी टोडरमल की भांति अहमदनगर में कुछ भूमि सम्बन्ध सुधार किये। अपने रचनात्मक कार्यों के कारण वह जन प्रिय बन गया था। उसने अपने सैनिकों को छापा मार युद्ध-विधि में बड़ा पारंगत बना लिया था। मुगल दरबारी लेखक मुतामिदखां ने मलिक अम्बर के विषय में लिखा है—"अम्बर गुलाम था, किन्तु योग्य व्यक्ति था। युद्ध, शासन-कार्य तथा निर्णय-बुद्धि में उसकी तुलना करने वाला कोई नहीं था। वह छापा-मार युद्ध से, जिसे मराठों की भाषा में 'बर्गीगीरी' कहते हैं भली भांति परिचित था।"

अहमदनगर को पूर्णतः मुगल साम्रज्य में विलीन करने की दृष्टि से जहांगीर ने परवेज के नेतृत्व में वहांएक विशाल सेना भेजी। परन्तु गूढ़ राजनीतिज्ञ मलिक अम्बर ने मुगलों का मुकाबला करने की दृष्टि से बीजापुर तथा गोलकुंडा के सुल्तानों से सन्धि करली। इस १६११ ई० की लड़ाई में मुगल सैनिक आन्तरिक फूट के कारण परास्त हुए। तत्पश्चात् जहांगीर ने १६१६ ई० में शाहजादा खुर्रम की अध्यक्षता में एक विशाल सेना अहमदनगर भेजी। खुर्रम ने बीजापुर के सुल्तान आदिलशाह को अपनी ओर मिला लिया। इससे मलिक अम्बर को सन्धि करनी पड़ी। इस १६१७ ई० की सन्धि के अनुसार बालघाट का प्रदेश मुगलों को दे दिया गया। आदिल शाह द्वितीय ने शाहजादा को १५ लाख की भेंट दी तथा सम्राट ने खुर्रम को ३० हजार सवारों के उच्च पद पर आसीन किया। इनके अलावा अहमदनगर का दुर्ग भी मुगलों को मिल गया।

१६२० ई० में मालिक अम्बर ने सन्धि के नियमो का उल्लंघन किया। खुर्रम पुनः उसे दबाने के लिए भेजा गया। अस्थायी रूप से मलिक अम्बर ने पुनः मुगलों की आधीनता स्वीकार करली। उसकी १६२६ में मृत्यु होगई। दक्षिण की नीति में जहांगीर को कोई विशेष सफलता न मिली।

कन्धार का मुगल प्रभुत्व से अलग होना:—कन्धार व्यवसाय की दृष्टि से तो महत्वपूर्ण है ही परन्तु उसकी स्थिति के कारण उसका भारत के लिए राजनैतिक महत्व भी कम नहीं है। इतिहासकार सरकार की मान्यता है कि कंधार सुरक्षा की प्रथम अनिवार्य पंक्ति में था। डा० बेनीप्रसाद का कथन है—"कन्धार भारत में मध्यशिया और फारस की ओर से प्रवेश करने के दो फाटकों में से एक है। कन्धार एक ऐसा स्थान है जिसे या तो प्रत्येक भारयीय सरकार अपने अधिकार में रखे अथवा उसके शासकों के साथ मित्रता का सम्बन्ध स्थापित करें।"

इसीलिए कन्धार के महत्व को समझते हुए अकबर ने उस पर १५६४ में अधिकार कर लिया था। परन्तु फारस का शाह इसे पुनः अपने अधिकार में करना चाहता था। अतः १६०६ ई० में उसने ईरानियों को कन्धार पर आक्रमण करने के लिए प्रोत्साहित किया। परन्तु स्वयं सम्राट की दृष्टि में बुरा न बने-इसलिए उसने एक पत्र इस आशय का जहांगीर को भेजा कि इस आक्रमण से हमारा कोई सम्बन्ध नही है। इस प्रकार जहांगीर को अपनी मीठी बातों में लेकर उसने १६२२ ई० में कन्धार पर आक्रमण बोल दिया। इस समय जहांगीर और शाहजाद खुर्रम में मन मुटाव पैदा हो गया था। खुर्रम ने कन्धार में युद्ध करने जाने से इन्कार किया। इस प्रकार जहांगीर को बहुत दुःख हुआ और उसको स्वयं का वह समय याद आया जबकि उसने अपने पिता के विरुद्ध बगावत की थी। कन्धार मुगलों के हाथ से चला गया। जहांगीर की इस पराजय से मुगल सम्राट तथा मुगल साम्राज्य को बड़ा धक्का लगा।

खुर्रम की बगावत:—शाहजादा खुर्रम एक योग्य व्यक्ति था। उसने मेवाड़ अहमदनगर व कांगडांविजय से साम्राज्य में अपनी वीरता की धाक जमाली थी। उसके बढ़ते इस प्रभाव से नूरजहां चिन्तित हुई क्योंकि शेर अफगन से उत्पन्न अपनी पुत्री की शादी उसने जहांगीर के सबसे छोटे पुत्र शहरयार से करदी थी। इस कारण वह उसे सुल्ताना बनाना चाहती थी। इस स्वार्थ सिद्धि के लिए उसने खुर्रम को तंग करना व उसके बढ़ते प्रभाव को रोकने का प्रयास किया।

सौतली माता के व्यवहार के कारण वह पिता के विरुद्ध हो गया और उसने कन्धार पर आक्रमण करने से इन्कार कर दिया। महावत खां उसको दबाने के लिए भेजा गया। १६२३ ई० में उसकी बलोचपुर नामक स्थान पर हार हुई। इस परास्त के उपरान्त वह मालवा पहुंचा। महावतखां ने उसका पीछा किया। खुर्रम ने दक्षिण में जाकर मलिक अम्बर से सहायता की याचना की। सहायता न मिलने पर बंगाल पहुँचा। बंगाल के सूबेदार ने शाहजादा की सहायता की और उसने बिहार पर

अधिकार कर लिया। परन्तु १६२५ ई० में महावतखां ने उसे हथियार डालने को बाध्य कर दिया।

महावतखां की बगावत:—जैसा कि हम इससे पूर्व व्यक्त कर चुके हैं कि नूरजहां सत्ता की भूखी थी। वह राज्य में अपने से अधिक शक्तिशाली किसी अन्य को देखना नहीं चाहती थी। महावतखां का प्रभाव अब साम्राज्य में बढ़ रहा था। उसके अलावा वह परवेज के बादशाह बनने का समर्थन कर रहा था। अतः महावतखां को दरबार में उपस्थित होने का आदेश दिया गया और उपस्थित होने पर उस पर बहुत से झूठे आरोप लगाये गए। बादशाह ने उसका अपमान किया। इस पर महावतखां बिगड़ गया और १६२६ ई० में जब जहांगीर काश्मीर से लौट कर काबुल जा रहा था तो झेलम नदी के तट पर उसे बन्दी बना लिया। नूरजहां किसी प्रकार से निकल भागी और उसने स्वयं ने अपनी पति की मुक्ति के लिए हाथी पर भयंकर संग्राम किया। अन्त में जहांगीर भी बन्दी गृह से निकल गया। महावतखां एक राजनैतिज्ञ था। उसने अपनी परिस्थिति को भलि भांति समझा और वह दक्षिण में जाकर खुर्रम के आश्रय में रहने लगा।

कला का विकास:—जहांगीर अपने पूर्वज बाबर की भांति प्रकृति का उपासक था। अतः उसे सबसे अधिक रुचि चित्र-कला में थी। चित्रकला का वह स्वयं अच्छा जानकार था। जहांगीर ने अपने जीवन चरित्र में लिखा है, "अपने विषय में मैं यह कह सकता हूं कि चित्र कला में मेरी आसक्ति और विवेचना इस सीमा तक पहुंच चुकी है कि जब कोई चित्र मेरे समक्ष प्रस्तुत किया जाता है, चाहे मृत चित्रकार का हो या जीवित का मैं देखकर तुरन्त बता सकता हूँ' कि वह किसकी तूलिका का फल है....।"बादशाह बनने से पूर्व उसके पास हिरात का विख्यात चित्रकार आगारिजा था। आगे चलकर जहांगीर के दरबार का यह प्रधान चित्रकार बना। इसके अलावा अबुल-हसन्, फारूख बेग, अब्दुल समद, मुहम्मद नादिर मुहम्मद आदि कई विख्यात, चित्रकार उसके दरबार में थे। प्रारम्भ में उसके समय में फारस चित्रकला का प्रभाव रहा। परन्तु शनैः शनैः वह भारतीय चित्रकला से प्रभावित होता गया। बिशनदास उसके समय का एक अच्छा चित्रकार था। वह बहुधा पशुओं के चित्र बनाया करता था। जहांगीर अपने दरबार की चित्र कला को विकसित करने की दृष्टि से अन्य देशों की चित्रकला के अनुपम चित्र खरीदता था जैसाकि हमें थामसरो से ज्ञात होता है।

स्थापत्य कला में उसे अधिक दिलचस्पी नहीं थी। इस कारण उसके काल में कोई विशेष भवन नहीं बनाये गये। उसकी बेगम नूरजहां ने अपने पिता इतिमाद-उ-दौला

की यादगार में बनाई थी। वह सफेद संगमरमर से निर्मित तथा टाइल्स से अलंकृत है। इसकी आकृति पर हिन्दू कला पर अधिक प्रभाव पड़ा है।

जहांगीर का यूरोपवासियों से सम्पर्क :—यूरोपवासियों का भारत आगमन अकबर के समय से ही आरम्भ हो गया था। जहांगीर के शासन काल में बहुत से यूरोप यात्री उसके दरबार में आये। सुविधा की दृष्टि से उन यात्रियों को तीन श्रेणियों में विभक्त करते हैं—(१) पुर्तगाली (२) जैसुइट और (३) अंग्रेज

पुर्तगालियों का इस समय प्रभाव क्षीण हो रहा था। वे भारत में जबरन धर्म परिवर्तन करा रहे थे। फादर पिन हीरो के नेतृत्व में जहांगीर के दरबार में दूत मंडल आया। परन्तु १६१३ ई० में जब पुर्तगालियों ने कुछ शाही जहाजों को सूरत में पकड़ लिया तो मुगल बादशाह की दृष्टि से पुर्तगाल वाले गिर गये। १६१५ ई० में जैसुइटों के प्रयत्नों से बादशाह तथा उनके सम्बन्धों में कुछ सुधार हुआ।

अकबर के समय में कई जैसुइट लोग फतेहपुर सीकरी आते थे। उस समय जहांगीर उनके सम्पर्क में आया था। जब वह सम्राट बना तो उसने उनको लाहौर में गिरजाघर बनाने के लिए आर्थिक सहायता दी। जहांगीर इनसे इतना प्रभावित हुआ कि वह अपने गले में एक तावीज पहिनता था, जिसमें मसीह तथा कुमारी के चित्र रहते थे। जहांगीर ने अपने भतीजों (दानियाल के पुत्रों) को भी बपतिस्मा लेने की आज्ञा दे दी थी।

कैप्टिन विलियम हाकिन्स प्रथम अंग्रेज था जो जहांगीर के दरबार में आया था। वह इंगलैण्ड के सम्राट जेम्स प्रथम का एक पत्र लाया था जिसमें अंग्रेजों को व्यापारिक सुविधाएँ देने का अनुग्रह किया गया था। हॉकिन्स ने सम्राट को २५ हजार स्वर्ण मुद्राएँ भेंट स्वरूप दीं। वह तीन वर्ष मुगल दरबार में रहा। सम्राट उसे दावतों में बहुधा बुलाया करता था। हाकिन्स ने मुगल दरबार के नियम व मुगल सम्राट जहांगीर के व्यक्तिगत जीवन पर बहुत प्रकाश डाला है। उसके बाद १६१२ ई० पालकेनिंग नाम का दूसरा अंग्रेज आया। उसका दरबार में अधिक सम्मान न हुआ। १६१५ ई० में सर टाम्स रो मुगल दरबार में उपस्थित हुआ। वह भी तीन वर्ष तक मुगल दरबार में रहा। वह एक शिक्षित व्यक्ति था। अतः उसने भारतीय जीवन का अच्छा वर्णन किया है।

जहांगीर के अन्तिम दिन :—जहांगीर के अन्तिम दिन तो अपने पिता अकबर व पितामह हुमायूं से भी अधिक दुःखमय व्यतीत हुए। वह अपने अन्तिम दिनों में शराब व अफीम के सेवन से अति दुर्बल हो गया था। रात्रि के समय खाना उसे जबरन खिलाया जाता था। इस पर भी उसकी सदैव इच्छा शराब पीने की बनी रहती

थी। इसके अलावा नूरजहां के प्रभाव में आने से उसे गृह-युद्ध का सामना करना पड़ा। इसके कारण खुर्रम ने उसके अन्तिम दिनों को और भी दुःखद एवं निराशाजनक बना दिया। अपने सेनापति महावत खां द्वारा बन्दी बनाया जाना उसके लिए कम अपमान-जनक नहीं था। स्वास्थ्य उसका अति जीर्ण हो गया था। ऐसी दशा में जब वह काश्मीर से लौट रहा था तो ५८ वर्ष की उम्र में १३२७ ई० भीमवार नामक स्थान के निकट राजौरी में इस लोक से वह सदैव के लिए विदा ले गया।

इतिहास में स्थानः—जहांगीर भारत के इतिहास में **"प्रतिभावान सुरासेवी"** के नाम से विख्यात है। रिचार्ड बर्न्स लिखते हैं—**"वह दयालु प्रकृति का सम्राट था। उसे खेल, कला, अच्छे रहन-सहन का जीवन अति प्रिय था।"** परन्तु डा० ईश्वरी प्रसाद जहांगीर का इतिहास में स्थान निश्चित करते हुए लिखते है—**"जहांगीर मुगल इतिहास के अत्यन्त रोचक शासकों में से एक है। साधारण मत है कि वह केवल एक विलासी, आनन्द प्रिय, क्रूर तथा अत्याचारी शासक था, उसके साथ न्याय नहीं करता। उसके चरित्र के जितने भी वर्णन प्राप्त हैं उनसे यह सिद्ध होता है कि वह एक चतुर तथा कुशाग्र बुद्धि व्यक्ति था और पेचीदा से पेचीदा समस्याओं को सरलता से समझ सकता था।"** वास्तव में यह सत्य है कि जहांगीर इतना मूर्ख व राज्य-कार्यों में उदासीन रहने वाला नहीं था जितना कि लोग उसे समझते हैं। जहांगीर एक राजनीतिज्ञ शासक अवश्य था चाहे उसमें अकबर की प्रखरता न हो। वह मामले को समझ लेता था। युद्ध संचालक की भी उसमें योग्यता थी। प्रशासन का कार्य भी उसने ठीक तरह से संचालित किया चाहे वह मौलिकता से परे था। वह एक न्याय प्रिय शासक था। परन्तु यह सब होते हुए भी उसका इतिहास में उचित स्थान क्यों नहीं दिया जाता। इसका प्रमुख कारण उसके योग्य पिता व वैभवशाली पुत्र का होना है। **"वास्तव में उसकी ख्याति"**, जैसा कि डा० बेनी प्रसाद लिखते हैं—**"उसके पिता के सीमापारी यश तथा पुत्र के चका-चौंध कर देने वाले वैभव के कारण फीकी पड़ जाती है।"** कुछ समकालीन लेखकों का कथन है कि इंगलैण्ड के राजा जेम्स प्रथम की भांति जहांगीर के चरित्र में भी विरोधी तत्वों का सम्मिश्रण था। टैरी लिखता है— **"राजा (जहांगीर) के स्वभाव के विषय में मुझे सदैव ऐसा लगा कि उसमें दो विरोधी तत्वों की अति थी; क्योंकि वह कभी अति क्रूर और कभी अत्यन्त न्याय प्रिय और कोमल था।"** परन्तु वह कथन यथार्थ प्रतीत नहीं होता। मानव रूप में जहांगीर सौजन्यता और सुशीलता की प्रति मूर्ति था। वह अपने परिवार के सदस्यों को सच्चे हृदय से प्रेम करता था।

जहांगीर उच्च शिक्षा प्राप्त और सुसंस्कृति युक्त राजकुमार था। उसे फारसी और तुर्की भाषाओं पर पूर्ण अधिकार था। वह हिन्दी, अरबी तथा कुछ

अन्य भाषाओं से भी परिचित था। उसका प्रधान लेख 'तुज़ुके जहांगीरी' उसकी रचना का सर्वोत्कृष्ट उदाहरण है। सर टामस रो ने उस पर नास्तिकता का दोष लगाया है। परन्तु टैरी लिखता है—"सब धर्मों के साथ साहिष्णुता का व्यवहार किया जाता था।"

उपरोक्त विवेचन से यह स्पष्ट होता है कि जहांगीर का भारतीय इतिहास में स्थान बहुत ऊंचा है। वह बुद्धिमान, सहिष्णु तथा दयावान शासक था। उसका दृष्टिकोण धार्मिक क्षेत्र में विशाल तथा व्यापक था। वह साहित्य तथा कला प्रेमी था। उसमें सम्राट के सभी गुण विद्यमान थे। यदि कुछ दोष थे तो वे तत्कालीन राजकुमारों में अधिकतर पाये जाने वाले थे।

अध्याय सार

प्रस्तावना—जहांगीर अपने पिता की जीवित अवस्था में राज्य लेने को लालायित हो उठा था। इस कारण उसने पिता के विरुद्ध बगावत की। परन्तु एक ही पुत्र होने के कारण अकबर ने उसे क्षमा कर दिया और उसे अपना उत्तराधिकारी घोषित किया।

राज्याभिषेक—पिता की मृत्यु पर २४ अक्टूबर १६०५ में वह बादशाह बना।

प्रारंभिक जीवन—३० अगस्त १५६६ ई० को वह योद्धाबाई से जन्मा था। अकबर की ऐसी मान्यता थी कि वह शेख सलीम के आशीर्वाद से पेदा हुआ है। इस कारण उसने उसका नाम सलीम रखा। अकबर ने उसकी शिक्षा का अच्छा प्रबन्ध किया था। अकबर के अन्तिम दिनों को दुःखी बनाने का दोषी सलीम था। उसकी शादी आमेर नरेश भगवानदास की पुत्री से हुई थी।

शासन प्रबन्ध—आरम्भ में जहांगीर शासन-प्रबन्ध में उदार था। उसने सूबेदारों का स्थायी कर दिया। उसने अपने समर्थकों को उच्च पद प्रदान किये। उसका यह उदार शासन उसके बारह नियमों पर आधारित था। नूरजहां से शादी होने के उपरान्त शासन में नूरजहां का प्रभुत्व अधिक बढ़ गया था।

खुसरो की बगावत :—जहांगीर के बागी होने पर अकबर ने अपने पोते खुसरो को अपना उत्तराधिकारी बनाना चाहा था। मानसिंह ने इसका समर्थन किया था। अतः जहांगीर के बादशाह हो जाने पर एक दिन खुसरो अकबर के मकबरे को देखने का बहाना करके लाहौर चला गया। वहां बगावत का झंडा ऊंचा करने पर वह परास्त करके बन्दी बना लिया गया। पन्द्रह वर्ष बाद उसकी खुर्रम ने जीवन लीला समाप्त करदी।

बागी खुसरो को गुरु अर्जुन ने आशीर्वाद दिया था। इस कारण जहांगीर ने उसे भी मौत के घाट उतार दिया।

नूरजहां से विवाह:—नूरजहां का प्रारम्भिक नाम मेहरुन्निसा था। वह जब अकबर के दरबार में थी तभी सलीम उसे प्रेम करने लग गया था। परन्तु इस बात का पता चलने पर अकबर ने उसकी शादी शेर अफगन से करदी थी। जहांगीर ने बादशाह बनते ही उस पर आक्रमण किया। शेर अफगन लड़ाई में काम आया। मेहरुन्निसा दरबार में लाई गई और १६११ ई० में उसने जहांगीर से शादी करली। इस शादी से जहांगीर के जीवन में बड़ा प्रभाव पड़ा।

राजपूत नीति :—जहांगीर की राजपूत नीति सब मुगल बादशाहों से सराहनीय थी। मेवाड़ के महाराणा प्रताप को अकबर आधीन नहीं बना सका था। जहांगीर ने प्रताप के पुत्र अमरसिंह को अपने आधीन कर लिया और सम्बन्ध भी उससे बड़े मित्रतापूर्ण बनाये रहा।

दक्षिण विजय :—जहांगीर ने अपने पिता की नीति ही चालू रखी। अहमदनगर को मुगल साम्राज्य में पूर्णतः विलीन करने के लिए जहांगीर ने परवेज के नेतृत्व में सेना भेजी। मलिक अम्बर परास्त हुआ और १६१७ में उसने सन्धि करली। १६२० में मलिक अम्बर ने जब पुनः सर उठाया तो उसे फिर दबा दिया गया और उसकी १६२६ ई० में मृत्यु हो गई।

कन्धार का मुग़ल प्रभुत्व से अलग होना :—अकबर ने कन्धार को मुगल साम्राज्य का अंग बनाया था। परन्तु फारस का शाह उसे पुनः लेना चाहता था। १६०६ में कुछ ईरानियों को बगावत करने के लिए प्रोत्साहित किया और जहांगीर को यह विश्वास दिला दिया कि इसमें हमारा हाथ नहीं है। शाह ने मीठे संवादों से जहांगीर को बनाये रखा और १६२२ ई० में उसने अचानक आक्रमण कर कन्धार को फारस में मिला लिया।

खुर्रम की बगावत :—सौतेली माता से तंग आकर खुर्रम ने बगावत की। बगावत महावत खां द्वारा दबादी गई और खुर्रम ने बादशाह से क्षमा याचना की।

महावत खां की बगावत :—नूरजहां राज्य में अपने आगे किसी का प्रभाव बढ़ते नहीं देख सकती थी। अतः महावत खां के बढ़ते प्रभाव को देख उसे चिन्ता हुई। बादशाह द्वारा उस पर झूंठे आरोप लगाये गये और उसका अपमान किया गया। इस पर महावतखां ने बगावत की और सम्राट व साम्राज्ञी दोनों को बन्दी बना लिया। जब वे स्वतंत्र हो गये तो महावत खां दक्षिण में शाहजहां के पास भाग गया।

कला का विकास :—जहाँगीर की सबसे ज्यादा रुचि चित्रकला में थी। वह स्वयं इस कला का पूर्ण ज्ञाता था। उसके दरबार में अच्छे अच्छे चित्रकार थे।

यूरोपवासियों से सम्पर्क :—इसके समय में पुर्तगाली व अंग्रेज दोनों आये। इस समय पुर्तगालियों का प्रभाव क्षीण हो रहा था और अंग्रेजों का प्रभाव बढ़ रहा था। विलियम हॉकिन्स व पाल केनिंग आदि का नाम उल्लेखनीय हैं।

जहांगीर के अन्तिम दिन :—शराब के अधिक सेवन करने से जहांगीर का स्वास्थ्य खराब हो गया था। इसके अतिरिक्त नूरजहां का राजनीतिक कार्यों में अधिक हस्तक्षेप होने से आशान्त वातावरण बन गया था।

इतिहास में स्थान:—जहांगीर पर इतिहासकार दो पहलू से विचार करते हैं। कुछ तो उसे केवल शराबी एवं विलासी कहते हैं जबकि कुछ के मतानुसार वह चतुर तथा कुशाग्र बुद्धि था। वास्तव में जहांगीर एक अच्छा शासक था। उसकी धार्मिक भावना उदार थी। वास्तव में उसकी कीर्ति उसके पिता अकबर तथा पुत्र शाहजहां के गौरव के बीच फीकी पड़ गई थी।

प्रश्न

१. खुसरो के बारे में क्या जानते हो ? उसने जहांगीर के खिलाफ क्यों बगावत की ?

Who was Khausrau ? Why did he revolt against Jahangir.

२. जहांगीर की नूरजहां से शादी का राजनैतिक क्षेत्र में क्या प्रभाव पड़ा ?

How did the marriage of Jahangir with Nurjahan affect the political career of the King.

३. खुर्रम ने जहांगीर के खिलाफ बगावत क्यों की ?

What were the causes which led Khurram to revolt against Jahangir ?

४. "जहांगीर की दक्षिण की नीति उसके पिता अकबर की दक्षिण नीति को जारी रखना था।" इस कथन का विवेचना कीजिए !

"The Deccan Policy of Jahangir was only the continuation of Akabar's Deccan policy." Discuss.

५. जहांगीर के समय की कला पर संक्षेप में प्रकाश डालो।

Trace the growth of art during the reign of Jahangir.

अध्याय छठा

मुग़ल शासन का स्वर्ण-युग

प्रस्तावना–शाहजहां का प्रारम्भिक जीवन तथा उसका राज्याभिषेक–प्रारम्भिक कठिनाइयाँ–उसकी राजपूत नीति–धार्मिक नीति–कन्धार की विजय–दक्षिण विजय–पुर्तगालियों का दमन–उत्तराधिकार युद्ध–स्वर्ण-युग–मृत्यु।

प्रस्तावना:—जहांगीर के २२ वर्षीय शासन काल में साम्राज्य में शान्ती बनी रही। यदि जहांगीर ने अकबर के साम्राज्य को बढ़ाया नहीं तो घटने भी नहीं दिया। यदि उसके काल में कन्धार गया तो उसने मेवाड़ के राणा को अपने आधीन कर लिया। परन्तु वह विलासी होने के कारण राज्य के विकास की ओर ध्यान नहीं दे सका। इसके अतिरिक्त उसकी बेगम नूरजहां के अनुचित प्रभाव से शाही महल गृह-युद्ध का केन्द्र बन गया। परन्तु उसकी मृत्यु के उपरान्त मुगल साम्राज्य में शान्ति रही तथा राज्य का सर्वांगीन विकास हुआ! जनता चैन से रही। प्रजा की इस शान्ति व वैभवता का श्रेय जहांगीर के पुत्र शाहजहां पर जाता है। शाहजहां जहांगीर के चारों पुत्रों में सर्वश्रेष्ठ एवं योग्य था। जहांगीर चाहे उसे अपना उत्तराधिकारी बनाना चाहता था या नहीं, यह बताना कठिन है किन्तु वह तो अपनी शक्ति से भारत का सम्राट बन ही गया।

प्रारम्भिक जीवन:—शाहजहां का प्रारंभिक नाम खुर्रम था। वह भी अपने पिता की भांति एक हिन्दू राजकुमारी से ४ जनवरी १५९२ ई० को उत्पन्न हुआ था। उसकी माता जोधपुर के महाराजा उदयसिंह की पुत्री थी। उसका नाम जगत गुसाईं था। कहा जाता है कि वह जहांगीर के सब राजकुमारों में योग्य था। उसका चरित्र उच्च कोटि का था तथा वह मद्यपान बहुत कम मात्रा में करता था। सर टामस रो ने उसे 'उदास कुमार' बताया है। कहने का तात्पर्य यह है कि खुर्रम के चहरे पर कभी भी मुस्कान दृष्टिगत नहीं होती थी। १६०७ ई० में जहांगीर ने उसे ८००० जात तथा ५००० सवार का मसंब बनाया। उसका विवाह नूरजहां के भ्राता आसफखां की पुत्री अर्जुमन्द बानू (मुमताज महल) के साथ हुआ था। मेवाड़ विजय तथा दक्षिण विजय के कारण उसकी प्रतिष्ठा और भी बढ़ गई थी। इसलिए १६१० ई० में उसे १० हजार जात तथा ५ हजार का पद दे दिया गया। परन्तु १६१८ ई० के उपरान्त जहांगीर की कृपा उस पर नहीं रही। इसी कारण उसने १६२२ में बगावत भी की

थी। अन्त में वह परास्त हुआ और जहांगीर से उसने क्षमा याचना की। जहांगीर की मृत्यु के समय वह दक्षिण में था।

राज्याभिषेक:—मुगल शासन की सबसे बड़ी कमजोरी यह थी कि उनके यहां उत्तराधिकार का कोई नियम न था। 'जिसकी लाठी उसकी भैंस' कहावत उनके शासन में चरितार्थ होती थी। जहांगीर का सबसे बड़ा पुत्र खुसरो था जो कि १६०६ में बगावत के अपराध में बन्दी बनाया गया था। दूरदर्शक शाहजहां ने १६२२ में उसका वध कराके अपने रास्ते का एक कांटा साफ कर दिया था। १६२६ ई० में परवेज की अधिक मद्य-पान के कारण मृत्यु हो गई थी। इस प्रकार दूसरा कांटा भी खुर्रम के मार्ग से स्वयं दूर हो गया। अब राज्य के लिए दो उम्मीदवार रहे-(१) खुर्रम तथा (२) शहरयार। शहरयार को बेगम नूरजहां का समर्थन प्राप्त था क्योंकि उसने अपनी पुत्री लाडली बेगम की शादी शहरयार से करदी थी। इधर खुर्रम की बेगम नूरजहां के भाई आसफखां की पुत्री थी। वह खुर्रम को बादशाह देखना चाहता था। इसलिए जब जहांगीर की मृत्यु उत्तर में हुई तो नूरजहां ने तो शहरयार को तैयारी करने की सूचना दी और उधर आसफखां ने अपने दामाद खुर्रम को। खुर्रम इस समय दक्षिण में था। अत: जब तक कि खुर्रम राजधानी में पहुँचे आसफखां ने खुसरो के पुत्र दाराबख्श को बादशाह घोषित कर स्वयं लाहौर की ओर रवाना हुआ। वहां शहरयार को परास्त कर उसने बन्दी बना लिया। इस समय तक दक्षिण से खुर्रम लौट आया और फरवरी १६२८ ई० में वह शाहजहां के नाम से भारत का सम्राट बन गया। इसलिए डा० एस० आर० शर्मा का मत हैं कि "**जहांगीर का राजौरी में मरना शाहजहां के लिए एक वरदान सिद्ध हुआ।**" बादशाह नामा का रचियता अब्दुल हामिद लाहोरी की मान्यता हैं कि राज्य के लिए यह संघर्ष केवल बेगम नूरजहां के अनुचित प्रभाव के कारण ही हुआ।

प्रारम्भिक कठिनाइयां

नियमानुसार शासक बनने पर ही शासक को बहुतसी कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है और शाहजहां शक्ति के सहारे सम्राट बना था। अत: स्वाभाविक था कि उसे अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़े। खुसरो के पुत्र दाराबख्श को तो उसने राजधानी में पहुँचते ही मौत के घाट उतार दिया था। इसी कारण दारा बख्श को इतिहासकारों ने 'बलि का बकरा' पुकार है। इसके उपरान्त शाहजहां को निम्न कठिनाइयों का सामना करना पड़ा—

बुन्देलों का विद्रोह :—जहांगीर ने अबुल फज़ल का वध बुन्देल राजपूत वीरसिंह देव ने किया था। अत: जहांगीर ने उसे शासनकाल में जागीरें देकर सम्मानित था। १६२७ ई० जुझारसिंह वीरसिंह देव का उत्तराधिकारी बना। शाहजहां

ज्योंही सम्राट बना वह उसकी बिना आज्ञा के ओरछा चला गया और वहां महान सेना का संगठन किया। शाहजहां ने प्रसिद्ध सेनापति महावत खां को उसे दबाने भेजा। जुझारसिंह परास्त हुआ तथा उसने शाहजहां से क्षमा मांगी। इस हार के परिणामस्वरूप जुझारसिंह को बहुत सा धन शाहजहां को देना पड़ा और उसे दक्षिण में लड़ने जाने का आदेश हुआ। परन्तु कुछ समय बाद ही जुझारसिंह ने वीर नारायण से चौरागढ़ का दुर्ग छीन लिया। वीर नारायण ने शाहजहां को इसके विरुद्ध शिकायत की। शाहजहां ने जुझारसिंह को १० लाख रुपया शाही कोष में जमा कराने का आदेश दिया। घमण्ड के नशे में चूर जुझारसिंह इस आदेश को कब मानने वाला था ? इस कारण शाहजहां ने औरंगजेब की अध्यक्षता में एक विशाल सेना जुझारसिंह के दमन के लिए भेजी। मुगल सेना से भयभीत हो वह किले से भाग निकला और जब वह अपने परिवार के साथ जंगल में छिपा हुआ था तो गोंड़ों ने उसका वध कर दिया।

इस प्रकार जुझारसिंह तो खत्म कर दिया गया। परन्तु उसके उपरान्त चम्पतराय ने मुगलों के विजित प्रदेशों को लूटना आरम्भ किया। जब उससे किसी प्रकार सन्धि हुई तो उसके पुत्र छत्रसाल ने आगे चलकर सम्राट औरंगजेब को परेशान किया था।

खानजहां लोदी को दबाना:—जहांगीर के समय वह गुजरात तथा दक्षिण का सूबेदार रह चुका था। परन्तु वह एक अफगान था। अतः उसे मुगलों से घृणा होना स्वाभाविक था। इस कारण जब शाहजहां दक्षिण से गद्दी की प्राप्ति के लिए राजधानी जा रहा था तो उसने राजकुमारों की पारस्परिक फूट का लाभ उठाना चाहा। उसने अहमदनगर के सुल्तान से मित्रता कर उसे बालाघाट का इलाका ३ लाख में बेच दिया। इसके पश्चात उसने मालवा पर आक्रमण कर दिया। परन्तु जब उसे ज्ञात हुआ कि उत्तराधिकार के युद्ध में शाहजहा विजयी हो गया तो उसने शाहजहां से क्षमा चाही। शाहजहां ने उसे क्षमा कर दिया तथा उसे पुनः दक्षिण का सूबेदार नियुक्त कर दिया। परन्तु खानजहां लोदी ने न तो बालाघाट पर पुनः अधिकार करने का ही प्रयास किया और न अपनी विरोधी मनोवृत्ति को ही बदला। इससे शाहजहां ने उसे अपने दरबार में बुला लिया। वहां वह सात महीने रहा और बाद में यकायक दरबार से भग खड़ा हुआ। शाहजहां ने बड़ी सावधानी से कार्य किया। इससे पहिले कि वह दक्षिण में किसी से सहायता प्राप्त कर सके उसे धौलपुर के समीप ही घेर लिया। परन्तु वहां से वह बच निकला। अबुल हसन के नेतृत्व में मुगल सेना उसका पीछा करती रही और अन्त में कालिंजर के समीप वह अपने दो पुत्र—अजीज व कोमल के साथ मारा गया।

इस कारण इन चारों शाहजादों ने राज्य प्राप्ति के लिए जो संघर्ष किया वह इतिहास में उत्तराधिकार-युद्ध के नाम से विख्यात है।

शुजा द्वारा राज्य प्राप्ति का प्रयास—जैसा कि बताया जा चुका है शुजा बंगाल का सूबेदार था। बर्नियर लिखता है कि शुजा यद्यपि राज्य-कार्यों की व्यवस्था करने में चतुर था। वह उमरावों को अपने पक्ष में करने की कला जानता था। परन्तु उसमें सबसे बड़ा दोष यह था कि वह विलासिता का दास था। यदि एक बार वह अपनी स्त्रियों से घिर जाता तो वह रात दिन उन्हीं के सहवास में गुजार दिया करता था। मनूसी ने भी शुजा के सम्बन्ध में इस प्रकार लिखा है; "वह जानता था कि ऐसे मित्र किस प्रकार बनाये जावें जो महत्वपूर्ण तथा तर्क पूर्ण कार्यों में सहायता कर सकें।" यदुनाथ सरकार की मान्यता है कि बंगाल की लगातर १७ वर्ष की सूबेदारी से वह दुर्बल, आलसी, उदासीन तथा अकर्मण्य हो गया था। इन सब दोषों के होते हुए भी उसकी साम्राज्य की क्षुधा शान्त नहीं हुई थी। उसने बंगाल की राजधानी राजमहल में अपने को बादशाह घोषित किया और आगरे की ओर बढ़ा। परन्तु मार्ग में वह बनारस के समीप दारा के पुत्र सुलेमान शिकोह से परास्त हो गया और बंगाल की ओर लौट आया।

औरंगजेब और मुराद में समझौता:—औरंगजेब इन घटनाओं को शान्ति पूर्वक देख रहा था। औरंगजेब राजनीतिज्ञ तथा योग्य प्रशासक था। बर्नियर के शब्दों में औरंगजेब-"गंभीर, गूढ़ तथा धूर्तता का पूरा जानकार था।" वह अपने तीनों भाइयों से योग्य था। अपनी रण कुशलता का परिचय वह कन्धार तथा दक्षिणी भारत की विजय में पहले ही दे चुका था। इसके अलावा वह धार्मिक जीवन व्यतीत करता था। इस कारण मुसलमान सैनिक तथा उमराव लोग औरंगजेब का समर्थन करने को उद्यत थे। उसने गुजरात के सूबेदार मुराद से पत्र व्यवहार किया। मुराद ने भी अपने को गुजरात में पहले ही भारत का बादशाह घोषित कर दिया था। मुराद साहसी अवश्य था परन्तु वह विलासी तथा लंपट था। वह एक निर्भीक सैनिक था परन्तु उसमें एक अच्छे सेना-नायक के गुण नहीं थे। अतः औरंगजेब ने उसे लिखा कि हमें दोनों को मिलकर दारा से संघर्ष करना चाहिए। विजय प्राप्त होने पर तुम्हें भारत का बादशाह बना दिया जावेगा और मैं स्वयं एक फकीर का जीवन व्यतीत करूंगा। औरंगजेब ने आगे बताया कि मैं नहीं चाहता कि दारा जो कट्टर धर्म अनुयायी नहीं है, वह मुग़ल साम्राज्य का स्वामी बने। अतः तुम अपनी सेना लेकर आओ और मैं तुमसे अपनी सेना के साथ दीपालपुर मिलूंगा। लेनपूल के

मतानुसार मुराद जो राजनीति में मूर्ख तथा मद्य-पान में मस्त था--औरंगजेब से इस बात पर सहमत हो गया।

घटनायें

धरमत का युद्धः—पूर्व निश्चय के अनुसार मुराद और औरंगजेब की सेनाएँ १४ अप्रेल १६५८ को दीपालपुर में मिलीं। उधर दारा ने एक विशाल सेना जोधपुर के महाराजा जसवन्तसिंह तथा कासिमखां की अध्यक्षता में भेजी। दोनों सेनाओं में धरमत के स्थान पर संघर्ष हुआ राजपूत सेना ने मुग़ल सेना का डटकर मुकाबला किया। परन्तु कासिमखां के नेतृत्व में भेजी हुई मुस्लिम सेना ने राजपूत सेना को सहायता न दी। इसके परिणाम स्वरूप दारा की सेना परास्त हुई और जसवन्तसिंह युद्ध में बुरी तरह घायल हुआ। इसके विपरीत विजय मिलने पर औरंगजेब की स्थिति और दृढ़ हो गई और दारा के प्रति मुसलमानों का आदर कम हो गया।

सामूगढ़ का युद्धः—धरमत के युद्ध का विजयी औरंगजेब राजधानी की ओर बढ़ा। इस बार दारा स्वयं एक विशाल सेना के साथ औरंगजेब का सामना करने को रवाना हुआ। २८ मई को औरंगजेब की सेना सामूगढ़ पहुँच गई। परन्तु राजनीति से अनभिज्ञ दारा ने उसी समय औरंगजेब की सेना पर आक्रमण नहीं किया और २९ मई को किया। इससे औरंगजेब की थकी सेना विश्राम मे फिर ताजा हो गई। युद्ध दोनों ओर से भयंकर हुआ। परन्तु अभाग्यवश दारा युद्ध में परास्त हुआ और रण-क्षेत्र से भाग खड़ा हुआ।

परिणामः—शाहजहां बन्दी बनाया गया और अन्त में औरंगजेब भारत का सम्राट बना। दारा व उसके पुत्र सुलेमान शिकोह का पीछा किया गया और निर्दयता से उनको मौत के घाट उतार दिया गया।

मुराद का अन्तः—सामूगढ़ के युद्ध में विजयी औरंगजेब बड़ा धूर्त था। जब वह दारा का पीछा करते हुए मथुरा पहुंचा तो उसने मुराद को २० लाख रुपये तथा २३३ घोड़े भेंट दिए। इसके उपरान्त दावत में उसे खूब सुरा पिलादी और नशे में चूर मुराद को बन्दी बना कर ग्वालियर के दुर्ग में भेज दिया जहां कि तीन वर्ष के उपरान्त उसका वध कर दिया गया।

स्वर्ण-युग

शाहजहां का शासन-काल इतिहास में स्वर्ण-युग के नाम से जाना जाता है। मुगल साम्राज्य अपने उत्कर्ष की चरमसीमा पर इसी के समय में पहुँचा था। यह

सत्य है कि कि औरंगजेब के समय में मुग़ल साम्राज्य का विस्तार हुआ। परन्तु उस विस्तार के साथ उसके साम्रज्य का पतन भी आरम्भ हो गया था। सर विलियम हन्टर लिखता है-"**शाहजहां के काल में मुगल साम्राज्य अधिक से अधिक शक्तिशाली तथा गौरवपूर्ण था।**" इसके राज्य में प्रजा सुखी थी। साम्राज्य की वैभवता दिनों दिन बढ़ती जा रही थी। एल फिन्सटन ने लिखा है-"**भारत में यह अत्यन्त धन सम्पन्न काल था।**" कई इतिहासकार इस कथन से सहमत नहीं हैं। परन्तु जो इतिहासकार उसके शासन काल को स्वर्ण-युग मानते हैं वे अपने पक्ष में निम्न तर्क प्रस्तुत करते हैं—

शासन-प्रबन्ध का अच्छा होना:—शाहजहां ने अपने विशाल साम्राज्य का प्रबन्ध बड़े अच्छे ढंग से किया। उसने अपने पिता के नियमों में कुछ परिवर्तन कर उन्हीं के आधार पर शासन किया। उसका दण्ड विधान अपने पूर्वज शासकों की भांति बर्बर नहीं था। उसका सजा देने का उद्देश्य अपराधियों का सुधारना होता था। ट्रेवेनियर के मतानुसार "**उसने प्रजा पर बहुत ही नम्रता पूर्वक शासन किया जैसा दूसरे सम्राट नहीं करते।**" प्रजा के प्रति वह सहानुभूतिपूर्ण था। वह सदैव प्रजा हित का ध्यान रखता था। इसलिए साधारण लोग भी उसे न्यायी बादशाह कह कर पुकारते थे। न्याय करते समय वह छोटे बड़े का भेद नहीं करता था। लुब्बते तवारिख के हिन्दू लेखक ने शाहजहां की न्याय व्यवस्था की महान् प्रशंसा की है। उसका कहना है कि **निर्णय देने में वह बहुत ही सावधानी और विवेक बुद्धि से काम लेता था।** विदेशी यात्री मनूसी भी इसका समर्थन करता है।

साम्राज्य में शान्ति रहना:—शाहजहां के शासन-काल में साम्राज्य में शान्ति तथा व्यवस्था बनी रही। सम्राट की सत्ता का किसी प्रान्त के सूबेदार व उमराव ने विरोध नहीं किया। इसके अलावा विदेशी आक्रमण का भी भय नहीं रहा। शान्ति रहने से देश का व्यापार बढ़ा तथा कृषि में भी उन्नति हुई। केवल कृषि आय ही उसके समय ४५ करोड़ रुपये थी। शाहजहां के काल में निर्माण काल इतने बड़े पैमाने पर चला कि सहस्त्रों व्यक्तियों को रोजगार मिला। अतः उसके साम्राज्य में आर्थिक व्यवस्था भी ठीक थी।

कला का विकास:—शाहजहां को सबसे अधिक रुचि स्थापत्य कला में थी। उसने अपने शासन-काल में कई भव्य इमारतें बनवाई जो आज भी उसके कला-प्रेम का परिचय दे रही हैं। आगरे के किले में मोती मस्जिद बनाई जो कि सफेद संगमरमर की है। मस्जिद अपनी भव्यता तथा सादी रचना के लिए विख्यात है। इसके अलावा उसने अपनी बेगम मुमताज की स्मृति में आगरे में

यमुना के किनारे ताजमहल बनवाया जो कि विश्व का एक आश्चर्य बना हुआ है। आगरे के अतिरिक्त उसने शाहजहांबाद (पुरानी दिल्ली) बसाया। यहां का लाल किला तथा किले में दीवानेखास देखने योग्य है। जामा मस्जिद भारत की सबसे बड़ी मस्जिदों में से एक है।

यद्यपि स्वयं शाहजहां को चित्र कला से अनुराग नहीं था तो भी उसने इस कला के विकास को कुंठित नहीं किया। चित्रकला का निरिक्षण मुहम्मद फकरुल्ला को दे दिया गया। आसफखां तथा शाहजादा दारा को चित्र कला से बड़ा प्रेम था। जो चित्र दारा ने अपनी स्त्री नादिरा बेगम को भेंट किये थे-वे आज भी लन्दन के इण्डिया आफिस में विद्यमान हैं।

साहित्यः—शाहजहां के समय फारसी भाषा का बड़ा विकास हुआ। इसके समय में फारसी दो शाखाओं में विभक्त हो गई थी-(१) विशुद्ध फारसी व (२) भारतीय फारसी। इसके दरबार में फारस के कई महान् कवि आश्रय पा रहे थे। अब्दुल तालिब कलीक शाहजहां के काल का राज-कवि था। उसका लिखा हुआ दीवान तथा साकीनामा प्रसिद्ध है। साहित्य में पद्य के अतिरिक्त गद्य का भी विकास हुआ। गद्य विकसित होने के कारण कई ऐतिहासिक ग्रन्थ लिखे गए। अब्दुल हामिद लाहौरी ने 'पादशाह नामा' की रचना की। इसमें शाहजहां के शासन के प्रथम चार वर्षों का वर्णन मिलता है। वृद्ध हो जाने के कारण लाहौरी इस ग्रन्थ को पूरा न कर सका। इस कारण उसके शिष्य मुहम्मद वारिस ने इसे सम्पूर्ण किया था। मुहम्मद सादिक ने शाहजहांनामा की रचना की। इसके समय में संस्कृत की पुस्तकों का फारसी भाषा में अनुवाद किया गया। इब्नहरकरण ने रामायण का अनुवाद किया। इसके काल में धार्मिक ग्रन्थों की भी रचना हुई। सुन्दरदास, चिन्तामणि तथा कवीन्द्र आचार्य इस समय के उच्च कवि माने जाते थे। इस तरह हम देखते हैं कि शाहजहां के समय का साहित्य विकसित एवं गौरवपूर्ण था।

दरबार का गौरवः—शाहजहां के समय मुगल दरबार की बड़ी शान थी। उसने अपने बैठने के लिए एक मयूर सिंहासन बनवाया। वह सिंहासन ३। गज लम्बा तथा २॥ गज चौड़ा था और उसके निर्माण में उसे करोड़ों रुपये खर्च करने पड़े थे। ट्रेवरनियर ने भी इस मयूर सिंहासन की बड़ी प्रशंसा की है। १७३९ ई० में नादिरशाह इसे ले गया था।

इसलिए बहुत से इतिहासकार कहते हैं कि शाहजहां का शासन स्वर्णयुग था। ट्रेविरनियर लिखता है-"सड़कों की रक्षा तथा उचित न्याय का वह उसी

प्रकार प्रबन्ध करता है जिस प्रकार पिता अपने कुटुम्ब पर करता है।" लेनपूल ने बादशाह को उदारता तथा न्याय के लिए प्रसिद्ध बताया है। मोरलैण्ड ने लिखा है कि शाहजहां का शासन काल कृषकों के लिए शान्ति का युग था। परन्तु फिर भी कुछ इतिहासकार कहते हैं कि **शाहजहां के ठाट-बाट तथा विलासमय दरबारी जीवन के पीछे देश के किसानों तथा कामकर वर्गों की निर्धनता छिपी हुई थी।** उनका कहना है कि शाहजहां ने व्यर्थ में इतना रुपया बहाया कि साम्राज्य की आर्थिक अवस्था खराब हो गई और प्रजा की रीढ़ टूट गई। वी० ए० स्मिथ के अनुसार **"शाहजहां निर्दयी, धोखेबाज तथा बेईमान था। उसका दण्ड विधान बड़ा ही बर्बर, क्रूर तथा नृशंस था।"** उसमें धार्मिक कट्टरता थी। अतः न्याय भी साम्प्रदायिकता पर आधारित था। उसकी विलासिता की सामग्री जुटाने व भव्य इमारतों के निर्माण का खर्चा दीन किसानों को भरना पड़ता था। अतः शाहजहां के शासन पर दुःख की छाया थी।

शाहजहां के शासन के समर्थकों तथा आलोचकों द्वारा प्रस्तुत किए तर्कों से यह तो स्पष्ट है कि शाहजहां एक महान् शासक था तथा उसके साम्राज्य में शान्ति की व्यवस्था थी।

उसके अन्तिम दिन व मृत्युः—मुगल साम्राज्य के अन्तिम दिन बहुत ही दुःखमय रहे। औरंगजेब ने उसे आगरे के किले में बन्दी बना दिया था। और वह वास्तव में एक बन्दी रहा। उसे जीवन सम्बन्धी साधारण सुविधायें भी प्राप्त न थी। उससे कोई नहीं मिलता था और न वह किसी से पत्र द्वारा सम्पर्क स्थापित कर सकता था। यमुना का पानी भी उसे पीने को नसीब न था। ऐसी अवस्था में उसके पास केवल उसकी पुत्री जहाँआरा रही। उसने ही पिता की सेवा की। इस प्रकार अपने दिन व्यतीत करता हुआ शाहजहां जनवरी १६६६ में इस स्वार्थी जगत् से विदा हो गया। औरंगजेब की ओर से उसकी अन्त्येष्टि क्रिया का भी प्रबन्ध नहीं किया गया। किले के साधारण नौकरों द्वारा उसका जनाजा ले जाया गया और ताजमहल में ही उसकी प्यारी पत्नि मुमताज के निकट वह दफना दिया गया।

अध्याय सार

प्रस्तावनाः—जहांगीर के समय में कुछ आन्तरिक कलह के कारण राज्य में अव्यवस्था फैल गई। उस अव्यवस्था को दूर व राज्य में शान्ति व अमन स्थापित करने वाला उसका पुत्र शाहजहां था।

प्रारम्भिक जीवनः—शाहजहां का जन्म ४ जनवरी १५९२ ई० में जोधपुर

नरेश उदयसिंह की पुत्री जगत्‌गुसाईं से हुआ था। यह जहांगीर के सब राजकुमारों में योग्य था। मेवाड़ विजय तथा दक्षिण की विजय से इसकी कीर्ति और फैल गई थी और जहांगीर ने उसे १० हजार जात तथा ५ हजार सवार का पद दे दिया था। परन्तु १६२२ में इसने अपनी सौतेली माता नूरजहां से तंग आकर बगावत की। किन्तु अन्त में उसने क्षमा मांगली थी।

राज्याभिषेक:—जहांगीर की मृत्यु के समय शाहजहां दक्षिण में था। अतः नूरजहां ने अपने दामाद शहरयार को बादशाह बनाने की दृष्टि से लाहौर बुलाया। उधर नूरजहां के भाई व शाहजहां के सुसुर आसफखां ने खुसरो के पुत्र दाराबख्श को बादशाह घोषित कर दिया और शाहजहां के पास इसकी सूचना भेज दी। आसफखां ने लाहौर जाकर शहरयार का काम खत्म किया और शाहजहां के राजधानी में पहुँचते ही दाराबख्श को भी काल का ग्रास बना दिया। इन सब कठिनाइयों का निवारण कर १६२८ में शाहजहां बादशाह बना।

प्रारम्भिक कठिनाइयां

(i) शाहजहां ने वीरसिंह बुन्देल के पुत्र जुझारसिंह को दबा दिया। परन्तु उसकी मृत्यु के पश्चात् भी बुन्देले राजपूत मुगल सम्राट से स्थाई रूप से नहीं दबे।

(ii) खानजहां लादी, जो कि शाही निर्बलता से फायदा उठाकर दक्षिण में स्वतन्त्र शासक बनना चाहता था, शाहजहां द्वारा समाप्त कर दिया गया।

(iii) उसके शासन-काल गुजरात में महान् अकाल पड़ा। उसमें हजारों आदमी मर गये। परन्तु शाहजहां ने लोगों को हर प्रकार की राहत देने का प्रयास किया।

मुमताज की मृत्यु:—१६३१ ई० में मुमताज महल का देहान्त हो गया—उसके चौदहवीं सन्तान हुई थी। इसी कारण उसकी आकस्मिक मृत्यु हुई।

राजपूत नीति:—इसके शासन काल में किसी राजपूत नरेश ने विद्रोह नहीं किया। मेवाड़ के महाराणा कर्णसिंह से इसके अच्छे सम्बन्ध रहे। परन्तु कर्णसिह का पुत्र जगत्‌सिंह एक महत्वाकांक्षी राणा थे। उसने अपने समीप के भागों को जीतना आरम्भ किया। इस पर शाहजहां ने उसके खिलाफ सेना भेजी। परन्तु जगत्‌सिह ने सदैव भेंट दे कर शाहजहां को बनाये रखा।

धार्मिक नीति:—शाहजहां में कुछ धार्मिक कट्टरता थी। वह हिन्दू, ईसाई

सबके विरुद्ध था। पुर्तगालियों के दबाने में भी उसने धार्मिक कट्टरता का परिचय दिया था।

कन्धार लेने का प्रयत्न:—कन्धार जहांगीर के समय में १६२२ में मुगल राज्य से निकल गया। शाहजहां ने १६३७ में इसे अपने अधिकार में कर लिया। परन्तु १६४७ ई० में वह फिर हाथ से निकल गया।

दक्षिण विजय:—शाहजहां ने अपने पुत्र औरंगजेब की सहायता से अहमद-नगर, बीजापुर व गोलकुण्डा के कुछ भाग पर अधिकार कर लिया।

उत्तराधिकार युद्ध:—१६५७ ई० में शाहजहां बीमार पड़ा। उसके ज्येष्ठ पुत्र दारा ने बीमारी की खबर छुपानी चाही। इस पर बंगाल का सूबेदार शुजा आगरे की ओर रवाना हुआ। परन्तु वह बनारस के समीप दारा के पुत्र सुलेमान शिकोह द्वारा परास्त हो गया। इसके बाद औरंगजेब व मुराद की संयुक्त सेना ने धरमत पर दारा की सेना को परास्त किया। इस पराजय के पश्चात् दारा फिर सामूगढ़ के स्थान पर परास्त हुआ, इस युद्ध का परिणाम यह हुआ कि औरंगजेब बादशाह बना और दारा व उसका पुत्र सुलेमान और मुराद मौत के घाट उतार दिए गये। शाहजहां लालकिले में बन्दी बनाया गया।

स्वर्ण युग:—शाहजहां न्याया प्रिय शासक था। उसके राज्य में शान्ति तथा सुव्यवस्था थी। न्याय में बड़े छोटे का अन्तर नहीं देखा जाता था। स्थापत्य कला अपनी चरम सीमा पर पहुँच गई। साहित्य का भी शाहजहां के समय में पर्याप्त विकास हुआ। कृषकों की दशा में भी सुधार था। इस कारण कहां जाता है कि मुगल साम्राज्य अपनी चरम सीमा पर शाहजरां के काल में ही पहुँचा था।

मृत्यु:—लालकिले में सच्चे रूप में एक बन्दी का दु:खमय जीवन व्यतीत करता हुआ शाहजहां १६६६ में इस दुनियां से विदा ले गया।

प्रश्न

१. शाहजहां ने अपने पिता की गद्दी कैसे प्राप्त की ? उसके क्या परिणाम निकले।

   How did Sahajahan acquire the throne of his father What were its results ?

२. शाहजहां का राजपूतों के साथ कैसा व्यवहार था और उसका क्या परिणाम हुआ।

   What was the behaviour of Sahajahan towards Rajputs ? What were its results ?

३. शाहजहां के काल में देश की आर्थिक एवं सांस्कृतिक उन्नति का वर्णन कीजिए।

Describe the general economic and cultural progress during the reign of Sahajahan.

४. क्या तुम इस बात से सहमत हो कि शाहजहां का शासन-काल मुगल शासन काल के अन्तर्गत स्वर्ण युग था ?

Do you agree with the view that the reign of Sahajahan represents the 'Golden Age' of Mughal History.

५. शाहजहां के पुत्रों में उत्तराधिकार के युद्ध का वर्णन करो तथा इसके प्रभाव बताओ।

Briefly describe the War of Succession among the sons of the Sahajahan. What were its results ?

गुजरात का अकाल:—सन १६३०-३२ में गुजरात में एक भयंकर अकाल पड़ा। इस अकाल में हजारों मनुष्य भूख से तड़प तड़प कर यमलोक सिधार गये। भूख से पीड़ित माता-पिता ने अपने बच्चों को या तो भून खाया या उन्हें बेच दिया। अब्दुल हमीद लाहौरी लिखता है-"**एक एक रोटी के लिए मनुष्य अपना जीवन बेचने को तैयार थे लेकिन कोई खरीदता नहीं था। बाजारों में बकरे के मांस में कुत्ते का मांस बिकता और मृत पुरुषों की हड्डियां पीसकर आटे में मिलाकर बेचते थे।**" लेकिन शाहजहां ने भूखे आदमियों को राहत देने के लिए सरकारी भोजनालय खुलवाये। दीन मनुष्यों को मुफ्त खाना बांटा जाने लगा। इसके अतिरिक्त कृषकों का लगान माफ कर दिया गया तथा अन्य लोगों को आर्थिक सहायता दी।

मुमताज महल की मृत्यु:—यह सत्य है कि अपना चेता होत नहीं प्रभु चेता तत्काल। जब शाहजहां बादशाह बना था तो उसने अपनी प्रिय बेगम मुमताज़-महल को सुखी व वैभवशालिनी बनाने की न जाने क्या क्या कल्पनायें की थी। परन्तु वह सुरा का प्याला बादशाह के होठों तक ही पहुँचा था कि हाथ से छुट गया और प्याला टूक टूक हो गया। धरा पर केवल सुरा की सुगन्ध रह गई। ठीक यही दशा मुमताज महल के साथ हुई। शाहजहां बादशाह बना ही था और मुमताज सम्बन्धी कल्पनाओं को साकार रूप प्रदान करने का अवसर आया ही था कि दुष्ट काल ने शाहजहां की प्रेयसी मुमताज को छीन लिया। मुमताज के चौदहवीं सन्तान ने जन्म लिया था कि ७ जून १६३१ को वह अपने प्रिय सम्राट से अलविदा लेकर चली गई। शाहजहाँ के शोक का वारापार नहीं रहा। काल से परास्त हो शाहजहां ने मुमताज महल के प्रति अपने प्रेम को सदैव अमर बनाने के दृष्टिकोण से आगरे में ताजमहल बनाया। जो आज विश्व का एक आश्चर्य तथा सम्राट व साम्राज्ञी के प्रेम का ज्वलन्त प्रतीक बना हुआ है।

शाहजहां की राजपूत नीति:—जहांगीर के शासन काल में समस्त राजपूत नरेश मुग़ल पताका के नीचे एकत्रित हो गए थे। अपनी स्वतन्त्रता पर गर्व करने वाला, राजपूतों के गौरव को रखने वाला उदयपुर का राणा अमरसिंह भी मुग़ल सम्राट के आधीन हो गया था। यह सब इस शाहजहां की वीरता का ही परिणाम था।

शाहजहां और राणा कर्णसिंह में मित्रता के सम्बन्ध बने रहे। जब शाहजहां एक बागी के रूप में इधर उधर सहायता के लिए भटक रहा था तो कर्णसिंह ने उसे चार मास तक देलवाड़ा तथा जगमन्दिर (पिछोला झील) में उसे गुप्त रूप से रखा।

और जब शाहजहां मांडू की ओर रवाना हुआ तो राणा ने उसकी सुरक्षा के लिए अपने भाई भीम को उसके साथ कर दिया। भीमसिंह शाहजहां के लिए सदैव प्राण तक देने को उद्यत रहता था। पटना की विजय में भीमसिंह का प्रमुख हाथ था। अतः शाहजहां भीमसिंह से बहुत प्रसन्न था और उसने उसे मेड़ता का राजा बना दिया था। जहांगीर की मृत्यु पर जब शाहजहां गद्दी प्राप्ति के लिए आगरे जा रहा था तो कर्णसिंह ने सर्व प्रथम उसे १ जनवरी १६२८ को भारत का सम्राट स्वीकार किया। शाहजहां ने अपनी ३८ वीं वर्षगांठ उत्सव से यहीं मनाई।

परन्तु कर्णसिंह का १६२८ में देहान्त हो गया। कर्णसिंह के बाद जगत्‌सिंह महाराणा बना। जगत्‌सिंह एक महत्वाकांक्षी राजा था। उसने आसपास के राज्यों पर अधिकार करना आरम्भ किया। जसवन्तसिंह के छोटे पुत्र हरिसिंह ने अपने पिता के वध की शिकायत शाहजहां के पास की। राणा के इन कार्यों से शाहजहां नाराज हो गया। परन्तु राणा ने सम्राट को प्रसन्न करने के लिए भेंट भेजी तथा उसकी दक्षिण-विजय में सैनिक सहायता दी। किन्तु १६४३ में उनके सम्बन्ध फिर बिगड़ गए। जब शाहजां ने सेना भेजी तो राणा ने राजसिंह को भेंट करने भेजा। राजसिंह शाहजहां से अजमेर के समीप जोगी का तालाब पर मिला और वह संकट इस प्रकार टल गया। इस प्रकार राणा ने शाहजहां से भी बिगाड़ नहीं किया और अपने समीप के प्रदेशों (डूंगरपुर, प्रतापगढ़) पर अधिकार भी कर लिया।

धार्मिक नीतिः—शाहजहां कट्टर मुसलमान था। उसने अपने पिता तथा पितामह की धार्मिक नीति का परित्याग कर दिया। १६३३ ई० में उसने आदेश दिया कि सम्पूर्ण साम्राज्य में विशेषकर बनारस में जितने भी मन्दिरों का नव निर्माण हुआ है उन सबको धराशायी कर दिया जावे। १६६४ ई० में उसने आज्ञा दी कि कोई हिन्दू किसी मुस्लिम लड़की से शादी नहीं कर सकता और मुसलमान हिन्दू स्त्रियों से कर सकता है। हिन्दुओं के घरों से विवाहित मुस्लिम लड़कियों को वापिस मुसलमान बना लिया गया। प्रलोभन व शक्ति से हिन्दुओं को मुसलमान बनाया गया। ईसाइयों के साथ भी उसका व्यवहार अच्छा न था। उसमें धार्मिक कट्टरता इतनी थी कि वह शिया मुसलमानों को भी हेय दृष्टि से देखता था।

कन्धार को जीतने का प्रयत्नः—१६२२ ई० में कन्धार पर ईरान के शाह ने पुनः अधिकार कर लिया था और जहांगीर से सम्बन्ध न बिगड़ने की दृष्टि से वह मुग़ल दरबार में निरन्तर अपना राजदूत भेजता रहा। कन्धार जाने का मुख्य

कारण शाहजहां का वहां युद्ध करने जाने से इन्कार करना था। परन्तु जब शाहजहां बादशाह बना तो उसने कन्धार का महत्व जाना। १६३७ ई० में जब अली मर्दन खां ने शाह के विरुद्ध बगावत की तो शाहजहां उसे अपनी ओर मिला लिया। इस प्रकार कन्धार पुनः मुगल साम्राज्य का एक अंग हो गया। परन्तु १६४७ ई० में ईरान के शाह ने पुनः कन्धार को अपने अधिकार में ले लिया। इसके बाद शाहजहां ने कन्धार लेने का बहुत प्रयत्न किया परन्तु सब विफल रहा। दारा और औरंगजेब के नेतृत्व में विशाल सेनाएँ भेजी गई—करोड़ों रुपये व्यय किए गए। परन्तु इसका परिणाम कुछ नहीं निकला। अतः शाहजहां कन्धार विजय में असफल रहा।

दक्षिण विजय—डा० बेणी प्रसाद का मत है कि मुगल साम्राज्य का विशाल ढांचा सेना की शक्ति पर निर्भर था और जिसे स्थापित रखने के लिए साम्राज्य के विस्तार की नीति आवश्यक थी। इसके अतिरिक्त अभी हम देख चुके हैं कि शाहजहां कट्टर सुन्नी था। अतः वह दक्षिण में शिया रियासतों को नहीं देख सकता था। उसकी दक्षिण की सूबेदारी ने उसे दक्षिण की परिस्थितियों से भली भांति परिचित करवा दिया था। अतः वह दक्षिण विजय के लिए कोई न कोई बहाना देखा करता था। १६२९ ई० में मलिक अम्बर के पुत्र फतेहखां ने एक नाबालिग को अहमदनगर का सुल्तान घोषित किया। फतेहखां मुगलों से मिल गया। उसने शाहजहां से १०॥ लाख रुपया रिश्वत लेकर दौलताबाद का दुर्ग मुगलों को दे दिया। इस अवसर पर बीजापुर तथा गोलकुण्डा अहमदनगर की सहायता के लिए आये। परन्तु मुगल सेना ने उन सबको परास्त कर दिया। अहमदनगर को मुगल साम्राज्य में मिला लिया। नाबालिग सुल्तान हुसेन-शाह को बन्दी बना लिया गया और फतेहखां को मुगल सेना में सम्मानित पद पर नियुक्त किया गया।

शाहजहां अहमदनगर की विजय से ही सन्तुष्ट नहीं हुआ। उसने १६३२ में बीजापुर गोलकुण्डा के सुल्तानों को यह अल्टीमेटम भेज दिया कि वे मुगल बादशाही की आधीनता स्वीकार करें तथा शाही कोष में नियमित रूप से कर भेजें। बीजापुर के सुल्तान आदिलशाह ने मुगल सेना का सामना किया। परन्तु १६३६ ई० में उसे मुगल बादशाह के आगे झुकना पड़ा। १६३६ ई० में औरंगजेब को दक्षिण का सूबेदार बनाया गया। उसकी निगरानी में खानदेश, बरार, तैलंगाना तथा दौलताबाद के प्रान्त थे। औरंगजेब १६४ ई० तक सूबेदार रहा। इस काल में उसने अपने विजित प्रदेशों में शान्ति रखी। १६५२ ई० में वह पुनः दक्षिण का सूबेदार नियुक्त हुआ। १६५६ ई० में उसने गोलकुण्डा पर

आक्रमण कर दिया। मुगल सेना की विजय होने वाली थी कि शाहजहां ने औरंगजेब को गोलकुण्डा से घेरा उठा लेने का आदेश दिया। गोलकुण्डा के सुल्तान ने सन्धि कर ली और सन्धि के अनुसार उसने अपनी लड़की की शादी औरंजेब के पुत्र मुहम्मद से कर दी। इसी समय (१६५६) बीजापुर का सुल्तान आदिलशाह मर गया। जब उसका १८ वर्षीय पुत्र गद्दी पर बैठा तो औरंगजेब ने बीजापुर पर आक्रमण कर दिया। औरंगजेब ने कल्याणी के किले पर अधिकार कर लिया। औरंगजेब और आगे बढ़ने वाला था कि दारा के प्रभाव में आकर शाहजहां ने औरंगजेब को युद्ध बन्द कर देने का आदेश दिया। इसके बाद 'उत्तराधिकार' के युद्ध के कारण दक्षिण-विजय कुछ वर्षों के लिए स्थगित हो गई।

पुर्तगालियों का दमन—शाहजहां के शासन काल में पुर्तगालियों ने बगाल में हुगली नदी के किनारे एक कोठी खोल दी। व्यापार करने के अलावा पुर्तगालियों ने भारत में बलात् धर्म परिवर्तन कराना आरम्भ कर दिया। ईसाइयों की संख्या की वृद्धि के लिए उन्होंने भारतीय स्त्रियों से विवाह करना आरम्भ कर दिया। गुलामों के व्यापार में भी वे शनैः शनैः कदम रख रहे थे। शाहजहां उनके इस नीति के विरुद्ध था। इसके अलावा शाहजहां पुर्तगालियों से एक कारण से और नाराज था। एक दिन कुछ पुर्तगालियों ने शाहजहां की बेगम मुमताजमहल की दो दासियों को पकड़ लिया था। इससे क्रोधित हो उसने १६३२ ई० में बंगाल के सूबेदार कासिमअली खां को उन पर आक्रमण करने का आदेश दिया। इस लड़ाई में हजारों पुर्तगाली मौत के घाट उतारे गये व हजारों ही बन्दी बनाये गये। जिन बन्दी पुर्तगालियों ने इस्लाम अंगीकार करने से इन्कार किया उन्हें आजन्म कारावास दिया गया। इस प्रकार पुर्तगालियों के बढ़ते हौसले को भी ठंडा कर दिया।

उत्तराधिकार-युद्ध

शाहजहां के चार पुत्र थे—दारा, शुजा, औरंगजेब और मुराद। दारा को पंजाब का सूबेदार नियुक्त किया गया था-परन्तु बादशाह का उस पर असीम प्रेम होने के कारण वह प्रायः बादशाह के पास ही रहता था। शुजा बंगाल, औरंगजेब दक्षिण का तथा मुराद गुजरात के सूबेदार था। १६५७ में शाहजहां बीमार पड़ा और वह बीमारी दिनों दिन बढ़ती गई। दारा ने बादशाह की बीमारी की खबर छुपाना चाहा। इस कारण अन्य तीनों शाहजादों को शाहजहां की मृत्यु का सन्देह हुआ। क्योंकि मुगल राज्य में उत्तराधिकार का कोई निश्चित नियम नहीं था।

अध्याय सातवां

मुगल साम्राज्य का पतन

प्रस्तावना—औरंगजेब का राज्याभिषेक-राज्य के ढांचे में परिवर्तन-धार्मिक नीति-प्रतिक्रिया वादी नियम-धार्मिक नीति का परिणाम-राज्य काल का विभाजन-राज्य का विस्तार-अन्तिम दिन व मृत्यु-इतिहास में स्थान।

प्रस्तावनाः—जिसका उदय होता है उसका अस्त भी अवश्य होता है। भगवान् भास्कार प्रातःकाल पूर्व दिशा में उदय होते हैं और मध्याह्न में वे अपनी चरम सीमा पर पहुंच कर सायंकाल पश्चिम दिशा में अस्त हो जाते हैं। मुगल साम्राज्य जिसका उदय अकबर से हुआ और जो बहुत शीघ्रता से शाहजहां के शासन काल तक अपनी पराकाष्ठा पर पहुँच गया था, वही मुगल साम्राज्य बाद में पतन की ओर उन्मुख होने लग गया था। परन्तु वह पतन शीघ्र ही जन-साधारण को दृष्टिगोचर नहीं हुआ—क्योंकि एक तरफ तो शाहजहां के स्वर्ण-युग की चकाचौंध थी और दूसरी तरफ उसके पुत्र औरंगजेब की साम्राज्य विस्तार नीति थी। शाहजहां का उत्तराधिकारी औरंगजेब बना था। अतः औरंगजेब के शासन काल से ही मुगल साम्राज्य का पतन आरंभ था और सच पूछा जाय तो पतन आरभ ही नहीं हुआ वरन् औरंगजेब ने उस पतन को शीघ्र लाने का प्रयास किया।

औरंगजेब का राज्याभिषेक—मुसलमानों में उत्तराधिकार का निर्णय तलवार के सहारे होता था। अतः शाहजहां का तीसरा पुत्र औरंगजेब अपने ज्येष्ठ भ्राता दारा को सामूगढ़ में परास्त कर तथा कनिष्ठ भ्राता मुराद को धोखे से बन्दी बना आगरे का स्वामी बन गया। भारत का सम्राट शाहजहां अभी जीवित था। अतः उसको भी आगरे के लालकिले में बन्दी बना कर औरंगजेब २१ जुलाई १६५८ को बादशाह बन गया। परन्तु यह राज्याभिषेक तो नाम मात्र का था—क्योंकि अभी उसके प्रमुख शत्रु समाप्त नहीं हुए थे और वह जल्दी में था। अतः वह निश्चिन्त हो बड़े ठाट बाट से दिल्ली के लाल किले में ५ जून १६५९ को मयूर सिंहासन पर बैठा। इस अवसर पर उसका विधि पूर्वक राजतिलक किया गया।

राज्य के ढांचे में परिवर्तन—उत्तराधिकार-युद्ध में औरंगजेब की सफलता का प्रधान कारण उसका इस्लाम धर्म के प्रति अनुराग था। वह अपने को कट्टर सुन्नी

मुसलमान समझता था और उसका आचरण भी वैसा ही था। कट्टर सुन्नी दारा के प्रति उदार विचारों से वे सहानुभूति नहीं रखते थे। यही कारण था कि मुस्लिम सैनिकों ने धरमत के युद्ध में औरंगजेब के विरुद्ध जसवन्तसिंह को सहायता नहीं दी और इसी कारण सामूगढ़ के युद्ध में दारा मुस्लिम सैनिकों के पूर्ण सहयोग से वंचित रहा। अतः औरंगजेब के सामने यह प्रश्न था कि अपनी शक्ति को स्थायी कैसे बनाया जाय। अकबर ने तो अपनी शक्ति को स्थायी राष्ट्रीयता के आधार पर बनाया था औरंगजेब ने इसके विपरीत धार्मिक कट्टरता को अपनाया था। उसने घोषणा की कि मैं शासन कुरान की आयतों के अनुसार करूंगा। मेरा शासन सूत्र धार्मिक आधार पर होगा। इस प्रकार हम देखते हैं कि औरंगजेब ने अपने शासन को पूर्ण रूपेण धार्मिक बना दिया।

धार्मिक नीति:—औरंगजेब कट्टर सुन्नी मुसलमान था। वह अपना जीवन इस्लाम के सिद्धान्तों पर व्यतीत करता था। उसने इस्लाम धर्म का प्रसार करना अपना परम कर्त्तव्य समझा। वह भारत को 'दार-उल हरब' (गैर मुसलमानों का देश) समझता था और वह इसे 'दार-उल इस्लाम' (मुसलमानों का देश) में परिवर्तित करना चाहता था। अत: उसने अपने पितामह जहांगीर तथा परदादा अकबर की धार्मिक नीति का परित्याग कर धार्मिक कट्टरता का प्रसार करना आरंभ किया। उसने हिन्दू और मुसलमानों की बीच धार्मिक दीवार का निर्माण पुनः आरम्भ कर दिया।

प्रतिक्रियावादी कानून:—धार्मिकता के भावावेश के कारण उसने गद्दी पर बैठते ही ऐसे कानून बनाये जिनसे हिन्दुओं पर आघात स्पष्ट रूप से झलकता था। जब वह बादशाह बना था उस समय जन साधारण की आर्थिक अवस्था अच्छी नहीं थी। परन्तु वह केवल सुन्नी मुसलमानों की अवस्था में सुधार करना चाहता था। अतः उसने उन करों को हटा दिया जिनका अधिक भार मुसलमानों पर पड़ता था। और हिन्दुओं पर जजिया और पोल टेक्स पुनः लगा दिये। ९ अप्रैल १६६९ में उसने एक व्यापक आज्ञा निकाली जिसके अन्तर्गत् हिन्दुओं के स्कूल बन्द कर दिये गये तथा उनको सरकारी सहायता मिलना बन्द हो गया। हिन्दुओं के सैंकड़ों मन्दिर धराशाही कर दिये गये। बनारस का विश्वनाथ का और मथुरा का केशवनाथ का मन्दिर इसी के आज्ञा से नष्ट किये गये थे। विध्वंस मन्दिरों के सामान से मस्जिदों का निर्माण किया गया। देव मूर्तियों को यातो खंडित कर दिया गया और या उन्हें मस्जिदों की सीढ़ियों के नीचे लगाया गया। हिन्दुओं को जबरन मुसलमान बनाया गया। राज-सेवाओं से हिन्दुओं को पदच्युत कर दिया गया। १६६८ ई० में हिन्दुओं के मेलों पर रोक लगादी। १६९५ के आदेश के अन्तर्गत् हिन्दुओं को घोड़े व पालकी पर बैठना निषेध कर दिया गया।

इन कानूनों के अतिरिक्त उसने दरबारी जीवन में भी कई परिवर्तन कर दिए औरंगजेब ने झरोखा दर्शन, तुलादान आदि बन्द कर दिए। उसने दरबार के संगीतज्ञों को निकाल दिया तथा संगीत को इस्लाम के प्रतिकूल बताया।

धार्मिकनीति के परिणाम:—औरंगजेब ने जब इतनी धार्मिक कट्टर नीति अपनाई तो यह स्वाभाविक था राज्य में इसकी प्रतिक्रिया हो। उससे हिन्दू नाराज हो गये व सिख लोग भी अपने बचाव का प्रयास करने लगे। कहने का तात्पर्य यह है कि साम्राज्य में चारों ओर अशान्त वातावरण उत्पन्न हो गया और देश में जगह जगह विद्रोह होने लगे। उनमें से कुछ प्रमुख निम्नलिखित हैं:—

सतनामी विद्रोह:—मार्च १६७२ ई० में सतनामियों का विद्रोह हुआ। सतनामी लोग पटियाला और अलवर प्रदेश में रहते थे। वे लोग प्रतिष्ठित एवं शक्तिशाली थे। वे लोग उनके कार्य में किसी अन्य का हस्तक्षेप सहन नहीं कर सकते थे। सतनामी लोग औरंगजेब की धार्मिक नीति से रुष्ट थे। इसके अलावा एक दिन एक मुगल सैनिक ने एक सतनामी को मार दिया। सतनामी लोग इस पर बिगड़ गये और बादशाह के विरूद्ध वे बगावत करने लगे। नारनौल का फौजदार सेना लेकर उन्हें दबाने गया किन्तु मुंह की खाकर युद्ध भूमि से वह भग गया। इसके उपरान्त औरंगजेब ने कई सेनाएं भेजी और वे सब सतनामियों से परास्त हुईं। तब औरगजेब ने बड़ी चालाकी से इन सतनामियों को दबाया। इस विद्रोह में हजारों सतनामी मारे गये।

सिखों का विद्रोह:—जब जहांगीर ने गुरू अर्जन देव का वध करा दिया तो सिख लोग मुगल बादशाह से नाराज हो गये थे। परन्तु उस घटना के उपरान्त कोई ऐसी घटना नहीं घटी जिससे कि सिख मुगल सम्राट के विरुद्ध होते। परन्तु गुरु अर्जन के उत्तराधिकारी छुटे गुरु हर गोविन्द सिंह ने सिखों में सैनिक जीवन व्यतीत करने का अपूर्व उत्साह उत्पन्न कर दिया और उनके नेतृत्व में शाहजहां की मुगल सेना को सिख अमृतसर के समीप परास्त कर चुके थे। इधर औरंगजेब ने धार्मिक कट्टरता के आवेश में गुरू तेगबहादुर का १६७५ में वध करवा दिया! इससे सिख लोग मुगल सम्राट औरंगजेब के कट्टर विरोधी हो गये उन्होंने गुरु गोविन्द सिंह के नेतृत्व में मुगल सत्ता के विरुद्ध बगावत बोलदी। गुरु गोविन्द सिंह के नेतृत्व में सिख जाति वास्तव में एक सैनिक जाति हो गई और उसमें जाति पांति का कोई भेद भाव न रहा औरंगजेब ने सिखों साथ कई लड़ाईयां लड़ी परन्तु उनमें कोई विशेष सफलता प्राप्त न हुई। औरंगजेब के समस्त शासन काल में सिख लोग यत्र तत्र विद्रोह करते ही रहे।

राजपूतों का विरोध:—औरंगजेब ने जब बहुत ही अपमानजनक ढंग में हिन्दुओं से जजिया वसूल करना चाहा तो उदयपुर के राणा को यह बहुत बुरा लगा।

इधर जसवन्त सिंह से औरंगजेब पहले ही नाराज था। जब १६७८ ई० में जसवन्त सिंह जी का स्वर्गवास हो गया तो औरंगजेब ने उनके नाबालिग बच्चे की निर्बलता का अनुचित लाभ उठा कर जोधपुर को अपने राज्य में मिलाना चाहा। पर जसवन्त सिंह का पुत्र अजीतसिंह राजधानी से भग गया और राठौर वीर दुर्गादास के संरक्षता में वह निरन्तर मुगल सम्राट से लड़ता रहा और उसकी आधीनता स्वीकार नहीं की। जोधपुर की रानी उदयपुर की राजकुमारी थी। इस कारण राणाजी ने भी जोधपुर की सहायता की। परन्तु औरंगजेब ने राणा जी से १६८१ में सन्धि कर ली। परन्तु राजपूत औरंगजेब से प्रसन्न नहीं हुए। वे निरन्तर संघर्ष करते रहे और उन्होंने मुगल सेना को बहुत नुकसान पहुँचाया।

शासन काल का विभाजनः—औरंगजेब ने ६० वर्ष राज्य किया। उसको दो भागों में बांटा जा सकता है। (१) १६५८ से १६८१ और (२) १६८१ से १७०७ उसको प्रथम शासन काल में औरंगजेब का ध्यान उत्तरी भारत में ही केन्द्रीभूत रहा। वह उत्तरी भारत में शान्ति स्थापित करने तथा जो प्रान्त स्वतन्त्र रह गये थे उन्हें दबाने में ही व्यस्त रहा। १६८१ ई० वह मरहठा से लोहा लेने दक्षिण गया और फिर वहां से कभी आगरा नहीं लोटा।

राज्य का विस्तारः—१६५८ से ८१ ई० तक औरंगजेब उत्तर में ही रहा। सर्व प्रथम उसने मीर जुमला को आसाम विजय करने का आदेश दिया। १६६१ ई० में मीर जुमला के नेतृत्व में एक विशाल सेना तथा नौकाओं का एक बेड़ा आसाम की ओर रवाना हुआ। कूंचबिहार व आसाम पर अधिकार कर लिया। परन्तु इतने में ही वर्षा ऋतु आरंभ हो गई। नदियों में बाढ़ आ गई। मीर जुमला बीमार पड़ गया और १६६३ ई० में इस दुनियां से चल बसा। इतिहास कार सरकार ने मीर जुमला के रण चातुर्य की बड़ी प्रशंसा की है। मीर जुमला के उत्तराधिकारी शाइस्तखां ने पुर्तगालियों से चटगांव छीन लिया तथा सोन द्वीप पर अधिकार कर लिया।

१६७२ ई० में अफरीदियों का विद्रोह हुआ। अफरीदियों का नेता अजमलखां था। वह एक योग्य नेता था। इनके विद्रोह से मुगल प्रतिष्ठा संकट में पड़ गई। औरंगजेब ने उनको दबाने के लिये कई सेनायें भेजीं परन्तु सब निष्फल रहीं। अन्त में वह स्वयं गया और वहां साम, दाम, दंड और भेद की नीति से काम करके उनको शान्त किया।

दक्षिण विजयः—

औरंगजेब की दक्षिण विजय दो उद्देश्यों पर आधारित थी। प्रथम वह दक्षिणी के शिया मुसलमानों को नहीं चाहता था। दूसरा वह अपना साम्राज्य विस्तार चाहता

ही था। इसके अलावा जब वह दक्षिण का सूबेदार था तब वह दक्षिण की राजनैतिक अवस्था से पूर्ण परिचित हो गया था और वह उस समय दक्षिण को जीत भी लेता यदि शाहजहां उसके कार्य में हस्तक्षेप नहीं करता। इसलिये उदयपुर के राणा राजसिंह से सन्धि होते ही वह दक्षिण की ओर रवाना हो गया।

औरंगजेब और दक्षिण के शिया राज्य

सर्व प्रथम औरंगजेब ने बीजपुर की ओर ध्यान दिया। इस सयय बीजापुर की हालत बहुत खराब थी। उसने फौरन दिलेर खां की अध्यक्षता में एक सेना १६८६ई० में भेजी। इसी समय मराठों में संघर्ष होने के कारण सेना वापिस बुलानी पड़ी। परन्तु जब बादशाह स्वयं १६८३ में अहमदनगर पहुंच गया तो १६८५ में बीजापुर का घेरा आरम्भ हुआ। रसद न पहुंचने के कारण बीजापुर वालों ने १२ सितम्बर १६८६ को आत्मसमर्पण कर दिया। आदिल शाही वंश का अन्तिम सुल्तान सिकन्दर शाह औरंगजेब के सामने एक बन्दी के रूप में लाया गया और बीजापुर मुगल राज्य में मिला लिया गया।

बीजापुर के बाद औरंगजेब ने गोलकुंडा की ओर ध्यान दिया। गोलकुंडा का सुलतान अब्दुल्ला १६७२ में मर गया। पुत्रहीन होने के कारण अबुलहसन नाम का उसका रिश्तेदार राज्य का मालिक बना। वह एक अयोग्य एवं विलासी शासक था। गोलकुंडा की सुस्ती का नाजायज फायदा उठाने की दृष्टि से १६८७ में सम्राट स्वयं गोलकुंडा गया और नगर के घेरा डालना शुरू कर दिया। ८ महीने तक घेरा चलता रहा! परन्तु मुगल सेना दीवार में दरारें करने में असफल रही। पर उस समय औरंगजेब के सामने असीरगढ़ का उदाहरण प्रस्तुत था जिसको अकबर ने रिश्वत देकर मिलाया था। औरंगजेब ने भी उसी नीति का अनुसरण किया। उसने गोलकुंडा के सैनिक अफसर को रिश्वत देकर किले का फाटक खुलवा लिया। सुल्तान को बंदी बनाकर ५०,०००) रु० की वार्षिक पेंशन देकर उसे दौलताबाद भेज दिया। इस लड़ाई में अब्दुर्रज्जाक ने बड़ी वीरता दिखलाई थी।

औरंगजेब और मराठा :-

दक्षिण में मराठा लोग दिन पर दिन शक्तिशाली हो रहे थे। शाहजी के पुत्र शिवाजी जब बहुत शक्तिशाली हो गये तो उन्होंने सीधे मुगल साम्राज्य पर आक्रमण करना आरम्भ कर दिया। इस पर औरंगजेब ने अपने मामा शायस्त खां को शिवाजी के दमन के लिये दक्षिण भेजा। शायस्तखां जब पूना में ठहरा हुआ था तो १५ अप्रेल १६६३ की रात्रि को शिवाजी ने अचानक शायस्त खां पर हमला बोल दिया। शायस्त खां का लड़का अबुल फतह काम आया तथा शायस्त खां स्वयं घायल हुआ।

इस असफलता के बाद औरंगजेब ने जयपुर के महाराज जयसिंह जी को शिवाजी का मुकाबला करने के लिये भेजा। जयसिंह जी बहुत ही धूर्त एवं कुशल राजनीतिज्ञ थे। उन्होंने १६६५ में पुरन्दर की सन्धि से शिवाजी को झुका दिया। इसके बाद जब शिवाजी आगरे की जेल से भागकर दक्षिण चले गये तो उन्होंने वहां अपना स्वतंत्र राज्य १६७४ में स्थापित कर लिया। परन्तु जब वे १६८० को इस संसार से सदा के लिये विदा हो गये तो उनके पुत्र संभा जी को बादशाह ने बन्दी बना लिया। और उसका १६८६ में निर्दयता से बध कर दिया।

संभाजी की हत्या के बाद राजाराम जब ६ वर्ष का था तो उसने मराठों का नेतृत्व संभाला। संभा जी के वध के साथ औरंगजेब ने यह समझा था कि मराठे लोग अब खत्म हो जायेंगे परन्तु जब उसमे राजाराम को इस प्रकार संघर्ष करते देखा तो उसे बहुत गुस्सा आया। किन्तु १७०० में राजाराम मर गया। राजा राम की मृत्यु के बाद उसकी स्त्री ताराबाई ने मराठा सेना की कमान अपने हाथ में लेली और मुगल बादशाह औरंगजेब को अपनी मृत्यु (१७०७) तक मराठों से सघर्ष करना पड़ा। मराठों के दमन में औरंगजेब स्वयं खत्म हो गया परन्तु मराठों को खत्म नही कर सका।

औरंगजेब के अन्तिम दिन

औरगजेब के अन्तिम दिन बड़े दुःखमय थे। वह बुड्ढा हो गया था। उसकी कमर झुक गई थी। परन्तु फिर भी उसे चैन नहीं था। लड़कों पर उसका विश्वास नहीं था और लड़के उसके भक्त नहीं थे। उसने अपने अन्तिम दिन मराठों से सघर्ष करने में बिताये। इसमें उसे और भी परिश्रम करना पड़ा। इस दुःखमय घड़ी में उसे अपना भविष्य भी अन्धकारमय दिखाई देता था। जैसा कि उसके द्वारा उसके पुत्र आजम को लिखे गये पत्र से ज्ञात होता है। उसने लिखा था मैं अकेला आया था और अकेला जा रहा हूं। मैंने देश व जनता के लिये कुछ अच्छा न किया। और न भविष्य की कोई आशा है। १७०७ में उसको बुखार आने लग गया था। इस ज्वर से वह ठीक न हो सका और ३ मार्च १७०७ को वह दुनियां से मार्च कर गया।

उसका इतिहास में स्थान

औरंगजेब का स्थान बहुत ऊंचा है। वह १७ वीं शताब्दी के महान सम्राटों में से एक था। वह एक बहादुर सैनिक एवं एक योग्य सेनापति था। उसको जीवन भर संघर्ष करना पड़ा। चाहे उसकी दक्षिण नीति ठीक नहीं थी परन्तु उसने मराठा जैसी बहादुर कौम के छक्के छुड़ा दिये थे। जीवन उसका बहुत सादा था। कुरान

लिखकर व टोपियां बनाकर वह अपनी जीविका कमाता था। फकीरी के गुणों की कफीखां ने भी उसकी बहुत प्रशंसा की है। औरंगजेब ६० वर्ष की आयु में इस दुनियां से विदा हुआ था और अपने अन्तिम समय तक वह युद्ध का संचालन व राज्य कार्यों का सम्पादन करता रहा था। उस जैसा कर्मठ व्यक्ति शासक वर्ग में मिलना मुश्किल है। व्यक्तिगत जीवन औरंगजेब का बहुत ही सुन्दर व आदर्शमय था। तत्कालीन शासक सुरा व सुन्दरी के दास होते थे परन्तु औरंगजेब इसका अपवाद था। वास्तव में यदि औरंगजेब कट्टर सुन्नी न होता तो उसका स्थान इतिहास में और भी उच्च होता विलियम हन्टर औरंगजेब के विषय में लिखता है, "यदि उसे अपने पिता को च्युत न करना पड़ा होता, भाइयों की हत्या न करनी पडी होती और हिन्दू प्रजा के साथ अत्याचार न करना पडा होता तो उसका जीवन निष्कलंक रहा होता।" बर्नियर ने औरंगजेब के विषय में लिखा है "वह एक दक्ष राजनीतिक एवं महान सम्राट था।" परन्तु बर्नियर का हमें यह कथन पूरा सत्य प्रतीत नहीं होता। उसका हिन्दुओं व दक्षिण के मुसलमानों के साथ जो व्यवहार रहा वह एक असफल राजनीति का परिचायक है। इसीलिये वी. ए. स्मिथ ने कहा है, "धर्म शासक के रूप में उसकी समीक्षा करते हैं तो हमें कहना पडता है कि वह विफल रहा है।" इसी मत का समर्थन करते हुए इतिहासकार सरकार तथा दत्त ने लिखा है, "औरंगजेब में बहुत से उत्तम गुण थे परन्तु वह एक सफल शासक न था। वह एक महान सैनिक था परन्तु दूरदर्शी नहीं था। वह एक चतुर कूटनीतिज्ञ था परन्तु वह कुशल राजनीतिज्ञ न था। सारांश यह है कि उसमें राजनीतिक प्रतिभा नहीं थी जो मुगल सम्राटों में केवल अकबर में थी। जिसमें नई रीति चलाने तथा ऐसे कानूनों के बनाने की क्षमता थी जो उस कालके तथा भावी पीढ़ी के जीवन तथा विचारों को बदल सकते थे।" कहने का तात्पर्य यह है कि औरंगजेब की अधिक निन्दा इसलिये हुई कि उसने धार्मिक कठोर नियम हिन्दुओं के देश हिन्दुस्तान में बनाये। यदि औरंगजेब किसी मुस्लिम देश का बादशाह होता तो उसका नाम इतिहास में और भी ऊंचा होता।

अध्याय सार

प्रस्तावना:—शाहजहां के शासन-काल में मुगल-साम्राज्य अपनी चरम सीमा पर पहुंच कर पतन की ओर उन्मुख होने लग गया था। इस मुगल साम्राज्य के पतन का दोषी औरंगजेब भी था।

राज्याभिषेक:—सामूगढ़ के युद्ध में विजयी होने के उपरान्त औरंगजेब भारत का सम्राट बना। राज्य गद्दी की प्राप्ति के लिये उसने अपने भ्राताओं का वध कर दिया और पिता को बन्दी बना लिया था।

राज्य के ढांचे में परिवर्तन:—औरंगजेब ने अपने पूर्वजों की नीति का परित्याग कर राज्य को कुरान के आदेशानुसार धार्मिक राज्य बना दिया ।

धार्मिक नीति:—औरंगजेब अपने को कट्टर सुन्नी मुसलमान समझता था। इस कारण वह अन्य धर्मों के प्रति असहिष्णु बना रहा ।

प्रतिक्रियावादी कानून:—औरंगजेब भारत को मुसलमानों का देश बनाना चाहता था। इस कारण उसने हिन्दुओं को जबरन मुसलमान बनाना आरंभ किया। उन्हें राज्य के उच्च पदों से हटा दिया–उनके मन्दिर धराशायी किये गये–मूर्तियों को तोड़ दिया गया–स्कूल बन्द कर दिये गये। दरबार में जो हिन्दू प्रथा पर आधारित रीति रिवाज थे–उन्हें हटा दिया। इसके अतिरिक्त वह दक्षिण के शिया मुसलमानों प्रति भी कट्टर ही रहा ।

धार्मिक नीति के परिणाम

(१) सतनामियों का विद्रोह
(२) सिखों का विद्रोह
(३) राजपूतों का विद्रोह

शासन काल का विभाजन:—(१) १६५८ से १६८१, (२) १६८१ से १७०७ ।

राज्य का विस्तार

उत्तर में:—कूचबिहार आसाम, चटगांव, सोनद्वीप अफरीदियों के बलवे को शान्त किया।

दक्षिण में:—बीजापुर, गोलकुण्डा मराठों के दमन के लिये मृत्यु तक संघर्ष किया ।

अन्तिम दिन:—दुःख मय बीते। ९० वर्ष की आयु में भी घोर परिश्रम करना पड़ता था। पुत्रों का विश्वास न होने के कारण भविष्य भी उसे अन्धकारमय दिखाई देता था। मराठों का दमन करते करते ३ मार्च १७०७ को इस लोक से चल बसा।

इतिहास में स्थान:—वह महान सम्राटों में से एक था। अच्छा सेनानायक था॰ कूटनीतिज्ञ भी था–परन्तु न तो सफल शासक ही था और न कुशल राजनीतिज्ञ। उसकी धार्मिक नीति देश व समय के प्रतिकूल थी। मुस्लिम इतिहासकारों ने उसे बहुत ऊंचा चढ़ा दिया है ।

प्रश्न

१. औरंगजेब के चरित्र का संक्षेप्त में वर्णन करते हुए बताइये कि हिन्दुओं और सिखों के प्रति उसकी क्या नीति थी ?
Briefly describing the character of Aurangzeb bring out the significance of his policy towards Hindus and Sikhs.

२. औरंगजेब की दक्षिण नीति की विवेचना कीजिए।
Discuss the Deccan policy of Aurangzeb.

३. अकबर एवं औरंगजेब की राजपूत नीति की तुलना कीजिए और बताइये कि दोनों स्थितियों में इसका क्या परिणाम हुआ ?
Compare the Rajput policy of Akbar and Aurangzeb and show their results in each case.

४. "औरंगजेब की दुर्घटना उसके जीवन के अन्तिम १८ वर्षों की शोक पूर्ण कहानी है।" इस कथन की विवेचना कीजिए।
"The tragedy of Aurangzeb is concentrated in the last 18 years of his life" Discuss.

५. "अकबर ने मुगल साम्राज्य की नींव रखी और औरंगजेब ने उसे नष्ट कर दिया।" इस कथन की सत्यता बताइये।
"Akbar laid the foundation of the Mughal empire, Aurangzeb destroyed it." Justify the statement.

६. औरंगजेब की धार्मिक नीति क्या थी और उसके क्या परिणाम हुए।
What was the Religious policy of Aurangzeb ? Bring out its results.

अध्याय आठवां

औरंगजेब के उत्तराधिकारी

प्रस्तावना—बहादुर शाह–जहांदार शाह–फर्रुखसियर–मुहम्मद शाह–नादिर शाह का आक्रमण–अहमद शाह अब्दाली का आक्रमण–अहमद शाह–आलमगीर द्वितीय–शाह आलम द्वितीय–अकबर द्वितीय–बहादुर शाह द्वितीय–मुगल साम्राज्य के पतन के कारण।

प्रस्तावना—औरंगजेब इस तथ्य को सदैव ध्यान में रखता था कि उसने अपने पिता से किस प्रकार राज्य प्राप्त किया है। अतः वह इस बात से सावधान रहता था कि उसके पुत्र उसके साथ उस घटना को पुनः चरितार्थ न करदें। उसने मुगल साम्राज्य को दृढ़ एवं स्थायी बनाने का बहुत प्रयास किया। परन्तु उसके राज्य को सुदृढ़ बनाने के प्रयत्न साम्राज्य के पतन के कारण हो गये। उसने अपने पुत्रों को उत्तरदायित्व पूर्ण स्थान इसलिए नहीं दिया कि वे अधिक योग्य होकर उससे राज्य न छीन लें। परन्तु ठीक कहा है कि मनुष्य जैसा बोता है वैसा ही काटता है। औरंगजेब ने राज्य उत्तराधिकार युद्ध में विजयी होकर लिया था और वह अपने मरने के बाद भी ठीक वही परिस्थितियां छोड़ गया जोकि शाहजहां के अन्तिम दिनों में थी। इसके मरते ही राज्य के लिये युद्ध छिड़ गया और उसके बड़े लड़के बहादुर शाह ने राज्य प्राप्त किया। लेकिन औरंगजेब के उत्तराधिकारी केवल एक दो पीढ़ी तक ही निर्बल नहीं रहे बल्कि उसके बाद के सब मुगल शासक दुर्बल एवं अयोग्य थे। यही कारण था कि १५२६ से लेकर १७०७ तक मुगल साम्राज्य को केवल ६ शासक ही संभाले रहे। जबकि १७०७ से १७३६ तक के छोटे समय में ही ४ बादशाह हो गये। इनमें से कुछ ने तो महीनों ही राज्य किया। इससे स्पष्ट है कि औरंगजेब ने मुगल साम्राज्य के पतन का वह घुन लगा दिया था जिसने कि १५० साल में ही इस साम्राज्य के वृक्ष को धराशायी कर दिया।

बहादुर शाह (१७०७ से १७१२)

औरंगजेब के ५ पुत्र के। उसका सबसे बड़ा पुत्र सुल्तान मौहम्मद १६७६ में तथा दूसरा पुत्र अकबर १७०६ में मर गये थे। इस प्रकार उसकी मृत्यु के समय केवल तीन पुत्र थे। उसके मरते ही तीनों पुत्रों में राज्य के लिये संघर्ष शुरू हो गया। उत्तराधिकार संघर्ष में मुअज्जम ने जो काबुल का सूबेदार था, अपने दोनों भाई

आजम तथा कामबख्श को परास्त कर दिया और स्वयं १७०७ में बहादुर शाह के नाम से बादशाह बना।

बहादुर शाह और राजपूत :—गद्दी पर बैठते ही बहादुर शाह को तीन प्रबल शक्तियों का सामना करना पड़ा। १६८१ के उपरान्त औरंगजेब अपने अन्त समय तक दक्षिण में रहा इस कारण मेवाड़, मारवाड़ तथा अजमेर इन तीनों रियासतों के राजपूत नरेश बहुत शक्तिशाली हो गये थे। इन तीनों राज्यों ने मिलकर मुगल साम्राज्य को परास्त करने के लिये एक संघ बनाया। लेकिन बहादुर शाह ने इनको परास्त कर दिया। परन्तु इसके बाद उसने राजपूतों को प्रसन्न रखने की नीति अपनाई। उसने उनको संतुष्ट रखने के लिये जजिया टैक्स हटा दिया अम्बर नरेश से भी मित्रता के सम्बन्ध स्थापित कर लिये। परन्तु उसने ऐसा सिक्खों के भय के कारण किया था।

बहादुर शाह और सिक्ख :—इस समय सिक्खों का नेता बन्दा था। बन्दा ने सरहिन्द को जीत लिया था। परन्तु बहादुर शाह को उसके भी दबाने में अस्थायी सफलता मिली।

बहादुर शाह और मराठाः—मराठों की शक्ति दिन पर दिन बढ़ती जा रही थी। उन्होंने कई मुगलों के किलों पर अधिकार कर लिया था। इसलिये बहादुर शाह ने मराठों में फूट डालने के लिये साहू को बन्दी खाने से मुक्त कर दिया था और उसके जाते ही वास्तव में मराठों में फूट भी पड़ गई।

बहादुर शाह वास्तव में एक योग्य सम्राट था। मुगलों पर इसका प्रभाव भी था। परन्तु यह फरवरी १७१२ में ही इस दुनियां को सदा के लिये छोड़ गया। कफी खां ने इसकी उदारता, क्षमाशीलता तथा उसकी अच्छी प्रकृति की भूरि भूरि प्रशंसा की है।

जहाँदार शाह

मुगल शासकों के राजकुमारों में उत्तराधिकार के लिये युद्ध करना तो एक परिपाटी सा बन गयी थी। बहादुर शाह के भी ४ पुत्र थे और उसके मरते ही चारों में राज्य के लिये संघर्ष हुआ। उस संघर्ष में जहाँदार शाह विजयी हुआ और उसने अपने राज्य को निष्कंटक बनाने के लिये तीनों भाइयों का बध कर दिया। परन्तु वह एक अयोग्य शासक था। इसलिये मुगल लोग उससे नाराज हो गये। इस कारण उसके भतीजे ने उसके विरुद्ध बगावत करदी। यद्यपि वह एक अच्छा सैनिक था लेकिन शराबी होने के कारण अपने भतीजे की बगावत को नहीं दबा सका और ११ महीने के शासन के उपरान्त वह दिल्ली के किले में गला घोंट कर मार दिया गया।

फर्रुखसियर (१७१३-१७१९)

फर्रुखसियर जहांदार शाह का भतीजा था। वह भी बड़ा अयोग्य विलासी एवं कायर था। परन्तु उसने दिल्ली की गद्दी पर अब्दुला व अली दो सैयद भ्राताओं की सहायता से अधिकार कर लिया। इस कारण दोनों सैयद भाइयों का प्रभाव इसके समय में बढ़ता हुआ चला गया। और वह दिन पर दिन सत्ताहीन होता चला गया। अतः फर्रुखसियर ने दोनों भ्राताओं को प्रसन्न करने की दृष्टि से अब्दुल्ला को अपना वजीर बना लिया और हुसैन अली को फौज का मीर बख्शी बना दिया।

फर्रुखसियर तथा सिक्खः—बहादुरशाह ने सिक्ख नेता बन्दा की बगावत को दबा कर उसे भागने को बाध्य कर दिया था। परन्तु बहादुरशाह की मृत्यु के उपरान्त वह पुनः सिक्खों का नेता बन गया और उसके नेतृत्व में सिक्खों ने लूट मार मचाना आरंभ कर दिया। सम्राट ने एक विशाल सेना भेजी। मुगल सेना ने बन्दा को दस हजार सिक्खों के साथ गुरुदासपुरा के समीप घेर लिया। सिक्ख वीरता से लड़े। किन्तु खाद्य सामग्री समाप्त हो जाने के कारण उन्होंने समर्पण कर दिया। बन्दा उसके प्रमुख अनुयायियों के साथ १७१६ में निर्दयता के साथ मौत के घाट उतार दिया गया।

फर्रुखसियर तथा मराठाः—बहादुरशाह ने साहू को मुक्त कर मराठों में फूट उत्पन्न करना चाहा था और वह कुछ सफल भी हुआ। किन्तु मराठे शीघ्र ही एक हो गये और उन्होंने मुगल-दुर्गों पर धावा बोलना आरंभ कर दिया। सम्राट ने उन्हें हराने की दृष्टि से हुसेन अली को, जो कि इस समय दक्षिण का सूबेदार था, कहा। परन्तु हुसेन अली ने इसके विपरीत साहू से सन्धि करली और साहू को दक्षिणी भारत में 'चौथ' व 'सरदेश मुखी' लेने का अधिकार दे दिया। जब फर्रुखसियर ने इसे मान्यता नही दी तो उसे गला घोट कर मार डाला गया।

उसकी मृत्यु के पश्चात उसके दो भतीजों को एक एक करके सम्राट बनाया परन्तु वे कुछ ही सप्ताह शासन कर सके।

मुहम्मदशाह (१७१९-४८)

जब फर्रुखसियर के भतीजे रफी (उद-दाराजात और रफी उद-दौला) शासन चलाने में असमर्थ रहे तो सैयद भाइयों ने बहादुरशाह के एक पौत्र रोशन अख्तर को मुहम्मदशाह के नाम से सम्राट बनाया। मुहम्मदशाह ने राज्य तो २९ वर्ष किया। परन्तु इसे दो महान विदेशी आक्रमणों का सामना करना पड़ा और मुगल-सम्राज्य का विनाश भी उसे अपनी आंखों देखना पड़ा। मुहम्मदशाह बुद्धिमान तथा एक चतुर व्यक्ति था। परन्तु विलासी होने के कारण वह एक सफल शासक न बन सका

सैयद भाई इसे भी अपने हाथ की कठ पुतली बनाये रखना चाहते थे। परन्तु इसने उनको १७२० ई० में ही मरवा दिया उसे इस कार्य में निजामुल मुल्क की बड़ी सहायता मिली थी। हैदराबाद की स्वतन्त्र रियासत बनाने वाला यह निजामुल मुल्क ही था।

मुहम्मदशाह को एक निर्बल शासक समझ कर सूबों के सूबेदारों ने अपने अपने छोटे छोटे राज्य स्थापित कर लिए। मुर्शिद कुली खां तो बंगाल व बिहार का और सफदर अली अवध का स्वतन्त्र शासक बन गया। इसी कारण राजधानी के समीप भी छोटे छोटे राज्य स्थापित कर लिए। मुहम्मद शाह स्वयं तो योग्य सम्राट नहीं था। उसने चिन–किलिच (निजामुल मुल्क) को अपना वजीर नियुक्त किया। परन्तु सम्राट उसकी सेवाओं से फायदा नहीं उठा सका। भारत की ऐसी शोचनीय राजनीतिक अवस्था को देख कर नादिरशाह ने भारत पर आक्रमण करने का साहस किया।

नादिर शाह का आक्रमण—नादिर शाह एक साधारण कुल का व्यक्ति था। उसका पिता भेड़ की खाल के कोट व टोपी बनाकर अपनी जीविका का उपार्जन करता था। नादिर शाह के बचपन का नाम नादिर कुली था। वह बचपन से महत्वाकांक्षी था। इसका प्रारम्भ में सैनिक जीवन एक डाकू के रूप में शुरू हुआ। इस तरह धीरे धीरे बढ़ते हुए वह फारस का बादशाह बन बैठा।

जब १७३७ ई० में नादिर शाह ने कन्धार को जीत लिया तो भारत की शोचनीय राजनीतिक अवस्था के कारण उसने भारत को भी जीतना चाहा। उसने मुगल दरबार में एक अपना दूत भेजा और मुगल सम्राट को कहलाया कि कन्धार से भगे अफ़गानों को मुगल दरबार में शरण न दी जाय। मुहम्मद शाह ने न तो उसका ठीक उत्तर ही दिया और न उसके साथ अच्छा व्यवहार किया।

१७३६ ई० में जब नादिर शाह भारत आगया तो मुहम्मद शाह उसका सामना करने करनाल के समीप गया। सैनिकों में आपस में सहयोग की भावना न होने के कारण मुहम्मद शाह परास्त हुआ और उसने नादिर शाह से सन्धि करली। सन्धि में मुहम्मद शाह ने ५० लाख रुपया देने का वायदा किया था। परन्तु जब रकम का भुगतान न हुआ तो नादिर शाह राजधानी की ओर बढ़ा। मुहम्मद शाह बन्दी बना लिया गया। जब नादिर शाह दिल्ली में था तो एक दिन नगर में यह बात फैल गई कि नादिर शाह अब इस दुनियां में नहीं रहा। इस पर उसके कुछ सैनिक मारे गये। इस पर नादिर शाह नाराज हो गया और उसने नगर में कत्ले आम का आदेश दे दिया। ११ मार्च १७३६ को प्रातः ६ बजे यह कत्ले आम प्रारम्भ हुआ और पांच घन्टों में लगभग २॥ हजार स्त्री पुरुषों को कत्ल कर दिया गया! तख्तताऊस

के अलावा नादिर शाह से ७० करोड़ रुपया तथा अन्य बहुत सा सामान ले गया। इस आक्रमण ने मुगल सम्राट की आर्थिक दशा को शोचनीय बना दिया तथा मुगल सत्ता इससे और क्षीण हो गई। नादिर शाह जाते समय मुहम्मद शाह को पुनः भारत का सम्राट बना गया था। परन्तु उसकी १७४८ ई० में मृत्यु हो गई।

अहमद शाह (१७४८ – ५४)

नादिरशाह १७४७ ई० में मार डाला गया और उसके स्थान पर अहमदशाह अब्दाली फारस का शाह बना। उसने भी नादिरशाह का अनुकरण करने की दृष्टि से भारत पर कई आक्रमण किये। उसका प्रथम आक्रमण १७४८ ई० में हुआ परन्तु इस लड़ाई में सरहिन्द के समीप मानपुर में अहमदशाह ने मीर मन्नू की सहायता से अब्दाली को परास्त कर दिया। परन्तु अहमदशाह इस पराजय को भूला नहीं। अतः उसने भातपर कई आक्रमण किये इसका पांचवा वा अन्तिम आक्रमण १७६१ ई० में हुआ। इस आक्रमण का मुकाबला मरहठों द्वारा पानीपत के मैदान में किया गया। परन्तु मराठे बुरी तरह से इस युद्ध में परास्त हुए।

आलम गीर द्वितीय (१७५४ से ५८)

गाजी उद्दीन ने मुगल शासक को अब्दाली के परास्त करने में बड़ी सहायता दी थी। इस कारण उसे वजीर बनाया गया। परन्तु इस वजीर ने १७५४ ई० में अहमदशाह को गद्दी से उतार कर अन्धा कर दिया। गाजी उद्दीन ने १७५४ ई० में ही जहांदारशाह के पुत्र अजीजुद्दीन को दिल्ली के तख्त पर बिठाया। उसने अपना नाम आलमगीर द्वितीय रखा। आलमगीर ने वजीर से मुक्त होने का प्रयास किया। परन्तु इसके परिणाम स्वरूप १७५८ ई० को वह भी मौत के घाट उतार दिया गया।

शाह आलम द्वितीय (१७५८ – १८०३)

आलमगीर द्वितीय की मत्यु के समय उसका पुत्र अलीगोहर बंगाल में था वह अपने पिता की मृत्यु पर शाह आलम द्वितीय के नाम से सम्राट बना। परन्तु १७५८ से १७७१ तक उसका दिल्ली आने का साहस न हुआ। इसलिए राज्य-सत्ता गाजी उद्दीन के हाथों में ही रही। शाह आलम १७७२ में दिल्ली आया और वह भी मराठाओं की सहायता से। १७६० से १७७१ तक वह अंग्रेजों के संरक्षण में रहा। इस काल में उसने बंगाल और बिहार पर अंग्रेजों की सहायता से अधिकार करना चाहा परन्तु असमर्थ रहा। बक्सर के युद्ध में वह बन्दी बना लिया गया था तब उसने बंगाल, बिहार और उड़ीसा की दीवानी ईस्ट इंडिया कम्पनी को दे दी और उसके बदले में कम्पनी ने उसकी २६ लाख वार्षिक की पेंशन करदी। तब अंग्रेजों

ने उसे दिल्ली का मुगल सम्राट माना था। परन्तु जब यह नाममात्र का ही शासक रहा और अंग्रेजों ने उसे दिल्ली के तख्त पर बिठाने का कोई प्रयास नहीं किया तो उसने मराठाओं की सहायता ली। उनकी सहायता से वह दिल्ली के तख्त पर बैठा। परन्तु उसकी अयोग्यता के कारण सब दरबारी उससे नाराज रहे और १७७८ में गुलाम कादिर ने इसको गद्दी से हटा कर अन्धा कर दिया। १८०३ में यह अंग्रेजों के संरक्षण में आगया और १८०६ में इसकी मृत्यु हो गई।

पानीपत की तीसरी लड़ाई

अहमदशाह अब्दाली के आक्रमण भारत पर बहुत पहले से चालू हो गये थे। १७६१ में उसने भारत पर पांचवा आक्रमण किया। इस आक्रमण का मुकाबला मराठाओं ने पानीपत के मैदान में किया। मराठाओं की सेना सदाशिवराव के नेतृत्व में लड़ रही थी। मराठाओं ने मुकाबला बहुत बहादुरी से किया। परन्तु इस लड़ाई में वे परास्त हुए। परास्त होने के मूल कारण ये थे:—(१) विलासी जीवन। (२) शिवाजी के समय की त्याग की भावना न रहना। (३) आपसी फूट। (४) विशाल सेना को खाद्य सामग्री पर्याप्त न होना। इस लड़ाई के परिणाम भी बहुत महत्वपूर्ण थे। इस पराजय से मुगलों का राज्य सदा के लिये भारत से लुप्त हो गया। मराठाओं की बढ़ती हुई ताकत के लिये यह बहुत बड़ा धक्का था। इसके अलावा इस लड़ाई में मुगल साम्राज्य का विशाल वृक्ष विनाश को प्राप्त हो रहा था और उधर ब्रिटिश साम्राज्य के बीज बोये जा रहे थे। इस लड़ाई के समय शाहआलम बंगाल में ही था।

अकबर द्वितीय [१८०६ से १८३७]

शाह आलम की मृत्यु के बाद उसका पुत्र अकबर द्वितीय गद्दी पर बैठा। परन्तु वह भी अपने पिता की भांति नाममात्र का सम्राट रहा। शासन सत्ता अंग्रेजों के हाथ में थी और वह पेंशन याफ्ता बना हुआ था। १८३७ में उसकी मृत्यु हो गई।

बहादुरशाह द्वितीय [१८३७ से १८५७]

अकब्बर द्वितीय के बाद बहादुरशाह द्वितीय दिल्ली का बादशाह बना। यह मुगल वंश का अन्तिम सम्राट था। १८५७ तक यह भी अंग्रेजों से पेंशन पाता रहा। लेकिन १८५७ की राष्ट्रीय क्रान्ति में बहादुरशाह अंग्रेजों के विरुद्ध संघर्ष में आ डटा परन्तु इसका परिणाम उसको बहुत बुरा भुगतना पड़ा। जब अंग्रेज उस राष्ट्रीय विप्लव को दबाने में सफल रहे तो उन्होंने बहादुरशाह को गद्दी से हटा दिया। और रंगून में ५ वर्ष बाद पंचतत्व को प्राप्त हो गया।

मुगल साम्राज्य के पतन के कारण

अन्त में जिस मुगल साम्राज्य का बीजारोपण बाबर ने किया अकबर, जहांगीर, शाहजहां और औरंगजेब ने इसको न केवल पल्लवित ही किया वरन् इसकी पूर्ण हिफाजत की। परन्तु विशाल वृक्ष को औरंगजेब के समय में ही पतन के घुन लग गये थे और अन्त में वह विशाल वृक्ष जो १७६१ के उपरान्त तो बिल्कुल ही गिरने की हालत में हो गया था वह १८५७ में पूर्णत विनष्ट हो गया। प्रत्येक के उत्थान एवं पतन के कुछ कारण होते हैं। मुगल साम्राज्य का पतन कोई एक दिन की घटना नहीं है। उसका पतन शनैः शनैः हुआ। अतः उसमें कुछ कारण होना आवश्यक है। इतिहासकार मुगल साम्राज्य में पतन के कारण निम्नलिखित बताते हैं :—

(१) **औरंगजेब की धार्मिक नीति** :—औरंगजेब कट्टरसुन्नी मुसलमान था। और वह समस्त भारत देश को कट्टरसुन्नी मुसलमानों का देश देखना चाहता था। इस कारण उसने हिन्दुओं पर बहुत अत्याचार किए। उनको धार्मिक स्वतन्त्रता बिल्कुल नहीं थी। देवालयों को तोड़ा गया व देव मूर्तियों को खण्डित कर फिंकवाया गया। जजिया जैसा अपमान जनक कर हिन्दुओं पर थोपा गया। इससे समस्त हिन्दू व उनके रक्षक राजपूत नरेश औरंगजेब से नाराज हो गए। और उन्होंने चारों तरफ उत्पात मचाना आरम्भ कर दिया। सिक्खों और मुगलों के बिगाड़ का भी मुख्य कारण औरंगजेब की धार्मिक नीति थी। दक्षिण के शियासुल्तान भी उसकी धार्मिक असहिष्णुता के कारण ही बिगड़े थे। मराठा जाति में शिवाजी ने नई चेतना धार्मिक सिद्धान्त पर ही की थी। इसलिए लेनपूल लिखता है—"शिवाजी के प्रति औरंगजेब की दूषित नीति ने ही एक ऐसी शक्ति को जन्म दिया जो इसके साम्राज्य का विरोध करने में सफल रही।

(२) **औरंगजेब की दक्षिण-नीति** :—अकबर भी औरंगजेब की भांति साम्राज्यवादी था। परन्तु उसके राज्यविस्तार में केवल साम्राज्यवाद की ही प्रेरणा थी न कि धार्मिक असहिष्णुता भी। औरंगजेब ने दक्षिण में जो संघर्ष छेड़ा वह एक प्रकार से विधर्मियों के खिलाफ जाता था। दक्षिण की नीति में सबसे बड़ा दोष यह था कि औरंगजेब ने गोलकुण्डा व बीजापुर को अपने राज्य में मिला लिया। यह शिया रियासतें मराठाओं व मुगलों के बीच में एक बफर स्टेट का काम करती थीं। इन रियासतों पर आक्रमण करने से प्रथम वे लोग औरंगजेब से नाराज हो गए व दूसरे मराठाओं को मुगल साम्राज्य पर सीधा हमला करने का अवसर मिल गया। मराठाओं से बादशाह का झगड़ा मोल लेना उसके लिए घातक सिद्ध हुआ। उनके दमन में न केवल वह समाप्त हुआ बल्कि इसके सारे उत्तराधिकारी

खत्म हो गए और मराठा नहीं दबे। इसके विपरीत वे दिल्ली के स्वामी व मुगल सम्राटों के निर्माता हो गए। इसलिए इतिहासकार बी० ए० स्मिथ लिखता है— "दक्षिण औरंगजेब के यश व उसके शरीर दोनों के लिए कब्र साबित हुआ।"

(३) **औरंगजेब के अयोग्य उत्तराधिकारी :**—इतिहास हमें बताता है कि औरंगजेब के बाद जितने भी मुगल सम्राट हुए वे सब अयोग्य एवं दुर्बल थे। दरबारियों के हाथ की वे कठपुतली रहे। परन्तु इसका दोष औरंगजेब को इसलिए दिया जाता है कि उसने अपने अविश्वास व सन्देह शीलता की नीति के कारण अपने पुत्रों को इस योग्य नहीं होने दिया कि वे शासन सत्ता सम्भालने में सफल हो जायें।

(४) **औरंगजेब का केन्द्रीय शासन :**—औरंगजेब एक निरंकुश, स्वेच्छाचारी सम्राट था। उसने केन्द्रीयकरण की नीति का अनुसरण किया। यह सत्य है कि वह एक अपूर्व प्रतिभाशाली व्यक्ति था। परन्तु इतने विशाल साम्राज्य के समस्त कार्यों का वही संचालन करे यह असम्भव सा था। इस कारण राज्य शासन दिन पर दिन अराजकता, अव्यवस्था की व्याधियों से ग्रसित होता हुआ चला गया।

(५) **औरंगजेब का रिक्त कोष :**—राज्य की सुव्यवस्था उसकी आर्थिक व्यवस्था पर निर्भर रहती है। औरंगजेब अपने जीवन भर युद्ध करता रहा। इस कारण शाही खजाना खाली हो गया। सैनिकों व अन्य कर्मचारियों को समय पर वेतन न मिलने के कारण शासन में अव्यवस्था फैल गई।

(६) **औरंगजेब का दीर्घकाल तक दक्षिण में रहना :**—साम्राज्य की सुव्यवस्था के लिए सम्राट का राजधानी में रहना अत्यन्त आवश्यक होता है। परन्तु औरंगजेब तो दक्षिण में २५ वर्ष रहा। इस कारण उत्तरी भारत में सब जगह अव्यवस्था फैल गई।

(७) **हिन्दुओं को उच्च पदों से हटाना :**—औरंगजेब ने धार्मिक कट्टरता के कारण हिन्दुओं को उच्च पदों से हटा दिया। इस कारण सेनापति व सूबेदार समस्त मुसलमान ही होते थे जो कि कालान्तर में अपने शासक के स्वामीभक्त सिद्ध नहीं हुए।

(८) **सिक्खों का उत्कर्ष :**—वैसे तो सिक्ख जाति का उत्थान तो बहुत पहले से चला आ रहा था। परन्तु औरंगजेब के व्यवहार ने उसके उत्कर्ष में नवीन प्रेरणा प्रदान की। जब उसने तेगबहादुर का वध करवा दिया तो उनके

पुत्र गुरु गोविन्दसिंह ने सिक्ख जाति को पूर्णतः एक सैनिक जाति बना दिया। इससे उनसे लोहा लेना कठिन हो गया।

(६) **मराठों का उत्कर्ष :**—मराठा जाति में जानफूंकने वाला शिवाजी था। शिवाजी ने मराठों को शक्तिशाली औरंगजेब से लोहा लेने के लिए बनाया था। वास्तव में मराठों का उत्थान तो मुगल साम्राज्य को एक नासूर के समान सिद्ध हुआ।

(१०) **उत्तराधिकार का युद्ध :**—यह सत्य है कि मुसलमानों में राज्याधिकार का कोई निश्चित नियम नहीं था और राज्य की प्राप्ति तलवार की शक्ति से होती थी। परन्तु औरंगजेब ने उत्तराधिकार के युद्ध को ऐसा रूप दिया जो उसकी मृत्यु के बाद निरन्तर चलता रहा। इन उत्तराधिकार-युद्धों से राजकुमारों में वैमनस्य फैलता था तथा अमीर-उमरावों का सहयोग बट जाता था। जिस अमीर की सहायता से जो राजकुमार सम्राट बनता वह उस अमीर के हाथ की कठपुतली बन जाता था।

ये उपर्युक्त मुगल साम्राज्य के पतन के प्रमुख कारणों में माने जाते हैं और इन कारणों को उत्पन्न करने वाला औरंगजेब माना जाता था। इसलिए इतिहासकार औरंगजेब को ही मुगल साम्राज्य के पतन का उत्तरदायी मानते हैं।

(११) **सैनिक अवस्था :**—प्रसिद्ध इतिहासकार इरविन ने मुगलों की सैनिक व्यवस्था को साम्राज्य के पतन का मुख्य कारण बताया है। उसका कथन है—**"चाहे अन्य बुराइयां आती रहतीं लगान व्यवस्था और न्याय व्यवस्था वैसी ही रहतो, फिर भी यदि मुगल सैनिक व्यवस्था अच्छी होती तो शासन सुचारु रूप से चलता रहता।"**

(१२) **मुगलों का जीवन :**—किसी भी साम्राज्य का स्थायित्व उसके शासकों की योग्यता, कर्मनिष्ठा तथा चरित्र बल पर रहता है। मुगलवंश के अधिकांश शासकों में उन गुणों का अभाव था। औरंगजेब के बाद के तो सभी सम्राट इन गुणों से वंचित थे। वे सुरा और सुन्दरी के दास थे। राज्यकार्यों के प्रति उदासीन रहते थे। विलासी जीवन व्यतीत करने के कारण वे दिनोंदिन निर्बल एवं अयोग्य होते जा रहे थे। यही कारण था कि उनमें अन्तिम दिनों में तलवार ग्रहण करने की भी क्षमता नहीं रहती थी।

(१३) **कर्मचारियों व अमीरों का नैतिक पतन :**—औरंगजेब के समय में हिन्दुओं को तो उच्च पदों से वंचित कर ही दिया था। साथ में उसी के समय से विदेशियों का आना भी बन्द हो गया था। अतः जो कर्मचारी मुगल दरबार में

कार्य करते थे-वे उन पदों पर अपना पैतृक अधिकार समझने लग गए थे। इस कारण उनका जीवन विलासी, स्वार्थी व परस्पर स्पर्धा करने वाला बन गया था। इतिहासकार यदुनाथ सरकार लिखते हैं-"**मुगल इतिहास का गम्भीरता से अध्ययन करने वाले विद्यार्थियों के लिए मुगल अमीरों के पतन से अधिक महत्वपूर्ण और कोई चीज नहीं हो सकती।**"

(१४) **मुग़ल राजकुमारों को उचित शिक्षा न मिलना** :—मुगल शासकों ने जन साधारण तो क्या अपने राजकुमारों के लिए भी उचित शिक्षा का प्रबन्ध नहीं किया। श्री यदुनाथ सरकार लिखते हैं-"**मुगल सरदारों को बच्चों के लिए न अच्छी शिक्षा थी और न प्रत्यक्षरूप से शिक्षित करने की व्यवस्था थीं।**" वे आगे लिखते हैं कि मुगल राजकुमार तो बचपन से लेकर युवावस्था तक अपना समय हरम में ही बिताया करते थे।

(१५) **साम्राज्य का विशाल होना** :—यातायात के साधन तो उस समय विकसित थे नही। अतः इतने विशाल साम्राज्य में शान्ति व व्यवस्था रखना अति कठिन कार्य था।

(१६) **विदेशी आक्रमण** :—नादिरशाह के आक्रमण ने मुगल सम्राटों की कीर्ति मिट्टी में मिला दी तथा यहां से इतना धन ले गया कि मुगलकोष की आर्थिक अवस्था दयनीय हो गई। अहमदशाह अब्दाली के पांचवें आक्रमण ने मुगल सम्राट के जीर्ण मेरुदण्ड को भी तोड़ दिया और अंग्रेजों के आगमन से भारत में शासन करने के लिए एक कौम तैयार मिली जिसने कि भारत की तत्कालीन अवस्था का लाभ उठाकर अपना राज्य स्थापित कर लिया।

इन उपर्युक्त मुगल साम्राज्य के पतन के कारणों को देखते हुए 'तारीखे-हिन्दी' का रचियता रुस्तम अली का यह कथन उचित जान पड़ता है। वह मुगलों के पतन के विषय में लिखता है-"**इस विश्व-उद्यान का वैभव तथा प्रसन्नता और इस पृथ्वी की हरियाली तथा फलना-फूलना राजाओं के न्याय तथा भाव रूपी सरिता के प्रवाह पर निर्भर रहता है। उसी प्रकार इस विश्व के वृक्षों के मुरझाने का प्रमुख कारण है शासकों की उपेक्षा तथा असावधानी और भले अमीरों की पारस्परिक कलह रूपी गर्म हवायें।**

अध्याय सार

प्रस्तावना:— औरंगजेब के शासन काल में मुगल साम्राज्य का विस्तार बुझते हुए दीपक की लौ के समान था। उसके बाद के शासक बिल्कुल निर्बल विलासी एवं दूसरों पर निर्भर रहने वाले थे।

बहादुरशाह:— औरंगजेब की मृत्यु पर उसके बचे पुत्रों में बड़ा पुत्र बहादुर शाह के नाम से भारत का बादशाह बना। उसने राजपुताने के राजपूतों से मित्रता रखी और मराठों में फूट उत्पन्न करने के लिए उसने साहू को मुक्त कर दिया। सिखों के नेता बन्दा को भी ठीक रास्ते लाने का उसने प्रयास किया। उसकी १७१२ में मृत्यु हो गई।

जहांदारशाह:— यह बहादुरशाह का पुत्र था। वह भी अपने पूर्वजों की भांति अपने भ्राताओं का वध करके बादशाह बना था। परन्तु वह एक अयोग्य शासक था। इस कारण उसके भतीजे ने इसे उसी वर्ष गला घोट कर मार दिया।

फर्रुखसियर: यह जहांदारशाह का भतीजा था। इसको बादशाह बनाने में सैयद भाई (अब्दुला व हुसैन अली) सहायक सिद्ध हुए थे। इस कारण वह सैयद भाइयों की हाथ की कठपुतली बन गया।

सिक्खों के नेता बन्दा का इसने वध करवा दिया तथा मराठों के उत्कर्ष को रोकने के लिए हुसैनअली को दक्षिण का सूबेदार नियुक्त कर दिया। परन्तु हुसैनअली मराठों से मिल गया और उसने साहू को दक्षिण में 'चौथ' तथा सरदेश मुखी लेने का अधिकार दे दिया। जब फर्रुखसियर ने इस समझौते पर हस्ताक्षर नहीं किये तो उसका वध कर दिया गया।

मुहम्मदशाह:—यह बहादुरशाह का पौत्र था। इसको बादशाह सैयद भाइयों ने बनाया था। परन्तु यह विलासी, अयोग्य एवं भीरू था। इस कारण १७३९ में नादिरशाह के आक्रमण से इसने अपनी आंखों अपने साम्राज्य का विनाश देखा। नादिरशाह ने दिल्ली में हजारों स्त्री पुरुषों का कत्ल करवाया तथा मयूर सिंहासन के अतिरिक्त करोड़ों रुपया यहां से लेगया। परन्तु निजामुल मुल्क की सहायता से यह सैयद भाइयों के प्रभाव से मुक्त अवश्य हो गया था। १७४८ ई० में उसकी मृत्यु हो गई।

अहमदशाह:— मुहम्मद शाह की मृत्यु के बाद यह दिल्ली का सम्राट बना। १७४८ ई० में उसने अहमदशाह अब्दाली को मीर मन्नू की सहायता से सरहिन्द के समीप परास्त किया था।

आलमगीर द्वितीय:— गाजी उद्दीन की सहायता से मुगल बादशाह अहमद शाह अब्दाली से लोहा ले सके थे। इस कारण वह राज्य का वजीर नियुक्त हुआ था। परन्तु इसने अपने स्वामी अहमदशाह को पदच्युत कर अन्धा बना दिया तथा जहांदारशाह के पुत्र अजीजुद्दीन को बादशाह बनाया और वह आलमगीर द्वितीय के नाम से बादशाह बना था।

शाह आलम द्वितीयः— जब आलमगीर १७५८ ई० में अपने वजीर द्वारा मार दिया गया तो उसका पुत्र अलीगोहर 'शाह आलम द्वितीय' के नाम से बादशाह बना। परन्तु वह १७७१ ई० तक अंग्रेजों के संरक्षण में बंगाल ही रहा। १७७२ ई० में वह मराठों की सहायता से दिल्ली आया। परन्तु १७७८ में वह गुलाम कादिर द्वारा गद्दी से हटा दिया गया। १८०३ में वह पुनः अंग्रेजों के संरक्षण में आ गया। और १८०६ ई० में वह इस लोक से विदा हो गया।

पानीपत की तीसरी लड़ाईः— यह लड़ाई १७६१ में मराठों और अहमद शाह अब्दाली के बीच हुई थी। इस युद्ध में मराठा परास्त हुए और अब्दाली विजयी। इस लड़ाई से मुगल साम्राज्य सदा के लिये भारत से समाप्त हो गया और मराठों की शक्ति का ह्रास हुआ।

अकबर द्वितीयः— यह नाम मात्र का बादशाह रहा और अंग्रेजों से पैंशन पाता रहा।

बहादुरशाह द्वितीयः— यद्यपि यह भी अंग्रेजों के संरक्षण में ही रहा और उनसे पैंशन लेता रहा। परन्तु १८५७ की राष्ट्रीय क्रान्ति में उसने अंग्रेजों के विरुद्ध भाग लिया। इस कारण वह गद्दी से उतार दिया और १८६२ में रंगून में पंचतत्व को प्राप्त हुआ।

मुगल साम्राज्य के पतन के कारणः— (१) औरंगजेब की धार्मिक नीति, (२) औरंगजेब की दक्षिण नीति, (३) औरंगजेब के अयोग्य उत्तराधिकारी, (४) औरंगजेब का केन्द्रीय शासन, (५) औरंगजेब का रिक्त कोष, (६) औरंगजेब का दीर्घकाल तक दक्षिण में रहना, (७) हिन्दुओं को उच्च पदों से दूर करना, (८) सिक्खों का उत्कर्ष, (९) मराठों का उत्कर्ष, (१०) उत्तराधिकार युद्ध, (११) सैनिक अव्यवस्था, (१२) मुगलों का जीवन, (१३) कर्मचारी व अमीरों का नैतिक पतन, (१४) मुगल राजकुमारों के लिए शिक्षा का प्रबन्ध न होना, (१५) साम्राज्य का विशाल होना, (१६) विदेशी आक्रमण।

प्रश्न

१. बहादुरशाह किन परिस्थितियों में दिल्ली की गद्दी पर बैठा? उसके शासन का वर्णन कीजिए।

Explain the circumstances under which Bahadur Shah ascended the throne of Delhi. Give an account of his reign.

२. औरंगजेब की मृत्यु के उपरान्त मरहठों और मुगलों के बीच हुए संघर्ष का वर्णन कीजिए।

Give an account of the conflict of the Marathas and the Mughals after the death of Aurangzeb.

३. मुगल साम्राज्य के पतन के कारण लिखो। औरंगजेब इसके लिए कहां तक उत्तरदायी था ?

Give the causes of the down fall of the Mughal Empire. How far was Aurangzeb responsible for it ?

४. पानीपत की तीसरी लड़ाई का वर्णन कीजिए और इस लड़ाई में मराठों की हार के कारणों का उल्लेख कीजिए।

Give an account of the third Battle of Panipat and account for the defeat of the Marathas in this Battle.

५. "सामान्य रूप से ऐसा कहा जाता है कि औरंगजेब की अदूरदर्शी नीति के कारण ही मुगल साम्राज्य का पतन इतनी जल्दी हो गया।"
आप इस बात से कहां तक सहमत हैं ? अपने मत के समर्थन में तर्क उपस्थित कीजिए।

"It is generally contented that Aurangzeb's unwise policy hastended the down fall of the Mughal Empire."
How far do you agree, give reasons in support of your views ?

६. "मराठों के उत्कर्ष ने लड़खड़ाते मुगल साम्राज्य पर घातक प्रहार किया।" समझाइए।

"The rise of Marathas inflicted a fatal below to the stumbling Mughal Empire." Explain.

अध्याय नवां

सिक्खों का उत्कर्ष

प्रस्तावना—गुरु नानक—गुरु अंगद—गुरु अमरदास—गुरु रामदास—गुरु अर्जुन—गुरु हरगोविन्द—गुरु हरिराय—गुरु हरिकृष्ण—गुरु तेगबहादुर—गुरु गोविन्दसिंह—बन्दा बैरागी—सिक्ख धर्म का भारत के इतिहास में महत्व।

प्रस्तावना:—भारतीय संस्कृति के निर्माण में महात्माओं का बड़ा सहयोग रहा है। पन्द्रहवीं और सोलवीं शताब्दी भारत के नवजागरण की शताब्दियां थी। उस समय भारत में भक्ति आन्दोलन चल रहा था। विभिन्न महात्मा अपने अपने विचारों को भगवद्—भक्ति के रूप में प्रस्तुत कर रहे थे। उन महात्माओं के भक्ति प्रचार साधनों के फलस्वरूप भारत में भक्ति व भगवान के विभिन्न रूप निर्धारित हुए। सिक्ख धर्म भी उस भक्ति आन्दोलन का एक परिणाम है। इस धर्म के मूल प्रर्वत्तक गुरू नानक थे।

गुरू नानक [१४६९-१५३८]

गुरू नानक का जन्म १४६९ में लाहौर जिले में स्थित वर्तमान नानकाना नामक स्थान पर हुआ था। इसके पिता का नाम कालू तथा माता का नाम त्रिप्ता था। बचपन में जब वह ग्राम के स्कूल में भेजा गया तो कोई अध्यापक उसकी ज्ञान-क्षुधा को शान्त नहीं कर सका। बच्चे का पढ़ने में मन न लगते देख पिता ने इनको व्यापार करने की सलाह दी। परन्तु इनका मन नहीं लगा। १८ वर्ष की आयु में उनकी शादी करदी गई। फिर भी गृह-कार्यों में मन न लगा। अन्त में ३० वर्ष की आयु में सिद्धार्थ की भांति घर त्याग दिया और आध्यात्मिक ज्ञान प्राप्त करने की दृष्टि से वे तीर्थों में घूमते रहे। विभिन्न धर्मों में प्रविष्ट बुराइयों की उन्होंने निन्दा की। धर्म के विषय में आपने जो विचार रखे वे सिक्ख धर्म के रूप में जाने गये।

श्री नेत्र पाण्डेय के मतानुसार सिक्ख शब्द शिष्य का ही परिवर्तित रूप है। इसका तात्पर्य सिक्ख धर्म के अनुयायी से है। गुरू नानक को धर्म के बाह्य आडंबरों से घृणा थी। इसी कारण उन्होंने हिन्दू धर्म के मिथ्याडम्बरों की खासा आलोचना की। उनका कहना था कि ईश्वर की पूजा तथा सत्कर्मों से ही मानव को मुक्ति मिल सकती है। वे एकेश्वरवादी थे। उन्होंने परमात्मा का नाम 'सतगुरू' बताया। अनेक देवताओं में श्रद्धा न होने के कारण नानक ने परमात्मा को सर्वेश्वर एवं सर्व शक्ति

मान बताया है। इसके अतिरिक्त गुरू नानक ने परमात्मा की प्राप्ति के लिए गुरू का होना अत्यन्त आवश्यक बताया है। गुरू कहते हैं। **"बिना गुरु के भगवान नहीं मिलता है.... ।"** उन्होंने मनुष्यों को कर्म में विश्वास रखने की शिक्षा दी। १५३८ ई० में गुरू नानक का परलोकवास हो गया।

गुरू नानक के विषय में दो धारणायें डा० जी० सी० नारंग उनको हिन्दू धर्म का सुधारक मानते हैं। तेजासिंह की धारणा हैं कि वे क्रान्तिकारी थे और भक्ति आन्दोलन के प्रचारकों में से एक प्रचारक थे। खैर कुछ भी सिक्ख धर्म भारत के प्रमुख धर्मों में से एक है और यह आज भी भारत में फल फूल रहा है। इसमें जाति पांति के भेद भाव को कोई स्थान नहीं है। शराब पीना भी निषेध है। जान क्लार्क लिखता है **"गुरु नानक एक ऐतिहासिक व्यक्ति थे।"**

गुरू अंगद [१५३८–५२]

गुरू अंगद का प्रारम्भिक नाम लहिना था। गुरू नानक ने मरने से पूर्व ही इसे अपना उत्तराधिकारी घोषित कर दिया था। वह अपने गुरू के पदचिन्हों पर चला। उसने सिक्ख धर्म का अच्छा प्रचार किया और 'गुरूमुखी' लिपी चलाई। सिक्खों के धार्मिक ग्रन्थ इसी लिपि में लिखे जाते हैं। इसने अपने अनुयायियों में अनुशासन की भावना पैदा की। इस समय गुरू नानक का जीवन वृत्तान्त भी गुरूमुखी में लिखा गया। इसके अलावा गुरू नानक के भजनों का संकलन भी किया गया। जो कि आज 'ग्रन्थ साहब' कहलाता है। सिक्ख 'ग्रन्थ साहब' उतना पवित्र धार्मिक ग्रन्थ मानते हैं जितना कि हिन्दू वेद, मुसलमान कुरान तथा ईसाई बाइबिल को मानते है। ऐसा कहा जाता में है कि हुमायूं इनका आशीर्वाद लेने आया था। १५५२ में इनका देहान्त हो गया।

गुरू अमरदास [१५५२-७४]

गुरू अमरदास गुरू अंगद के द्वारा ही उत्तराधिकारी बनाये गये थे। गुरू अमरदास ने पंजाब के जाटों में इस धर्म का अधिकतर प्रचार किया और अपने धर्म अनुयायियों की उसने संख्या बढ़ाली। उसने लंगर प्रथा मे सुधार किया तथा इस पर पर्याप्त जोर भी दिया। इस गुरू ने देश में गुरू के प्रतिनिधियों की गद्दियां वापस करदी। प्रत्येक गद्दी एक प्रभावशाली धर्म प्रचारक सिक्ख के संरक्षण में रही। उसने सती प्रथा तथा पर्दा प्रथा की आलोचना की। गुरू अमरदास एक चरित्रवान व्यक्ति था। कहते हैं कि उनके सद्चरित्र की छाप मुगल बादशाहों तक पर पड़ी थी। हिन्दू और सिक्खों में विभिन्नता भी इनके समय से ही पैदा हुई थी। १५७४ ई० में इन्होंने भी इस शरीर का त्याग कर दिया।

गुरू रामदास [१५७४-१५८१]

गुरू रामदास गुरू अमरदास का दामाद था। अकबर से इनके सम्बन्ध बहुत अच्छे थे। अकबर ने इनको प्रसन्न होकर अमृतसर के समीप वह स्थान दिया जहां आज भी सिक्खों का प्रसिद्ध गुरूद्वारा बना हुआ है। यहीं पर उन्होंने एक तालाब बनवाया। सिक्खों का स्वर्ण मन्दिर इसी तालाब पर बसा हुआ है जो कि सिक्खों का केन्द्र स्थान माना जाता है। इनके समय में सिक्ख धर्म का प्रचार काफी हुआ।

गुरू अर्जुन [१५८१-१६०६]

गुरू रामदास की मृत्यु पर गुरू अर्जुन उनके उत्तराधिकारी बने। इसने सर्व प्रथम सिक्खों की आर्थिक दशा सुधारने की ओर ध्यान दिया। उसने धार्मिक कर वसूल करने की प्रथा चलाई। इन्होंने गुरू नानक के अतिरिक्त अन्य गुरूओं के उपदेशों का भी संकलन करवाया। इनमें संगठन की अद्वितीय क्षमता थी। इनके प्रताप से सिक्ख धर्म समस्त पजाब में फैल गया। गुरू अर्जुन एक तरह से सिक्खों के धार्मिक राजा बन गये।

गुरू अर्जुन प्रथम गुरू थे जिन्होंने धर्म के अलावा राजनीति में भी पदार्पण किया। ये ही गुरू थे जिनके पास जहांगीर का पुत्र खुसरो एक बागी के रूप में आशीर्वाद लेने आया था। जहांगीर ने उसे राजद्रोही ठहराया और १६०६ में उसका निर्दयता से वध कर दिया। जहांगीर व्यक्तिगत रूप से सिक्खों के इन गुरूओं से नफरत करता था। गुरू अर्जुन के वध का दूसरा कारण यह भी बताया जाता है कि लाहौर का दीवान गुरू अर्जुन के पुत्र के साथ अपनी पुत्री की शादी करना चाहता था। गुरू अर्जुन इससे सहमत न थे। इस अपमान का बदला लेने की दृष्टि से लाहौर के दीवान ने जहांगीर के कान भर दिये और गुरू अर्जुन की यह दशा हुई। खैर, कुछ भी हो यहां से मुगलों के और सिक्खों के सम्बन्ध खराब हो गये। तेजासिह की मान्यता हैं। जिस ढग से गुरू अर्जुन का वध किया गया उससे सिक्खों की यह धारणा हो गई कि यदि हमें जीवित रहना है तो उनको शस्त्रों से सुसज्जित रहना पड़ेगा। इसलिये गुरू अर्जुन की मृत्यु सिक्ख धर्म में परिवर्तन लाने वाली मानी जाती है। सिक्ख अब केवल धार्मिक ही न रहे बस वे अब एक सैनिक जाति में आबद्ध हो गये।

गुरू हरगोविन्द [१६०६-१६४५]

गुरू हरगोविन्द, गुरू अर्जुन का पुत्र था। वह प्रारम्भ से ही मुगलों का कट्टर दुश्मन था। उसने सच्चा बादशाह का पद ग्रहण किया और अपने साथियों को

सुदृढ़ बनने के लिये कहा। प्रारम्भ में जहांगीर गुरू हरगोविन्द से प्रसन्न रहा और उससे भत्ता भी लेता रहा। परन्तु बाद में किसी कारणवश जहांगीर की उससे अनबन हो गई। इसके परिणाम स्वरूप उसे १२ साल ग्वालियर के किले में ही बन्द रहना पड़ा। उन्होंने अपनी सुरक्षा के लिये एक छोटी सी सेना का निर्माण किया तथा अमृतसर में किला भी बनवाया। सिक्खों को सबल बनाने के लिये उन्होंने मास खाने की छूट दे दी। वे जब तक जीवित रहे, मुगलों से संघर्ष करते रहे। परन्तु उन्हें कोई विशेष सफलता नहीं मिली। और अन्त में १६४५ में इस दुनियां से कूंच कर गये।

गुरू हरिराय [१६४५-१६६१]

गुरू हरिराय शान्त प्रकृति के व्यक्ति थे। इसलिये उन्होंने धर्म का प्रचार शांत पूर्ण तरीकों से करना चाहा। वे अपना जीवन शांति पूर्वक व्यतीत करने की दृष्टि से काश्मीर चले गये। और वहां कीरतपुर में रहकर अपने धर्म का प्रचार करते रहे। जिस प्रकार बागी खुसरो गुरू अर्जुन का आशीर्वाद लेने गया था और जहांगीर गुरू से नाराज हो गया था, उसी प्रकार दारा इनके पास इनका आशीर्वाद तथा सैनिक सहायता लेने के लिये गया था और औरंगजेब इनसे नाराज हो गया। औरंगजेब ने गुरू हरिराय को मुगल दरबार में हाजिर होने का आदेश दिया। गुरू स्वयं वहां न जा सके परन्तु उन्होंने अपने जेष्ठ पुत्र को भेजा। औरंगजेब ने उन बातों का स्पष्टीकरण चाहा, जो इस्लाम धर्म के विरुद्ध थी। परन्तु अन्त में औरंगजेब कुछ शब्दों के परिवर्तन से सन्तुष्ट हो गया। परन्तु गुरू हरिराय अपने पुत्र के इस कार्य से अत्यन्त क्रोधित हुआ और उसने अपने छोटे पुत्र हरिकृष्ण को अपना उत्तराधिकारी नियुक्त किया।

गुरू हरिकृष्ण (१६६१-१६६४)

जब हरि कृष्ण अपने पिता के उत्तराधिकारी हुए तो उसकी आयु केवल ५ वर्ष की थी। इसलिये दूसरे व्यक्ति ने भी गुरू बनाने का प्रयत्न किया था। परन्तु अन्त में सफलता हरिकिशन को ही मिली। मुगल सम्राट औरगजेब ने इसको भी अपने दरबार में बुलाया था। इस काल में उन पर चेचक का प्रकोप हो गया और ३ साल बाद ही दुनियां से विदा हो गये।

गुरू तेगबहादुर (१६६४-१६७५)

गुरू हरिकृष्ण ने अपने जीवन काल में ही तेगबहादुर को गुरू बना दिया। वे कीरतपुर के पास आनन्दपुर में निवास करने लगे। इनके समय तक

औरंगजेब खुले रूप से हिन्दू धर्म की निंदा करने लग गया था। गुरू तेगबहादुर को यह असह्य था। उन्होंने औरंगजेब की इस कठोर धार्मिक नीति के विरुद्ध हिन्दुओं को भड़काना आरम्भ किया। इसके अलावा यह भी कहा जाता है कि काश्मीर में मुसलमान सूबेदार ने बहुत से हिन्दुओं को बलात् मुसलमान बना दिया और जिन्होंने इस्लाम धर्म अंगीकार करने से इन्कार किया उनको मौत के घाट उतार दिया गया। गुरू तेगबहादुर ने इसका भी कठोर विरोध किया। जब औरंगजेब को इसका पता चला तो वह आग बबूला हो गया। उसने तेगबहादुर को मुगल दरबार में उपस्थित होने का आदेश दिया। जब गुरू मुगल दरबार में उपस्थित हुए तो औरंगजेब ने उनसे इस्लाम धर्म स्वीकार करने के लिये कहा। परन्तु गुरू ने इन्कार कर दिया। इस पर औरंगजेब ने उसका सिर धड़ से अलग करा दिया। ठीक कहा है कि गुरू तेगबहादुर ने सिर दिया पर सर (धर्म) नहीं दिया। डा० जी० सी० नारंग की मान्यता है, "उसकी यह हत्या हिन्दुओं से सामूहिक रूप में धर्म के लिये बलिदान समझी गई। सारा पंजाब प्रतिकार की ज्वाला से जलने लगा।" वास्तव में तेगबहादुर का यह त्याग हिन्दू और सिक्खों में एक नवीन प्रेरणा दायक सिद्ध हुआ।

गुरू गोविन्द सिंह (१६७५-१७०८)

जब गुरु तेगबहादुर दिल्ली को प्रस्थान कर रहे थे उस समय ही वह गुरू गोबिन्द सिह को अपना उत्तराधिकारी नियुक्त कर गये थे। उस समय गुरू गोबिन्द सिंह की आयु पन्द्रह वर्ष की थी। अपने पिता के वध के कारण वे मुगलों से बहुत नाराज हो गये थे और उन्होंने अपने पिता की मृत्यु का बदला लेने का दृढ़ संकल्प कर लिया। उन्होंने सिक्खों को एक दृढ़ सैनिक जाति में रूपान्तरित करने के लिये जाति व्यवस्था को व्यर्थ बतलाया। उन्होंने १६९९ में बैसाखी के दिन खालसा को जन्म दिया। खालसा से तात्पर्य यह है कि सिक्ख ईश्वर से चुने गये थे। अतः उनकी विजय निश्चित होगी उन्होंने प्रत्येक सिक्ख को अपने आगे सिंह लगाने का आदेश दिया। उन्होंने वास्तव में सिक्खों को एक वीर जाति के रूप में परिवर्तित कर दिया और सम्राट औरंगजेब का विरोध खुले आम करना आरम्भ कर दिया। परन्तु इस समय औरंगजेब दक्षिण में मराठाओं से युद्ध कर रहा था। अतः गुरू गोबिन्द सिंह को अपनी सैनिक शक्ति बढ़ाने का और भी मौका मिला। अन्त में बादशाह औरंगजेब ने उसके खिलाफ एक फौज भेजी। सरहिद के पास लड़ाई हुई। सिक्ख लोग बहुत ही धैर्य और साहस से लड़े। परन्तु उन्हें पराजय मिली। पराजय के परिणाम स्वरूप गोबिन्द सिंह के दो पुत्र बन्दी बनाये गये और सरहिंद में फौजदार द्वारा वे जिन्दे

दीवार में चुनवा दिये गये ।

परन्तु इस पराजय से गुरू गोविन्दसिंह जैसे वीर हताश होने वाले नहीं थे। मुक्तेश्वर नामक स्थान पर गुरू ने मुगल सेना को परास्त किया। औरंगजेब इस समय अपना अन्तिम समय निकट देख रहा था। अतः उसने १७०६ में गोविन्दसिंह को मिलने के लिये बुलाया। गोविन्दसिंह भी इस समय कठिनाइयों से परेशान थे। जब गुरू गोविन्दसिंह १७०७ में औरंगजेब से मिलने के लिये रवाना हुऐ तो उन्हें मालूम हुआ की औरंगजेब का जनाजा निकल चुका है। परन्तु गोविन्ससिंह भी अधिक दिन तक जीवित नहीं रहे। वे १७०८ में एक पठान द्वारा मार दिये गये।

वास्तव में गुरू गोविन्दसिंह एक वीर सेनानायक तथा उत्साही धर्म प्रचारक थे। उन्होंने अपनी सिक्ख जाति में एक नई जान एवं एक नई प्रेरणा उत्पन्न करदी। यही वह व्यक्ति था जिसने सिक्ख जाति को वीर बना कर हिन्दू जाति की रक्षा की। गोविन्दसिंह केवल एक सेनानायक ही नहीं थे बल्कि एक धर्म प्रचारक, विद्वान एवं कवि भी थे। उन्होंने पंजाबी. हिन्दी और फारसी में रचनाएं भी लिखी थी। उन्होंने गुरू के पद को हटा कर प्रजातन्त्रात्मक सिद्धान्त का प्रतिपादन किया था। इतिहासकार कनिंघम ने उसके गुणो की भूरि भूरि प्रशंसा की है।

बन्दा वैरागी [१७०८-१७१६]

गुरू गोन्दिसिंह की मृत्यु के उपरान्त बन्दा बैरागी ने सिक्खों का नेतृत्व ग्रहण किया। वह एक अपार योद्धा था। उसमें संगठन की अपूर्व क्षमता थी। उसने गुरू गोविन्दसिंह की नीति अपनाई और मुगलों से संघर्ष जारी रखा। उसने सरहिन्द के फौजदार को मार डाला और उस पर अधिकार कर लिया। बहादुरशाह ने इसको दबाना चाहा। परन्तु उसकी १७१२ में मृत्यु हो जाने के कारण उसे पूरी तरह नहीं दबा सका। बहादुर की मृत्यु के उपरान्त वह निडर होकर मुगलों पर प्रहार करने लगा। सतलज और यमुना नदियों के बीच के भाग पर अधिकार करने के पश्चात उसने लोहागढ़ में एक दृढ़ दुर्ग का निर्माण करवाया। अब वह राजसी ठाट बाट से रहने लगा। उसने अपने नाम की मुद्रा चलाई। परन्तु १७१५ में वह गुरदास के दुर्ग में घिर गया और १७१६ में उसका फर्रुखसियर द्वारा निर्दयता से वध कर दिया गया।

बन्दा बैरागी के वध के उपरान्त पंजाब के सूबेदारों ने सिक्खों पर निरन्तर अत्याचार करना आरम्भ किया। परन्तु सिक्ख उन अत्याचारों से विचलित नहीं हुए। वे गुरु गोविन्दसिंह के सिद्धान्तों पर चलते हुए अपने संगठन को दृढ़

बनाते रहे। यही कारण है कि मुगलों के इतने जुल्म करने पर भी सिक्ख जाति आज जीवित है।

सिक्ख धर्म का महत्व:—सिक्ख धर्म का सूत्रपात पंजाब में हुआ। पंजाब भारत का एक सीमावर्ती प्रान्त है। मध्य एशिया के जितने आक्रमणकारी भारत आये वे पंजाब के मार्ग से आये। अतः पंजाब में ऐसी जाति का होना अनिवार्य है जो कि शत्रु का सामना कर सके और सिक्ख लोग गुरु अर्जुन के समय से ही सैनिक रूप में बनाये जाने लग गये थे। यही कारण था कि सिक्ख लोग औरंगजेब के समय तक सुसंगठित हो गये थे और वे औरंगजेब से लोहा लेकर अपने तथा हिन्दू धर्म की रक्षा करने में समर्थ बन सके। अहमदशाह अब्दाली का भी उन्होंने सामना किया था।

ब्रिटिश शासन काल में भी सिक्ख अपनी वीरता के लिए विख्यात रहे। रणजीतसिंह ने उत्तरी भारत में एक दृढ़ राज्य स्थापित किया। परन्तु १८५७ वीं की क्रांन्ति में उन्होंने अंग्रेजों का साथ दे भारत के इतिहास में नवीन परिवर्तन किया। इसके उपरान्त अंग्रेजों का शासन भारत में जम गया और वे उनकी सेना में बहादुर सैनिकों का कार्य करते रहे।

आज भारत स्वतन्त्र है। सिंध, व सीमाप्रान्त पाकिस्तान में चले गये हैं। पंजाब दो भागों में विभक्त हो गया है। पश्चिमी पंजाब पाकिस्तान का एक भाग है। काश्मीर अभी पाकिस्तान व भारत के बीच झगड़े की जड़ बना हुआ है। ऐसी दशा में पंजाब भारत की सुरक्षा के दृष्टिकोण से बहुत ही महत्वपूर्ण स्थिति रखता है क्योंकि यह उनकी सीमाओं से सटा हुआ है। अतः हमें गर्व होना चाहिए कि ऐसे संकट के स्थान पर सिक्ख जैसे वीर योद्धा रहते है। हम उनसे आशा रखते हैं कि भविष्य में भी वे देश की सुरक्षा की दृष्टि से एकता बनाये रखेंगे और अपने प्राचीन गौरव को निभाते रहेंगे।

अध्याय सार

प्रस्तावना:—भारतीय संस्कृति व सभ्यता के सुरक्षा में महात्माओं का बड़ा सहयोग रहा है। भक्ति आन्दोलन के प्रवर्त्तकों में गुरू नानक भी एक थे। इन्होंने सिक्ख धर्म को चलाया था।

गुरू नानक:—इनका जन्म १४६९ में लाहौर जीले में वर्धमान नानकाना नामक स्थान में हुआ था। इनके पिता का नाम कालू तथा माता का नाम त्रिप्ता। ३० वर्ष की आयु में इन्होंने घर का परित्याग कर तीर्थ स्थानों का भ्रमण आरम्भ किया। हिन्दू धर्म की बुराइयों पर प्रकाश डाला तथा एकेश्वरवाद का प्रचार

किया। इन्होंने परमात्मा का नाम सतगुरू रक्खा। १५३८ में आपका स्वर्गवास हो गया। इनके धार्मिक विचार सिक्ख धर्म के जन्मदायक सिद्ध हुए।

गुरू अंगद (१५३८-५२):—पहले का नाम लहिना था और वह खत्री कुल में पैदा हुआ था। इसने गुरुमुखी लिपि चलाई व सिक्ख धर्म का जोरों से प्रसार किया। गुरू नानक के भजनों का संग्रह किया और १५५२ में वह इस दुनियां से चल बसा।

गुरू अमरदास (१५५२-७४):—गुरू अमरदास गुरू अंगद से ही गुरू घोषित कर दिये गये थे। उन्होंने जाटों में सिक्ख धर्म का प्रचार बहुत अधिक मात्रा में किया। इसके अलावा इन्होंने गुरू के प्रतिनिधियों की गद्दियां बांट दीं। प्रत्येक गद्दी एक धर्म प्रचारक सिक्ख के आधीन रही। उन्होंने सति प्रथा को भी रोकने का प्रयास किया। परन्तु सिक्खों में और हिन्दुओं में विभिन्नता उत्पन्न हो गई। १५७४ में उसका देहान्त हो गया।

गुरू रामदास (१५७४-८१):—गुरू रामदास गुरू अमरदास का दामाद था। अकबर के इनके सम्बन्ध अच्छे रहे। अकबर ने उसको बहुत जमीन दी, वहां उन्होंने एक गुरूद्वारा व एक तालाब बनाया, सिक्खों का स्वर्ण मन्दिर इसी तालाब पर बना हुआ है।

गुरू अर्जुन (१५८१-१६०६):—गुरू अर्जुन ने अपने गुरू के उपरान्त सिक्खों की आर्थिक दशा को सुधारने का प्रयास किया। इसके लिए धर्म का (Religion Tax) चलाया, उसके अलावा अन्य गुरूओं के धार्मिक उपदेशों व भजनों का संग्रह किया। परन्तु बागी खुसरो को आशीर्वाद देने के कारण जहांगीर ने इनको मरवा दिया।

गुरू हरगोविन्द (१६०६-४५):—यह गुरू अर्जुन का पुत्र था। मुगलों के प्रति इसे आरम्भ से ही घृणा थी। उसने बादशाह का पद धारण किया और सिक्खों को सुदृढ़ सैनिक बनने की सलाह दी। आरम्भ में मुगल सम्राट जहांगीर इनसे बड़ा प्रसन्न था। परन्तु बाद में किसी कारणवश जहांगीर से अनबन हो गई इसके परिणाम स्वरूप गुरू को १२ वर्ष ग्वालियर के किले में बन्दी के रूप में रहना पड़ा। १६४५ में वे दुनियां से चल बसे।

गुरू हरिराय (१६४५-६१):—गुरू हरिराय शान्त प्रकृति के गुरू थे। इन्होंने धर्म का प्रचार पूरी लग्न से किया। इन्होंने कीरतपुर में रहना आरम्भ कर दिया। दारा को आशीर्वाद देने के कारण औरंगजेब नाराज हो गया व उनको दरबार में आने का आदेश दिया। दरबार में स्वयं नहीं गये और अपने जेष्ठ पुत्र को भेज दिया।

गुरू हरिकृष्ण (१६६१-६४) :—यह हरिराय का छोटा पुत्र था। गुरु बनने के समय अवस्था ५ वर्ष की थी और ३ वर्ष बाद ही चेचक के प्रकोप से उनकी मृत्यु हो गई।

गुरू तेगबहादुर (१६६४-७५) :—गुरू तेगबहादुर को गुरू हरिकृष्ण अपने जीवन काल में ही गुरू बना गये थे। यह मुसलमानों के विरोधी थे, जब औरंगजेब ने हिन्दुओं को बलात मुसलमान बनाना आरम्भ किया तो तेगबहादुर ने घोर विरोध किया। इस पर कुपित औरंगजेब ने अपने दरबार में उन्हें बुलाया और उनका सर धड़ से अलग कर दिया गया।

गुरू गोविन्दसिंह (१६७५-१७०८) :—दिल्ली जाने से पूर्व गुरू तेग-बहादुर गोविन्दसिंह को गुरु बना गये थे। यह सिक्खों के अन्तिम गुरु थे। पिता की मृत्यु का बदला लेने के लिए इनका खून खौल रहा था। इन्होंने सिक्खों का खालसा रूप देकर वीर सैनिकों में परिणित कर दिया। औरंगजेब का इन्होंने खुल्लम खुल्ला विरोध करना शुरू कर दिया। सरहिन्द की लड़ाई में परास्त हो जाने पर भी यह निराश न हुए। १७०६ में औरंगजेब ने इन्हें बुलाया। परन्तु जब यह मिलने गये तो मार्ग में पता चला कि औरंगजेब का जनाजा निकल चुका है। सन् १७०८ में इनका देहान्त हो गया।

बन्दा बैरागी (१७०८-१६) :—गुरु गोविन्दसिंह की मृत्यु के बाद सिक्खों नेतृत्व बन्दा बैरागी ने सम्भाला। यह बड़ा वीर योद्धा था। उसने सरहिन्द के फौजदार को मारकर अपना अधिकार कर लिया। औरंगजेब के पुत्र बहादुरशाह ने उसका दमन करना चाहा परन्तु वह अस्थाई रूप से हुआ। बहादुरशाह की मृत्यु के बाद उसने फिर सर उठाया, परन्तु १७१६ में उसका निर्दयता से फर्रुखशीयर के द्वारा वध करा दिया गया।

सिक्ख धर्म का महत्व :— सिक्ख धम के अनुयायी बहुधा रिष्ट पुष्ट व शक्ति-शाली होते हैं। हिन्दू धर्म की रक्षा में इन्होंने महान् सहयोग दिया है। अतः आशा है कि सिक्ख भाई भारत की एकता को कायम रखते हुए इसकी सुरक्षा में उसी प्रकार से सहयोग देते रहेंगे।

प्रश्न

१. सिक्ख धर्म का संस्थापक कौन था? इसके जीवन और शिक्षा का वर्णन कीजिए।

Who founded Sikhism? Give an account of his life and teachings.

२. सिक्ख लड़ाकू कैसे बने ? इस घटना का मुगल साम्राज्य पर क्या प्रभाव पड़ा ?

How dia these Sikhs become a martial race ? What effect it had on Mughal Empire.

३. सिक्खों उन्नति का संक्षिप्त वर्णन करो और इस सम्बन्ध में गुरु नानक देव और गुरु गोविन्दसिंह के काम का विशेषतया वर्णन करो।

Give an account of the rise of the Sikh's with a special reference to the work of Guru Nanak and Guru Govind Singh.

४. "बन्दा न तो एक राक्षस था और न एक निर्दयी खून चूसने वाला। बल्कि एक योग्य एवं वीर नेता था जिसने सिक्खों का स्वतन्त्रता संघर्ष के लिए नेतृत्व किया।

"Banda was neither a monster nor a ruthless blood sucker but an able and enterprising leader who led the shiks in the struggle for Independence." Discuss.

*

अध्याय दसवां

मराठों का उत्कर्ष

प्रस्तावना—शिवाजी का जन्म व बाल्यकाल—शिवाजी व बीजापुर का सुल्तान, शिवाजी व मुगल, पुरन्दर की सन्धि, आगरे में बन्दी होना—बन्दी गृह से भगना—शिवाजी का राज्याभिषेक—उनका शासन प्रबन्ध—अन्तिम दिन व मृत्यु—इतिहास में शिवाजी का स्थान–शम्भाजी—गद्दी पर बैठना—राजाराम व मुगल—राजाराम की मृत्यु—ताराबाई।

प्रस्तावना:—सत्रहवीं शताब्दी में मुगलों के विरुद्ध जितनी शक्तियों का उदय हुआ उनमें मराठा सर्वाधिक शक्तिशाली सिद्ध हुए। मराठा शक्ति का उदय कोई आकस्मिक घटना नहीं थी। इस शक्ति ने धीरे धीरे प्रगति की थी और इसकी प्रगति में कई तत्वों से सहायता मिली थी। सर्व प्रथम प्रकृति ने मराठा जाति को वीर जाति बनाने में सहायता दी। मराठों का प्रदेश महाराष्ट्र चारों ओर उन्नत पर्वतों से घिरा हुआ था। इस कारण इन पहाड़ों ने उनकी सुरक्षा के लिए प्राकृतिक दुर्गों का काम दिया। इसके अतिरिक्त यह भू भाग बंजर है। यहां अन्न बड़ी कठिनाई से उपजता है। इससे यहां के लोग गरीब व सादा जीवन व्यतीत करने वाले होने के साथ बहुत ही परिश्रमी एवं बहादुर होते हैं। परन्तु मराठों के इस राजनीतिक विकास को सन्तों द्वारा प्रतिपादित धर्म-सुधार आन्दोलन से बहुत सहयोग मिला। किन्तु ये शक्तिशाली मराठे अभी परमाणु के कणों की भांति इधर उधर बिखरे पड़े थे और वीर शिवाजी ने इन कणों को संग्रहित कर उसे एक महान् परमाणु शास्त्र का रूप दे दिया जिसके विस्फोट में मुगल सम्राट औरंगजेब व उसके उत्तराधिकारी विनाश को प्राप्त हो गये।

शिवाजी का जन्म व बाल्यकाल—इस असंगठित मराठा जाति के सुदृढ़ कर्त्ता वीर शिवाजी का जन्म १० अप्रेल १६२७ ई० में जीजाबाई से हुआ था। शिवाजी के पिता का नाम शाहजी भौंसला था। शिवाजी के जन्म के कुछ दिन उपरान्त ही शाहजी जीजाबाई को नवजात शिशु के साथ पूना छोड़कर स्वयं अपनी नवविवाहिता वधू को लेकर बीजापुर के सुल्तान के आश्रय में चले गये थे। पति के वियोग से खिन्न जीजाबाई ने अपना सारा समय पुत्र के सहवास में व्यतीत करना आरम्भ किया। माता अपने पुत्र को रामायण व महाभारत के किस्से कहानी सुनाया करती थी। इस कारण शिवाजी के हृदय में बचपन से ही हिन्दू-धर्म के प्रति अपार श्रद्धा उत्पन्न होने लग गई थी। इतिहासकार रानाडे का कथन

है कि यदि कभी महान पुरुष अपनी महानता का श्रेय अपनी माता को देते हैं तो जीजाबाई शिवाजी के जीवन निर्माण में प्रमुख शक्ति थी। शिवाजी के शिक्षक श्री कोणदेव थे। इनका भी शिवाजी के चरित्र निर्माण में बड़ा हाथ था। शिवाजी का मन पुस्तकीय ज्ञान प्राप्त करने में नहीं लगता था। वे तो आरम्भ से घुड़ सवारी करना, तलवार चलना, व शिकार खेलना आदि में आनन्द लेते थे। इस प्रकार से शिवाजी का जीवन शीघ्र ही एक वीर सैनिक के जीवन में परिवर्तित हो गया।

शिवाजी और बीजापुर का सुल्तान—शिवाजी के हृदय में हिन्दू साम्राज्य स्थापित करने की भावना थी। उनका पड़ौसी सुल्तान मुहम्मद आदिलशाह था। १६४६ ई० में बीजापुर के सुल्तान इस आदिलशाह के बीमार पड़ते ही शिवाजी ने मवालियों की सहायता से तोरण, रायगढ़, सिंहगढ़ तथा पुरन्धर आदि किलों पर अधिकार कर लिया।

शिवाजी और अफ़जलखां—१६५६ ई० में बीजापुर का मरीज सुल्तान इस लोक से चल बसा और उधर औरंगजेब अपने पिता की गद्दी पर अधिार करने की नियत से उत्तर की ओर रवाना हो गया। शिवाजी को पड़ौसी बीजापुर के किलों पर धावा बोलने का अच्छा अवसर मिल गया। परन्तु उधर औरंगजेब के उत्तर में चले जाने से बीजापुर के सुल्तान को भी शिवाजी की बढ़ती शक्ति को खतम करने का अच्छा अवसर मिला। बीजापुर का सुल्तान इस समय अली आदिलशाह था। वह नाबालिग था। अतः राज्य का सारा कार्य राजमाता "बड़ी साहिबा" करती थी। उसने अफजलखां को शिवाजी से संघर्ष करने भेजा। सितम्बर १६५६ ई० को वह १२००० सैनिकों के साथ बीजापुर से रवाना हुआ। शिवाजी ने प्रतापगढ़ के किले के समीप अपनी रक्षा की तैयारी की। अफजलखां शिवाजी को युद्ध में परास्त करना कठिन समझता था। इसलिए उसने कृष्णाजी भास्कर नामक मराठा ब्राह्मण को शिवाजी के पास मुलाकात करने का संदेश लेकर भेजा। प्रतापगढ़ के दुर्ग के नीचे एक मिलने का स्थान तैयार किया गया। जब मुलाकात के समय अफजलखां ने शिवाजी को गले लगाकर उसे मारने का प्रयास किया तो वीर मराठा नेता ने उसका काम समाप्त कर दिया। कफीखां शिवाजी को इस अपराध को दोषी ठहराता हुआ उन्हें धोखेबाज कहता है। परन्तु वास्तव में बात यह नहीं थी। पहला प्रहार अफजलखां ने किया था। अतः शिवाजी ने तो अपनी सुरक्षा के लिए ऐसा किया था।

शिवाजी और मुगल—जब तक शिवाजी बीजापुर के सुल्तान से संघर्ष करते रहे, उन्होंने मुगल सम्राट औरंगजेब के साथ में अच्छे सम्बन्ध रखे। परन्तु जब अफजलखां जैसा वीर सेनापति शिवाजी से परास्त हो गया तो औरंगजेब

की चिन्ता बढ़ने लगी और वह मराठाओं को दबाने का प्रयास करने लगा।

शिवाजी और शाइस्तखां—१६५६ ई० में औरंगजेब ने अपने मामा शाइस्तखां को दक्षिण का सूबेदार नियुक्त किया। सूबेदार बनते ही उसने शिवाजी का दमन करने का प्रयास किया। जब शाइस्त खां पूना में शिवाजी के महल में ठहरा हुआ था तो १५ अप्रेल १६६३ की रात्रि को शिवाजी ने उस पर धावा बोल दिया। रमजान का महीना था। शाइस्त खां अपने परिवार व अन्य साथियों के साथ घोर निद्रा में सोया था। अत: मुगल सैनिक शिवाजी के आकस्मिक आक्रमण का सामना न कर सके। शाइस्त खां बड़ी कठिनाई से प्राण बचाकर भागा। परन्तु खिड़की में से कूदते समय वह अपने हाथ की दो अंगुलियां कटवा गया और शाइस्त खां का पुत्र शिवाजी का शिकार बन गया। इस विजय से शिवाजी की कीर्ति और फैल गई तथा औरंगजेब की चिंता और भी बढ़ गई।

शिवाजी और जयसिंह—शाइस्त खां को परास्त कर १६६४ ई० में सूरत को लूटकर शिवाजी ने अपार धन राशि प्राप्त कर ली थी। इस आक्रमण से अंग्रेज व पुर्तगाल वाले भी घबरा गये थे। इधर शिवाजी की उत्तरोत्तर बढ़ती हुई शक्ति से हिन्दुओं का दुश्मन औरंगजेब भी अधिकाधिक भयभीत होता जा रहा था। शाइस्त खां के असफल होने पर उसने जयपुर नरेश जयसिंह को शिवाजी का दमन करने दक्षिण भेजा। जयसिंह एक बहुत ही चतुर सेना नायक व राजनीतिज्ञ था। वह शिवाजी के दमन के लिये बहुत ही सावधानी से आगे बढ़ा। सर्व प्रथम उसने बीजापुर के सुल्तान, जंजीरा के सिद्दी लोग तथा अंग्रेजों से शिवाजी के विरुद्ध सहायता लेने का प्रयास किया। शिवाजी के आदमियों को भी अपनी ओर मिलाने का प्रयास जयसिंह द्वारा किया गया। इसके अतिरिक्त उसने सबसे बड़ी बात यह की कि अपना सम्बन्ध राजधानी से विच्छेद नहीं होने दिया। वह ज्यों ही आगे बढ़ता था, पीछे अपने सैनिक छोड़ जाता था। उसने शिवाजी को इस प्रकार चारों ओर से घेरा कि शिवाजी को जयसिंह के साथ पुरन्दर की सन्धि करनी पड़ी।

पुरन्दर की सन्धि—पुरन्दर की सन्धि जून १६६५ में शिवाजी और जयसिंह के बीच हुई। इस सन्धि के अनुसार शिवाजी ने २२ किले अपने पास रखे और २३ मुगल सम्राट को देने पड़े। शिवाजी ने मुगल सम्राट को बीजापुर के सुल्तान के विरुद्ध सैनिक सहायता देने का वायदा किया और मुगल सम्राट की ओर से शिवाजी को बीजापुर के कुछ भाग में चौथ वसूल करने का अधिकार दिया गया।

आगरे में बन्दी होना—जयसिंह एक अनुभवी सेनापति होने के साथ

साथ एक बुद्धिमान तथा कूटनीतिज्ञ भी था। उसने शिवाजी को विश्वास दिलाया कि यदि वह मुगल दरबार में अपने को उपस्थित कर देगा तो मुगल सम्राट औरंगजेब उसकी बड़ी इज्जत करेगा। उसकी सुरक्षा का उत्तरदायित्व जयसिंह ने अपने ऊपर लेने का विश्वास दिलाया। शिवाजी जयसिंह के आश्वासन पर आगरे के लिये रवाना हुऐ। मई सन् १६६६ में वे अपने को अपने पुत्र संभाजी के साथ मुगल दरबार में प्रस्तुत हुए। परन्तु मुगल सम्राट द्वारा अपना यथोचित आदर न होने पर वे मुगल सम्राट पर बिगड़ गये। इस पर औरंगजेब ने उनको बन्दी बनाने का आदेश दे दिया।

बन्दी गृह से भगना—शिवाजी वास्तव में बहुत ही चतुर राजनीतिज्ञ एवं वीर सेनानायक थे। उन्होंने जेल से निकलने के लिये पहिले बीमार होने का बहाना किया। कुछ दिनों बाद उन्होंने अच्छा होने की घोषणा की और अपने अच्छे होने की खुशी में उन्होंने मिठाइयों की टोकरियां भेजना आरम्भ किया। एक दिन वे और उनका पुत्र संभाजी दोनों मिठाइयों की टोकरियों में बैठ कर बन्दी जीवन से मुक्त हो गये।

शिवाजी का राज्याभिषेक—आगरे की जेल से मुक्त होने पर साधुओं के भेष में घूमते घामते दिसम्बर १६६७ में वे महाराष्ट्र पहुँचे। इस समय औरंगजेब उत्तरी पश्चिमी सीमाप्रान्त के युद्धों में लगा हुआ था। अतः उसने शिवाजी के साथ लड़ाई मोल न लेकर उसे संतुष्ट करना चाहा। परन्तु वीर शिवाजी मुगलों के बहकाये में आने वाला नहीं थे। उसने महाराष्ट्र पहुँचते ही अपने पुराने किलों को जीतना आरम्भ कर दिया।

राज्य के विस्तीर्ण हो जाने व १६७४ में मुगल सेनापति दिलेर से विजय प्राप्त करने पर उन्होंने अपना राज्याभिषेक करना चाहा। क्योंकि अभी तक उन्हें कोई भी राजा नहीं मानता था। इसी कारण १६७४ में रायगढ़ के किले में उनका यथाविधि राज्याभिषेक हुआ। राज्याभिषेक के उपरान्त शिवाजी ने खानदेश व कर्नाटक का बहुत सा भाग जीत लिया। हिन्दू विधि से शासन करते हुऐ १६८० में शिवाजी परलोक सिधारे।

शिवाजी का शासन-प्रबन्ध

शिवाजी का शासन-प्रबन्ध मौलिक नहीं था। उन्होंने प्राचीन वैदिक कालीन तथा मुगलकालीन शासन प्रबन्ध को अपनाया था। उन्होंने विभागों का विभाजन तथा मंत्रियों का नामकरण हिन्दू रीति पर किया। परन्तु शासन का ढांचा मुगल शासन के आधार पर किया। यह सब होते हुए भी उनकी शासन प्रणाली से यह अवश्य ज्ञात होता है कि उनमें शासन तथा संगठन की अपूर्व प्रतिभा थी।

केन्द्रीय शासन :—शिवाजी ने आठ मंत्रियों का एक मंत्री मण्डल बनाया जिसे 'अष्ट प्रधान' कहते थे। इस 'अष्ट प्रधान' के मंत्रियों का नाम इस प्रकार से हैं:—

१. पेशवा (प्रधान मंत्री)—यह राज्य के सभी विभागों को देखता था।
२. आमात्य—यह राज्य की आय तथा व्यय को देखता था।
३. मंत्री—राज-कार्यों तथा दरबार के कार्यों को लिपिबद्ध करता था।
४. सुमन्त अथवा परराष्ट्र मंत्री—यह शिवाजी को विदेशी कार्यों में सलाह देता था।
५. सचिव—यह राज्य सम्बन्धी पत्र व्यवहार करता था।
६. पण्डितराव—इसका कार्य विद्वानों को दान देना तथा धार्मिक झगड़ों को तय करना होता था।
७. न्यायाधीश—यह न्याय करता था।
८. सेनापति—यह राज्य की सेनाओं का मुखिया होता था।

यद्यपि यह आठ मंत्रियों की परिषद् वैदिककालीन मंत्री परिषद् की तरह थी। परन्तु शिवाजी मुगल शासकों की भांति निरकुंश था। इन मंत्रियों का कार्य केवल शिवाजी को सलाह देना था। शासन सम्बन्धी निर्णय अन्तिम रूप से देना शिवाजी पर ही निर्भर रहता था।

प्रान्तीय शासन :—जब शिवाजी का शासन बहुत बढ़ गया तब उन्होंने अपने राज्य को तीन प्रान्तों में बांट दिया। प्रान्तों का अध्यक्ष सूबेदार कहलाता था। सूबेदार की नियुक्ति स्वयं शिवाजी करते थे। उनको रखना और हटाना उनकी इच्छा पर निर्भर करता था। प्रान्त की शान्ति और सुरक्षा का भार वहां के सूबेदार पर होता था।

सैनिक संगठन :—शिवाजी एक योग्य सेनानायक थे। उसने एक साधारण कुल में जन्म लेकर इतने महान् पद को प्राप्त किया, यह उसके सेना के सहयोग का ही प्रतिफल था। अतः शिवाजी का ध्यान सैनिक संगठन की ओर विशेष रूप से रहा। अब तक मराठा सैनिक वर्ष में ६ मास सेना में कार्य करते थे तथा शेष ६ महिने खेतों पर कार्य करते थे। परन्तु शिवाजी ने एक स्थायी सेना रखना प्रारम्भ किया। सैनिकों को वेतन नकद मिलता था और सैनिकों को कठोर अनुशासन में रहना पड़ता था। उनकी स्थायी सेना में ४० हजार अश्वारोही तथा एक लाख पैदल सैनिक थे। पहाड़ी दुर्गों ने भी शिवाजी के सैनिक संगठन में काफी सहायता दी। सैनिकों में हिन्दू और मुसलमान दोनों होते थे।

न्याय व्यवस्था :—शिवाजी के समय की न्याय व्यवस्था आज की सी नहीं

थी। वह प्राचीन काल पर अवलम्बित थी। न तो आजकल की सी अदालतें शिवाजी की समय में थी और न आजकल के से लिखित कानून। गांवों के झगड़े पंचों के द्वारा तय होते थे। झगड़ों का निर्णय हिन्दू रीति पर होता था। अपील शिवाजी के पास जाती थी। ब्राह्मण न्यायाधीशों के पास फौजदारी, दीवानी अभियोग निर्णय के लिए जाते थे।

लगान व्यवस्था :— शिवाजी ने भूमि सम्बन्धी सुधार किये। उन्होंने भूमि की नाप कराई तथा उपज का ३०% लगान रूप में निश्चित किया। लगान वसूली की सुविधा की दृष्टि से उसने राज्य को प्रान्तों तथा मौजों में विभाजित कर दिया। उन्होंने किसानों की अवस्था सुधारने के दृष्टिकोण से जागीरदारी और जमींदारी को हटा दिया। उन्होंने किसानों की कठिनाइयों को हटाने का प्रयास किया। किसानों को आर्थिक सहायता व अच्छे किस्म के बीज देना आरम्भ किया। युद्ध के समय भी किसानों को किसी प्रकार का नुकसान नहीं पहुँचाया जाता था।

शिवाजी के अन्तिम दिन व मृत्यु :— शिवाजी के अन्तिम दिन सुखद नहीं रहे। प्रथम तो वे निरन्तर संघर्ष से थक गये थे। द्वितीय उनका पुत्र शम्भाजी योग्य नहीं था, यह उनके जीवन काल में ही मुगलों से जाकर मिल गया था। शिवाजी ने उसे ठीक रास्ते पर लाने का बहुत प्रयास किया। तीसरे औरंगजेब ने उनका पीछा नहीं छोड़ा था। अत: निरन्तर संघर्ष से शिवाजी २३ मार्च सन् १६८० में ज्वर से बीमार पड़े और ५ अप्रेल सन् १६८० को वे इस लोक में विकसित कीर्ति कुमुद को छोड़ परलोक सिधार गये।

शिवाजी का इतिहास में स्थान :— शिवाजी का इतिहास में स्थान दो प्रकार की धारणाओं पर निश्चत किया जाता है। मुसलमान तो शिवाजी को डाकू, दगेबाज बतलाते हैं। कफीखां शिवाजी के लिए लिखता है—**"वह धोखे का जनक तथा शैतान का प्रखर पुत्र था।"** कुछ पाश्चात्य इतिहासकारों ने भी उसका समर्थन किया है। परन्तु कफी खां ने ही शिवाजी की प्रशंसा करते हुए लिखा है—**"अपने राज्य में लोगों के मान सम्मान की रक्षा का शिवाजी ने सदैव प्रयास किया, उसने विद्रोह किया, कारवाँ को लूटा और लोगों को परेशान किया, परन्तु अन्य घृणित कार्यों से उन्होंने अपने को अलग रक्खा, जब कभी मुसलमान स्त्रियां तथा बच्चे उसके हाथ लग जाते थे, वह उनकी इज्जत का ध्यान रखता था।"** सूरत को शिवाजी ने तीन बार लूटा परन्तु वहां के निवासियों को परेशान नहीं किया। इसीलिए सूरत के तत्कालीन व्यापारियों ने लिखा है- **"शिवाजी उत्तम से उत्तम मित्र, भद्र शत्रु तथा अधिक से अधिक कुशल राजा है।"** यद्यपि शिवाजी

ने हिन्दूओं की रक्षा की और हिन्दू उसे अपना धर्म रक्षक मानते हैं तथापि उसने मुसलमानों को केवल धर्म के आधार पर तंग नहीं किया। उनका लक्ष्य भारत में हिन्दू धर्म तथा संस्कृति की रक्षा करना था और उसके लिए उन्होंने अपने जीवन में संघर्ष भी किया और इसमें उन्हें सफलता भी प्राप्त हुई। वह वास्तव में उस समय के हिन्दू समाज के नेता थे। इसी कारण यदुनाथ सरकार ने लिखा है- **"शिवाजी रचनात्मक प्रतिभा रखने वाला अन्तिम हिन्दू था। शिवाजी ने मराठों के समक्ष जो आदर्श रक्खा था, यदि शिवाजी के बाद भी उस पर आचरण किया जाता तो मराठों का इतिहास ही कुछ और होता।"**

शिवाजी एक कुशल सेनानायक तथा चतुर कूटनीतिज्ञ थे। अफ़जल खां को मौत के घाट उतारना तथा शाइस्त खाँ को परास्त करना उनकी कूटनीतिज्ञता का परिणाम है। अल्पीनस्टव ने लिखा है- **"शिवाजी एक शक्तिशाली प्रधान का पुत्र था, उसने लुटरे तथा साहसी एवम् कुशल कप्तान के रूप में आरम्भ किया था। परन्तु आगे चलकर वह कुशल सेनापति तथा युवक राजनीतिज्ञ बन गया तथा ऐसा चरित्र छोड़ गया जिसकी समानता अथवा जिसके निकट तक उसके देश का कोई व्यक्ति न पहुंच सका।"**

शिवाजी न केवल वीर योद्धा एवं नीति-पटु थे बल्कि शासन योग्यता उनमें अपार थी। भूमि लगान का प्रबन्ध, कृषि उन्नति एवं किसानों की भलाई के कार्य, प्रजा पालन और रक्षा तथा सैनिक सगठन आदि ऐसे कार्य किये हैं जो शिवाजी को सर्वोच्च शासकों की श्रेणी में रख देते हैं।

शिवाजी के उत्तराधिकारी

शंभाजी (१६८०-१६८६)

शंभाजी का राजगद्दी पर बैठना :—शिवाजी के दो पुत्र थे। बड़ा पुत्र शंभाजी विलासी एवं दुश्चरित्र प्रकृति का था। मुगलों से मिल जाने के कारण उसको सुमार्ग पर लाने के दृष्टिकोण से शिवाजी ने इसे पन्हार के दुर्ग में बन्दी बना लिया था। परन्तु शिवाजी की मृत्यु पर जब शंभाजी के दस वर्षीय कनिष्ठ भ्राता राजा राम को गद्दी पर बिठाने का प्रयास किया जाने लगा तो शंभाजी किले से मुक्त हो गये। उसने रायगढ़ पर धावा बोला और राजाराम को उसकी माता सोयराबाई के साथ बन्दी बना लिया। राजाराम के अन्य समर्थकों के साथ उसने बड़ी निष्ठुरता का व्यवहार किया। इस प्रकार से उसने अपना मार्ग निष्कटंक बना २० जुलाई १६८० को अपने को राजा घोषित कर दिया।

उसका शासन—शंभाजी अपने पिता की तरह वीर तथा साहसी अवश्य था परन्तु राजकार्यों में उसकी रुचि न थी। उसने कविकलश नामक एक ब्राह्मण को अपना मन्त्री नियुक्त किया था। कवि कलश एक प्रकांड पण्डित अवश्य था परन्तु उसका चरित्र अच्छा न था। इसी कारण शंभाजी का चरित्र दिन पर दिन दूषित बन गया। वह सुरा और सुन्दरी के अधिकाधिक दास बनता चला गया। इस कारण शासन प्रबन्ध दिन पर दिन शोचनीय होता चला गया।

शंभाजी और मुगल—शंभाजी के राज्याभिषेक के समय औरंगजेब गोल. कुण्डा और बीजापुर में संघर्ष कर रहा था। इस कारण वह मराठों की ओर ध्यान न दे सका। परन्तु जब उसका पुत्र अकबर खां राठौर वीर दुर्गादास की शरण से शंभाजी के आश्रय में आ गया तो वह शंभाजी पर बिगड़ गया। उसने शंभाजी के राज्य पर आक्रमण कर दिया। इस आक्रमण का परिणाम यह हुआ कि अकबर तो ईरान भग गया और शंभाजी अपने मन्त्री कविकलश सहित मुकारब खाँ द्वारा संगमेश्वर पर बन्दी बनाया गया। औरंगजेब ने राजा शंभाजी तथा उसके मन्त्री कविकलश का मार्च १६८६ में बड़ी निर्दयता एवं निर्ममता से वध करा दिया।

राजाराम (१५८६-१७००)

अपने ज्येष्ठ भ्राता शंभाजी के वध के पश्चात् वह मार्च सन् १६८६ में महाराष्ट्र का राजा बना। परन्तु उसमें शासकीय गुणों का सर्वथा अभाव था। पिता की मृत्यु के समय उसकी अवस्था १० वर्ष थी। तदुपरान्त वह अपने ज्येष्ठ भ्राता द्वारा बन्दी बना लिया गया। इस कारण वह न तो पुस्तकीय शिक्षा ही पा सका और न रण-विद्या ही सीख सका। परन्तु रामचन्द्र पन्त और प्रहलादजी मीराजी जैसे योग्य सलाहकार उसे प्राप्त हो गये थे। इनके अलावा शान्ताजी तथा धन्नाजी जैसे योग्य सेनापति उसकी सेवा में विद्यमान थे। इन्हीं की सहायता से वह मुगलों का सामना कर सका।

राजाराम व मुगल—औरंगजेब मराठाओं की शक्ति की सम्पूर्णतया समाप्त करने पर तुला हुआ था। अतः राजा राम को छत्रपति बनते ही उसने जुल्फिकारखां को रायगढ़ घेरने के लिये भेज दिया। इस घेरे से मराठा घबरा तो अवश्य गये थे परन्तु निराशा नहीं हुऐ। उन्होंने अपने स्वामी राजाराम को जिंजी के किले में जाने की सलाह दी। मराठाओं ने छापा मार नीति को अपनाकर मुगल सेनापति को तंग करना आरम्भ किया। परन्तु नवम्बर १६८६ में रायगढ़ का दुर्ग मुगलों के अधिकार में आ गया। इस किले के पतन के परिणाम स्वरूप शंभाजी की स्त्री पेसूबाई तथा उसका अल्पव्यस्क पुत्र साहू बन्दी बना लिया गया।

अब मुगल मराठाओं का युद्ध एक स्थान पर सीमित न रहकर फैल गया। मराठा सेनापति मुगल सेना पर हर कहीं हमले करने लगे। हांलाकि इससे मराठाओं की शक्ति अस्त व्यस्त हो गई, किन्तु राणाड़े के मतानुसार साधनहीन मराठाओं के ये जत्थे महाराष्ट्र की रक्षा में समर्थ हुए।

राजाराम की मृत्यु—मराठों का राष्ट्रीय स्वतंत्रता संग्राम जोरों से चल रहा था और राजा राम जिंजी के किले में था। औरंगजेब ने जनवरी १६६८ में जिंजी के किले पर अधिकार कर लिया। इस युद्ध में धन्नाजी व सन्ताजी गोरपदे ने अपूर्व वीरता दिखाई। श्री यदुनाथ सरकार उसकी प्रशंसा में लिखते हैं, "जब शंभाजी के रक्त के लाल बादल के पीछे मराठा राज्यशक्ति का सूर्य डूब गया और जब लोक युद्ध प्रारम्भ हुआ, उस समय उस नीले दीर्घकालीन युद्ध के युग में दक्षिण आकाश में सन्ताजी गोरपदे तथा धन्नाजी जाधव दो तारे थे जिनका तेज चकाचौंध करने वाला था और जिन्होंने आक्रमण। कारी शक्ति को निर्जीव कर दिया था।" राजाराम बचकर सतारा के दुर्ग में चला गया था। मार्च १७०० में दुर्भाग्यवश राजा राम भी इस दुनियां से कूंच कर गया।

तारा बाई (१७००-१७०७)

जब राजा राम की मृत्यु हुई उसका पुत्र शिवाजी द्वितीय छत्रपति बना। परन्तु वह अल्पव्यस्क था। इसलिये उसकी माता ताराबाई उसकी संरक्षिका बनी और उसके नेतृत्व में राज्य कार्य का संचालन होने लगा। ताराबाई एक वीर एवं योग्य स्त्री थी। उसने अपने दायित्व को पूर्णरूपेण निभाया। उसने मराठों को मुगलों से निरंतर संघर्ष करने के लिये प्रोत्साहित किया। औरंगजेब व उसके साम्राज्य दोनों की दशा दिन पर दिन दयनीय होती जा रही थी। परन्तु फिर भी सन् १७०० से १७०४ तक सतारा, पन्हाला, खेलना तथा रायगढ़ आदि किलों पर उसने अधिकार कर लिया था। १७०६ में वह बीमार पड़ा और ६० वर्ष की आयु में मार्च १७०७ को इस दुनियां से सदैव के लिये कूंच कर गया। औरंगजेब की मृत्यु पर उसके पुत्र बहादुरशाह ने शंभाजी के पुत्र साहू को मराठों में फूट डालने की दृष्टि से मुक्त कर दिया और वह १७०८ में महाराष्ट्र का मालिक बन गया।

अध्याय सार

प्रस्तावना:—औरंगजेब तथा उसके साम्राज्य को नष्ट करने में मराठा शक्ति का प्रमुख हाथ रहा है। मराठा शक्ति को शक्तिशाली बनाने में वहां की भौगोलिक परिस्थिति तथा सन्तों के धर्म सुधार आन्दोलन ने तो काफी सहयोग दिया ही, परन्तु वीर असंगठित मराठाओं को संगठित करने वाला वीर शिवाजी था।

वीर शिवाजी उनका प्रारम्भिक जीवन :—शिवाजी का जन्म १० अप्रेल १६२७ को हुआ उनकी माता का नाम जीजाबाई तथा पिता का नाम शाहजी भोंसले था। शिवाजी के जन्म लेते ही शाहजी जीजाबाई को पूना छोडकर बीजापुर के सुल्तान के आसरे में चले गये। माता ने पुत्र को धार्मिक विचारों का बना दिया। दादा कोणदेव ने शिवाजी को शिक्षा दी।

शिवाजी और बोजापुर का सुल्तान :—शिवाजी बचपन से ही मुसलमानों के विरोधी थे। ज्यो ही वे बडे हुए उन्होंने अपना संगठन बनाया और बीजापुर के किलों पर आक्रमण करना शुरू कर दिया। १६४६ में ज्यों ही बीजापुर का सुल्तान मोहम्मद आदिलशाह बीमार पड़ा, तो शिवाजी ने तोरण, रायगढ़, सिंहगढ़ तथा पुरन्दर के किलों पर अधिकार कर लिया। १६५६ में बीजापुर के अल्पव्यस्क सुल्तान अली आदिलशाह ने अपनी माता बडी साहिबा की सलाह से अफ़जलखां के नेतृत्व में विशाल सेना भेजी। अफजलखां शिवाजी की शक्ति से परिचित था। अतः उसने शिवाजी से मिलना श्रेयःकर समझा। प्रतापगढ़ किले के नीचे मुलाकात हुई और मुलाकात में पहले तलवार का वार अफजलखां द्वारा करने पर शिवाजी ने उसे यमलोक पहुंचा दिया।

शिवाजी और मुगल :—शिवाजी की बढ़ती ताकत को देख औरंगजेब चिंतित हुआ और उसने १६५६ में अपने मामा शाइस्तखां को दक्षिण का सूबेदार नियुक्त किया। १६६३ में जब शाइस्त खां शिवाजी का दमन करने गयातो १५ अप्रेल की रात्रि को शिवाजी ने उसके पुत्र का काम समाप्त कर शाइस्तखां को भगा दिया। शाइस्तखां की पराजय के पश्चात औरंगजेब ने जयपुर नरेश जयसिंहजी को शिवाजी का दमन करने भेजा। जयसिंहजी बड़े धूर्त राजनीतिज्ञ थे। उन्होंने शिवाजी को १६६५में पुरन्दर की संधि करने को बाध्य कर दिया।

जयसिंह के समझाने पर शिवाजी अपने पुत्र शंभाजी के साथ आगरे गये। वहां वे बन्दी बना लिये गये। युक्ति से बन्दीखाने से मुक्त हो गये और १६६७ में दक्षिण पहुँच गये।

शिवाजी का राज्याभिषेक :—दक्षिण में जाते ही शिवाजी ने पुनः अपने पुराने किले जीत लिये। १६७४ व विधि पूर्वक राजा बने व महाराजा छत्रपति शिवाजी बने

शिवाजी के अन्तिम दिन—मुगलों से निरन्तर संघर्ष करने के कारण शिवाजी का स्वास्थ्य खराब हो गया। इसके अलावा उन्हें अपने पुत्र शंभाजी से भी संतोष नहीं था। इस प्रकार अन्तिम दिन दुखों में व्यतीत करते हुऐ १६८० में वे परलोक सिधार गये।

शासन प्रबन्ध

केन्द्रीय शासन—शिवाजी अपना केन्द्रीय शासन ८ मन्त्रियों की सहायता से चलाते थे। वह मन्त्रि परिषद 'अष्ट प्रधान' कहलाती थी। परन्तु वे मन्त्री केवल सलाहकार के रूप में काम करते थे।

प्रान्तीय शासन—शासन को सुचारु रूप से चलाने के लिये राज्य को तीन प्रान्तों में बांट दिया था। सूबेदार अपने प्रान्तों की शांति व सुव्यवस्था के लिये उत्तरदायी थे। इनको रखना व हटना शिवाजी की मर्जी पर था।

सैनिक संगठन—शिवाजी ने स्थायी सेना की परिपाटी डाली। सेना में ५०,००० अश्वारोही तथा १,००,००० पैदल सैनिक थे। सैनिकों को अनुशासन में रहना पड़ता था तथा उन्हें नकद वेतन दिया जाता था।

न्याय व्यवस्था—यद्यपि शिवाजी के शासन में आज की सी अदालतें न थीं और न लिखित कानून। परन्तु फिर भी जन साधारण के साथ न्याय होता था।

लगान व्यवस्था—शिवाजी ने कई भूमि सुधार किये तथा किसानों की हर कठिनाइयों को दूर करने का यथा संभव प्रयास किया।

शिवाजी का इतिहास में स्थान—शिवाजी हिन्दू-धर्म रक्षक व हिन्दू राज्य के अन्तिम संस्थापक थे। वे एक महान योद्धा, कूट राजनीतिज्ञ एवं परम देश-भक्त थे। योद्धा के साथ उनमें प्रशासक के भी गुण थे। अतः वास्तव में शिवाजी विश्व के महान शासकों एवं विजेताओं में से एक थे।

शंभाजी

शिवाजी की मृत्यु के बाद उनका बड़ा पुत्र शंभाजी गद्दी पर बैठा। वह दुश्चरित्र, विलासी एवं अयोग्य शासक था। सुरा व सुन्दरी का दास रहने के कारण प्रशासन के कार्यों की ओर वह सदैव उदासीन रहता था। किस्मत से उसका मन्त्री कविकलश भी वैसा ही विलासी व्यक्ति था सन् १६८६ में वह अपने मन्त्री सहित औरंगजेब के सैनिकों द्वारा बन्दी बना लिया गया और निर्दयता से मौत के घाट उतार दिया गया।

राजा राम

राजाराम शंभाजी का कनिष्ठ भ्राता था। अच्छे प्रशासक के गुणों का अभाव उसमे भी था। परन्तु भाग्यवश उसे सलाहकार अच्छे मिल गये थे। सन्ताजी और धान्नाजी गोरपदे जैसे योग्य सेनानायक उसकी सेना में विद्यमान थे। उन्होंने मुगलों की सेना पर छापामार नीति को अपना कर छुटपुट हमले

करना शुरू कर दिया। औरंगजेब ने राजाराम को रायगढ़ के किले में घेर लिया। परन्तु वह वहां से निकलकर जिंजी के किले में चला गया। जब जिंजी पर मुगल सेना द्वारा घेरा डाला गया तो वह बचकर सतारा चला गया। और वहीं १७०० में स्वर्गलोक को सिधार गया।

ताराबाई

राजाराम की मृत्यु के बाद उसका पुत्र शिवाजी द्वितीय छत्रपति बना। उसके नाबालिग होने के कारण ताराबाई उसकी संरक्षिका बनी तथा शासन का सफलता से संचालन करने लगी। औरंगजेब मराठा शक्ति का उन्मूलन करने पर तुला हुआ था। उसने १७०४ में कई किलों पर अधिकार कर लिया। किन्तु ताराबाई एक वीर स्त्री थी। वह युद्ध का संचालन करती रही और उधर १७०७ में औरंगजेब ने सदा के लिये आंखे मूंद ली। औरंगजेब की मृत्यु के बाद उसके पुत्र बहादुरशाह ने शंभाजी के पुत्र शाहू को मराठों में फूट डालने की नीति से मुक्त कर दिया। इस प्रकार से ताराबाई को हटाकर शाहू छत्रपति बन गया।

प्रश्न

१. शिवाजी के जीवन तथा चरित्र का संक्षिप्त वर्णन कीजिए।

   Give a brief account of the life and character of Shivaji.

२. १६६२ से १७०७ ई० के बीच हुए मुगल मराठा संघर्ष का संक्षिप्त में वर्णन कीजिए।

   Describe the course of struggle between the Mughals and the Marathas from 1662 to 1707.

३. मराठों की सफलताओं, उनके शासन, युद्ध प्रणाली तथा सामान्य नीति का संक्षिप्त वर्णन कीजिए।

   Briefly describe the achievement, administration, system of warfare and general policy of the Marathas.

अध्याय ग्यारहवां

मुग़लकालीन सभ्यता व संस्कृति

प्रस्तावना—जन साधारण की अवस्था (सामाजिक धार्मिक व आर्थिक) शिक्षा और साहित्य (फ़ारसी, हिन्दी) कला का विकास (स्थापत्य, चित्र व संगीत)।

प्रस्तावनाः—एक संस्कृति व सभ्यता का प्रभाव दूसरी संस्कृति पर तीन तरह से पड़ा करता है-(१) एक संस्कृति के मनुष्य दूसरी संस्कृति वालों पर आक्रमण करें (२) दोनों संस्कृतियों के लोग दीर्घ काल तक एक जगह सहवास करें-(३) एक संस्कृति में दूसरी संस्कृति की अपेक्षा अच्छे गुण हों। भारत पर मुगलों ने आक्रमण किया और वे लोग हिन्दुओं के साथ यहां बस गये। बाबर के (१५२६) आक्रमण से २०० वर्ष तक भारत पर किसी विदेशी शक्ति का आक्रमण नहीं हुआ। आशय यह है कि आन्तरिक कलह के अलावा देश में शान्ति रही। अतः यह स्वाभाविक था कि मुस्लिम संस्कृति व सभ्यता का प्रभाव भारत की संस्कृति व सभ्यता पर पड़े। आरंभ में तो तुर्कों की भांति मुगलों ने भी हिन्दुओं को भयभीत कर उनके सामाजिक व आर्थिक विकास को कुंठित बना दिया था। परन्तु राष्ट्रीय सम्राट अकबर के शासन काल से देश में शान्ति रही। हिन्दू और मुसलमान एक दूसरे के समीप आये। अतः दोनों सभ्यताओं के मिलान से भारतवासियों के रहन सहन में अन्तर आना स्वाभाविक था। मुग़ल शासन काल के समय भारतवासियों की अवस्था इस प्रकार की थी।

जन साधारण की अवस्था

सामाजिकः—मुग़लकालीन सामाजिक अवस्था का परिचय हमें यूरोपीय यात्रियों के लेखों से मिलता है। १६ वीं व १७ वीं शताब्दी में यूरोप से भारत में अनेक यात्री आये थे। उन्होंने तत्कालीन भारत के विषय में बहुत कुछ लिखा है। उनके लेखों से स्पष्ट होता है कि पाश्चात्य देशों की भांति भारतीय समाज भी तीन वर्गों में विभक्त था (१) अमीर, (२) मध्यम वर्ग व (३) मजदूर वर्ग।

अमीर वर्गः—मुगल काल का सामाजिक जीवक सामन्त पद्धति पर अवलंबित था। समाज में सम्राट का स्थान सर्वोत्कृष्ट समझा जाता था। शाही परिवार के सदस्य, अमीर उमराव तथा अन्य उच्च पदाधिकारी इस प्रथम वर्ग में आते थे। इनका जीवन-स्तर उच्च होता था। अमीर लोग विलासी जीवन व्यतीत करते थे। वे सुरा और

सुन्दरी के दास होते थे। बहु-विवाह प्रथा उनमें प्रचलित थी। सम्राट व सूबेदारों की सैकड़ों स्त्रियां होती थीं। निवास के लिये उच्च एवं भव्य प्रासादों का निर्माण कराते थे। परन्तु इस उच्च जीवन का भार निम्न वर्ग व मध्यमवर्ग के लोगों पर पड़ता था। इस कारण सामान्य लोगों का शोषण होता था। आत्म सम्मान के साथ इनमें अहं-भाव भी होता था। कीमती आभूषण उनके अलंकार के साधन होते थे। स्त्रियों को पर्दे में रहना पड़ता था। उन लोगों को आमोद-प्रमोद के विभिन्न साधन प्रस्तुत रहते थे। पैलसट लिखता है-"**अमीरों के प्रासाद बड़े सजे रहते थे और वे व्यभिचार के आलय होते थे। अमीर लोग उत्तम से उत्तम भोजन करते थे और सुदूर देशों से उनके लिए फल आते थे। गोश्त खाने का बड़ा प्रचार था।..............इतनी दुर्बलताओं के होते हुए भी इन अमीरों में कुछ गुण भी थे। वे विद्वानों तथा कलाकारों का आदर भी करते थे और उन्हें प्रोत्साहन देते थे।**"

मध्यम वर्ग:—इस वर्ग में कृषक, व्यापारी तथा निम्न श्रेणी के सरकारी कर्मचारी होते थे। इस वर्ग के लोगों का जीवन साधारण होता था। उनका भोजन व वेश-भूषा भी साधारण होती थी। सुरापान का इस वर्ग में प्रचलन न होने के बराबर था। विशेषकर व्यापारी वर्ग तड़क भड़क के जीवन से सदैव दूर रहता था—क्योंकि वे जानते थे कि यदि सूबेदार व किसी अन्य राज्य कर्मचारी ने उन्हें इस ठाट में देखा कि वे पैसा छीनने का प्रयास करेंगे। छोटे राज्य कर्मचारी रिश्वत लेकर अपना जीवन कुछ अच्छे ढंग से व्यतीत कर लिया करते थे।

निम्न वर्ग:—इस वर्ग के लोगों का जीवन बड़ा दयनीय होता था। उनका भोजन अत्यन्त दयनीय व अपर्याप्त होता था। रहने को अच्छे मकान उपलब्ध नहीं होते थे। ऊनी व रेशमी वस्त्र उन्हें अप्राप्य होते थे। वे मेहनत करके अपना पेट पालते थे। वे बहुधा बेगार में जोत लिए जाते थे। निर्धनता सदैव उन्हें जकड़े रहती थी। अकाल मानों उनकी मृत्यु का निमन्त्रण लेकर आता था। परन्तु उनका जीवन सादा होने के साथ ईमानदारी का भी होता था।

स्त्रियों की दशा:—उस काल में स्त्रियों को शिक्षा के क्षेत्र से दूर रखा जाता था। उच्च वर्ग में पर्दा प्रथा प्रचलित थी। मध्यम वर्ग की स्त्रियों को कभी सेवा-कार्य करने को भी बाध्य होना पड़ता था। सती प्रथा जो इस समय प्रचलित थी—उसको मुगल सम्राटों ने बन्द करने का प्रयत्न किया था। स्त्रियों की दशा उस समय दयनीय ही थी। उनके अधिकारों की ओर विशेष ध्यान नहीं दिया जाता था।

उस समय समाज में कई दोष भी विद्यमान थे। अन्धविश्वास उनकी प्रगति

में बाधक बना हुआ था। दहेज प्रथा के कारण पुत्री के विवाह में लोगों को कठिनाई होती थी। मुसलमानों के आगमन से बाल-विवाह की प्रथा दिनों दिन बढ़ती जा रही थी।

धार्मिक अवस्था:—मुसलमानों के आगमन से हिन्दुओं की धार्मिक भावना को बहुत ठेस पहुँची। धर्म हिन्दुओं की आत्मा स्वरूप है। जब मुसलमानों ने हिन्दुओं को बलात् मुसलमान बनाना शुरू कर दिया तो हिन्दू अपनी धर्मरक्षा के लिए अपने धर्म के प्रति और भी प्रागाढ़ प्रेम रखने लगे। परन्तु इस समय हिन्दूधर्म में कई बुराइयां भी आ गई थीं। जिसके कारण इसमें सुधार करने के लिए कई प्रकार की मनोवृत्तियों को अपनाना पड़ा। भक्ति आन्दोलन के द्वारा भी इस समय धर्म में कई प्रकार के परिवर्तन हुए। मुगलों से पहिले सूफी मत का भी काफी प्रचार हो चुका था। कबीर ने एकेश्वरवाद का प्रसार किया। इन सब सुधारों के होते हुए भी मुगल शासकों ने कुछ तुर्क शासकों की भांति असहिष्णुता की नीति का परित्याग नहीं किया। बाबर अपने को विदेशी समझता था। केवल अकबर पहिला मुगल सम्राट था जिसने हिन्दू व मुसलमानों की भेदभाव की दीवार को दूर करना चाहा था। इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए उसने 'दीनइलाही' धर्म चलाया था। वह तमाम धर्मों को समान समझता था। नवीन सिक्ख धर्म के प्रति भी उसका अनुराग रहता था। राजसेवा देते समय धर्म का ख्याल नहीं किया जाता था। परन्तु इस नीति का परिवर्तन शाहजहां के काल से शुरु हो गया था। औरंगजेब ने अपना कट्टर रूप अपना लिया था। मन्दिरों के विध्वंस एवं मूर्तियों के खण्डित करने से हिन्दुओं की मूर्ति-पूजा में आस्था कम होती जा रही थीं। लेकिन नास्तिक मुसलमानों ने हिन्दुओं के सम्पर्क में आने से मुल्ला व फकीरों का पूजन आरंभ कर दिया था। दरगाहों में जाकर फूल व बताशे चढ़ा कर हिन्दुओं की भांति पूजन आरम्भ कर दिया था। कहने का तात्पर्य यह है कि हिन्दू और मुसलमानों में धार्मिक समन्वय अवश्य हुआ लेकिन मुगल शासक असहिष्णु बने रहे। उन्होंने हिन्दुओं के धार्मिक विकास को उन्हें मुसलमान बनाने की दृष्टि से हर प्रकार से कुण्ठित बनाने का प्रयास किया।

आर्थिक दशा:—मुगलकालीन आर्थिक अवस्था का ज्ञान हमें 'आइने अकबरी' से अच्छा होता है। अकबर व हुमायूं के समय भारतवासियों की आर्थिक अवस्था समान्य रूप से अच्छी थी। शाहजहां के समय भी यह ठीक रही। परन्तु औरंगजेब के समय से आर्थिक अवस्था दयनीय होती चली गई।

कृषि करना उस समय हिन्दुस्तानियों का मुख्य व्यवसाय था। अकबर व शेरशाह ने किसानों की अवस्था को उन्नत करने के भरसक प्रयत्न किये। इसलिए

खाद्यान्नों की उस समय कमी नहीं थी। परन्तु जब शाहजहां का ध्यान स्थापत्य कला की ओर चला गया और उसने करोड़ों रुपये भवन निर्माण में व्यय करना आरम्भ किया तो किसानों की आर्थिक अवस्था खराब रही। अकाल पड़ने से भी किसानों की आर्थिक अवस्था खराब हो जाती थी। परन्तु औरंगजेब की युद्ध नीति से सारा ख़जाना खाली हो गया था। इसके अलावा जब औरंगजेब ने धार्मिक कट्टरता के कारण हिन्दुओं को उच्च पदों से यहां तक कि मालगुजारी से भी अलग कर दिया। तो लगान वसूली में कमी होती गई।

कृषि के अतिरिक्त मुग़ल शासकों ने गृह-उद्योग धन्धों को काफी प्रोत्साहन दिया। सूती कपड़ों के उस समय बहुत से कारखाने थे। बिहार, बंगाल और गुजरात में अच्छी किस्म का सूती कपड़ा बुना जाता था। लाहौर में ऊनी कम्बल पर्याप्त मात्रा में बनते थे। ढाका की मलमल जगत विख्यात थी। बंगाल में रेशमी कपड़ा भी बनता था। इसके अलावा कपड़ों की रंगाई व लकड़ी का काम भी पर्याप्त मात्रा में होता था। टैरी लिखता है—**"कपड़े पर छपाई का काम इतना अच्छा होता था कि वह कभी धुल नहीं सकता था।"**

मुगल शासन में व्यापार की दशा भी अच्छी थी। भारत उस समय एशिया में व्यापार का केन्द्र बना हुआ था। यहां एशियायी व यूरोपीय देशों के व्यापारी आकर बस गये थे। दिल्ली, आगरा, लाहौर, खानदेश, अहमदाबाद, बुरहानपुर तथा सूरत कई समृद्धिशाली नगर आबाद थे। मुगल शासकों ने व्यापार को उन्नत करने की दृष्टि से यातायात के साधनों को सुगम बनाने का प्रयास किया था।

इस प्रकार मुग़ल काल में आर्थिक अवस्था सामान्य रूप से अच्छी थी। यह सत्य है कि मुगल शासकों ने धन को अपने विलास की सामग्रियों में पानी तरह बहा कर राजकीय कोष को खाली कर दिया था। परन्तु उनके कार्यों से मजदूरों को रोजगार मिला और धन का एक जगह संग्रह नही हो सका। किन्तु मोर लैंड की मान्यता है कि **मुग़ल काल की आर्थिक अवस्था वैसी ही खराब थी, जैसी आज है।**

शिक्षा:—मुगल कालीन भारत में शिक्षा की व्यवस्था आज जैसी न थी। उस काल के शासक जनसाधारण को शिक्षित बनाना कर्त्तव्य नहीं समझते थे। इस कारण आज की भांति उस काल में शिक्षा का कोई विभाग न था। हिन्दू और मुसलमान दोनों शिक्षा को धर्म की चेरी समझते थे। इस कारण मुसलमानों के बच्चे शिक्षा पाने मस्जिदों में जाते थे और हिन्दुओं के बच्चे साधु व विद्वानों के घर पर। मकतब में शिक्षा प्राप्त करने के उपरान्त उच्च शिक्षा के इच्छुक छात्र मदरसे जाते थे।

प्राचीन काल की भांति शिक्षा अब सर्वांगीण नहीं रही थी। हिन्दू अपनी पाठशालाओं में साहित्य, व्याकरण, ज्योतिष, दर्शन तथा चिकित्सा-शास्त्र की शिक्षा पाते थे व मुसलमान अपने मकतबों में धर्म सम्बन्धी शिक्षा। उस समय में आज की भांति प्रशासन सम्बन्धी वा अन्य विशेष प्रकार की शिक्षा नहीं दी जाती थी। शिक्षित बहुत कम लोग होते थे। शिक्षा पाने को वे ही इच्छुक रहते थे जो राज-सेवा करने के इच्छुक रहते थे।

स्त्री शिक्षा उस समय न होने के बराबर थी। केवल राज परिवार की स्त्रियां ही शिक्षा पाती थी। बाबर की बेटी गुल बदन एक उच्च कोटि की विदुषी थी जिसने 'हुमायूं नामा' लिखा था। नूरजहां, मुमताजमहल, जेबुन्निसा आदि भी शिक्षित महिलाएं थी।

बाबर व हुमायूं दोनों विद्वान थे। परन्तु दोनों को शिक्षा प्रसार का समय न मिला। अकबर यद्यपि विद्वान नहीं था परन्तु उसने शिक्षा की ओर पर्याप्त ध्यान दिया। उसने शिक्षा में कुछ परिवर्तन भी किये। फतेहपुर सीकरी, दिल्ली व अजमेर में उसने मदरसे स्थापित किये। शिक्षित बनाने में हिन्दू व मुसलमान का भेद भाव नहीं विचारा जाता था। यही क्रम शाहजहां के शासन काल तक चलता रहा। जहांगीर ने जीर्ण मदरसों की मरम्मत कराई। शाहजहां ने दिल्ली में एक मदरसा स्थापित किया और घोषणा की कि लावारिसों की सम्पत्ति मरने पर मदरसों में व्यय की जावेगी। परन्तु औरंगजेब ने शिक्षा के विकास को अवरुद्ध बना दिया। उसने हिन्दुओं के स्कूल बन्द कर दिये तथा हिन्दू-स्कूलों को राजकीय सहायता देना बन्द कर दिया। केवल मुसलमानों के बच्चे मस्जिदों में धार्मिक शिक्षा ग्रहण कर सकते थे। औरंगजेब के बाद का समय तो एक अशान्त वातावरण का काल था। राज्य-सत्ता सुरक्षित नहीं थी। वह एक भाग्य की गेंद बनी हुई थी जो निरन्तर एक शासक के पास से दूसरे शासक के पास घूम फिर रही थी।

शिक्षा का माध्यम:—मुसलमानों ने भारत आते ही अरबी भाषा का प्रचार करना चाहा था। वह तेरहवीं शताब्दीं से एक मृत भाषा मानी जाने लगी थी। परन्तु फिर भी मुगल काल में राजपरिवार के सदस्यों को अरबी भाषा की शिक्षा दी जाती रही। इसके अतिरिक्त धार्मिक ग्रन्थ भी अरबी भाषा में ही लिखे जाते थे। परन्तु इस समय भारत के विभिन्न राज्यों की प्रान्तीय भाषाओं का भी विकास हुआ। हिन्दी, बंगला, मराठी, गुजराती आदि प्रान्तीय भाषाओं ने इस काल में पर्याप्त उन्नति की। भक्ति आन्दोलन ने भी प्रान्तीय भाषाओं के विकास में काफी सहायता दी।

साहित्य:—जिस भाषा का साहित्य नहीं होता वह भाषा एक बिना पति की पत्नि की भांति होती है। जिस भाषा का साहित्य नहीं होता उसका पूर्ण विकास नहीं हो पाता। मुगल काल में साहित्य के संरक्षक मुगल सम्राट थे। वे स्वयं पढे लिखे विद्वान होते थे। मुगल बादशाह अरबी और फारसी के अच्छे विद्वान थे। अत: उनके समय में फारसी के साहित्य का अच्छा विकास हुआ। फारसी भाषा का विकास तीन रूपों में हुआ, (१) इतिहास, (२) अनुवादित ग्रन्थ तथा (३) पद्य। मुल्ला दाऊद की 'तारीख अल्फी' अबुल फज़ल की 'आईने अकबरी' तथा 'अकबर नामा' अब्दुल कादिर बदऊनी की 'मुन्तखबुल तवारीख' निजामुद्दीन अहमद की 'तबकाते अकबरी' फैजी सरहिन्द का अकबर नामा उस काल के अच्छे ऐतिहासिक ग्रन्थ हैं। बदऊनी ने 'रामायण' का हाजी इब्राहीम सरहिन्दी ने 'अथर्वेद' का तथा फैजी ने 'लीलावती' का फारसी में अनुवाद किया। अकबर के शासनकाल में कवियों की गिजाली का प्रथम स्थान था। निशापुर के मुहम्मद हुसेन नाजिरी गजलें लिखने में बडे प्रवीण थे। जहांगीर के समय में भी फारसी का विकास होता रहा। वह स्वयं विद्वान था व विद्वानों का आदर करता था। शाहजहां का दरबार विद्वानों से भरा पड़ा था। इसके समय के प्रसिद्ध विद्वान लेखक थे अब्दुल हामिद लाहौरी, अमीर काबविनी, इनायत खां तथा अमल साहिल। औरंगजेब कट्टर मुसलमान था। अत; इसके शासन काल में केवल फारसी भाषा ही फलफूल सकी। उसने इस्लामी कानूनों का संकलन (फतवा-ए-आलमगिरी) करवाया। वह ऐतिहासिक पुस्तकें लिखे जाने के विरुद्ध था। परन्तु आलमगीर नामा, मासिरे आलमगीर व फतूहोत आलमगीर आदि कई ऐतिहासिक ग्रन्थ उसके समय के विख्यात हैं।

जैसा कि इससे पूर्व हम स्पष्ट कर चुके हैं कि मुगल काल में प्रान्तीय भाषाओं का भी विकास हुआ। परन्तु उन सब में हिन्दी भाषा के प्रसार को प्रमुखता प्राप्त हुई। सूर व तुलसी जो आज भी हमारे हिन्दी साहित्य के सूर्य व चांद बने हुए हैं— इसी काल में उत्पन्न हुए थे। मलिक मुहम्मद जायसी ने 'पद्मावत' काव्य लिखा था। जायसी रहस्यवादी कवि थे, कवि हरिनाथ, गंग तथा नरहरि अकबर के दरबारी कवि थे केशव ने रामचन्द्रिका की रचना की तथा सेनापति ने कवित्त रत्नाकर की। श्रृंगारी कवि बिहारी भी मुगल काल में पैदा हुए थे। वास्तव में साहित्य के विकास की दृष्टि से मुगलकाल एक उल्लेखनीय काल है।

कला:—कला के विकास की दृष्टि से भी मुगल काल एक वैभव का काल था। इस काल में स्थापत्य, चित्रकला, व संगीत कला का भी विकसित हुई। यद्यपि मुगल लोग पहाडी हिस्से से आये थे और इन पर रेगिस्तानी मुस्लिम देशों की स्थापत्य कला का प्रभाव पडा था। परन्तु यहां आकर ये अपनी उस कला के आदर्श

को नहीं रख सके। उन्होंने फारसी व हिन्दी शैली के संयोग से एक विशाल पूर्ण मुगल शैली का निर्माण किया। जिसकी छाप तत्कालीन स्थापत्य व चित्र कला पर स्पष्ट दिखाई देती है।

स्थापत्य कला:—मुगल सम्राटों को कला अपनाने का बड़ा शौक था। उन्होंने अपने शासन काल में भारत को कई सुन्दर एवं कलापूर्ण भवनों से भर दिया। किन्तु औरंगजेब एक ऐसा मुगल सम्राट था, जिसे किसी कला में रुचि नहीं थी। मुगल कालीन इमारतों की प्रमुख विशेषताऐं ये हैं:—गोलगुम्बद, पतले स्तम्भ, सीधे व विशाल द्वार। मुगल यहां आने से पहिले सीधी साधी इमारत बनाने के शौकीन थे। रंगबिरंगे पत्थर एवं रगों से अपने भवनों को अलंकृत करना नहीं जानते थे। परन्तु मुगल कालीन बहुत सी इमारतें इस ढंग की भी प्राप्त होती है। फर्ग्युसन इतिहासकार लिखता है कि मुगलों की भवन निर्माण कला की शैली विदेशी है। परन्तु हैवल इस धारणा का विरोध करते हुए लिखते हैं, **"मुगल कला देशी व विदेशी शैलियों का उत्तम सम्मिश्रण है।"** इसका तात्पर्य यह है कि भारत में विदेशी तत्वों को अपने में सम्मिलित करने की अपूर्व शक्ति हैं। यदि हम विभिन्न मुगलों के समय की इमारतें देखें तो हमें अभी रचना में परिवर्तन दृष्टिगत होता है।

बाबर और हुमांयू को भी भवन बनाने का शौक था। बाबर ने सीकरी, बयाना, धौलपुर व आगरे में कई इमारतें बनवाई। तथा हुँमायू की बनाई हुई मस्जिद फतहबाद में आज भी स्थित है। वास्तव में भवन निर्माण का शौक अकबर को बहुत था। अबुलफजल ने लिखा है, **"उसने आलीशान इमारतों की आयोजना बनाईं। और अपने मस्तिष्क व हृदय की रचना को पत्थर तथा मिट्टी का पोशाक बनाया।"** उसने आगरे का किला तथा फतहपुर सीकरी में विविध इमारतें बनवाईं। जो आज भी उसमे कला प्रेम का परिचय देती है। फर्ग्युसन लिखता है, फतहपुर सीकरी महान व्यक्ति के मस्तिष्क का प्रतिबिम्ब था। कला में भी अकबर एक महान् समन्वयकारी सम्राट था। उसकी इमारतों मे फारसी व हिन्दू शैली का सम्मिश्रण है। दिल्ली में हुमायू का मकबरा परशियन शैली का है परन्तु उसका धरातल भारतीय। जहांगीर को भी इमारतों का शौक था। परन्तु उसके काल की दो इमारतें ही विख्यात हैं। सिकन्दरे में निर्मित अकबर का मकबरा जो कि उसके पुत्र जहांगीर द्वारा पूर्ण कराया गया था उसकी रचना बौद्ध विहार की सी लगती है। दूसरी इमारत इसकी बेगम नूरजहां ने आगरे के समीप बनाई, जिसे ऐतमाद्दौला का मकबरा कहते हैं। यह स्वच्छ सफेद संगमरमर का बना हुआ है। इसके निर्माण में भारतीय कला की छाप दिखाई देती है। भवन निर्माण के क्षेत्र में शाहजहां का काल स्वर्ण काल माना

जाता है। शाहजहां ने अपने जीवन काल में अनेकों इमारतें बनाई। दिल्ली का लाल किला व जामा मस्जिद आज भी उसकी कला के परिचायक हैं। आगरे के किले में निर्मित सफेद संगमरमर की मोती मस्जिद भी बहुत सुन्दर बनी हुई है। परन्तु शाहजहां के समय की इमारतों से ऐसा प्रतीत होता है कि उसकी स्थापत्य कला मौलिकता और भव्यता का परित्याग कर कोमलता तथा सुन्दरता के आवरण से आवृत्त हो रही थी।

उसके समय के इतिहास कार का कहना है कि रंग महल स्वर्ग के महलों से भी अधिक सुन्दर व भव्य है। ताज महल के निर्माण ने तो शाहजहां का नाम स्थापत्य कला के क्षेत्र में अमर बना दिया है। फ्रांसीसी यात्री टैवर्नियर ने जो इस समय भारत में विद्यमान था. वह ताजमहल के विषय में इस प्रकार लिखता है "ताजमहल की कलात्मकता के समक्ष संसार की कोई भी इमारत नहीं ठहर सकती। ताजमहल संसार का महानतम स्मारक है।"

चित्रकला:—चित्रकलां में भी स्थापत्य कला की भांति भारतीय एवं फारसी कला का सम्मिलन हुआ है। मुगल शासकों ने इस कला को विकसित बनाने में बहुत सहयोग दिया है। बाबर चित्रकला का प्रेमी था। अकबर ने भी इस कला को काफी विकसित करने का प्रयास किया। अकबर ने अपने भवनों की दीवारों को चित्रों से अलंकृत किया। फतहपुर सीकरी के राज्य प्रासाद चित्रकला से परिपूर्ण थे। उसके दरबार में कई प्रसिद्ध चित्रकार जिनमें दशवेथ, बसारन व ईरानी कलाकार ख्वाजा, अब्दुल सैयद अधिक विख्यात हैं। विद्वानों का कहना है कि उसके समय में भारतीय चीनी तथा ईरानी शैलियों के समन्वय से एक नई शैली का विकास हुआ था।

जहांगीर का युग मुगल चित्रकला के लिए स्वर्णयुग माना जाता है। उसके राज्यकाल में चित्रकला पूर्णतः भारतीय बन गई थीं। विदेशी तत्वों का भारतीय चित्रकला में समन्वय हो गया था। इसके परिणाम स्वरूप मुगल चित्रकला में स्वाभाविकता, गति एवं सजीवता का समावेश हो गया था। सम्राट के भावों की अभिव्यक्ति उस काल की चित्रकला सच्चे ढंग से करती थी। वह चित्रकला का ज्ञाता एवं सच्चा पारखी था। उसके दरबार में कई सुन्दर चित्रकार थे। आगाखां, उस्ताद मंसूर, फारूखबेग तथा मौहम्मद नादेर उसके दरबार में प्रमुख चित्रकार थे।

शाहजहां को चित्रकला से विशेष अनुराग न था। अतः चित्रकला ने अपना डेरा मुगलदरबार से हटाकर राजपूताना व हिमालय के राज्यों में डाल दिया था। पारसी ब्राउन का यह कथन सत्य है कि मुगल चित्रकारी की आत्मा जहांगीर के साथ पलायन कर गई। शाहजहां की मृत्यु के बाद औरंगजेब ने उस पर कोई ध्यान नहीं दिया।

संगीत कला—संगीत कला का भी मुगल काल में अच्छा विकास हुआ। सिवाय औरंगजेब के सभी मुगल शासक संगीत कला के प्रेमी थे। मुगल शासकों के दरबार में विभिन्न देशों के गायकों को आश्रय मिलता था। अतः उनके शासन काल में संगीत का तो विकास हुआ ही परन्तु भारतीय संगीत पर मुस्लिम संगीतज्ञों का प्रभाव भी पड़ा। तराना, ठुमरी, गजल, ख्याल व कव्वाली मुगल कालीन सभ्यता की विशेष देन है। साज में सारंगी, तम्बूरा, तबला व ढोलक प्रमुख थे।

बाबर स्वयं संगीतज्ञ था। उसने स्वयं ने कई गीत लिखे। वह गायकों का आदर करता था। लेनपूल लिखता है, "बाबर के समय गान विद्या का बड़ा आदर था और वह अच्छे संगीतज्ञों को आश्रय तथा प्रोत्साहन दिया करता था।" बाबर का पुत्र हुमायूं इस कला से दूर न रहा। कहते हैं कि माण्डू-विजय में उसने हजारों व्यक्तियों का कत्ले आम करा दिया। इस कत्ले आम में उसने बच्चू नाम के व्यक्ति को केवल इसीलिए छोड़ दिया कि वह एक अच्छा गायक था। हुमायूँ ने उसे दरबारी कवि नियुक्त किया। हुमायूं ने सोमवार तथा बुधवार विशेषतया संगीत के लिए निश्चित किये थे। अकबर के शासन-काल में संगीत का बहुत ही विकास हुआ। अबुल फजल लिखता है, "सम्राट संगीत की ओर विशेष ध्यान देते हैं और उन सभी व्यक्तियों को संरक्षण देते हैं जो इस कला को जानते हैं।" भारत-विख्यात संगीत का ज्ञाता तानसेन इसका ही दरबारी था। अबुल फजल ने तानसेन की भी बहुत प्रशंसा की है। तानसेन के अतिरिक्त अकबर के दरबार में कई विख्यात संगीतज्ञ विद्यमान थे। जहांगीर व शाहजहां ने भी इस कला को आश्रय दिया। संस्कृत के गीतों का फारसी में अनुवाद होने लगा। शाहजहां स्वयं अच्छे गीत रचता था। उसके दरबार में जगन्नाथ तथा कानेर के जनार्दन भट्ट नाम के दो प्रमुख गायक थे। शाहजहां के संगीत के सम्बन्ध में यदुनाथ सरकार लिखते है "शाहजहां की आवाज इतनी मधुर थी कि बहुत से पवित्र हृदय के सूफी तथा अन्य दुनियां से विरक्ति लेने वाले वापिस दुनियां में लौट आते थे"। औरंगजेब संगीत का प्रबल शत्रु था। संगीत को वह धर्म के विरुद्ध समझता था। अतः गायक मुगल दरबार का परित्याग कर राजपूताने की रियासतों में जा बसे।

अध्याय सार

प्रस्तावना—मुगलों व हिन्दुओं के दीर्घ सहवास से भारतीय कला व सभ्यता में महान् परिवर्तन हुए। उनके शासन काल में साहित्य तथा कला का विकास कुंठित नहीं रहा।

जनसाधारण की दशा

सामाजिक—समाज तीन वर्गों में विभक्त था—(१) अमीर वर्ग। (२) ध्यम वर्ग। (३) मजदूर वर्ग।

अमीर वर्ग—इन लोगों का जीवन स्तर ऊंचा होता था। वे अच्छा खाते तथा अच्छा पीते थे। दीन मनुष्यों के शोषण से वे विलासी जीवन व्यतीत करते थे। रिश्वत ये लोग बहुत लेते थे।

मध्यम वर्ग—इनका जीवन सादा व सरल होता था। दहेज प्रथा के कारण पुत्री की शादी करने में माता-पिता को कठिनाई होती थी।

मजदूर वर्ग—इनका जीवन दुःखी एवं अनादर का होता है। घर का सारा कार्य इन लोगों से लिया जाता था।

इस प्रकार सामाजिक अवस्था सामान्य रूप से अच्छी थी। स्त्रियों का समाज में आदर नहीं था। पर्दा प्रथा तथा बालविवाह को प्रथा उन दिनों में खूब प्रचलित थी।

आर्थिक—जनसाधारण की आर्थिक दशा अच्छी थी। कृषक अपने कृषि करते थे। कुटीर व्यवसाय उन दिनों में उन्नत था। व्यापारी भी सुखी थे। परन्तु वे तो वस्त्र नहीं पहिनते थे। यह उस समय व्यापार का केन्द्र था।

शिक्षा—शिक्षा सरकार की ओर से नहीं दी जाती थी। शिक्षा धर्म की चेरी थी। शिक्षा सर्वांगीन न होकर धार्मिक विषयों तक ही केन्द्रीभूत रहती थी। शिक्षित लोग होते थे। स्त्रियों के लिए शिक्षा का कोई प्रबन्ध नहीं था। फारसी भाषा के साथ भारत के राज्यों की विभिन्न भाषाएं भी विकसित हो रही थीं।

साहित्य—मुगल शासन साहित्य की उन्नति के लिए भी स्मरणीय बना हुआ है। फारसी भाषा में उस समय कई एतिहासिक ग्रन्थ लिखे गये तथा हिन्दी भाषा के कई ग्रन्थों का फारसी में अनुवाद किया गया।

हिन्दी साहित्य में इस समय ऐसे कवि उत्पन्न हुए जिनकी समता आज तक किसी ने भी नहीं की है।

कला

स्थापत्य कला—मुगल शासक भवन निर्माता कहे जाते हैं। स्थापत्य कला में विशेषतया रुचि अकबर व शाहजहां ने ली। स्थापत्य कला के दृष्टि कोण से शाहजहां का काल स्वर्ण युग माना जाता है।

चित्रकला–इस कला का अच्छा ज्ञाता जहांगीर था। उसके दरबार में अच्छे-अच्छे चित्रकार थे। औरंगजेब इस कला का शत्रु था।

संगीत कला—मुस्लिम सम्पर्क से भारत में गजल, कव्वाली व ठुमरी आदि कई नवीन के गीत गाये जाने लगे। औरंगजेब ने इस कला के जनाजे को भी दफनाने की प्रार्थना की थी। औरंगजेब इस कला का भी शत्रु था।

इस प्रकार मुगल शासन में कला का सर्वांगीन विकास हुआ।

प्रश्न

(१) मुगल शासन काल में सामाजिक जीवन की मुख्य विशेषताओं का वर्णन कीजिए।

Bring out the main features of Social life under the Mughal Kings.

(२) शिक्षा प्रसार तथा साहित्य निर्माण में मुगल शासकों ने क्या सहयोग दिया ?

Show the contribution of the Mughal Kings towards the spread of Education and the creation of literature.

(३) मुगल कालीन स्थापत्य तथा चित्र कला के विकास पर प्रकाश डालिए।

Trace the growth of the art of architecture and painting during the Mughal Period.

(४) मुगल काल में जनता की आर्थिक अवस्था कैसी थी ? मुगल सम्राटों ने उसके सुधार में क्या सहायता दी ?

What was the economic condition of the people in the time of the Mughal Kings ? How did they help to improve it. ?

अध्याय बारह

भारत में यूरोपवासियों का आगमन

तथा

उनके पारस्परिक संघर्ष

प्रस्तावना—पुर्तगालियों का भारत मे आगमन—उनके उपनिवेश की स्थापना तथा उनका पतन; डचों का भारत में आगमन तथा उनका भारत छोड़ना, अंग्रेजों द्वारा ईस्ट इण्डिया कम्पनी की स्थापना, उसकी कठिनाइयां, फ्रान्सीसियों द्वारा भारत में व्यापार करना, अंग्रेजों व फ्रान्सीसियों का संघर्ष, फ्रान्सीसियों की असफलता के कारण।

प्रस्तावना:—भारत के प्राचीन वैभव का प्रमुख कारण उसका व्यापार में उन्नत होना था। व्यापार के क्षेत्र में भारत का मध्यकाल तक वही स्थान था जो आज संयुक्त राज्य अमेरिका (U. S. A.) तथा द्वितीय महायुद्ध के पूर्व इंगलैण्ड (U. K.) का था। भारत का तैयार माल एशिया के पूर्वी देशों को तो जाता ही था परन्तु उसका निर्यात यूरोपीय देशों में भी कम नहीं होता था। मध्यकालीन रोम साम्राज्य के निवासियों को सुख सामग्री भारत से जाती थी। अतः भारत का यूरोप से सम्बन्ध अति प्राचीन था, पर वह केवल व्यापारिक क्षेत्र तक ही सीमित था। परन्तु जब यूरोप में आधुनिक युग का आगमन हुआ तो उसका प्रभाव यूरोपीय देशों में तो दृष्टिगत हुआ ही किन्तु साथ में उसका प्रभाव विश्व के अन्य देशों पर भी पड़ा। आधुनिक युग के आते ही यूरोपवासियों की मनोवृत्ति में महान परिवर्तन हुआ। सन् १४५३ ई० में एक ऐसी घटना घटी जिसने आरम्भ में यूरोपवासियों को कठिनाइयों के गर्त में निपातित कर दिया। परन्तु कुछ वर्षों के उपरान्त ही वह दुःखद घटना उन्हें सुखद बन गई। वह घटना यह थी कि कस्तुन्तुनिया (Constantinople) पर मुसलमानों का अधिकार हो गया था और उन्होंने भारत व यूरोप के मध्य के व्यापारी मार्गों को अवरूद्ध कर दिया। इस बात को यूरोपवासी सहन नहीं कर सके। जब यूरोपवासी शक्ति के आश्रय से यवनों को परास्त नहीं कर सके तो वे भारत से व्यापारिक सम्बन्ध बनाये रखने के लिए जल मार्ग से भारत आने का प्रयास करने लगे और अन्त में वे इसमें सफल हुए।

पुर्तगालियों का भारत में आगमन

मध्य-काल में पुर्तगाल वाले अच्छे नाविक होते थे। अतः जब यूरोपवासी भारत आने को थल मार्ग की खोज करने लगे तो उसमें पुर्तगाल वाले ही सबसे अग्रिम रहे। १४९८ ई० में पुर्तगाल का एक साहसी तथा समुद्री नाविक वास्को-डिगामा (Vasco-de-Gamo) भारत के पश्चिमी तट पर पहुंच कर कालीकट (Calicut) उतरा। उस समय कालीकट जमारिन (Zamorin) द्वारा शासित होता था। राजा जमारिन ने वास्को-डि-गामा का भव्य स्वागत किया। कालीकट से वह कनानूर पहुंचा और वहां के राजा ने भी उसका अच्छा सत्कार किया। इस सत्कार से वास्को डि-गामा को आगे बढ़ने की और भी प्रेरणा प्राप्त हुई और वह लिजबन जा पहुंचा। कालीकट के राजा ने पुर्तगालियों को अपने यहां व्यापार करने की अनुमति प्रदान करदी। इससे पुर्तगाल की सरकार में व वहाँ के लोगों में नवीन स्फूर्ति उत्पन्न हो गई। सन् १५०० ई० में पुर्तगाल के शासक ने घोषणा कर दी कि पुर्तगाल का कोई भी व्यापारी भारत में व्यापार कर सकता है यदि वह अपनी आमद का ¼ भाग पुर्तगाल सरकार को दे। परन्तु १६ वी शताब्दी के आरम्भ होते ही अरबवासियों के द्वारा भड़काने पर राजा जमारिन पुर्तगाल वालों के विरुद्ध हो गया। इस कारण १५०३ ई० में वास्को-डि गामा पुनः भारत आया। उसने अरबवासियों को परास्त कर कनाकोर और कोचीन में अपनी कोठियां स्थापित करलीं। इसके उपरान्त पुर्तगाल की सरकार ने यह अच्छा समझा कि भारत में अपने व्यापार को सुरक्षित बनाये रखने के लिए वहां एक गवर्नर नियुक्त करे।

पुर्तगाल की नीति में परिवर्तन :— अब तक पुर्तगालियों का उद्देश्य भारत में केवल व्यापार करना था। परन्तु १५०९ ई० में जब अलबुकर्क वायसराय नियुक्त होकर भारत आया तो पुर्तगाल की नीति में परिवर्तन हो गया। अलबुकर्क (Albuquerque) भारत में उपनिवेश स्थापित करना चाहता था। इससे पूर्व डी. अल्मेडा (De-Al-meida) वायसराय था। उसका उद्देश्य भी भारत में अपने व्यापार को विस्तृत तथा सुदृढ़ करना ही था। परन्तु अलबुकर्क ने एक नई दिशा में कदम उठाया। अतः अब से पुर्तगालियों की नीति भारत में साम्राज्यवाद का बाना पहिनती है। उसने आते ही १५१० ई० में गोआ (Goa) तथा १५१५ ई० में फारस की खाड़ी में स्थित आर्मुज (Ormuz) पर अधिकार कर लिया। इसी कारण अलबूकर्क को भारत में पुर्तगाल साम्राज्य का संस्थापक माना जाता है। जब सन् १५१५ ई० में उसकी मृत्यु हो गई तो पुर्तगाल वालों को बड़ा दुःख हुआ।

साम्राज्य विस्तार :— अलबुकर्क की मृत्यु पर्यन्त भी पुर्तगालियों की

साम्राज्यवादी नीति भारत में चलती रही । उनका साम्राज्य दिनो दिन यहां वृद्धि पाने लगा। १५३४ में ड्यू (Diu) तथा १५३८ ई० में डामन (Daman) पर उनका अधिकार हो गया। सन् १५४५ ई० में जब गुजरात के शासक ने उनको गोआ से खदेडने का प्रयास किया तो वह अपने मनोरथ में सफल नहीं हुआ। इस प्रकार १६ वीं शताब्दी तक वे अपनी शक्ति भारत में बनाये रहे।

पुर्तगालियों का पतन:—पुर्तगाली अपनी साम्राज्यवादी नीति का भारत में अधिकतर दिनो तक अनुसरण नहीं कर सके। १७वीं सदी के आरम्भ से ही उनकी शक्ति का भारत में ह्रास होने लग गया। १६०४ ई० में डचों ने अम्बायना (Ambyana) से तथा १६१२ ई० में ईरानियों ने आर्मुज (Ormuz) से उन्हें निकाल दिया। १६३१ ई० में भारत के मुगल सम्राट शाहजहां ने बंगाल में इनकी शक्ति पर बड़ा कुठराघात किया। इस प्रकार निरन्तर पुर्तगालियों का साम्राज्यवादी रूपी दीपक शनै: शनै: भारत में बुझने लगा और वह केवल गोआ, डामन तथा ड्यू में ही रह गया, जहां कि आज भी अपनी अन्तिम सांसे गिन रहा है।

पुर्तगालियों के पतन के कारण:—(१) पुर्तगालियों में धर्मान्धता कूट-कूट कर भरी हुई थी। उन्होंने आते ही भारत वासियों को जबरन ईसाई बनाना आरम्भ कर दिया। इससे भारतवासी उनसे क्रुद्ध हो गये। (२) पुर्तगालियों ने यहां क्रूरता की नीति बरती। अपराधियों की नृशंस हत्या करवाना तथा उन्हें अंग भंग की सजा देना उनके लिए साधारण बात थी। (३) पुर्तगाल का एक छोटा देश होना भी उसके पतन का एक कारण बना। उसके पास इतने साधन विद्यमान नहीं थे जिनसे कि वह सदूरवर्ती भारत पर नियन्त्रण रख सकता था। (४) १५८० ई० में पुर्तगाल स्पेन के आधीन हो गया। इसका परिणाम यह निकला कि अब पुर्तगाल के हित स्पेन के समक्ष गौण रह गये। (५) डचों के साथ संघर्ष करने से भी उनकी शक्ति का ह्रास हुआ। (६) पुर्तगाली कर्मचारी भ्रष्ट तथा विलासी थे। (७) उन्होंने मुसलमान स्त्रियों से विवाह करना आरम्भ कर दिया। (८) विजयनगर के पतन से भी पूर्तगालियों की शक्ति का ह्रास हुआ—क्योंकि विजयनगर उनके व्यापार का प्रमुख केन्द्र था। (९) व्यापार पर सरकारी नियन्त्रण था। अतः व्यापारी स्वतन्त्र नहीं थे और उन्हें सरकारी नियन्त्रण में ही चलना पड़ता था। (१०) पुर्तगाल के व्यापारी लूट मार की नीति का भी अवलंबन करते थे। वे शान्ति से व्यापार न करके समुद्र में अन्य देशों के व्यापारी जहाजों को लूट लिया करते थे। (११) सोलहवीं शताब्दी में इंगलैंड की समुद्री शक्ति का प्रथम होना भी पुर्तगाल के प्राचीन सामुद्रिक वैभव के नष्ट करने का ही कारण बना। (१२) मुगल सम्राट् शाहजहां का उनसे

कुपित होना। जब शाहजहां दक्षिण का सूबेदार था तब उसकी दासियों से पुर्तगालियों ने छेड़ छाड़ की थी। इससे कुपित शाहजहां ने सम्राट बनते ही उन्हें हुगली नदी से खदेड़ दिया। (१३) ब्रजील की खोज से पुर्तगाली भारत की ओर उदासीन रहने लगे।

डचों का भारत आगमन

१५८१ ई० में हालैण्ड वासियों ने स्पेन के शासक फिलिप द्वितीय (Philip II) से अपनी स्वतन्त्रता प्राप्त कर ली थी। इस स्वतन्त्रता प्राप्ति के उपरान्त उनमें नव-जीवन तथा नव प्रेरणा का उदय हुआ। सन् १५९२ ई० में आम्स्टर्डम के व्यापारियों ने एक कम्पनी स्थापित की और १५९५ ई० में कोरनोलियस हाउट मेन (Cornelius Houtman) भारत के लिए रवाना हुआ वह १५९७ ई० में यहां बहुत सा माल लेकर लौटा। इस सफलता के परिणाम स्वरूप भारत में कई डच कम्पनियां स्थापित हो गईं जो पारस्परिक प्रतियोगिता के कारण १६०२ में ईस्ट इण्डिया कम्पनी के अन्तर्गत विलीन कर दी गईं।

डच लोगों का उद्देश्य भारत में व्यापार करना था और अपने इसी उद्देश्य की पूर्ति में वे व्यस्त रहे। सन् १६०८ ई० में उन्होंने देवेनपटनम् तथा १६१० ई० में कालीकट में व्यापारिक कोठियां बना लीं। इस प्रकार उनकी व्यापारिक कोठियां भारत् में उत्तरोत्तर बढ़ने लगीं। उन्होंने पुर्तगालियों के मलाका (Malacca 1641) तथा कुछ समय पश्चात् लंका (Ceylon) पर अधिकार कर लिया। जब वे भारत में अपनी व्यापारिक कम्पनियां स्थापित करते जा रहे थे उसी समय उनका आधिपत्य पूर्वी द्वीप समूह पर भी जम रहा था। इस प्रकार डचों का भारत व एशिया के दक्षिण पूर्व में व्यापार का क्षेत्र दिनोदिन बढ़ता रहा।

डचों का भारत छोड़ना :—यद्यपि अंग्रेज व डचों में समान धर्म प्रोटेस्टेन्ट होने के कारण आपस में प्रेम भाव बना हुआ था। परन्तु सत्रहवीं शताब्दी के आरम्भ में जब पुर्तगाल वाले भारत में शिथिल हो गये तो व्यापार के हित मे उनका डचों से मनमुटाव रहने लगा। डच लोग अंग्रेजों को लुटेरा नाम से बदनाम करते थे। इसके अतिरिक्त डच लोग भारत तथा पूर्वीय द्वीपों में अपना ही व्यापार करना चाहते थे। अंग्रेजों व डचों के मध्य यह वैमनस्यता १७५९ ई० तक चलती रही। अन्त में डचों को भारत छोड़ना पड़ा और अंग्रेजों का आधिपत्य यहां दृढ़ता से स्थापित हो गया।

डचों की असफलता के कारण :-(१) हालैण्ड को इंगलैण्ड के साथ वैमनस्य करना लाभप्रद प्रमाणित नहीं हुआ (२) पी० ई० रोबर्ट्स के मतानुसार भारत में डच शक्ति का विनाश यूरोप के रणक्षेत्रों में हुआ। (३) हालैण्ड की कम्पनी एक राष्ट्रीय कम्पनी थी। अतः उसमें व्यक्तिगत उत्साह तथा प्रेरणा का अभाव था। (४) डच

लोग आपस में ही एक दूसरे से द्वेष रखते थे। (५) पूर्वी द्वीप समूह के आधीन होने के कारण उन्होंने यहां व्यापार की ओर अधिक ध्यान न दिया और भारत की ओर से मुंह मोड़ लिया। (६) कालान्तर में हालेण्ड की सरकार जहाजी बेड़े पर उतना खर्च नहीं करने लगी जितना पहले करती थी।

अंग्रेजों द्वारा ईस्ट इण्डिया कम्पनी की स्थापना

अंग्रेज, जिन्होंनें भारत में लगभग दो सौ वर्ष तक राज्य किया, वे भारत में १७ वीं शताब्दीं के आरम्भ में आये थे। इंगलैण्ड जो द्वितीय महायुद्ध के पूर्व तक विश्व में सर्वाधिक साम्राज्यवादी तथा शक्तिशाली देश बना हुआ था, उसका उत्थान १६ वीं शताब्दी के आरम्भ मे हुआ था। हेनरी सप्तम (Henry VII) के पूर्व इंगलैण्ड का नाम विश्व में तो क्या यूरोप में भी विशेष नहीं था। टयूडर वंश के शासकों ने इंगलैण्ड का मान यूरोपीय देशों में बढ़ाया। इस वंश की अन्तिम शासिका एलिजाबेथ प्रथम (Elizabeth I) थी। उसके शासन काल में इंगलैण्ड का सर्वांगीन विकास हुआ। यह इसी का शासन काल था जब कि इंगलैण्ड की सामुद्रिक शक्ति विश्व में प्रथम बनीं। व्यापार का विकास इतना हुआ कि इसके व्यापारी दूसरे देशों में जाकर कम्पनियाँ स्थापित करने लगे। इसी प्रोत्साहन का परिणाम यह निकला कि ३१ दिसम्बर १६०० को वहां कें कुछ व्यापारियों ने भारत में व्यापार करने की अनुमति मांगी और रानी द्वारा वह स्वीकार कर ली गई।

अंग्रेजों का भारत आना तथा व्यापार करने की अनुमति प्राप्त करना :—इंगलैण्ड के व्यापारियों ने भारत में व्यापार करने की अनुमति अपनी रानी से लेकर भारत आने का प्रयास किया। १६०८ ई० में व्यापारियों ने कप्तान हॉकिन्स (Captain Hawkins) को भारत भेजा। वह जहांगीर के दरबार में उपस्थित हुआ और अपने प्रतिद्वन्दी पुर्तगालियों के विरोध करने पर भी उसने सूरत में अंग्रेजों की व्यापारिक कोठी स्थापित करने की अनुमति प्राप्त कर ली। परन्तु यह आज्ञा अस्थाई रही। इस पर १५१५ ई० में इंगलैण्ड से सर टामसरो (Sir Thomes-Roe) भारत आया और उसने जहांगीर से मुलाकात की। उसने मुगल सम्राट से अंग्रेजों के लिए व्यापारिक कई सुविधाएँ प्राप्त कर लीं और मुगल सम्राट ने उनको जन व धन की सुरक्षा का वचन दिया।

ईस्ट इण्डया कम्पनी की स्थापना

वैसे तो ईस्ट इण्डिया कम्पनी (East India Company) की स्थापना रानी एलीजाबेथ प्रथम से अनुमति प्राप्त होते ही हो गई थी। परन्तु भारत में यह

सक्रिय तब हुई जबकि मुगल सम्राट ने अंग्रेजों को भारत में व्यापार करने की आज्ञा दे दी। सर्व प्रथम अंग्रेजी ने सूरत (Surat) में अपनी कोठी स्थापित की। इसके उपरान्त सूरत की कोठी के नियन्त्रण में आगरा, भडौंच तथा अहमदाबाद में कोठियां कायम हुईं। १६२२ ई० में ईरान के शासक की सहायता से अंग्रेजों का आर्मुज पर अधिकार हो गया। आरामगांव तथा मछलीपट्टम अंग्रेजों के व्यापारिक केन्द्र बन गये और १६४० ई० में उन्होंने वर्तमान मद्रास को चन्द्रगिरी के राजा से खरीद लिया। इस प्रकार भारत में जगह जगह अंग्रेजों की व्यापारिक कोठियाँ स्थापित होने लगीं। इसी समय १६६१ ई० में १० पौण्ड वार्षिक पर बम्बई कम्पनी को उनके शासक चार्ल्स द्वितीय (Charles II) से प्राप्त हो गया। इसके पश्चात् अंग्रेजों ने पूर्वी भारत की ओर ध्यान दिया। १६३३ ई० में राल्फ काटराइट नामक अंग्रेज ने हरिहरपुर, बालासोर पर अपनी काठियां स्थापित कीं। १६५१ ई० में हुगली में कम्पनी की एक कोठी स्थापित हुई। कालान्तर में पटना, कासिमबाजार तथा राजमहल में भी अंग्रेजों की कोठियाँ कायम हो गईं। १६९० ई० में कम्पनी ने वर्तमान कलकत्ता खरीद लिया और जिस प्रकार मद्रास पर सेंट जार्ज (St. George) नामक दुर्ग बनाया था, उसी प्रकार कलकत्ते पर फोर्ट विलियम (Fort William) नाम का दुर्ग बनवाया। इस प्रकार ईस्ट इण्डिया कम्पनी का विकास भारत में द्रुतगति से होने लगा।

सयुक्त ईस्ट इण्डिया कम्पनी की स्थापना:--जिस प्रकार इंगलैण्ड की कम्पनी से अन्य देश द्वेष रखते थे उसी प्रकार स्वयं इंगलैण्ड के कुछ व्यापारी भी ईस्ट इण्डिया कम्पनी से डाह करते थे। अतः उन्होंने भी यहां १६९८ ई० में एक दूसरी कम्पनी खोली। अब इंगलैण्ड की दो कम्पनियों में यहां प्रतिद्वन्दता आरम्भ हुई। इसका परिणाम यह हुआ कि दोनों कम्पनियों को घाटा लगने लगा। इस पर १७०८ में दोनों कम्पनियों को संयुक्त कर दिया गया और उसका नाम संयुक्त ईस्ट इण्डिया कम्पनी (United East India Company) रखा गया।

आरम्भिक कठिनाइयां-(१) अंग्रेज लोग भारत में बहुत बड़ी बड़ी आशाएं लेकर आये थे। परन्तु वे जितना सोचते थे उतना उन्हें आर्थिक लाभ न हुआ। इसके विपरीत उन्हें सदैव नुकसान ही होता रहा। इस कारण कम्पनी के समक्ष आर्थिक कठिनाई सदैव बाधा प्रस्तुत करती रहीं।

(२) अंग्रेज भारतीय ढंग से व्यापार करने में दक्ष नहीं थे। अतः उन्हें यहां की व्यापार प्रणाली सीखनी पड़ी।

(३) भारत आने के लिए तथा यहां स्थायी रूप से बसने के लिए अंग्रेजों को सामुद्री मार्गों के नवीन चार्ट तैयार करने पड़े।

(४) कम्पनी के प्रारम्भ में सुयोग्य कर्मचारियों का अभाव था।

(५) उनको यहां अपने प्रतिद्वन्दी पुर्तगाली तथा डचों का सामना करना पड़ा।

(६) आरम्भ में कम्पनी को अपनी सरकार से आर्थिक सहायता प्राप्त न हुई।

(७) १६८८ ई० में बंगाल के सूबेदार शाइस्तखां से अनबन हो जाने के कारण उन्हें मुग़ल सम्राट औरंगजेब का कोपभाजन बनना पड़ा।

फ्रान्सीसियों का भारत आगमन तथा फ्रेंच इण्डिया कम्पनी की स्थापना

फ्रान्स यूरोप में एक शक्तिशाली देश था। परन्तु ज्यों ज्यों इंगलैण्ड शक्तिशाली देश होने लगा, फ्रान्स उससे डाह करने लगा। यही कारण था कि फ्रान्स १६वीं शताब्दी से ही इंगलैण्ड का कट्टर दुश्मन बना हुआ था। जब फ्रान्स की सरकार ने देखा कि इंगलैण्ड के व्यापारी भारत में लाभ उठा रहे हैं तब १६६४ ई० में वहां की सरकार ने भी भारत में फ्रेंच इण्डिया कम्पनी (French India Company) स्थापित की। उन्होने अपनी पहली कोठी १६८० ई० में सूरत में स्थापित की और उसके अगले वर्ष ही उन्होंने मछलीपट्टम में भी अपनी एक कोठी और स्थापित करली। १६७४ ई० में पांडेचेरी पर तथा १६८८ ई० में चन्द्रनगर पर उन्होंने अपनी अन्य कोठियाँ स्थापित कर व्यापार को उन्नत करना चाहा। इस प्रकार फ्रेन्च कम्पनी भी ईस्ट इण्डिया कम्पनो की भाँति भारत में अपना कार्य क्षेत्र विस्तीर्ण करने लगी। १७२५ ई० में माही में फ्रेन्च कम्पनी की एक अन्य कोठी और खुली। फ्रांस की सरकार भी इंगलैण्ड की कम्पनी की भांति भारत में गर्वनर नियुक्त करने लगी।

अंग्रेज व फ्रान्सीसियों का पारस्परिक संघर्ष

जैसा कि हम पूर्व व्यक्त कर चुके हैं कि अंग्रेजों और फ्रान्सीसियों में वैमनस्य की भावना अति प्राचीन थी। वे सदैव एक दूसरे को नीचा दिखाने का प्रयत्न करते थे। जहां अंग्रेज अपनी बस्ती बसाते थे वहीं फ्रान्सीसी भी अपनी बस्ति स्थापित करने का प्रयास करते थे। यदि उन दोनों देशों में यूरोप में किसी कारणवश संघर्ष होता तो वह यूरोप तक ही सीमित नही रहता था। उसके फलस्वरूप वह संघर्ष भारत, अमेरिका तथा अन्य कहीं भी जहां दोनों नेशन रहती थीं, छिड़ जाता था। परन्तु इसके अलावा भारत की परिस्थितियों ने उनमें झगड़े के अन्य कारण भी उत्पन्न कर दिये थे जिनके

कारण दोनों नेशन भारत में परस्पर झगड़ती रहीं और अन्त में यह संघर्ष फ्रान्सीसियों की पूर्ण पराजय में समाप्त हुआ।

संघर्ष के कारण

(१) भारत में उपनिवेश स्थापित करने की चेष्टा:—यद्यपि अंग्रेज और फ्रान्सीसी दोनों ही भारत में व्यापार करने की दृष्टि से आये थे। परन्तु कालान्तर में उनकी नीति में परिवर्तन हो गया। जब फ्रान्स की कम्पनी को विशेष आर्थिक लाभ न हुआ तो उसके प्रबन्धक डूप्ले (Dupleix) के मस्तिष्क में यह विचार आया कि यहां फ्रान्स उपनिवेश की स्थापना क्यों न की जाय? डूप्ले के मस्तिष्क में इस प्रकार के विचार उत्पन्न होने का कारण भारत की तत्कालीन राजनीतिक अवस्था भी थी।

(२) दोनों देशों द्वारा व्यापारिक एकाधिकार स्थापित करने का प्रयास करना:—दोनों देशों की कम्पनियां भारत में व्यापार करना चाहती थीं। एक देश की कम्पनी दूसरी कम्पनी को भारत में व्यापार करते नहीं देखना चाहती थी। व्यापारिक सुविधाएं जितनी स्वयं प्राप्त करना चाहती थीं, उतनी सुविधाएं अन्य कम्पनी के पास नहीं देख सकती थी। इसका परिणाम यह निकला कि फ्रान्स की कम्पनी अंग्रेजों की कम्पनी को तथा अंग्रेज फ्रेन्च ईस्ट इण्डिया कम्पनी को भारत से समूल उखाड़ देना चाहती थी। अतः स्वाभाविक था कि दोनों कम्पनियों में प्रतिद्वन्दता की भावना उत्पन्न हो गयी।

(३) मुगल साम्राज्य का निर्बल होना—दोनों नेशन में द्वेष की भावना तो पहले ही विद्यमान थी परन्तु जब तक शक्तिशाली मुगल सम्राट शासन करते रहे उनमें खुले रूप से संघर्ष करने का साहस नहीं हुआ। अतः ज्योंही अन्तिम शक्तिशाली मुगल सम्राट ने इस जहां से विदा ली कि दक्षिण में जगह जगह उत्पात होने लगे और इनको भी अपनी मनोकामना पूर्ण करने का अवसर प्राप्त हो गया।

(४) यूरोप की प्रतिद्वन्दता:—जैसा कि पहिले बताया गया है कि फ्रांसीसियों और अंग्रेजों में शत्रुता का प्रमुख कारण उनकी यूरोप की प्रतिद्वन्दता थी। यूरोप में दोनों देश एक दूसरे को पछाड़ना चाहते थे। फ्रान्स यूरोप का एक शक्तिशाली देश था। परन्तु इंगलैण्ड धीरे धीरे अपनी शक्ति का विकास कर उसे मात देता जा रहा था।। इसी कारण दोनों देशों के निवासियों को भारत में भी कई बार आपस में लड़ना पड़ा।

(५) डूप्ले का महत्वाकांक्षी होना:—डूप्ले के आगमन से पूर्व फ्रान्सीसियों के मस्तिष्क में कभी यह विचार नहीं आया कि हमें भारत में उपनिवेश की स्थापना

करनी है । डूप्ले एक दूरदर्शी तथा महत्वाकांक्षी पुरुष था । अतः उसने भारत में आते ही एक नीति का सूत्रपात किया जिसके परिणाम स्वरूप दोनों देशों के लोगों में संघर्ष अनिवार्य हो गया ।

प्रथम कर्नाटक युद्ध (१७४६–४८)

दुश्मनी तो दोनों देशों में चली आ रही थी । भारत में विद्यमान दोनों देशों की कम्पनियों में कटुता भी दिनोंदिन वृद्धि पा रही थी । दोनों कम्पनियों के लोग लड़ने के लिए अवसर की तलाश में थे । भाग्यवश १७४० ई० में यूरोप में आस्ट्रिया के उत्तराधिकार (War of Austrian Succession) का युद्ध छिड़ गया । यूरोप के इस युद्ध में इंगलैण्ड और फ्रान्स ने भी एक दूसरे के विरोधी के रूप में भाग लिया । डूप्ले जैसा महत्वाकांक्षी ऐसे अवसर की ताक में बैठा ही था । उसने इस स्थिति का लाभ उठाकर १७४६ ई० में अंग्रेजी कोठियों पर आक्रमण कर दिया ।

घटनाएँ:—डूप्ले के अनुग्रह पर मारिशस (Mauritius) के गर्वनर बोर्जेनिस (La Bourdnnais) ने मद्रास को घेर लिया । ७ जुलाई १७४६ को दोनों सेनाओं में युद्ध हुआ, परन्तु निर्णय कुछ नहीं निकला । इस युद्ध में कर्नाटक का नवाब अनवरूद्दीन (Anwar-ud Din) भी बोला । डूप्ले ने नवाब से वायदा किया कि मद्रास विजय करके वह उसे लौटा देगा । सितम्बर १७४६ को फ्रांसीसियों का मद्रास पर अधिकार हो गया । परन्तु इस विजय से डूप्ले और मारिशस में मतभेद उत्पन्न हो गया । मारिशस ने ४०,००० पोण्ड की रिश्वत लेकर मद्रास अंग्रेजों को लौटाना चाहा । परन्तु डूप्ले इससे सहमत नहीं हुआ और उसने मद्रास पर अपना अधिकार बनाये रखा । अनवरूद्दीन ने वायदे के अनुसार डूप्ले से मद्रास वापिस करने को कहा तो डूप्ले अपने वायदे से मुकर गया । अनवरूद्दीन कुपित हुआ और उसने अपने पुत्र महमूजखां (Mahfuz Khan) के नेतृत्व में एक सेना भेजी । परन्तु वह सेना फ्रांसीसी सेनापति परदस (Paradis) के द्वारा सेन्ट टोम (St. Thome) या अदयर (Adyar) के स्थान पर परास्त हो गई । इतिहासकार डा० ईश्वरी प्रसाद ने अदयर के युद्ध को एक महत्वपूर्ण युद्ध बताया है और लिखा है, "इसने इस बात को प्रदर्शित कर दिया कि तोपखाने से समन्वित सुशिक्षत पैंदल सेना उस सेना से बढ़ कर है जिसमें केवल घुडसवार रहते हैं.................।" इस विजय ले डूप्ले में और उत्साह बढ़ा और उसने सेन्ट डविड St. David) पर आक्रमण कर दिया । परन्तु अंग्रेजों के कड़े मुकाबले के कारण वह अपने उद्देश्य में सफल नहीं रहा । इसी समय बोस्कवेन (Boscowen) की अध्यक्षता में एक जहाजी बेड़ा भारत आ पहुंचा । इससे अंग्रेजों के होंसले और बढ़ गये और उन्होंने मद्रास का बदला लेने की दृष्टि से पांडचेरी

(Pondcherry) पर आक्रमण कर दिया। परन्तु फ्रान्सीसियों ने भी वीरता से पांडचेरी की रक्षा की। इधर जब दोनों ओर शत्रुता बढ़ रही थी कि आस्ट्रिया का उत्तराधिकार युद्ध १७४८ ई० में एलाशपल (**Aix La Chapelle 1748**) की सन्धि से समाप्त हो गया। अतः इस सन्धि के परिणाम स्वरूप भारत में भी प्रथम कर्नाटक युद्ध समाप्त हो गया।

युद्ध के परिणामः—यद्यपि कर्नाटक के इस प्रथम युद्ध से दोनों दलों को विशेष लाभ नहीं हुआ, क्योंकि सन्धि के अनुसार मद्रास भी अंग्रेजों को लौटा दिया गया था। परन्तु इस युद्ध से फ्रांस को अपनी सैनिक शक्ति की महानता स्पष्ट हो गई। अतः यद्यपि इस युद्ध में डूप्ले अपने अभिष्ट की प्राप्ति नहीं कर सका। परन्तु वह अब निरन्तर अपने उद्देश्य पूर्ति के आघात में रहने लगा। इस युद्ध से दोनों कम्पनियों की नीति में परिवर्तन आ गया। उपनिवेश स्थापित करने की भावना से दोनों ओर सैनिक संगठन दृढ़ होने लगे जिसके परिणाम स्वरूप इन्हें अन्य कई युद्ध करने पड़े। इस युद्ध से डूप्ले की कीर्ति फैल गई और फ्रान्सीसियों ने देशी राज्यों के झगडों में पड़ने की नीति का सूत्रपात किया। इसका आगे चलकर भारत के इतिहास पर महान् प्रभाव पड़ा। इतिहासकार सिन्हा तथा बनर्जी (Sinha and Banerjee) ने इस युद्ध के परिणाम के विषय में लिखा है, "यद्यपि अंग्रेजों और फ्रान्सीसियों के बीच प्रथम कर्नाटक युद्ध देखने में महत्वपूर्ण नहीं रहा, परन्तु इस युद्ध ने महान योजनाओं के लिए एक रङ्गमंच तैयार कर दिया जिनको डूप्ले विकसित करने लगा।" प्रो. डोडवेल (Dodwell) ने भी इस युद्ध के महत्व पर प्रकाश डालते हुए लिखा है कि इस युद्ध ने उस राजनैतिक पतन का उद्घाटन कर दिया जो भारतीय राज्य व्यवस्था के हृदय को खा गया था।

डूप्ले (Dupleix)

प्रारम्भिक जीवनः—कर्नाटक के प्रथम युद्ध में फ्रान्सीसियों की ओर से प्रमुख रूप से भाग लेने वाला डूप्ले था। यह बड़ा साहसी एवं दूरदर्शी था। भारत की तत्कालीन शोचनीय राजनीतिक अवस्था पर सर्व प्रथम दृष्टि इसी की पड़ी और इसी ने फ्रेन्च कम्पनी की नीति में परिवर्तन किया था। इसी सहासी वीर का जन्म १६९७ ई० में लैण्डेसीज में हुआ था। इसका पिता फ्रेन्च ईस्ट इण्डिया कम्पनी का डाइरेक्टर जनरल था। अतः उसकी इच्छा थी कि उसका पुत्र एक अच्छा व्यापारी बने। प्रारम्भ में उसने एक नाविक का जीवन व्यतीत किया और उस काल में उसने भारत व अमेरिका की कई यात्राएं की। उसका फल यह हुआ कि सन् १७२० ई० में उसे पांडचेरी की कौंसिल में एक उच्च स्थान मिल गया। १७२६ ई० में उसको पदच्युत कर दिय

गया। परन्तु उसका अभियोग मिथ्या प्रमाणित होने पर उसे १७३० ई० में चन्द्र-नगर की फैक्ट्री का डाइरेक्टर बना दिया गया और १७४२ ई० तक वह इसी पद पर आसीन रहा। यहां उसकी कार्य क्षमता से उसके उच्च अधिकारी उससे बड़े प्रसन्न हुए और १७४२ ई० में उसे पाण्डेचरी का गवर्नर नियुक्त कर दिया।

भारत में फ्रान्सीसी साम्राज्य की स्थापना का प्रयत्नः—डूप्ले वास्तव में एक बड़ा साहसी तथा प्रतिभाशाली व्यक्ति था। वह प्रथम यूरोपियन था जिसकी दृष्टि भारत की दयनीय राजनीतिक अवस्था पर पड़ी और जिसने उससे फायदा उठाना चाहा। उसने सोच लिया था कि व्यापार में हम अंग्रेजों को नहीं पछाड़ सकते हैं। अतः हमें नई दिशा की ओर कदम उठाना चाहिए। वह कदम था भारत में फ्रेन्च साम्राज्य की स्थापना करना। अपने इस उद्देश्य की पूर्ति का शुभ अवसर उसको १७४६ में मिला। उसने मद्रास पर अधिकार कर लिया और सेंट डेविड पर भी अधिकार करना चाहा। परन्तु एला शपल की सन्धि ने उसकी इच्छाओं पर तुषारापात कर दिया। किन्तु इससे वह निराश नहीं हुआ और देशी राज्यों के झगडों में पड़ने की नीति का अवलम्बन कर उसने हैदराबाद तथा कर्नाटक पर फ्रेंच प्रभुत्व स्थापित कर दिया। दूसरे कर्नाटक युद्ध में इसे सफलता प्राप्त नहीं हुई। इस कारण फ्रान्स की सरकार इससे नाराज हो गई और १७५५ ई० उसे फ्रान्स बुला लिया गया। अपने अन्तिम दिन आर्थिक कठिनाइयों में व्यतीत करता हुआ वह १७६३ ई० में इस संसार से विदा हो गया।

उसकी असफलता के कारणः—निस्सन्देह डूप्ले एक योग्य एवं समझदार व्यक्ति था। परन्तु उसमें यह कमी थी कि वह अपनी योजनाओं के निर्माण के समय अपने सीमिति साधनों की ओर ध्यान नहीं देता था। इसके अलावा फ्रान्स की सरकार भी उसके उद्देश्य को पूर्ण करने में अधिक सहायक सिद्ध नहीं हुई। युद्ध छिडने पर फ्रान्स की सरकार यूरोप तथा अमेरिका में अपने हितों की रक्षा की ओर विशेष ध्यान देती थी और भारत के प्रति वह उदासीन रहती थी। इसका एक कारण यह भी था कि डूप्ले बहुधा अपनी योजनाओं को गोपनीय रखता था और यहां तक कि वह अपनी सरकार को भी उनसे अवगत नहीं करता था। फ्रान्स के अन्य कर्मचारी अनुशासन हीनता के कारण डूप्ले का आदेश नहीं मानते थे और डूप्ले धन-लो लुप्त होने के कारण भी काफी बदनाम हो गया था। इन कारणों से वह अपने उद्देश्य में पूरा नहीं हो सका।

डूप्ले का इतिहास में स्थानः—इसमें कोई सन्देह नहीं कि डूप्ले अपने

उद्देश्य में पूर्ण असफल रहा। परन्तु फिर भी उसका इतिहास में स्थान कम महत्वपूर्ण नहीं है। इतिहासकार सरकार एवं दत्ता का कहना है, "भारतवर्ष में फ्रान्सीसी साम्राज्य स्थापित करने की महत्वकांक्षी होने के कारण अपने तन, मन और धन के बलिदान के कारण कुछ वर्षो तक यहां फ्रान्सीसियों की स्थिति को दृढ़ बनाने तथा अन्य राष्ट्रों में फ्रान्स का गौरव बढ़ाने में डूप्ले को सफलता मिली। उसके समकालीन अंग्रेज उसे अंगेजी हितों का सबसे बड़ा शत्रु समझने लगे।" डूप्ले के चरित्र पर हम किसी भी दृष्टिकोण से विचार करें। हमें अल्फ्रेड लायल का यह कथन "अठारहवीं शताब्दी में अंग्रेजों तथा फ्रान्सीसियों के बीच समुद्र पार के साम्राज्य के लिए किये गये लम्बे तथा कठिन संघर्ष के संक्षिप्त भारतीय घटना चक्र में वह सबसे अधिक चमत्कार पूर्ण व्यक्ति था" उचित जान पड़ता है।

द्वितीय कर्नाटक युद्ध (१७४९–५४)

प्रथम कर्नाटक युद्ध बिना किसी निर्णय के समाप्त हो गया था। परन्तु फ्रान्स-सीसियों और अंग्रेजों दोनों को अपनी अपनी स्थिति का पूरा ज्ञान हो गया था। उधर डूप्ले अंग्रेजों पर दांत पीस रहा था और इधर अंग्रेज अपनी सुरक्षा के लिए सैन्य बल बढ़ा रहे थे। १७४८ ई० में प्रथम कर्नाटक युद्ध के समाप्त होने के अतिरिक्त भारतीय तीन प्रमुख शासक इस दुनियां से सदैव के लिए विदा हो चुके थे। दिल्ली का मुगल सम्राट मुहम्मद शाह, मराठों का राजा छत्रपति शाहू तथा हैदराबाद का निजाम आसफजाह निजामुल्मुल्क। इन तीनों के मरने से भारत की राजनीतिक अवस्था और भी अशान्त हो गई। मुगल सम्राट के मरने से उत्तर में अव्यवस्था फैल गई। दक्षिण भारत में उस समय मरहठा ही सर्वाधिक शक्तिशाली थे। अतः जब उनका राजा शाहू इस दुनियां से विदा हो गया तो मरहठा राज्य में भी कुछ अव्यवस्था फैली और दक्षिणी में किसी का भी आंतक नहीं रहा; क्योंकि मरहठों से टक्कर लेने वाला हैदराबाद का निजामुल्मुल्क था, और जब वह भी इस लोक में नहीं रहा तब इन विदेशियों को भारत में अपने हाथ पांव फैलाने का अच्छा अवसर मिल गया। निजा-मुल्मुल्क के मरते ही हैदराबाद के उत्तराधिकार का प्रश्न और भी जटिल हो गया। उसका राज्य पाने के लिए उसका द्वितीय पुत्र नाजिर जंग (Nasir Jang) और उसका पौत्र मुजफ्फर जंग (Muzaffar Jang) प्रयास करने लगे। एक राज्य के दो उत्तिराधिकारी होने से फ्रान्सीसियों को हैदराबाद के मामले में बोलने का अवसर मिल गया। मुजफ्फर जंग ने कर्नाटक के नवाब चान्दा साहब (Chanda Sahib) से इस विषय में बातचीत की। चान्दा साहब स्वयं परेशानी

में था क्योंकि कर्नाटक का दूसरा उत्तराधिकारी अनवरूद्दीन (Anwar-ud-din) था। वह स्वयं किसी की सहायता की तलाश में था और डूप्ले से इस विषय में वह वर्तालाप कर रहा था। डूप्ले सहर्ष चांदा साहब तथा मुजफ्फर जंग को सहायता देने को उद्यत हो गया। अतः इस द्वितीय कर्नाटक युद्ध के दो पक्ष चलते हैं!—(१)डूप्ले द्वारा चान्दा साहब की सहायता करना (२) मुज्जफर जंग के लिए हैदराबाद का संघर्ष करना।

घटनाएँ:—डूप्ले ने सर्वं प्रथम चांदासाहब का मार्ग निष्कंटक बनाना चाहा। अतः उसने मुज्जफर जंग की सेना के साथ अगस्त१७४६ ई० में चांदासाहब के विरोधी अनवरूद्दीन पर आक्रमण कर दिया तथा उसकी सेना को अम्बर (Amber) पर परास्त कर दिया। अनवरूद्दीन बन्दी बनाया गया और उसे मौत के घाट उतार दिया गया। किसी प्रकार उसका पुत्र मुहम्मदअली (Mohammad Ali) भग गया और उसने त्रिचनापली (Trichnapoly) के किले में शरण ली। यहां उसने अंग्रेजों से सहायता की याचना की। अंग्रेज सहमत हो गये। जब डूप्ले को इस बात का पता चला तो उसने चांदा साहब के साथ त्रिचनापली के घेरा डाल दिया। अब अंग्रेज बड़ी दुविधा में फंस गये।

अकार्ट का घेरा:—त्रिचनापली के किले में अंग्रेज सैनिक बुरी तरह घिर गये और उनको लेने के देने पड़ गये। परन्तु इस समय क्लाइव (Clive) नामक एक लेखक ने अद्भुत वीरता का कार्य किया। वह मौलिक विचारों तथा अपूर्व प्रतिभा का व्यक्ति था। उसने प्रस्ताव रखा कि यदि कर्नाटक की राजधानी अकार्ट (Arcot) पर हमला किया जावे तो यह स्वाभाविक है कि चान्दा सहाब अपनी राजधानी को रक्षा के लिए अवश्य वहां सेना भेजेंगे और इसका परिणाम यह होगा कि त्रिचनापली का घेरा शिथिल पड़ जावेगा। क्लाइव का प्रस्ताव अंग्रेजों को पसन्द आया। क्लाइव बहुत छोटी सी सेना की टुकड़ी लेकर अर्काट जा पहुंचा। कहते हैं उसके साथ केवल २०० अंग्रेज तथा ३०० भारतीय थे। उसने अर्काट के किले पर अधिकार कर लिया। जब यह खबर चान्दा साहब के पास पहुंची तो चांदा साहब ने अपने पुत्र रजाखां (Reza Khan) के नेतृत्व में सेना भेजी। ५३ दिन तक घेरा पड़ा रहा और राबर्ट क्लाइव वीरता से रजा खां की सेना का सामना करता रहा। त्रिचनापली पर अंग्रेजों ने सैना और भेज दी। फ्रेन्च सेनापति ला (Jacgues Law) वहां कायरता का परिचय दे रहा था। इसका परिणाम यह निकला चान्दा साहब परास्त हो गये और जब वह भग कर तंजोर के सेनापति के यहां पहुंचा तो उसे मौत के घाट उतार दिया गया। इस प्रकार चान्दा साहब की मृत्यु पर मुहम्मद अली को १७५२ में अंग्रेजों ने कर्नाटक का नवाब बना दिया।

जैसा कि बताया जा चुका है कि हैदराबाद की गद्दी के लिए नासिर जंग और मुज्जफर जंग दो उत्तराधिकारी खड़े हुए थे और मुज्जफर जंग की सहायता देने का वायदा डूप्ले ने किया था। फ्रेन्च सहायता उपलब्ध देख नासिर जंग के साथी शनैः उसका साथ छोड़ने लगे और वह अकेला रह गया। इससे मुज्जफर जंग हैदराबाद का निजाम बन गया। उसने फ्रेन्च कम्पनी की बहुत सी सुविधाएं तथा आर्थिक सहायता प्रदान की। परन्तु जब १७५० में चान्दा साहब परास्त हो गये तो नासिर जंग ने भी अंग्रेजों से सहायता मांगी और मेजर लारेन्स (Lawrence) ने उसे ६०० अंग्रेज सैनिक दिए। नासिर जंग ने मुज्जफर जंग पर आक्रमण कर दिया। मुज्जफर जंग बुसी (Bussy) के साथ दक्षिण की ओर रवाना हुआ। किन्तु अचानक १७५१ में वह मार्ग में ही मर गया। बुसी इससे विचलित नहीं हुआ। उसने निजामुल्मुल्क के तृतीय पुत्र सलाबत जंग (Salabat Jang) को हैदराबाद का निजाम घोषित कर दिया। बुसी बड़ा ही योग्य राजनीतिज्ञ था। वह १७५८ तक हैदराबाद में बना रहा उस समय तक हैदराबाद को अपने प्रभुत्व में बनाये रखा।

इन घटनाओं से स्पष्ट हो गया कि अंग्रेजों की शक्ति दिनों दिन बढ़ रही हैं। डूप्ले को अपनी सैन्य-शक्ति का विघटन स्पष्ट हो रहा था। कर्नाटक तो उसके हाथ से चला ही गया था और इसके उपरान्त भी अंग्रेज अन्य स्थानों पर विजयी होते जा रहे थे। परन्तु डूप्ले ऐसे भयंकर समय में भी घबराया नहीं। उसने मुहम्मद अली के विरूद्ध महरठों को भड़काया तथा तंजोर के नरेश को तटस्थ घोषित करने को बाध्य किया। इसके अतिरिक्त इसके भतीजे ने बकवन्दा नामक स्थान पर अंग्रेजी सेना को परास्त किया। परन्तु इन सब होते हुए भी डूप्ले अपनी सरकार को कोप भाजन होने से न बच सका। डूप्ले ने अंग्रेजों व फ्रान्सीसियों के बीच शान्ति सम्मेलन भी कराये। परन्तु वे सब व्यर्थ रहे। अंग्रेज मुहम्मद अली को कर्नाटक का नवाब समझते थे जब कि फ्रान्सीसी नहीं। इसी कारण दोनों दलों में पुनः संघर्ष आरम्भ हो गया। सन् १७५४ ई० में डूप्ले को फ्रान्स बुला लिया गया और उसके स्थान पर फ्रांन्स की सरकार ने गाडह्यू (Godheu) को भारत भेजा। उसने भारत आते ही अंग्रेजों के समक्ष सन्धि-प्रस्ताव रखा। दिसम्बर १७५४ ई० में दोनों दलों में पांडचेरी की सन्धि (Treaty of Pondecherry, 1754) संपन्न हुई जिसकी निम्न शर्तें थीं :—

(१) दोनों कम्पनियों ने देशी नरेशों के बीच न बोलने का वायदा किया और साथ में ही मुगल सम्राट द्वारा प्रदत्त उपाधियों का परित्याग कर दिया।

(२) फ्रान्सीसियों को मछलीपट्टम का अधिकार त्यागना पड़ा।

(३) मद्रास अंग्रेजों के पास रहा।

(४) शान्ति के समय दोनों ओर से नवीन दुर्ग का निर्माण निषेध गया।

सन्धि का महत्व—उपनिवेश की दृष्टि से तो दोनों शक्तिया समान हो गईं क्योंकि फ्रान्सीसियों का प्रभुत्व में हैदराबाद रहा तो अंग्रेजों के प्रभाव में कर्नाटक आ गया। परन्तु यह सन्धि स्पष्ट करती है कि डूप्ले ने जो गत वर्षों में अथक परिश्रम से फ्रांस के लिए उपनिवेश प्राप्त किये थे। वह गोडह्यू ने इस सन्धि से सब वापिस कर दिया। स्वयं डूप्ले ने इस सन्धि के विषय में कहा था, "गोडह्यू ने देश के विनाश तथा राष्ट्र के अपमान पर हस्ताक्षर किये थे।" कहने का तात्पर्य यह है कि इस सन्धि ने फ्रान्स की निर्बलता को स्पष्ट कर दिया।

राबर्ट क्लाइव

द्वितीय कर्नाटक युद्ध में अंग्रेजी मान व प्रतिष्ठा का रखने वाला राबर्ट क्लाइव था। जब कि अँग्रेजी सेना त्रिचनापल्ली में घिरी हुई थी और उसकी दशा अति दयनीय थी, उस विपत्ति के समय में अँग्रेजी सेना को क्लाइव ने अर्काट पर आक्रमण कर के बचाया था। इस निर्भीक सैनिक का प्रारंभिक जीवन प्रशसनीय नहीं था। उसका जन्म २९ सितंबर १७२५ में हुआ था। उसके माता पिता साधारण श्रेणी का था। उन्होने इसे शिक्षित बनाने का प्रयास किया। परन्तु यह प्रत्येक शिक्षण संस्था में अपनी उद्दण्डता के लिए विख्यात रहा। अपनी आयु के बच्चों का सदैव नेतृत्व करना उसे अच्छा लगता था। अन्त में परेशान होकर इसके पिता ने इसे १७४४ ई० में भारत कम्पनी का एक लेखक बनाकर भिजवा दिया।

उद्दण्ड प्रकृति के नवयुवक को एक लेखक का जीवन अच्छा न लगा। अतः इसने पिस्तौल से अपनी आत्महत्या का प्रयास भी किया। परन्तु जब इस निडर नेता का एक पिस्तौल ने भी काम तमाम नहीं किया तो इसने सोचा कि परमात्मा मुझे जीवित रखना चाहता है और मुझ से कोई अवश्य महान कार्य करना चाहता है। इसका यह कथन १७५१ ई० में सत्य सिद्ध हुआ जब कि इसने कुल ५०० सैनिक की सहायता से अर्काट पर अधिकार कर लिया और ५३ दिन तक शत्रु का सामना करता रहा। अर्काट का घेरा राबर्ट क्लाइव के जीवन-उत्थान का प्रथम प्रमुख साधन बना। इसके उपरान्त वह कम्पनी के उच्च व आदरणीय व्यक्तियों में गिना जाने लगा। स्वास्थ्य खराब होने के कारण जब वह १७५४ ई० में इंगलैंड गया तो उसका वहाँ भव्य स्वागत हुआ। १७५५ ई० में वह पुनः भारत आता है और भारत में कम्पनी के सम्राज्य की स्थापना हेतु वह क्या करता है इसका वर्णन अगले अध्याय में किया जावेगा।

तृतीय कर्नाटक युद्ध

डूप्ले के यूरोप चले जाने के उपरान्त दक्षिण भारत में चार वर्ष तक शान्ति रही और अंग्रेज तथा फ्रान्सीसी परस्पर नहीं झगड़े। परन्तु यह बात अवश्य थी कि अंग्रेज अब फ्रान्सीसियों से भयभीत नहीं रहे। इसी बीच में अंग्रेजों को बंगाल के नवाब सिराजुद्दौला से संघर्ष (१७५६) करना पड़ा और प्लासी के युद्ध में उसे परास्त करदिया। इससे बंगाल पर अंग्रेजों का प्रभुत्व स्थापित हो गया और साथ में उनकी सैन्य शक्ति भी और बढ़ गई। उधर यूरोप में १७५६ में ही सप्त वर्षीय युद्ध (Seven Years War) छिड़ गया था और उस युद्ध में भी इंगलैन्ड व फ्रान्स विरोधियों के रूप में लड़ रहे थे। अतः उस युद्ध की सूचना पाते ही भारत में भी दोनों ताकतों ने अपनी शक्ति को सुदृढ़ करना आरंभ कर दिया। सन् १७५८ ई० में फ्रेन्च सरकार ने वीर तथा युद्ध-कुशल काउन्ट लैली (Lally) को युद्ध संचालन हेतु भारत भेजा।

घटनाएँ:—लैली ने भारत आते ही सेंट डेविड (St. David) पर आक्रमण किया और वह उसे अपने अधिकार में कर सकता था। परंतु फ्रान्स नौ सेनापति ने उसका साथ नहीं दिया। वह अकेला ही मद्रास के घेरा डाले पड़ा रहा और अन्त में सफलता नहीं मिलती दिखाई दी तो उसने भूल से हैदराबाद से सेना सहित बुसी को जब बुला लिया। मद्रास को लेने में वे सफल भी नहीं रहे और उधर सलाबत जंग अंग्रेजों से मिल गया, जिसके कारण हैदराबाद से भी फ्रान्सीसियों का प्रभुत्व नष्ट हो गया। लैली जब मद्रास पर अपने मनोरथ में सफल नहीं रहा तो वह पांडचेरी की ओर हट गया। अभाग्यवश उसे १७६० ई० में वाण्डेवाश की लडाई (Battle of Wandiwash) में अंग्रेजी सेनापति सर आयर कूट(Sir Eyre coote) ने परास्त कर दिया। यह युद्ध एक निर्णायक युद्ध माना जाता है।इस युद्ध में बुसी बन्दी बना लिया गया और लैली ने पाण्डचेरी में शरण लेना का प्रयास किया। किन्तु अंग्रेजों ने वहाँ भी आक्रमण कर दिया। लैली इस समय बड़ी कठिनाई में था। उसने इस समय मैसूर के शासक हैदरअली से भी सहायता लेने का प्रयत्न किया। परन्तु सब प्रयास असफल रहने पर उसने १७६१ ई० में हथियार डाल दिये। इस पराजय ने फ्रान्सी-सियों के भाग्य का पासा सदैव के लिए पलट दिये। परास्त लैली जब फ्रान्स गया तो उस पर देश द्रोही का अभियोग चलाया गया और उसे १७६६ ई० में प्राण दण्ड दिया। इस प्रकार हम देखते हैं कि वाण्डेवाश की लड़ाई इतिहास में अत्यन्त महत्व-पूर्ण लड़ाई थी। इस लड़ाई के विषय में मैलसन (Malleson) ने लिखा है, "वाण्डेवाश के युद्ध ने उस महान भवन को,जिसे मार्टिन ड्यूमा तथा डूप्ले ने

निर्मित किया था, ध्वस्त कर दिया।" इस तृतीय कर्नाटक युद्ध की समाप्ति पेरिस की सन्धि से हुई।

पेरिस की सन्धि—यह सन्धि १७६३ ई० में यूरोप में हुई। यह इंगलैण्ड और फ्रान्स के बीच हुई थी, इस सन्धि से यूरोप में सप्त वर्षिय युद्ध तथा भारत में तृतीय कर्नाटक युद्ध समाप्त हुए। इस सन्धि की शर्तें निम्नलिखित थीं:—

(१) फ्रान्सीसियों को उनकी व्यापारिक कोठियों अवश्य वापिस करदी गई थी; परन्तु वहाँ वे सैन्य संगठन नहीं कर सकते थे।

(२) बंगाल में फ्रान्सीसियों का प्रभुत्व सर्वथा नष्ट हो गया।

(३) मुहम्मद अली को फ्रान्सीसियों ने कर्नाटक का नवाब स्वीकार कर लिया।

(४) सलाबत जंग के यहाँ भी फ्रान्सीसियों का प्रभाव नष्ट हो गया।

सन्धि का महत्वः—पेरिस की सन्धि का (Treaty of Paris, 1763) का यूरोप के अतिरिक्त भारतीय इतिहास में भी बड़ा महत्व है। इसनें भारत में वर्षों से चले आ रहे अंग्रेजों व फ्रान्सीसियों के संघर्ष को सदैव के लिए समाप्त कर दिया। इस युद्ध के अन्त में फ्रान्स की सैन्य शक्ति भारत में बिल्कुल निर्बल हो गई और उनका भारत में साम्राज्य-स्थापन का स्वप्न सदैव के लिए नष्ट हो गया। हैदराबाद और कर्नाटक दोनों अंग्रेजों के प्रभुत्व में आ गये। अतः फ्रान्स के लिए अब भारत में कहीं ठिकाना नहीं रहा। केवल चन्द्रनगर, पाण्डेचेरी तथा त्रिचनापल्ली ही फ्रान्स के प्रभुत्व में रहे जो कि भारत के स्वाधीन होनें पर भारत में विलीन हो गये।

फ्रान्सीसियों की पराजय के कारण—फ्रान्सीसी भारत में बड़ी आशाएँ लेकर आये थे। उन्हें यह पूर्व विदित था कि भारत में हमारे प्रतिद्वन्दी पहले पहुँच चुके हैं। उनसे हमारा संघर्ष होना अनिवार्य है। परन्तु उस समय वे अपने को अंग्रेजों से अधिक शक्तिशाली समझते थे। इसलिए वे उनसे संघर्ष करते कभी नहीं हिचकते थे। परन्तु अन्त में इन संघर्षों का परिणाम फ्रान्स के अहित में ही हुआ। इसके कुछ कारण थे जिससे कि वे अंग्रेजों पर विजय प्राप्त नहीं कर सके। उनमें से कुछ निम्नलिखित हैं:—

(१) इंगलैण्ड की शक्तिशाली सामुद्री शक्ति—भारत यूरोप से बहुत दूर था। अतः इतने दूर स्थित भारत पर नियन्त्रण वही देश रख सकता था जिसकी सामुद्रिक शक्ति (Naval power) शक्तिशाली हो। यह शक्ति इंगलैण्ड के पास थी।

(२) फ्रेन्च कम्पनी पर सरकारी नियन्त्रण—सरकारी नियन्त्रण में कुछ कार्य स्वतन्त्रता एवं सफलता से संचालित नहीं हो सकता है। पद पद पर सरकारी हस्तक्षेप से कार्य में विघ्न होता है। यही कारण था कि फ्रेन्च कम्पनी व्यापार में सफल नहीं हो सकी।

(३) फ्रान्स की आर्थिक कठिनाई—आर्थिक कठिनाई फ्रान्स की असफलता का प्रमुख कारण था। सरकार से फ्रेन्च कम्पनी को सहायता मिला नहीं करती थी। इस आर्थिक कठिनाई के कारण फ्रेन्च कम्पनी अपनी किसी भी योजना को सफलता एवं सुचारू रूप से कार्यान्वित नहीं कर सकती थी।

(४) डूप्ले की गोपनीय नीति—निःसन्देह डूप्ले एक दूरदर्शी एवं परिश्रमी गवर्नर था। परन्तु उसमें यह कमी थी कि वह अपनी नीति से किसी भी अवगत नहीं करता था। कभी कभी तो उसकी सरकार भी उसके कार्यों पर स्तंभित रह जाती थी और समय पर उचित सहायता नहीं भेज पाती थी।

(५) फ्रान्स कर्मचारियों में सहयोग की भावना का अभाव था।

(६) बुसी को हैदराबाद से लैली द्वारा बुला लेना उसकी बड़ी भूल थी।

(७) इनके अलावा फ्रान्स की सरकार भी अपने कर्मचारियों के कार्यों का सच्चा मूल्याङ्कन नहीं कर पाती थी। लैली को मृत्यु दण्ड देना फ्रान्स सरकार को उचित नहीं था।

अध्याय–सार

कुस्तुन्तुनिया पर १४५३ में मुसलमानों का अधिकार हो जाने के कारण यूरोपवासियों को भारत आने के लिए स्थल-मार्गों की खोज करनी पड़ी और उसमें पुर्तगाली सर्व प्रथम सफल हुए।

पुर्तगालियों का भारत आगमन:—सर्व प्रथम वास्कोडिगामा भारत आया और उसने कालीकट के नरेश जमेरिन से व्यापार करने की अनुमति प्राप्त करली। उसके उपरान्त डी. अल्मेडा आया उसने भी व्यापार को विस्तृत करने की चिन्ता की। परन्तु जब १५०६ में अलबुकर्क आया तो उसने व्यापार के स्थान पर भारत में साम्राज्य स्थापित करने कि नीति अपनाई। उसने गोवा व ग्रामुर्ज पर अधिकार कर लिया। उसकी मृत्यु के उपरान्त ड्यू तथा डामन पुर्तगालियों के प्रभुत्व में आ गये।

पुर्तगालियों का पतन:—१७ वीं सदी के आरंभ से ही उनकी शक्ति

का ह्रासहोना आरंभ हो गया। उनका क्रूट शासन तथा धर्मान्धता पतन के विशेष कारण थे। इसके अलावा उन्होंने यहाँ जबरन ईसाई बनाना आरंभ कर दिया तथा अन्तर्जातीय विवाह करना शुरु कर दिया। इससे भारतवासी उनसे क्रुद्ध हो गये और अन्त में शाहजहां ने उन पर आक्रमण कर उन्हें भारत छोडने को बाध्य कर दिया।

डचों का भारत आगमन:—पुर्तगालियों के आगमन के उपरान्त डच लोग भारत में व्यापार करने आये। उनका यहाँ पुर्तगालियों से संघर्ष भी हुआ। परन्तु जब वे पूर्वी द्वीप पहुँच गये तो वे भारत के प्रति उदासीन हो गये।

डचों द्वारा भारत छोडना:—अंग्रेजों के साथ वैमनस्य होने तथा पूर्वी द्वीपों को व्यापार का अच्छा क्षेत्र समझने के कारण डचों ने भारत छोड दिया।

अंग्रेजों का भारत आगमन तथा ईस्ट इण्डिया कम्पनी की स्थापना-३१ दिसंबर सन १६०० को इंगलैण्ड के व्यापारियों ने वहाँ की रानी एलीजबेथ प्रथम से भारत में व्यापार करने की अनुमति प्राप्त की। कप्तान हाकिन्स ने जहांगीर से भारत में व्यापार करने की आज्ञा प्राप्त की और पुर्तगालियों के बहकाने से सम्राट ने वह आज्ञा छीनी तो सर टामसरो ने वह पुन: प्राप्त करली।

सर्व प्रथम उन्होंने सूरत में अपनी कोठी कायम की। इसके उपरान्त मद्रास, बम्बई तथा कलकत्ता आदि स्थानों पर। जब यह ईस्ट इन्डिया कम्पनी पर्याप्त उन्नति करने लगी तो इंगलैण्ड के कुछ व्यापारियों यहाँ दूसरी कम्पनी स्थापित की जो १७०८ में एक करदी गई।

प्रारम्भिक कठिनाइयां:—अंग्रेज भारत से पूर्व परिचित नही थे। तथा उन्हें यहां पुर्तगालियों तथा डचों से मुकाबला करना पड़ा। आर्थिक कठिनाई के साथ सुयोग्य कर्मचारियों का अभाव भी कम्पनी को खटकता था।

फ्रान्सीसियों का भारत आगमन तथा फ्रेन्च कम्पनी की स्थापना:—
अंग्रेजों के देख देख फ्रान्सीसी भी भारत आये और १६६४ ई० में उन्होंने यहां फ्रेन्च कम्पनी की स्थापना की। उन्होंने शीघ्र ही पांडचेरी, सूरत, मछलीपट्टम तथा चन्द्रनगर आदि स्थानों पर अपनी कोठियाँ स्थापित करली।

अंग्रेजों व फ्रान्सीसियों के बीच संघर्ष

कारण:—इंगलैण्ड तथा फ्रान्स में पुरानी दुश्मनी थी। दोनों भारत में उपनिवेश स्थापित करना चाहते थे तथा व्यापारिक एकाधिकार प्राप्त करना चाहते

थे। दक्षिण भारत की दयनीय अवस्था तथा डूप्ले की महत्वाकांक्षा ने संघर्ष को और भी संभव बना दिया।

प्रथम कर्नाटक युद्ध—यूरोप में आस्ट्रिया के उत्तराधिकार का युद्ध छिड़ते ही भारत में भी युद्ध छिड़ गया। बोर्डोनिस ने मद्रास को घेर लिया। डूप्ले मद्रास ने अपने आधीन कर लिया। इस पर अनवरूद्दीन ने अपने पुत्र महफूज खां को फ्रान्सीसियों से लड़ने भेजा। परन्तु वह अदयर पर परास्त हो गया और इस प्रथम विजय से उत्साहित हो डूप्ले सेंट डेविड की ओर बढ़ा। परन्तु बोस्कवेन के समय पर आ जाने के कारण डूप्ले अपने उद्देश्यों में सफल नहीं रहा। बदला लेने की दृष्टि से उसने पांडचेरी पर आक्रमण किया। परन्तु सफल नहीं हुआ। अन्त में एलाशपल की सन्धि से युद्ध समाप्त हो गया।

युद्ध का परिणाम—इस युद्ध का कोई विशेष परिणाम तो नहीं निकला। परन्तु इस युद्ध से फ्रान्स वाले अपने को अंग्रेजों से अधिक शक्तिशाली' समझने लगे और डूप्ले ने देशी राज्यों के झगडों में बोलना आरम्भ कर दिया।

डूप्ले:—इसका पिता फ्रेन्च कम्पनी का डाइरेक्टर जनरल था। अतः वह डूप्ले को कि अच्छा व्यापारी बनना चाहता था। प्रथम वह एक नाविक रहा और १७२० ई० में पाण्डचेरी की कौंसिल में नियुक्त होकर आया। १७३० ये वह चन्द्र-नगर की फैक्ट्री का डाइरेक्टर बना दिया गया। प्रथम कर्नाटक युद्ध में उसने प्रमुख भाग लिया और वह भारत में फ्रान्सीसी साम्राज्य की स्थापना का प्रयास करने लगा। उसने देशी राज्यों के झगड़े में बोल कर कर्नाटक तथा हैदराबाद पर अपना अप्रत्यक्ष प्रभाव कायम कर लिया। परन्तु कर्नाटक युद्ध की समाप्ति डूप्ले को हानिकारक सिद्ध हुई। वह १७५४ में फ्रान्स बुला लिया गया। उसके अन्तिम दिन दुःख मय व्यतीत हुए।

द्वितीय कर्नाटक युद्धः—डूप्ले ने कर्नाटक का नवाब तो चान्दा साहब को और हैदराबाद का सलाबत जंग को बना दिया। जब डूप्ले चान्दा साहब की सेना के साथ मुहम्मअली को त्रिचनापली के किले में घेरे हुए था तो क्लाइब ने अर्काट पर आक्रमण पर युद्ध का पासा पलट दिया। चान्दा सहाब मारे गये तथा मुहम्मद अली कर्नाटक का नवाब बना दिया गया। हैदराबाद पर बुसी फ्रेन्च प्रभाव बनाये रहा-डूप्ले के जाने पर गोडहयू ने पांडचेरी की सन्धि करली।

राबर्ट क्लाइवः—इसका जन्म १७२५ ई० हुआ था। आरम्भ में उद्दण्ड था। अतः इसके पिता ने इसे कम्पनी का लेखक बनाकर भारत भेज दिया। लेखक के जीवन से ऊब कर उसने आत्महत्या का प्रयास किया। असफल रहने पर उसमें जीने की प्रबल

इच्छा हुई और १७५१ में अर्काट पर आक्रमण कर उसने अपनी प्रतिभा का अपूर्व परिचय दे अपना भविष्य उज्जवल बना लिया।

तृतीय कर्नाटक युद्धः—यूरोप में सप्तवर्षीय युद्ध छिड़ने पर भारत में तीसरा कर्नाटक युद्ध प्रारम्भ हुआ। लैली ने सेंट डविड को जीत पर मद्रास पर आक्रमण किया। बुसी के हैदराबाद से आने पर भी वह सफल नहीं रहा। पांडचेरी पर हथियार डाल दिये और सर आयर कूट से वाण्डेवाश के स्थान पर वह बुरी तरह परास्त हुआ। बुसी बन्दी बनाया गया और लैली को फ्रान्स में देश-द्रोह के अभियोग में मृत्यु का दण्ड दिया गया।

यह युद्ध फ्रान्सीसियों को घातक सिद्ध हुआ। फ्रान्स का प्रभुत्व भारत से सदैव के लिए लुप्त हो गया तथा अंग्रेजों का प्रभुत्व स्थापित हो गया।

फ्रान्सीसियों की पराजय का वर्णन:—फ्रान्स की निर्बल सामुद्रिक शक्ति, दयनीय आर्थिक अवस्था तथा कर्मचारियों में सहयोग की भावना का न होना उनकी कम्पनी के भारत में असफल होने के प्रमुख कारण थे। इसके अलावा डूप्ले की गोपीनीय नीति, सरकार का कम्पनी पर नियन्त्रण तथा बुसी को हैदराबाद से बुला लेना भी फ्रान्स की असफलता मुख्य कारण सिद्ध हुए।

योग्यता-प्रश्न

(१) भारत में पुर्तगीज के उदय के इतिहास तथा पतन के कारणों पर प्रकाश डालिये

Trace the history of the rise of the Portiguese and narrate the causes of their decline in India.

(२) "यद्यपि पुर्तगाल वाले पूर्व में आने वालों में प्रथम थे, तथापि वे भारत में स्थायी उपनिवेश स्थापित नहीं कर सके।" क्यों

"Though the earliest in the east Portuguese could not establish any permanent dominion in India" Why ?

(३) डचों का भारत में क्या उद्देश्य था। वे उन्हें प्राप्त करने में कहां तक सफल रहे?

What were the aims of the Dutch in India ? How far did they succeed in acheiving them.?

(४) सत्रहवी शताब्दी में अंग्रेजी ईस्ट इण्डिया कम्पनी के उदय, उन्नति तथा उसकी प्रारम्भिक कठिनाइयों का संक्षेप मे वर्णन कीजिये।

Trace briefly the origion, growth and the early difficulties of the English East India Com any during the 17 th Century.

(५) अंग्रेजों व फ्रान्सीसियों की प्रति द्वन्दिता के कारणों का उल्लेख कीजिए।

Narrate tha causes of the Anglo French Rivalry.

(६) डूप्ले के आधीन फ्रांसीसी सत्ता की उन्नति का विशेष उल्लेख करते हुए उसके चरित्र और नीति का एक समालोचनात्मक अनुमान दीजिये।

Give a critical estimate of Dupleix's character and policy with particular reference to the grouth of French power under him.

(७) ''डूप्ले की योजनाएं शानदार होते हुए भी अनिवार्यतः असफल रहीं।'' ऐसा क्यों?

"The schemes of Dupleix despite their grandeur were doomed to inevitable failure." Why was this?

(८) "क्लाइव के द्वारा अर्काट की प्राप्ति भारत में फ्रांसीसियों तथा अंग्रेजों के मध्य होने वाले संघर्ष में महान परिवर्तक सिद्ध हुई। इस कथन की व्याख्या कीजिये।

"Clive's capture of Arcot proved to be the turning point in the contest between the French and the English. Discuss.

(९) "गोडह्यू ने देश के विनाश तथा राष्ट्र के अपमान पर हस्ताक्षर किए थे।"

उपर्युक्त कथन को ध्यान में रखते हुए द्वितीय कर्नाटक युद्ध के महत्व को बताइये।

"Godehew had signed the ruin of the country and the dishonour of the country."

In the light of above statement sketch the importance of Second Karnatic War

(१०) फ्रेंच ईस्ट इण्डिया कम्पनी भारत में राजनीतिक सत्ता स्थापित करने में क्यों असफल रही?

Explain the reasons for the failure of the French East India Company to establish political power in India

अध्याय तेरहवां

बंगाल में ब्रिटिश कम्पनी द्वारा राज्य की स्थापना

प्रस्तावनाः—अंग्रेजों का सिराजुद्दौला से सम्बन्ध–प्लासी की लड़ाई अंग्रेज और मीर जाफर–मीर कासिम और कम्पनी के सम्बन्ध, बक्सर की लड़ाई-क्लाइव का भारत में दूसरा आगमन, बंगाल में दोहरा शासन प्रबन्ध–क्लाइव के कार्यों का मूल्याङ्कन।

प्रस्तावनाः—बंगालकी स्थिति भारत में महत्वपूर्ण समझी जाती है। वह भारत की राजधानी दिल्ली से दूर रहता है। इस दूरी का फायदा वहाँ के सूबेदार बहुधा अपने को स्वतन्त्र शासक रूप में बनाने के लिए करते आये हैं। परन्तु औरंगजेब एक शक्तिशाली सम्राट था। उसने बंगाल पर पूर्ण नियन्त्रण प्राप्त कर लिया था। किन्तु ज्योंही वह इस लोक से विदा हुआ कि बंगाल में पुनः अव्यवस्था फैल गई। औरंगजेब के समय मुर्शीद कुली खाँ (Murshid-kuli-khan) बंगाल का सूबेदार था और सम्राट की मृत्यु पर वही बंगाल का एक स्वतन्त्र शासक बन गया। उसकी मृत्यु के उपरान्त १७२७ ई० में उसका जमाता शुजाउद्दीन बंगाल का नवाब बना और वह भी नाम मात्र का दिल्ली के पराधीन रहा। उसके मरजाने पर उसका पुत्र सरफराज बंगाल का शासक बना। वह थोड़े ही दिन रहा और १७४० ई० में अली वर्दी खाँ (Ali vardi khan) बंगाल का स्वतन्त्र नवाब बन बैठा। अली वर्दी खाँ बड़ा ही योग्य शासक था। उसने अपने सूबे में शान्ति व सुव्यवस्था स्थापित करने का पूरा प्रयास किया। किन्तु बंगाल की तत्कालीन स्थिति तथा मराठों के बंगाल आक्रमण के कारण वह अपने उद्देश्य में पूर्ण सफल नहीं रहा।

बंगाल के शासन में जब इतनी उलट फेर हो रही थी तब वहां स्थित पाश्चात्य व्यापारी भी शान्त नहीं थे। अंग्रेजों ने १७१७ ई० में मुगल सम्राट फर्रुख सियर से बंगाल में निःशुल्क व्यापार करने की अनुमति प्राप्त करली थी। किन्तु उनके साथ ही उनके प्रतिद्वन्दी–फ्रांसीसी तथा डचों ने भी वहाँ अपनी कोठियाँ स्थापित करली थीं। डच अंग्रेजों से द्वेष रखते थे और अंग्रेज व फ्रान्सीसियों में उन दिनों में संघर्ष चल ही रहा था। अतः बंगाल स्थिति अंग्रेजों को भय हुआ

कि फ्रान्सीसी कहीं यहाँ आक्रमण न करदें। अतः वे अपनी सुरक्षा के लिए किला बन्दी करने लगे। अलीवर्दी खाँ को अंग्रेजों का यह कार्य पसन्द नहीं था। वह सदैव उनसे सजग रहता था। वह अंग्रेजों को किले बंदी से रोकना चाहता था। किन्तु मरहठों के आक्रमण के कारण वह ऐसा नहीं कर सका। इसके अलावा उसके कोई पुत्र न होने के कारण भी वह कुछ उदासीन रहता था। उसकी १७५६ ई० में मृत्यु हो गई।

अंग्रेजों का सिराजुद्दौला से सम्बन्ध;—अलीवर्दी खाँ की मृत्यु हो जाने पर सिराजुद्दौला बंगाल का शसक बना। यह अलींवर्दी खाँ की तीसरी पुत्री का पुत्र था। सिराजुद्दौला (Siraj ud-Daula) पर अलीवर्दी खाँ की असीम अनुकम्पा थी। इसीलिए अलीवर्दी खाँ ने सिराजुद्दौला को अपना उत्तराधिकारी नियुक्त किया था। परन्तु सिराजुद्दौला इस समय केवल २४ वर्ष का था। उसे प्रशासन का अनुभव नहीं था। वह स्वेच्छाचारी नवाब था। वह नहीं चाहता था कि अंग्रेज बंगाल में किला बन्दी करें। इस कारण उसके अंग्रेजों से सम्बन्ध अच्छे नहीं रहे।

अंग्रेजों व सिराजुद्दौला में संघर्ष के कारण:—

(१) अंग्रेजों की बंगाल में बढ़ती हुई शक्ति से सिराजुद्दौला सशंकित हो गया था। उसे भय था कि वे किसी दिन बंगाल के स्वामी बन जावेंगे।

(२) सप्त वर्षीय युद्ध के छिड़ते ही जब अंग्रेजों ने पुनः बंगाल में किले बन्दी आरंभ की तो नवाब ने उन्हें मना किया। परन्तु अंग्रेजों ने उसके आदेश की ओर कुछ ध्यान नहीं दिया।

(३) अंग्रेज नवाब का यथोचित आदर नहीं करते थे।

(४) अंग्रेजों ने नवाब के विरोधी एक धनी व्यापारी को शरण दी और नवाब के मांगने पर उसे देने से इन्कार कर दिया।

(५) निःशुल्क व्यापार के अधिकार का अंग्रेज अनुचित लाभ उठाते थे।

नवाब का अंग्रेजी कोठियों पर आक्रमण—

उपर्युक्त कारणों से नवाब के पास सिवाय संघर्ष के और कोई चारा नहीं रहा। २४ मई १७५६ को सिराजुद्दौला ने कासिम बाजार की अंग्रेजी कोठी पर आक्रमण कर दिया। अंग्रेज रक्षा करने में असफल रहे। नवाब ने उनके साथ वही व्यवहार जो कि राजद्रोहियों के साथ करना चाहिये। इस विजय के उपरान्त नवाब ने कलकत्ता पर धावा बोला। गर्वनर ड्रेक (Drake) तथा सेनापति मिचन (Miohen) कलकत्ते की रक्षा करने में अपने को असमर्थ पा वहाँ से भाग गये।

काल कोठरी की घटना:—जून मास १७५६ ई० में नवाब ने कलकत्ते पर आक्रमण किया और १८ जून को अंग्रेजों का कत्ले ग्राम प्रारंभ हुआ। यद्यपि फ्रान्सीसियों व डचों के बन्दूकबाजों ने नवाब को धोका दे दिया तथापि नवाब विजयी हुआ। पराजय से लज्जित अंग्रेजों के समक्ष कलकत्ते से प्लायन करने के अतिरिक्त कोई चारा नहीं रहा। कहते हैं कि भगते हुए बहुत से अंग्रेज बन्दी बना लिए गये और १४६ बन्दियों को जिसमें स्त्रियाँ व बच्चे भी सम्मलित थे, एक छोटी सी कोठरी में बन्द कर दिए गये। कहते हैं कि वह कोठरी इतनी छोटी है कि उसमें कठिनाई से २३ व्यक्ति ही समा सकते थे। इस पर पाश्चात्य इतिहासकार कहते हैं कि उसमें १४६ व्यक्तियों को बन्द किया गया जिसमें से कुल २३ व्यक्ति जीवित रहे। इस घटना को आजकल एव कल्पित घटना को संज्ञा दी जाती है और वह केवल भारतीयों को अमानुषिक एवं निर्दयी प्रमाणित करने की दृष्टि से। वह कोठरी आज भी कलकत्ते में निर्मित है। भारत के दुलारे व सच्चे देश भक्त सुबाष चन्द्र बोस ने इस कोठरी को भारतीय संस्कृति व सभ्यता पर एक कलंक समझ उसे धराशाही करने के लिए सत्याग्रह भी किया था, परन्तु वे सफल न रहे। इसके अलावा तत्कालीन कम्पनी के विश्वसनीय प्राप्य पत्रों से भी इस घटना के विषय में कोई तथ्य स्पष्ट नहीं होता है।

अंग्रेजों का कलकत्ते पुन अधिकार करना:—१८ जून १७५६ को कलकत्ते पर आक्रमण कर सिराजुद्दौला ने अंग्रेजों को बंगाल छोड़ने के लिए बाध्य कर दिया था। परन्तु इस पराज्य से अंग्रेज बहुत लज्जित हुए और उन्होंने १७५७ ई० में मद्रास से क्लाइव तथा वाटसन (Watson) को बंगाल पर पुन: अधिकार करने भेजा। क्लाइव ने वाटसन की सहायता से जनवरी १७५७ में गंगा किनारे स्थित समस्त अंग्रेजी कोठियों पर अधिकार कर लिया और सिराजुद्दौला से सन्धि करली। इस सन्धि से सिराजुद्दौला को कम्पनी के लिए पुरानी सुविधाएँ देनी पड़ीं और साथ में युद्ध का व्यय भी।

प्लासी की लड़ाई

यद्यपि क्लाइव की वीरता से अंग्रेजों ने कलकत्ते पर पुनः अधिकार कर लिया था तथापि उन्हें नवाब से भय बना हुआ था। अत: क्लाइव ने एक धूतर्ता पूर्ण योजना बनाई जिसे हम नवाब के विरुद्ध उसका षड़यन्त्र कह सकते हैं। उसने सिराजुद्दौला के विरुद्ध उसके सेनापति मीरजाफर (Mirjafar) को राज्य का प्रलोभन देकर बहकाया और साथ में सेठ अमीचन्द्र को धन का लालच देकर अपनी और

मिलाया। सेठ अमीचन्द को धोखा देने की नियत से दो सन्धि पत्र तैयार किए गये। एक सन्धि पत्र सफेद पत्र पर था और दूसरा लाल रङ्ग के पत्र पर। सफेद पत्र जो जाली था उस पर अमीचन्द को धन देने का वचन नहीं दिया गया था। जब इन पत्रों पर वाटसन (Watson) ने हस्ताक्षर नहीं किये तो स्वयं क्लाइव ने उसके भी जाली हस्ताक्षर बना दिए। यह क्लाइव का एक ऐसा कार्य था जिसने उसके सदैव के लिए कलंक का दाग लगा दिया है। जब षड़यन्त्र पूर्ण रूप से रच लिया गया तो क्लाइव नवाब से लड़ाई का बहाना सोचने लगा और अन्त में वह लड़ाई १७५७ ई० में प्लासी के मैदान पर हुई।

लडाई के कारण:—वास्तव में देखा जाय तो इस युद्ध के कोई विशेष कारण नहीं थे। क्लाइव तो किसी न किसी बहाने नवाब से झगड़ा मोल लेना चाहता था। अत: षड़यन्त्र पूरा हो जाने पर उसने नवाब को लिखा कि तुमने सन्धि का उल्लंघन किया है। इसके अतिरिक्त युद्ध के निम्न कारण भी थे।

(१) क्लाइव कलकत्ते की पराजय का बदला लेना चाहता था।

(२) बंगाल में भी वह हैदराबाद तथा कर्नाटक की भांति अपना प्रभुत्व स्थापित करना चाहता था।

(३) क्लाइव स्वयं लालची था। इस युद्ध की विजय से उसे बहुत सा धन मिलने की आशा थी।

घटनाएँ:—क्लाइव ने पत्र द्वारा नवाब को सूचित किया कि तुमने सन्धि की अहवेलना की है। पत्रोत्तर की प्रतीक्षा किये बिना ही वह ३००० सैनिकों के साथ नवाब की राजधानी की ओर रवाना हो गया। नवाब इस परिस्थिति में घबरा गया; क्योंकि उसको अपने दरबारियों के षड़यन्त्र का भी कुछ आभास हो गया था। किन्तु फिर भी उसने मीरजाफर को साथ लेकर युद्ध के लिए प्रस्थान किया। २२ जून की रात्रि थी। इस रात्रि की भारी वर्षा होने के कारण बारूद भीग गई। अतः जब २३ जून को प्लासी के मैदान (Battle of Plassey, 1757) में भयंकर युद्ध हुआ तो नवाब विशाल सेना के होते हुए भी अंग्रेजों का कुछ नहीं बिगाड़ सका। इसका एक कारण तो यह था कि बारूद भीग जाने के कारण तोपें काम न आ सकीं और दूसरे जब भयंकर युद्ध हो रहा था तो नवाब का सेनापति मीरजाफर अपनी सेना के साथ अंग्रेजों से जा मिला। यह देख सिराजुद्दोला युद्ध भूमि से भगा। किन्तु वह मीर जाफर के पुत्र द्वारा २६ जून को मार डाला गया।

युद्ध का महत्व:—यद्यपि प्लासी की लड़ाई दीर्घ काल तक चलने वाली लड़ाई न थीं तथापि इसके प्रभाव अत्यन्त महत्वपूर्ण एवं दीर्घकाल तक रहने वाले

प्रमाणित हुए। एडमिरल वाटसन (Admiral Watson) ने इसे "केवल कम्पनी के लिए ही नहीं वरन् सामान्यतः बृटिश राष्ट्र के लिए असाधरण महत्व का" बतलाया है। इस लड़ाई से बंगाल के नवाबों की स्वतन्त्रता समाप्त हो गई और अंग्रेजों का प्रभुत्व स्थापित हो गया। मीर जाफर बंगाल का नवाब बना जो कि अंग्रेजों के संरक्षण में शासन करने लगा। मीर जाफर ने कम्पनी को २० लाख पौण्ड दिया। इससे कम्पनी की आर्थिक दशा सुधर गई और वह आगे युद्ध संचालन के समर्थ हो गई। प्लासी की विजय भारत में ब्रिटिश सम्राज्य स्थापना की प्रथम सीढ़ी थी। इस विजय के उपरान्त अंग्रेज दक्षिण और उत्तर की ओर निरन्तर बढ़ते गये। बंगाल के प्रभुत्व में आ जाने अंग्रेज मरहठों का सामना करने के भी समर्थ हो गये। इसलिए प्लासी की लड़ाई को भारत में पुरातन युग का अन्त एवं नवीन युग का आरंभ करने वाली समझा जाता है। सरकार (Sarkar) ने लड़ाई के महत्व पर लिखा है, "प्लासी के युद्ध के परिणाम स्वरूप धर्म प्रभावित राज्य का अन्त हो गया। शिक्षा, साहित्य, समाज, धर्म तथा राजनीतिक जीवन में स्फूर्ति उत्पन्न होगई।" अतः इस युद्ध का भारतीय इतिहास में वही महत्व है जो कि पानीपत की पहली लड़ाई का माना जाता है।

अंग्रेज और मीरजाफरः—मीरजाफर बंगाल का नवाब अपने बाहुबल से नहीं बना था। अतः उसे कम्पनी की शक्ति पर ही आश्रित रहना पड़ता था। नवाब बनते ही उसने कम्पनी को १ करोड़ रुपया तथा २४ परगनों का प्रदेश दिया था। इसके अलावा उसने क्लाइव को २,३४, ००० पौण्ड नकद तथा ३० हजार वार्षिक आय की एक जागीर दी थी। इस उपहार के कारण नवाब की आर्थिक दशा अति शोचनीय हो गई। कम्पनी के प्रति अपने वायदे को पूर्ण करने के हेतु उसे बहुत उसे अमूल्य जवाहरात भी बेचने पड़े। इससे उसके राजसी ठाट बाट में न्यूनता आ गई। इस कारण वह अंग्रेजों से दिल ही दिल में नाराज रहने लगा। शासन सत्ता भी पूर्ण रूप से उसके हाथ में न रही। आर्थिक अभाव में वह सेना नहीं रख सकता था। और बिना सेना के कर की वसूली नहीं हो पाती थी। इसके अलावा उसके राज्य की आन्तरिक अवस्था भी अच्छी न थी। हिन्दू नरेश उसके विरुद्ध थे तथा डच लोगों के साथ भी उसके सम्बन्ध अच्छे नहीं थे। १७६० ई० में अलीगोहर (Ali Gohour) ने उस पर आक्रमण और कर दिया। इन सब परिस्थियों के कारण आरम्भ में तो वह अंग्रेजों के हाथ की कठपुतली बन कर ही रहा। परन्तु वास्तव में वह अधिक प्रवीण प्रशासक एवं महत्वाकांक्षी था। अतः वह अधिक दिनों तक कम्पनी के नियन्त्रण में नहीं कर सका।

मीर जाफर को पदच्युत करनाः—जब तक मीर जाफर पर कठिनाइयों का

तांता लगा रहा। वह अंग्रेजों के संरक्षण में शासन करता रहा। क्लाइव ने उसके शत्रुओं को परास्त कर बंगाल में शान्ति स्थापित करने का प्रयास किया। परन्तु ज्यों ही मीर जाफर को शान्ति मिली उसने अंग्रेजो के नियन्त्रण से मुक्ति पाने के लिए डचों से सहायता मांगी। नवाब अपने पुत्र-वध के कारण भी अंग्रेजों से असन्तुष्ट था। कम्पनी के शोषण करने के कारण नवाब की आर्थिक दशा दिनों दिन दयनीय होती जा रही थी। दयनीय आर्थिक दशा के कारण राज्य में चारों ओर अराजकता तथा राज्य कर्मचारियों में भ्रष्टाचार बढ़ता जा रहा था। क्लाइव के इंगलैण्ड चले जाने से विद्रोहियों को सिर उठाने का अवसर मिल गया था। राज्य की इस अव्यवस्था तथा अराजकता का सारा दोष अंग्रेज मीर जाफर के सिर थोपेत थे। इसके अलावा अंग्रेजों ने मीर जाफर पर डचों के साथ मित्रता के सम्बन्ध रखने तथा अली गोहर को सहायता से अंग्रेजों के विरुद्ध षडयन्त्र रचने का भी अपराध लगाया। इस पर कलकत्ता की कौंसिल ने नवाब परिवर्तन का सुझाव रखा। गवर्नर पद पर वन्सिटार्ट (Vanistart) कार्य कर रहा था। उसने मीर कासीम से जो कि सरकारी कार्य से कलकत्ता आया था, २७ सितम्बर १९६० को एक समझौता किया और समझौते को कार्यान्वित करने की दृष्टि से स्वयं मीर कासिम के साथ बंगाल की तत्कालीन राजधानी मुर्शिदाबाद गया और मीर जाफर को गद्दी छोड़ने को बाध्य कर दिया। कुछ इतिहासकारों का कहना है कि मीर जाफर ने जैसा किया वैसा ही फल पाया।

कम्पनी और मीर कासिम—इस नवाबी के परिवर्तन में कम्पनी का प्रमुखहाथ यह था कि बंगाल का ऐसा व्यक्ति नवाब बना रहे जो अंग्रेजों के हाथ की कठपुतली बना रहे और बंगाल में उन्हें नैतिक व अनैतिक कार्य करने से न रोके। मीर कासिम (Mir Qasim) ने नवाब बनते ही २० लाख रुपया कौंसिल के सदस्यों को उपहार स्वरूप तथा कम्पनी को बर्दवान, चटगांव तथा मिदानापुर के जिले दे दिये।

जैसा स्पष्ट किया गया है कि मीर कासिम को नवाब इसी वास्ते बनाया गया था कि वह अंग्रेजों की जीहुजरी करता रहे। परन्तु वह भी एक योग्य तथा कुशल प्रशाशक था। वह बंगाल की अराजकता को दूर कर वहां शान्ति तथा सुव्यवस्था स्थापित करना चाहता था। वह अपनी जनता का अब अधिक शोषण करना नही चाहता था। बंगाल की अराजकता का दोषी वह अंग्रेजों की समझता था। जो निः शुल्क व्यापार की ओट में बंगाल का व्यापार नष्ट कर रहे थे। अतः उसने भी अंग्रेजों के प्रभाव से मुक्त होने का प्रयास किया। सर्व प्रथम उसने अपनी राजधानी का परि-वर्तन किया और उसने मुंगेर (Munghyr) को अपनी राजधानी बनाया। वहां

उसने शनैः शनैः अपनी सैन्य शक्ति को बलवती बनाने का प्रयत्न किया। अंग्रेजों ने जब अपना अनैतिक लाभ न छोड़ा तो मीर कासिम ने अपनी आम जनता को निःशुल्क व्यापार करने की अनुमति दे दी। इससे अंग्रेज बिगड़े और उनके मीर कासिम के साथ सम्बन्ध कटु हो गये । जब एलिस (Ellis) नाम के व्यक्ति ने पटना पर आक्रमण कर दिया तो ीर कासिम ने उसका विरोध किया। परन्तु वह परास्त हुआ और अवध के नवाब शुजाद्दौला (Shuja-ud Daula) की शरण में चला गया।

बक्सर की लड़ाई

मीर कासिम और अंग्रेजों के सम्बन्ध दिनों दिन खराब होते गये और इस कटुता के परिणाम स्वरूप १७६४ ई० में बक्सर की लड़ाई (Battle of Buxar) हुई। इ के कारण निम्नलिखित थे:—

कारण:—(१) मीर कासिम द्वारा कम्पनी के नियन्त्रण से मुक्त होने का प्रयास करना।

(२) पटना में एलिस तथा अन्य अंग्रेजों का कत्ल करवाना।

(३) अवध के नवाब शुजाद्दोला तथा मुगल सम्राट शाह आलम (Shah Alam) से अंग्रेजों के विरुद्ध समझौता करना।

(४) तमाम लोगों को निः शुल्क व्यापार करने का अधिकार देना।

घटनाएँ:—पटना में परास्त हो मीर कासिम अवध चला गया और वहाँ से अवध के नवाब तथा शाह आलम की सेना लेकर नवाबी पुनः प्राप्त करने के लिए वह बंगाल की ओर बढ़ा। मेजर मुनरो (Munro) के नेतृत्व में अंग्रेजी सेना ने अक्टूबर १७६४ ई० में बक्सर के मैदान पर इन तीनों सेनाओं को परास्त कर दिया। मीर कासिम उत्तर की ओर भग गया तथा शाह आलम ने अंग्रेजों से मित्रता करली। अवध के नवाब को पुनः कड़ा (Kara. 1764) पर अंग्रेजों ने परास्त किया और अन्त में उसने इलाहबाद की सन्धि (Treaty of Allahabad) 1765) करली।

सन्धि की शर्तें

(१) अवध शुजाऊद्दौला को लौटा दिया गया, परन्तु इलाहाबाद और कड़ाके जिले उससे छीन लिए गये।

(२) मुगल सम्राट शाह आलम ने कम्पनी को बंगाल, बिहार व उड़ीसा का भूमिकर उगाने का अधिकार दे दिया।

(३) कम्पनी ने अवध के नवाब से प्राप्त इलाहाबाद और कड़ा के जिले शाह-आलम को दे दिए।

(४) मीर जाफर को पुनः बंगाल का नवाब बनाया गया।

लड़ाई का महत्वः—बक्सर की लड़ाई को भी इतिहासकारों ने काफी महत्व-पूर्ण बताया है। इस लड़ाई से ईस्ट इण्डिया कम्पनी को आर्थिक व राजनीतिक दोनों प्रकार के लाभ हुए। यदि प्लासी की विजय से अंग्रेजों को बंगाल की राजनीतिक सत्ता मिली तो बक्सर की लड़ाई से उन्हें समस्त भारत की सत्ता मिलने का द्वार खुल गया। इस विजय से अवध का नवाब तो अंग्रेजों के नियन्त्रण में आ ही गया और साथ में मुगल सम्राट शाह आलम भी इनका दोस्त तथा इनका पेन्शनयाफ्ता बन गया। इसलिए विन्सेन्ट स्मिथ (V. A. Smith) ने इस लड़ाई के सम्बन्ध में लिखा है, "इस विजय ने, जो पूर्ण रूप से निर्णयात्मक थी, प्लासी के कार्य को पूर्ण कर दिया।" बंगाल के प्रशासन पर तो अब पूर्णतया कम्पनी का शासन स्थापित हो गया क्योंकि नवीन समझौते के अनुसार मीर जाफर ने अंग्रेजों के नियन्त्रण में रहना स्वीकार किया और जब वह १७६५ ई० में इस लोक से विदा हो गया तो उसका पुत्र नजमुद्दौला (Nagm-ul-daula) अंग्रेजों का और भी अधिक गुलाम हो गया। उसके शासन-काल में शासन की बाग डोर अंग्रेजों द्वारा नियुक्त मन्त्री (Deputy Subahdar) के हाथों में चली गई, जिसे हटाने का अधिकार नवाब भी का नहीं था। इसलिए रमजे म्यूर (Ramsay Mueir) ने लिखा है कि इसने अन्ततोगत्वा बंगाल को कम्पनी के शासन की बेडियों से जकड़ दिया। सर जेम्स स्टेफन (Sir James stephen) ने तो इस लड़ाई के महत्व को और भी बढ़ा चढ़ा कर दिया है। उसकी मान्यता है कि अंग्रेजों की सत्ता का भारत में प्रारंभ ही इस लड़ाई के बाद हुआ है। इतिहासकार ब्रूम (Broome) के शब्दों में "भारत का भाग्य बक्सर की लड़ाई पर निर्भर था।"

क्लाइव का भारत में दूसरी बार आनाः—प्लासी की लड़ाई के उपरान्त क्लाइव अपना स्वास्थ्य खराब होने के कारण इंगलैण्ड लौट गया था। परन्तु भारत की राजनीतिक अवस्था उसके चले जाने के उपरान्त दिनों दिन बिगड़ती चली गई। उसके उत्तराधिकारी वन्सिटार्ट (Vansitartt) से बंगाल की दशा नहीं सुधरी। वन्सिटार्ट के शासन काल के सम्बन्ध में जोन मल्कोम (John Malcolm) ने इस प्रकार लिखा है " वन्सिटार्ट के चार साल के अयोग्य व निर्बल शासन काल का सा इतना विद्रोही काल किसी भी अंग्रेजी भारतीय इतिहास के पृष्ठ में नहीं रहा।" वह केवल अपनी जेब गर्म करने में रहा और बंगाल में

भ्रष्टाचार तथा अराजकता दिनोंदिन फैलने लगी। ऐसी परिस्थिति में कम्पनी के डाइ-रेक्टरस ने क्लाइव को पुनः १७६५ में बंगाल का गवर्नर बनाकर भेजा।

क्लाइव के सुधार—क्लाइव ने कम्पनी के प्रशासन में सुधार तथा बंगाल की अराजकता के निवारण हेतु निम्न सुधार किए :—

(१) कम्पनी के कर्मचारियों का नवाब से भेंट लेना अवैध घोषित कर दिया गया।

(२) कम्पनी के कर्मचारियों का निजी व्यापार निषेध कर दिया गया।

(३) उसने अफीम व नमक पर एकाधिकार की घोषणा कर उसकी आय से कम्पनी के कर्मचारियों के वेतन में वृद्धि की।

(४) उसने सैनिकों का दोहरा भत्ता बन्द कर दिया।

ये उपर्युक्त कुछ सुधार क्लाइव ने किए। इन सुधारों का कम्पनी के कर्म-चारियों ने कड़ा विरोध किया। विरोध के कारण वह अधिक सुधार नहीं कर सका और १७६७ ई० में पुनः इंगलैण्ड लौट गया। उसके जाने के पश्चात् वर्लेस्ट (Verelst) बंगाल का गवर्नर नियुक्त हुआ और उसने १७६९ तक कार्य किया। परन्तु वह भी एक निर्बल एवं अयोग्य प्रशासक सिद्ध हुआ। उसके उपरान्त कार्टियर (Cartier) बंगाल का गर्वनर नियुक्त हुआ। १७७२ ई० तक वह कार्य करता रहा। परन्तु वह भी एक योग्य प्रशासक सिद्ध न हुआ। क्लाइव के ये दोनों उत्तराधिकारी क्लाइव द्वारा प्रतिपादित दोहरे-शासन के आधार पर ही बंगाल का शासन संचालित करते रहें।

बंगाल का दोहरा शासन-प्रबन्ध

दोहरा-शासन (Dual Government) का अर्थ—सन् १७६५ ई० की इला-हाबाद की सन्धि से कम्पनी को अवध के नवाब से इलाहाबाद और कड़ा के जिले प्राप्त हो गये थे। क्लाइव ने ये दोनों जिले मुगल सम्राट शाह आलम को दे दिए। इससे प्रसन्न होकर सम्राट ने कम्पनी को बंगाल, बिहार व उड़ीसा मे दीवानी अधिकार दे दिए। कंपनी ने इसके बाद मुगल सम्राट को २६ लाख रुपया वार्षिक देना तय किया। बंगाल के नवाब ने दीवानी अधिकार पहले ही कंपनी को दे दिए थे और १७६७में मीरजाफर की मृत्यु पर उसके पुत्र नजमुद्दौला ने निजामत अधिकार भी कम्पनी को अर्पित कर दिए। परन्तु किन्हीं कारणों से कम्पनी ने निजामत के अधिकारों को वहन करना श्रेयः कर नहीं समझा। अतः उसने ये अधिकार भारतीय अधिकारियों को ही, जिन्हें डिप्टी

सूबेदार कहते थे, सौंप दिए। इस प्रकार से बंगाल में लगान की वसूली कम्पनी करती थी और सूबे में न्याय व व्यवस्था रखने का उत्तरदायित्व नवाब पर ही था। क्लाइव द्वारा प्रतिपादित इस प्रकार की शासन प्रणाली को ही इतिहास में दोहरा-शासन प्रबन्ध (Dual Government) कहते हैं। इस प्रकार की शासन-व्यवस्था बंगाल में १७७२ तक चलती रही।

दोहरा-शासन प्रबन्ध का अनुमोदन—जैसा कि इस प्रणाली के दोषों से स्पष्ट होगा कि यह शासन प्रणाली दूषित तथा बंगाल को आर्थिक-संकट की ओर ले जाने वाली थी। परन्तु फिर भी कुछ इतिहासकारों ने इस प्रणाली को समयानुकूल तथा अंग्रेजों का हित करने वाली बताया है। क्लाइव जानता था कि हमें बंगाल पर अपना शासन जमाना है। राजनीतिक सत्ता हमें अपने हाथों में लेनी है। अतः अच्छा हो हम अपनी कम्पनी के कर्मचारीयों को प्रशासन में दक्ष बनालें। यदि वह चाहता तो बंगाल का शासन प्रत्यक्ष रूप से अपने हाथों में ले सकता था। परन्तु इससे कम्पनी पर उत्तरदायित्व आ जाता और उस दशा में भले बुरे को जुम्मेवरी कम्पनी पर आ जाती। अत: कम्पनी को बुराई से बचाने हेतु उसने इस प्रकार बंगाल पर अप्रत्यक्ष रूप से अपना शासन स्थापित किया। इसके अतिरिक्त वह कम्पनी की आर्थिक दशा को सुधारना चाहता था; क्योंकि जिस प्रकार मुगल सम्राट शाह आलम को २६ लाख रुपया वार्षिक देना स्वीकार किया था उसी प्रकार कम्पनी ने बंगाल के नवाब को ५३ लाख रुपया वार्षिक देने का वायदा कर दीवानी अधिकार पूर्ण रूप से अपने अधिकार में कर लिए। अतः यह शासन प्रणाली कम्पनी के हित में अवश्य थी। संक्षेप में हम डाडवेल (Dodwell) के शब्दों में कह सकते हैं कि दीवानी अधिकारों की स्वीकृति से बंगाल को समस्याओं पर पूर्ण नियन्त्रण प्राप्ति के लिए विशेषतया कम्पनी के हितों की रक्षा हो गई तथा इससे औपानिवेशिक कार्यों में भी विधिवत कोई असुविधा नहीं हुई।

दोहरा शासन-प्रथा के दोष—क्लाइव ने इस प्रथा को बंगाल के शासन में सुधार करने हेतु चलाई थी। परन्तु इसका परिणाम विपरीत हुआ। इस प्रकार की शासन प्रणाली से बंगाल में अराजकता तथा अव्यवस्था और बढ़ी। जनता की की कठिनाइयों को सुनने वाला व दूर करने वाला वहां कोई नहीं रहा। इसी समय वहां भयंकर अकाल पड़ा, जिससे बंगाल की तबाही हो गई। बंगाल के विनाश का सारा उत्तरदायित्व इस दोहरे शासन-प्रबन्ध पर ही डाला जाता है; क्योंकि इसमें निम्नलिखित दोष थे:—

उत्तरदायित्व का अभाव—यह एक ऐसी शासन-प्रणाली प्रतिपादित की

की गई थी जिसमें अधिकार तथा उत्तरदायित्व को परस्पर भिन्न कर दिया गया था। वास्तविक सत्ता कम्पनी के हाथ में केन्द्रभूत थी जब कि शासन का समस्त उत्तरदायित्व नवाब के सिर पर था। इस शासन प्रणाली पर कम्पनी के एक कर्मचारी रिचार्ड बेचर (Richard Becher) ने इस प्रकार अपने विचार व्यक्त किए हैं, "जब अंग्रेजों को दीवानी अधिकार प्राप्त हुआ तब सर्व प्रथम उन्होंने जनता से अधिक से अधिक धन वसूल करना चाहा जिससे इंगलेण्ड के डाइरेक्टरों की मांग पूरी हो सके तथा वहां का खर्च चलाया जा सके।" श्री. पी. ई. रोबर्टस (P.E. Roberts) ने इस पद्धति की आलोचना इस प्रकार की है "शक्ति और उत्तरदायित्व के इस अलगाव के कारण शीघ्र ही फिर से उमड़ने वाली पुरानी बुराइयां प्रकट हो गईं।"

व्यापार को क्षति पहुंचना—दोहरे शासन से बंगाल के व्यापार को भी धक्का लगा। कम्पनी के कर्मचारी स्वेच्छाचारी तथा नवाब के नियन्त्रण से मुक्त थे। अतः जब वे बाजार में सामान खरीदने जाते तो व्यापारियों को मन चाहे पैसे देकर आते थे। वे यह नहीं देखते थे कि व्यापारी को इससे कितना नुकसान होगा। विलियम बोल्ट (William Bolt) ने १७७२ ई० में कम्पनी के अत्याचारो का चित्रण करते हुए लिखा है, "जिस समय जिले से माल खरीदना होता है वहां के जमीदार के लिए कलकत्ते के गवर्नर का परवाना भी ले जाते हैं जिसमें जिसके लिए आज्ञा होती है कि गुमास्तों के काम बाधा न डाली जावे वरन् उन्हें यथाशक्ति हर प्रकार की सहायता दें।"

(३) इसमें न्याय का अभाव था—यद्यपि क्लाइव इस शासन प्रणाली मे शासन में सुधार कर आम जनता को न्याय उपलब्धकरना चाहता था। परन्तु वह अपने उद्देश्य में असफल रहा। कम्पनी के कर्मचारियों ने मन माने ढंग से जनता पर जुल्म ढाये और भारतीय कर्मचारी भी अपने स्वामी के प्रति वफादारी प्रदर्शित करने के लिये किसानों से अधिकाधिक धन लेने का प्रयास करते रहे।

(४) यह प्रणाली अव्यावहारिक थी—किसी भी राज्य का कल्याण दोहरे शासन प्रबन्ध से नहीं हो सकता है। डा० नन्दलाल चटर्जी (Dr. Nand Lal Chatterjee) ने स्वयं लिखा हैं, "क्लाइव के द्वारा संस्थापित दोहरा शासन बेतुका तथा अव्यावहारिक था।"

(५) यह शासन प्रणाली अपूर्ण थी—क्लाइव ने इस शासन प्रणाली से कोई भी अधिकार पूर्ण रूप से न तो अपने ही हाथ में लिया और न नवाब को ही दिया।

प्रत्येक विषय विवाद का बन विषय जाता था। जब कोई अभियोग नवाब के समक्ष प्रस्तुत किया जाता तो वह उसे कम्पनी के अधिकार का बताता और जब वही अभियोग कम्पनी के पास भेजा जाता तो कम्पनी उसे नवाब का अधिकार में बता कर टालने का प्रयास करती थी। राबर्टस (Roberts) के मतानुसार क्लाइव कभी भी इस अभियोग से इन्कार नहीं कर सकता कि उसके द्वारा चलाई गई पद्धति अपूर्ण भी थी।"

(६) दरिद्रता की पोषक—इस दोहरे-शासन से सिवाय कम्पनी के कर्मचारियों के किसी की भी आर्थिक दशा नहीं सुधरी। जब सन् १७७० ई० में बंगाल में अकाल पड़ा तो मरे किसानों की हड्डियों से हरे भरे श्यामल खेत श्वेत दृष्टिगत होने लगे थे। परन्तु इस पर भी कम्पनी के कर्मचारियों ने लगान वसूली नहीं छोड़ी। रजा शीताब (Raja Shitab) जो कि डिप्यूटी गर्वनर था, उन्होंने स्वयं ने कम्पनी को सूचित किया था कि प्रति दिन पटना की गलियों में ५० दीन मनुष्य मृत्यु के ग्रास बन जाते हैं। इस अकाल का चित्रण सर हन्टर (W. W. Hunter) बड़े ही दर्दनाक शब्दों में किया। इस प्रकार हम देखते हैं कि इस दोहरे शासन से बंगाल में भुखमरी, अराजकता तथा अव्यवस्था का ही प्रसार हुआ।

क्लाइव का मूल्याङ्कन

व्यक्ति के रूप में—हमने इसके पूर्व अध्याय में स्पष्ट किया कि क्लाइव का आरम्भिक जीवन श्लाघनीय नहीं था। परन्तु जब उसे अर्काट के घेरे में अपनी प्रतिभा दिखाने का अवसर मिला तब कम्पनी में उसकी प्रतिष्ठा एवं उच्चता स्थापित हुई। इसके उपरान्त जब वह इंगलैंड से प्रथम बार गवर्नर नियुक्त होकर भारत आया उसे प्लासी के युद्ध में अपनी बुद्धिमानी दिखाने का अवसर मिला। इस कार्य में नैतिक दृष्टि से वह खरा नहीं उतरता है। उसने अपने इस काल में बताया कि वह धन लोलुप तथा महान् षड़यन्त्रकारी है। उसने अपने व्यक्तिगत रूप में पर्याप्त धन कमाया। कम्पनी के हित के लिए १७५७ ई० उसने सिराजुद्दोला के विरुद्ध महान्-षड़यन्त्र रचा तथा अमीचन्द सेठ को धोखा दिया। इसके जीवन पर निष्पक्षता से विचार करते हुए वी. ए. स्मिथ(V. A. Smith) ने लिखा है,"मुझे यह असम्भव लगता है कि एक निष्पक्ष इतिहास कार इस बात से इन्कार करे कि क्लाइव प्रत्यक्ष रूप से एशियायी कुचक्रों का सामना करने को प्रस्तुत था। इसके विपरीत वह बहुत लोभी था। तथा इसके लिए उसने सिद्धान्तों की तनिक भी परवाह नहीं की।" परन्तु अधिकांश इतिहासकारों ने उसे आवश्यकता से अधिक ऊंचा बताने का प्रयास किया है। जब वह इंगलैण्ड लौटा और जब उस पर वहां कई अभियोग

लगाये गये तब वहां की संसद के सदन(House of Commons)ने यह सिद्ध किया कि क्लाइव ने अपने देश की बहुत बड़ी तथा श्लाघनीय सेवा की हैं। पी. ई. राबर्टस (P. E. Roberts) के शब्दों में, "उसके दोषों के होते हुए भी क्लाइव के सभी शब्दों तथा कार्यों पर उसके व्यक्तित्व की छाप थी।"

सेनापति के रूप में—अर्काट की लड़ाई से पूर्व क्लाइव केवल लेखक के रूप में था और यह कार्य उसकी इच्छा के प्रतिकूल था। उसमें नेतृत्व करने का गुण तो उसकी बाल्यावस्था में ही विद्यमान था। अर्काट को उसने केवल ५०० सैनिकों की सहायता से आधीन कर लिया और तत्पश्चात रजा साहब से ५३ दिन तक किले की रक्षा करता रहा। यह तथ्य स्पष्ट करता है कि वह एक सफल सेनापति था। इस विजय से उसकी इंगलैंड में कीर्ति फैल गई। लार्ड कर्जन (Lord Curzon) ने उसके सफल सेनापतित्व की प्रशंसा करते हुए लिखा है, "युद्ध के अच्छे पारखी कप्तान के समान महान व्यक्तियों से ऐसा सुना गया है कि सैनिक प्रतिभा में वह मार्लबारो के समान तथा तुरेन से भी अधिक बढ़ कर था....।" जिस प्रकार अर्काट में विजय प्राप्त कर उसने कर्नाटक को ब्रिटीश प्रभुत्व में ला दिया दिया था उसी प्रकार उसने १७५७ ई०में प्लासी की लड़ाई में विजय प्राप्त कर बंगाल पर अंग्रेजी पताका लहरा दी। इस विजय से उसकी कीर्ति के चार चांद लग गये। लार्ड चैथम (Lord Chatham) ने उसके इस गुण की प्रशंसा करते हुए उसकी प्रशा के फ्रेडरिकर महान् (Frederick) से समता की है। अतः स्पष्ट है कि क्लाइव एक वीर योद्धा तथा सफल सेनानायक था और यही कारण था कि विजय सदैव उसे माला पहिनाने को उद्यत रहती थी।

एक प्रशासक के रूप में—क्लाइव बंगाल में दो बार गवर्नर नियुक्त हो कर आया। परन्तु इस प्रशासन काल में वह अपने को एक योग्य प्रशासक सिद्ध नहीं कर सका। उसने कम्पनी में व्याप्त भ्रष्टाचार को दूर करने तथा बंगाल की अराजकता व अव्यवस्था को दूर करने के लिए कई सुधार किये। परन्तु उसके सुधार अपूर्ण तथा अव्यावहारिक सिद्ध हुए। उसके सुधारों की सर्वत्र आलोचना हुई। सन् १७७२ ई० में लार्ड हैस्टिंगस क्लाइव के दोहरे-शासन-प्रबन्ध को दूर करने की दृष्टि से भारत भेजा गया था। किन्तु यह सब होते हुए भी वह एक सफल राजनीतिज्ञ था। उसने बंगाल को हथियाने के लिए मीर जाफर तथा नेमीचन्द से जो समझौता किया। वह कम राजनीतिक नहीं था। इलाहाबाद और कड़ा के जिले मुगल सम्राट शाह आलम को देकर बंगाल, बिहार व उड़ीसा की दीवानी प्राप्त कर लेना उसके अपूर्व राजनीतिज्ञ होने का द्योतक है। दोहरे-शासन से चाहे वह बदनाम हुआ हो परन्तु

बंगाल पर ब्रिटिश साम्राज्य स्थापन का यह प्रथम चरण सिद्ध हुआ था। इसलिए लार्ड मैकाले (Lord Macaulay) का यह कथन-"हमारे देश ने शायद ही ऐसे व्यक्ति को जन्म दिया होगा जो शस्त्र और राजनीति दोनों में उससे महान् हो ठीक लगता है।"

इन उपर्युक्त तथ्यों से यह स्पष्ट होता है कि क्लाइव एक असाधारण व्यक्ति था। उसमें कुछ अवगुण अवश्य थे। परन्तु वे अवगुण भी केवल भारतवासियों को ही अहित कर थे न कि ब्रिटिश कम्पनी के कर्मचारियों के लिए। यही कारण था कि उसके इंगलैण्ड लौटने पर जब उस पर नाना प्रकार के अभियोग लगाये गये तो वहां की संसद ने इसके विरुद्ध कोई कार्यवाही करने के स्थान पर उसे 'लार्ड' की उपाधि से विभूषित किया। इससे साफ जाहिर है कि इंगलैण्ड ने उसे कितना महत्वपूर्ण व्यक्ति माना था। किन्तु उसके अन्तिम दिवस भी सुखद व्यतीत न हुए और अन्त में १७७४ में उसने आत्महत्या करके ही अपनी जीवन लीला समाप्त की।

लार्ड क्लाईव ब्रिटिश राज्य का संस्थापक था ?—जब हम इस प्रश्न पर विचार करते हैं तो हमारी दृष्टि मुगल सम्राट बाबर पर जाती है। जिस प्रकार बाबर ने भारत में कई लड़ाइयाँ लडकर मुगल साम्राज्य की नींव रख दी थी ठीक यही कार्य क्लाइव ने किया। उसने अर्काट की लड़ाई जीत कर न केवल कम्पनी के डगमगाते प्रभुत्व को बचाया वरन् कर्नाटक में अप्रत्यक्ष रूप से कम्पनी का प्रभुत्व स्थापित कर दिया। इसी प्रकार प्लासी की लड़ाई जीतकर बंगाल पर ब्रिटिश प्रभुत्व कायम कर दिया। इलाहाबाद की सन्धि से उसने न केवल बंगाल के नवाब को आधीन किया वरन् अवध का नवाब शुजाउद्दौला भी कम्पनी के आधीन हो गया और मुगल सम्राट शाह आलम भी कम्पनी का दोस्त हो गया। उसने कम्पनी को तीन सूबों की दीवानी कम्पनी के हवाले कर दी जो कि आगे चलकर भारत में ब्रिटिश साम्राज्य की की स्थापना का एक प्रमुख साधन बना। दोहरे-शासन प्रबन्ध में चाहे अनेक दोष थे परन्तु उससे क्लाइव ने बंगाल के नवाब को पूर्णतया कम्पनी के हाथों में कठपुतली बना दिया और ब्रिटिश प्रभुत्व की स्थापना के लिए एक साधन सिद्ध कर दिया। परन्तु ये शासन सुधार करते हुए भी वह कम्पनी के साम्राज्य को पूरी तरह से बंगाल में जमा नहीं पाया था। उसका यह कार्य उसके उत्तराधिकारियों ने किया। जिस प्रकार बाबर के अपूर्ण कार्य को उसके पौत्र अकबर ने किया था। चाहे क्लाइव पूरी तरह से कम्पनी का राज्य भारत में स्थापित न कर पाया हो-किन्तु अंग्रेजों के मस्तिष्क को इस ओर लगाने वाला तथा भारत में ब्रिटिश राज्य की स्थापना का बीज बोने वाला निःसन्देह वह ही था।

डूप्ले और क्लाइव की तुलनाः—डूप्ले तथा क्लाइव दोनों निर्भीक

योद्धा तथा अच्छे राजनीतिज्ञ थे। लक्ष्मी दोनों को प्रिय थी। व्यक्तिगत रूप से भेंट व जागीर लेने में दोनों नहीं हिचकते थे और इस क्षेत्र में दोनों को पर्याप्त अपयश भी अवश्य प्राप्त हुआ। युद्ध-क्षेत्र में दोनों वीर सिद्ध हस्त योद्धा थे। किन्तु युद्ध संचालन की जितनी कुशलता क्लाइव में थी उतनी डूप्ले में नहीं थी। यही कारण था कि विजयश्री क्लाइव के सदैव चरण चूमती रही जब कि डूप्ले को यदा कदा पराजय का समाना भी करना पडा। भयंकर से भयंकर मुसिबत में दोनो वीर तनिक भी विचलित नहीं होते थे। डूप्ले का प्रधान लक्ष्य भारत में फ्रान्स की राजनीतिक सता स्थापित करना था और ब्रिटिश कम्पनी के डाइरेक्टरस व अन्य उच्चाधिकारियों के मस्तिष्क में इस प्रकार की भावना उत्पन्न करने वाला क्लाइव था। यह सच है कि डूप्ले का मस्तिष्क क्लाइव से अधिक उर्वर था और उसके विचारों में मौलिकता थी। भारत की दयनीय राजनीतिक अवस्था पर सर्व प्रथम उसकी दृष्टि पड़ी थी। परन्तु फिर भी डूप्ले अपने उद्देश्य में असफल रहा जब कि क्लाइव सफल। इसका प्रमुख कारण यह था कि फ्रांस की सरकार ने डूप्ले को सहयोग नहीं दिया जब कि क्लाइव को कम्पनी के समस्त कर्मचारियों का सहयोग प्राप्त था। ये दोनों वीर पुरुष महत्वाकांक्षी थे। अपनी आकांक्षा को पूर्ण करने के निमित वे महान षडयन्त्र रचने को सदैव उद्यत रहते थे। ये सब स्मरणीय कार्य करने के उपरान्त भी अन्तिम दिन दोनों के ही दुःखद के रहे। परन्तु डूप्ले को मरने पर भी इतना यश नहीं मिला जितना कि क्लाइव को इंगलैण्ड तथा भारत में मिला।

अध्याय सार

जब दक्षिणी भारत में कर्नाटक की लड़ाइयाँ चल रही थीं तब बंगाल की राजनीतिक अवस्था दिन पर दिन शोचनीय होती जा रही थी। १७४० ई० में अलीवर्दी खां बंगाल का नवाब बना। वह बंगाल में स्थित ब्रिटिश व्यापारिक कोठियों से असन्तुष्ट था। परन्तु मराठों के आक्रमण के कारण वह अंग्रेजों के विरुद्ध कुछ कर नहीं सका। उसकी मृत्यु हो जाने पर १७५६ ई० में सिराजुद्दौला बंगाल का नवाब बना। वह एक युवक तथा प्रशासन के अनुभव से हीन था। वह अंग्रेजों की किले बन्दी तथा उनके निःशुल्क व्यापार करने से असन्तुष्ट था। अंग्रेज नवाब का यथोचित आदर भी नहीं करते थे। अतः उसने २४ मई १७५६ को अंग्रेजों की कोठियो पर आक्रमण कर दिया और उन्हें बंगाल छोड़ने को बाध्य कर दिया।

प्लासी की लड़ाई:—परन्तु क्लाइव ने वाटसन की सहायता से बंगाल में पुनः अपनी कोठियां अधिकार में करली। सिराजुद्दौला को अपने किये का मजा चखाने के लिए क्लाइव ने मीर जाफर व अमीचन्द से समझौता किया और १७५७

ई० में सिराजुद्दौला को प्लासी के मैदान में परास्त कर दिया। समझौते के अनुसार मीर जाफर बंगाल का नवाब बना और बंगाल पर ब्रिटिश प्रभुत्व स्थापित हो गया। परन्तु मीर जाफर के सम्बन्ध भी अंग्रेजों से अधिक दिन तक अच्छे न रहे। अतः उसका पदच्युत कर मीर कासिम को बंगाल का नवाब बनाया गया।

बक्सर की लड़ाईः—मीर कासिम भी एक महत्वाकांक्षी शासक था। वह कम्पनी के हाथों में कठपुतली बन कर रहना नहीं चाहता था। उसने अंग्रेजों के अनैतिक व्यापार को खत्म करना चाहा। इस पर एलिस नामक अंग्रेज ने उसे बंगाल से निष्कासित कर दिया। इसके उपरांत १७६४ ई० में वह अवध के नवाब सिजाउद्दौला तथा मुगल सम्राट शाह आलम की संयुक्त सेना के साथ बक्सर के स्थान पर अंग्रेजों से युद्ध करने आया। परन्तु वह मुनरो द्वारा परास्त हो गया और युद्ध की समाप्ति इलाहाबाद की सन्धि से हो गई। इस सन्धि से बंगाल अंग्रेजों के प्रभुत्व में हो गया तथा अवध का नवाब भी उनका गुलाम हो गया। इसके अतिरिक्त मुगल सम्राट से तीन सूबा की दीवानी लेकर उससे मित्रता करली।

दोहरा-शासनः—क्लाइव १७६५ ई० में बंगाल का दूसरी बार गवर्नर बन कर आया। बंगाल के शासन में सुधार करने तथा कम्पनी के कर्मचारियों में व्याप्त भ्रष्टाचार को दूर करने की नियत से उसने कई सुधार किए। सैनिकों का डबल भत्ता तथा कम्पनी के कर्मचारियो का निजी व्यापार समाप्त कर दिया। इसके अतिरिक्त इस काल में उसने उल्लेखनीय कार्य यह किया कि बंगाल में दोहरे-शासन की व्यवस्था की। दीवानी कार्य को उसने अपने हाथ में रखा तथा निजामत का कार्य-क्षेत्र उसने अपने नियन्त्रित नवाब के कर्मचारियों पर छोड़ा। यह सुधार अंग्रेजों के हित के दृष्टिकोण से उचित हो सकता है। परन्तु बंगाल के लिए यह अराजकता व दीनता का पोषक सिद्ध हुआ। यह शासन-प्रणाली अव्यवहारिक तथा अपूर्ण थी। इसमें उत्तरदायित्वपूर्ण न्याय का अभाव था। आर्थिक दृष्टिकोण से भी यह प्रणाली भारत-वासियों को हितकर सिद्ध नहीं हुई।

क्लाइव का मूल्यांकनः—क्लाइव प्रारम्भ में एक उद्दण्ड प्रकृति का व्यक्ति था। अर्काट की लड़ाई के उपरांत इसकी प्रतिभा का विकास हुआ। वह एक महत्वाकांक्षी था। व्यक्ति के रूप में उसका इंगलैंड में अच्छा आदर था। यद्यपि उसमें कुछ अवगुण अवश्य थे। परन्तु वे अवगुण भी ब्रिटिश साम्राज्य के हित में ही सिद्ध हुये। सैन्य संचालन में वह एक पटु सेनापति था। युद्ध के दाव पेच वही अच्छी तरह समझता था। युद्ध की सफलता से ही उसके जीवन ने एक नया मोड़ लिया जिसमें कि वह सफल रहा। वह एक अच्छा योद्धा अवश्य था—परन्तु प्रशासन के क्षेत्र

में वह सफल नहीं रहा। फिर भी एक प्रशासक की हैसियत से उसने जो कुछ भी शासन-सुधार किये वे भी अप्रत्यक्ष रूप से भारत में ब्रिटिश सत्ता स्थापित करने में सहायक सिद्ध हुये।

क्लाइव ब्रिटिश साम्राज्य का संस्थापक थाः—अर्काट व प्लासी की लड़ाई जीत कर उसने ब्रिटिश सत्ता भारत में कायम कर दी तथा इलाहाबाद की सन्धि से उसने भारत में ब्रिटिश सत्ता कायम करने का मार्ग सुगम बना दिया।

डूप्ले और क्लाइव की तुलनाः—दोनों पुरुष महत्वाकांक्षी तथा राजनीति-विशारद थे। अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिए वे बड़ा से बड़ा षड़यन्त्र रचने को उद्यत रहते थे। दोनों भारत में राजनीतिक सत्ता कायम करना चाहते थे। क्लाइव इसमें सफल रहा जबकि डूप्ले असफल।

योग्यता-प्रश्न

(१) उन परिस्थितियों का विस्तृत वर्णन कीजिये जिनके कारण बंगाल में अंग्रेजी उपनिवेश की स्थापना हुई।

Explain the circumstances that led to the foundation of British dominion in Bengal.

(२) प्लासी की लड़ाई के क्या कारण थे? उसका भारत की राजनीतिक अवस्था पर क्या प्रभाव पड़ा?

What were the causes of the Battle of Plassey? Show its importance on the political condition of India.

(३) 'प्लासी की विजय ने भारत में अंग्रेजों के हाथ में भारत-विजय की कुंजी दे दी।' इस कथन पर विचार व्यक्त कीजिये।

"The victory of Plassey gave to the English the key to the conquest of India." Explain.

(४) उन परिस्थितियों का वर्णन कीजिये जिनके कारण मीर कासिम और अंग्रेजों में संघर्ष हुआ। आप इसके लिये और इसके परिणामों के लिए मीर कासिम को कहां तक दोषी समझते हैं?

Explain the circumstances that led to the conflict between Mir Kasim and the English. To what extent would you blame Mir Kasim for it and for the consequences?

(५) बक्सर के युद्ध का संक्षिप्त वर्णन कीजिये और उसके राजनीतिक महत्व बताइये।

Give a brief account of the battle of Buxar with particular reference to its political significance.

(६) "भारत में ब्रिटिश सत्ता के उदय के रूप में प्लासी की अपेक्षा बक्सर बहुत उच्च स्थान प्राप्त करने का अधिकारी है।" इस कथन की व्याख्या कीजिए। (जेम्स स्टीफन)

"Buxar deserves far more than Plassey to be considered as the origion of the British power in India." (Sir Jomes Stephen) Explain the above statement,

(७) दोहरे-शासन प्रबन्ध से आप क्या समझते हो ? उसके गुण व अवगुणों का वर्णन कीजिये।

What do you understand by Daul Government ? Describe its merits and demerits.

(८) "उत्तरदायित्व से हीन प्रभुत्व सरकार की सबसे बुरी कल्पना पूर्ण पद्धति है।"
क्लाइव के दोहरे शासन के विशेष प्रसंग में इस उक्ति की समीक्षा कीजिये।

"Power divorced from responsibility is the worst imaginable mode of government."
Explain the dictum with special referance to Clive's dual system.

(९) "क्लाइव दूरदर्शी होने के अपेक्षा अन्तर्दर्शी व्यक्ति था।" उसके बंगाल में किये गये कार्यों को ध्यान में रखते हुये उक्त मत की समीक्षा कीजिये। (डाडवेल)

"Clive was a man of insight rather than of fore Sight."
[Dodwell]
Elucidate this statement in the light of his work in Bengal.

अध्याय चौदह

कम्पनी का राज्य विस्तार

(१७७२—१८५७)

प्रस्तावना:—वारेन हेंस्टिंग्स—शाह आलम के साथ व्यवहार, नंदकुमार का अभियोग, अवध की बेगमों से धन अपहरण करना, राजा चेतसिंह का मामला, रुहेला युद्ध, मैसूर की दूसरी लड़ाई; लार्ड कार्नवालिस—मैसूर की तीसरी लड़ाई, लार्ड वेलेजली — भारत की राजनीतिक अवस्था (सहायक-प्रथा) लार्ड वेलेजली और टीपू सुल्तान, वेलेजली व अवध का नवाब, वेलेजली का तन्जौर, सूरत तथा कर्नाटक के शासकों के साथ व्यवहार, मराठों की दूसरी लड़ाई, वेलेजली का मूल्याङ्कन, १८०५ से १८१३ तक का शान्तिकाल; लार्ड हेस्टिंग्स — नेपाल के साथ युद्ध, पिण्डारियों का दमन, मराठों की चौथी लड़ाई, लार्ड हेस्टिंग्स का मूल्याङ्कन लार्ड एमहर्स्ट—बरमा की पहली लड़ाई, भरतपुर पर अधिकार करना, लार्ड आकलैण्ड और देशी रियासतें, लार्ड एलेनबरा द्वारा सिन्ध को मिलाना, लार्ड हार्डिञ्ज तथा पंजाब, लार्ड डलहौजी —सिक्खों की दूसरी लड़ाई, बरमा की दूसरी लड़ाई, गोद लेने की प्रथा व देशी रियासतें, डलहौजी का मूल्याङ्कन ।

प्रस्तावना:—सन् १७७२ ई० तक बंगाल में लार्ड क्लाइव द्वारा संचालित दोहरा-शासन चलता रहा । यह शासन प्रणाली बंगाल को बहुत ही अहितकर सिद्ध हुई । परन्तु इससे बंगाल के गवर्नर का प्रभाव भारत में बहुत बढ़ गया । उसके आधीन बंगाल, बिहार व उड़ीसा की दीवानी थी । अवध का नवाब बंगाल की पराधीनता में आ चुका था और मुगल सम्राट बंगाल के गवर्नर के साथ मित्रता स्थापित कर चुका था । बंगाल के अतिरिक्त कम्पनी की सत्ता के भारत में दो अन्य केन्द्र थे । उनमें मद्रास केन्द्र भी महत्वपूर्ण था; क्योंकि मद्रास के गवर्नर की कर्नाटक पर तो प्रभुता कायम थी ही और उसके निजाम के साथ भी अच्छे सम्बन्ध थे । दक्षिण में हैदरअली व मराठा लोग ही ब्रिटिश प्रभुता के विरोधी थे । तीसरा केन्द्र बम्बई था । इसका इस समय तक कोई विशेष महत्व नहीं था; क्योंकि भारत का कोई भाग भी उसके आधीन नहीं था । विरोधी मराठा इसी केन्द्र को संकट पैदा कर रहे थे । इन तीनों में एक गवर्नर होता था । ये तीनो गवर्नर परस्पर में स्वतन्त्र थे और इनको

आदेश लन्दन से ही प्राप्त होते थे। परन्तु उस समय यातायात के सुलभ साधन न होने के कारण प्रशासन में बड़ी कठिनाई होती थी। लन्दन से किसी विषय पर भी उत्तर लेना होता तो उसमें एक वर्ष लग जाता था। अतः शासन-व्यवस्था की दृष्टि से बंगाल के गवर्नर को गवर्नर-जनरल बना दिया गया और मद्रास व बम्बई प्रेसीडेन्सी के गवर्नरों को बंगाल के गवर्नर के आधीन कर दिया गया। अतः अब ब्रिटिश कम्पनी की भारत सम्बन्धी नीति कलकत्ते से ही निर्धारित होती थी। बंगाल में व्यापार का एकाधिकार स्थापित हो जाने तथा वहां राजनीतिक प्रभुत्व कायम हो जाने से कम्पनी का हौंसला अब बहुत बढ़ गया। अब कम्पनी का व्यापार करने का उद्देश्य तो गौण रह गया और यहां अपने उपनिवेश स्थापित करने की उसकी प्रबल इच्छा हो गई। कहने का तात्पर्य यह है कि बंगाल पर आधिपत्य होने के उपरान्त कम्पनी की नीति भारत में साम्राज्यवादी रही और उसकी यह नीति १८५७ तक चलती रही। इस नीति के कारण भारत में कम्पनी का साम्राज्य उत्तरोत्तर बढ़ता गया। इस अध्याय में हम बतावेंगे कि भारत के विभिन्न गवर्नर जनरलों के नेतृत्व में शनैः शनैः भारत में कम्पनी का साम्राज्य किस प्रकार विकसित होता रहा।

वारेन हेस्टिंग्स (१७७२–८५)

लार्ड क्लाइव के इंगलैण्ड चले जाने के उपरान्त वर्लस्ट तथा कार्टियर क्रमशः बंगाल के गवर्नर नियुक्त हो कर आये। परन्तु उनसे बंगाल की शोचनीय दशा में कुछ भी सुधार नहीं हुआ और लार्ड क्लाइव का दोहरा-शासन चलता रहा। इस पर कम्पनी के डाइरेक्टरों ने वारेन हेस्टिंग्स (Warren Hastings) को १७७२ ई० में बंगाल का गवर्नर नियुक्त किया। वह भारत में १७८५ तक रहा और उसका शासन काल भी लार्ड क्लाइव की भांति उथल पुथल का ही रहा।

वारेन हेस्टिंग्स का प्रारम्भिक काल:—इस होनहार नवयुवक का जन्म ६ दिसम्बर १७३२ को आक्सफोर्ड शायर में चर्चिल नामक स्थान पर हुआ था। उसकी माता इसके जन्म लेने के कुछ दिन बाद ही इस लोक से विदा हो गई। पिता के प्रेम से भी काल द्वारा वह शीघ्र ही वंचित कर दिया गया। इस प्रकार वारेन हेस्टिंग्स का बाल्यकाल सुख से व्यतीत नहीं हुआ। १७५० ई० में वह एक लेखक के रूप में कलकत्ता पहुंचा। जब सिराजुद्दौला ने कासिम बाजार पर आक्रमण किया था तब यह भी वहां की कौंसिल का सदस्य था और नवाब द्वारा वह बन्दी बना लिया गया था। प्लासी की लड़ाई के उपरान्त जब मीर जाफर का रेजिडेन्ट नियुक्त हुआ

कौंसिल का सदस्य बना दिया। इस पद पर भी उसका कार्य सन्तोष-प्रद रहा और इसके परिणाम स्वरूप उसे १७७२ ई० में बंगाल का गवर्नर नियुक्त किया गया।

वारेन हेस्टिंग का प्रशासन-काल को दो भागों में विभक्त किया जाता है। (१) १७७२-७४, व (२) १७७४-८५। प्रथम काल में उसने एक गवर्नर की हैसीयत से कार्य किया और दूसरा काल में उसने गवर्नर जनरल के पद पर कार्य किया। जिस समय वह गवर्नर नियुक्त हुआ उस समय बंगाल की दशा अत्यन्त शोचनीय थी। परन्तु जैसा कि ऊपर बताया जा चुका है कि वह भारत में कई वर्षों से कार्य कर रहा था। इस कारण वह यहां की दशा से भली भाँति परिचित था तथा प्रशासन-कला में दक्ष था। तत्कालीन दशा में सुधार करने की दृष्टि से उसने कई प्रकार के शासन-सुधार किए जिनका वर्णन अगले अध्याय में किया जावेगा। इस अध्याय में केवल उसकी साम्राज्यवादी नीति पर ही प्रकाश डाला जावेगा।

वारेन हेस्टिंग्स तथा शाह आलम—इलाहाबाद की सन्धि से शाह आलम अंग्रेजों का मित्र बन गया था और अंग्रेजों को उसने बंगाल, बिहार व उड़ीसा के दीवानी अधिकार सौंप दिए थे। इसके बदले कम्पनी ने उसे २६ लाख रुपया वार्षिक देना का वचन दिया था। परन्तु १७७२ ई० में मराठों ने दिल्ली पर आक्रमण किया और शाह आलम को उन्होंने अपने संरक्षण में ले लिया। इसके बदले में शाह आलम ने इलाहबाद और कड़ा के जिले मराठों को अर्पित कर दिए। इस पर वारेन हेस्टिंग्स नाराज हो गया और उसने इलाहाबाद तथा कड़ा पर पुनः अपना अधिकार कर उनको ५० लाख रुपये में अवध के नवाब को बेच दिया। इसके अतिरिक्त मुगल सम्राट को दिया जाने वाला २६ लाख वार्षिक रुपया भी उसने बन्द कर दिया गया।

वारेन हेस्टिंग्स के इस कार्य की कटु आलोचना की जाती है। किन्तु वह राजनीतिक तथा आर्थिक दोनों ही दृष्टि कोण से अच्छा था। कम्पनी को धन की परम-आवश्यकता थी। अतः उधर २६ लाख वार्षिक की कम्पनी को बचत हुई तथा ५० लाख रुपये नकद कम्पनी के कोष में जमा हो गये। राजनीतिक दृष्टि से उसका यह कार्य इसलिए उचित था कि यदि वह सम्राट की धन राशि बन्द नहीं करता तो वह धन एक तरह से मराठों की जेब में ही जाता क्योंकि शाह अलम उनके संरक्षण में चला गया था और उधर मराठों से भी अंग्रेजों के सम्बन्ध अच्छे नहीं थे।

वारेन हेस्टिंग्स तथा नन्द कुमार—यह एक बंगाली ब्राह्मण था और वह मुर्शिदाबाद के नायब दीवान रजा खां (Reza Khan) के अधीन कार्य कर चुका था। जब वारेन हेस्टिंग्स ने रजा खां को पदच्युत कर दिया तो नन्द कुमार

(Nand Kumar) वारेन हेस्टिंग्स से कुपित हो गया और १७७५ ई० में उसने कौंसिल के सदस्यों के समक्ष एक पत्र उपस्थित किया जिससे यह प्रमाणित होता था कि वारेन हेस्टिंग्स ने मीर जाफर की बूढ़ी विधवा मुन्नी बेगम से लाखों रुपये की रिश्वत लेकर उसे अभिवाहक नियुक्त किया था। इसके अलावा नन्द कुमार ने गवर्नर जनरल पर यह भी आरोप लगाया कि रजा खां को पदच्युत उसने लोभ में आकर ही किया है तथा अन्य सरकारी उच्च पद भी उसने बेचे हैं। कौंसिल के सदस्य प्रथम गवर्नर जनरल के विरुद्ध रहे। परन्तु अन्त में नन्दकुमार बन्दी बनाया गया और उसे फांसी के तख्त पर झुला दिया गया।

वारेन हेस्टिंग्स का यह कार्य भी कटु आलोचना के योग्य समझा गया और भारत व इंगलैंड दोनों जगह उसकी इस विषय पर काफी आलोचना हुई। इस घटना के सम्बन्ध में जेम्स मिल (James Mill) ने अपने विचार इस प्रकार व्यक्त किये हैं। "नन्द कुमार की दुखान्त घटना से हेस्टिंग्स की प्रतिष्ठा पर जितना गहरा कलंक लगा उतना संभवतः उसके सम्पूर्ण शासन के अन्य किसी कार्य से नहीं लगा।"

वारेन हेस्टिंग्स तथा राजा चेत सिंह— १७७५ की सन्धि से बनारस अंग्रेजों के हवाले कर दिया गया था। उस समय चेतसिंह वहां का राजा था। मराठों से संघर्ष होने के कारण कम्पनी की आर्थिक दशा अति शोचनीय हो गई थी। अतः हेस्टिंग्स ने चेतसिंह को कुछ धन नकद तथा कुछ घोड़े देने को कहा। जब राजा ने देने में असमर्थता प्रकट की तो उसने राजा पर ५० लाख जुर्माना किया और न देने पर वह स्वयं सेना लेकर बनारस पहुंचा। बनारस पहुंच कर उसने बड़ी कठिनाई से राजा को पदच्युत किया तथा उसके स्थान पर उसके भतीजे से ४० लाख रुपया लेकर उसे वहां का राजा बना दिया।

हेस्टिंग्स के इस कार्य की भारी आलोचना हुई। अंग्रेजों ने उसके इस कार्य का अनुमोदन करने का प्रयास किया है। परन्तु यह तथ्य स्पष्ट है कि हेस्टिंग्स का चेतसिंह के साथ इस प्रकार का व्यवहार उसकी निर्दयता एवं निष्ठुरता का द्योतक था। यह स्वीकार करना पड़ता है। कि हेस्टिंग्स को उस समय धन की सख्त जरूरत थी और उस आवश्यकता की पूर्ति के लिए वह उचित व अनुचित का विचार नहीं कर सका।

वारेन हेस्टिंग्स का अवध की बेगमों के साथ व्यवहार—अवध के नवाब पर कम्पनी का १॥ करोड़ रुपया बकाया हो गया। परन्तु नवाब के पास चुकानेके

लिए धन नहीं था। अतः जब वारेन हेस्टिंग्स ने नवाब को रुपया अदा करने के लिए विवश किया तो नवाब ने हेस्टिंग्स से कहा कि वह धन उस दशा में दे सकता है जबकि उसे उसकी माता तथा नानी के कोष पर अधिकार करने की आज्ञा प्रदान कर दे। वह यद्यपि १७७१ की सन्धि से उन बेगमों को अपनी जागीर तथा कोष अलग रखने का अधिकार प्राप्त हो गया था। परन्तु हेस्टिंग्स ने सन्धि का उल्लंघन करते हुए नवाब को बेगमों के कोष पर अधिकार करने की आज्ञा दे दी। अंग्रेजी सेना ने बेगमों के महल को घेर लिया। बेगमों से जबरन धन छीना गया। वारेन हेस्टिंग्स के इस कार्य को समाज में अनादर की दृष्टि से देखा गया।

इतिहासकार वी. ए. स्मिथ ने वारेन होस्टिंग्स के इस कार्य को समायिक आवश्यकता के आधार पर उचित बताने का प्रयास किया। किन्तु फिर भी हेस्टिंग्स इस कार्य में आलोचना से नहीं बच सकता। पैसे की भूख ने उसे इतना गिरा दिया कि वह औरतों के साथ सख्ती करते हुए भी नहीं हिचका। अल्फ्रेड लायल (Alfred Lyall) ने इस विषय पर अपना मत व्यक्त करते हुए लिखा है "उच्च वंश की स्त्रियों तथा उनके सेवकों के साथ जो नृशंसता का व्यवहार किया गया वह सर्वथा घृणास्पद तथा लज्जाजनक है और उसके अनुमोदन से वह किसी दशा में नही बच सकता।"

रुहेला युद्ध (१७७४)—रुहेलखंड एक अफगानों का प्रदेश था। यह प्रदेश अवध के उतर पश्चिम तथा हिमालय पर्वत के दक्षिण में था। औरंगजेब की मृत्यु के उपरान्त इन अफगानों ने अपना स्वतन्त्र राज्य स्थापित कर लिया। इनके दो सरदार थे दाऊद खाँ तथा (२) हाफिज रहमत खां। पानीपत की तीसरी लड़ाई (Third Battle of Panipat) में रुहलों ने महरठों के विरुद्ध अहमद शाह अब्दाली को सहायता दी थी। इस कारण शक्तिशाली होने पर मराठों ने रुहेलखण्ड पर आक्रमण करना आरम्भ कर दिया। इस आपति से बचने के लिए रुहलों के तत्कालीन सरदार हाफिज रहमत खां (Hafiz Rahmat Khan) ने अवध के नवाब से यह समझौता किया कि यदि मराठे रुहेलखण्ड पर आक्रमण करें तो नवाब उनकी सहायता करेगा और इसके बदले वह नवाब को ४० लाख रुपया देगा। सन् १७७३ ई० में मराठों ने रुहेल खण्ड पर आक्रमण किया। परन्तु किसी कारणवश बिना युद्ध किए ही वे लौट गये। जब रहमत खां ने निश्चित धन देने में अनाकानी की तो नवाब ने इसी प्रकार की सन्धि वारेन हेस्टिंग्स से करली। हेस्टिंग्स के सहमत होने पर नवाब ने

अंग्रेजी सेना के साथ रुहेलखण्ड पर आक्रमण कर दिया। मीरनपुर (Mirenpur) पर हाफिज रहमत खां परास्त हुआ तथा युद्ध में वह काम आया। नवाब की सेना ने रुहेलों पर नाना प्रकार के जुल्म किये और २० हजार रुहेलों को रुहेलखंड से निकाल दिया। नवाब ने रुहेलखण्ड को अवध में मिला लिया तथा कम्पनी को निश्चित धन राशि दे दी।

वारेन हेस्टिंग्स ने रुहेलों के विरुद्ध अवध के नवाब को सहायता क्यों दी? इस प्रश्न को लेकर कम्पनी में एक विवाद खड़ा हो गया। भारतीयों ने तो हेस्टिंग्स की इस नीति की तीव्र आलोचना की ही है। परन्तु अंग्रेज भी इसकी आलोचना किये बिना नहीं रहे जब रुहेलों और अंग्रेजों में किसी प्रकार का वैमनस्य नहीं था तब हेस्टिंग्स ने उनके विरुद्ध सैनिक सहायता क्यों दी? अल्फ्रेड लायल (Alfred Lyall) ने लिखा है, "ब्रिटिश सेनाओं को ऐसे लोगों के विरुद्ध लगाकर जिनके साथ कम्पनी का कोई झगड़ा नहीं था, एक दुर्भाग्यपूर्ण उदाहरण उपस्थित किया गया है।"

मराठों का प्रथम युद्ध—जब मराठे पानीपत की तीसरी लड़ाई में परास्त हो गये थे तब ऐसा समझा जाने लगा था कि मराठा-शक्ति सदैव के लिए समाप्त हो गई। परन्तु जब १७ वर्षीय माधव राव (Madho Rao) पेशवा बना तो मराठों में नवीन शक्ति का स्फुरण हुआ। परन्तु अभाग्यवश १७ नवम्बर १७७२ को उसका देहान्त हो गया। इससे मराठा शक्ति क्षीण एवं विभक्त हो गई। उसकी मृत्यु पर उसका भाई नारायण राव (NarayanRao) पेशवा बना। परन्तु राघोबा (Raghoba) ने अपना मार्ग निष्कंटक करने की नियत से उसका वध करवा दिया। राघोबा अपने उद्देश्य में आसानी से सफल नहीं हुआ। नाना फडनवीस (Nana Farnavis) उसका कट्टर विरोधी हो गया और उसने नारायण राव के नवजात शिशु को पेशवा घोषित कर दिया। इस प्रकार मराठे दो दलों में विभक्त हो गये।

राघोबा अपना उद्देश्य पूर्ण करने के लिए अंग्रेजों की शरण में गया। उसने १७७५ ई० में सूरत की सन्धि (Treaty of Surat) से वचन दिया कि यदि वे उसे पेशवा बना देंगे तो वह सालसट (Salsette) और बेसिन (Basin) के प्रदेश कम्पनी को दे देगा। इसके अतिरिक्त उसने अंग्रेजी सेना का व्यय वहन करना भी स्वीकार किया। परन्तु यह सन्धि बम्बई के गवर्नर ने बिना गवर्नर जनरल(वारेन हेस्टिंग्स) की स्वीकृति के की थी। अतः वारेन हेस्टिंग्स ने १७७६ में पेशवा से पुरन्दर की सन्धि (Treaty Purandhar) की। पेशवा ने भी सहायता के उपहार में ये ही दो प्रदेश (सालसट और बेसिन) अंग्रेजों को देना स्वीकार किया। जब ये दोनों सन्धियाँ

कम्पनी के डाइरेक्टरों के समक्ष प्रस्तुत की गई तो उन्होने सूरत की सन्धि को ही मान्यता प्रदान की। इससे विवश हो वारेन हेस्टिंग्स को भी सूरत की सन्धि पर ही कार्य करना पड़ा।

बम्बई से १७७६ ई० में एक अंग्रेजी सेना रवाना हुई। परन्तु वीर एवं दूरदर्शी नाना फड़नवीस ने उसे तालीगांव पर परास्त किया। परास्त अंग्रेजी सेना को बडगांव की अपमानजनक सन्धि (Treaty of Wadagaon) करनी पड़ी। वारेन हेस्टिंग्स ने इस सन्धि को मान्यता नही दी। उसने शीघ्र ही एक सेना मराठों के विरुद्ध भेजी। जनरल गोडार्ड (Goddard) ने अहमदाबाद पर अधिकार कर लिया। किन्तु जब वह दक्षिण की ओर बढ़ा तो वह मराठों से परास्त हो गया। दूसरी सेना ने मेजर पोपहम (Popham) के नेतृत्व में ग्वालियर पर अधिकार कर लिया। पर इस समय स्थिति और भी जटिल हो गई क्योकि हैदरअली मराठों से मिलने की तैयारी कर रहा था और फ्रांसीसियों ने मराठों से व्यापारिक सन्धि करली थी। अतः हेस्टिंग्स युद्ध समाप्त करना चाहता था। सिन्धिया के बीच बचाव से युद्ध समाप्त किया गया और अंग्रेजों ने मराठों से १७८२ ई० में सालबाई की सन्धि (Treaty of Salbai) की। इस सन्धि की निम्न शर्तें थी—

(१) माधोराव द्वितीय को पेशवा मान लिया गया।

(२) राघोबा की पैन्शन कर दी गई।

(३) अंग्रेजों को सालसट के अतिरिक्त अन्य समस्त विजित प्रदेशों का लौटना पड़ा।

वी. ए. स्मिथ (V. A. Smith) के कथानुसार सालबाई की सन्धि का भारतीय इतिहास में महान महत्व है। यद्यपि इस सन्धि से अंग्रेजो को सिवाय जन और धन की हानि के कुछ भी प्राप्त नहीं हुआ तथापि इस सन्धि मे उनकी शान रह गई। यदि मराठे युद्ध को जारी रखते तो सम्भवतः युद्ध के परिणाम और ही निकलते। इसके अलावा इस सन्धि से अंग्रेजों का मराठों से २० वर्ष तक संग्राम नहीं हुआ और इन बीस वर्षों में उनको अपने शत्रु हैदर अली और निजाम की शक्ति को नष्ट करने का अवसर मिल गया।

मैसूर की दूसरी लड़ाई (१७८०–८४)—१७६९ ई० में अंग्रेजों ने हैदर अली (Haider Ali) से यह वायदा किया था कि यदि अन्य शक्ति उस पर आक्रमण करेगी तो अंग्रेज उसकी सहायता करेंगे। परन्तु जब मराठों ने हैदर अली पर आक्रमण किया तो अंग्रेजों ने उसकी सहायता नहीं की। इस पर हैदर अली अंग्रेजों

से नाराज हो गया और उसने उनसे माही (Mahi) का बन्दरगाह मांगा। अंग्रेजों के इन्कार करने पर उसने उनके विरुद्ध युद्ध घोषणा कर दी।

हैदर अली कर्नाटक तक बढ़ता चला गया और उसे उजाड़ दिया। उसने करनल बेली (Col. Baillie) तथा मनरो की सेनाओं को परास्त कर दिया। किन्तु सर आयर कूट (Sir Eyre Coote)ने १७८१ ई०में हैदर अली को पोर्टोनोवा (Porto Novo) तथा सोलनगढ़(Sholingur)पर परास्त कर दिया। इसी समय वहाँ एक फ्रान्सीसी जहाजी बेड़ा आ पहुंचा। इससे हैदरअली का उत्साह बढ़ गया। किन्तु १७८२ में उसकी आकस्मिक मृत्यु हो गई। हैदर का पुत्र टीपू सुल्तान (Tepu Sultan) भी इस युद्ध में भाग ले रहा था। उसने ब्रेथवेट को परास्त किया। वह भी एक वीर पुरुष था। अतः पिता की मृत्यु पर भी उसने युद्ध जारी रखा। इसी समय सर आयर कूट की मृत्यु हो गई जिससे टीपू की सेना को नव स्फूर्ति प्राप्त हुई। किन्तु जब मराठों से अंग्रेजों ने १७८२ में साल बाई की सन्धि करली तो टीपू को कुछ निराशा हुई और उसने १७८४ ई० में मंगलोर की सन्धि (Treaty of Manglore) करली। इस सन्धि के अनुसार दोनों ने एक दूसरे के विजित प्रदेश लौटा दिये और टीपू कुछ वर्ष तक शान्ति से राज्य करता रहा।

हैदर अली का व्यक्तित्व--हैदर अली एक साधारण परिवार में उत्पन्न हुआ था। उसने अपनी प्रतिभा तथा योग्यता से धीरे धीरे यह पद प्राप्त किया था। वह एक अशिक्षित था। अतः आरम्भ में एक सैनिक था। किन्तु अपनी चतुराई तथा योग्यता से वह मैसूर का राजा बन गया। शासक की दशा में अशिक्षित होते हुए भी उसने अपनी अपूर्व प्रतिभा का परिचय दिया। वह एक सफल राजनीतिज्ञ था। उसने यूरोपीय नवीन सैन्य प्रणाली को अपना कर अपने शत्रु अंग्रेजों को अपने जीवन काल में लोहे के चने चबाये।

इस प्रकार हम देखते हैं कि वारेन हेस्टिंग्स के समस्त प्रशासन-काल में भारत में अनेक लड़ाइयां होती रही। उन युद्धों का संचालन सफलता से कर उसने भारत में कम्पनी के साम्राज्य को विस्तृत एवं सुदृढ़ बनाया। यह सत्य है कि उसमें अनेकों कमजोरियां थीं। उसने भारत में कई ऐसे कार्य किये जो उसे नहीं करने चाहिये थे। परन्तु उसके आगे सर्व प्रथम अंग्रेजों व उसकी कम्पनी का हित था। उसने जो भी निन्दनीय कार्य किए वे केवल कम्पनी की आर्थिक दशा के सुधारने के लिए किए थे। अन्यथा वह एक अनुभवी प्रशासक था। उसके विरोधी बहुत थे। कौंसिल में उसका विरोध होता था। परन्तु इन सब कठिनाइयों के होते हुए भी उसने कम्पनी के मार्ग में

प्रस्तुत कठिनाइयों को दूर किया और भारत में अच्छे तथा व्यवस्थित शासन की नींव डाली। इसलिए पी. ई. रोबर्ट्स (P. E. Roberts) का विचार है "भारत में जितने अंग्रेजों ने शासन किया उनमें हेस्टिंग्स को सर्वोत्कृष्ट स्थान मिलना चाहिए।"

लार्ड कार्नवालिस

कार्नवालिस (Cornwallis) १७८६ ई० में भारत का गवर्नर जनरल नियुक्त होकर आया। वह शान्ति प्रिय था और देशी राज्यों के झगड़ों में हस्तक्षेप नहीं करना चाहता था। जिस समय यह भारत आया था उस समय भारत में तीन शत्रु प्रबल थे-(१) टीपू सुल्तान, (२) मराठे और (३) निजाम। किन्तु निजाम की दशा अति दयनीय थी-क्योंकि उसके राज्य पर टीपू सुल्तान व मराठे दोनों ही हर कभी आक्रमण कर दिया करते थे। अतः वह भी अंग्रेजों से मित्रता चाहता था और कार्नवालिस तीनों शत्रुओं को एक होने से बचाने के लिए निजाम को अपने पक्ष मे रखना चाहता था। परन्तु १७८४ की मंगलोर (Mangalore) की सन्धि इस मित्रता में विघ्न उत्पन्न कर रही थी। अतः कुछ दिनो तक दोनो ही दल असमंजस पड़े रहे।

मैसूर की तीसरी लड़ाई—दूसरी लड़ाई में टीपू सुल्तान परास्त अवश्य हो गया था किन्तु वह अंग्रेजों की शक्ति को समाप्त करने पर तुला हुआ था। वह अपने पिता हैदर की भांति राजनीतिज्ञ नहीं था। अत: बिना अवसर की प्रतीक्षा किए वह अंग्रेजों से पुनः युद्ध ठानने के लिए उद्यत था। वह अंग्रेजों की इस नीति का विरोधी था कि वे निजाम के साथ अच्छे सम्बन्ध रखें। इस कारण उसने ट्रावनकोर के राजा पर आक्रमण कर दिया। ट्रावनकोर का राजा अंग्रेजों के संरक्षण में था। इस कारण शान्ति चाहते हुए भी कार्नवालिस को टीपू पर आक्रमण करना पड़ा।

घटनाएँ—कार्नवालिस ने निजाम व मराठों से सन्धि कर टीपू पर १७९० में आक्रमण कर दिया। १७९१ ई० में उसने बंगलौर (Bangalore) पर अधिकार कर लिया। १७९२ ई० में कार्नवालिस ने टीपू के पहाड़ी दुर्गों पर अधिकार कर लिया और टीपू की राजधानी श्रीरंगपट्टम (Seringapattam) के निकट पहुंच गया। उधर मराठों ने आक्रमण कर उसके राज्य को नष्ट-भ्रष्ट कर दिया। टीपू एक साहसी तथा वीर सेनानायक अवश्य था। परन्तु उसमें तीनों शत्रुओं से एक साथ सामना करने की क्षमता नहीं थी। अतः उसने १७९२ ई० में श्रीरंगपट्टम की सन्धि करली।

ब्रिटिश साम्राज्य
१७६५ ई०
दिल्ली
आगरा
ग्वालियर
इलाहाबाद
चुनार
पटना
कलकत्ता
इन्दौर
नागपुर
पूना
कुरदला
मैसूर
मदरास
पोर्टोनोवो
माही
अंग्रेजी राज्य
अंग्रेजो की संरक्षता में

योरप निवासियों की प्राचीन कोठियाँ
दिल्ली
जमना न०
गंगा न०
नर्मदा न०
गोदावरी न०
कृष्णा न०
नि ज़ा म
कावेरी
कोचीन
बम्बई
पलीकट
अंग्रेज़ा
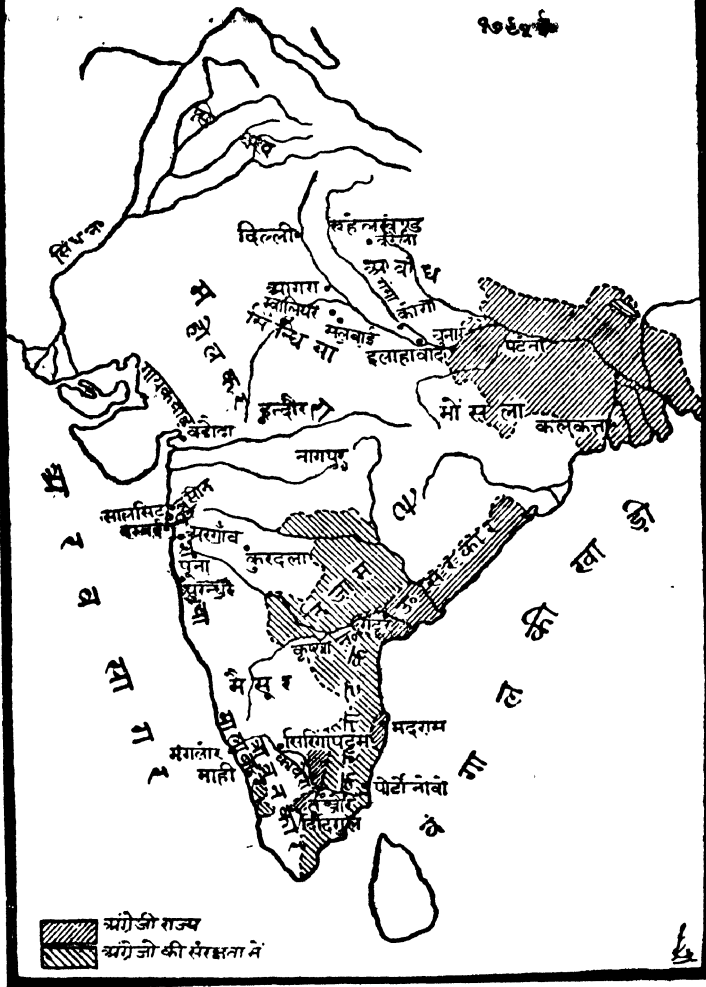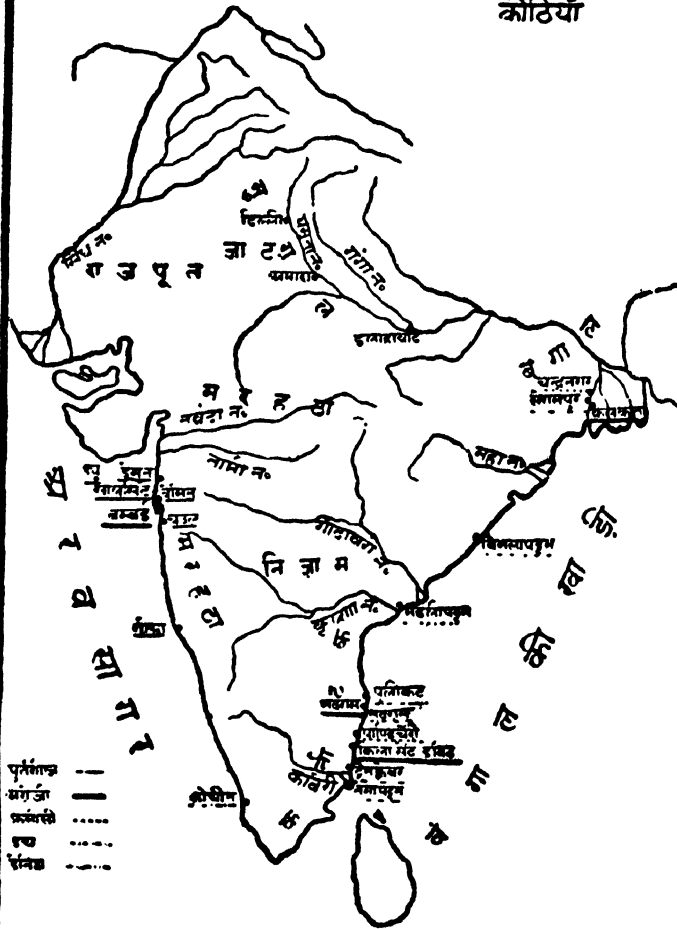
श्रीरंगपट्टम की संधि की शर्तें--

(१) टीपू के आधे राज्य पर अंग्रेजों ने अधिकार कर लिया तथा उसे तीनों मित्रों (मराठे, निजाम व अंग्रेज) ने आपस में बांट लिया।

(२) टीपू को ३ करोड़ रुपया जुर्माने की बतौर देना पड़ा।

(३) टीपू को अपने दो पुत्रों को बन्धक के रूप में रखना पड़ा।

समालोचना--निःसन्देह इस तीसरे युद्ध में टीपू परास्त हो गया और कार्नवालिस चाहता तो उसके समस्त राज्य को मिला सकता था जिससे कि मैसूर की चौथी लड़ाई की समस्या ही नहीं रहती। किन्तु कार्नवालिस ने यह इसलिए नहीं किया कि शायद आगे निजाम और मराठे उसे धोखा दे जावें। कार्नवालिस स्वयं ने इस लड़ाई के विषय में लिखा है, "हमने अपने शत्रु को बिना अपने मित्रों को भड़काए पर्याप्त रूप से लंगड़ा कर दिया है।"

तटस्थता तथा अहस्तक्षेप की नीति

लार्ड कार्नवालिस अपने शत्रु टीपू को परास्त करने में सफल हो गया था। किन्तु कम्पनी के डाइरेक्टर नहीं चाहते थे कि कम्पनी के कर्मचारी देशी राज्यों के विषयों में हस्तक्षेप करें। अतः कम्पनी के डाइरेक्टर्स ने कार्नवालिस के भारत-विदा के उपरान्त तटस्थता तथा अहस्तक्षेप की नीति का सूत्रपात किया। इस अहस्तक्षेप की नीति (Policy of Non-intervention) का तात्पर्य यह था कि हमें अब देशी राज्यों के झगड़ों में हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए। अतः लार्ड कार्नवालिस के उपरान्त सर जान शोर (Sir John Shore) को १७९३ ई० में भारत का गवर्नर जनरल नियुक्त किया। वह भारत में १७९८ तक रहा और वह पूर्णतया इस नीति का अवलम्बन करता रहा।

लार्ड वेलेजली के आधीन कम्पनी के साम्राज्य का विस्तार

भारत की राजनीतिक अवस्था--सर जॉन शोर के इंगलैण्ड जाने चले के उपरान्त १७९८ ई० में लार्ड वेलेजली भारत का गवर्नर जनरल नियुक्त हुआ। वह जब भारत आ रहा था तो कम्पनी के डाइरेक्टरों ने उसे सख्त हिदायत दी थी कि वह भी देशी राज्यों के झगड़ों में तटस्थ रहे तथा उनके झगड़ों में हस्तक्षेप न करे। परन्तु वह जब भारत आया तो उसको भारत की राजनीतिक अवस्था कम्पनी के लिए भयंकर प्रतीत हुई। टीपू यद्यपि मैसूर की तीसरी लड़ाई में हार गया था किन्तु वह

अब भी अंग्रेजों की शक्ति के विनाश का साधन सोच रहा था। वह अपनी सेना में फ्रान्सीसियों को भर रहा था। उसने नैपोलियन बोनापार्ट (Napoleon) से पत्र व्यवहार भी किया था। नैपोलियन उस समय पूर्व की ओर बड़ी द्रुतगति से बढ़ रहा था। वह मिश्र तक आ पहुंचा था। टीपू के अतिरिक्त मराठा पुनः शक्तिशाली बनते जा रहे थे। निजाम अंग्रेजों से इस कारण क्रुद्ध था कि सर जान शोर ने माराठों के विरुद्ध उसे सहायता नहीं दी थी। परन्तु उसकी शक्ति इस समय दिनों दिन निर्बल हो रही थी। इस प्रकार स्पष्ट है कि वेलेजली के भारत आने के समय भारत की राजनीतिक अवस्था अत्यन्त शोचनीय थी।

सहायक-प्रथा

लार्ड वेलेजली सर जान शोर की भांति एस शान्तिप्रिय व्यक्ति नहीं था। वह इंगलैण्ड से भारत दो उद्देश्यों के साथ आया था-(१) भारत में कम्पनी की सत्ता को सर्वप्रभु बनाना, व (२) भारत से फ्रान्सीसियों के प्रभाव को सर्वदा के लिए नष्ट करना। अतः जब वह भारत आया तो भारत की तत्कालीन राजनैतिक अवस्था से वह और भी चिन्तित हो गया। उसने इस स्थिति से कम्पनी के डाइरेक्टरों को अवगत कराया और उन्हें बताया कि इन परिस्थितियों में भी यदि अहस्तक्षेप की नीति का अनुसरण किया गया तो कम्पनी का अस्तित्व अवश्य संकट में पड़ जायेगा। इस पर कम्पनी के डाइरेक्टरो ने लार्ड वेलेजली को आज्ञा दी की कि वह जैसा भी उचित समझे वैसा ही करे।

सहायक प्रथा की उत्पत्ति—कम्पनी के डाइरेक्टरों से आज्ञा प्राप्त होने पर वेलेजली इस चिन्ता में मग्न हुआ कि भारत के राज्यों पर किस तरह अपना प्रभुत्व सदैव के लिए स्थापित किया जावे और अपने शत्रुओं को नष्ट कर दिया जावे। पर्याप्त चिन्तन के उपरान्त उसने एक ऐसी योजना का प्रादुर्भाव किया जिसने ब्रिटिश साम्राज्य को १९४७ तक भारत में बनाये रखा। उस योजना को इतिहास में सहायक-प्रथा (Subsidiary Alliance) कहते हैं। इतिहासकार रानाडे (Ranade) के मतानुसार सहायक-प्रथा वेलेजली के मस्तिष्क की मौलिक देन नहीं थी। यह प्रथा उस समय से १०० वर्ष पूर्व छत्रपति शिवाजी ने भी चलाई थी जिसके अनुसार वे अपने अधीनस्थ प्रदेशों से 'चौथ' व सरदेशमुखी' वसूल करते थे। वेलेजली ने इस प्रथा के अन्तर्गत देशी राज्यों में अपनी सेनाएं रख दीं और वहां सदैव के लिए अपने पांव जमा लिए।

सहायक प्रथा की शर्तें—वास्तव में सहायक-प्रथा लार्ड वेलेजली की ब्रिटिश साम्राज्य को एक अभूतपूर्व देन थी। यह एक वह साधन सिद्ध हुई जिससे न केवल

ब्रिटिश साम्राज्य का भारत में विस्तृत हुआ वरन् इसने साम्राज्य का दृढ़ भी बना दिया। उस सहायक प्रथा की निम्नलिखित शर्तें थीं:-

(१) प्रत्येक राजा को अपने यहां एक अंग्रेजी सेना रखनी होगी और उसका व्यय भी वही वहन करेगा।

(२) प्रत्येक राजा को अपने यहां एक अंग्रेज रेजीडेन्ट रखना होगा। राजा के प्रत्येक राज्य कार्य्य में रेजीडेन्ट की आज्ञा मानना अनिवार्य था।

(३) कोई भी नरेश अपने यहां सिवाय अंग्रेजों के किसी विदेशी को सेना व अन्य महत्वपूर्ण विभाग में नौकर नहीं रखेगा।

(४) यदि किसी कारण वश दो राज्यों में किस प्रकार का झगड़ा होगा तो उसका निर्णय अंग्रेजों की मध्यस्थता से होगा।

(५) कोई भी नरेश किसी भी अन्य विदेशी सत्ता से बिना कम्पनी की अनुमति क पत्र व्यवहार नहीं कर सकेगा।

महत्व —वेलेजली की सहायक-प्रथा ही थी जिससे कि भारत की समस्त देशी रियासतें ब्रिटिश प्रभुत्व में सदैव के लिए आ गईं और उनके शासक ब्रिटिश साम्राज्य के दृढ़ स्तम्भ समझे जाने लगे। जब कभी भारतवासियों ने अंग्रेजी प्रभुता को भारत से उखाड़ फेंकने का प्रयत्न किया तो इन देशी रियासतों के नरेशों ने अपनी जनता पर नाना प्रकार के अत्याचार किए और ब्रिटिश सरकार को हर प्रकार से सहायता दी। देशी रियासतों पर थोपी हुई (Paramountcy) १५ अगस्त १९४७ को ही समाप्त हुई। इस प्रकार स्पष्ट है कि इस प्रथा से अंग्रेजों की प्रभुता १९४७ तक भारत की देशी रियासतों पर बनी रही।

सन्धि का क्रियात्मक रूप व कम्पनी का साम्राज्य विस्तार

योजना तैयार हो जाने के उपरान्त वेलेजली इस सोच में पड़ा कि सर्व प्रथम यह किसके पास भेजी जावे जो बिना विरोध के इसे स्वीकार करले। उसकी दृष्टि में हैदराबाद का निजाम आया जो पड़ोसी राज्यों से परेशान था और वह अंग्रेजों की सहायता चाहता था।

वेलेजली और निजाम—जब १७९५ ई० में निजाम मराठों से अंग्रेजों की सहायता न मिलने के कारण खुर्दा (Khurda) पर परास्त हो गया था। इस कारण निजाम अंग्रेजों से नाराज था। किन्तु १७९७ ई० में निजाम के पुत्र अलीशाह (Ali Shah) ने निजाम के विरुद्ध विद्रोह किया। इस विद्रोह के दबाने में अंग्रेजों ने

निजाम की सहायता की । अतः इससे उसके विचार पुनः अंग्रेजों के अनुकूल होने लगे और उसने १७९८ ई० में मोर आलम के कहने से अंग्रेजों के साथ सन्धि करली। इस सन्धि का एक कारण यह भी था कि निजाम अपने यहां बढ़ते हुए फ्रांसीसियों के प्रभुत्व को समाप्त करना चाहता था। इस सन्धि के अनुसार निजाम को अपने यहाँ से फ्रांसीसियों को निकालना पड़ा और अंग्रेजों की ६ बटालियन सेना उसने अपने यहां रखी। उस सेना के खर्च के लिए निजाम ने २४ लाख रुपया वार्षिक कम्पनी को देना स्वीकार किया ।

इस सन्धि से निजाम सदा के लिए अंग्रेजों का दास हो गया और अपने मैत्री भाव को बढ़ाने के नियत से निजाम ने १८०० में मैसूर की चौथी लड़ाई में अंग्रेजों का साथ दिया।

वेलेजली और टीपू सुल्तान (मैसूर की चौथी लड़ाई)—मैसूर की तीसरी लड़ाई ने निःसन्देह टीपू की शक्ति पर घातक प्रहार किया था। किन्तु वह वीर सेनानी उससे हताश नहीं हुआ। उसने फ्रांसीसियों के सहयोग से पुनः अपनी शक्ति को संगठित करने का प्रयास किया। जब १७९९ में वेलेजली ने उसके पास सहायक प्रथा के अनुरूप सन्धि प्रस्ताव भेजा तो उसने उसे ठुकरा दिया। इससे वेलेजली बड़ा नाराज हुआ और उसने जनरल हैरिस (Harris) के नेतृत्व में मद्रास से एक सेना भेजी। बम्बई से स्टुअर्ट (Stuart) की अध्यक्षता में एक और सेना रवाना हुई और उसने टीपू को सदासीर (Sedaseer) के स्थान पर परास्त किया। इस लड़ाई में निजाम व मराठों ने भी अंग्रेजो का साथ दिया। निजाम की सेना लार्ड वेलेजली के कनिष्ठ भ्राता आर्थर वेलेजली (Arthur wellesley) के नेतृत्व में मैसूर की ओर रवाना हुई। टीपू पूर्व व पश्चिम की ओर से घेर लिया गया । इसी समय जनरल हैरिस की सेना ने टीपू की सेना को मलावली (Malavali) नामक स्थान पर हरा दिया। टीपू के पास सन्धि-प्रस्ताव पुनः भेजा गया। वीर परन्तु अदूरदर्शी टीपू ने उस प्रस्ताव को पुनः ठुकरा दिया। टीपू इस लड़ाई में वीरता से युद्ध करता हुआ काम आया।

अब मैसूर का भय सदैव के लिए समाप्त हो गया। अंग्रेजों ने मैसूर राज्य का अल्प भाग प्राचीन हिन्दू वंशज राजा को दे दिया जिसने अंग्रेजों की सहायक प्रथा को स्वीकार कर लिया। इस प्रकार मैसूर पर अंग्रेजों का प्रभुत्व स्थापित हो गया और वहां से फ्रांसीसियों को निकाल दिया।

टीपू सुल्तान का चरित्र—टीपू सुल्तान अशिक्षित पिता हैदर का शिक्षित पुत्र था। हैदर ने उसका शिक्षा का समुचित प्रबन्ध किया था। इस कारण वह प्रशासन के कार्यों में पूर्ण पटु था। वह एक स्वेच्छाचारी एवं निरंकुश शासक अवश्य

था। किन्तु जनता पर वह अत्याचार नहीं करता था। अंग्रेजो ने उसे क्रूर एवं बर्बर शासक बताया है। कर पैट्रिक (Kirpatrick) के विचार में "टीपू क्रूर तथा कठोर शत्रु था, दमनशील तथा अन्यायी शासक था।" किन्तु उसके विषय में ऐसी धारणा बना लेना न्याय संगत नहीं है। वह एक परिश्रमी शासक था तथा सदैव जनता के हित का ध्यान रखता था। यही कारण था कि उसके शासन-काल में उसका राज्य सुखी एवं सम्पन्न था। व्यापार व कृषि उन्नत दिशा में थे। इसी कारण कई इतिहासकारों ने टीपू की प्रतिभा तथा उसके मस्तिष्क की बड़ी प्रशंसा की है। मिल (Mill) के मतानुसार "घरेलू शासक के रूप में उसकी तुलना पूर्व के बड़े से बड़े नरेशों के साथ की जा सकती है।" मूर (Moore) ने उसके सम्पन्न राज्य के विषय में इस प्रकार लिखा है, "जब कोई व्यक्ति एक नवीन देश में से यात्रा करते हुए कृषि-सम्पन्न, परिश्रमी निवासियों से पूर्ण, नये बने हुए नगर, फैलता हुआ व्यापार, बढ़ते हुए कस्बे, तथा प्रत्येक वस्तु इस प्रकार समृद्धिशाली है, जिससे प्रसन्ता प्रकट हो, देखता है, तो वह स्वाभाविक रूप से इससे यह परिणाम निकालेगा यह देश ऐसी सरकार के अधीन है जो जनता के मन के अनुकूल है .. ..।" शासक की हैसियत से उसमें यह अवगुण अवश्य था कि वह एक सफल एवं दूरदर्शी राजनीतिज्ञ नहीं था। उसकी पराजय का मुख्य कारण यही था। विल्कस (Wilks) का मत है, "हैदर शायद ही कभी गलत हो तथा टीपू शायद ही कभी ठीक हो।"

टीपू में सैन्य-संचालन की अद्भुत योग्यता थी। युद्ध के समय वह मोर्चा बन्दी उच्चकोटि की करता था। किन्तु कभी कभी वह डूप्ले की भांति अपनी योग्यता एवं अपने साधनों पर आवश्यकता से अधिक विश्वास कर बैठता था। परन्तु यह सत्य है कि वह एक साहसी व्यक्ति था। उसमें पर्याप्त नैतिक बल था। यह अपने समर्थकों के प्रति सदैव दयालु एवं उदार रहता था।

वेलेजली व अवध का नवाब:—अवध का नवाब वेलेजली के आने से पूर्व ही अंग्रेजों के समक्ष नतमस्तक हो गया था और सन्धि की शर्तों का पूर्ण पालन कर रहा था। परन्तु फिर भी वेलेजली अवध पर अपना और भी प्रभुत्व कायम करना चाहता था। कोई भी बहाना न मिलने पर उसने नवाब से कहा कि तुम अपनी सुरक्षा के लिए सेना में वृद्धि करो। आर्थिक कठिनाई के कारण नवाब इस प्रस्ताव पर सहमत नहीं हुआ। इस पर वेलेजली ने नवाब को आतंकित करने की दृष्टि से लखनऊ अंग्रेजी सेनाएं भेज दीं। भयभीत नवाब ने १० नवम्बर १८०१ को वेलेजली से सन्धि करली। नवाब ने अंग्रेजो सेना में वृद्धि की तथा उसके व्यय के लिए रुहेलखण्ड तथा दो आब

के प्रदेश कम्पनी को दे दिए। नवाब की मन्त्रणा देने के लिए एक अंग्रेजी रेजीडेन्ट भी वहां रखा गया।

वेलेजली का तन्जोर, सूरत तथा कर्नाटक के शासकों के साथ व्यवहार—१७६६ ई० में वेलेजली ने तन्जौर (Tangore) के नरेश के समक्ष सहायक प्रथा प्रस्तुत की। नरेश ने ४० हजार वार्षिक रुपया लेना स्वीकार कर अपना राज्य कम्पनी के हवाले कर दिया। सूरत में द्वैतशासन समाप्त कर उसने वहां के नवाब की पेन्शन कर दी। १८०१ ई० में वेलेजली ने कर्नाटक की सरकार पर भी अपना अधिकार कर लिया।

वेलेजली और मराठे

जब वेलेजली निजाम, मैसूर तथा अवध को सहायक सन्धि के अन्तर्गत, पूर्णतया कम्पनी के प्रभुत्व में लाने मे सफल हो गया तो उसका ध्यान मराठों की ओर गया। वेलेजली की धारणा थी कि दक्षिण मे शान्ति स्थापित करने व कम्पनी के प्रभुत्व को भारत में स्थायी बनाने के लिए मराठो को कम्पनी के संरक्षण में लाना आवश्यक है। यद्यपि १७८२ ई० मे मराठों ने अंग्रेजों से सालबाई की सन्धि कर ली थी। मैसूर की चौथी लड़ाई में मराठों ने अंग्रेजो की सहायता भी की थी। परन्तु इन वर्षो मे मराठे नाना फडनवीस (Nana Farnavis) तथा महाधाजी सिन्धिया (Mahadhaji Scindhia) के नियन्त्रण मे चल रहे थे। जब ये दोनों राजनीतिज्ञ इस लोक मे विदा हो गये तो मराठों पर पुन: आपत्ति के बादल मडराने लगे।

मराठों की दूसरी लड़ाई (१८०२-४):—जब १८०० ई० में मराठों का नेता नाना फडनवीस इस दुनियां से चल बसा तब मराठे योग्य नेता के अभाव में कुचक्रों के जाल में फस गये। दौलतराव सिन्धिया, (Daulat Rao), जसन्त राव होल्कर (Jaswant Rao) तथा पेशवा बाजीराव द्वितीय (Baji Rao II) ने अपनी अपनी प्रभुता जमाने का प्रयास प्रारम्भ कर दिया। पेशवा ने दौलत राव से सन्धि की और उसकी सहायता से उसने जसवन्त राय के लघु भ्राता विठूजी होल्कर (Vithuji Holkar) का वध करवा दिया। इस पर कुपित जसवन्त ने पूना पर आक्रमण कर दिया और पेशवा व सिन्धिया की संयुक्त सेनाओं को परास्त कर दिया। पेशवा को पूना से भगना पड़ा और उसने अंग्रेजों से बेसिन की सन्धि (Treaty of Bessein) कर ली। इस सन्धि के अनुसार बाजीराव द्वितीय को पुनः पेशवा बना दिया गया। पेशवा ने अपने यहां अंग्रेजी सेना रखना स्वीकार कर लिया तथा सेना के व्यय के लिए २६ लाख रुपया देना स्वीकार किया। इस सन्धि

से अंग्रेजों को मराठों के घरेलू मामलों में हस्तक्षेप करने का अधिकार मिल गया।

पेशवा की इस कार्यवाही से अन्य मराठे असन्तुष्ट हो गये। सिन्धिया और भौंसले ने अंग्रेजों के विरुद्ध शस्त्र उठा लिए जब कि होल्कर और गायकवाड़ तटस्थ रहे। सिन्धिया और भौंसले की संयुक्त सेनाओं ने अंग्रेजों का असाई (Assaye) अरागांव (Aragaon) तथा लस्वारी (Laswari) स्थानों पर दृढ़ता से सामना किया। परन्तु वे परास्त हुए और सिन्धिया व भोंसले ने अंग्रेजों से अलग अलग सन्धि करली। भोंसले ने अंग्रेजों के साथ देवगांव की सन्धि (Treaty of Deogaon) की जिसके अनुसार उसने वेलेजली की सहायक प्रथा की शर्तों को स्वीकार कर लिया। सेना के खर्च के लिए उसने कटक (Cuttack) तथा वर्धा नदी का पश्चिमी भाग दे दिया। इसके अलावा भौंसले ने नागपुर में एक अंग्रेज रेजीडेन्ट रखना स्वीकार किया।

अंग्रेजों ने सिन्धिया से ३० दिसम्बर १८०३ को सुर्जी अर्जुन गाँव (Treaty of Surji Arjangaon) की सन्धि की। इस सन्धि से सिन्धियां भी अंग्रेजों की दासता में जकड़ लिया गया। उसने अंग्रेजों को भड़ौच (Broach), अहमदनगर (Ahmednager) तथा गंगा यमुना के बीच का प्रदेश दे दिया।

महत्व:--इस दूसरे युद्ध का परिणाम यह निकला कि मराठे दो गुटों में विभक्त हो गये। सिन्धिया व भौंसला अंग्रेजों के आधीन हो गये तथा होल्कर व गायकवाड़ अभी अंग्रेजों से स्वतन्त्र रहे। इसे युद्ध के उपरान्त दक्षिण में कम्पनी के साम्राज्य में आशातीत विस्तार हुआ तथा फ्रांसीसियों का प्रभाव दक्षिण में समाप्त हो गया। इस युद्ध से यह भी स्पष्ट हो गया कि मराठों की शक्ति अब अन्तिम सांसे गिन रही है।

मराठों की तीसरी लड़ाई (१८०४-५)--मराठों की दूसरी लड़ाई में होल्कर तथा गायकवाड़ तटस्थ रहे थे।१८०४ई० होल्कर ने अंग्रेजों का संरक्षण प्राप्त राजपूत नरेशों के राज्यों को लूटना आरंभ कर दिया। इस पर वेलेजली ने १८०४ई० में होल्कर के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी। राजपूताने में उसने अंग्रेजी सेनापति मोनसन (Monson) को परास्त किया। इसी समय भरतपुर नरेश भी होल्कर से मिल गया और उसने दिल्ली पर आक्रमण कर दिया क्योंकि मुगल सम्राट अब मराठों के प्रभाव से स्वतन्त्र हो गया था। किन्तु जनरल लेक (Lake) ने भरतपुर नरेश व होल्कर की सेना को डीग (Deeg) व फर्रुखाबाद (Farrukhabad) पर परास्त कर दी। लेक ने भरतपुर पर अधिकार करने के लिए चार आक्रमण किए किन्तु वह असफल रहा। अन्त में उसने भरतपुर के राजा से सन्धि करली और होल्कर भग कर

पंजाब में रणजीतसिंह (Rangit Singh) की शरण में चला गया। इसी समय वेलेजली को इंगलैण्ड वापिस बुला लिया गया।

वेलेजली का मूल्याङ्कनः—जब हम वेलेजली के कार्यों का अवलोकन करते हैं तब हमें यह स्वीकार करने को बाध्य होना पड़ता है कि वह भारत के महान् गवर्नर जनरलो में एक था। यदि हम क्लाइव को भारत में ब्रिटिश साम्राज्य का संस्थापक मानते हैं तो वेलेजली को अंग्रेजी सम्राज्य को दृढ़ करने वाला मानना पड़ता है। वह एक महान् विद्वान तथा व्यापक दृष्टिकोण का व्यक्ति था। यद्यपि उसमें नैतिक बल का अभाव था। वह कामुक अधिक था। स्त्रियों का सहवास उसे अधिक रुचिकर था। परन्तु यह सब होते हुए भी वह एक सफल प्रशासक एवं गूढ़ राजनीतिज्ञ था। उसने सहायक प्रथा को एक स्वरूप में एक ऐसा शस्त्र निकाला जिसके द्वारा उसने भारत में न केवल कम्पनी के साम्राज्य का विस्तार ही किया वरन् उसे दृढ़ कर स्थायी भी बनाया। वारेन हेस्टिंग्स (Warren Hastings) ने उसकी सहायक प्रथा के विषय मे लिखा है "लार्ड वेलेजली ने विस्तृत शक्ति तथा सीमा की क राजनीतिक पद्धति का निर्माण किया, किन्तु वह ऐसा भार था, जो इस बात की मांग करेगा कि उसके समान कोई शक्तिशाली हाथ लगातार उसे सम्भालता रहेगा,....................।" लायल (Lyall) की मान्यता है, "लार्ड वेलेजली का एक मात्र उद्देश्य भारत में शान्ति स्थापित करना तथा ब्रिटिश प्रदेशों को स्थायी सुरक्षा प्रदान करना था।" इसमें वह पूर्ण सफल हुआ ऐसी धारणा अन्य इतिहासकारो को भी है। वास्तव में यह उसकी अपूर्व प्रतिभा एवं योजनापूर्ण राजनीति थी जिससे भारत आन्तरिक व बाह्य दोनों तरह से सुरक्षित हो गया और साथ में उसके साम्राज्य का विस्तार भी हुआ। उसने जो भी कार्य किया वह पूरी तरह सोच विचार के तथा तत्परता से किया। शिथिलता उसमें लेशमात्र भी नहीं थी। लार्ड हॉलैण्ड के कथनानुसार "वेलेजली दूरदर्शिता की अपेक्षा अधिक बुद्धि, आदर्श की अपेक्षा अधिक भावना रखता था...........।" वेलेजली प्रथम व्यक्ति था जिसने विदेशियों को भारत से निकालने व अपने राज्य को सुरक्षित बनाने के लिए देशी रियासतों पर प्रत्यक्ष रूप से प्रभाव डालना आरंभ किया था। फ्रेजर (Frezer) का कथन है "मारक्वीस वेलेजली के आगमन के साथ पहली बार देशी राजाओं ने ब्रिटिश शासन के लोह हस्त का शीत स्पर्श को अनुभव किया।" इन्हीं कारणों से उसे भारत के ब्रिटिश प्रशासकों में उच्च स्थान दिया जाता है।

१८०५ से १८१३ का शान्ति-काल

लार्ड वेलेजली के स्थान पर लार्ड कार्नवालिस भारत का गवर्नर जनरल

नियुक्त होकर पुनः आया। उसकी आयु इस समय ६७ वर्ष की थी। परन्तु कम्पनी के डाइरेक्टरों का उस पर पूरा भरोसा था। वह भारत में अहस्तक्षेप (Policy of Non-intervention) की नीति पर दृढ़ रहने के विचार से आया था। इस नीति पर दृढ़ रहने के कारण वह मराठों से हर कीमत पर सन्धि करने को तैयार था। इसी तरह वह मुगल सम्राट को भी अधिकार पुन: देने को तैयार था। किन्तु अभाग्य-वश इसी वर्ष उसका देहान्त हो गया। उसके स्थान पर सर जार्ज बार्लो (Sir George Barlow) भारत गवर्नर जनरल नियुक्त होकर आया। वह भी अह-स्तक्षेप की नीति पर अटल रहा। अत: उसके शासन-काल मे भारत में कम्पनी का राज्य विकसित हुआ वरन् विघठित हुआ। उसने होल्कर से सन्धि करली और उसके विजित प्रदेश भी लौटा दिए। राजपूताने की राजपूत रियासतों से भो उसने कम्पनी के प्रभाव को समाप्त कर दिया तथा मुगल सम्राट को भी अधिकार देने को उद्यत था। इसके समय की प्रमुख घटना वेलौर का विद्रोह (Revolt of Vallore) था। इससे यह बदनाम हो गया और उसे १८०७ में ही मद्रास का गव-र्नर बना दिया गया।

सर जार्ज बार्लो के स्थान पर लार्ड मिन्टो (Lord Minto) भारत का गवर्नर जनरल नियुक्त होकर आया। वह एक अनुभवी एवं साम्राज्यवादी विचार धारा का व्यक्ति था। वह अहस्तक्षेप की नीति मानने को उद्यत अवश्य था। किन्तु वह इस नीति को कम्पनी के प्रभुत्व के विनाश कारण नही बनाना चाहता था। उसने फारस, अफगानिस्तान तथा पंजाब में अपने राजदूत भेजे और इस प्रकार इसने वहां से फ्रान्सीसियों के प्रभाव को नष्ट कर अपना प्रभाव जमाने का प्रयास किया। सिन्ध के अमीर से भी उसने मित्रता की सन्धि की। इसके समय ट्रावनकोर तथा मद्रास के अफसरों के दो विद्रोह हुए। परन्तु वे दबा दिए गए। १८१३ ई० में वह इंगलैण्ड वापिस बुला लिया गया।

लार्ड हेस्टिंग्स के नेतृत्व कम्पनी का राज्य-विस्तार

लार्ड मिन्टो के स्थान पर सन् १८१३ ई० में लार्ड हैस्टिंग्स (Lord Hastings) भारत का गवर्नर जनरल नियुक्त हो कर आया और वह यहां १८२३ तक रहा। उसके भारत आने के समय भी यहां की राजनीतिक अवस्था अच्छी नहीं थी। इसका प्रमुख कारण उसके पूर्वजों द्वारा अहस्तक्षेप की नीति का अनुसरण था अतः उसके काल में जो भी लड़ाइयां हुई उनके बीज उसके यहां आने से पहले ही बो दिये गए थे।

नेपाल के साथ युद्ध—अहस्तक्षेप की नीति का अनुसरण करने से भारत-
ासियों ने समझा कि अंग्रेज अब निर्बल हो गये हैं। यही धारणा नेपालवासियो की
न गई। इस कारण उन्होने अपने साम्राज्य विस्तार की दृष्टि से शिवराज (Sheo-
aj) तथा बटवाल (Butwal) पर अधिकार कर लिया। जब लार्ड हैस्टिंग्स ने उन्हें
 प्रदेश लौटाने को कहा तो उन्होंने इन्कार कर दिया।अतः सन् १८१४ ई० में उसने
ापाल पर चढ़ाई कर दी। चारों ओर से सेना भेजी गई। तीन अंग्रेजी सेनाएँ तो
रास्त हो गई। परन्तु चौथाई चढ़ाई में आक्टरलोनी (Ochterloney) ने मलाव
के प्रसिद्ध दुर्ग पर अमरसिंह को परास्त कर दिया। अलमोड़ा पर अंग्रेजो का अधिकार
हो गया। इस पराजय से घबराकर नेपाल दरबार ने १८१६ ई० में सिगौली की
सन्धि (Treaty of Sagauli)करली। इस सन्धि के अन्तर्गत गढ़वाल(Garhwal
तथा कुमाऊं (Kumaon) कम्पनी के अधिकार में आ गये। इनके अतिरिक्त शिमला,
देहरादून, नैनीताल तथा मंसूरी स्थानों पर अंग्रेजों का अधिकार हो गया। सिक्किम
(Sikkem) से गोरखा सेना हट गई तथा नेपाल की राजधानी में एक अंग्रेज रेजी-
डेन्ट भी रहने लगा।

पिण्डारियों का दमन—ये लोग लूटेरे होते थे। मध्यभारत इनका घर बना
हुआ था। ये लोग बड़ी निर्ममता से लोगो को लूटते थे। जनसाधारण इनसे भयभीत
था। अतः लार्ड हेस्टिंग्स ने इन्हें दबाने के लिए कई सेना भेजीं। इनका दमन भी बड़ी
क्रूरता से किया गया। अन्त में उन्होंने आत्म सम्पर्ण कर दिया। उनके नेता अमीरखां
(Amir Khan) को टोंक की जागीर दी गई। करीम खां (Karim Khan) को
गोरखपुर के समीप का इलाका जागीर में दिया गया। किन्तु वसील मुहम्मद (Wasil-
Mohammed) ने जेल में ही आत्म हत्या करके अपनी जीवन लीला समाप्त करली
और चीतू (Chitu) चीते के द्वारा खा लिया गया। पिण्डारियो के दमन से राज्य
का विस्तार तो नहीं हुआ किन्तु राज्य में शान्ति स्थापित हुई और व्यापार की
उन्नति हुई।

मराठों की चौथी लड़ाई—पेशवा ने अंग्रेजों से बेसिन की सन्धि कर
मित्रता के सम्बन्ध स्थापित किए थे। किन्तु वे अधिक दिनों तक नहीं रहे। सन् १८१५
ई० में किसी विवाद के कारण गायकवाड ने अपने मंत्री गंगाधर शास्त्री (Ganga-
Dhar Shastri) को पूना भेजा। किन्तु वह पेशवा के मंत्री त्रयम्बकजी (Trim-
bakgi) द्वारा मार दिया गया। इस पर अंग्रेजो ने पेशवा से त्रयम्बकजी की मांग
की और उसे बन्दी बना लिया। किन्तु त्रयम्बकजी कारावास से भग निकले और इसमें
पेशवा का हाथ समझा गया। इस पर वहां के रजीडेन्ट ने पेशवा को एक नई सन्धि

करने को विवश किया। इस पर पेशवा ने १८१७ ई० में रेजीडेन्टसी पर आक्रमण कर दिया। अंग्रेजों ने उसे किर्की (Kirki) के स्थान पर हरा दिया और वह दक्षिण की ओर भग गया। इस युद्ध में भौंसले व होल्कर भी पेशवा की ओर से सम्मलित हुए थे। आपाजी भौंसले (Apa Sahib Bhonsle) सितावल्डी (Sitabaldi) स्थान पर परास्त हुए तथा होल्कर की सेनाएं महीदपुर (Mahidpur) पर परास्त हो गईं। १८१९ में पेशवा को अंग्रेजों के समक्ष आत्म-सम्पर्ण करना पड़ा और इस प्रकार मराठों की यह चौथी लड़ाई समाप्त हुई।

यह चौथी लड़ाई मराठों को घातक सिद्ध हुई और उनकी विशाल शक्ति सर्वदा के लिए नष्ट हो गई। पेशवा की आठ लाख रुपये वार्षिक पेन्शन कर दी गई तथा आपाजी भौंसले को राज्य मे वंचित कर दिया गया। सिन्धियां के तथा गायकवाड के साथ नई सन्धि की गई। ये दोनों ही चौथी लड़ाई में नही बोले थे। कुछ परिवर्तनो के साथ गायकवाड़ राज्य-सत्ता उसने अपने संरक्षण में बनी रहने दी और वह १९४७ तक बनी रही।

लार्ड हेस्टिंग्स का मूल्याङ्कन—लार्ड हेस्टिंग्स ६० वर्ष की आयु में भारत आया था और यहा ९ वर्ष तक रहा। वृद्धावस्था में भी उसने भारत के प्रशासन को सफलता से संचालित किया तथा राज्य को दृढ़ता से बनाये रखा। इसलिए कहा जाता है कि उसने लार्ड वेलेजली के कार्य को सम्पूर्ण किया। उसने अपने शासन काल में समस्त विद्रोहियो को कुचल दिया और उसके उपरान्त भारत में कम्पनी के प्रभुत्व को चेलेज करने वाली कोई शक्ति नही रही।

लार्ड एमहर्स्ट के नेतृत्व में कम्पनी के राज्य का विकास

लार्ड हेस्टिंग्स के पश्चात् जान एडम्स (John Adams) भारत का गवर्नर जनरल नियुक्त हुआ। उसने केवल सात मास इस पद पर कार्य किया और उसके चले जाने पर लार्ड एमहर्स्ट (Lord Ahmerst) १८२३ में ही भारत का गर्वनर जनरल बन कर आया। उसके भारत आने के समय यहां की राजनीतिक अवस्था अधिक शोचनीय नहीं थी क्योंकि लार्ड हेस्टिंग्स ने अत्रुओं को बहुत कुछ दबा दिया था। इसके शासन काल की प्रमुख घटना बरमा की प्रथम लड़ाई थी।

बरमा की पहली लड़ाई (१८२४-२६)—बरमा वालों ने आसाम (Assam), अराकान (Arakn) व मणिपुर (Manipur) के राज्यों पर अधिकार कर लिया था। इस पर भी उनकी साम्राज्यवादी क्षुधा शान्त नहीं हुई और निरन्तर भारत के प्रदेशों को अपने आधीन करते ही चले गये। १८२३ ई० में उन्होंने

शाहपुरी (Shah puri) पर अधिकार कर लिया तो लार्ड एमहर्स्ट (Ahmnerst) ने १८२४ ई० में उनके विरुद्ध सेना भेजी। आरंभ में अंग्रेजी सेना विजयी हुई और रंगून पर अधिकार कर लिया। परन्तु अंग्रेजी सेना ने यहां बड़े आराम से युद्ध किया। इसी कारण से वह बरमा के सेनापति महा बुन्देला (Maha Bundela) से परास्त हो गई। इस विजय के उपरान्त महा बुन्देला ज्यों ही रंगून की ओर बढ़ा कि युद्ध में वह परास्त हुआ और वीरगति को प्राप्त हो गया। इस पराजय ने बरमा के राजा को घुटने टेकने को बाध्य कर दिया। १८२६ ई० में यॉंडबू की सन्धि (Treaty of Yandaboo) से बरमा की पहली लड़ाई शान्त हुई। सन्धि की शर्तें निम्नलिखित थीं—

(१) बरमा के राजा ने अराकान (Arakan) तथा टिनासिरम (Tenasserim) के प्रान्त कम्पनी को दे दिए।
(२) बरमा की सरकार ने एक करोड़ रुपया क्षति पूर्ति के रूप में देना स्वीकार किया।
(३) दोनों दलों में एक व्यापारिक सन्धि सम्पन्न हुई।
(४) बरमा के राजा ने अपने यहां एक अंग्रेज रेजीडेन्ट रखना भी स्वीकार किया।

भरतपुर पर अधिकार करना:—१८२५ ई० में भरतपुर का राजा जब मर गया तो वहां राज्य-गद्दी के लिए झगड़ा आरम्भ हो गया। जब कम्पनी ने मृतक शासक के नाबालिग पुत्र को भरतपुर का शासक मान लिया तो उसके चाचा दुर्जन-साल (Durjan Sal) ने इसका विरोध किया। इस पर भरतपुर में संघर्ष छिड़ गया। अंग्रेजी सेना ने भरतपुर के अजेय दुर्ग पर अधिकार कर लिया। दुर्जनसाल राज्य से वंचित कर दिया गया। इस विजय से कम्पनी को पर्याप्त आर्थिक लाभ तो हुआ ही किन्तु साथ में ही एमहर्स्ट की कीर्ति भी काफी फैल गई।

लार्ड आँकलैण्ड और देशी रियासतें—लार्ड एमहर्स्ट के चले जाने पर लार्ड विलियम बेन्टिक आया। उसने साम्राज्यवादी नीति न अपनाकर देश में नाना प्रकार के शासन सुधार किए जिनका वर्णन आगे किया जावेगा। उसके उपरान्त जब १८३४ ई० में बेन्टिङ्क ने त्याग-पत्र दे दिया तो चार्ल्स मेटकाफ (Charles Metcalfe) भारत गवर्नर जनरल बन कर आया। उसने आते ही प्रेसों की स्वाधीनता स्वीकार की। इससे डाइरेक्टर उससे अप्रसन्न हो गये और उसको १८३५ ई० में वापिस बुला लिया। उसके स्थान पर लार्ड आँकलैण्ड (Lord Auckland) को नियुक्त किया।

लार्ड ऑकलैण्ड ने भारत में कोई विशेष कार्य नहीं। किया उसने कुछ देशी नरेशों को चेतावनी दी। सर्व प्रथम उसने इन्दौर के शासक को अपना शासन ठीक करने की चेतावनी दी। जब सतार के शासक ने विरोधी तत्वों से सांठ-गांठ करना आरंभ किया तो उसे गद्दी से उतार दिया और बन्दी बनाकर बनारस भेज दिया गया। अवध के नवाब से भी उसने सन्धि की। परन्तु कम्पनी के डाइरेक्टरों ने उसे स्वीकार नहीं किया। इससे ऑकलैण्ड को बदनामी मिली। ग्रेनवेल (Grenvile) का कथन है, "आकलैण्ड ऐसा व्यक्ति था जिसमें कोई असाधारण गुण अथवा प्रदर्शनात्मक विशेषताएँ नहीं थीं। वह कठोर तथा रूखे स्वभाव का था...........।"

लार्ड एलेनबरा द्वारा सिन्ध को मिलाना—लार्ड आकलैंड जब १८४२ में इंगलैण्ड बुला लिया गया तो उसके स्थान पर लार्ड एलेनबरा (Lord Ellenborough) भारत का गर्वनर जनरल नियुक्त होकर आया। इसके शासन—काल की प्रमुख घटना सिन्ध को अंग्रेजी राज्य में मिलाना है। जब एलेनबरा भारत आया था, उस समय अंग्रेजों की अफगानों से लड़ाई चल रही थी। कन्धार (Kandhar) में अफगानों से घिरे हुए अंग्रेजों को मुक्त कराने के लिए एलेनबरा ने सिन्ध होकर सेना भेजी। इस बात से सिन्ध के अमीर अंग्रेजों से नाराज हो गये और उन्होंने अंग्रेजी सेना के मार्ग में कई कठिनाइयां उत्पन्न कीं।

अफगान की लड़ाई समाप्त होते ही एलेनबरा ने चार्ल्स नेपियर (Charles Napier) को सिन्ध भेजा। नेपियर ने सिन्ध के अमीरों को दोषी ठहराया और सुझाव दिया कि सिन्ध में अमीरों के खर्च पर अंग्रेजी सेना रखना आवश्यक है। इस निर्णय के विरोध स्वरूप उन्होंने रेजीडेन्ट आउट्रम (Major James Outram) पर आक्रमण कर दिया। रेजीडेन्ट की रक्षा करने तथा अमीरों को दण्ड देने की नियत से नेपियर ने युद्ध छेड़ दिया और १८४३ ई० में उसने अमीरों को मियानी (Miani) तथा दाबो (Dabo) के स्थान पर पूर्ण रूप से परास्त कर दिया। अमीरों को सिन्ध से निकाल दिया और सिन्ध को कम्पनी के राज्य में मिला लिया गया। युद्ध का विजेता नेपियर ही सिन्ध का प्रथम गवर्नर बना।

अंग्रेजों द्वारा इस प्रकार सिन्ध को अपने राज्य में मिलाने की चारों ओर आलोचना हुई। कम्पनी के स्वयं डाइरेक्टरस् एलेनबरा की इस नीति से असन्तुष्ट हुए। स्वयं नेपियर ने इस बात को स्वीकार किया है कि यह एक जघन्य तथा नीच कार्य था, परन्तु राजनीतिक आवश्यकताओं की दृष्टि से अनिवार्य था। इन्नीस के शब्दो में, "यदि अफग़ान-काण्ड हमारे भारतीय इतिहास में सबसे अधिक

भयानक है तो सिन्ध का काण्ड नैतिक दृष्टि से और भी अधिक कम क्षन्तव्य है।"

लार्ड हार्डिञ्ज तथा पंजाब

लार्ड एलेनबरा की सिन्ध के प्रति बरती गई नीति से अप्रसन्न हो कम्पनी के डाइरेक्टरस ने उसे भी १८४४ ई० में इंगलैण्ड बुला लिया और उसके स्थान पर लार्ड हार्डिञ्ज (Lord Hardinge) को भारत भेजा। लार्ड हार्डिञ्ज ने पंजाब को कम्पनी के प्रभुत्व में लाने का प्रयास किया।

लार्ड हार्डिञ्ज के भारत आने के समय पंजाब की स्थिति—पंजाब में सिक्ख राज्य की स्थापना रणजीतसिंह (Rangit Singh) ने की थी। वह अपनी विशाल सेना की सहायता से अपने राज्य को निरन्तर बढ़ाता ही चला गया। परन्तु उसने लार्ड विलियम बैन्टिंक से इस आशय की सन्धि करली थी कि वह सतजल नदी के दक्षिण में नहीं बढ़ेगा। जब तक रणजीत सिंह जीवित रहे, पंजाब में सिक्ख राज्य फलता फूलता रहा। परन्तु जब रणजीत सिंह इस लोक से विदा हो गये तो उनका निर्बल पुत्र दिलीप सिंह (Dalip Singh) पंजाब राज्य को नहीं संभाल सका। पंजाब की दशा दिनो दिन दयनीय होती जा रही थी और रणजीत सिंह द्वारा संगठित सेना दिलीप सिंह के नियन्त्रण मे नहीं थी।

महाराजा रणजीतसिंह:—प्रारम्भिक जीवन—महाराजा रणजीत सिंह का जन्म १७८० में हुआ था। १६ वर्ष की आयु में ही उन्होने काबुल के अफगानशाह को पंजाब पर आक्रमण करने में सहायता दी थी। इसके परितोषिक स्वरूप १७६६ ई० में उनको लाहौर का गवर्नर नियुक्त कर दिया गया। सन् १८०२ ई० में राजा की उपाधि के साथ उन्होने अपने को अमृतसर का स्वतन्त्र स्वामी घोषित कर दिया।

साम्राज्य का विस्तार—अमृतसर पर अधिकार करने के उपरान्त उन्होंने शनैः शनैः अपने राज्य का विस्तार करना आरम्भ किया। इनके बढ़ते हुए प्रभाव से अंग्रेज भयभीत हुए। उन्होंने रणजीत सिंह से १८०६ में अमृतसर की सन्धि (Treaty of Amritsar, 1809) की। इस सन्धि से सतलज नदी दोनों के राज्यों की सीमा मानी गई। रणजीत सिंह ने अमृतसर की सन्धि का मृत्युपर्यन्त तक पालन किया। डा० सिन्हा (Dr. Sinha) ने रणजीत सिंह व अंग्रेजों के सम्बन्ध में लिखा है, "अंग्रेज तथा सिक्खों की इस मित्रता में ब्रिटिश सरकार एक घुड़सवार के रूप में थी तथा रणजीतसिंह एक घोड़ा था।" इस सन्धि के

उपरान्त रणजीत सिंह ने १८१० ई. में मुल्तान पर आक्रमण किया तथा १८१८ में उसे अपने राज्य में मिला लिया। इससे पूर्व वे १८०७ में कसूर (Kasur) झंग (Jhang, 1807) तथा कांगडा (Kangra, 1811) पर विजय प्राप्त कर चुके थे। १८१३ में उन्हें गोरखों से अटक (Attock) प्राप्त हो गया था। १८१४ ई० में अफगानिस्तान के बादशाह शाहशुजा (Shah Shuza) को अपने यहाँ शरण देकर उन्होने कोहनूर हीरा प्राप्त किया था। इसके उपरान्त उन्होंने काश्मीर तथा पेशावर को अपने राज्य में मिलाया तथा लद्दाख भी उनकी साम्राज्य-वादी क्षुधा का ग्रास बने बिना न रहा। इस प्रकार उत्तरी भारत में अपनी विजय दुन्दभी बजाते हुए रणजीतसिंह जी १८३९ ई० में ५० वर्ष की आयु में इस लोक से विदा हो गये।

मूल्याङ्कन—यद्यपि रणजीतसिंह जी मानवरूप में आज हमारे बीच नहीं हैं तथापि उनकी यश-चन्द्रिका से सारा भारत आलोकित हो रहा है। उन्हें आज भी पंजाब-केशरी (Lion of the Punjab) के नाम से पुकारते हैं। यद्यपि वे शिक्षित नहीं थे तथापि विद्वानो का आदर करते थे व अपने यहाँ उनको संरक्षण देते थे। उनके निर्णय सदा विवेकपूर्ण होते थे। भले बुरे की पहचान उन्हें अच्छी थी, इसी कारण वे जनता में लोकप्रिय बन गये थे। सर लेपेल ग्रिफिन (Lepel-Griffin) उनकी मृत्यु के ५० वर्ष उपरान्त उनकी लोक-प्रियता के विषय में लिखता है, "यद्यपि उसकी मृत्यु को बीते आधी शताब्दी बीत चुकी है। उसका नाम प्रान्त में आज भी घरेलू सा है। उसका नाम प्रांत में आज भी किले नुम्मा महलों अथवा दुर्गों तथा कुटियों में संभाल कर रखा जाता है।" अशिक्षित व दयालु प्रकृति होते हुए भी वे एक सफल शासक थे। एक छोटी सी जागीर के स्वामी होते हुए महान् सुव्यवस्थित साम्राज्य स्थापित कर लेना उनके सफल प्रशासक की निशानी है। राजनीतिज्ञ होने के साथ २ वे अपने वचनों पर दृढ़ भी रहते थे। अमृतसर की सन्धि का उन्होने कभी उल्लंघन नही किया। उनकी महान् विजयों से स्पष्ट होता है कि वे एक महान् विजेता थे। परन्तु विजेता के साथ साथ वे एक कुशल शासक भी थे। उन्होने एक महान् साम्राज्य में एक दृढ़ केन्द्रीय सरकार की स्थापना की। उनका शासन स्वेच्छाचारी अवश्य था परन्तु वे यूरोपीय देशो के शासक फ्रेड्रिक महान्, कैथेराइन द्वितीय की भांति प्रबुद्ध स्वेच्छाचारी (Enlightened Despoto) थे। उनके द्वारा प्रति-पादित शासन प्रणाली उनके प्रशासन सम्बन्धी ज्ञान की परि-चायक थी। ग्रिफिन (Griffin) के मतानुसार "रणजीतसिंह एक बांका सिपाही था-दृढ़ अल्पव्ययी, चुस्त, साहसी तथा धैर्यशालो शासक था।" घुड़ सावारी व

तलवार चलाने में वह एक सिद्धहस्त योद्धा था। सिक्ख धर्म का अनुयायी होता हुआ भी वह अन्य धर्मों के साथ सहिष्णुता की नीति का पालन करता था। कुछ इतिहासकारो ने उनको धन-लोलुप तथा विलासी बताया है। हो सकता है कि ये अवगुण उनमें विद्यमान हों—जैसा कि मानव में कुछ अवगुणों का पाया जाना स्वाभाविक है। परन्तु इन अवगुणों के होते हुए भो रणजीतसिंह जी भारत के शासकों में महान स्थान रखते हैं। ग्रिफिन (Griffin) लिखता है, "वह महान था, क्योंकि उसमें असाधारण परिणाम में वे गुण पाए जाते थे, जिनके बिना ऊंची से ऊंची सफलता प्राप्त नहीं की जा सकती......।"

सिक्खों का पहला युद्ध

कारणः—(१) रणजीत सिंह की मृत्यु के पश्चात् पंजाब में अराजकता का साम्राज्य हो गया।

(२) रणजीत सिंह की सेना पर अल्पव्यवस्क दिलीप सिंह का नियन्त्रण न रहना।

(३) रानी झिन्डन खालसा सेना की शक्ति को अंग्रेजों से लड़ा कर कम कराना चाहती थी।

(४) अंग्रेजो की साम्राज्यवादी नीति।

घटनायें—१८४५ ई० में सिक्ख सैनिकों ने सतलज नदी को पर किया। उनके आने की सूचना पाते ही लार्ड हार्डिञ्ज ने पंजाब के विरुद्ध युद्ध की घोषणा करदी और अपनी सेना उनका मुकाबला करने को भेजी। सिक्खों की इस पहले युद्ध में अत्यन्त प्रसिद्ध लडाइयाँ मुदकी (Mudki), फिरोजशाह (Ferozeshah) अलीवाल (Aliwal) तथा सावरोग्रान (Sabroan) स्थानों पर लड़ी गई। मुदकी का युद्र अति भयंकर था। सिक्खों ने अंग्रेजों के छक्के छुडा दिए। परन्तु लालसिंह (Lal Singh) के विश्वास घात से सक्ख सेना परास्त हुई। फिरोजशाह के युद्ध में भी अंग्रेजों को महान् क्षति उठानी पड़ी। सर हूग गफ (Sir Hugh Gough) स्वयं ने लिखा है, "उस गंभीर रात्री में हम भयंकर परिस्थिति में थे।" परन्तु दिल्ली से रसद आ जाने के कारण अंग्रेज विजयी हुए। तृतीय व चतुर्थ लड़ाई में भी विजयलक्ष्मी अंग्रेजों को ही प्राप्त हुई। इस प्रकार प्रथम युद्ध सिक्खों को पराजय प्रदायक सिद्ध हुआ और इसका अन्त लाहौर की सन्धि (Treaty of Lahore, 1846) से हुआ।

ब्रिटिश साम्राज्य
१८२३ ई०
काबुल
शिमला
दिल्ली
काठमांडू
सिकिम
जोधपुर
इन्दौर
नागपुर
बम्बई
पूना
मदरास
कलकत्ता
अंग्रेजी राज्य
अंग्रेजों की संरक्षता में

ब्रिटिश साम्राज्य
१८४८ ई०
काबुल
जलालाबाद
गज़नी
मियानी
बम्बई
कलकत्ता
अंग्रेज़ी राज्य
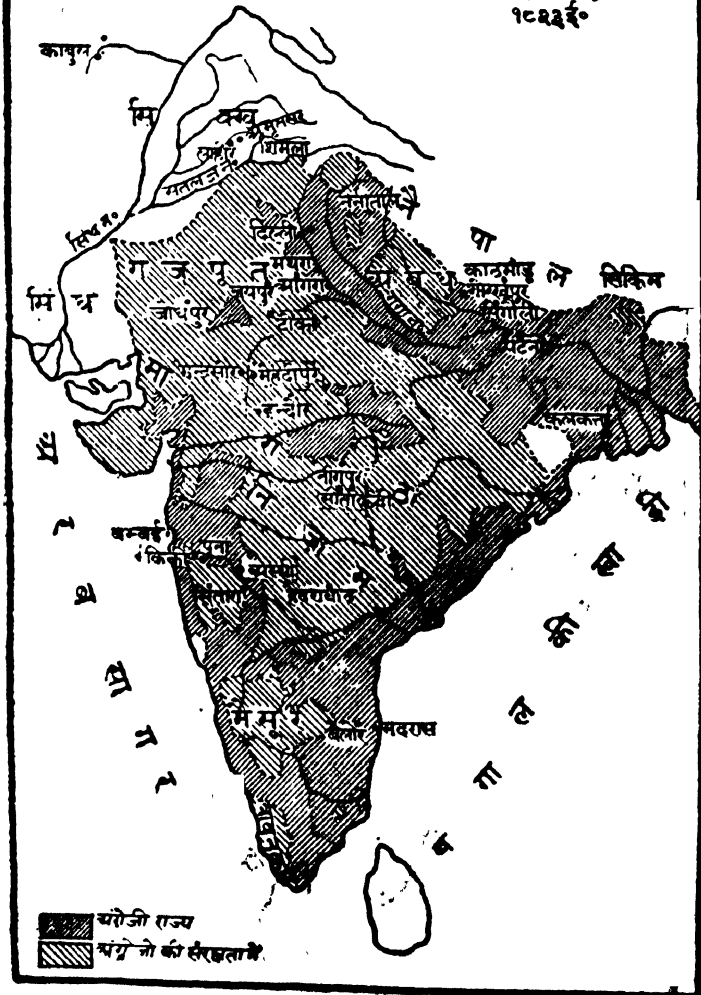
शर्तें—(१) सिक्खों ने दाबा तथा जालन्धर अंग्रेजों को सौंप दिये।

(२) पराजित होने के नाते युद्ध का व्यय डेढ़ करोड़ सिक्खों को देना पड़ा।

(३) लाहौर में अब एक अंग्रेजी रेजीडेन्ट रखा गया और हेनरी लारेन्स (Henry Lawrence) प्रथम रेजीडेन्ट नियुक्त हुआ।

(४) लाहौर में एक अंग्रेजी सेना रखी गई।

(५) सिक्ख सेना घटा दी गई। उनमें केवल २५ बटालियन पैदल तथा १२००० घुड़सवार रखे गये।

(६) दिलीप सिंह पंजाब का राजा स्वीकार किया गया।

इस संन्धि से सिक्खों की शक्ति का ह्रास अवश्य हुआ किन्तु पंजाब के प्रशासन में विशेष सुधार नहीं हुआ। सिक्खों में पारस्परिक वैमनस्य के बीज ज्यों के त्यों बने रहे। इसके अतिरिक्त दिलीपसिंह की आर्थिक अवस्था अत्यन्त शोचनीय हो गई।

लार्ड डलहौजी (१८४८–५६)

लार्ड डलहौजी Lord Dalhousie) का जन्म १८१२ में हुआ था। इसका पिता जार्ज रामजे था जो वाटरलू के युद्ध में अपनी अपूर्व वीरता प्रदर्शित कर चुका था। सन् १८३३ में उसने डिग्री प्राप्त की और १८३७ में वह पार्लियामेंट का सदस्य हो गया। ३६ वर्ष की आयु में वह भारत का गवर्नर नियुक्त हुआ। वह पक्का साम्राज्यवादी था। उसके भारत में निम्नलिखित उद्देश्य थे।

(१) भारत में ब्रिटिश साम्राज्य का विस्तार करना।

(२) भारत में ब्रिटिश साम्राज्य को दृढ़ करना।

उपर्युक्त दोनों उद्देश्य स्पष्ट करते हैं कि वह साम्राज्यवादी था। वह भारत में अंग्रेजी साम्राज्य के चार निर्माताओं में से एक माना जाता है। उसने आते ही अपने उद्देश्यों की पूर्ति का प्रयास करना आरम्भ किया। इस अध्याय में हम केवल उसके प्रथम उद्देश्य पर ही प्रकाश डालेंगे। उसने अपने प्रथम उद्देश्य को निम्न साधनों से पूर्ण किया:—

(a) युद्ध करके।

(b) कुशासन वाले प्रान्तो को मिला कर।

(c) गोद लेने की प्रथा बन्द करके।

युद्ध करके:—

(i) सिक्खों का दूसरा युद्ध—सिक्ख सेना में बढ़ते हुए अनुशासन को लार्ड हार्डिञ्ज ने नियन्त्रित में करना चाहा था। किन्तु वह अपने उद्देश्य में असफल रहा। उसके इंगलैण्ड लौटने के उपरान्त उसके उत्तराधिकारी लार्ड डलहौजी को सिक्खों से पुनः संघर्ष करना पड़ा। सिक्खों के दूसरे युद्ध के कारण निम्नलिखित थे:—

(१) सिक्ख लाहौर की सन्धि (१८४६) को अपमानजनक समझते थे।

(२) रानी झिन्डन को प्रशासन अधिकारो से वंचित कर दिया गया था।

(३) लालसिंह पर अंग्रेजों ने अविश्वास किया।

(४) राज्य के समस्त उच्च पद अंग्रेजों के अधीन हो गये।

(५) सिक्ख सेना में कमी होने से सहस्त्रों सैनिक बेकार हो गये।

(६) मुलतान के सूबेदार मूलराज से हिसाब मांगना तथा बाद में उसके स्थान पर काहनसिंह को सूबेदार बनाना।

घटनायें:—जब मूलराज को पद-च्युत कर दिया गया तो वह अंग्रेजों के विरुद्ध हो गया। काहन सिंह को जब वहां के सैनिकों ने नाम मात्र का अध्यक्ष देखा तो उन्होने दो अंग्रेज अफसरों की हत्या करदी। इस हत्या का दोष मूल राजा पर थोपा गया जबकि उसका इसमें कुछ हाथ नहीं था। आरम्भ ने लाहौर के रेजीडेन्ट ने शेर सिंह को मूलराज का दमन करने के लिए भेजा। किन्तु जब शेर सिंह को यह पता चला कि वास्तव में मूलराज का अंग्रेजों द्वारा अपमान हुआ है, वह स्वयं मूलराज से मिल गया। यह खबर पाते ही डलहौजी ने सिक्खो के विरुद्ध युद्ध घोषणा करदी। डलहौजी ने युद्ध घोषणा इन शब्दों के साथ की थी—"पूर्व-वादिता के बिना किसी उदाहरण से अप्रभावित सिक्ख जाति ने युद्ध घोपणा करदी है। मैं शपथ खाकर कहता हूं कि उनसे इसका पूरा प्रतिशोध लिया जावेगा।" घोषणा के उपरान्त डलहौजी ने अपने प्रधान सेनापति ह्यू-गफ (Hugh Gough) को पंजाब में शांति स्थापित करने भेजा। १६ नवम्बर १८४८ को उसने रावी नदी पार किया और २२ नवम्बर को राम नगर (Ramnagar) स्थान पर सिक्खों को परास्त किया। किन्तु यह युद्ध निर्णायत्मक सिद्ध न हुआ। डलहौजी स्वयं लुधियाना पहुंचा जहां उसे शेर सिंह का पत्र प्राप्त हुआ। पत्र में शेरसिंह ने स्पष्ट लिखा था कि रानी झिन्डन को पंजाब से निष्कासित कर तथा मूलराज को पदच्युत कर सिक्खों का

घोर अपमान किया है। १८४८ ई० में मुल्तान पर आक्रमण किया गया और १८४६ में वह आधीन कर लिया गया। किन्तु इस युद्ध से पूर्व चिलियानवाला (Chilian walla) स्थान पर सिक्खों ने अंग्रेजों के छक्के छुड़ा दिए। यहां अंग्रेजों को पर्याप्त हानि उठानी पड़ी। परन्तु यह विजय सिक्खों की अन्तिम विजय हुई। २१ फरवरी १८४६ को गुजरात (Gujrat) की लड़ाई में सिक्ख अंग्रेजों से परास्त हो गये। परास्त सिक्खों का पीछा किया गया और उनको हथियार डालने को बाध्य कर दिया गया तथा इस प्रकार युद्ध की समाप्ति हुई।

परिणाम—पंजाब को कम्पनी के प्रभुत्व में ले लिया गया। दिलीपसिंह की ५०,००० वार्षिक पौंड पेन्शन निश्चित कर उसे इंगलैंड भेज दिया गया जहां कि उसने ईसाई-धर्म स्वीकार कर लिया। मूलराज को आजन्म कारावास दिया गया अन्य सरदारों की जागीरें छीन ली गई। सिक्खों की सेना में और भी कमी की गई तथा उन्हें निःशस्त्र कर दिया गया। पंजाब के प्रशासन के लिए तीन कमिश्नरों की एक समिति बनाई गई।

समालोचना:—डलहौजी ने पंजाब को कम्पनी के राज्य में मिलाने के लिए जो नीति अपनायी उसकी सर्वत्र कटु आलोचना हुई। ट्राटर (Trottr) ने डलहौजी की इस नीति की आलोचना करते हुए लिखा है, "यह नीति किसी सिद्धान्त तथा न्याय पर आधारित नहीं थी।" बैल (Bell) के कथनानुसार पंजाब को अंग्रेजी राज्य मिलाया जाना "सशस्त्र विश्वासघात किया........।" लाहौर का रेजीडेन्ट हेनरी लारेन्स (Henry Lawrence) भी स्वयं डलहौजी की इस नीति के विरुद्ध था। परन्तु लार्ड डलहौजी तो पक्का साम्राज्यवादी था। अत: वह साम्राज्य विस्तार में उचित व अनुचित का विचार नहीं करता था।

(ii) बरमा का दूसरा युद्ध (१८५२)

कारण—(१) बरमावासियों का अंग्रेजों के प्रति व्यवहार अच्छा न था।

(२) बरमा में रहनेवाले अंग्रेज व्यापारियों को कानून की अवहेलना करने पर दण्ड दिया जाता था।

(३) लार्ड डलहौजी ने बरमा के राजा से मांग की कि वह रंगून के गवर्नर को पदच्युत करे तथा वहां के व्यापारियों की क्षति पूर्ति करे।

घटनायें—जब बरमा के राजा ने डलहौजी के पत्र का उत्तर नहीं दिया तो डलहौजी ने जनरल गाडविन (Genral Godwin) के नेतृत्व में एक अंग्रेजी

सेना भेजी। उसने मर्तवान (Martabon) पर अधिकार कर लिया। इसके उपरान्त वह रंगून गया। रंगून में अंग्रेज भूखे भेड़िया की भांति बरमावासियों पर टूट पड़े तथा लूट मार की। डलहौजी स्वयं रंगून पहुंचा। अक्टूम्बर के मास में प्रोम (Prome) पर अधिकार कर लिया। इस पर भी बरमा का राजा अंग्रेजों से संधि करने को उद्यत नहीं हुआ। अंग्रेजी सेना बढ़ती रही और दिसम्बर १८५२ में पेगू (Pegu) पर भी अंग्रेजों का अधिकार हो गया। इस विजय के उपरान्त डलहौजी और बरमा के राजा के बीच सन्धि की वार्तालाप अवश्य हुई–किन्तु कोई सन्धि नहीं हुई।

परिणाम—इस युद्ध के परिणाम स्वरूप पेगू और बरमा का निचला प्रदेश अंग्रेजों को प्राप्त हो गया। साम्राज्य विस्तार के साथ बंगाल की खाड़ी पर अंग्रेजों का प्रभुत्व पूरी तरह से स्थापित हो गया। व्यापारिक तथा आर्थिक दृष्टि से भी यह विजय अंग्रेजों को अति लाभदायक सिद्ध हुई।

आलोचना—बरमा का युद्ध तो बिना किसी उचित कारण के लार्ड डलहौजी ने अपनी सम्राज्य-वादी नीति की सन्तुष्टि के लिए आरम्भ किया था। उसकी इस नीति की कड़ी आलोचना हुई। आर्नल्ड (Arnold) के शब्दों में "द्वितीय बरमा युद्ध न तो अपने मूल में न्यायपूर्ण था तथा न व्यवहार की दृष्टि से ही....।"

(b) कुशासन वाले प्रदेश को मिलाना—

अवध—अवध (Oudh) अपनी नवाबी के लिए भारत में विख्यात रहा है यद्यपि आज वहां नवाब नहीं बसते तथापि उनके वंशज आज अपना जीवन गत जीर्ण वैभव में व्यतीत कर रहे हैं। यहां के अधिकांश नवाब अपने विलासी जीवन के लिए विख्यात रहे है। समय समय पर विभिन्न गवर्नर जनरलों से उनको अपना शासन सुधारने की सूचना मिलती रही। लार्ड विलियम बैंटिक ने उनको आगाह किया और लार्ड हार्डिंज ने भी किया था। परन्तु उन्हने इधर ध्यान ही नहीं दिया। सन् १८४२ में नासिरुद्दीन (Nasir Uddin) इस लोक से विदा हो गया तो उसका द्वितीय पुत्र वाजिदअली शाह (Wajid Ali Shah) अवध का नवाब बना। वह एक विलासी तथा अयोग्य शासक था। १८४९ में लार्ड डलहौजी ने कर्नल स्लीमैन (Sleeman) को लखमऊ में रेजीडेन्ट नियुक्त करके भेजा। उसने नवाब के कुशासन की निन्दा की। किन्तु स्लीमैन अवध को अंग्रेजी राज्य में मिलाये जाने के पक्ष में नहीं था। उसका विचार था, "अवध को अंग्रेजी राज्य में मिलाये जाने से कम्पनी को उससे कहीं अधिक व्यय करना पड़ेगा, जो उस प्रदेश के मिल जाने से आय

होगी तथा इससे सिपाहियों का विद्रोह भड़क उठेगा।" इसलिए डलहौजी ने १८५४ ई० में स्लोमैन के स्थान पर औट्रम (Outram) को रेजीडेन्ट नियुक्त किया। औट्रम ने नवाब से मुलाकात के समय ऐसे पत्र पर हस्ताक्षर करवाने चाहे जिसमें यह लिखा था कि नवाब अपनी इच्छा से अपना राज्य कम्पनी के संरक्षण में देना चाहता है। नवाब ने उस पत्र पर हस्ताक्षर करने से इन्कार किया। इस पर अंग्रेजी सेना राज-प्रासाद में घुस गई और लूट मचाना प्रारंभ कर दिया। लूट के समय बेगमों के साथ भी अमानुषिक व्यवहार करते वे नहीं हिचके। वास्तव में लूट के समय अंग्रेज सैनिक भी भारतवासियों पर इसी निर्ममता तथा असभ्यता से टूट पड़ते थे जिस प्रकार कि प्रारंभ में मुसलमान सैनिक हिन्दुओं पर टूट पड़ते थे। १३ फरवरी १८५६ को डलहौजी ने एक घोषणा के द्वारा अवध को अंग्रेजी राज्य में मिला लिया।

आलोचना:—लार्ड डलहौजी ने अवध के साथ जो व्यवहार किया उसे हम एक डाकू के कार्य की संज्ञा दे सकते हैं। नवाब अंग्रेजों के प्रति वफादार था तथा उसने कोई ऐसा कार्य नहीं किया था जो अंग्रेजो के विरुद्ध सिद्ध हो सकता था। अवध के नवाब के साथ जो घटना घटी उससे भारत के अन्य राजा भी भयभीत हो गये वे कहने लगे "वर्ष बीतता जाता है और समय के साथ भयानक आघात सहन करने पडते हैं। कहीं कोई शक्तिशाली राज्य ब्रिटिश अधिकार में चला जाता है तो कहीं शासन का कठोर चक्र चलता है।" स्लीमैन- Sleeman की भी यही राय थी कि अवध को अंग्रेजी राज्य में मिलाना डलहौजी की एक राजनीतिक भूल होगी। डलहौजी की कौंसल के अधिकांश सदस्य भी उसकी इस कार्यवाही के विरुद्ध थे। परन्तु साम्राज्यवाद की क्षुधा ही ऐसी होती है जो कभी शान्त नहीं होती। उसने अवध को इतना विरोध होते हुए भी अंग्रेजी राज्य में मिला लिया। अवध के विरुद्ध की जानेवाली कार्यवाही के सम्बन्ध में उसके खुद के ये विचार थे, "ब्रिटिश सरकार ईश्वर तथा मनुष्य की दृष्टि से अपराधी होगी, यदि वह ऐसी व्यवस्था को और भी अधिक सहयोग देगी जिसमें लाखों प्राणियों को कष्ट भोगना बदा हो।"

(c) गोद लेने की प्रथा बन्द करना— भारत में विवाह एक धार्मिक बन्धन समझा गया है और इसका प्रमुख उद्देश्य होता है सन्तानोत्पादन। हिन्दू धर्म की ऐसी धारणा है कि निःसन्तान पुरुष को परलोक में भी स्थान नहो मिलता। अत: जिन मनुष्यों के पुत्र उत्पन्न नहीं होता था—वे अपने सम्बन्धियों में से किसी को

अपना दत्तक पुत्र बना लेते थे ताकि उनका नाम चलता रहे। किन्तु लार्ड डलहौजी ने कानून बनाया कि कोई भी नरेश पुत्रहीन होने पर बिना हमारी अनुमति के किसी को गोद न ले। यद्यपि डलहौजी से पूर्व इस विषय में १८३४ में कम्पनी के डाइरेक्टर घोषणा कर चुका थे और १८४१ में इस ओर सख्ती बरती जाने का कम्पनी को आदेश मिल चुक था किन्तु डलहौजी ने इस ओर सक्रिय कदम उठाया और इस नीति (Doctrine of Lapse) मे उसने निम्नलिखित देशी रियासतों को अपने ब्रिटिश साम्राज्य में सम्मिलित कर लिया।

सतारा—सन् १८४८ ई० में सतारा (Satara) का नरेश बिना किसी पुत्र के परलोक सिधार गया। उसने अपने जीवन काल में ही एक पुत्र को गोद ले लिया था। किन्तु डलहौजी ने उसे स्वीकार नही किया और सतारा को ब्रिटिश राज्य में मिला लिया। इस विषय मे कम्पनी के डाइरेक्टरों ने घोषणा की कि "भारत के सामान्य कानून तथा प्रथा के अनुसार सतारा जैसी आधीन रियासतों के शासक को कम्पनी की स्वीकृति के बिना किसी बच्चे को गोद लेने का अधिकार नहीं है। हम इस बात के लिए वचन बद्ध अथवा वाध्य भी नहीं कि हम ऐसी स्वीकृति अवश्य दें अगर उस स्वीकृति के रोकने से हमारे हितों की अधिक सुरक्षा होती है।

नागपुर—सन् १८५३ में नागपुर (Nagpur) का नरेश राघोजी (Raghoji) पंच तत्वों को प्राप्त हो गया। उसके भी कोई पुत्र उत्पन्न नहीं हुआ। उसने अपने जीवन काल में किसी को गोद नही लिया था। किन्तु उसने इस विषय में कम्पनी की अनुमति चाही थी। अनुमति न मिलने पर उसने मरते समय अपनी रानी को यशवन्तराय (YaswantRao) को गोदलेने का आदेश दे दिया था। परन्तु डलहौजी ने यशवन्तराय को मान्यता नहीं दी और नागपुर को भी अग्रंजी राज्य में मिला लिया।

झांसी— झाँसी १८१७ में अंग्रेजों को अर्पित कर दिया गया था। किन्तु लार्ड हेस्टिंग्स ने राव रामचन्द्र (Rao Ramchandra) को झाँसी की गद्दी पर बिठाया था और उसे उत्तराधिकार का भी अधिकार दे दिया था। १८५३ में उसके वंशज गंगाधर राव (Ganga Dhar Rao) की मृत्यु हो गई और वह भी अपने पीछे कोई पुत्र नहीं छोड़ गया। उसने आनन्द राव (Anand-Rao) को गोद ले लिया था। किन्तु डलहोजी ने उसको झाँसी का राजा मानने से इन्कार किया और झांसी को भी लालरंग से रंग दिया।

सम्भलपुर—सम्भलपुर (Sambhalpur) पहले भोंसला के प्रभुत्वमें था परन्तु उसकी शक्ति का ह्रास होने पर वह कम्पनी के प्रभुत्व में आ गया। १८४९ में डलहोजी ने उसके नरेश को निःसन्तान मरने पर अपने अधिकार में कर लिया।

इसी प्रकार जैतपुर (Jaitpur) बाघात (Baghat) उदयपुर (Udaipur) को भी ब्रिटिश सामाज्य में सम्मिलित कर लिया गया। उदयपुर मध्यभारत में एक छोटी सी रियासत थी।

बरार—यह प्रदेश निजाम के आधीन था और उसे यह भोंसला से छीन कर दिया गया था। वहाँ हिन्दू और मुसलमानों के निरन्तर झगड़े होते रहते थे। अतः वहां शान्ति स्थापित करने के लिए डलहौजी ने एक सेना भेजी और उस सेना का व्यय भी निजाम के सिर पर डाल दिया। जब निजाम उस खर्च को नहीं अदा कर सका तो बिना उचित व अनुचित देखे डलहोजी ने बरार को भी ब्रिटिश साम्राज्य में विलीन कर लिया।

आलोचना—डलहौजी द्वारा गोद लेने की प्रथा बन्द करने के सम्बन्ध में भारतवासियों ने कटु आलोचना की है। उन्होंने उसकी इस नीति को अपने हिन्दू-धर्म पर प्रत्यक्ष आघात समझा। इससे उसकी चारों ओर घोर निन्दा हुई और देशी नरेश कम्पनी के शत्रु हो गये—जिसका परिणाम उसके यहां से लौटने के एक वर्ष बाद ही १८५७ के गदर के रूप में स्पष्ट दृष्टिगत हुआ। किन्तु डलहौजी अपनी नीति पर दृढ़ था। उसने अपनी इस नीति के सम्बन्ध में लिखा है–"मैं इस अवसर यह अपनी दृढ़ सम्मति देना चाहता हूं कि बुद्धिमत्तापूर्ण तथा गम्भीर नीति के अनुसार ब्रिटिश सरकार इस बात के लिए बाध्य है कि वह इस सिद्धान्त के अनुसार अवसर प्राप्त होने पर किसी प्रदेश अथवा राजस्व लेने का अवसर नहीं खोएगी।" यह सही है कि इन राज्यों को ब्रिटिश राज्य में मिला लेने से उनके शासन में सुधार हुआ किन्तु जनमत अंग्रेजों के विरुद्ध हो गया।

डलहौजी का मूल्याङ्कन—लार्ड डलहौजी का स्थान गवर्नर जनरलों में अत्यन्त ऊंचा है। लार्ड कर्जन (Lord Curzon) का मत है कि "लार्ड डलहौजी ने भारत पर एक ऐसा चिन्ह छोड़ा जो उससे पूर्ववर्ती किसी से भी अपेक्षाकृत कम महत्व का नहीं था। उसने ऐसी प्रसिद्धि प्राप्त की जो केवल वारेनहेस्टिंग्स से कुछ ही कम थी।" उसकी बुद्धि व्यापक तथा क्रियाशील थी। वह निर्णय शीघ्र लेता था तथा वह निर्णय तर्क पर आधारित होता था। वह अपने कर्त्तव्य की चिन्ता करता था और उसके परिणाम को भी सोचता था। युद्ध-संचालन में वह पटु था। यही कारण था कि यहां से इंगलैण्ड लौटते ही उसे सेना में प्रधान का स्थान दिया गया।

एक अच्छा सैनिक होते हुए भी वह एक अच्छा लेखक तथा उत्तम प्रशासक था। उसकी आलोचना मिलती है तो केवल भारतवासियों की ओर से। यह सत्य है कि वह एक पक्का साम्राज्यवादी था और अपने इस उद्देश्य की पूर्ति में उसने नैतिक व अनैतिक का विचार नहीं किया। साम्राज्य विस्तार के निमित्त क्लाइव की भांति वह बड़ा से बड़ा षड़यन्त्र रच सकता था व अपने वायदे से मुकर सकता था। वास्तव में देखा जाय तो उसने क्लाइव व वारेनहास्टिंग्स के कार्य को पूरा किया। उसकी आलोचना के विषय में विन्सेंट स्मिथ (V. A. Smith) ने लिखा है—कोई भी आलोचना लार्ड डलहौजी के स्थान को जो कि वारेन हेस्टिंग्स' वलेजली वा लार्ड हेस्टिंग्स के साथ सबसे अग्रिम आता है, नहीं बदल सकती है।" वास्तव में लार्ड डलहौजी भारत में ब्रिटिश साम्राज्य को चरम सीमा पर पहुंचाने वाला था। उसने भारत में अंग्रेजी साम्राज्य की वह सीमा निर्धारित करदी जो प्रायः १९४७ तक चलती रही। सर रिचार्ड टेम्पिल (Sir Richard Temple) का कथन है कि "क्लाईव ने तो भारत में ब्रिटिश सत्ता कायम की और वेलेजली ने उसको देश में उच्च किया जबकि डलहौजी ने उस कार्य को पूरा किया और ब्रिटिश सत्ता को देश की एक मात्र सत्ता बना दिया।" इससे स्पष्ट है कि लार्ड डलहौजी भारत में ब्रिटिश साम्राज्य को दृढ़ करने वाला तथा उसकी शक्ति को सर्वोच्च बनाने वाला था।

अध्याय सार

वारेन हस्टिंग्स (१७७२ से ८५)

सन् १७७२ ई० में क्लाइव के दोहरे शासन से उत्पन्न बुराइयों को दूर करने के लिए वारेन हस्टिंग्स की बंगाल के गवर्नर पद पर नियुक्ति हुई। इसका बचपन दुःख में व्यतीत हुआ था तथा गवर्नर पद से पूर्व यह भारत में अन्य पदों पर कार्य कर चुका था। १७७४ तक वह बंगाल का गवर्नर रहा। तदुपरान्त १७८५ तक गवर्नर जनरल की हैसियत से उसने भारत में कार्य किया। कम्पनी की आर्थिक दशा में सुधार करने की नियत से उसने शाह आलम की २६ लाख की पेंशन बन्द कर दी तथा अवध की बेगमों से अनैतिक ढंग से धन वसूल किया। ४० लाख के प्रलोभन से ही उसने रूहेला युद्ध में भाग लिया।

इसके शासन काल में मराठों व हैदरअली ने सिर उठाया किन्तु इसने उनको दबा दिया। मराठों से सालबाई (१७८२) की सन्धि की तथा हैदर के पुत्र से बंगलौर की सन्धि की।

लार्ड कार्नवालिस

जब १७८६ ई० में लार्ड कार्नवालिस भारत का गवर्नर जनरल नियुक्त होकर आया तो उसे अंग्रेजों के तीन शत्रु दृष्टिगत हुए। टीपू सुलतान को उसने मैसूर की तीसरी लड़ाई में परास्त किया तथा १७९२ में उससे श्री रंग पट्टम की सन्धि की।

अहस्तक्षेप की नीति

इस नीति का पालन सर जान शोर १७९३ से १७९८ तक करता रहा।

लार्ड वेलेजली (१७९८ से १८०५ तक)

जब लार्ड वेलेजली भारत का गवर्नर जनरल बन कर आया तो उसने भारत को टीपू सुल्तान, मराठे व फ्रान्सीसियों जैसे शत्रु से अशान्त पाया। अतः उसने अहस्त-क्षेप नीति का अनुसरण नहीं किया। उसने सहायक प्रथा चलाई और इसके सहारे उसने निजाम को अपने अधिकार में कर लिया तथा मैसूर की चौथी लड़ाई में टीपू का काम समाप्त कर मैसूर का संकट सदैव के लिए दूर कर दिया। अवध के नवाब से रूहेल खंड प्राप्त किया। मराठों की दूसरी व तीसरी लड़ाई में उनकी दृढ़ शक्ति को नष्ट करने का प्रयास किया। वास्तव में वेलेजली भारत में कम्पनी के साम्राज्य को फैलाने व दृढ़ करने आया था।

१८०५ से १८१३ तक का शान्ति-काल

लार्ड वेलेजली के स्थान पर लार्ड कार्नवालिस पुनः भारत का गवर्नर जनरल बन कर आया किन्तु वह उसी वर्ष वृद्धावस्था के कारण स्वर्ग सिधार गया। उसके बाद जार्ज बार्लो आया। उसने अहस्तक्षेप की नीति का अनुसरण किया इस कारण उसके कार्य-काल में कम्पनी का राज्य विघटित हुआ। उसके बाद मिन्टो आया किन्तु वह भी १८१३ में बुला लिया गया। उसने अफगानिस्तान, फारस तथा पंजाब में अपने राजदूत भेजे तथा उनको प्रभाव में लाने का प्रयास किया।

लार्ड हेस्टिंग्स (१८१३-२३)

लार्ड हेस्टिंग्स का शान्ति स्थापना की दृष्टि से पिण्डारियों का दमन एक श्लाघनीय कार्य था। इसने अपने शासन काल में नेपाल पर आक्रमण कर वहाँ कम्पनी का प्रभुत्व स्थापित किया तथा बहुत से प्रदेश जीत लिये। यह उसने सगोली की (१८१६) सन्धि से किया तथा १८१८ में मराठों की शक्ति का सदैव के लिए

दमन कर दिया। लार्ड हेस्टिंग्स का नाम भी भारत में ब्रिटिश साम्राज्य के निर्माताओं में है।

लार्ड एमहर्स्ट

इसने १८२४-२६ में बरमा के प्रथम युद्ध में बरमा को परास्त कर वहाँ मांडले की सन्धि से ब्रिटिश प्रभुत्व स्थापित किया तथा १८२५ में भरतपुर पर अधिकार कर लिया।

आकलैण्ड तथा देशी रियासतें

लार्ड आकलैण्ड ने अपने कार्य-काल में कोई विशेष कार्य नहीं किया। उसने केवल इन्दौर, सतारा के शासकों को शासन अच्छा रखने की चेतावनी दी।

लार्ड एलेनबरा

उसने अपने शासन-काल में सिन्ध को ब्रिटिश राज्य में मिला कर अपना नाम कमा लिया।

लार्ड हार्डिञ्ज (१८४५-४८)

जब वह भारत आया तो महाराजा रणजीतसिंह का स्वर्ग-वास हो गया था। इस कारण सिक्खों की विशाल सेना अब अनुशासन के बन्धन से मुक्त हो रही थी और रणजीतसिंह के पुत्र दिलीपसिंह का उन पर नियन्त्रण था नहीं। जब तक सिक्खों का राज्य विकसित होता रहा और अंग्रेजों से भी सम्बन्ध अच्छे बने रहे। परन्तु १८४५ में सिक्ख सेना ने सतलज नदी को पार कर लिया। इस पर हार्डिंज ने युद्ध छेड़ दिया। उन्होंने लाहौर की सन्धि करली जिससे पंजाब पर ब्रिटिश प्रभुत्व स्थापित हो गया।

लार्ड डलहौजी (१८४८ से ५६)

यह पक्का साम्राज्यवादी था। अतः इसने राज्य विस्तार की दृष्टि से पंजाब पर आक्रमण कर दिया। सिक्खों के दूसरे युद्ध में अंग्रेजी सेना विजयी हुई और पंजाब सदा के लिए ब्रिटिश राज्य में मिल गया। बाद में उसने बरमा पर आक्रमण किया। और उस पर अपनी कम्पनी का प्रभुत्व स्थापित कर दिया। अवध का शासन प्रबन्ध खराब था। अतः वह भी ब्रिटिश साम्राज्य में मिला लिया गया। इनके अलावा उसका प्रमुख कार्य था, गोद लेने की प्रथा को बन्द करना। इस प्रथा के सहारे उसने

सतारा, झांसी, नागपुर, संभलपुर, जैतपुर, बाघात तथा उदयपुर आदि सात रियासतें ब्रिटिश साम्राज्य में विलीन करलीं। लार्ड डलहौजी ने भारत में ब्रिटिश राज्य की वह सीमा निर्धारित कर दी जो कि प्राय: १९४७ तक बनी रही। लार्ड डलहौजी को भारत में ब्रिटिश साम्राज्य का विस्तारकर्ता माना जाता है।

योग्यता प्रश्न

(१) वारेन हेंस्टिग्स ने भारत में ब्रिटिश सत्ता को किस प्रकार शक्तिशाली बनाया।

Describe how Warren Hastings consolidated British power in India ?

(२) रूहेला युद्ध का संक्षेप में वर्णन कीजिए और वारेन हेस्टिग्स की रूहेला नीति की समालोचना कोजिए।

Give a brief account of the Rohilla War and criticise Hasting's Rohilla policy.

(३) "कदाचित् वारेन हैस्टिग्स अंग्रेज शासकों में सबसे महान् था। कुछ नैतिक त्रुटियों के साथ वह प्रभूत मात्रा में प्रगतिशील और तीव्र बुद्धि, अथक परिश्रमी और उच्च धैर्य आदि गुणों से सम्पन्न था, जो कि उच्चकोटि के राजनीतिज्ञों की विशेषताएं हैं।" रावर्टस

इस कथन की समीक्षा कीजिए।

"Hastings was perhaps the greatest Englishman who ever ruled a man who with some ethical defects possessed in a super abundant; measure the mobile and fertile brain, the tireless energy and lofty fortitude which distinguishes only the supreme statesmen"—Roberts.

Examine and discuss.

(४) अहस्तक्षेप की नीति से आप क्या समझते हैं ? सर जानशोर द्वारा यह नीति अपनाने से क्या परिणाम हुए ?

What do you understand by the Policy of non-intervention ? What were the results of this policy when it was followed by Sir John Shore.

(५) भारत में ब्रिटिश शक्ति के लिए फ्रांसीसी संकट का सामना करने के लिए वेलजली ने किन विभिन्न उपायों का आश्रय लिया

What were the different measures adopted by Wellesly to meet the French menace to British Power in India.

(६) सहायक प्रथा से आप क्या समझते हैं ? भारत में कम्पनी की प्रभुता को फैलाने में यह किस प्रकार सहायक हुई।

What do you understand by Subsidiary Alliance ? How did it help to extend the power of East India Company in India ?

(७) हैदर अली के आधीन मैसूर का उत्थान तथा टीपू के आधीन उसका पतन कैसे हुआ ? वर्णन कीजिए।

Write an account of the rise of Mysore under Haider Ali and its downfall under Tipu.

(८) मराठों की शक्ति का दमन वेलेजली ने किस प्रकार किया ?

How did wellesly suppress the power of the Marathas ?

(९) "मारक्वीस वेलेजली के आगमन के साथ देशी राजाओं ने प्रथम बार ब्रिटिश शासन के लौह हस्त के शीत स्पर्श का अनुभव किया।" फ्रेजर

इस कथन की विवेचना कीजिए।

"With the advent of the Marquis of Wellesly the cold touch of the iron hand of the British rule was felt for the first time by the native princes." (Frazer)

Discuss the statement.

(१०) लार्ड एलेनबरा ने सिन्ध पर विजय किन परिस्थितियों में प्राप्त की।

State the circumstances under which Sindh was conquered by Lord Ellenborough.

(११) महाराजा रणजीत सिंह के चरित्र तथा नीति का संक्षिप्त वर्णन कीजिए।

Sketch briefly the career and policy of Ranjit Singh.

(१२) लार्ड हार्डिञ्ज के कार्य–काल में अंग्रेजों तथा सिक्खों के परस्पर कैसे सम्बन्ध थे ? वर्णन कीजिए।

Describe the relations between the British and the Sikhs during the tenure of Lord Hardinge.

(१३) दूसरे सिक्ख युद्ध के क्या कारण थे ? उसके क्या परिणाम हुए ?

What were the causes of Second Sikh War ? What were its consequences ?

(१४) बरमा को ब्रिटिश साम्राज्य में कैसे मिलाया गया ?

How was Burma annexed in British Empire?

(१५) गोद लेने की प्रथा को लार्ड डलहौजी ने क्यों बन्द किया ? इससे भारतीय इतिहास पर क्या प्रभाव पड़ा ?

Why did Lord Dalhousie introduce Doctrine of Lapse and what were its effects?

(१६) "लार्ड डलहौजी को भारत में ब्रिटिश साम्राज्य का अन्तिम निर्माता कहा जाता है।" इस कथन की विवेचना कीजिए।

"Lord Dalhousie is called the last maker of the British rule in India." Discuss.

अध्याय पन्द्रह

कम्पनी के संरक्षण में शासन-विकास

प्रस्तावना—वारेन हेस्टिंग्स के शासन सुधार (प्रशासनिक, न्याय-सम्बन्धी भूमि सम्बन्धी, व्यापार सम्बन्धी,) रेग्यूलेटिंग कानून, १७८४ का कानून सुधार, लार्ड कार्नवालिस के शासन-सुधार (प्रशासनिक, न्याय-सम्बन्धी, व्यापार-सम्बन्धी, भूमि-सम्बन्धी) लार्ड हेस्टिंग्स के शासन-सुधार, न्याय-सम्बन्धी, भूमि-सम्बन्धी, शिक्षा-सम्बन्धी) लार्ड विलियम बेंटिङ्क के सुधार (आर्थिक, न्याय-सम्बन्धी, शैक्षणिक, सामाजिक) लार्ड डलहौजी के सुधार (प्रशासनिक, सैनिक, व्यापार सम्बन्धी, शिक्षा-सम्बन्धी, यातायात व संदेशवाहन सम्बन्धी) डलहौजी के सुधारों का महत्व।

प्रस्तावना—मुगल सम्राटों ने भी भारत के प्रशासन को सुव्यवस्थित रखने का प्रयास किया था। शेरशाह सूरी ने इस प्रकार की शासन-व्यवस्था भारत में स्थापित की थी कि उसका अनुकरण न केवल मुगल सम्राटों ने ही किया वरन् उसकी छाप आज के युग में भी दृष्टिगत होती है। अकबर ने भी इस ओर पर्याप्त ध्यान दिया और उसने शेरशाह की शासन-प्रणाली को अपना कर उसे और भी उन्नत एवं विकसित रूप दिया। जहांगीर व शाहजहां के शासन-काल में भी भारत की शासन-व्यवस्था व्यवस्थित बनी रही। सम्राट औरंगजेब भी एक अच्छा प्रशासक था किन्तु उसने प्रशासन को मुस्लिम धर्म के आवरण में रखना चाहा। इसका परिणाम यह हुआ कि उसका शासन-काल संघर्षों में ही व्यतीत हो गया और अकबर के द्वारा स्थापित शासन-व्यवस्था औरंगजेब की मृत्यु पर शनैः शनैः विनष्ट होने लगी। ज्योंही औरंगजेब ने इस लोक से आंख मूंदी, भारत में शान्ति व व्यवस्था के स्थान पर अराजकता फैलने लगी। अतः जब अंग्रेजों की ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने भारत कीशासन-सत्ता हथियायी उस समय भारत में अशान्ति छाई हुई थी और शासन-व्यवस्था नाम मात्र को विद्यमान थी। अंग्रेजों ने इसका फायदा उठाया और बंगाल को पूर्ण रूप से हथियाने की दृष्टि से लार्ड क्लाइव ने वहां की शासन व्यवस्था को और भी खराब बनाया। द्वैध-शासन प्रणाली से बंगाल में त्राहि त्राहि मच गयी। कम्पनी के डाइरेक्टरों का ध्यान इस ओर गया और उन्होंने १७७२ में वारेन हेस्टिंग्स को बंगाल का गवर्नर इसी आशा से नियुक्त किया था कि वह बंगाल के बिगड़े प्रशासन में सुधार कर सकेगा।

वारेन हेस्टिंग्स के सुधार

वारेन हेस्टिंग्स के गवर्नर बनने से पूर्व बंगाल की शासन व्यवस्था अत्यन्त दयनीय हो गई थी। द्वैध-शासन से बंगाल में न्याय व व्यवस्था के लिए कोई भी उत्तर-दायी नहीं था। लार्ड क्लाइव के चले जाने के उपरान्त भी बंगाल की शासन व्यवस्था खराब ही होती चली गई। ऐसी अवस्था में वारेन हेस्टिंग्स की, जो भारत में पहले से ही कई पदों पर कार्य चुका था, बंगाल के गवर्नर पद पर नियुक्ति हुई। अलफ्रेड लायल (Alfred Lyall) का मत है कि वारेन हेस्टिंग्स में भारत में शासन-व्यवस्था स्थापित करने की अपूर्व योग्यता थी। उसने भारत में आते ही कई सुधार किये जिनसे उसकी प्रशासनिक प्रतिभा स्पष्ट निखरती थी। उसने अपने प्रशासन-काल में निम्नलिखित सुधार किये।

प्रशासनिक-सुधार

(i) उसने लार्ड क्लाइव द्वारा प्रतिपादित द्वैध शासन व्यवस्था को समाप्त कर बंगाल को प्रत्यक्ष एवं पूर्ण रूप से कम्पनी के प्रभुत्व में ले लिया। दीवानी अधिकार पूर्ण रूप से कम्पनी के हाथों में आ गये। माल गुजारी कम्पनी के कर्मचारी वसूल करते थे और उसके भले बुरे की जिम्मेदार कम्पनी बन गई। उसने नायब दीवान के पद समाप्त कर दिए। रजा खाँ तथा सिताब राय को पद च्युत कर दिया।

(ii) खजाना मुर्शिदाबाद से कलकत्ता हस्तान्तरित कर दिया गया।

(iii) बंगाल के नवाब को शासन के उत्तरदायित्व से मुक्त कर दिया गया और उसकी १६ लाख रुपये की वार्षिक पैन्शन कर दी गई।

(iv) बंगाल के अल्प-वयस्क नवाब को मुन्नी बेगम के संरक्षण में छोड़ दिया गया।

(v) भारतीय कलेक्टरों के स्थान पर अंग्रेज कलेक्टर नियुक्त किये गये।

न्याय सम्बन्धी—न्याय के क्षेत्र में बंगाल के लोगों की दशा बहुत खराब थी। जन साधारण की कोई बात नहीं सुनता था। हेस्टिंग्स ने न्याय की व्यवस्था में सुधार करने की नीयत से निम्नलिखित सुधार किए—

(i) उसने प्रत्येक जिले में एक दीवानी और एक फौजदारी अदालत स्थापित की। दीवानी अदालतों की अध्यक्षता कलेक्टर करता था और कलेक्टर अंग्रेज होता था। फौजदारी अदालतों में हिन्दुस्तानी न्यायाधीश होते थे।

(ii) कलकत्ते में अपील की दो अदालतें थी (१) सदर दीवानी अदालत तथा

(२) सदर निजामत अदालत । जिलों की अदालतों के निर्णय के विरुद्ध अपील इनमें सुनी जाती थी।

(iii) न्यायाधीशों का पद वैतनिक कर दिया गया और उनका फीस व नजराना लेना बन्द कर दिया गया। इससे न्यायाधीश ईमानदारी से कार्य करने लगे।

(iv) फौजदारी अदालतों में कलेक्टर के आधीन एक पंडित व एक मौलवी होता था। हिन्दू अपराधी को सजा देने में कलेक्टर पंडित से राय लेता था व मुस्लिम अपराधी को सजा देने में मौलवी की।

(v) न्यायाधीशों के पथ-प्रदर्शन के लिए उसने हिन्दू व मुसलमानों के धार्मिक सिद्धान्तों पर एक कानूनी पुस्तक तैयार करवाई।

भूमि-सम्बन्धी सुधार:—

(i) उसने लार्ड क्लाइव के दोहरे-शासन को समाप्त कर मालगुजारी का कार्य प्रत्यक्ष रूप से कम्पनी के आधीन कर दिया। उसने भूमि का प्रबन्ध पंच-वर्षीय कर दिया। उसने गत वर्षों में वसूल किये गये लगान का मूल्याङ्कन किया और उसके हिसाब से उसने भूमि पर लगान की दर को पांच साल के लिए निश्चित कर दिया।

(ii) उसने पटना और मुर्शिदाबाद के राजस्व विभागों को समाप्त कर कलकत्ते में एक राजस्व बोर्ड (Revenue Board) की स्थापना की।

(iii) जब उसे ज्ञात हुआ कि पंच वर्षीय बन्दोबस्त से कृषकों का अहित हो रहा है तो १७७७ में उसने एक वर्षीय बन्दोबस्त लागू किया।

(iv) लगान वसूली का कार्य उसने स्वयं तथा कौंसिल के अधिकार में कर लिया और उसका नाम राजस्व समिति (Committee of Revenue) रखा।

(v) बनियों को आदेश दिया गया कि वे कृषकों को कर्ज न दें।

व्यापार सम्बन्धी:—अंग्रेजों के निजी व्यापार तथा अन्य कारणों से भी व्यापार की दशा दिनोंदिन गिरती जा रही थी। वारेन हेस्टिंग्स ने उसमें निम्नलिखित सुधार किये:—

(i) वारेन हेस्टिंग्स ने दस्तक (Dustuak) प्रथा को बन्द कर व्यापार का मार्ग जन साधारण के लिए खोल दिया।

(ii) उसने विभिन्न जमीदारों के अधीनस्थ भागों में स्थापित चुंगी की

चौकियों को समाप्त कर केवल कलकत्ता, हुगली, मुर्शिदाबाद, ढ़ाका व पटना में ही पांच चुंगी चौकी रखी। इससे फायदा यह हुआ कि अब व्यापारियों को एक स्थान से दूसरे स्थान पर माल लाने व लेजाने में कोई कठिनाई नहीं रही।

(iii) उसने चुंगी की दर सभी वस्तुओं पर २॥ प्रतिशत निश्चित कर दी और यह दर भारतीय व अंग्रेजों को समान रूप से देनी पड़ती थी। परन्तु नमक, पान, व तम्बाकू पर यह चुंगी दर लागू नहीं थी।

(iv) नमक तथा अफीम का व्यापार उसने कम्पनी के नियन्त्रण में ले लिया।

(v) मुद्रा प्रसारण में एकता लाने की नीयत से उसने एक टकसाल की व्यवस्था की और अपने अधीनस्थ भागों में वे ही सिक्के प्रचलित किये गये।

रेग्यूलेटिंग कानूनः—भारत में ईस्ट इण्डिया कम्पनी की स्थापना हुए १७३ वर्ष हो गये थे। इतने लम्बे समय तक व्यापार करने के उपरान्त भी कम्पनी को कभी खास लाभ नहीं हुआ। कम्पनी की आर्थिक दशा उत्तरोत्तर दयनीय होती चली गई। कम्पनी के कर्मचारी दिनों दिन अमीर बनते गये। इंगलैण्ड में उनको भारतीय नवाब (Indian Nawab) के नाम से पुकारते थे। अतः जब कम्पनी सरकार के समक्ष ऋण का प्रस्ताव रखती थी तब इंगलैण्ड की सरकार को आश्चर्य होता था। सरकार कम्पनी की शासन व्यवस्था में सुधार करना चाहती थी। कम्पनी का शासन उस समय एक संचालन समिति (Court of Directors) द्वारा संचालित था। उसमें भी कई बुराइयाँ विद्यमान थीं। अब कम्पनी भारत में अब व्यापारिक न रह कर शासन-करने वाली कम्पनी हो गई थी। अत: उस पर इंगलैण्ड की सरकार का नियन्त्रण होना आवश्यक था। जब वारेन हेस्टिग्स के समय में कम्पनी ने सरकार से ऋण मांगा तो सरकार ने शर्त पर कर्ज देना स्वीकार किया। सरकार की शर्तें कम्पनी के भारतीय प्रशासन पर नियन्त्रण रखने की थी और सरकार की यह शर्त इस रेग्यूलेटिंग कानून (Regulating Act) से पूरी हुई। यह कानून इंगलैण्ड की पार्लियामेन्ट द्वारा १७७३ में पारित किया गया। इस अधिनियम के प्रमुख उद्देश्य कम्पनी के दयनीय प्रशासन में सुधार करना तथा भारत के शासन पर ब्रिटिश सरकार का नियन्त्रण स्थापित करना था।

रेग्यूलेटिंग अधिनियम की धाराएँ—रेग्यूलेटिंग अधिनियम कम्पनी के प्रशासन तथा भारत के संवैधानिक विकास में विशेष महत्व रखता है। इस अधिनियम से

कम्पनी की शासन-प्रणाली में महान् परिवर्तन हुआ। इस कानून में कई धाराएँ थी। उनमें से प्रमुख निम्नलिखित हैं :—

(१) बंगाल का गवर्नर अब गवर्नर जनरल कहलाने लगा और बम्बई व मद्रास के गवर्नर उसके आधीन हो गये।

(२) गवर्नर जनरल को कार्य में सहायता देने के लिए चार आदमियों [क्लेवरिंग (Clavering) मानसन (Monson) बारवेल (Barwell) तथा फिलिप फ्रान्सिस (Philip Francis)] की एक कौंसिल स्थापित की गई। गवर्नर जनरल को हिदायत की गई कि वह जो भी कार्य करे वह कौंसिल के बहुमत से करे।

(३) कलकत्ते में एक सर्वोच्च न्यायालय (Supreme Court) की स्थापना की गई। इसका मुख्य न्यायाधीश ईम्पी(Sir Elijah Impey)था। यह न्यायालय गवर्नर जनरल के प्रभुत्व से स्वतन्त्र रखा गया।

(४) कम्पनी के उच्चाधिकारियों का वेतन ऊंचा कर दिया गया और उनका उपहार व भेंट लेना अनुचित घोषित किया गया।

(५)इस कानून से संचालक समिति (Court of Directors) के गठन में भी परिवर्तन हुआ। डाइरेक्टरों के कार्य-काल की अवधि एक वर्ष से चार वर्ष कर दी गई और उनकी संख्या २४ निश्चित कर दी गई। किन्तु प्रति वर्ष समिति के चौथाई सदस्यों को पद से मुक्त होना पड़ता था।

(६) इस कानून से स्वामी समिति (Court of Proprietors) के गठन में भी परिवर्तन हुआ। इस अधिनियम के पारित होने से पूर्व ५०० पौण्ड आमद वाले मतदान कर सकते थे। किन्तु अब १०००पौण्ड के साझेदार भी मत दान कर सकते थे।

(७) इस अधिनियम के पारित हो जाने पर ब्रिटिश सरकार को कम्पनी के प्रशासन कार्य पर नियन्त्रण रखने व उसकी देख रेख का अधिकार प्राप्त हो गया।

रेग्यूलेटिंग कानून की आलोचना—ब्रिटिश सरकार ने रेग्यूलेटिंग कानून इस विचार से लागू किया था कि कम्पनी की प्रशासन विधि में सुधार होगा तथा भारत में फैली अराजकता नष्ट होगी। किन्तु परिणाम इसके विपरीत हुआ। इस कानून के उपरान्त गवर्नर जनरल कार्य करने में स्वतन्त्र नहीं रहा। उसको कौंसिल के सदस्यों के बहुमत से काम करना पड़ता था और वे चारों सदस्य उसके विरोध में थे जिस उसके कार्य में सुधार होने के बजाय विघ्न डाला जाने लगा। सर्वोच्च न्याया-लय का कार्य-क्षेत्र स्पष्ट नहीं किया गया था। इसी कारण कई विषयों पर सर्वोच्च न्यायालय तथा कौंसिल के बीच संघर्ष होने लगा। बम्बई व मद्रास केगवर्नर

भी पूर्ण रूप से गवर्नर जनरल के आधीन नहीं हुए। ५०० पौण्ड वार्षिक आमदनी वाले साझेदारों को मत-दान से वंचित किया गया। यह भी उचित कार्य नहीं कहा जा जा सकता। इन सब के अतिरिक्त हम देखते हैं कि ब्रिटिश सरकार कम्पनी पर पूरा नियन्त्रण करने में सफल नहीं हुई। ब्रिटिश सरकार के गृह-मन्त्री (Home Minister) को साधारण कार्यों का निरीक्षण करने का ही अधिकार प्राप्त हुआ था। इसलिए पी. इ. रोबर्टस (P. E. Roberts) ने कहा है, "रेग्यूलेटिंग एक्ट के द्वारा राज्य को कम्पनी पर न तो निश्चित नियन्त्रण प्राप्त हुआ था और न ही डाइरेक्टरों को कम्पनी के कर्मचारियों पर। साथ ही कलकत्ता प्रेसीडेन्सी का बम्बई तथा मद्रास प्रांतों पर कुछ निश्चित नियन्त्रण न था।"

सुधारों का महत्व—यह सही है कि प्रशासक की हैसियत से वारेन हेस्टिंग्स को वह प्रतिष्ठा नहीं मिली जितनी उसे मिलनी चाहिये थी। भूमि सुधारों में भी उसे अधिक सफलता प्राप्त नहीं हुई। परन्तु यह सब होते हुए भी यह स्वीकार करना पड़ता है कि उसने बंगाल की अराजकता को दूर कर वहाँ सुख शान्ति की व्यवस्था की। न्याय का मार्ग निश्चित कर दिया तथा बंगाल में उत्तरदायी सरकार की स्थापना की। लार्ड मेकाले (Macaulay) के कथनानुसार "वारेन हेस्टिंग्स ने दोहरी सरकार को तोड़ दिया। उसने सभी कार्यो को अंग्रेजी हाथों में सौंप दिया अराजकता के उपरान्त भी उसने शांति स्थापित की…।'

रेग्यूलेटिंग एक्ट में कई कमियां अवश्य रह गई थी। परन्तु इस एक्ट ने कालान्तर में कम्पनी के शासन पर ब्रिटिश सरकार द्वारा पूर्ण नियन्त्रण स्थापित करने का मार्ग खोल दिया। इस कानून से कम्पनी में व्याप्त भ्रष्टाचार दूर हुआ तथा कम्पनी के कर्मचारियों के वेतन में वृद्धि भी हुई। कम्पनी के शासन में इसके उपरान्त क्रमिक गति से सुधार होता ही चला गया। इस कानून के अन्तर्गत एक व्यक्ति के शासन के स्थान पर एक संस्था का शासन स्थापित हो गया। अतः यह अधिनियम भी उस समय भारतवासियों को हित कर ही सिद्ध हुआ।

१७८४ का कानून

जैसा कि ऊपर बताया गया था रेग्यूलेटिंग कानून में कुछ दोष रह गये थे, और उस कानून के पास होने के उपरान्त अमेरिका, इंगलैण्ड की पराधीनता से स्वतन्त्र हो गया था अतः इंगलैण्ड का तत्कालीन प्रधान मन्त्री पिट (Pitt) घबराया कि भारत भी कहीं स्वतन्त्र न हो जावे। इसलिए रेग्यूलेटिंग कानून में रही हुई त्रुटियों को

दूर करने तथा भारत पर ब्रिटिश नियन्त्रण को दृढ़ करने के लिए उसने १७८४ म यह कानून पास किया। इसे पिट्स इण्डिया अधिनियम भी कहते है। इसकी धाराएँ निम्नलिखित थीं—

(१) ६ कमिश्नरों की एक नियन्त्रण समिति (Board of Control) की स्थापना की गई। इस समिति का भारत के प्रशासन व सेना आदि पर नियन्त्रण हो गया।

(२) संचालक समिति (Court of Directors) को नियन्त्रण समिति (Board of Control) का कहना मानना पड़ता था।

(३) इस कानून के अन्तर्गत इंगलैण्ड में एक तीन सदस्यों की गुप्त समिति (Committee of Secracy)बनाई गई। इसका कार्य भारत में गोपनीय आज्ञाएँ भेजने का था।

(४) इन कानून के पारित हो जाने के उपरान्त स्वामी-समिति (Court of Proprietors) की संचालक समिति (Board of Directors) के कार्यों में संशोधन करने का अधिकार नहीं रहा।

(५) गवर्नर जनरल की कौंसिल के सदस्यों की संख्या चार से तीन कर दी गई।

(६) बम्बई व मद्रास में भी गवर्नर के नेतृत्व में कौंसिलों की स्थापना की गई।

लार्ड कार्नवालिस के शासन-सुधार

लार्ड क्लाइव के शासन-काल की अराजकता को दूर करने का प्रयत्न अपने शासन सुधारों द्वारा वारेन हेस्टिंग्स ने किया था। परन्तु वह पूर्ण सफल नहीं हुआ। इसका पहला कारण तो यह था कि उसके शासन-सुधार भारत की तत्कालीन अवस्था में अति उपयुक्त सिद्ध नहीं हुए और दूसरा यह था कि वारेन हैस्टिंग्स देशी राजाओं के व्यवहार से बदनाम हो गया। नन्द कुमार, राजा चेतसिंह तथा अवध की बेगमों के साथ उसने जो व्यवहार किया उससे जनसाधरण उससे भयभीत हो गये। इसके अलावा उसके प्रशासन-काल में भी संघर्ष होते ही रहे। इन सबका परिणाम यह हुआ कि बंगाल में भ्रष्टाचार तथा अराजकता ज्यों की त्यों फैली रही। ऐसे समय में १७८६ में कम्पनी के डाइरेक्टरों ने लार्ड कार्नवालिस को भारत का गवर्नर जनरल नियुक्त किया। वह एक धनाढ्य जमीदार का पुत्र था। इंगलैण्ड के तत्कालीन प्रधान मन्त्री पिट का इस पर पूरा विश्वास था। इसने आते ही बंगाल की दयनीय अवस्था को ठीक करने के लिए निम्नलिखित सुधार किये—

प्रशासनिक सुधार—कम्पनी का शासन कर्मचारियों की धन लोलुपता के कारण दिनो दिन बिगड़ता जा रहा था। वह शासन में सादगी, मितव्ययिता एवं शुद्धता चाहता था। इसलिए शासन में इन तीनों गुणों का समावेश करने के लिए उसने निम्न साधन अपनाए—

(i) कर्मचारियों की संख्या में कमी कर उनके वेतन में वृद्धि कर दी।

(ii) कार्नवालिस ने कर्मचारियों की भर्ती सिफारिश के आधार पर न कर योग्यता के आधार पर करना आरभ किया।

(iii) उसने माल गुजारी पर कमीशन लेना बन्द कर दिया और इसके लिए कानून बनाया।

(iv) उसने कार्यकारी तथा न्यायिक कार्यों को अलग कर दिया। इसके फलस्वरूप जनता के साथ न्याय होने लगा।

(v) सेना के भ्रष्टाचार को दूर करने के लिए इसने उनकी भर्ती के लिए भी नियम बनाये। इस कार्य में उसने डन्डास (Dandas) का सहयोग प्राप्त किया।

न्याय संबन्धी

(i) लार्ड कार्नवालिस ने मुन्सिफी अमीन तथा रजिस्ट्रार अदालतें स्थापित कीं मुन्सिफी में ५० रुपये तक के अभियोग प्रस्तुत होते थे जबकि रजिस्ट्रार में २०० रुपये तक के।

(ii) राजस्व बोर्ड का कार्य अब केवल भूमि सम्बन्धी विषयों तक सीमित कर दिया गया और उससे न्यायिक अधिकार ले लिये गये।

(iii) प्रत्येक जिले में दीवानी अदालतों की स्थापना की गई।

(iv) उसने चार प्रान्तीय अपील की अदालतें स्थापित कीं।

(v) कलेक्टरो के अधिकार अब केवल राजस्व सम्बन्धी रह गये। वे अब दीवानी अभियोगों व अन्य विषयो में न्याय नहीं कर सकते थे।

(vi) कार्नवालिस का भी भारतीयों में विश्वास नहीं था। अतः उसने न्यायाधीशों के पदो पर अंग्रेज ही नियुक्त किये। किन्तु अभियोग को समझने की दृष्टि से दो भारतीय निर्धारक (Assessors) नियुक्त कर दिए जाते थे।

(vii) उसने न्याय की व्यवस्था करने के लिए एक कानूनी पुस्तक तैयार कराई जिसे कार्नवालिस कोड (Cornwallis Code) कहते हैं।

व्यापार सम्बन्धी

(१) उसने व्यापार के बोर्ड (Board of Trade) को कलकत्ता कौन्सिल के आधीन कर दिया तथा उसकी सदस्य संख्या ११ से घटा कर ५ कर दी।

(२) उसने अंग्रेजों को ठेका देना बन्द कर दिया। वे अब केवल एजेन्टों के रूप में भारतीय व्यापारियों से सामान खरीद सकते थे।

(३) उसने भारतीय कारीगरो को कम्पनी के कर्मचारियों के शोषण से बचने के लिए भी नियम बनाये।

भूमि सम्बन्धी—लार्ड कार्नवालिस एक जमीदार का पुत्र था। उसे मालगुजारी का अच्छा अनुभव था अतः उसने आते ही भूमि व्यवस्था की ओर ध्यान दिया। वारेन हस्टिंग्स के द्वारा प्रतिपादित पंचवर्षीय प्रबन्ध को समाप्त कर उसने अपनी व्यवस्था की। उसने जो भूमि व्यवस्था की उसे इतिहास में स्थायी बन्दोबस्त (Permanent Settlement) कहते है और वह इतिहास में अपने इस सुधार के लिए ही अधिक प्रसिद्ध है।

स्थायी बन्दोबस्त

स्थायी बन्दोबस्त का अर्थ—वारेन हेस्टिंग्स ने लार्ड क्लाइव के दोहरे शासन को समाप्त करने के लिए पंचवर्षीय बन्दोबस्त किया था जिसके अन्तर्गत भूमि पाँच वर्ष के लिए ठेके पर दे दी जाती थी। परन्तु इस योजना से कृषकों को कोई लाभ न हुआ। कार्नवालिस ने भूमि को सदैव के लिए नीलाम कर दी। जिसने जिस भूमि की ऊँची से ऊँची कीमत दी वह भूमि सदैव के लिए उस व्यक्ति की हो गई और वे व्यक्ति कालान्तर में जमीदार कहलाने लगे। इसके बदले में कम्पनी उन भूमि के स्वामियों से प्रति वर्ष निश्चित रकम ले लिया करती थी और लगान वसूल वे जमीदार ही किया करते थे। इस प्रकार की व्यवस्था करने से उसका प्रयोजन था कि लगान का धन कम्पनी को बिना दिक्कत के प्राप्त हो जाया करेगा और जमीदार भूमि को स्थायी रूप से अपने आधीन समझ कर उसे उपजाऊ बनाने का प्रयास करेंगे। उसने यह व्यवस्था १७९३ में लागू की थी।

स्थायी बन्दोबस्त के लाभ

(१) सरकार की आय निश्चित हो गई और वह लगान वसूली की कठिनाइयों से मुक्त हो गई।

(२) सरकारी व्यय निश्चित करने में सुविधा हो गई।

(३) कम्पनी के व्यय में बचत हुई। कम्पनी को जो पहले लगान वसूल करने के लिए विभाग व कर्मचारी रखने पड़ते थे अब उनकी आवश्यकता न रही।

(४) जब भूमि स्थायी रूप से एक स्वामी के आधीन हो गई तो वह स्वामी अपनी भूमि को उपजाऊ बनाने लगा।

(५) कम्पनी के सहयोग के लिए स्वामिभक्त जमीदारों का एक वर्ग बन गया जिन्होने १८५७ के गदर में अंग्रेजी सत्ता की रक्षा की।

(६) बंगाल एक धनाढ्य प्रान्त बन गया। अलफ्रेड लायल (Alfred Lyall) ने लिखा है, इसमें संदेह नही कि इसने बंगाल को साम्राज्य में सबसे अधिक धनवान प्रान्त बना दिया।

(७) मालगुजारी के कार्य से मुक्त होने पर कम्पनी न्याय की ओर अधिक ध्यान देने लगी।

स्थायी बन्दोबस्त से हानियां

(१) कम्पनी को आर्थिक नुकसान रहा लगान सदैव के लिए निश्चित हो गया था। किन्तु लगान निश्चित होने के समय सरकार के पास भूमि की जाँच पड़ताल के पर्याप्त उपयुक्त साधन नही थे। अतः १९१८ में जांच कराने से पता लगा कि जमींदार जितना लगान सरकार को देते थे उससे सोलह गुना वे पाते थे।

(२) बंगाल को कमी को पूरा करने के लिए अन्य प्रान्तों पर कर लगाये गये।

(३) कृषको की दशा में कुछ भी सुधार न हुआ। इसके विपरीत उन पर जमीदारो का शोषण बढ़ा।

(४) देश में एक धनी परन्तु विलासी वर्ग का आविर्भाव हुआ।

(५) विकास की दृष्टि से स्थायी बन्दोबस्त त्रुटिपूर्ण सिद्धांत पर लागू था।

स्थायी बन्दोबस्त की समालोचना—लार्ड कार्नवालिस ने स्थायी बन्दोबस्त तब लागू किया था जब कि उसने स्वयं ने देखा कि बंगाल में कृषि और व्यापार नष्ट हो रहा है। कृषक व मजदूर वर्ग निर्धनता के दाँस हो रहे हैं और साहूकार वर्ग दिनों दिन समृद्धिशाली बनता जा रहा है। अतः इस प्रबन्ध का उद्देश्य तो अच्छा था। इस स्थायी बन्दोबस्त की उपयोगिता पर भारतीय इतिहासकार आर० सी० दत्त (R. C. Dutt) ने इस प्रकार लिखा है, "यदि किसी जाति की सम्पन्नता तथा प्रसन्नता, बुद्धि तथा सफलता की कसौटी है, तो १७९३ का स्थायी भूमि बन्दोबस्त

भारत में ब्रिटिश जाति के द्वारा किये गये कार्यों में सबसे अधिक बुद्धिमत्तापूर्ण तथा सफलतम कार्य है।" किन्तु बेवेरिज (Beveridge) का कथन है "स्थायी बन्दोबस्त एक भारी भूल तथा महान अन्याय था, क्योंकि यह बन्दोबस्त जमींदारों के साथ किया गया था, परन्तु कृषकों के अधिकारों को सर्वथा उपेक्षा की गई थी।" इस प्रकार हम देखते हैं कि इतिहासकारो ने इसके पक्ष व विपक्ष दोनों में ही मत व्यक्त किये हैं और वास्तव में इससे हानि व लाभ दोनों ही हुए। परन्तु यह यथार्थ है कि इस स्थायी बन्दोबस्त से प्रारम्भ में कम्पनी व बंगालवासी दोनों को लाभ हुआ चाहे कालान्तर में वह उन्हें हानिप्रद सिद्ध हुआ हो।

लार्ड हेस्टिंग्स के शासन-सुधार

लार्ड कार्नवालिस के भारत से विदा होने के बीस वर्ष बाद तक भारत में कोई शासनसुधार नहीं हुए। सर जान शोर तो तटस्थता एवं शान्तिपूर्ण नीति से कार्य करता रहा। उसके उपरान्त यूरोप में इंगलैंड का सबसे महान शत्रु नैपोलियन बन गया अतः इंगलैंड अपने शत्रु को परास्त करने में तल्लीन रहा और उसने शासन सुधारों की ओर ध्यान नहीं दिया। लार्ड हेस्टिंग्स ने भारत आकर प्रथम मराठों और गोरखों का दमन किया और तत्पश्चात् सुधारों की ओर ध्यान दिया। इसको अपने सुधारों में एलफिन्सटन, मैलकम, मनरो व मेटकाफ जो उस समय गर्वनर थे, का पर्याप्त सहयोग मिला। उसके शासन सुधार निम्नलिखित थे —

(१) न्याय को सुलभ एवं शीघ्र बनाने की दृष्टि से उसने छोटी अदालतें स्थापित कीं और भारतीय मुन्सिफ तथा अमीनों के वेतन बढ़ा दिए ताकि योग्य व्यक्ति उन पदो पर नियुक्त हो सकें।

न्याय सम्बन्धी सुधार—

(२) उसने प्रान्तीय अपील अदालतों के जजों की संख्या तीन से बढ़ा कर चार कर दी।

(३) कलेक्टरों को पुनः कुछ न्याय सम्बन्धी अधिकार दे दिए गये।

(४) 'कार्नवालिस कोड' में भी कुछ संशोधन किये गये।

(५) उसने १८१५ में नियम बनाया कि किसी भी व्यक्ति को सदर दीवानी अदालत का न्यायाधीश तब तक न बनाया जावे जब तक उसने पहले प्रान्तीय तथा सर्किट अदालतों में न्यायाधीशों के रूप में कम से कम तीन वर्ष कार्य न किया हो।

भूमि सम्बन्धी सुधार :—

(१) लार्ड हेस्टिंग्स ने कार्नवालिस के स्थायी बन्दोबस्त के महत्व को जाना और उसने यह बन्दोबस्त पंजाब व उत्तर प्रदेश में चालू करना चाहा। किन्तु कम्पनी

के संचालकों की अनुमति न मिलने पर उसने वहां 'महालवाड़ी' प्रथा चलाई। इस प्रथा के अनुसार उत्तर प्रदेश में ३० वर्ष के लिए तथा पंजाब में २० वर्ष के लिए लगान निश्चित कर दिया। यह बन्दोबस्त प्रत्येक पर लागू किया गया और यह लगान गांव के लोग सामूहिक रूप से देते थे या गांव का एक व्यक्ति उसके लिए उत्तरदायी बना दिया जाता था।

(२) १८२२ में उसने कानून बनाया कि जब तक कृषक लगान नियमित रूप से दे रहा है—न तो उसे बे दखली किया जावे और न उसके लगान में वृद्धि की जावे।

(३) उसकी आज्ञा से मद्रास के गवर्नर ने राज्यतवारी प्रथा चालू की। इस प्रथा के अन्तर्गत कृषकों को सीधा खजाने में धन जमा कराने का अधिकार मिल गया।

(४) बम्बई में वहां के गवर्नर ने इसके आदेश से राज्यतवारी तथा महालवाड़ी के समन्वय से नवीन भूमि व्यवस्था की।

शिक्षा सम्बन्धी सुधार—लार्ड हेस्टिंग्स ने भारत में शिक्षा-विकास की ओर ध्यान दिया। उसके शासन-काल में इंगलैण्ड की पार्लियामेन्ट ने कम्पनी के संचालको से अनुरोध किया कि वे प्रतिवर्ष एक लाख रुपया शिक्षा के लिए खर्च करें। लार्ड हेस्टिंग्स ने इस पैसे का सदुपयोग किया। उसने कई छोटे छोटे स्कूल खोले। कलकत्ते के हिन्दू कालेज को उसने आर्थिक सहायता दी। कलकत्ते के समीप ही उसने एक वर्नाक्यूलर स्कूल भी खोला। शिक्षा के प्रसार में उसको अपनी स्त्री से भी पर्याप्त सहायता मिली।

लार्ड विलियम बेन्टिङ्क के शासन सुधार

लार्ड विलियम बेन्टिङ्क का भारतीय इतिहास में नाम उसके सुधारों के कारण ही है। उसके भारत आगमन से भारत में एक नवीन युग का आरम्भ होता है। वह प्रथम गवर्नर जनरल था जिसने कहा था कि हम भारत में केवल भारतीयों का शोषण करने ही नहीं आये हैं—वरन् उनका भला विचारना भी हमारा परम कर्त्तव्य है। वह उदार वृत्ति का था। उसने भारत में अंग्रेजी निरंकुश शासन में कमी करना चाहा अतः उसने अपने प्रशासन-काल में विभिन्न सुधार किये।

आर्थिक-सुधार—लार्ड विलियम बेन्टिङ्क के पूर्व गवर्नर जनरलों ने निरन्तर युद्ध करके कम्पनी के कोष को रिक्त कर दिया था और कम्पनी पर १६॥ करोड़ रुपया कर्ज और हो गया था। इस कारण कम्पनी के समक्ष पुनः कई

कठिनाइयां आ प्रस्तुत हुईं। इसलिए उसने सर्व प्रथम कम्पनी की आर्थिक दशा को सुधारने का ही प्रयत्न किया।

(i) उसने सैनिकों के डबल भत्ते को समाप्त कर दिया तथा कलकत्ते से ४०० मील के भीतर रहने वाले सैनिकों का भत्ता आधा कर दिया। इससे उसने बीस हजार पौण्ड की वार्षिक बचत कम्पनी के लिए कर दी।

(ii) उसने कई उच्च पदों को समाप्त कर दिया और सिविल नौकरों (Civil Servants) के वेतन में कमी कर दी। इस सुधार से उसने दो हजार पौंड की वार्षिक बचत की।

(iii) उसने उच्च पदों पर कम वेतन पर भारतीयों को नियुक्त किया।

(iv) उसने अपील की प्रान्तीय अदालतों को तोड़ दिया और डिस्ट्रिक्ट जजो को ही अपील सुनने का अधिकार दे दिया।

(v) अफीम की खेती पर उसने कर लगा दिया और काफी मात्रा में उसका चीन के लिए निर्यात किया।

न्याय सम्बन्धी सुधार—लार्ड कार्नवालिस ने भी इस क्षेत्र में सुधार किये थे। किन्तु उनमें कई दोष रह गये थे। इस कारण उनमें सुधार की आवश्यकता थी। बेन्टिङ्क ने न्याय जनसाधारण को सुलभ बनाने को नियत से इस क्षेत्र में निम्नलिखित सुधार किए—

(i) उसकी अंग्रेजी न्यायाधीशों पर अधिक आस्था नहीं थी। अत: उसने उनके स्थान पर भारतीय जज नियुक्त किए।

(ii) ढाका, मुर्शिदाबाद, पटना व कलकत्ता स्थित अपील अदालतों को उसने भंग कर दिया।

(iii) उसने बंगाल को २० भागों में विभक्त कर दिया और प्रत्येक विभाग में एक कमिश्नर नियुक्त किया।

(vi) १८३१ के कानून के अन्तर्गत अब अमीनों की नियुक्ति गर्वनर की कौंसिल द्वारा होने लगी।

(v) इलाहाबाद में एक चीफ कोर्ट की स्थापना की ताकि उत्तर प्रदेश के निवासियों को न्याय प्राप्ति में सुविधा हो।

(vi) अदालत की भाषा फारसी के स्थान पर प्रान्तीय भाषाएँ, निश्चित की गईं।

शैक्षणिक सुधार—जब बेन्टिङ्क ने भारतीयों को उच्च पदों पर नियुक्त करना प्रारम्भ कर दिया तो उसने भारतीयों को शिक्षित बनाना भी अपना कर्त्तव्य समझा अतः उसने भारत में अंग्रेजी शिक्षा का विकास किया और इस कार्य में उसको राजा राममोहन राय (Raja Ram Mohan Roy) से बहुत सहायता मिली। शिक्षा के क्षेत्र में उसने निम्नलिखित सुधार किए :—

(i) उसने लार्ड मेकाले (Macualay) के नेतृत्व में एक शिक्षा कमीशन की स्थापना की। कमीशन ने भारतीयों को अंग्रेजी भाषा की शिक्षा देने की सिफारिश की। बेन्टिङ्क ने इसे स्वीकार किया और १८३५ में स्वयं बेन्टिङ्क ने घोषिणा की "ब्रिटिश सरकार का प्रमुख उद्देश्य भारतीयों में साहित्य तथा विज्ञान की उन्नति करना होना चाहिए तथा शिक्षा के लिए स्वीकृत धन (१८ लाख) का व्यय सर्वोत्तम रूप से केवल अंग्रेजी शिक्षा पर ही होना चाहिए।"

(ii) १८३५ में उसने कलकत्ता में एक मैडिकल कालेज की स्थापना की।

(iii) उसने मद्रास तथा कलकत्ते में कालेज खोले तथा उनके आस पास में छोटे स्कूल खोले।

(iv) प्राइवेट स्कूलों को राजकीय सहायता देने का प्रबन्ध किया गया।

सामाजिक-सुधार—जब लार्ड विलियम बेन्टिङ्क भारत आया था उस समय भारत की सामाजिक अवस्था भी रुग्ण थी। उसका विकास उसकी बुराइयों से अवरुद्ध हो गया था। अतः बेन्टिङ्क ने भारतीय समाज को विकासोन्मुख बनाने लिए कई सामाजिक सुधार किये। उनमें से कुछ प्रमुख सुधार निम्नलिखित हैं—

(i) **सती प्रथा को बन्द करना**—बैन्टिङ्क के समय सती प्रथा ने बड़ा निर्दयी रूप धारण कर लिया था। स्त्रियों को जबरन उनके पति के साथ जलने को बाध्य किया जाता था। बंगाल इस प्रथा का उस समय गढ़ था। बैन्टिङ्क ने कानून पास कर इस प्रथा को अवैध घोषित कर दिया। राजा राममोहन राय ने इस प्रथा को बन्द करने में भी बेन्टिङ्क का साथ दिया था! मुगल सम्राट अकबर ने (Akbar) ने भी इस प्रथा को समाप्त करना चाहा था किन्तु वह असफल रहा।

(ii) **ठगी प्रथा को बन्द करना**—ये लोग यात्रियों को बहुत परेशान करते थे। भोले यात्रियों को जाल में फंसाकर वे उन्हें लूट लिया करते थे। वे काली के उपासक और बड़े निर्दयी होते थे। बेन्टिङ्क ने १८२९ ई० में स्लीमन (Sleeman) की अध्यक्षता में एक ठग-विरोधी महकमा खोला। चारों ओर से इन ठगों को घेरा तथा उन्हें कठोर यातनाएं देकर उन्हें यह व्यवसाय छोड़ने को बाध्य किया।

(iii) कन्या वध बन्द करना—उस समय राजपूतों में ऐसी प्रथा प्रचलित थी कि यदि उनके सर्व प्रथम पुत्री जन्म लेती तो वे उसे होते ही गला घोंट कर वा अन्य किसी साधन से मार डालते थे। बेन्टिङ्क ने इस प्रथा को भी बन्द किया।

(iv) मानव वध बन्द करना—उस समय आसाम व मद्रास के पहाड़ी भागों में ऐसा रिवाज था कि वहां के लोग देवताओं की तुष्टि के लिए मानव का वध कर दिया करते थे। बेन्टिङ्क ने इस अमानुषिक प्रथा को दण्डनीय घोषित किया।

राजा राममोहन राय—लार्ड विलियम बेंटिक ने भारत में सुधार किए उनमें उसे सर्वाधिक सहयोग देने वाले राजा राम मोहन राय (Raja Ram-Mohan Roy थे ! उनका जन्म २२ मई १७७२ को राधा नगर में हुआ था। वे अपने माता पिता के इकलौते पुत्र थे। उनके माता पिता पुराने विचारो के एवं सनातन-हिन्दू थे। किन्तु राजाराममोहन के विचार आधुनिक एवं पाश्चात्य विचार धारा से प्रभावित थे। इन्हीं विचारों के कारण उनको अपना घर छोड़ना पड़ा और कुछ वर्षों के लिए उन्हें दर दर घूमना पड़ा। वे भारतीयों के अन्धविश्वास तथा रूढ़िवाद के विरोधी थे। वे जाति प्रथा तथा मूर्ति पूजा में आस्था नहीं रखते थे। उन्होने अपने विचारों के प्रचारार्थ ब्रह्म-समाज (Brahma Samaj) की स्थापना की। आपने जाति प्रथा को बन्द करने तथा अंग्रेजी शिक्षा के प्रचार में दिल खोलकर बेन्टिङ्क का साथ दिया। इस कारण भारतवासी इनके कट्टर विरोधी हो गये। उन्होने अपने अन्तिम दिन इंगलैण्ड में ही बिताये और ब्रिस्टल (Bristal) में ही १८३३ में अपने प्राण त्यागे।

लार्ड मैकाले (Macaulay)—लार्ड मैकाले एक विद्वान अंग्रेज था। उसके विचार संकीर्ण थे। पाश्चात्य सभ्यता में उसकी अटूट श्रद्धा थी। और भारतीय सभ्यता व संस्कृति को वह हीन दृष्टि से देखता था। अतः जब लार्ड बेन्टिक ने शिक्षा प्रसार के लिए एक शिक्षा कमीशन मैकाले की अध्यक्षता में नियुक्त किया तो उसने सिफारिश की कि भारतीयों को अंग्रेजी भाषा पढ़ानी चाहिए। इससे भारत में पाश्चात्य सभ्यता का प्रसार होगा और भारतवासी पाश्चात्य सभ्यता की उपासना करते हुए अंग्रेजों की दासता में जकड़े रहेंगे। उसकी मान्यता थी कि यूरोप का किसी एक आलमारी भरा साहित्य भारतीय समस्त साहित्य से उत्तम है। किन्तु उसका ऐसा विचारना निराधार था।

बैन्टिङ्क एक सुधारक के रूप में—यद्यपि लार्ड विलियम बैन्टिङ्क भारत में गवर्नर जनरल के पद पर सात साल ही रहा किन्तु वह अपने इस सात साल के प्रशासन से ही भारतवासियों पर एक अमिट छाप छोड़ गया। भारतवासी जिस

प्रकार घृणा से लार्ड वेलेजली व डलहौजी का नाम लेते हैं वह घृणा बेन्टिङ्क के नाम के साथ नहीं आती। उसने अपने सुधारों से भारतवासियों का निश्चय ही उपकार किया है। आर. सी. दत्त (R .C. Dutt) ने संक्षेप में लिखा है, "विलियम बैन्टिङ्क के सात वर्षों का शासन शान्ति, छटनी तथा सुधारों का युग था। उसने ईस्ट इण्डिया कम्पनी के उपनिवेशों में शान्ति स्थापित की तथा वह भारतीय शासकों के साथ शान्ति पूर्वक रहा है।..........उसने राजस्व तथा न्याय विभागों में सुशिक्षित भारतीयों को उच्च स्थानों पर नियुक्त किया। उसने सती प्रथा को समाप्त किया तथा ठगी के अपराध को दबाया। उसने भारत में अंग्रेजी शिक्षा को प्रोत्साहित किया....।" लार्ड मैकाले (Macaulay) ने तो उसकी प्रशंसा बहुत ही की है। उसने लिखा है, "हिन्दुस्तानियों की सबसे पीछे आने वाली पीढ़ी लार्ड विलियम बैन्टिक की मूर्ति को बहुत आदर से देखेगी।" बैन्टिङ्क के सुधारों के पक्ष व विपक्ष दोनों पर विचार करते हुए हम यह कह सकते हैं कि उसने भारतीयों का हित अवश्य विचारा। उसने उनको यथोचित आदर दिया तथा उनके समाज को विकासोन्मुख बनाने का भी उसने प्रयास किया। वही प्रथम गर्वनर जनरल था जिसने कि भारतवासियों का भला करना व उनको शिक्षित बनाना अपना धर्म समझा था। यही कारण था कि उसका प्रभाव बिना युद्ध किये भारतवासियों पर स्थायी पड़ा और मिल्टन के इस कथन को कि "शान्तिकालीन विजय युद्ध-कालीन विजय से कम ख्याति पूर्ण नहीं है। सच्चा साबित किया।

लार्ड डलहौजी के शासन सुधार

लार्ड डलहौजी भारत के इतिहास में बजाय सुधारक के एक विजेता के नाम से अधिक विख्यात है। उसने ही आते भारत में ब्रिटिश-सम्राज्य को विस्तृत किया। किन्तु बाद में उसने सुधारों की ओर ध्यान दिया। यह भी सच है कि उसने ये सुधार केवल ब्रिटिश-साम्राज्य को भारत में दृढ़ करने की नीयत से किये थे।

प्रशासनिक सुधार—

(i) नागरिक व सैनिकों में उसने कोई भेद नहीं रखा।

(ii) जिला मजिस्ट्रेटों को सब प्रकार (दीवानी व फौजदारी) के अधिकार दे दिए।

सैनिक अधिकार—लार्ड डलहौजी ने भारत में अंग्रेजी साम्राज्य का विस्तार तो कर लिया था—किन्तु साथ में उसकी सुरक्षा का प्रश्न भी उसके सामने प्रस्तुत हो गया। अतः देश की सुरक्षा की दृष्टि से सेना में उसने कई सुधार किए जैसे:—

(i) सेना को एक स्थल पर केन्द्रित न रखकर उनकी जगह जगह छावनियां स्थापित कर दीं।

(ii) भारतीय सैनिकों में कमी कर दी तथा उनको एक जगह भारी संख्या में न रखकर देश के विभिन्न स्थानों पर नियुक्त कर दिया।

(iii) अंग्रेज सैनिकों की संख्या में वृद्धि की गई।

(iv) गोरखों को सेना में भर्ती होने को उसने प्रोत्साहित किया।

व्यापार सम्बन्धी—व्यापार के क्षेत्रमें उसकी नीति यह थी कि अंग्रेजी पूंजी भारत में अधिकाधिक लगाई जावे। अतः व्यापार को उन्नत करने के लिए उसने निम्न सुधार किये :—

(i) उसने खुले व्यापार (Free trade) को प्रोत्साहन दिया।

(ii) व्यापार को उन्नत करने के लिए उसने समस्त बन्दरगाहों को खोल दिया तथा उनका विस्तार भी किया।

(iii) भारत के कच्चे माल के निर्यात को उसने प्रोत्साहन दिया।

(iv) अंग्रेजी सामान को भारत लाने की पूरी सुविधाएँ प्रदान की गईं।

शिक्षा सम्बन्धी—इस समय इंगलैण्ड में शिक्षा प्रसार के लिए बहुत प्रयत्न हो रहे थे। इंगलैण्ड की पार्लियामेण्ट ने संचालक बोर्ड के अध्यक्ष चार्ल्स वुड (Charles Wood) ने भारत में शिक्षा प्रसार का आदेश दिया। चार्ल्स वुड के आदेश पर डलहौजी ने भारत में शिक्षा प्रसार के लिए निम्न साधन अपनाये :—

(i) बम्बई, मद्रास व कलकत्ता इन तीनों प्रेसीडेन्सियों में एक एक विश्वविद्यालय की स्थापना की गई। इन विश्व-विद्यालयों का कार्य केवल शिक्षा देना ही नहीं था वरन् छात्रों की परीक्षा लेना भी था।

(ii) डलहौजी ने जगह जगह बड़े शहरों में कालेज खुलवाये।

(iii) कालेजों के नेतृत्व में उसने एंग्लो वर्नाक्यूलर मिडिल व हाईस्कूल खोले।

यातायात व संदेशवाहन सम्बन्धी—ब्रिटिश राज्य का विस्तार बहुत हो गया था। कलकत्ता उस समय ब्रिटिश भारत की राजधानी था। कलकत्ते से पंजाब, सीमा प्रान्त, सिन्ध व दक्षिणी भारत पर नियन्त्रण रखना अति कठिन कार्य था। अतः डलहौजी ने कलकत्ता को समस्त भारत से सम्बद्ध रखने व कम्पनी के साम्राज्य को सुरक्षित रखने के लिए यातायात व संदेशवाहन के साधन सुगम बनाये। यातायात के साधनों को सुलभ बनाने के लिए उसने निम्न कार्य किये :—

(i) उसने भारत में रेलगाड़ी चलाई। उसके समय में २०० मील से भी अधिक रेलवे लाइन डाली गई। ग्रान्डट्रंक रोड का निर्माण भी इसी के समय हुआ था।

(ii) उसने जगह जगह तारघर (Telegraph offices) की व्यवस्था की।

(iii) डाक की व्यवस्था के लिए उसने डाकघर (Post offices) स्थापित किये तथा दो पैसे का पोस्टकार्ड चलाया।

सुधारों का महत्व—लार्ड डलहौजी के सुधारों को इतना महत्व नहीं दिया जाता जितना कि बेन्टिङ्क के सुधारों को दिया जाता है। इसका कारण यह था कि लार्ड डलहौजी ने सुधार देश के विकास के दृष्टिकोण से नहीं किये थे, इन सुधारों में उसका एक मात्र उद्देश्य शासन का केन्द्रीयकरण करना था और इसमें वह सफल हुआ चाहे वह सफलता अस्थायी ही सिद्ध क्यों न हुई। सैनिक व यातायात सम्बन्धी सुधारों से कम्पनी का साम्राज्य दृढ़ हुआ तथा अंग्रेज व्यापारियो का आर्थिक हित हुआ। रेलों के निर्माण से समय पड़ने पर सेना भेजने में सुविधा हो गई तथा इंगलैंड के सामान को भारत में खपाने में सुगमता प्राप्त हुई। कहने का तात्पर्य यह है कि उसके सुधार भारतीयों के हित पर आधारित न होकर कम्पनी के साम्राज्य तथा अंग्रेज जाति के हित पर आधरित थे। इसलिए देश पर उनके अच्छे प्रभाव का प्रश्न ही नहीं आता। अंग्रेज उसे महान् राजनीतिज्ञ तथा ब्रिटिश-राज्य का निर्माता मानते हैं किन्तु उसके सुधारों की प्रतिक्रिया उसके भारत से जाते ही हुई जिनका वर्णन हम अगले अध्याय में करेंगे।

अध्याय सार

सम्राट औरंगजेब की मृत्यु के उपरान्त भारत की शासन-व्यवस्था शनै-शनै अस्त-व्यस्त होने लगी और इसी का लाभ उठाकर अग्रेजो ने बंगाल में अपनी सत्ता कायम की। लार्ड क्लाइव ने बंगाल की अराजकता से कम्पनी को आर्थिक लाभ पहुंचाया। परन्तु उसके जाने के बाद अंग्रेजों ने भारत की शासन व्यवस्था को समुन्नत करने की चिन्ता की।

वारेन हेस्टिंग्स के सुधार

प्रशासनिक—वारेन हस्टिंग्स ने क्लाइव के दोहरे शासन-प्रबन्ध को समाप्त कर कई प्रकार के सुधार किये। प्रशासनिक क्षेत्रमें उसने नायब दीवान का पद समाप्त कर मालगुजारी की व्यवस्था सीधे रूप से कम्पनी के हाथ में ले ली तथा बंगाल के नवाब की १६ लाख रुपये वार्षिक पेन्शन करदी।

न्याय सम्बन्धी—उसने प्रत्येक जिले में एक दीवानी और फौजदारी अदालत स्थापित की तथा उनकी अपील कलकत्ते में होती थी। जजों में ईमानदारी लाने के लिए उसने अनेक पद वेतनिक कर दिए और उसने पथ प्रदर्शन के लिए एक कानूनी पुस्तक तैयार कराई। कलेक्टर व न्यायाधीश अंग्रेज होते थे।

भूमि सम्बन्धी—लार्ड क्लाइव के दोहरे-शासन प्रबन्ध को समाप्त कर उसने पंच-वर्षीय बन्दोबस्त किया तथा एक राजस्वबोर्ड तथा राजस्व समिति की भी स्थापना की।

व्यापार सम्बन्धी—उसने जमीदारों के यहां की चुंगी की चौकियां समाप्त कर दी तथा दस्तक प्रथा को बन्द कर दिया। चुंगी कर २॥ प्रतिशत तय किया गया तथा नमक व अफीम पर कम्पनी का नियन्त्रण कर दिया गया।

रेग्यूलेटिग कानून—सन् १७७३ में ब्रिटिश सरकार ने रेग्यूलेटिंग कानून पास किया जिससे इंगलैड की सरकार को कम्पनी की व्यवस्था का निरीक्षण करने का अधिकार मिल गया। बंगाल का गवर्नर अब गवर्नर जनरल कहलाने लगा। बम्बई व मद्रास के गवर्नर उसके आधीन हो गये तथा उसके नीचे चार सदस्यों की एक कोंसिल बनी। कलकत्ते में एक सर्वोच्च न्यायालय की स्थापना की गई।

१७८४ का कानून—रेग्यूलेटिंग कानून की कमियों को दूर करने की नीयत से यह कानून पिट द्वारा पास किया गया था।

लार्ड कार्नवालिस के शासन सुधार

प्रशासनिक—कर्मचारियों की संख्या में कमी कर उनके वेतन में वृद्धि कर दी। योग्य कर्मचारियों की भर्ती की तथा उनका व्यापार-कमीशन लेना बंद कर दिया। न्यायिक तथा कार्यकारी कार्यों को अलग कर दिया।

न्याय सम्बन्धी—प्रत्येक जिले में दीवानी अदालतें खोली गईं तथा राजस्व बोर्ड का कार्य केवल भूमि सम्बन्धी रह गया। यही बात कलेक्टरों के साथ हुई। उसने भी एक कानूनी पुस्तक तैयार कराई।

व्यापार सम्बन्धी—बोर्ड आफ ट्रेड की स्थापना की तथा अंग्रेजों को ठेका देना बन्द कर दिया।

भूमि सम्बन्धी—उसने वारेन हेस्टिंग्स के पंच वर्षीय प्रबन्ध को समाप्त कर स्थायी बन्दोबस्त की व्यवस्था की। यह व्यवस्था आर्थिक दृष्टिकोण से कम्पनी को हितकर भी सिद्ध हुई और अहित कर भी। लेकिन इस व्यवस्था से बंगाल की दशा में सुधार अवश्य हुआ।

लार्ड हेस्टिंग्स के सुधार

न्याय सम्बन्धी—छोटी अदालतें स्थापित कीं तथा प्रांतीय अपील अदालतों के न्यायाधीशों की संख्या चार करदी। कलेक्टर को न्याय के अधिकार पुनः देदिए गये तथा कार्नवालिस कोड में कुछ संशोधन किये गये।

भूमि सम्बन्धी—उसने पंजाब व उत्तर प्रदेश में महालवाड़ी तथा मद्रास में राज्यतारी प्रथा चालू की। उसने १८८२ में कानून पास किया जिससे नियमित रूप से कर देनेवाला किसान बेदखल नहीं हो सकता था। बम्बईमें महालवाड़ी तथा रज्यतारी की मिश्रित प्रथा चली।

शिक्षा-सम्बन्धी–शिक्षा के लिए एक लाख रुपये की स्वीकृति हुई तथा कलकत्ता के हिन्दू कालेज को आर्थिक सहायता दी गई।

लार्ड विलियम बेन्टिङ्क के सुधार

आर्थिक सुधार—सैनिकों का डबल भत्ता बन्द किया तथा सिविल सेवकों की संख्या में कमी की। कम वेतन पर योग्य भारतीयों को नियुक्त किया। प्रान्तीय अदालतें भंग कर दी गईं तथा अफीम की खेती पर कर लगाया गया।

न्याय सम्बन्धी सुधार—भारतीय न्यायाधीश नियुक्त किये तथा ढ़ाका मुर्शिदाबाद, पटना, व कलकत्ता स्थित अदालतें तोड़ दी गईं। बंगाल को बीस भागों में बांटा गया तथा उनमें कमिश्नर नियुक्त हुए। इलाहाबाद में चीफ कोर्ट की स्थापना की गई। तथा कोर्ट की भाषा फ़ारसी की जगह प्रान्तीय कर दी गई।

शिक्षा सम्बन्धी सुधार—अंग्रेजी स्कूल खोले गये तथा कलकत्ते में एक मैडिकल कालेज खोला गया। प्राईवेट स्कूलों को राजकीय सहायता दी गई और मद्रास व कलकत्ते के आस पास छोटे स्कूल खोले गये।

सामाजिक सुधार—सती प्रथा, ठगी प्रथा, कन्या वध व मानव बलि आदि उसने बन्द कीं।

राजा राममोहन राय—लार्ड विलियम बेन्टिङ्क को सामाजिक व शिक्षा सम्बन्धी सुधारों में राजा राम मोहन राय से पर्याप्त सहायता मिली। उन्होंने ब्रह्म-समाज की स्थापना की थी।

लार्ड डलहौजी के सुधार

प्रशासनिक—कमिश्नरों को अपनी कौंसिल के प्रति उत्तरदायी कर दिया तथा नागरिक व सैनिकों में कोई भेद नहीं रखा। जिला मेजिस्ट्रेट को सभी प्रकार के अधिकार सौंप दिए।

सैनिक सुधार—'सैनिक छावनियों की स्थापना, अंग्रेजी सैनिकों में वृद्धि भारतीय सैनिकों में कमी तथा उनको एक स्थान पर न रखना और गोरखों को सेना में में लेना भी उसने आरम्भ किया।

व्यापार सम्बन्धी—खुले व्यापार को प्रोत्साहन देना, बन्दरगाहों को खोलना भारत से कच्चे माल का निर्यात तथा अंग्रेजी माल का यहां आयात करना।

शिक्षा सम्बन्धी—बम्बई, मद्रास व कलकत्ते में विश्वविद्यालय की स्थापना, बड़े शहरों में कालेज व अन्यत्र ऐंग्लो व वर्नाक्यूलर मिड़िल व हाई स्कूल खोलना।

यातायात व संदेश वाहन सम्बन्धी—भारत में रेल चलना, तारघर की व्यवस्था तथा डाकघरों की स्थापना व दो पैसे का पोस्ट कार्ड चलाना।

योग्यता प्रश्न

(१) वारेन हेस्टिंग्स के शासन—सुधारों की मुख्य-मुख्य विशेषताओं का वर्णन कीजिए।

Bring out the main features of the administrative reforms of Warren Hastings.

(२) रेग्यूलेटिंग कानून किन परिस्थितियों में पास किया गया था। उसके मुख्य उपबन्धों का वर्णन कीजिए।

Describe the circumstances laading to the passage of the Regulating Act. Discuss its main provisions.

(३) लार्ड कार्नवालिस के शासन-सुधारों का वर्णन कीजिए।

Describe the administrative reforms 'introduced by Lord Cornwallis.

(४) "यदि नागरिक प्रशासन की नींव वारेनहेस्टिंग्स द्वारा रखी गई तो उस पर भवन-निर्माण का कार्य लार्ड कार्नवालिस ने किया।" इस कथन की व्याख्या कीजिए।

If the foundation of the Civil administration was laid by Warren Hastings, the structure was laid by Lord Cornwallis"

Discuss the statement.

(५) बंगाल के स्थायी बन्दोबस्त पर एक नोट लिखिए। उसके गुण व अवगुणों का वर्णन कीजिए।

Reproduce a note on the Permanent Settle-ment of land in Bengal. Describe its merits and demerits.

(६) "स्थायी-बन्दोबस्त के कारण बहुत सी आशाएं निराशा में परिणत हो गई तथा बहुत से ऐसे परिणाम निकले जिनका किसी को भी ध्यान नहीं था।" इस कथन की समीक्षा कीजिए। (बडेन पावल)।

"The Permanent Settlement dis-appointed many expectations. and produced several results that were not anticipated." (Baden Powell)

Discuss the Statement.

(७) लार्ड मारक्वीस हेस्टिंग्स न केवल एक महान् विजेता ही था वरन् एक महान् प्रशासक भी था।" इस कथन की व्याख्या कीजिए।

"Marquess of Hastings was not only a great conqueror but a great administrator." Discuss the statement.

(८) लार्ड विलियम बेन्टिङ्क द्वारा किये गये सुधारों का वर्णन कीजिए।

Give an account of the reforms introduced by Lord William Bentinck.

(९) "विलियम बेन्टिङ्क का शासन-काल आन्तरिक सुधारों का युग था।" इस कथन पर अपने विचार प्रकट कीजिए।

"William Bentinck's rule was an era of internal reforms." Discuss.

(१०) "लार्ड विलियम बेन्टिङ्क ने भारत के राजनीतिक क्षेत्र में उदार युग का प्रारम्भ किया।"

इस कथन की विवेचना उसके प्रशासनिक सुधारों के आधार पर कीजिए।

"Lord William Bentinck introduced a liberal era in the Indian politics."

Discuss this statement with reference to his administrative reforms.

(११) सिद्ध कीजिए कि लार्ड डलहौजी एक विजेता के साथ महान् प्रशासक भी था।

Show that Dalhousie was a great conqueror as well as a great administrator.

(१२) निम्नलिखित पर टिप्पणियां लिखिए—

(i) स्थायी बन्दोबस्त (Permanent Settlement)

(ii) कार्नवालिस कोड (Cornwallis Code)

(iii) रेग्यूलेटिंग कानून (Regulating Act)

(iv) मेकाले (Macaulay)

(v) राजा राम मोहन राय (Raja Ram Mohan Roy)

अध्याय सोलहवां

१८५७ का विद्रोह

प्रस्तावना—विद्रोहके विभिन्न स्वरूप विद्रोह के कारण राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक, सैनिक, घटनाएँ, विद्रोह का दमन, राजस्थान का विद्रोह में सहयोग–विद्रोह के प्रभाव–विद्रोह की असफलता के कारण।

प्रस्तावना—लार्ड डलहौजी एक पक्का साम्राज्यवादी था और वह अपने को प्रशासन के क्षेत्र में पर्याप्त दक्ष समझता था। साम्राज्य विस्तार के उपरान्त उसने जो भी सुधार किये थे उनके पीछे उसका यही उद्देश्य था कि भारत में अंग्रेजी शासन सुदृढ़ एवं स्थायी हो जावे। अंग्रेजी हकूमत को भारतवासी डिगा न सकें। परन्तु यह सत्य कहा है कि मनुष्य सोचता क्या है और होता क्या है। लार्ड डलहौजी के साथ भी यही कहावत चरितार्थ होती है। उसको भारत से विदा लिए एक वर्ष ही समाप्त हुआ था कि भारत में एक ऐसी क्रान्ति हुई जिससे भारत में कम्पनी की शासन–सत्ता हिल उठी। यदि ब्रिटिश सरकार समय पर ईस्ट इण्डिया कम्पनी की सहायता न करती तो संभव था कि कम्पनी की हकूमत की समाप्ति के अतिरिक्त अगले ९० वर्ष के लिए ब्रिटिश सरकार की प्रभुता भी भारत पर स्थापित नहीं होती। यह क्रान्ति देश व्यापक थी और देश के इतिहास में महान् परिवर्तन उत्पन्न करने वाली समझी जाती है। इस क्राति को १८५७ का विद्रोह कहते हैं।

विद्रोह के विभिन्न स्वरूप—कोई भी विद्रोह होता है तो उसके पीछे कुछ विशेष कारण होते हैं और जिस प्रकार के कारण होते हैं विद्रोह भी उनके अनुरूप ही रूप धारण कर लेता है। १८५७ में भारत में अंग्रेजी हकूमत के विरुद्ध जो विद्रोह हुआ उसके विभिन्न कारण थे, जिनका उल्लेख आगे किया जावेगा। अतः इतिहासकार इस भारतीय विद्रोह को अब तक विभिन्न स्वरूपों में प्रस्तुत करते आ रहे हैं।

सैनिक विद्रोह—अंग्रेज इतिहासकारों की मान्यता है कि भारत में जो १८५७ में विद्रोह हुआ वह केवल सैनिक विद्रोह था और वह कुछ असन्तुष्ट एवं धर्म के नाम पर भ्रमराये सैनिकों द्वारा किया गया था। जन साधारण का इससे कोई सम्बन्ध नहीं था। उनका कहना है कि भारत में उस समय राष्ट्रीय भावना तो अंकुरित भी नहीं हुई थी। सर जान लारेन्स (Lawrence) लिखते हैं "१८५७ का विद्रोह केवल एक सैनिक विद्रोह था और इसका मुख्य कारण चर्बी

वाले कारतूस थे। विद्रोह आरंभ होने के उपरान्त कुछ असन्तुष्ट लोगों ने इससे लाभ उठाना चाहा और इसे एक राजनैतिक रूप देने का प्रयत्न किया है।" सर जान सीले (Sir John Sealey) ने भी इसी मत को स्वीकार किया है। उसने अपने मत की पुष्टि करते हुए लिखा है, "१८५७ का विद्रोह पूर्ण रूप से अराष्ट्रीय तथा स्वार्थी सैनिकों का विद्रोह था जिसका न कोई देशीय नेतृत्व था और न जनता का सहयोग।" थॉमसन तथा गैरेट (Thompson and Garrat) ने तो अंग्रेजों की आशातीत बड़ाई की है और उन्होने इसे राष्ट्रीय विद्रोह स्वीकार करने से इन्कार किया है। वे लिखते हैं कि इसका दमन एक छोटी सी अंग्रेजी सेना से कर दिया गया था और इसके नेता असफल रहे। इसलिए इन इतिहासकारों ने इसे केवल सैनिक क्रान्ति (Sepoy Mutiny) की संज्ञा दी है। ये उपर्युक्त कथन तो अंग्रेज इतिहासकारो के हैं। हो सकता है उन्होंने राष्ट्रीयता से प्रेरित होकर भारतीयों की राष्ट्रीय भावना को हीन समझकर लिखा हो। परन्तु कुछ भारतीय इतिहासकारों ने भी उनके मत का ही समर्थन किया है। डा० सरकार और दत्त (Dr. Sarkar or Dutt) ने इस विद्रोह को केवल संयोजित स्वतन्त्रता संग्राम बताया है। उन्होंने लिखा है, "विद्रोहियों का कोई स्वीकृत नेता न था और न उनकी कोई स्पष्ट नीति थी और विभिन्न दलो में कोई केन्द्रित योजना नहीं थी। यदि विद्रोह सच्चे अर्थ में राष्ट्रीय होता तो इसका संचालन बुद्धिमान नेतृत्व तथा उचित और केन्द्रित योजना के द्वारा होता और तब संभवतः इसे इतनी द्रुतगति से न दबाया गया होता।"

मुसलमानों का पुनः सत्ता प्राप्ति का षड़यन्त्र—कई इतिहासकारों का मत है कि यह विद्रोह अंग्रेजी शासन से असन्तुष्ट मुसलमानों का था। उनका कहना है कि अंग्रेजो ने मुस्लिम शासकों से सत्ता छीनी थी। मुसलमान इस बात से रुष्ठ थे। वे अवसर की ताक में थे। अतः जब सामाजिक, धार्मिक तथा आर्थिक कारणों से हिन्दू भी अंग्रेजों से असन्तुष्ट हो गये तो समय का लाभ उठाते हुए उन्होने हिन्दुओं के सहयोग से अपनी सत्ता को पुनः प्राप्त करने का प्रयास किया। सर जेम्स आउटरम (Outram) इस श्रेणी के इतिहासकारों में प्रमुख है। वे लिखते है, "यह विद्रोह भारतीय मुसलमानों का षडयन्त्र था जो अंग्रेजी सत्ता का उन्मूलन कर पुनः मुग़ल सम्राट बहादुरशाह के नेतृत्व में अपना प्रभुत्व स्थापित करना चाहते थे। अपने इस लक्ष्य की पूर्ति के लिए उन्होंने हिन्दुओं के असन्तोष से पूरा लाभ उठाने का प्रयत्न किया।" इस कथन में कितना सत्य है यह हमें इस विद्रोह की घटनाओं के पूर्ण अध्ययन से ज्ञात हो जावेगा। हम देखते हैं कि इस विद्रोह में भाग लेने वाले हिन्दू मुसलमानों से तिगुने थे और झांसी की रानी लक्ष्मीबाई ने इस विद्रोह का अधिक नेतृत्व किया था। उत्तर प्रदेश की सफल सेनाओं ने दिल्ली जाकर

बहादुरशाह को अंग्रेजी दासता से मुक्त कर उसे भारत का सम्राट घोषित किया था। अतः इस विद्रोह को मुस्लिम विद्रोह कहना सर्वथा न्यायोचित नहीं है।

राष्ट्रीय विद्रोह—जब तक भारत में अंग्रेजी प्रभुता दृढ़ता से जमी रही और राष्ट्रीय भावना विकसित नहीं हुई तब तक भारतवासियों ने इस विद्रोह के सम्बन्ध में कुछ नही लिखा। प्रेस स्वतन्त्रता का भी अंग्रेजों ने हनन किया था। किन्तु बीसवीं शताब्दी में अंग्रेजी शासन के बावूजद भी राष्ट्रीय भावना जब भारत में दिनों दिन विकसित होने लगी तो भारतीय इतिहासकारों व राजनीतिक नेताओं ने इस विद्रोह के तथ्यों के सम्बन्ध में शोध की और अपने विचार भी व्यक्त किये। देश के विख्यात क्रांतिकारी नेता श्री सावरकर (Sawarkar) ने इसके विषय में अपनी पुस्तक 'भारतीय स्वतन्त्रता का युद्ध' में लिखा है कि यह विद्रोह वास्तव में भारतीय स्वतन्त्रता का युद्ध था।" देश के प्रसिद्ध प्रजा समाजवादी नेता अशोक मेहता(Ashok Mehta) ने '१८५७ एक महान विद्रोह' नामक पुस्तक में विद्रोह के राष्ट्रीय महत्व को स्वीकार किया है। वे लिखते हैं कि यह सत्य है कि विद्रोह के प्रारंभकर्ता सैनिक थे और वे ही विद्रोह के प्राण थे। परन्तु विद्रोह में केवल उन्होंने ही भाग नहीं लिया। जनसाधारण ने भी सैनिकों को सहयोग दिया और यही कारण था कि नागरिक भी काफी संख्या में इस विद्रोह में शहीद हुए। उन्होंने यह भी तथ्य प्रस्तुत किया है कि हेवलाक (Havelack) को अपने सैनिकों को नदी पार कराने के लिए नावों की आवश्यकता हुई तो नाविकों ने उनको सहयोग नहीं दिया। कानपुर के मजदूरों को जब काम करने के लिए बाध्य किया गया तो वे रात्रि में ही नगर छोड़कर चले गये। अब्दुलकलाम आज़ाद (Abdul Kalam Azad) ने सन् १९५५ के भारतीय इतिहास अभिलेख आयोग (Indian Historical Records Commission) के ३१ वें अधिवेशन में इस विद्रोह के सम्बन्ध में कुछ शब्द कहे थे। उनका कहना था कि इस विद्रोह पर अब तक जो लिखा गया है वह केवल एक ही दृष्टिकोण पर आधारित है और वह दृष्टिकोण पाश्चात्य है। किसी भारतीय इतिहासकार ने भी यह बताने का कष्ट नहीं किया कि अंग्रेजों ने भारतवासियों पर क्या अत्याचार किये जब कि भारतीयों के अंग्रेजों के विरुद्ध किये अत्याचारों का वर्णन विशद रूप से किया है। स्व० अब्दुल कलाम आजाद ने १८५७ की भूमिका में लिखा है, " १८५७ के विभिन्न विवरणों को पढ़ने के बाद पाठक कुछ निष्कर्षों पर पहुँचे बिना नहीं रह सकता। स्वभावतः यह प्रश्न उठता है कि क्या यह विद्रोह केवल राष्ट्रीय भावनाओं के उभरने के कारण ही हुआ? अगर राष्ट्रीयता का अर्थ हम आधुनिक दृष्टि से समझें तो इसका उत्तर 'हां' नहीं हो सकता। इसमें कोई शक नहीं कि लोगों ने देश प्रेम की भावना से प्रेरित होकर ही विद्रोह में भाग लिया था।"

निष्कर्ष—इस प्रकार साफ जाहिर होता है कि अभी तक इस विद्रोह के स्वरूप के विषय में विभिन्न इतिहासकारों के विभिन्न ही मत हैं। इसके विषय में असली तथ्य जन साधारण के समक्ष रखे जा सकें इस दृष्टि से भारत सरकार ने श्री सुरेन्द्रनाथ सेन (S. N. Sen) से १८५७ पर एक पुस्तक लिखवाई है। उन्होंने पर्याप्त शोध करके तथा इतिहासकार की हैसियत से निष्पक्ष रहते हुए उक्त पुस्तक लिखी है। उन्होंने इस पुस्तक के उपसंहार में यही बताना चाहा है कि यह विद्रोह पूर्णरूप से तो राष्ट्रीय था नहीं किन्तु इसमें राष्ट्रीयता किसी अंश तक अवश्य विद्यमान थी। पंडित जवाहरलाल नेहरू ने 'भारत की खोज' में लिखा है कि इस विद्रोह का प्रारम्भ सामन्तवाद से हुआ था। किन्तु इसमें राष्ट्रीयता के तत्व अवश्य विद्यमान थे। अतः स्पष्ट है कि इस विद्रोह को राष्ट्रीय विप्लव तो मानना पूर्णतः न्याय संगत नहीं होगा। प्रथम तो इसका प्रारम्भ राष्ट्रीयता से न होकर धर्म के आधार पर हुआ। द्वितीय इसका क्षेत्र सीमित रहा और देश व्यापी यह नहीं बन सका। तीसरे इसमें भारत के सभी वर्गों ने भाग नहीं लिया। ग्रामीण, जनसाधारण व नरेश अधिकांश रूप में मौन रहे। चौथे इसके प्रमुख अगुवा लोग राष्ट्रीय समस्या के निवारणार्थ न लड़कर स्वयं के स्वार्थों के लिए लड़े थे। झांसी की रानी व नाना साहब के अंग्रेजों के साथ सम्बन्ध अच्छे थे। वे केवल उनके स्वार्थों पर कुठाराघात होने से बिगड़े थे। इतिहासकारों की मान्यता है कि यदि अंग्रेज इनकी शिकायतों को दूर कर देते तो संभवतः वे विद्रोह मे भाग नहीं लेते। अतः प्रारम्भ में यह राष्ट्रीय नहीं था। किन्तु फिर यह धीरे धीरे राष्ट्रीय रूप धारण करता गया। परन्तु उस काल की राष्ट्रीयता आज की राष्ट्रीयता मे भिन्न थी। विद्रोहियों ने बिना किसी भेद भाव के बहादुरशाह को सम्राट बनाना स्वीकार कर लिया। इससे स्पष्ट है कि वे अंग्रेजों के शासन से मुक्त होना चाहते थे। अतः हमारी धारणा है कि इसे राष्ट्रीय विपल्व न कह कर स्वतन्त्रता का प्रथम संग्राम कहें तो अधिक उचित होगा। सिन्हा व बनर्जी (Sinha & Banerjee) ने भी इसी मत का प्रतिपादन किया है।

विद्रोह के कारण

जैसा कि हमें विद्रोह के विभिन्न स्वरूपों से ज्ञात होता है कि यह विद्रोह एक प्रकार के कारणों से ही नहीं हुआ था वरन् इसके कई प्रकार के कारण थे। उन कारणों का वर्गीकरण हम निम्न प्रकार से करते हैं—

(१) राजनैतिक कारण—

(i) लार्ड डलहौजी की साम्राज्यवादी नीति–डलहौजी ने राज्य का विस्तार बहुत कर दिया जिसका कि प्रबन्ध करना कठिन था। अवध को मिलाकर उसने मुस्लिम समाज को नाराज किया तथा गोद लेने की प्रथा को बन्द कर उसने देशी नरेशों से दुश्मनी मोल ले ली।

(ii) मुगल सम्राट के प्रति अंग्रेजों का बुरा व्यवहार।

(iii) भारतवासियों को उच्च पद न देना।

(iv) लार्ड विलियम बेन्टिक ने किराये की भूमि की नाप करवा कर कई ज़मीदारों की जमीन को, जो कि पट्टा दिखाने में असमर्थ रहे, कम्पनी के अधिकार में कर ली।

(v) प्राचीन राजनीतिक व्यवस्था का समाप्त होना।

(vi) भारतीय नरेशों की उपाधियों को अमान्य करना।

(vii) कई नरेशो की पेन्शन में कमी करना अथवा सर्वथा बन्द करना।

(viii) भारत में नवीन प्रकार की शासन व्यवस्था लागू करना।

(ix) न्यायालयों द्वारा भारतीय व अंग्रेजों में समान न्याय न करना।

सामाजिक कारण—

(i) लार्ड विलियम बेन्टिङ्क के सामाजिक सुधार।

(ii) रेलगाड़ी के आविष्कार से छुआछूत को मान्यता प्राप्त न होना।

(iii) पाश्चात्य सभ्यता का भारत में प्रसार।

(iv) अंग्रेजो में भारतीयों से उच्चता की भावना।

(v) भारतीय जाति-प्रथा को मान्यता न देना।

(३) धार्मिक कारण—

(i) हिन्दू व मुस्लिम धर्म को घृणा से देखना।

(ii) भारत में ईसाई धर्म का प्रचार करना।

(iii) स्कूलों में ईसाई धर्म का अध्यापन।

(iv) हिन्दुओं के उत्तराधिकार नियम को नहीं मानना।

(v) भारतीय संस्कृति व सभ्यता का अनादर करना।

(४) आर्थिक कारण—

(i) अंग्रेजो द्वारा भारतीयों का शोषण होना।

(ii) भारत के गृह-उद्योग धन्धों का पतन होना।

(iii) भारत के कच्चे माल का इंगलैण्ड निर्यात।

(iv) भारतीय ठेकेदारों को ठेके न देना।

(v) भारतीय कर्मचारियों को कम वेतन देना।

(५) सैनिक कारण—

(i) अंग्रेज व भारतीय सैनिकों में भेद समझना।

(ii) भारतीय सैनिकों को अंग्रेज सैनिकों से कम वेतन देना।

(iii) भारतीय सैनिकों को समुद्र पार भेजना ।

(iv) नवीन राइफलों व उसमें लगने वाले कारतूसों से भारतीय सैनिक असन्तुष्ट थे ।

(v) भारतीय सैनिकों को नवीन प्रकार की पगड़ी पहिननी पड़ती थी ।

(vi) भारतीय सैनिकों का अंग्रेजी सैनिकों से संख्या में अधिक होना ।

(vii) अवध के भारतीय सैनिकों को पदच्युत करना तथा उनका बेकार होना ।

घटनाएँ—विद्रोह का आरंभ चर्बी वाले कारतूसों के कारण बैरकपुर (Barrackpore) से हुआ । इन कारतूसों को प्रयोग में लेने से इन्कार करने वाले सैनिकों को अपमानित किया गया तथा उन्हें पदच्युत कर दिया गया । इस पर २९ मार्च १८५७ को मङ्गल पाण्डे (Mangal Pande) नामक एक ब्राह्मण ने भारतीय सैनिकों को विद्रोह करने के लिए प्रोत्साहित किया । मंगल पाण्डे के इस व्यवहार से सारजेन्ट हडसन कुपित हुआ तथा उसने उसे बन्दी बनाने का आदेश दे दिया । इस पर पाण्डे ने उस सारजेण्ट की तथा एक अन्य अंग्रेजी अफसर की जीवन लीला समाप्त करदी । अन्त में वह बन्दी बनाया गया और ८ अप्रेल को उसे प्राण दण्ड दिया गया । इससे विद्रोह की अग्नि देश में तीव्र गति से फैलने लगी ।

मेरठ—बैरकपुर की घटना से मेरठ की छावनी में भी विद्रोह की ज्वाला प्रज्जवलित हो उठी । वहाँ के सैनिकों ने भी नवीन कारतूसों को प्रयोग में लाने से इन्कार कर दिया । इन्कार करने वाले सैनिकों पर अभियोग चलाकर उन्हें लम्बे कारावास की सजाएँ दी गई । १० मई १८५७ को मेरठ निवासी तथा अन्य सैनिकों ने वहां की जेल को तोड अपने साथी सैनिकों को मुक्त कर दिया । इसके उपरान्त सैनिकों ने अंग्रेजी अफसरों को मौत के घाट उतार दिया तथा शाही कोष लूट लिया ।

दिल्ली—मेरठ से विद्रोही सैनिक दिल्ली की ओर रवाना हुए । उन्होंने किले में प्रवेश कर अंग्रेज सैनिकों का कत्ले आम मचा दिया तथा अन्तिम मुग़ल सम्राट बहादुरशाह (Bhadur Shah) को भारत का सम्राट घोषित कर दिया । दिल्ली की जनता व सम्राट की बेगम जीनत महल ने विद्रोह में अपने भाइयों को सहयोग दिया ।

लखनऊ—दिल्ली की सफलता के उपरान्त विद्रोह का प्रभाव देश व्यापक होने लगा । वह उत्तर प्रदेश, रुहेलखण्ड आदि सभी स्थानों पर शीघ्रता से फैलने लगा । लखनऊ (Lucknow) के समीप फैजाबाद के मौलवी और अवध की बेगमों के सहयोग से विद्रोह जोर पकड़ने लगा । स्वतन्त्रता प्राप्ति के लिए इच्छुक

सैनिकों ने रेजीडेन्सी पर आक्रमण कर दिया। हेनरी लारेन्स (Henry Lawrence) ने अपने प्राणों की बाजी लगा कर विद्रोही सैनिकों का सामना किया।

कानपुर—कानपुर भी विद्रोह की भीषण ज्वाला से नहीं बच सका। कानपुर (Cawnpore) की छावनी पर नानासाहब (Nana Sahib) के साथियों ने आक्रमण कर दिया। सहस्रों अंग्रेजों को मौत के घाट उतार दिया और जो बचे वे किसी प्रकार वहां से भाग निकले।

झांसी—यह स्थान भी विद्रोह का प्रमुख केन्द्र बन गया। यहां झाँसी की रानी लक्ष्मी बाई (Laxmi Bai), जालौन के राजा तथा तांत्या टोपे (Tantia Topi) आदि ने विद्रोह को भयंकर रूप दिया। इन्होंने चारों ओर अंग्रेजों की भयंकर मारकाट मचादी। लक्ष्मी बाई ने अपने शत्रुओं के दांत खट्टे कर दिए और अन्त में वह स्वयं वीर गति को प्राप्त हुई। सर ह्यू रोज (Sir Hugh Rose) ने लक्ष्मी बाई को विद्रोहियों में सबसे अधिक वीर बताया है।

विद्रोह का दमन—विद्रोह का रूप भयंकर था। अंग्रेजों में चारों ओर त्राहि त्राहि मच गई। परन्तु इसका क्षेत्र सीमित रहा। इसका क्षेत्र उत्तर और पूर्व तक ही रहा। उत्तर में भी केवल दिल्ली तक ही यह सीमित रहा। पंजाब के सिक्खों तथा नेपाल के गुरखों ने अंग्रेजों की सहायता की। काश्मीर के राजा गुलाबसिंह (Gulab Singh) ने भी अभारतीयता का ही परिचय दिया। इनकी सहायता से अंग्रेजों ने दिल्ली पर घेरा डाल दिया। भयंकर गोलाबारी के उपरान्त नगर में प्रवेश किया और काबुली दरवाजे पर अधिकार कर लिया। यहां से अंग्रेजी सेना आसानी से आगे न बढ़ सकी। मेजर जेकब (Major Jacob) भारतीय सैनिकों द्वारा गोली के शिकार बनाये गये तथा निकोल्सन (Nicholson) जब आगे बढ़ा तो वह भी धाराशायी कर दिया गया। परन्तु बमबारी की सहायता से अंग्रेज पुनः आगे बढ़े और २० सितंबर को उन्होने महल में प्रवेश किया। बहादुर शाह को बन्दी बनाकर रंगून भेज दिया गया। तथा उसके पुत्रों का वध कर दिया गया। लेकिन ३० मई से २० सितम्बर तक के संघर्ष में ३८३७ अंग्रेज सैनिक काम आये। परन्तु अंग्रेजों ने इस मृत्यु संख्या का अच्छा बदला लिया। बहादुरशाह की बेगम का अपमान किया गया तथा महलों के समस्त लोगों को यमलोक भेज दिया गया। विजय के दूसरे दिन ही दिल्ली में कत्ले आम शुरू हुई। २१ सितम्बर को ग्रिफिथ्स ने देखा दिल्ली के बाजार व सड़कें सुनसान पड़ी हैं। ऐसा लगता था मानो कोई भारी दैवी आपत्ति आई है और सारा शहर शमशान के समान हो गया है।" नागरिकों को बुरी तरह लूटा गया और ग्रिफिथ्स स्वयं ने स्वीकार किया है कि हमारे इंगलैंड पहुंचने पर विदित हुआ कि हमारे सैनिकों ने पर्याप्त मात्रा में धन लूटा है।

स्त्रियों ने अपनी इज्जत बचाने के लिए बच्चों सहित कुवों में कूद कर प्राण गंवाये। परन्तु यहां हमें यह शर्म के साथ लिखना पड़ता है कि इस लूट व कत्ले आम में हमारे सिक्खों ने भी अंग्रेजों के साथ हाथ बटाया।

बिहार में इसका प्रभाव अधिक नहीं फैला। यहां के जमींदारों ने अंग्रेजों का साथ दिया। किन्तु कुंवर अकबरसिंह ने विद्रोहियों का, दक्षिण में मराठों ने व भूपाल की बेगम ने भारतीयों के विरुद्ध अंग्रेजों को सहायता दी। टेलर, नील और मेजर आयर ने तो बिहार में शान्ति स्थापित की। नील और केम्पबेल ने कानपुर तथा लखनऊ में पुनः अंग्रेजी सत्ता कायम कर दी। स्व० अब्दुल कलाम आजाद ने १८५७ की भूमिका में लिखा है, "नील (Neill) को इस बात का गर्व था कि उसने सैंकड़ों भारतीयों को बिना मुकदमा चलाये मरवा दिया। इलाहाबाद के आस पास शायद ही कोई ऐसा वृक्ष बचा हो जिस पर किसी अभागे भारतीय की लाश न लटकी हो। मुसलमान सरदारों को सूअर की खाल में सीं दिया गया और सूअर का मांस जबर दस्ती उनके मुंह में ठूंस दिया। हिन्दुओं को मौत का डर दिखा कर गाय का मांस खाने को बाध्य किया गया।" पं० जवाहरलाल नेहरू (J. L. Nehru) ने इस तथ्य का अनुमोदन अपनी पुस्तक 'भारत की खोज' में किया है।

झांसी में लक्ष्मीबाई तथा तांतियां टोपे ने अंग्रेजों को अच्छा मजा चखाया था। किन्तु अप्रेल में झांसी पर पुनः अंग्रेजों ने आक्रमण किया। रानी बहादुरी से लड़ते लड़ते १७ जून को वीर गति को प्राप्त हुई। विजय प्राप्त होने पर अंग्रेजी सैनिकों ने यहां भी असंख्य स्त्री–बच्चों की नृशंसता पूर्वक हत्या करदी।

इस प्रकार से हम देखते है कि अंग्रेजों ने भारतीय नरेशों व जमीदारों के सहयोग से इस १८५७ के विद्रोह को दबा दिया। विद्रोह शान्त होने पर उन्होंने भारत-वासियों को क्रूरता से दबाया। कत्ले आम में यह नहीं देखा कि वह स्त्री है या बच्चा। जरा सा सन्देह होने पर ही भारतीयों को मौत के घाट उतार दिया जाता था। क्रान्तिकारियों को तोप के गोलों से उड़वाया गया। उनका यह दमन नादिरशाह के कत्ले आम से कम भयंकर नहीं था। इस दमन नीति से अंग्रेजों ने अपनी जाती हुई सत्ता को बचा लिया तथा भारत में आगामी ६० वर्ष राज्य करने के लिए उन्होंने अपना प्रभाव पुनः स्थापित कर लिया।

राजस्थान का विद्रोह में सहयोग—राजस्थान, जो मुगल काल तक अपनी वीरता के लिए विख्यात प्रदेश था अंग्रेजों के आगे बड़ी सुगमता से नत मस्तक हो गया था। अतः यहां के अधिकांश नरेश अंग्रेजों के समर्थक थे। किन्तु उनके आधीन सामंत लोग ब्रिटिश प्रभुता के विरोधी थे। इसके अलावा जोधपुर नरेश

मानसिंह (Man Singh) ने न केवल अंग्रेजों की सहायक प्रथा को ठुकराया था वरन् उसने अंग्रेजों के विरोधियों (जसवन्तराय होल्कर के सिंध के अमीर तथा आपा साहब) को अपने यहां शरण भी दी थी। डूंगरपुर के महारावल जसवन्तसिंह (Jaswant Sing) को अंग्रेजों ने पदच्युत कर दिया था। इन कारणों से राजस्थान में भी अंग्रेजों के विरोधी तत्व कार्य कर रहे थे और बहादुरशाह जब विद्रोहियों का सहायक हो गया था तो उसने भी राजपूत नरेशों को पत्र भेजकर विद्रोह में भाग लेने के लिए प्रोत्साहित किया था।

उधर जब उत्तर प्रदेश में विद्रोह तीव्र गति से फैल रहा था तो २८ मई को राजस्थान में नसीराबाद की पैदल सेना के दो रेजिमेन्ट ने विद्रोह कर दिया और ३ जून को नीमच छावनी की सेना भी भड़क उठी। ये दोनो सैनिक टुकडियां छावनी को लूटती हुई दिल्ली की ओर बढ़ी। निम्बाहेडा तथा आबू पर विद्रहियों का अधिकार हो गया। भरतपुर व धौलपुर के सैनिकों में भी विद्रोह की भावना उत्पन्न हुई और अक्टूबर के आरंभ में ग्वालियर व इन्दौर के विद्रोही सैनिकों ने धौलपुर में प्रवेश किया। धौलपुर नरेश को विद्रोहियों ने घेर लिया तथा उन्हें साथ देने को बाध्य किया। यहां से विद्रोहियों ने तोपें लेकर आगरे की ओर प्रस्थान किया। परन्तु इसी समय पटियाला दरबार ने २००० सिक्ख भेजे और उसकी सहायता से धौलपुर नरेश को पुनः शासकीय अधिकार प्राप्त हुए। जयपुर नरेश भी इस समय बड़ी दुविधा में थे। उनके प्राइवेट सेक्रेट्री पं० शिवदीनजी ने उन्हें अंग्रेजों का समर्थक बने रहने की सलाह दी। अतः वे विद्रोहियों के समर्थक नहीं बने। टोंक की सेना भी विद्रोही बन गई। मेवाड़ की सेना ने भी विद्रोह का झंडा खड़ा करने का प्रयास किया। किन्तु महाराजा स्वरूपसिंह जी ने अपनी सेना को समझा दिया और वे अंग्रेजों के समर्थक बने रहे। जोधपुर की गद्दी पर उस समय महाराज तख्तसिंह जी थे जो अंग्रेजों द्वारा जोधपुर की जनता पर थोपे गये थे। अत: उनकी जनता तथा उनके सामन्त उनसे बहुत क्रुद्ध थे। आउवा के ठाकुर ने विद्रोहियों का साथ दिया। वह जोधपुर का एक प्रतिष्ठित जागीरदार था अतः अन्य जागीरदारों ने भी उसका साथ दिया। जब केप्टिन मेसन (Masson) आउवा के जागीर दार से मुकाबला करने गये तो वह वीर राजपूतों द्वारा काल का ग्रास बना दिया गया। अब विजयी विद्रोही दिल्ली की ओर बढ़े। किन्तु मार्ग में उनको कैप्टिन जेरार्ड से परास्त होना पड़ा। इसी समय बम्बई से कुमुक आ पहुँची। इससे आउवा का सामन्त कुछ ढीला पड़ गया। आउवा पर अंग्रेजों का अधिकार हो गया और वहाँ की जनता के साथ अंग्रेजी सेना ने क्रूरता का व्यवहार किया। किले को उड़ा दिया गया तथा वहां के हरे भरे वृक्षों को भी काट कर उन्होने अपने प्रतिशोध की भावना का नग्न प्रदर्शन किया।

कोटा महारावल यद्यपि अंग्रेजों के समर्थक थे । किन्तु उनकी सेना ने विद्रोहियों का साथ दिया । कोटा पर ६ मास तक विद्रोहियों का अधिकार बना रहा । २९ मार्च १८५७ को रोबर्ट्स (Roberts) ने विद्रोहियों पर तोपों से आक्रमण किया और ३० मार्च को जब वह विजयी हो गया तो उसकी सेना ने वहाँ लूट-मार आरंभ करदी । मकानों के दरवाजे तोड़कर उनमें से सम्पत्ति निकाल ली गई तथा खेतों मे पड़े अनाज को लूट लिया गया ।

इस प्रकार स्पष्ट है कि हमारा राजस्थान भी इस १८५७ के विद्रोह से दूर नहीं रहा । यहां के राजपूत सैनिकों ने विद्रोह में भाग लेकर अपने स्वातन्त्र्य प्रेम का अपूर्व परिचय दिया । हमारी राजस्थान सरकार अब उन शहीदों की स्मृति में जगह जगह स्मारक स्तम्भ बनवा रही है । उनमें से प्रमुख स्थान ये हैं—सीकर, नसीराबाद, निम्बाहेडा, कोटा और आउवा ।

विद्रोह के प्रभाव—विद्रोह की घटनाओं के अवलोकन से स्पष्ट होता है कि यह विद्रोह एक साधारण विद्रोह नहीं था । यह विद्रोह किसी विशेष सुविधा की प्राप्ति के लिए एक विशेष वर्ग द्वारा नहीं किया गया था । इस विद्रोह में भारत के सभी वर्गों ने भाग लिया और इसने भारत के भाग्य को बदल दिया । इस विद्रोह ने तत्कालीन अंग्रेज शासकों के नेत्र खोल दिए । अतः यह विद्रोह ऐतिहासिक दृष्टि-कोण से अति महत्वपूर्ण है । सर ग्रिफिन (Sir Griffin) इस विद्रोह के प्रभाव के विषय में इस प्रकार लिखते हैं, "भारत में १८५७ के विद्रोह से बढ़कर कोई भाग्यशाली घटना नहीं घटित हुई ।" इससे विद्रोह से ब्रिटिश सत्ता का मार्ग और भी निष्कंटक हो गया और अंग्रेजी सेना के इस स्वप्न को कि हमने अपनी कम्पनी की १०० वर्ष तक सच्ची सेवा की है, भंग कर दिया । अतः इसके प्रभाव तो देश व्यापी होने स्वाभाविक है । उनमें से निम्न प्रभाव प्रमुख रूप से दृष्टि-गोचर हुए—

(१) कम्पनी के शासन का अन्त—१८५७ में जब क्लाइव ने प्लासी के युद्ध में विजय प्राप्त की थी तभी से भारत में कम्पनी की शासन-सत्ता चली आरही थी । किन्तु वह अब समाप्त हो गई और इसकी सत्ता इंगलैंड की सरकार के आधीन चली गई ।

(२) रानी विक्टोरिया की घोषणा—सन् १८५८ में विद्रोह के शान्त होने पर विक्टोरिया ने भारत की साम्राज्ञी की हैसियत से घोषणा की कि आज से समस्त भारतवासी हमारे भाई तुल्य हैं । उनकी भलाई में हमारी भलाई है ।

(३) बोर्ड ऑफ कन्ट्रोल का समाप्त होना—कम्पनी का शासन इसी की देख रेख में चलता था । किन्तु जब ब्रिटिश सरकार के नियन्त्रण में भारत का शासन

हस्तान्तरित हो गया तो इस बोर्ड की आवश्यकता नहीं समझी गई। अतः उसे समाप्त कर दिया गया।

(४) भारत मन्त्री तथा भारत परिषद की स्थापना--जब बोर्ड ऑफ कन्ट्रोल हटा दिया गया तो भारत के शासन को सुचारु रूप से संचालित करने के लिए इंगलैड में एक भारत मन्त्री (Secretary of Board) तथा उसको सलाह देने के लिए १५ सदस्यो की एक परिषद (India Council) बनाई गई।

(५) दोहरे शासन की समाप्ति—१७८४ से पिट इण्डिया कानून पारित होने पर भारत में कम्पनी तथा इंगलैड की सरकार दोनों के नियन्त्रण में भारत का प्रशासन चलता था किन्तु अब वह प्रशासन केवल इंगलैण्ड की सरकार के आधीन रह गया।

(६) भारत की प्राचीन सभ्यता पर नवीन सभ्यता की विजय–इस विद्रोह के शान्त हो जाने पर भारतीय अंग्रेजो से दब गये और अंग्रेज अब निर्भीक होकर पाश्चात्य सभ्यता का यहाँ प्रचार करने लगे।

(७) हिन्दू व मुसलमानों में मतभेद उत्पन्न होना—अंग्रेजों ने अपने सफल प्रशासन की कुंजी इसी को बनाया कि हिन्दू और मुसलमानों में भेद उत्पन्न किया जावे

(८) कम्पनी के सेना का विघटन तथा उसके स्थान पर ब्रिटिश सरकार की सेना की स्थापना।

(९) उच्च नियुक्तियां इंगलैण्ड के शासक (Crown) के द्वारा होने लगीं।

(१०) शक्तिशाली अंग्रेजी सेना की भारत में व्यवस्था–अब अंग्रेजों का भारतवासियों में विश्वास नहीं रहा। अतः अब ब्रिटिश सरकार ने हिन्दुस्तानियों की संख्या से अधिक एक दृढ़ अंग्रेजी सेना भारत में रखी। सर रिचार्ड टेम्पल (Sir Richard Temple) लिखते हैं, "साम्राज्य के प्रत्येक बड़े फौजी स्थान मे अब पर्याप्त यूरोपीय हैं जो विद्रोह के अवसर पर भी दृढ़ता पूर्वक स्थिति पर नियन्त्रण कर सकते हैं।"

(११) वैधानिक विकास का प्रादुर्भाव—यह सत्य है कि १८५७ के उपरान्त भारत में ब्रिटिश सरकार का कड़ा नियन्त्रण स्थापित हो गया था किन्तु समय समय पर परिस्थितिओं वश वहां की सरकार भारत के लिए सुधार कानून पारित करती ही रही।

विद्रोह की असफलता के कारण—यह विद्रोह एक महान विद्रोह था तथा इसका प्रभाव उत्तरी भारत में तो व्यापक था। अत: जब इतना महान विद्रोह, जिसमें देश के लाखों नर नारियों ने भाग लिया था असफल हो गया तो उसके कुछ

कारण होना स्वाभाविक है। अब तक हमारे इतिहासकारों ने इसकी असफलता के निम्न लिखित कारण बताये हैं

(१) गदर का पूर्व नियोजित न होना–इस गदर की योजना सुव्यवस्थित ढंग से तैयार नही की गई थी और उसकी सूचना भी समय पर देश के विभिन्न भागों में नहीं पहुँची थी।

(२) सफल एवं सुयोग्य नेतृत्व का अभाव–किसी भी क्रांति की सफलता उसके नेता पर निर्भर रहती है। इस विद्रोह में सैनिकों का नेतृत्व करने वाला उचित व्यक्ति नहीं मिला।

(३) क्षेत्र सीमित होना—विद्रोह ने केवल उत्तरी भारत में ही जोर पकड़ा। मद्रास, बम्बई तथा मराठो के अधीनस्थ प्रदेशों में इसका कुछ भी प्रभाव नही पड़ा। इस कारण वहां की सेना उत्तर में विद्रोहियों को दबाने में समर्थ थी।

(४) सैनिक दुर्बलता—विद्रोहियों में अच्छे सैनिक नहीं थे तथा विद्रोही सैनिकों के हथियार छीन लिए गये थे।

(५) विद्रोह में अधिकांश सैनिक थे और जनसाधारण का सहयोग कम प्राप्त था।

(६) देशी नरशों व जमींदारों की स्वामिभक्ति।

(७) गोरखों व सिक्खों द्वारा अंग्रेजों की सहायता करना–ये दोनों अच्छे लड़ाकू माने जाते हैं और इन दोनों ने विद्रोह को शान्त करने में अंग्रेजों का साथ दिया।

(८) विद्रोहियों की आर्थिक कठिनाइयां।

(९) विकसित यातायात के साधन–इन साधनों के सहारे सरकार अपनी सेनाएँ समय पर भेजने में समर्थ थी जब कि विद्रोही शीघ्र समय पर नहीं पहुँच सकते थे।

(१०) अंग्रेजों की सामुद्रिक शक्ति का प्रबल होना–अंग्रेजों ने भारत पर इतने वर्ष राज्य अपनी सामुद्रिक शक्ति के सहारे ही किया। विद्रोह के आरंभ होते ही इंगलैंड की सरकार ने शीघ्र ही अपनी सेना जहाजों द्वारा भारत भेजदी और विद्रोह को दबा दिया।

अध्याय सार

प्रस्तावना—लार्ड डलहोजी ने जो सुधार किये थे उनसे उसने यह समझा था कि भारत में कम्पनी की शासन-व्यवस्था सुदृढ़ हो गई है। किन्तु उसका यह सोचना

असत्य निकला और उसके भारत से जाने के एक वर्ष बाद ही भारत में एक महान विद्रोह हुआ।

विद्रोह के विभिन्न स्वरूप

सैनिक—इस विद्रोह का आरंभ सैनिकों द्वारा किया गया था और उन्होने इसमें प्रमुख भाग लिया। इस कारण इसे सैनिक विद्रोह कहा जाता है।

मुस्लिम विद्रोह—कई इतिहासकारों की मान्यता है कि इस विद्रोह में असन्तुष्ट मुसलमानों ने अपनी खोई सत्ता को पुन: प्राप्त करने का प्रयत्न किया था। अतः इसे मुस्लिम विद्रोह कहना ही उचित है।

राष्ट्रीय विद्रोह—वीर सावरकर तथा अशोक महता की ऐसी धारणा है कि यह एक राष्ट्रीय विद्रोह था। इस विद्रोह में सैनिकों के अतिरिक्त जन-साधारण ने भी भाग लिया था। अंग्रेजी सरकार के विरुद्ध जनता में रोष फैला हुआ था और उन्होंने राष्ट्रीयता की भावना से प्रेरित हो यह विद्रोह किया था। इसलिए यह राष्ट्रीय विद्रोह था।

निष्कर्ष--पं० जवाहरलाल नेहरू, अब्दुलकलाम आजाद तथा सुरेन्द्रनाथ सेन का कथन है इस विद्रोह का आरंभ सैनिकों द्वारा धार्मिक कारणों से हुआ था। इसका क्षेत्र व्यापक नहीं था और देश के सभी वर्गों ने इसमें भाग भी नहीं लिया था। अत: इसे राष्ट्रीय विद्रोह न कहकर यदि स्वतन्त्रता का प्रथम संघर्ष कहा जाय तो अधिक उचित है।

विद्रोह के कारण

राजनीतिक—डलहौजी की साम्राज्यवादी नीति, मुगल सम्राट के प्रति अंग्रेजों का व्यवहार, भारतवासियों को उच्च पद न देना, जमीदार व ताल्लुकदारों की जमीन हड़पना, प्राचीन राजनीतिक व्यवस्था का समाप्त होना, नरेशों की उपाधियों को अमान्य करना, नरेशों की पेन्शन बन्द करना, उचित न्याय न होना।

सामाजिक—विलियम बेन्टिक के सामाजिक सुधार, रेलगाड़ी का आविष्कार, पाश्चात्य सभ्यता का प्रसार, अंग्रेजों में उच्चता की भावना, जाति प्रथा पर आघात।

धार्मिक कारण—हिन्दू व मुस्लिम धर्मों को घृणा से देखना, भारत में ईसाई धर्म का प्रचार, स्कूलों में ईसाईधर्म का अध्यापन, हिन्दुओं के उत्तराधिकार नियम को नही मानना, भारतीय संस्कृति व सभ्यता का अनादर।

आर्थिक कारण—भारतीयों का शोषण करना, गृह-उद्योग धन्धों का पतन, भारतीय माल का निर्यात, भारतीयों को ठेके न देना, भारतीय कर्मचारियों का कम वेतन।

सैनिक कारण—अंग्रेजी सैनिक व भारतीय सैनिकों में भेद, भारतीय सैनिकों को कम वेतन देना, भारतीय सैनिकों को समुद्र पार भेजना, नई राइफल व नये कारतूसों का प्रचलन, भारतीय सैनिकों को नवीन पगड़ी पहिनाना, भारतीय सैनिकों का अधिक संख्या में होना व अवध के सैनिकों को पदच्युत करना।

घटनाएँ—विद्रोह का क्षेत्र सीमित रहा। यह बैरकपुर से आरंभ हुआ। मेरठ के सैनिक दिल्ली गये और बहादुरशाह को सम्राट घोषित किया, कानपुर में भी विद्रोह ने काफी जोर पकड़ा। झांसी में लक्ष्मीबाई ने विद्रोह को प्रबल रूप दिया।

विद्रोह का दमन—विद्रोह दक्षिणी भारत में नहीं फैला। इस कारण वहां से सेना आगई। इसके अलावा गोरखो तथा सिक्खों के सहयोग से यह विद्रोह दबा दिया गया। भारतीयों पर नृशंसता से अत्याचार किये गये। सभी विद्रोहियों को कठोर दंड दिया गया।

राजस्थान का विद्रोह में सहयोग—राजस्थान में यह विद्रोह जोधपुर, कोटा, टोंक, नसीराबाद तथा नीमच की छावनी पर प्रबल रूप से फैला। जयपुर नरेश तथा उदयपुर के महाराणा अंग्रेजों के सहायक बने रहे।

विद्रोह के प्रभाव—कम्पनी के शासन का अन्त, रानी विक्टोरिया की घोषणा बोर्ड ऑफ कन्ट्रोल की समाप्ति, भारत मन्त्री तथा भारत-परिषद की स्थापना, दोहरे शासन की समाप्ति, पाश्चात्य सभ्यता का प्रभाव, हिन्दू व मुसलमानो में भेद उत्पन्न होना, कम्पनी की सेना का विघटन, उच्च नियुक्तियां इंगलैंड के शासक द्वारा होना, अंग्रेजी शक्तिशाली सेना की भारत में व्यवस्था व वैधानिक विकास का प्रादुर्भाव।

विद्रोह की असफलता के कारण—गदर का पूर्व नियोजित न होना, सुयोग्य नेता का अभाव, विद्रोह का क्षेत्र सीमित होना, सैनिक दुर्बलता, जन-साधारण का अधिक सहयोग न होना, देशी नरेशों व जमीदारों का अंग्रेजों के प्रति वफादार रहना, सिक्खो व गोरखों द्वारा अंग्रेजों को सहायता देना, आर्थिक कठिनाई, अंग्रेजों के पास विकसित यातायात के साधन होना, अंग्रेजों की समुद्रिक शक्ति।

योग्यता-प्रश्न

(१) १८५७ के विद्रोह के क्या कारण थे ? क्या आप इसे अंग्रेजों के विरुद्ध स्वतन्त्रता का युद्ध समझते हैं ?

What were the causes of the great out break of 1857 ? Do you regard it as a National War of Independence against the British ?

(२) "१८५७ का विद्रोह केवल सैनिक विद्रोह नहीं था, अपितु भारतीय स्वतन्त्रता का प्रथम संघर्ष था।" समझाइये।

The great rebellion of 1857 was not freely the so called Sepoy Mutiny but it was the first War of Independence" Discuss.

(३) १८५७ के विद्रोह के प्रसार तथा दमन का वर्णन कीजिए।

Give an account of the spread and suppression of the Revolt of 1857.

(४) १८५७ के विद्रोह के महत्व तथा इसकी असफलता के कारणों का वर्णन कीजिए।

Trace briefly the significance of the Revolt of 1857 and the causes of its failure.

(५) निम्नलिखित पर टिप्पणियाँ लिखिए।

(i) मंगल पाण्डे (Mangal Pande)।
(ii) लक्ष्मीबाई (Laxmi Bai)
(iii) नाना साहब (Nana Sahib)
(iv) बहादुर शाह (Bahadur Shah)
(v) मानसिंह (Mansingh)
(vi) नसीराबाद (Nasirabad)

अध्याय सत्रहवां

भारत में ब्रिटिश शासन

प्रस्तावना—लार्ड कैनिंग, लार्ड एलगिन, लार्ड लारेन्स, लार्ड मेयो, लार्ड नार्थब्रुक, लार्ड लिटन, लार्ड रिपन, लार्ड डफरिन, लार्ड लेन्सडाउन, लार्ड एलगिन द्वितीय, लार्ड कर्जन, लार्ड मिन्टो द्वितीय, लार्ड हार्डिज द्वितीय, लार्ड चेम्सफोर्ड, लार्ड रीडिंग, लार्ड इरविन, लार्ड विलिंगडन, लार्ड लिनलिथगो, लार्ड वैवल और लार्ड माउन्ट बेटन।

प्रस्तावना—१८५७ का विद्रोह भारत में एक नवीन युग का प्रारंभ माना जाता है। इस विद्रोह की असफलता ने भारत में एक नवीन शासन-सत्ता को जन्म दिया। भारत का शासन रहा अंग्रेजों के हाथों में ही; किन्तु १७५७ से १८५७ तक तो देश की बागडोर ईस्ट इण्डिया कम्पनी के कर्मचारियों के हाथ में रही और १८५८ में यह शासन-सत्ता इंगलैण्ड की सरकार के हाथ में चली गई। इंगलैण्ड की रानी विक्टोरिया (Victoria) भारत की प्रथम साम्राज्ञी बनी तथा उसने १८५८ की घोषणा से भारत के शासन में नया मोड़ ला दिया। अतः हम देखते हैं कि १८५८ के उपरान्त भारत का शासन इंगलैण्ड की सरकार के नियन्त्रण में हो संचालित होता रहा। अब भारत का गवर्नर जनरल दो पदों पर कार्य करने लगा। प्रथम वह ब्रिटिश प्रान्तों में गवर्नर जनरल होता था और समस्त राज्यों के गवर्नर उसके आधीन होते थे। दूसरे वह देशी रियासतों के नरेशों से वायसराय (Viceroy) की हैसियत से व्यवहार करने लगा। स्पष्ट है कि १८५८ से १९४७ भारत ब्रिटिश सरकार के नियन्त्रण में रहा। अतः इस अध्याय में हम उन प्रमुख शासन सुधारों का उल्लेख करेंगे जो इस काल के गवर्नर जनरलों द्वारा किये गये थे।

लार्ड कैनिंग (Lord Canning 1856-62)

१८५७ का महान विद्रोह लार्ड कैनिंग के प्रशासन काल में ही हुआ था। अतः उसको आते हो महान कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। जब विद्रोह दब गया तो उसने सुख की सांस ली और शान्ति स्थापित होने के उपरान्त उसने भी कुछ शासन सुधार किये।

लार्ड कैनिंग के शासन-सुधार

सेना सम्बन्धी—१८५७ के गदर से तो अंग्रेज प्रशासक सचेत हो ही गये थे किन्तु १८५९ के श्वेत विद्रोह (White Mutiny) ने लार्ड कैनिंग को और

लार्ड लारेन्स (Lord Lawrence)

लार्ड लारेन्स गदर के समय पंजाब का चीफ कमिश्नर था और उस गदर में पंजाब में पूर्ण शान्ति रही थी। सिक्खों ने सरकार का साथ दिया था। इसीलिए उसे भारत का रक्षक तथा विजय का संचालक कहा जाता है। वह एक परिश्रमी व्यक्ति था। इस कारण उसे १८६४ में भारत का गवर्नर जनरल नियुक्त किया गया। इस काल में उसने देश के आर्थिक विकास के लिए रेलें तथा नहरें बनवाईं। उसने कृषकों के हित के लिए अवध-काश्तकारी नियम पारित करवाया। उसके प्रशासन काल (१८६६) में व्यापारिक संकट भी उत्पन्न हुआ था। परन्तु उसने उसका भी सफलता से सामना किया।

लार्ड मेयो (Lord Mayo 1869-72)

लार्ड मेयो का जन्म १८२२ में डबलिन (Dublin) में हुआ था। इसको भारत का गवर्नर जनरल इंगलैंड के प्रधान मन्त्री डिजरैली ने नियुक्त किया था। इसने भारत में आकर कई सुधार किये। इस कारण लार्ड मेयो का स्थान भारतीय इतिहास में उच्च माना जाता है।

लार्ड मेयो के शासन-सुधार

आर्थिक सुधार—लार्ड मेयो ने भी अपनी सरकार की आर्थिक दशा को सुधारने का प्रयास किया। प्रथम उसने आय कर (Income tax) एक प्रतिशत से ढाई प्रतिशत तथा बाद में उसे ३ प्रतिशत कर दिया। दूसरे उसने नमक-कर में भी वृद्धि कर दी। तीसरे उसने सेना तथा लोक निर्माण विभाग (P W. D.) में कमी कर दी। इन सुधारों का परिणाम यह हुआ कि इसके आने के समय सरकार को २५ लाख का घाटा था। उसको इसने दूर कर साढ़े ग्यारह लाख की बचत कर दिखाई। इसके अतिरिक्त उसने वित्त प्रबन्ध के केन्द्रीयकरण के दोषों का पता लगाया।

सैनिक सुधार—लार्ड मेयो ने सैनिक विभाग में सुधार कर उसके व्यय में कमी की तथा सैनिक संगठन को सबल बनाया। उसने सेना में सैनिकों की कमी कर दी तथा कई व्यर्थ के सेना-विभागों को समाप्त कर दिया। इससे सेना के व्यय में भी भारी कमी हो गई।

शिक्षा सम्बन्धी—लार्ड मेयो भारत में शिक्षा-विस्तार का महान समर्थक था। उसने अजमेर (Ajmer) में देशी नरेशों व जागीरदारों के राजकुमारों को शिक्षित करने के लिए एक कालेज की स्थापना की। इसके अलावा उसने बहुत से प्राइमरी स्कूल खोले। उसकी मान्यता थी कि भारत में शिक्षा केवल उच्चवर्ग के मनुष्यों के लिये ही नहीं वरन जन-साधारण को होनी चाहिए। इसके लिए उसने

प्रयास भी किया । मुसलमान जो शिक्षा के क्षेत्र में बहुत पिछड़ गये थे उनकी शिक्षा का उसने अलग प्रबन्ध किया । इसके साथ ही यूरोपीय बच्चों की शिक्षा का भी उसने प्रबन्ध किया ।

सामाजिक सुधार—उसने बाल विवाह को रोकने के लिए एक नियम बनाया तथा छोटी लड़कियों की हत्या को रोकने के लिए उसने १८७० में एक कानून बनाया ।

स्थानीय स्वराज्य को प्रोत्साहनः—लार्ड मेयो स्थानीय स्वशासन (Local Self-Government) में विश्वास रखता था । वह भारत में भी स्थानीय स्वशासन पनपता देखना चाहता था । इस कारण इस सम्बन्ध में भी उसने १८७० में एक कानून पास किया जिसके अन्तर्गत् भारत के कई प्रमुख नगरों में नगर पालिकाओं की स्थापना हुई ।

जन-गणना—बंगाल में प्रथम जन गणना इसी के आदेश से हुई थी । अतः कह सकते हैं कि भारत में जन गणना का प्रारम्भ कर्त्ता यही था ।

उसको हत्या तथा मूल्याङ्कन—सन १८७२ में लार्ड मेयो अन्डमान टापू की यात्रा करने गया था । वहां उसे शेरअली नायब अफगान ने मौत के घाट उतार दिया ।

लार्ड मेयो अपने अल्पकालीन प्रशासनकाल में अपनी सरकार का कृपा-भाजन तथा भारत में लोकप्रिय बन गया था । भारत मे वह अपने सुधारो के लिए विख्यात है । वी. ए. स्मीथ (V. A. Smith) की धारणा है कि लार्ड मेयो ने अपने तीन वर्ष के कार्य काल में उसके नियुक्त करने वाले राजनीतिज्ञों की आशाओं को पूर्ण कर दिया ।

लार्ड नार्थ ब्रुक (Lord North Brook 1872-76)

लार्ड नार्थ ब्रुक का जन्म १८२६ में एक सम्पन्न परिवार में हुआ था । वह एक सुशिक्षित व्यक्ति था । अतः भारत में आते ही उसने बड़ी सतर्कता से कार्य किया । प्रशासन में वह अनुभवी था । किन्तु उसके शासन-काल में कोई विशेष घटना नहीं घटी । उसने भी अपने पूर्वज लार्ड लारेन्स की भांति महान अकर्मण्यता (Policy of masterly inactivity) का अनुसरण किया । वह कर-वृद्धि तथा व्यर्थ के कानून निर्माण में विश्वास नहीं रखता था । इसी कारण उसने आयात कर में ५ प्रतिशत कमी करदी तथा तेल, नील, चावल और लाख को छोड़कर शेष वस्तुओं को निर्यात-कर से मुक्त कर दिया । भारतीय व्यापार की सुरक्षा दृष्टि से उसने मैनचेस्टर के कपडे का भारत में आयात निः शुल्क नहीं किया ।

इन आर्थिक सुधारों के अतिरिक्त उसने भारत में शिक्षा का विकास किया तथा विज्ञान व चिकित्सा के अध्ययन की ओर विशेष ध्यान दिया । लार्ड नार्थ ब्रुक विधवा-विवाह का पक्का समर्थक था ।

उसके शासन–काल में बंगाल में भयंकर अकाल पड़ा तथा १८७५ में प्रिन्स आफवेल्स (Prince of wales) ने भारत की यात्रा की जिनका कि भारतीय नरेशा द्वारा शानदार स्वागत किया गया ।(१८७६) में उसे इंगलैण्ड बुला लिया गया ।

लार्ड लिटन (Lord Lytton 1876-80)

लार्ड लिटन एक उपन्यासकार पिता का पुत्र था । उसका जन्म १८३१ में हुआ था । वह एक सुशिक्षित व्यक्ति था । उस पर इंगलैंड के प्रधान मंत्री डिजरैली का पूरा विश्वास था । इसके समय में (१८७७) मेंरानी विक्टोरिया को बड़े ठाट बाट के साथ दरबार में साम्राज्ञी के पद से विभूषित किया । परन्तु इसी समय दक्षिणी भारत में महान दुर्भिक्ष पड़ा । जिसका प्रभाव मद्रास में सर्वाधिक पड़ा ।

उसके सुधार—आर्थिक क्षेत्र में उसने सांभर झील में बनाये जाने वाले नमक पर जयपुर व जोधपुर के नरेशों से कर लगवाकर भारत में नमक का भाव एकसा कर दिया । इसके अलावा उसने २९ वस्तुओं पर से आयात कर उठा दिया । उसने वित्तीय विकेन्द्रीकरण को और भी प्रोत्साहन दिया ।

सन् १८७८ में लार्ड लिटन ने वर्नाक्यूलर प्रेस एक्ट पास किया । इसके अनुसार भारत के सभी हिन्दी में प्रकाशित होने वाले समाचार पत्रों को ब्रिटिश सरकार को यह लिखकर देना पड़ता था कि वे ब्रिटिश सरकार के विरुद्ध कुछ प्रकाशित नहीं करेंगे । इस कानून से लिटन भारतवासियों की आलोचना का पात्र बन गया । इसी वर्ष उसने शस्त्र एक्ट (Arms Act) पास किया जिसके अन्तर्गत भारतवासी बिना लाइसेंस के शस्त्र नहीं रख सकते थे । उसने भारतीयों को सिविल सर्विस में लेने के द्वार खोल दिए ।

लार्ड लिटन ने भारत में कई शासन–सुधार किये । परन्तु वह अपने शासन सुधारों के कारण भारत में बदनाम अधिक हुआ । कुछ इतिहासकारों की तो मान्यता है कि किसी अन्य वायसराय की इतनी आलोचना नहीं हुई जितनी कि लार्ड लिटन की । उसकी निन्दा का प्रमुख कारण उसका प्रेस एक्ट तथा दक्षिण का अकाल था ।

लार्ड रिपन (Lord Ripon 1880-98)

लार्ड रिपन की नियुक्ति १८८० में ग्लैडस्टन (Gladston) द्वारा हुई थी । वह उदार वृत्ति का शासक था । अतः १८८० में जब वह भारत का गवर्नर जनरल नियुक्त हो कर आया तो वह भारतीयों के प्रति सहानुभूति पूर्ण नीति लेकर आया था । उसने भारत में निम्नलिखित सुधार किये—

राजनीतिक सुधार—

(१) उसने लार्ड लिटन द्वारा पारित वर्नाक्यूलर प्रेस एक्ट को रद्द कर दिया।

(२) स्थानीय स्वशासन अधिनियम (Local Self-Government) उसके समय में पास किया गया। इसके आने से पूर्व प्रशासन में भारतीयों को उचित हक नहीं मिलता था। प्रत्येक स्थान पर नौकरशाही का बोलबाला था। परन्तु उसने इस अधिनियम से भारत में स्थानीय संस्थाओं की स्थापना पर बल दिया।

प्रशासनिक सुधार--

(१) उसने आर्थिक अवस्था को अच्छी पाकर भारत में स्वतन्त्र व्यापार (Free Trade) को प्रोत्साहन दिया।

(२) उसने नमक कर में भी कमी करदी।

(३) उसने सरकारी आय को तीन भागों में विभक्त कर विकेन्द्रीकरण को और भी प्रोत्साहन दिया।

(४) उसने मजदूर-वर्ग की दशा में सुधार करने की दृष्टि से १८८१ में फैक्ट्री नियम (Factory Law) पारित किया। इस नियम के अन्तर्गत मजदूरों को केवल ६ घंटे कार्य करना पड़ता था।

शिक्षा सम्बन्धी सुधार—उसने भारत में शिक्षा का विस्तार करने की दृष्टि से १८८२ में हण्टर कमीशन (Hunter Commission) की स्थापना की और तदुपरान्त उसके सुझावों के अनुसार प्राथमिक तथा माध्यमिक शिक्षा में परिवर्तन किये।

अन्य कार्य—

(१) लार्ड मेयो द्वारा प्रतिपादित जन गणना प्रणाली को प्रचलित रखने के लिए १८८१ में उसने भी भारत में जन-गणना कराई।

(२) उसने मध्यम-वर्ग के भारतवासियो को भी सिविल सर्विस में स्थान दिलाने की दृष्टि से सिविल सर्विस के नियमों में सुधार किया।

(३) अटक में सिन्ध नदी पर उसने एक पुल बनवाया।

(४) भारत में यूरोपवासी तथा भारतवासियों के रंग भेद को उसने इलवर्ट बिल (Ilbert Bill) पारित कर दूर करने का प्रयास किया। परन्तु समस्त यूरोप-वासियो ने इस बिल का घोर विरोध किया। अतः लार्ड रिपन अपने इस उद्देश्य में सफल नहीं हो सका।

१८८४ में रिपन त्याग-पत्र देकर इंगलैड लौट गया। लार्ड रिपन भारत में अति लोकप्रिय बन गया था। परन्तु भारतवासियों में लोकप्रिय बनने के कारण वह

यूरोपवासियों की आलोचना का पात्र बन गया था। पी० ई० रोबर्टस (P. E. Roberts) का कहना है, लार्ड रिपन ने अपने देशवासियों में लोकप्रियता खो दी थी। उसने भारतीय लोगों का समर्थन तथा उत्साह पूर्ण भक्ति उनके हित के लिए अपने नेतृत्व द्वारा प्राप्त करली थी। "लार्ड कर्जन रिपन के विषय में इस प्रकार लिखता है, लार्ड रिपन को व्यक्तिगत रूप से लोग पसन्द करते थे तथा उसका आदर करते थे, क्योंकि वह न थकने वाला कार्यकर्ता था। समझौता पसन्द करने वाला साथी, पूर्ण रूप से स्पष्टवादी तथा दृढ़ व्यक्ति था।

लार्ड डफरिन (Lord Dufferin 1884-88)

लार्ड डफरिन का जन्म १८२६ में हुआ था। जब १८४१ में इसके पिता का देहान्त हो गया तो वह बैरन बन गया। भारत में गवर्नर जनरल नियुक्त होने से पूर्व १८६४ से ६६ तक वह भारत का अन्डर सेक्रेटरी तथा १८६८ से ७२ तक ब्रिटिश मन्त्रि-मण्डल में रह चुका था। अतः उसे प्रशासन का अच्छा अनुभव था। अल्फ्रेड लायल (Alfred Lyall) ने इस कथन की पुष्टि करते हुए लिखा है, "भारत वर्ष में जितने गवर्नर जनरल आये उनमें से कोई भी अपने कार्य के लिए इतना अनुभव युक्त न था जितना लार्ड डफरिन। "लेकी (Lecky) के अनुसार वह एक महान कूटनीतिज्ञ तथा एक महान राजनीतिज्ञ था।" वह एक ऐसा व्यक्ति था जो गुणों की दृष्टि में अपने समकालीन व्यक्तियों में सबसे बढ़कर था।"

इसके शासन काल की प्रमुख घटनाएँ—

(i) पंजदेह की समस्या—सन् १८८५ में रूसियों ने अफगानिस्तान की सीमा पर स्थित पंजदेह(Panjdeh) पर अधिकार कर लिया तथा वहाँ से अफगानों को भगा दिया। इससे इंगलैंड तथा रूस में युद्ध ठनने को नौबत आ गई थी। परन्तु डफरिन के बीच बचाव से रूस ने पंजदेह वापिस अफगानों को लौटा दिया। इससे अफगानिस्तान के शाह ने डफरिन को मित्र बने रहने का वचन दिया।

(ii) बरमा का तीसरा युद्ध भी इसके समय में हुआ। इसका प्रमुख कारण उसकी साम्राज्यवादी नीति थी।

(iii) १८८५ ई० में डा० ह्यूम (Hume) के नेतृत्व में कांग्रेस (Congress) की स्थापना हुई।

(iv) १६ जनवरी १८८७ को महारानी विक्टोरिया की जयन्ती बड़े समारोह के साथ भारत में मनाई गई।

उसके शासन-सुधार—लार्ड डफरिन का शासन-काल प्रमुखतया उपर्युक्त घटनाओं के लिए प्रसिद्ध है। किन्तु फिर भी उसने यहाँ कुछ सुधार किये।

(i) बंगाल, अवध, और पंजाब के कृषकों को राहत देने के लिए उसने तीन अधिनियम स्वीकृत कराये। इन अधिनियमों से कृषक बेदखली से मुक्त हो गये और वे जमीदारों के शोषण से बच गये।

(ii) स्वीकृति अवस्था नियम भी (The Age of Consent Act) उसके द्वारा पारित कराया गया था। इसके अन्तर्गत कन्याओं के विवाह की आयु दस से बारह वर्ष कर दी गई।

(iii) उसने अपनी स्त्री के नाम पर लेडी डफरिन फंड (Lady Dufferin Fund) की स्थापना की। इस फंड के धन से जगह-जगह स्त्रियों के लिए अस्पताल खोले गये।

उसके इन सुधारों का विचार करते हुए लार्ड कर्जन लिखता है, "अपने कार्यों के करने में वायसराय ने एक अनोखी उदासीनता तथा कार्यशीलता के मिश्रण का परिचय दिया।" यद्यपि उसके शासन-सुधार अधिक महत्वपूर्ण नहीं थे। परन्तु वी. ए. स्मिथ (V. A. Smith) ने लिखा है, "लार्ड डफरिन को भारत के प्रथम कोटि के गवर्नर जनरलों में चाहे स्थान न दिया जावे परन्तु निःसन्देह वह एक अत्यन्त सफल व्यक्तियों में गिनने योग्य है।" वह १८८८ में अपना कार्यकाल समाप्त होने पर इंगलैण्ड लौट गया।

लार्ड लैन्सडाउन (Lord Lansdown 1888-93)

लार्ड लैन्सडाउन प्रगतिशील विचारों का व्यक्ति था। इसका जन्म १८४५ में आयरलैण्ड के एक अच्छे कुल में हुआ था। भारत आने से पूर्व वह कनाड़ा का गवर्नर जनरल रह चुका था।

उसके शासन-काल की प्रमुख घटनाएँ

सीमान्त का प्रश्न—इसके कार्य-काल में उत्तरी पश्चिमी सीमा का प्रश्न बड़ा जटिल हो गया था। इसने अफगानिस्तान में अपना राजदूत भेजा तथा वहाँ के शाह से अच्छे सम्बन्ध स्थापित किये।

काश्मीर की दुर्घटना—इसने किन्हीं अज्ञात कारणों से काश्मीर के नरेश को सिंहासन से हटा कर वहाँ का शासन एक कौंसिल के हाथ में सौंप दिया।

मनीपुर का विद्रोह—१८९० में मनीपुर का राजा मर गया। अतः वहां उत्तराधिकार के प्रश्न पर झगड़ा छिड़ गया। वहां आसाम का चीफ कमिश्नर झगड़े को तय करने के लिए भेजा गया। परन्तु सेनापति की धूर्तता के कारण विद्रोह बढ़ गया। अन्त में अंग्रेजी सेनाओं ने जाकर वहां शान्ति स्थापित कर दी।

कलात का विद्रोह—उसके शासन काल में कलात के शाह ने अपने वजीर को मय उसके पिता तथा तीन पुत्रों के साथ मरवा दिया। लार्ड लैन्स डाउन ने उसे राज्य छोड़ने को बाध्य कर दिया।

शासन—सुधार

टकसालों की व्यवस्था—इसके समय में चांदी की कई नई खानों का पता लगने से चांदी के भावों में बड़ी गिरावट आ गई थी। इससे सरकार को बड़ा घाटा होने लगा। उसने सोने व चांदी के सिक्कों का १५:१ का अनुपात निश्चित कर दिया तथा टकसाल में जन-साधारण के चांदी के सिक्के ढ़ालना बन्द करवा दिया।

फैक्ट्री-नियम—उसने फैक्ट्री अधिनियम पास कर कारखानों में काम करने वाली स्त्रियों के काम के घण्टे निश्चित कर दिए और साथ ही काम करने वाले बच्चों की आयु भी निश्चित कर दी। इसके फलस्वरूप अब छोटे बच्चों का कारखानों में काम करना बन्द हो गया।

१८९२ का काउन्सिल एक्ट—इस अधिनियम से केन्द्रीय तथा प्रान्तीय कौन्सिलों की सदस्य संख्या बढ़ा दी गई। वायसराय की कौन्सिल में अब दस के स्थान पर सोलह मेम्बर कर दिए गये। इसी प्रकार प्रांतों में भी उनकी संख्या बढ़ा दी गई।

सिविल सर्विस में सुधार—वह सिविल सर्विस में भी सुधार करना चाहता था। अतः उसने सरकारी नौकरियों को तीन श्रेणियों में विभक्त कर दिया — (१) भारतीय, (२) प्रान्तीय तथा (३) निम्न श्रेणी की। इसके अलावा उसने यह भी चाहा था कि सिविल सर्विस की परीक्षाएँ भारत व इंगलैण्ड में एक साथ होनी चाहिए। परन्तु वह इसमें सफल नहीं रहा।

सन् १८९३ में वह अपने पद से त्याग पत्र देकर इंगलैण्ड लौट गया।

लार्ड एल्गिन द्वितीय (Lord Elgin II 1894-99)

लार्ड एलगिन भी एक उदार विचारों का मनुष्य था। उसका जन्म १८४९ में हुआ था। वह प्रशासन के कार्यों में अनुभव हीन था क्योंकि इससे पूर्व उसने किसी उत्तरदायित्व पूर्ण पद पर कार्य नहीं किया था।

उसके शासन-सुधार

सैनिक सुधार——अभी तक अलग प्रेसीडेन्सी की सेना का कमान्डर अलग होता था। परन्तु उसने समस्त भारत की सेना का एक कमान्डर-इन-चीफ नियुक्त किया।

आर्थिक—अभी तक अफीम बनाने तथा बेचने का एकाधिकार सरकार के हाथ में था। जनता अफीम की बिक्री के विरुद्ध थी। अतः गवर्नर जनरल ने अफीम की बिक्री सर्वथा तो बन्द की नहीं किन्तु उसकी बिक्री में कमी अवश्य कर दी।

सन् १८९९ में वह भारत से विदा हो कर इंगलैण्ड चला गया।

लार्ड कर्जन (Lord Curzon 1899-1905)

लार्ड कर्जन की गणना भारत के सबसे महान तथा अत्यन्त प्रभावशाली गवर्नर जनरलों में की जाती है। वह एक अनुभवी तथा राजनीतिज्ञ प्रशासक था। परन्तु उसके विचार अनुदार थे। भारत का गवर्नर नियुक्त होने से पूर्व वह भारत का उप-मंत्री रह चुका था। अतः उसे भारत की दशा का पूर्व ज्ञान भी था। उसका जन्म १८५९ में हुआ था।

उसके शासन की प्रमुख घटनाएं

सीमान्त-सुरक्षा—जब लार्ड कर्जन भारत में गवर्नर जनरल नियुक्त हो कर आया तो सीमान्त सुरक्षा को संकट उत्पन्न हो रहा था। फारस में इंगलैंड के बढते हुए प्रभाव से रूस तथा जर्मनी द्वेष रखते थे। परन्तु कर्जन ने फारस के शाह से अपने सम्बन्ध अच्छे रखे तथा फारस की खाड़ी पर भी अपना प्रभुत्व बनाये रखा। १९०१ में जब अफगानिस्तान का शाह इस लोक से विदा हो गया तो कर्जन उसके पुत्र से अच्छे संबन्ध बनाये रहा और उसे हिज मैजेस्टी (His Majesty) की उपाधि से विभूषित किया। इसी प्रकार कर्जन ने तिब्बत में यंग हज़बैंड (Young husband) को भेज कर वहाँ अपना प्रभुत्व कायम किया

बंगाल का बटवारा—उसने १९०५ में बंगाल को दो भागों में विभक्त कर दिया पूर्वी बंगाल तथा पश्चिमी बंगाल। कहा जाता है कि इसने शासन की सुविधा से बंगाल को दो भागों में बाँटा था। परन्तु भारत में इसकी बड़ी आलोचना हुई। इस विभाजन की प्रतिक्रिया के सम्बन्ध में सर एस. एन. बर्नजी (S.N. Banerjee) लिखते हैं, "बंगाल विभाजन की घोषणा बम के गोले के समान गिरी। हमने ऐसा अनुभव किया कि हमें अपमानित किया गया है तथा हमारे साथ धोखा हुआ है।"

उसके शासन सुधार

प्रशासनिक सुधार—वह देश के प्रशासन में शीघ्रता एवं पटुता लाना चाहता था। वह नहीं चाहता था कि सरकारी कार्य मन्द गति से होता रहे। वह विकेन्द्रीकरण का विरोधी नहीं था। परन्तु वह मद्रास व बम्बई के गवर्नरों को केन्द्रीय सरकार से अधिक स्वतन्त्र देखना पसन्द नहीं करता था। इसलिए उसने भारत मंत्री से कह कर वहाँ के गवर्नरों के अधिकारों में कमी करा दी। इसके अलावा उसे जिस विभाग में कुछ कमी नजर आती वह वहां एक कमीशन नियुक्त करके वहां की कमियों को जान लेता तथा उन्हें दूर करने का प्रयास करता था।

पुलिस सम्बन्धी—वह भारत की तत्कालीन पुलिस व्यवस्था से संतुष्ट नहीं था। उसे यहां भ्रष्टाचार का राज्य दृष्टिगत हुआ। अतः उसने पुलिस की दयनीय दशा को ठीक करने की दृष्टि से निम्नलिखित सुधार किये।

(१) निम्न श्रेणी के कर्मचारियों के वेतन बढ़ा दिये।

(२) भारत वासियों को पुलिस में डिप्टी सुपरिन्टेण्डेण्ट तक के पद दिए जाने लगे।

(३) भ्रष्टाचार की रोक थाम के लिए उसने गुप्त-चर विभाग (C.I.D.) की स्थापना की।

कृषि सम्बन्धी—लार्ड कर्जन का ध्यान भारत की कृषि की ओर भी गया वह कृषि को उन्नत तथा कृषकों को सुखी देखना चाहता था। अतः उसने इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए ये सुधार किये—

(१) कृषकों को आर्थिक सहायता देने के लिए उसने सहकारी समितियों की स्थापना की।

(२) उसने भारत में वैज्ञानिक प्रयोगों द्वारा कृषि में प्रोत्साहन देने का प्रयत्न किया।

(३) १९०० में उसने पंजाब-प्रथक्करण अधिनियम (Punjab Land Alienation Act) पारित करवाया। इसके अन्तर्गत पंजाब के साहूकार ऋण के बदले में कृषक की भूमि को खरीद नहीं सकते थे और वे उसे २० वर्ष से अधिक रहन भी नहीं रख सकते थे।

(४) भूमि को उपजाऊ बनाने के लिए उसने सिचाई का भी प्रबन्ध किया। पंजाब में उसके शासन-काल में कई नहरें बनाई गई।

(५) कृषि को उन्नत करने लिए उसे कृषि अन्वेषण विभाग (Agricultural Research Institute) की स्थापना की।

यातायात सम्बन्धी—भारत में यातायात को के साधनों विकासित करने के लिए उसने भारत में रेल की लाइनों की बृद्धि की। इसके भारत आने से पूर्व भारत की रेलों का प्रबन्ध दो प्रकार से होता था। कुछ रेलों का प्रबन्ध कम्पनियों द्वारा होता था तथा कुछ का प्रबन्ध लोक सेवा विभाग (P.W.D.) के संरक्षण मेंहोता था। उसने लोक सेवा विभाग के स्थान पर एक रेलवे बोर्ड (Railway Board) की स्थापना की और भारत की समस्त रेलों का प्रबन्ध उसी बोर्ड के आधीन कर दिया।

शिक्षा सम्बन्धी—लार्ड कर्जन ने शिक्षा के विकास की ओर भी ध्यान दिया उसने भारत की तत्कालीन शिक्षा की दशा का अवलोकन किया तथा उसको उन्नत करने की नीयत से उसने कुछ सुधार किए। उसने १९०१ में शिमला में एक सम्मेलन

आमन्त्रित किया जिसमें बड़े बड़े शिक्षा शास्त्री उपस्थित थे। सम्मेलन में शिक्षा सम्बन्धी समस्याओं पर विचार किया गया तथा १९०४ के अधिनियम (University Education Reform Act)से उसने इन समस्याओं का निवारण करना चाहा। परन्तु इस अधिनियम से शिक्षा में कुछ सुधार तो हुआ नहीं। इसके विपरीत विश्व विद्यालयों पर सरकारी नियन्त्रण और सख्त हो गया। इसी कारण इस अधिनियम की भारत में आलोचना हुई।

सैनिक सुधार—सेवा के क्षेत्र में भी उसने कुछ उपयोगी सुधार किये। उसका भारतीय सैनिकों पर विश्वास था। उसने उनको सेना में पुनः भरना आरंभ किया तथा उन्हें शस्त्र देना शुरू किया। इसके अलावा उसने इम्पीरियल केडेट कोर्प्स (Imperial Cadet Corps) की स्थापना की। इसमें राजकुमारों को सैनिक प्रशिक्षण मिलने लगा। सेना को बलवती बनाने के लिए उसने बड़ी तोपों का प्रबन्ध किया गया।

आर्थिक सुधार—यद्यपि उसके भारत आने के समय सरकार की आर्थिक दशा में पर्याप्त सुधार हो चुका था। किन्तु यह उसमें और भी सुधार करना चाहता था। अतः उसने इस क्षेत्र में निम्नलिखित सुधार किए—

(i) उसने नमक कर को घटा कर आधा कर दिया।

(ii) अंग्रेजी स्वर्ण मुद्रा भारत की कानूनी मुद्रा घोषित की गई।

(iii) आय-कर अधिक आमद वाले व्यक्तियों से लिया जाने लगा। इस कारण दीन मनुष्यों की इससे बचत हो गई।

(iv) प्रान्तीय तथा केन्द्रीय वित्त विभागों का पूर्ण रूप से विकेन्द्रीकरण किया गया।

इस प्रकार अनेक शासन-सुधार लागू कर वह १९०५ में भारत से चला गया। उसके शासन-सुधारों की भारत में बड़ी प्रतिक्रिया हुई। बंग-भंग से भारत में रोष छा गया था। लेकिन यह स्वीकार करना पड़ता है कि वह विलक्षण प्रतिभा का शासक था। सीतलवाड (Setalvad) के अनुसार "लार्ड कर्जन एक अत्यन्त प्रतिभाशाली, योग्य तथा परिश्रमी वायसराय था तथा उसने सम्पूर्ण प्रशासनिक ढांचे को योग्यता के सांचे मे ढाला, किन्तु वह एक महान साम्राज्यवादी था।" रासबिहारी घोष (Ras Behari Ghosh) ने कर्जन के प्रशासन पर आलोचना करते हुए लिखा है "लार्ड कर्जन ने वह प्रत्येक कार्य अधूरा छोड़ दिया जिसे वह करना चाहता था तथा जिस कार्य को उसे नहीं करना चाहिए था उसे वह पूर्ण कर गया।"

लार्ड मिन्टो द्वितीय (Lord Minto II 1905-10)

लार्डमिन्टो लार्ड कर्जन का उत्तराधिकारी था। भारत में गवर्नर जनरल बन

कर आने से पूर्व वह भारत में द्वितीय अफ़गान युद्ध में भाग ले चुका था तथा कनाड़ा में गवर्नर जनरल रह चुका था। अतः प्रशासन कार्य में उसे अनुभवी समझकर इंगलेण्ड की सरकार ने उसे १९०५ में भारत भेजा। वह लार्ड मिन्टो प्रथम का पौत्र था। जब वह भारत आया उस समय भारत की राजनीतिक अवस्था अच्छी नहीं थी। बंगाल के विभाजन से भारतवासी अंग्रेजी सरकार के विरोधी हो गये थे।

उसके शासन काल की प्रमुख घटनाएं

(१) बंगाल विभाजन के विरोध में आन्दोलन—लार्ड कर्जन तो बंगाल का विभाजन कर इंगलेण्ड चला गया किन्तु उसके परिणाम लार्ड मिन्टो को भुगतने पड़े। बंगाल में बड़ा आन्दोलन हुआ और उस आन्दोलन में लोग हिंसात्मक कार्यवाही करते भी नहीं हिचके।

(२) इंगलैण्ड व रूस में मित्रता—इंगलैण्ड व रूस में १९०७ में मित्रता का व्यवहार हो गया। इस कारण अब मिन्टो को फारस व उत्तर में रूस का भय नहीं रहा।

(३) साम्प्रदायिक निर्वाचन अधिनियम—१९०६ में भारत के मुसलमानों ने ब्रिटिश सरकार के प्रति वफादार रहने की शपथ ली। इसके उपहार में लार्ड मिन्टो ने उनके लिए साम्प्रदायिक निर्वाचन अधिनियम (Communal Electorate) स्वीकार किया। इसका परिणाम यह हुआ कि मुसलमानों को अब अल्प-संख्यक मान लिया गया तथा निर्वाचन में उनके लिए स्थान सुरक्षित रखे जाने लगे।

(४) मोर्ले मिन्टो सुधार—मोर्ले भारत मन्त्री था। मिन्टो ने उसके सहयोग से १९०९ में एक सुधार कानून पारित कराया जो कि उनके नाम पर मोर्ले-मिन्टो सुधार (Morley Minto Reform) कहलाया। इस अधिनियम के अन्तर्गत वायसराय की व्यवस्थापिका की सदस्य संख्या ६० करदी गई और ६० सदस्यों में से २५ गैर सरकारी होते थे। इस अधिनियम का उल्लेख विस्तृत रूप से आगे किया जावेगा।

(५) कांग्रेस में मतभेद—कांग्रेस जिसकी कि १८८५ में स्थापना हुई थी, वह १९०६ में गर्मदल (Extremist) तथा नर्मदल (Moderates) में विभक्त हो गई।

१९१० में लार्ड मिन्टो भारत से चला गया किन्तु साथ में भारतवासियों के हृदय में अपना अपयश छोड़ गया। उसके १९०९ के सुधार कानून से भारतवासी संतुष्ट नहीं हुए वरन् अधिक अप्रसन्न हुए। भारतवासियों में उसके प्रति घृणा उत्पन्न

हुई और १६०६ के साम्प्रदायिक निर्वाचन से तो भारतवासी और भी कुपित हो गये। कहा जाता है कि वह राजनीतिज्ञ अवश्य था किन्तु सफल प्रशामक नहीं।

लार्ड हार्डिंज द्वितीय (Lord Hardinge II 1910-16)

लार्ड हार्डिञ्ज प्रथम हार्डिञ्ज, जिसने कि प्रथम सिक्ख युद्ध में भाग लिया था, क पौत्र था। इसका जन्म १८५८ में हुआ था। उसके भारत आने के समय भी यहाँ की राजनीतिक अवस्था अच्छी नहीं थी।

उसके शासन-काल की घटनाएँ

(१) दिल्ली दरबार—१६११ में दिल्ली में एक महान दरबार हुआ जिसमें जार्ज पंचम का राज्याभिषेक हुआ।

(२) दिल्ली को राजधानी बनाना—भारत में अंग्रेजी साम्राज्य बहुत बढ़ गया था। अतः कलकत्ता अब राजधानी के लिए उपयुक्त नहीं था। इस कारण इस दरबार के समय दिल्ली को भारत की राजधानी घोषित की गई और नई दिल्ली (New Delhi) की नींव रखी गई।

(३) बंग-भंग को वापिस लेना—लार्ड कर्जन १६०५ में बंगाल को दो भागों में विभक्त कर गया था। इससे भारतवासियों में क्रोध व प्रतिशोध की लहर दौड़ गई थी। किन्तु १६११ में बंगाल को पुनः एक प्रदेश कर दिया गया।

(४) प्रथम-महायुद्ध—१६१४ में प्रथम महा-युद्ध (First Great War छिड़ गया। इस कारण हार्डिंज को भारत में कार्य बड़ी सावधानी से करना पड़ा।

उसके शासन-सुधार

(१) व्यापारिक उन्नति के लिए एक कमीशन की नियुक्ति हुई।

(२) लोक सेवा आयोग (P. S, C.) की स्थापना हुई।

१६१० में लार्ड हार्डिंज भारत से अपने पद से मुक्त हो कर इंगलैण्ड चला गया। भारतवासी इसके शासन से सन्तुष्ट थे। अतः वह भारत में अपयश के स्थान यश ही कमाकर गया।

लार्ड चेम्सफोर्ड (Lord Chelmsford 1916-21)

लार्ड हार्डिंज के स्थान पर लार्ड चेम्सफोर्ड की नियुक्ति हुई। उसका जन्म १८६८ में हुआ था। वह जब भारत आया तो क्या देश की और क्या विश्व की अवस्था अच्छी नहीं थी। उसकी नियुक्ति के समय प्रथम महायुद्ध चल रहा था तथा भारत में कांग्रेस औपनिवेशिक (Dominion Status) की मांग सरकार के समक्ष प्रस्तुत कर रही थी। अतः उसे भारत में बड़ी सावधानी से कार्य करना पड़ा।

उसके-शासन सुधार

मण्टेग्यू,चेम्सफोर्ड सुधार—१६१६ में भारतवासियों को सन्तुष्ट करने के लिए एक सुधार कानून पास किया गया । इस समय भारत मंत्री माण्टेग्यू (Mont-egue) था । १६१७ में उसने ब्रिटिश पार्लियामेन्ट में एक वक्तव्य दिया था जिसमें स्पष्ट किया गया कि ब्रिटिश सरकार भारतवासियों को धीरे धीरे स्वराज्य देना चाहती है । प्रथम महायुद्ध की समाप्ति पर जब भारतवासियों ने अपनी औप-निवेशिक स्वराज्य की मांग को दोहराया तो उनको सन्तुष्ट करने के लिए यह सुधार कानून पास किया गया । परन्तु भारतवासी इस सुधार कानून से सन्तुष्ट नहीं हुए और इसलिए इसके विपरीत इसके विरोध में १६२० में असहयोग आन्दोलन चला ।

रोलेट ऐक्ट—जब कांग्रेस ने सरकार के विरुद्ध आन्दोलन प्रारम्भ किया तो उसका दमन करने के लिए उसने रोलेट एक्ट ((Rowlatt Act) पास किया और इसके परिणाम स्वरूप १६२० में जलियांवाला बाग की दुर्घटना घटी । इससे चेम्सफोर्ड बहुत बदनाम हो गया और वह १६२१ में इंगलैण्ड लौट गया ।

लार्ड रीडिंग (Lord Reading 1921–26)

जब १६२१ में लार्ड चेम्सफोर्ड के स्थान पर लार्ड रीडिंग भारत का गवर्नर जनरल नियुक्त हो कर आया तो भारत की अवस्था अति भयंकर थी । चेम्सफोर्ड ने कांग्रेस का दमन करना चाहा किन्तु इसकी प्रतिक्रिया इसके विरुद्ध हुई । अतः उसे भी भारत में कार्य बड़ी सावधानी से करना पड़ा ।

उसके शासन की प्रमुख घटनाएँ

मोपाल विद्रोह—मोपाला लोग कट्टर मुस्लिम अरब निवासी थे । ये सदियों से मलाबार में आबाद थे । १६२१ में उन्होंने विद्रोह किया किन्तु सख्ती से उन्हें दबा दिया गया ।

चौरी-चौरा दुर्घटना— उसके भारत आने के समय भारत में कांग्रेस का आन्दोलन तो चल ही रहा था । उस आन्दोलन के समय कुछ गर्म विचारों के मनुष्यों ने गोरखपुर जिले में स्थित चौरी–चौरा के पुलिस थाने पर आक्रमण कर दिया तथा कुछ सिपाहियों की हत्या कर दी । इस प्रकार की हिंसात्मक कार्यवाही से महात्मा गांधी को बहुत दुःख हुआ और उन्होंने इस आन्दोलन को बन्द कर दिया ।

सिक्खों का आन्दोलन--सिक्ख लोग ब्रिटिश सरकार द्वारा गुरुद्वारों के प्रति बरती जा रही नीति से असन्तुष्ट थे । अतः सिक्खों ने अपनी मांगें स्वीकार कराने के उद्देश्य से आन्दोलन किया और अन्त में वे सफल हुए ।

नाभा नरेश का गद्दी छोड़ना—नाभा नरेश से किसी बात पर अनबन हो जाने के कारण उसे राज्य के अधिकारों से वंचित कर दिया तथा देहरादून भेज दिया।

शासन-सुधार

(१) उसने देहरादून में एक सैनिक कालेज खोला और उसमें दस प्रतिशत स्थान भारतीयों के लिए सुरक्षित रखे।

(२) उसने एक आर्थिक आयोग की नियुक्ति की जिसके सुझाव पर १९२३ में चुंगी मण्डल (Tariff Board) की स्थापना की गई।

(३) उसने १९२१ में ढ़ाका तथा १९२३ में नागपुर में विश्वविद्यालय की स्थापना की।

इस प्रकार विभिन्न सुधार कर लार्ड रीडिंग १९२६ में भारत से इंगलैण्ड लौट गया।

लार्ड इरविन (Lord Irwin 1926–31)

लार्ड इरविन का प्रारंभिक नाम एडवर्ड फ्रेडरिक लिन्डले था और उसका जन्म १८८१ में हुआ था। भारत में इस उत्तरदायी पद पर आने से पहले वह कई उच्च पदों पर कार्य कर चुका था। किन्तु फिर भी भारत की तत्कालीन बिगड़ी अवस्था को संभालना कोई आसान कार्य नहीं था। उसके समय की प्रमुख घटनाएं निम्नलिखित हैं—

(१) साइमन कमीशन (Simon Commission) की नियुक्ति।

(२) १९२९ में लाहौर अधिवेशन में कांग्रेस द्वारा भारत की पूर्ण स्वतन्त्र करने की मांग प्रस्तुत करना।

(३) १९३० में मुस्लिम लीग द्वारा पाकिस्तान की मांग करना।

(४) १९३० व ३१ में इंगलैण्ड में गोल मेज सभाएं।

(५) गांधी इरविन समझौता—इस समझौते के अनुसार कांग्रेस नेता जेलों से मुक्त कर दिये गये तथा महात्मा गांधी इंगलैण्ड दूसरी गोलमेज सभा में भाग लेने गये।

(६) भारत राष्ट्रसंघ (League of Nations) का सदस्य भी इसी के समय बना था।

शासन—सुधार

(१) लार्ड इरविन की कृषकों से बड़ी सहानुभूति थी। अतः उसने १९२६ में एक कृषि आयोग (Agriculture Commission) की नियुक्ति की और

उसकी सिफारिश पर पूसा के कृषि कालेज में कृषि सम्बन्धी अन्वेषणों के लिए अधिक सुविधाएँ प्रदान की गईं।

(२) इसके शासन–काल में भारत में कई विश्वविद्यालयों की स्थापना हुई। उनमें आन्ध्र विश्वविद्यालय तथा आगरा विश्वविद्यालय प्रमुख हैं।

(३) शारदा अधिनियम—लार्ड इरविन ने भारतीय समाज के उत्थान की ओर भी ध्यान दिया। उसने १९२९ में बाल विवाह निषेध नियम (Child Marriage Restraint Act) पास किया। इससे बाल विवाह में कुछ रोक थाम हुई, इस अधिनियम को शारदा–अधिनियम भी कहते हैं।

(४) १९२८ में उसने जनता–रक्षक नियम (Public Safety Bill) पास किया। इस नियम का आशय यह था कि यदि कोई विदेशी साम्यवाद के सिद्धान्तों का प्रचार करता देखा जावेगा तो सरकार उस पर बिना मुकदमा चलाये देश से बाहर निकाल देगी।

लार्ड इरविन ने भारत में शासन भली प्रकार ही चलाने का प्रयास किया। किन्तु कुछ लोगों ने तो उसे निर्बल मान कर निन्दनीय बताया जब कि कुछ ने उसे दमनकारी बताया। १९३१ में वह अपने पद से मुक्त हो इंगलैण्ड चला गया।

लार्ड विलिंगडन (Lord Willingdon 1931–36)

लार्ड विलिंगडन का जन्म १८६६ में हुआ था। भारत में गवर्नर जनरल नियुक्त होकर आने से पूर्व वह १९१९ से २४ तक मद्रास का गवर्नर तथा १९२६ से ३१ तक कनाडा का गवर्नर जनरल रह चुका था। अतः वह प्रशासन कार्यों में अनुभवी व्यक्ति था। उसके शासन–काल की प्रमुख घटनाएँ निम्नलिखित हैं—

(१) तीसरी गोलमेज सभा (Third Round table Conference)
(२) १९३२ में साम्प्रदायिक पंचाट (Communal Award)
(३) पूना का समझौता (Poona Pact)
(४) १९३५ का सुधार कानून (Reform Act of 1935)

शासन-सुधार

(१) मजदूरों की दशा में सुधार करने के लिए उसने १९३४ में फैक्ट्री एक्ट तथा १९३५ में माइन्स एक्ट (Mines Act) पास किए।

(२) सिंचाई के साधनों को सुलभ बनाने की दृष्टि से बनाया गया सक्कर, बैरेज भी इसी के समय में पूर्ण सिंचाई के काम में आने लगा।

(३) पंजाब विश्वविद्यालय को और सुविधाएँ प्रदान की गईं।

लार्ड विलिंगडन दमन नीति में विश्वास रखता था। वह उग्र विचारों का

तथा हठ धर्मी था। इसी कारण उसने भारत में दमन की नीति का अनुसरण किया तथा १९३६ में यहां से वह बदनाम होकर ही गया।

लार्ड लिनलिथगो (Lord Linlithgow 1935-44)

लार्ड लिनलिथगो का प्रारम्भिक नाम विक्टरएलेक जेण्डर था और उसका जन्म १८८७ में हुआ था। भारत में वह जब आया तो प्रशासन कार्य में अनुभव प्राप्त कर आया था। उसकी भारतवासियों के प्रति सहानुभूति थी और वह उनके साथ नरमी का व्यवहार करना पसंद करता था। किन्तु समय आ पड़ने पर वह भयंकर दमन करने को भी उद्यत रहता था।

उसके शासन काल की घटनाएँ

(१) १९३५ के सुधार कानून को कार्यान्वित करना।

(२) दूसरे महायुद्ध (Second Great War) का आरम्भ होना।

(३) १९३९ में कांग्रेस मन्त्रिमण्डलों द्वारा राज्य सरकारों से त्याग पत्र देना।

(४) १९४० में कांग्रेस द्वारा असहयोग आन्दोलन करना।

(५) १९४२ में क्रिप्स (Streford Cripps) का भारत आना।

(६) १९४२ में कांग्रेस द्वारा 'भारत छोड़ो प्रस्ताव पास करना तथा उसके फल स्वरूप क्रांति का प्रारम्भ।

(७) बंगाल का अकाल—इस अकाल से बंगाल में लाखों आदमी काल के ग्रास बने थे और उस समय वहाँ मुस्लिम लीग का मन्त्रिमण्डल कार्य कर रहा था।

(८) चीन के राष्ट्रपति च्यांग काई शेक का भारत आगमन।

उसके शासन-सुधार

लार्ड लिनलियगो को भारत में आते ही इतनी कठिनाइयों का सामना करना पड़ा कि उसे शासन सुधारों की ओर ध्यान देने का अवसर ही नहीं मिला। अत: वह शासन सुधार के क्षेत्र में बहुत कम कार्य कर सका। उसके कुछ सुधार निम्नलिखित हैं:—

शारदा एक्ट में सुधार—पहले यह कानून केवल ब्रिटिश प्रान्तों में लागू था। किन्तु इसने इसको देशी राज्यों भी लागू कर दिया।

(२) शिक्षा के विस्तार के लिए उसने १९३७ में ट्रावनकोर में विश्वविद्यालय की स्थापना की।

लार्ड लिनलिथगो को भारत में बहुत कार्य करना पड़ा। उधर तो उसे युद्ध में ब्रिटिश सरकार की सहायता करनी पड़ी और इधर विरोधी भारतवासियों के हृदय

दमन का व्यवहार करना पड़ा। भारतवासियों के हृदय में उसके प्रति भी प्रेम व श्रद्धा न थी। सन् १९४४ में वह भारत से इंगलैण्ड चला गया।

लार्ड वेवल (Lord Wavell 1944-47)

लार्ड वेवल एक सैनिक व्यक्ति था। दूसरे महासमर के समय यह लीबिया तथा बरमा में युद्ध संचालन कर चुका था, परन्तु यह दोनों जगह ही असफल रहा था। जब वह भारत का गवर्नर जनरल नियुक्त होकर आया उस समय द्वितीय महा समर समाप्त हो गया था। अतः इसको समय मिल गया कि वह भारत की समस्याओं का शान्ति से निवारण करे। उस समय देश में ब्रिटिश सरकार के विरुद्ध सर्वत्र रोष छाया हुआ था तथा कांग्रेस के नेता जेल के सीखचों में बन्द थे। उसने इस समस्या को निम्न साधनों से हल करना चाहा—

(१) कांग्रेस के उच्च नेताओं को जेल से मुक्त कर दिया।

(२) १९४५ में शिमला में एक सम्मेलन (Conference) का आयोजन किया। इस सम्मेलन में उसने कांग्रेस तथा लीग में समझौता कराना चाहा। किन्तु यह सम्मेलन मि. जिन्ना (Mr. Jinnah) की अड़ियल नीति के कारण असफल रहा।

इसके काल की प्रमुख घटनाएं

(१) १९४६ में इंगलैण्ड में मजदूर दल की सरकार का निर्माण हुआ। युद्ध की समाप्ति पर इंगलैण्ड में चुनाव हुए और अनुदार दल (Conservative Party)को परास्त कर मजदूर दल सत्तारूढ़ हुआ। यह घटना इंगलैण्ड तथा भारत दोनों के लिए महत्वपूर्ण सिद्ध हुई।

(२) १९४६ में पार्लियामेन्ट के सदस्यों का एक आयोग भारत आया। इन सदस्यों ने भारत का भ्रमण किया तथा स्थिति के अनुसार भारत में होने वाले सुधारों के विषय में उन्होंने इंगलैण्ड की पार्लियामेन्ट में रिपोर्ट पेश की।

(३) कैबिनेट मिशन (Cabinet Mission) का भारत आगमन—इस मिशन में सर स्टेफोर्ड क्रिप्स, पैथिक लारेन्स तथा ए. वी. एलेक्जेण्डर थे। इन्होंने भारत आकर सब दलों के नेताओं से बातचीत की। इसके उपरान्त उन्होंने दो सूत्री योजना बनाई दीर्घकालीन व अल्पकालीन। दीर्घकालीन से प्रयोजन यह था कि भारतवासी फिलहाल भारत में अपनी अन्तरिम सरकार (Interim Govt.) बनालें और जैसा विधानसभा (Constituent Assembly) विधान बनावे उसी प्रकार शासित हों। अल्पकालीन का आशय था कि भारतवासी अभी अन्तरिम सरकार बनालें और उन्हें प्रशासन के समस्त विभाग सौंप दिए जावेंगे किन्तु गवर्नर जनरल

अंग्रेज होगा। इस अन्तरिम सरकार में सम्मिलित होने की यह शर्त थी कि वह दल प्रथम दीर्घकालीन योजना को स्वीकार करे।

(४) हिन्दू-मुस्लिम दंगों का प्रारंभ—ये दंगे बंगाल से प्रारम्भ हुए। मुस्लिम लीग ने पाकिस्तान प्राप्त करने के लिए सीधी कार्यवाही (Direct Action) की धमकी दी और ये झगड़े उसी के परिणाम स्वरूप हुए। ये झगड़े बंगाल तक ही सीमित न रहे वरन् समस्त उत्तरी भारत में फैल गये।

(५) नेहरू की अध्यक्षता में (१९४६) अन्तरिम सरकार का निर्माण—इस अन्तरिम सरकार में प्रथम मुस्लिम लीग सम्मिलित नहीं हुई। किन्तु वेवल के दुराग्रह से बाद में उसके चार सदस्य अन्तरिम सरकार में सम्मिलित हुए।

(६) २० फरवरी १९४७ को ब्रिटेन के प्रधान मन्त्री श्री एटली (Attlee) द्वारा भारत छोड़ने की घोषणा की श्री एटली सर्वदा से भारत की स्वतन्त्रता का समर्थक रहा है। अतः जब वह इंगलैण्ड का प्रधान मन्त्री बना तो उसने अपने उद्देश्य को कार्यान्वित करने के लिए यह घोषणा की।

अतः स्पष्ट है कि वेवल के समय भारत में अनेक महत्वपूर्ण परिवर्तन हुए। परन्तु वह अन्तरिम सरकार के कार्यों में हस्तक्षेप करने से बदनाम हो गया तथा उसने जब मुस्लिम लीग के सदस्यों को अन्तरिम सरकार में स्थान दिया तो वह और भी बदनाम हो गया। वह १९४७ के प्रारंभ में इंगलैण्ड लौट गया।

लार्ड माउन्ट बेटन (Lord Mountbatten 1947–48)

लार्ड माउन्ट बेटन भी लार्ड वेवल की भाँति एक सैनिक व्यक्ति ही था। वह यहाँ आने से पूर्व एडमिरल था। इसके आने से पूर्व ब्रिटिश सरकार भारत की सदी पुरानी ग्रन्थी को सुलझाने का अवश्य प्रयत्न कर रही थी, किन्तु वह योग्य व्यक्ति के अभाव के कारण नहीं सुलझ पा रही थी। अतः ब्रिटिश सरकार ने इसे योग्य समझ मार्च १९४७ में भारत का गवर्नर जनरल नियुक्त किया। उसने भारत की तत्कालीन राजनीतिक समस्या का हल निम्न प्रकार से किया—

माउन्ट बेटन योजना—लार्ड माउन्ट बेटन एक बहुत ही समझदार व्यक्ति था। उसको ज्योंही भारत का गर्वनर जनरल नियुक्त किया गया—उसने अपना समय भारत की समस्याओं का अध्ययन करने में लगाया। भारत की समस्या का पूर्ण अध्ययन करने के उपरान्त वह इस निष्कर्ष पर पहुंचा कि जब तक मुस्लिम लीग के लिए कुछ नहीं किया जावेगा तब तक भारत की समस्या का हल निकलने वाला नहीं। अतः उसने सब दलों के नेताओं से विचार विमर्श कर अपनी एक योजना निकाली जिसकी प्रमुख बातें निम्नलिखित थीं:—

(१) भारत को पाकिस्तान तथा हिन्दुस्तान में विभक्त कर दिया जावे ।

(२) पंजाब और बंगाल को पूर्ण रूप से पाकिस्तान में न देकर उन्हें भारत व पाकिस्तान में विभक्त कर दिया जावें ।

(३) इसके बदले में पाकिस्तान को आसाम प्रदेश का सिलहट पाकिस्तान को दिया जावे ।

(४) भारत व पाकिस्तान की सीमा निर्धारण के लिए एक सीमा कमीशन नियुक्ति किया जावे ।

(५) जून के अन्त तक सत्ता भारतवासियों को हस्तान्तरित कर दी जावे ।

शासन–काल की प्रमुख घटना

भारत का स्वतन्त्र होना—लार्ड माउन्ट बेटन के शासन–काल की प्रमुख घटना भारत का स्वतन्त्र होना है । १५ अगस्त १९४७ को सदियों से गुलामी की जंजीरों से जकड़ा भारत फिर से स्वतन्त्र हुआ और इस स्वतन्त्रता का श्रेय बहुत कुछ लार्ड माउन्ट बेटन को जाता है । इस प्रकार ९० वर्ष के उपरान्त अनेकों उत्थान व पतन देखता हुआ ब्रिटिश शासन भारत से समाप्त हो गया ।

स्वतन्त्र भारत के प्रथम गर्वनर जनरल माउन्ट बेटन

जब भारत १९४७ के स्वतन्त्रता अधिनियम (Indian Independence Act of 1947) से स्वतन्त्र हो गया तो हमारी राष्ट्रीय सरकार ने स्वतन्त्र भारत का प्रथम गर्वनर जनरल होने का श्रेय लार्ड माउन्ट बेटन को ही दिया । भारतीय गर्वनर जनरल की हैसियत कैसे भी उन्होंने काफी सन्तोषप्रद कार्य किया ।काश्मीर समस्या, जूनागढ़ समस्या तथा हैदराबाद समस्या उनके शासन–काल में ही उत्पन्न हुई थी। उनका उन्होने यथोचित समाधान करने का प्रयास किया । देशी रियासतों का विलय भी आपने बड़ी योग्यता से किया । इस प्रकार स्वतन्त्र भारत के कार्य में कुछ मास सहयोग देकर २१जून १९४८ को वे इंगलैण्ड वापिस लौट गये । वे आज भारत में नहीं हैं किन्तु भारत के परम–मित्र वे आज भी बने हुए हैं । पद से मुक्ति पाने के उपरान्त भी आप विश्व में कहीं भी गये, आपने तथा आपकी धर्मपत्नी ने भारत की सराहना की । इन कारणों से हम कह सकते हैं कि लार्ड माउन्ट बेटन भारतबासियों के एक लोक–प्रिय गवर्नर जनरल रहे ।

अध्याय-सार

प्रस्तावना—१८५७ के गदर के उपरान्त भारत में ईस्ट इण्डिया कम्पनी की सत्ता समाप्त हो गई तथा उसके स्थान पर ब्रिटिश सरकार की स्थापना हुई ।

लार्ड कैनिंग—गदर की समाप्ति पर उसने सेना का पुनः संगठन किया तथा

सरकार की आर्थिक दशा सुधारने की दृष्टि से उसने आय कर, व्यापार कर आदि लगा दिए। शिक्षा के क्षेत्र में उसने चार्ल्सवुड के पत्र को कार्यान्वित किया तथा पुलिस विभाग को I. G. P. के नेतृत्व में अलग कर दिया।

लार्ड एलगिन—उसने अपने शासन-काल में भारत में कोई नवीन तथा उल्लेखनीय कार्य नहीं किया। वह अपने पूर्वजों की नीति का ही अनुसरण करता रहा।

लार्ड लारेन्स—उसे भारत का रक्षक कहा जाता है क्योंकि उसके प्रभाव से सिक्खों ने गदर में विरोध न कर अंग्रेजों का साथ दिया था। उसने आर्थिक विकास के लिए रेलें तथा नहरें बनवाई।

लार्ड मेयो—भारत के अच्छे गर्वनर जनरलों में समझा जाता है। सरकार की आर्थिक दशा को सुधारने के लिए उसने आय कर बढ़ाया तथा सेना में कमी की। अजमेर में मेयो कालेज की स्थापना की। वह भारत में स्थानीय स्वशासन को बढ़ाना चाहता था। इसके अलावा उसने भारत में जन-गणना आरंभ की तथा बाल विवाह को रोकने के लिए एक कानून पास किया।

लार्ड नार्थब्रूक—उसने भारत के आर्थिक तथा शैक्षणिक विकास की ओर ध्यान दिया।

लार्ड लिटन—वह अनुदार विचारों का था। अतः उसने वर्नायक्युलर प्रेस एक्ट तथा शस्त्र एक्ट पास किया, जिससे वह भारत में बदनाम हो गया।

लार्ड रिपन—यह उदार विचारों का था। अतः उसने नार्थब्रुक के प्रेस एक्ट को रद्द कर दिया तथा स्थानीय स्वशासन को विकसित करने का प्रयास किया। आर्थिक क्षेत्र में उसने विकेन्द्रीकरण किया तथा(Free trade) को प्रोत्साहन दिया। नमक कर कम कर दिया तथा शिक्षा में सुधार करने के लिए उसने हन्टर कमीशन की नियुक्ति की।

लार्ड डफरिन—उसके शासन-काल में बरमा का तीसरा युद्ध, कांग्रेस की स्थापना तथा महारानी विक्टोरिया की जयन्ती मनाई गई। पंजाब व अवध के कृषकों का हित करने के लिए उसने कानून पास किये व स्त्रियों के लिए शफाखाने बनाने के लिए उसने अपनी स्त्री के नाम पर एक फण्ड स्थापित किया।

लार्ड लैन्स डाउन—इसके समय में मनीपुर व कलात का विद्रोह हुआ तथा काश्मीर के नरेश को गद्दी से उतारा गया था। शासन सुधार के क्षेत्र में उसने टकसाल की व्यवस्था की व मजदूरों को राहत देने के लिए फैक्ट्री एक्ट पास किया। इसके अलावा उसने सिविल सर्विस में सुधार किया तथा उन्हें तीन भागों में विभक्त कर दिया।

लार्ड एलगिन द्वितीय—वह उदार विचारों का था। उसने अफ़ीम की बिक्री में कमी की।

लार्ड कर्जन-यह अनुदार विचारों का था। बंगाल का विभाजन कर उसने भारत में बड़ा अपयश कमाया। शासन सुधारों में उसने वित्त का विकेन्द्रीकरण किया तथा पुलिस के भ्रष्टाचार को दूर करने के लिए उसने निम्न श्रेणी के कर्मचारियों का वेतन बढ़ाया व गुप्तचर विभाग की स्थापना की। कृषकों की दशा में सुधार करने के लिए उसने कई कृषि सम्बन्धी कानून पास किये। देश की ग्राम पंचायतों की ओर भी उसने ध्यान दिया। शिक्षा व सेना में भी उसने सुधार करने का प्रयास किया।

लार्ड मिन्टो द्वितीय—इसने १९०६ में मुसलमानों को अल्प-संख्यक मान कर साम्प्रदायिक निर्वाचन कानून पास किया तथा १९०९ में मोर्ले मिन्टो सुधार कानून पास किया।

लार्ड हार्डिंज द्वितीय—उसके शासन-काल में दिल्ली में दरबार हुआ व दिल्ली भारत की राजधानी घोषित की गई। भारतवासियों को प्रसन्न करने के लिए बंगाल का विभाजन समाप्त कर दिया गया तथा इसके काल में प्रथम महायुद्धका श्रीगणेश हुआ। व्यापार की उन्नति के लिए उसने एक कमीशन नियुक्त किया तथा नौकरियों में निष्पक्षता बरतने के लिए लोकसेवा आयोग की स्थापना की।

लार्ड चेम्स फोर्ड—प्रथम महा युद्ध के समाप्त होते ही जब भारतवासियों ने औपनिवेशिक स्वराज्य की मांग सरकार के समक्ष प्रस्तुत की तो उसने रालेट एक्ट से उनका जलियाँ वाला व अन्य स्थानो पर दमन किया। १९१९ में असन्तुष्ट भारत वासियों को सन्तुष्ट करने के लिए 'मोन्टफोर्ड' सुधार कानून पास किया।

लार्ड रीडिंग—उसके समय में मोपाल का विद्रोह तथा चौरी-चोरा की दुर्घटना हुई। सिक्खों के आन्दोलन को दबाया गया तथा नाभा नरेश को गद्दी से हटाया गया। उसने देहरादून में एक सैनिक कालेज तथा नागपुर में विश्वविद्यालय की स्थापना की।

लार्ड इरविन—इसके समय भारत में साइमन कमिशन आया तथा कांग्रेस ने पूर्ण स्वतन्त्रता की मांग रखी। इसके अलावा इंगलैण्ड में प्रथम व द्वितीय गोलमेज सभा भी उसी के समय में हुई। इसके अतिरिक्त उसने भारतीय कृषकों की दशा सुधारने तथा शिक्षा का विकास करने का प्रयास भी किया। शारदा नियम तथा जनता रक्षक नियम भी इसी के द्वारा पारित किये गये थे।

लार्ड विलिंगडन—उसके शासन-काल में तीसरी गोलमेज सभा हुई तथा भारत में साम्प्रदायिक पंचाट की घोषणा हुई। इसके विरुद्ध जब महात्मा गांधी ने

आमरण अनशन किया तो १९३२ में पूना का समझौता हुआ। १९३५ का सुधार कानून पास हुआ। उसने मजदूरों की दशा में सुधार करने के लिए फैक्ट्री एक्ट पास किया। पंजाब- विश्वविद्यालय को कई सुविधाएँ प्रदान की गईं!

लार्ड लिनलिथगो—उसने१९३५ के सुधार कानून को कार्यान्वित किया। १९३९ में द्वितीय महासमर के समय कांग्रेस मन्त्रियों ने अपने पदों से त्याग–पत्र दे दिए। १९४० में असहयोग आन्दोलन तथा १९४२ में क्रिप्स मिशन के असफल रहने पर 'भारत छोड़ो' आन्दोलन आरम्भ हुआ। सुधारों के क्षेत्र में उसने शारदा एक्ट में सुधार किया तथा १९३७ ई०में ट्रावनकोर में विश्वविद्यालय की स्थापना की।

लार्ड वेवल–इसने कांग्रेस तथा लीग में समझौता कराने के लिए कांग्रेस के उच्च नेताओं को जेल से मुक्त कर १९४५ में शिमला सम्मेलन का आयोजन किया। १९४६ में नेहरू की अध्यक्षता में अन्तरिम सरकार की स्थापना हुई। इसके काल में पार्लियामेंट के सदस्यों का एक आयोगव कैबीनेट मिशन भारत आये।कैबीनेट मिशन ने भारत को स्वतन्त्रता देने के निमित्त दीर्घ कालीन तथा अल्पकालीन योजनाएं बनाईं। १९४७ में भारत छोड़ने की घोषणा भी इंगलैण्ड के प्रधान मन्त्री एटली द्वारा इसी के समय में की गई थी।

लार्ड माउन्टबेटन—यह उदार विचारों का था। इसने अपनी योजनासे कांग्रेस व लीग में भारत के विभाजन के विषय में समझौता करा दिया। भारत को स्वतन्त्रता प्राप्त होने के उपरान्त स्वतन्त्र भारत का प्रथम गवर्नर जनरल भी वही बना और उस हैसियत से उसने काश्मीर, जूनागढ़ तथा हैदराबाद की समस्याओं का यथायोग्य हल निकालने का प्रयास किया।

योग्यता प्रश्न

(१) लार्ड मेयो के सुधारों का उल्लेख कीजिए।

Give an account of the reforms introduced by Lord Mayo.

(२) लार्ड लिटन के वायसराय कार्य–काल की मुख्य घटनाओं का उल्लेख कीजिए।

Give an account of the Viceroyalty of LordLyton.

(३) लार्ड रिपन के सुधारों का मूल्याङ्कन कीजिए।

Form an estimate of the reforms of Lord Ripon.

(४) १८७६ से १८८४ तक के काल के प्रशासन की समीक्षा करो तथा यह बताओ कि उसका भारत की राजनीतिक जागृति पर क्या प्रभाव पड़ा?

Review the administration of India during the period from 1876 to 1884 and enumearate its effects upon the political awakening of India.

(५) लार्ड कर्ज़न के शासन-प्रबन्ध ग्रौर उसके सुधारों का वर्णन कीजिए।

Give an account of the administration and reforms of Lord Curzon.

(६) जब लार्ड कर्ज़न भारत से गया तो उस समय देश की राजनीतिक ग्रवस्था कैसी थी ग्रौर मिन्टो ने उसके सुधारने के लिए क्या किया ?

What was the political condition of India after the departure of Lord Curzon from India and what efforts were made by Lord Minto to improve it ?

(७) लार्ड लिनलिथगो के शासन काल की प्रमुख घटनाग्रों उल्लेख कीजिए।

Enumerate the chief events that took place during the Viceroyalty of Lord Linlithgow.

(८) लार्ड माउन्ट बेटन ने भारत की स्वतन्त्रता में क्या भाग लिया।

Trace out the part played by Lord Mountbatten in Indian independence.

(९) निम्नलिखित पर टिप्पणियां लिखिए।

(i) इंडियन कौसिल एक्ट (Indian Council Act of 1892)

(ii) वर्नाक्यूलर प्रेस एक्ट (Vernacular Press Act of 1875)

(iii) भूमि रक्षा कानून (Land Alienation Act)

(iv) बंग-भंग (Partiton of Bengal)

(v) साइमन कमीशन (Simon Commission)

(vi) क्रिप्स मिशन (Cripps Mission)

(vii) कैबीनेट मिशन (Cabinet Mission)

(viii) वेवल योजना (Wavell Plan)

(ix) भारत स्वतन्त्रता कानून (Indian Independence Act)

अध्याय अठारहवां

अंग्रेजी शासन व अफ़गानिस्तान

प्रस्तावना—प्रथम अफ़गान युद्ध, लार्ड लारेन्स की महान अकर्मण्यता की नीति, लार्ड मेयो और अफ़गानिस्तान, लार्ड नार्थब्रुक का अफ़गानिस्तान के सुल्तान से मन मुटाव, लार्ड लिटन व द्वितीय अफगान युद्ध, गंडमक की सन्धि, लार्ड कर्ज़न और अफगानिस्तान, अमानुल्ला।

प्रस्तावना–अफ़गानिस्तान अफ़गानों का देश है। यहां के लोग अपनी वीरता के लिए विख्यात हैं। ये लोग कबीलों में रहते हैं तथा कबीले एक नेता से नियन्त्रित होते हैं। यह देश भारत की सीमा से सटा हुआ उत्तर पश्चिम में स्थित है। अतः भारत का इससे सम्बन्ध होना आवश्यक है। मुसलमान व मुगल इसी भाग से आकर भारत के शासक बने थे। जब ईस्ट इण्डिया कम्पनी की सत्ता भारत में कायम हुई तो आरम्भ में उसका अफगानिस्तान से कोई सम्बन्ध नहीं था। किन्तु ज्यों ज्यों उसके साम्राज्य का भारत में विस्तार होता गया और विश्व के देश अन्तर्राष्ट्रीय होते गये त्यों त्यों कम्पनी को अफगानिस्तान से अच्छे सम्बन्ध बनाये रखने की चिन्ता हुई। इसके अलावा कम्पनी को अपनी सरकार से स्वतन्त्र होते हुए भी विदेशी मामलात में अपनी ब्रिटिश सरकार का आदेश मानना पड़ता था। जब अंग्रेजों का शत्रु नैपोलियन तीव्रगति से पूर्व में मिश्र तक बढ़ आया तो अंग्रेजों को चिन्ता हुई कि वह अफगानिस्तान होता हुआ भारत न पहुँच जाय। इसके बाद जब रूस का प्रभाव वहाँ बढ़ने लगा तो भी अंग्रेज घबराये। अतः अंग्रेज यह चाहते थे कि अफगानिस्तान भारत की सीमा पर एक अन्तस्थ राज्य (Buffer State) बना रहे और उसके सम्बन्ध उनसे मित्रता के बने रहें। परन्तु इस प्रकार की नीति का अनुसरण करने पर भी अंग्रेजों को जन व धन की भारी हानि उठानी पड़ी।

प्रथम अफ़गान युद्ध

जब नैपोलियन वापिस यूरोप लौट गया तो तत्कालीन भारत के गर्वनर जनरल ने कुछ सुख की नींद ली। परन्तु इसके कुछ वर्षों के बाद ही इंगलैण्ड को रूस से भय हो गया। १८३७ में फारस तो रूस के प्रभाव में पूरी तरह से आ गया था और इसके बाद रूस का जार अफगानिस्तान को अपने प्रभाव में लाने का प्रयास करने लगा। अतः भारत के तत्कालीन गर्वनर जनरल आकलेण्ड (Auckland) ने कैप्टिन बर्न्स (Burnes) को अफगानिस्तान के शाह के पास भेजा। इस समय अफगानिस्तान का शाह दोस्त मुहम्मद (Dost Muhmmad) था। वह अंग्रेजों से मित्रता

करने को इस शर्त पर राजी हुआ कि अंग्रेज उसे रणजीतसिंह से दिलादें। आकलैंड ने यह शर्त स्वीकार नहीं की। इसके फलस्वरूप अफगानिस्तान से कम्पनी के सम्बन्ध अच्छे होने के बजाय बिगड़ गये।

युद्ध के कारण

(१) रूस का अफगानिस्तान पर प्रभाव जमना।

(२) लार्ड आकलैण्ड द्वारा पेशावर दिलाने की मांग अस्वीकर कर देना।

(३) अफगानिस्तान को विदेशी प्रभाव से मुक्त रखना।

घटनाएँ—लार्ड आकलैण्ड ने रणजीतसिंह तथा शाहशुजा से सन्धि कर १८३९ में अफगानिस्तान पर अंग्रेजी सेनाएं भेज दीं। गजनी व कन्धार पर अधिकार कर लिया गया। ज्योंही डर कर दोस्त मुहम्मद ने काबुल से प्रस्थान किया की शाह शुजा ने उस पर अधिकार कर लिया। किन्तु वहां की जनता ने इस पर कोई हर्ष प्रकट नहीं किया। लार्ड आकलैंड ने बर्न्स तथा मैकनाटन (Macnaghten) को भी शाहशुजा की सुरक्षा के लिए वहीं छोड़ दिया।

परन्तु यह विजय स्थायी सिद्ध न हुई। कुछ ही दिनों उपरान्त काबुल में विद्रोह हुआ और अफगानों ने बर्न्स को कत्ल कर दिया। एलफिन्सटन विद्रोह को नहीं दबा सका। ४५०० अंग्रेज तथा १२००० उनके अनुयायियों को निःशस्त्र कर भारत जाने का आदेश दिया। किन्तु वे सब मार्ग में ही मर गये। केवल अकेला डा० ब्राइडन (Brydon) जीवित १८४२ में जलालाबाद पहुंचा।

इस असफलता से ऑकलैण्ड बदनाम हो गया और वह इंगलैण्ड बुला लिया गया। उसके स्थान पर कम्पनी ने एलेनबरा (Ellenborough) को भारत का गवर्नर जनरल बनाकर भेजा। उसने आते ही पुनः सैनिक कार्यवाही की। जनरल पोलक (Pollock) और नाट (Natt) दोनों सेना लेकर वहाँ पहुँच गये। उन्होंने काबुल के बाजार को जला डाला तथा बन्दी अंग्रेजों को मुक्त करवा दिया। किन्तु शाहशुजा भी अफगानों के हाथ से नहीं बच सका। अतः विवश हो विजयी अंग्रेजों ने पुनः दोस्त मुहम्मद को अफगानिस्तान का शाह बनाया।

परिणाम—वास्तव में देखा जाय तो इस युद्ध का परिणाम अंग्रेजों के हित में नहीं निकला। कम्पनी को डेड करोड़ पौण्ड तथा २० हजार मनुष्यों की हानि हुई जब कि लाभ कुछ भी नहीं। वही दोस्त मुहम्मद अफगानिस्तान का शाह बन गया इस धन और जन की हानि के अतिरिक्त कम्पनी की प्रतिष्ठा को बहुत धक्का लगा। इतिहासकार केयी (Kaye) का कहना है, इतिहास के पृष्ठों में अन्य कोई भी असफलता इतनी पूर्ण तथा व्याकुल करने वाली नहीं है जितनी कि यह अंकित है।

अफगानिस्तान में अंग्रेजों की नीति गलत थी तथा हमारे राजनीतिज्ञों की बुद्धिमतापूर्ण मूर्खता है, हमारी सेनाओं की शक्ति उनकी दुर्बलता है, जो एक अपवित्र उद्देश्य के लिए भार स्वरूप है।"

लार्ड लारेन्स की महान अकर्मण्तया की नीति--प्रथम अफगान युद्ध के परिणाम स्वरूप दोस्त मुहम्मद ही अफगानिस्तान का सुल्तान रहा और वह १८६३ तक बना रहा। १८५५ में उसने अग्रेजों से एक और सन्धि की थी जिसके अनुसार दोस्त मुहम्मद तथा अंग्रेज दोनों ने मिलकर फारस की सेना को हिरात से भगाया था। इस प्रकार १८६३ तक दोनों में सम्बन्ध अच्छे बने रहे। १८६३ में दोस्त मुहम्मद की मृत्यु होगई और उसकी गद्दी के लिए उत्तराधिकारियों में युद्ध छिड़ गया। इस समय लारेन्स भारत का गवर्नर जनरल था। जब शेर अली (Sher Ali) अफगानिस्तान का स्वामी बन गया तो लारेन्स ने भी उसे ही वहां का अमीर मान लिया और उसकी सहायता के लिए ६लाख रुपये दिए। अफगानिस्तान के आन्तरिक मामले में जब उसने कोई हस्तक्षेप नहीं किया तो कहते हैं कि उसने महान् अकर्मण्यता की नीति का पालन किया।

उसकी इस नीति पर दो मत है-प्रथम तो यह कहता है कि लारेन्स ने अफ-गानिस्तान के आन्तरिक विषय में न बोलकर अच्छा किया क्योंकि वह जानता था कि इससे स्वतन्त्रता प्रेमी अफगान क्रोधित हो जावेंगे और साथमें ही रूस से भी उनके सम्बन्धखराब हो जावेंगे। जबकि दूसरा मत बताता है कि उसने शेर अली की सहायता करके गल्ती की क्योंकि वह निरन्तर रूस की ओर ही झुकता गया।

लार्ड मेयो तथा अफगानिस्तान—जब १८६९ में लार्ड लारेन्स इंगलेण्ड लौट गया तो उसके स्थान पर लार्ड मेयो भारत आया। शेर अली ने आते ही उसको अफगानिस्तान से स्थायी सन्धि करने के लिए फुसलाया। किन्तु लार्ड मेयो ने अपने पूर्व लारेन्स की नीति का ही अनुसरण किया। उसने शेर अली को आर्थिक सहायता दी किन्तु नियमित रूप से वार्षिक सहायता देने से इन्कार किया। इस पर शेर अली ने मेयो से अनुरोध किया कि वह उसके पुत्र अब्दुल्ला को उसका उत्तराधिकारी स्वीकार करले। किन्तु इसका भी लार्ड मेयो ने केवल मौखिक आश्वासन ही दिया। अम्बाला में लार्ड मेयो शेर अली से मिला और मित्रता पूर्ण तरीके से बात चीत हुई। किन्तु यह सब कुछ होते हुए भी उसने शेर अली से कोई स्थायी सन्धि नहीं की।

लार्ड नार्थब्रुक का अफगानिस्तान के सुल्तान से मन मुटाव

लार्ड मेयो का स्थान नार्थब्रुक द्वारा लिया गया। शेर अली मेयो के व्यवहार से अप्रसन्न था, किन्तु वह रूस के भय के कारण कुछ नहीं कर सका।

अतः जब लार्ड नार्थ ब्रुक भारत आया तो शेर अली ने उसके पास अपना एक राजदूत भेजा और उसके द्वारा अनुग्रह किया कि वह अफगानिस्तान से स्थायी सन्धि करे तथा उसके पुत्र को उसका उत्तराधिकारी स्वीकार करले। किन्तु नार्थ ब्रुक ने इनमें से एक बात भी स्वीकार नहीं की और वह अपने पूर्वजो की ही नीति पर चलता रहा। इस कारण शेर अली नार्थ ब्रुक से भी अप्रसन्न होगया और रूस की ओर झुकने लगा।

लार्ड लिटन व द्वितीय अफगान युद्ध

सन् १८७६ ई० में लार्ड लिटन भारत का गवर्नर जनरल नियुक्त हुआ। उसकी नियुक्ति साम्राज्यवाद के प्रबल समर्थक डिजरेलो (Disraeli) के द्वारा हुई थी। अतः उसने भारत आते ही अपने से पूर्व के तीन गर्वनर जनरलों की नीति का परित्याग कर साम्राज्यवादी नीति को अपनाया। उसने शेरअली को कहलाया कि वह अपने यहां अंग्रेजी राजदूत रखले और वह इसके बदले में उसके पुत्र को उसका उत्तराधिकारी स्वीकार कर लेगा तथा उसको रूस के विरुद्ध सहायता भी देगा। लिटन की मान्यता थी कि इंगलैण्ड और रूस तो दो लोहे के बर्तन हैं और अफगानिस्तान उनके मध्य में एक मिट्टी का छोटा सा पात्र है। अतः जब शेर अली ने अपने दरबार में अंग्रेजी राजदूत रखने से इन्कार कर दिया तो लिटन के आश्चर्य की सीमा न रही। उसने क्वेटा पर अधिकार करके शेर अली को धमकाना चाहा किन्तु इसका कोई फल नहीं निकला। तदुपरान्त समझाने की नीति का आश्रय लिया किन्तु वह भी व्यर्थ। इसके विपरीत वहाँ रूस का प्रभाव दिनों दिन बढ़ रहा था। इस कारण उसने अफगानिस्तान के विरुद्ध युद्ध घोषणा कर दी।

द्वितीय युद्ध के कारण

(i) लिटन की साम्राज्यवादी नीति।

(ii) रूस के राजदूत को शेर अली ने अपने दरबार में रखना स्वीकार कर लिया।

(iii) शेर अली ने लिटन के भेजे हुए राजदूत नैविल चम्बर लेन (Neville Chambarlain) को अपने यहां रखने से इन्कार कर दिया।

(iv) शेर अली द्वारा अफगानिस्तान का विभाजन करने की नीति।

घटनाएँ—१८७८ में लिटन ने शेर अली के विरुद्ध युद्ध घोषणा कर दी और वहाँ ब्रिटिश सेनाएँ भेज दी गई। एक साथ खेबर, कुरम तथा बोलन के दर्रे से सेनाएँ भेजी गईं। शेर अली भयभीत हो गया और तुर्किस्तान की ओर भाग गया। शेर अली की वहां मृत्यु होगई और ब्रिटिश सरकार ने उसके पुत्र याकूबखाँ (Yakub khan) को अमीर मान लिया तथा उससे गंडमक की सन्धि करली।

गंडमक की सन्धि (Treaty of Gandmak, 1879)

(१) अंग्रेजों ने याकूबखां को अफगानिस्तान का अमीर स्वीकार कर लिया।

(२) याकूबखां ने अपने यहां अंग्रेजी रेजीडेन्ट रखना स्वीकार कर लिया।

(३) याकूबखां ने यह भी वचन दिया कि वह अन्य विदेशी शक्तियों के साथ सम्बन्ध अंग्रेजों से पूछकर करेगा।

(४) याकूबखां ने अंग्रेजों को कुर्रम का दर्रा दे दिया।

(५) अंग्रेजों ने अफगानिस्तान की रक्षा का भार अपने कन्धे ले लिया।

इंगलैण्ड का प्रधान मन्त्री डिजरेली इस सन्धि से बहुत प्रसन्न हुआ और उसने कहा कि "इस सन्धि से भारत को एक वैज्ञानिक तथा उपयुक्त सीमा प्राप्त हुई है।"

परन्तु यह सन्धि अस्थायी सिद्ध हुई। मेजर कैवेगरी (Major Cavagnari) ज्योंही काबुल अंग्रेजी राजदूत होकर गये कि सितबर १८७९ में ही उनका अफगानों ने वधकर दिया। इस पर लार्ड राबर्टस(Lord Roberts) सेना लेकर काबुल की ओर बढ़ा और उसने अफगानों की सेना को चरासियाब (Charasiab) पर परास्त कर दिया। याकूब को बन्दी बनाकर भारत भेज दिया गया और उसके स्थान पर शेर अली के भतीजे अब्दुर्रहमान (Abdur Rehman) को अफगानिस्तान का अमीर स्वीकार किया।

अब्दुर्रहमान के अमीर बनते ही शेर अली के दूसरे पुत्र आयूब खां (Ayyub khan) ने अपना अधिकार बताया परन्तु वह परास्त कर दिया गया इसी समय लिटन का स्थान लार्ड रिपन ने ले लिया। उसने अब्दुर्रहमान से सन्धि की बात की और अब्दुर्रहमान ने गंडमक की सन्धि की समस्त बातें स्वीकार करलीं।

परिणाम—अब्दुर्रहमान १९०१ तक शासन करता रहा और मृत्युपर्यन्त अंग्रेजों का मित्र बना रहा। इससे अंग्रेजों को अब रूस का अफगानिस्तान में बढ़ने का भय नहीं रहा। इसके अलावा बोलन(Bolen) का दर्रा तथा बिलोचिस्तान अंग्रेजों के अधिकार में आगया।

लार्ड कर्जन—अब्दुर्रहमान की मृत्यु के उपरान्त हबीबुल्ला (Habib Ullah) अफगानिस्तान का अमीर बना। यद्यपि उसने भी गंडमक की सन्धि की शर्तों को स्वीकार कर लिया था तथापि लार्ड कर्जन (Curzon) को संदेह हुआ कि वह अंग्रेजों का मित्र नहीं है वरन् रूस की ओर अधिक झुका हुआ है। इस कारण कर्जन को देश की उत्तर पश्चिमीय सीमा की सुरक्षा की चिन्ता हुई। अतः उसने उत्तर पश्चिमी सीमा प्रान्त (N. W. P) और बना दिया। और अन्त में

कर्ज़न का संदेह भी दूर हो गया और उसने हबीबुल्ला को आथिक सहायता देना पुनः आरंभ कर दिया ।

अमानुल्ला और तृतीय अफगान युद्ध–हबीबुल्ला संकीर्ण विचारों का नहींथा । इस बीसवीं सदी में उसने पिछड़े अफगानिस्तान को भी बीसवीं सदी से रंगना चाहा । इस पर कट्टर पन्थियों ने उसे १९१९ में मार डाला । उसकी मृत्यु के बाद उसका पुत्र अमानुल्ला (Aman ullah) अफगानिस्तान का अमीर बना । उसने अंग्रेजों के प्रति मित्रता का व्यवहार नहीं किया । १९१९ में ही उसने भारत पर आक्रमण कर दिया और जो भी मार्ग में पड़ा उसको उसने नष्ट कर दिया । मुकाबला करने के लिए अंग्रेजी सेनाएँ गईं और अफगानों को परास्त कर दिया । इस तृतीय अफगान युद्ध की समाप्ति रावल पिन्डी की सन्धि (Treaty of Rawalpindi, 1919) से हुई । इसके उपरान्त १९२१ में दूसरी सन्धि और की गई ।

परिणाम—तीसरे अफगान युद्ध ने अफगानिस्तान को अंग्रेजों के प्रभुत्व में ला दिया । अफगानिस्तान का राजदूत इंगलैण्ड में तथा भारत का राजदूत काबुल रहने लगा । अफगानिस्तान का विदेश-विभाग अंग्रेजों के नियन्त्रण में रहा । दोनों देशो में समानता का व्यवहार होने लगा । ब्रिटिश सरकार ने आर्थिक सहायता देना जारी रखा ।

अफगानिस्तान व अंग्रेजों के यह सम्बन्ध १९४७ तक बने रहे । अब अफगानिस्तान पाकिस्तान की सीमा से मिला हुआ है । परन्तु उन दोनों देशों के सम्बन्ध अच्छे नहीं हैं ।

अध्याय-सार

प्रस्तावना—भारत के उत्तर पश्चिम में बसे होने के कारण अफगानिस्तान का भारत की सुरक्षा की दृष्टि से अधिक महत्व है इसी कारण अंग्रेज इससे अच्छे सम्बन्ध रखना चाहते थे ।

प्रथम अफगान युद्ध—लार्ड ऑक लैण्ड ने कैप्टिन बर्न्स को अफगानिस्तान सुल्तान दोस्त मुहम्मद के पास मित्रता का संवाद ले कर भेजा । किन्तु दोस्त मुहम्मद ने कहा कि मैं मित्रता इस शर्त पर कर सकता हूं–यदि पेशावर मुझे दिला दिया जावे । आक लैंड ने यह शर्त स्वीकार नहीं की और रणजीतसिंह तथा शाहशुजा को सहायता से अफगानिस्तान पर चढाई कर दी। दोस्त मुहम्मद वहाँ से भाग गया और शाहशुजा सुल्तान बन गया ।

परन्तु शाहशुजा के सुल्तान बनाने से अफगान क्रोधित थे । अतः उन्होंने बर्न्स

का कत्ल कर दिया। इस कारण जब पुनः अंग्रेजी सेनाएं गईं तो उनकी विजय भी व्यर्थ रही क्योंकि शाहशुजा को लोगों ने कत्ल कर दिया और दोस्त मुहम्मद ही पुनः अफगानिस्तान का सुल्तान मान लिया गया। अतः यह युद्ध केवल अंग्रेजों के जन व धन के विनाश का ही कारण सिद्ध हुआ।

लार्ड लारेन्स की नीति—लार्ड लारेन्स अफगानिस्तान के उत्तराधिकार के संघर्ष में नहीं बोला और वह शेर अली से स्थायी सन्धि करने को इन्कार हो गया।

लार्ड मेयो—लार्ड मेयो ने भी लारेन्स की नीति का ही अनुसरण किया और उसने शेर अली के पुत्र अब्दुल्ला को अमीर मानने का कोरा मौखिक ही आश्वासन दिया।

लार्ड नार्थब्रुक—शेर अली के अनुग्रह पर भी वह उसके पुत्र को उत्तराधिकारी स्वीकार करने तथा उससे स्थायी सन्धि करने से इन्कार हो गया। अतः दोनों में कुछ वैमनस्य उत्पन्न हो गया।

लार्ड लिटन व दूसरा अफगान युद्ध—लार्ड लिटन साम्राज्यवादी था। उसने आते ही शेरअली से कहलाया कि वह अपने यहां अंग्रेजी राजदूत रखना स्वीकार करले। वह इसके बदले में उसके पुत्र को उसका उत्तराधिकारी स्वीकार कर लेगा तथा उससे स्थायी शान्ति भी कर लेगा। किन्तु जब शेरअली ने राजदूत रखने से इन्कार कर दिया तो लिटन ने उसके विरुद्ध युद्ध घोषणा कर दी।

घटनाएँ—अंग्रेजी सेनाओं के काबुल पहुंचते ही शेरअली तुर्किस्तान की ओर भाग गया तथा वहीं उसकी मृत्यु हो गई। उसके पुत्र याकूबखां ने गंडमक की सन्धि स्वीकार की तथा पिता के राज्य का स्वामी बन गया।

परन्तु यह सन्धि अस्थायी रही। कुछ दिनों के उपरान्त अफगानों ने मेजर कैवेगनरी का बध कर दिया। अतः युद्ध पुनः छिड गया। याकूबखां बन्दी बनाया गया तथा उसके स्थान पर अब्दुलरहमान को पुरानी सन्धि की शर्तें मानने पर वहां का अमीर बना दिया गया।

लार्ड कर्जन—देश की सुरक्षा की दृष्टि से उसने उत्तरी पश्चिमी सीमा प्रान्त और बनाया। हबीबुल्ला से उसने अपना यह सन्देह भी दूर किया कि वह रूस का तो मित्र नहीं है।

अमानुल्ला तथा तीसरा अफगान युद्ध—हबीबुल्ला के वध कर दिए जाने पर अमानुल्ला ने १९१९ में भारत पर आक्रमण किया। परन्तु उसे परास्त कर दिया गया तथा रावलपिंडी की सन्धि से अफगानिस्तान १९४७ तक ब्रिटिश प्रभुत्व में बना रहा।

योग्यता प्रश्न

(१) प्रथम अफगान युद्ध का वर्णन कीजिए तथा ऑकलैन्ड की नीति की समालोचना कीजिए ।

Give an account of the First Afghan War. Criticise Lord Auckland's Afghan policy.

(२) दूसरे अफगान युद्ध के क्या कारण थे ? लिटन अपने उद्देश्य में कहाँ तक सफल रहा ?

What were the causes which led to Second Afghan-War. To what extent was Lord Lytton successful in achieving his aim ?

(३) "यह युद्ध फल रहित नहीं था चाहे इस पर दुर्भाग्य की छाप थी" द्वितीय अफगान युद्ध की समीक्षा इस कथन को ध्यान में रखते हुए कीजिए !

"Nor was the war fruitless though it was marked by misfortune".
Examine this statement taking in view the Second Afghan War.

(४) १९ वीं शताब्दी में अफगानिस्तान के प्रति ब्रिटिश नीति के विभिन्न पहलुओं की तुलना करो तथा प्रत्येक पहलू के उद्देश्य तथा उसकी सफलता का वर्णन करो !

Distinguish the different phases of British policy towards Afghanistan in the 19th century describing theobject and the relative success of each phase.

(५) निम्नलिखित पर टिप्पणियां लिखिए:—

(i) दोस्त मुहम्मद (Dost Mohammed)

(ii) शेर अली (Sher Ali)

(iii) याकूब खाँ (Yakub Khan)

(iv) गंडमक की सन्धि (Treaty of Gandmak)

(v) चरा सियाब की लड़ाई (Battle of Charasiab)

अध्याय उन्नीसवां

ब्रिटश शासन में भारत का वैधानिक विकास

१८५८–१९४७

प्रस्तावना—रानी विक्टोरिया की घोषणा, इण्डियन कौंसिल ऐक्ट १८६१, इण्डियन कौंसिल ऐक्ट १८९२, लोर्ल–मि टो सुधार, १९०९, माण्ट–फोर्ड सुधार १९१९, १९३५ का सुधार कानून, क्रिप्स प्रस्ताव, कैबिनेट मिशन, १९४७ का भारत–स्वतन्त्रता कानून

प्रस्तावना—१८५७ के गदर का सबसे प्रमुख प्रभाव भारत पर यह पड़ा कि कम्पनी की सत्ता समाप्त हो गई तथा उसके स्थान पर उसने इंगलैण्ड की सरकार की सत्ता कायम हो गई। इंगलैण्ड की सरकार ने भारत की सत्ता शक्ति से प्राप्त की थी। उसने विद्रोह करने वाले भारतवासियों का दमन करके राज्य स्थापित किया था। अतः हम स्वयं विचार कर सकते हैं कि उनका शासन यहां किस प्रकार का होना चाहिए और उसमें सुधार का तो प्रश्न ही नहीं होना चाहिये। किन्तु फिर भी समय समय पर परिस्थितियों से बाध्य होकर उन्हें कुछ यहाँ शासन–सुधार करने पड़े। हम इन शासन–सुधारों को दो भागों में विभक्त कर सकते हैं–प्रथम १८५८ से १९१९ इस काल में ब्रिटिश सरकार की यही नीति रही कि भारतवासियों को शासन में हिस्सा नहीं देना चाहिए और जब भारतवासियों ने अपने अधिकार प्राप्ति के लिए व्यग्रता प्रदर्शित की तो उन्हें थोड़े नाम मात्र के अधिकार दे दिए गये। दूसरा काल है १९१९ से १९३५ का। इस काल में ब्रिटिश सरकार ने भारतवासियों को स्वायत्त–शासन (Local Self government) की ओर अग्रसर किया, क्योंकि १९१९ के सुधार कानून (माण्ट फोर्ड सुधार) से यह उद्देश्य व्यक्त कर दिया गया था। अतः इन विभिन्न सुधार कानूनों से, जिनका उल्लेख इस अध्याय में किया जावेगा, हम देखेंगे कि अंग्रेजों ने किस प्रकार धीरे–धीरे भारत में वैधानिक विकास किया।

रानी विक्टोरिया की घोषणा—जब कम्पनी से ब्रिटिश सरकार ने सत्ता हथियाली तो इंगलैण्ड की तत्कालीन रानी विक्टोरिया भारत की भी रानी बनी। उसने यह उत्तरदायित्व संभालते ही १८५८ में एक घोषणा की और उस घोषणा को भारत के गर्वनर जनरल लार्ड कैनिंग ने १ नवम्बर १९५८ को इलाहाबाद में दरबार पद में करके सुनाया। घोषणा में रानी ने बताया था कि आज से भारतवासी हमारे भाई हैं और उनके हित हमारा हित होगा, उनका भला विचारते समय हम जाति, लिंग व सम्प्रदाय का विचार नहीं करेंगे। इस घोषणा में विद्रोह में भाग लेने वालों

को क्षमा करने का भी संकेत था। परन्तु यह घोषणा केवल कागजी घोषणा रही और इसको सच्चे अर्थ में क्रियान्वित नहीं किया गया।

घोषणा का शासन पर प्रभाव—वैधानिक रूप से यह घोषणा महत्वपूर्ण है। वैसे ब्रिटिश सरकार ने भारत के शासन पर नियन्त्रण तो पहले ही धीरे-धीरे स्थापित कर लिया था, परन्तु अब पूर्ण रूप से वह उनके हाथ में चला गया। अतः अब ब्रिटिश सरकार ने कम्पनी के बोर्ड आफ कन्ट्रोल तथा संचालक समिति—दोनों को ही समाप्त कर दिया तथा उसके स्थान पर १५ सदस्यों की एक इण्डिया कौंसिल स्थापित कर दी गई और वह भारत मन्त्री (Secretary for India) के नेतृत्व में काम करने लगी।

इण्डियन कौंसिल एक्ट १८६१—१८५८ के वैधानिक परिवर्तन में सरकार को कुछ कमियां नजर आरही थीं। अतः उनको दूर करने के लिए १८६१ में एक कानून पास किया गया जिससे कि निम्नलिखित परिवर्तन हुए:—

(i) वायसराय की कार्यकारिणी परिषद में एक पांचवां सदस्य और बढ़ाया गया और वह कानून वेत्ता (Jurist) होता था।

(ii) इस कानून के अन्तर्गत वायसराय को यह अधिकार दिया गया कि वह अपनी कार्यकारिणी परिषद का प्रधान मनोनीत कर सकता है जो उसकी अनुपस्थिति में कौंसिल का नेतृत्व करने का अधिकारी था।

(iii) वायसराय को नवीन प्रान्त बनाने व उनकी सीमा निर्धारण का भी अधिकार दिया गया।

(iv) गवर्नर जनरल को कम से कम ६ और अधिक से अधिक १० सदस्य अपनी कार्यकारिणी परिषद में कानून बनाने के लिए बढ़ाने का अधिकार दिया। इनमें आधे गैर सरकारी पदाधिकारी अवश्य होते थे।

(v) बम्बई तथा मद्रास की सरकारों को अपनी कौंसिल में कानून बनाने के लिए एक महाधिवक्ता तथा कम से कम चार व अधिक से अधिक आठ सदस्य रखने का अधिकार दिया गया।

इसका महत्व—इस कानून के पास होने से केन्द्रीय धारा सभा की नींव पड़ी तथा कानून बनाने में गैर सरकारी सदस्यों का भी हाथ रहने लगा। इस प्रकार इस कानून से भारतवासियों को भी शासन में कुछ भाग लेने का अधिकार प्राप्त हुआ।

इण्डियन कौंसिल ऐक्ट १८९२—सन् १८८५ में कांग्रेस की स्थापना हो गई थी और वह शासन में भारतीयों को अधिकाधिक अधिकार दिलाने की मांग कर रही थी। अतः सरकार ने यह ऐक्ट पास किया। इसकी धाराएं निम्नलिखित थीं:—

(१) केन्द्रीय धारा सभा के मनोनीत सदस्यों की संख्या कम से कम दस और अधिक से अधिक सोलह कर दी गई।

(२) प्रान्तों की कौंसिलों की सदस्य संख्या भी बढ़ा दी गई।

(३) ये मनोनीत सदस्य अब बजट पर प्रश्न कर सकते थे।

(४) मनोनीत सदस्यों में से कुछ का चुनाव सार्वजनिक संस्थाओं द्वारा होने लगा।

समालोचना—परन्तु इस कानून से भारतवासियों को सन्तोष नहीं हुआ क्योंकि कौंसिल में भारतीयों को पर्याप्त प्रतिनिधित्व प्राप्त नहीं हुआ। परन्तु यह स्वीकार अवश्य करना पड़ेगा कि इससे अप्रत्यक्ष निर्वाचन तथा वैधानिक विकास की नींव पड़ी।

मोर्ले मिण्टो सुधार १९०९—यह सुधार कानून भी १८९२ के कानून की भांति राष्ट्रीय आन्दोलन के फल स्वरूप ही पास किया गया था। इस समय देश की राजनीतिक अवस्था गंभीर थी। कांग्रेस में गर्म दल का निर्माण हो चुका था। अतः ब्रिटिश सरकार ने भारतवासियों को प्रसन्न करने के लिए यह कानून बनाया था। इसकी धाराएँ निम्न प्रकार से हैंः—

(१) केन्द्रीय धारा सभा की सदस्य संख्या ६० कर दी गई। इनमें ३३ मनोनीत तथा २७ निर्वाचित होते थे।

(२) प्रान्तीय धारा सभाओं के सदस्यों की संख्या भी बढ़ा दी गई तथा उन्हें कुछ अधिकार भी और दिए गये।

(३) प्रान्तीय धारा सभाओं में गैर सरकारी सदस्यों का बहुमत था।

(४) केन्द्रीय धारा सभा के सदस्यों को पूरक प्रश्न पूछने का अधिकार दिया गया। वे बजट पर बहस कर सकते थे किन्तु मतदान नहीं कर सकते थे।

समालोचना—यह सही है कि इस कानून से भारतवासियों को देश के कानून बनाने में अधिक प्रतिनिधित्व मिला। अब वे बजट पर बहस भी कर सकते थे। किन्तु फिर भी भारतवासी इससे सन्तुष्ट नहीं हुए। प्रथम अभी देश की जन संख्या के अनुपात से उन्हें कम प्रतिनिधित्व प्राप्त हुआ, दूसरे निर्वाचन अप्रत्यक्ष प्रणाली से होता था, तीसरे इससे साम्प्रदायिक निर्वाचन की नींव और पड़ गई जो कि कालान्तर में देश के लिए महान् घातक सिद्ध हुई।

माण्ट फोर्ड सुधार १९१९

१९०९ के सुधार कानून से भारतवासी सन्तुष्ट नहीं हुए थे। १९१४ में प्रथम महायुद्ध शुरू होगया और प्रारम्भ में भारतवासियों ने हृदय से सरकार का साथ नहीं

दिया। अतः १९१७ में भारत मन्त्री माण्टेग्यू (Montague) ने घोषणा कर सरकार की नीति का स्पष्टीकरण किया और तत्पश्चात् युद्ध समाप्त होने पर भारत की राष्ट्रीय नव जागृति को शान्त करने के लिए यह कानून पास किया। इस कानून की धाराएँ निम्नलिखित थीं।

केन्द्रीय सरकार के सम्बन्ध में

(१) गवर्नर जनरल की कार्यकारिणी के सदस्यों की संख्या नियत करना अब ब्रिटिश क्राउन के अधिकार में चला गया। ब्रिटिश क्राउन ने गवर्नर जनरल के अतिरिक्त सात सदस्य नियत किये।

(२) भारत विधान मण्डल दो सदनों में विभक्त किया गया। (i) राज्य-परिषद (Council of States) और (ii) विधान-सभा (Legislative Assembly) राज्य परिषद् की सदस्य संख्या ६० रखी गई तथा ४० विधान सभा की

(३) राज्य-परिषद् का कार्य-काल ५ वर्ष तथा विधान सभा का ३ वर्ष रखा गया।

(४) गवर्नर जनरल को दोनों सदनों को बुलाने व अधिवेशन को स्थगित करने का अधिकार प्राप्त हुआ।

प्रान्तीय सरकार के सम्बन्ध

(१) प्रान्तीय शासन को दो भागों में विभक्त कर दिया गया—(१) सुरक्षित (Reserved) व (२) हस्तान्तरित। सुरक्षित विभाग में महत्वपूर्ण विषय थे और ये अंग्रेजी मन्त्रियों के आधीन रहे। हस्तान्तरित विभाग में महत्वपूर्ण विषय नहीं रखे गये और वे भारतीय मन्त्रियों को सौंपे गए।

(२) प्रान्तीय विधान-सभा के सदस्यों की संख्या बढ़ादी गई तथा निर्वाचन क्षेत्र भी विस्तीर्ण कर दिया गया।

(३) प्रान्तीय विधान सभा की अवधि तीन वर्ष की रखी गई। किन्तु गवर्नर को उसे समय से पूर्व भी भंग करने का अधिकार था।

(४) गवर्नर विधान-सभा का सदस्य नहीं रहा किन्तु वह उसमें भाषण अवश्य दे सकता था।

(५) प्रान्तीय विधान सभा को प्रान्तीय विषयों पर कानून बनाने का अधिकार था। किन्तु कुछ विषयों में वे बिना गवर्नर जनरल की अनुमति के कानून नहीं बना सकते थे।

गृह सरकार के सम्बन्ध में—गृह सरकार (Home Government)

से हमारा तात्पर्य भारत मन्त्री तथा उसकी कौंसिल से है। उसके विषय में निम्न-लिखित सुधार किए गए—

(i) इंडियन कौंसिल के सदस्यों की संख्या कम से कम ८ और अधिक से अधिक १२ निश्चित की गई। सदस्यों का कार्य-काल ५ वर्ष निर्धारित किया गया।

(ii) भारत मन्त्री जो अब तक अपना वेतन भारतीय कोष से लेता था वह इंगलैण्ड के कोष से लेने लगा।

(iii) १६१६ के सुधार कानून के उपरान्त भारत-मन्त्री अब इंगलैण्ड में भारत की ओर से हाई कमिश्नर की हैसीयत से कार्य करने लगा।

(iv) भारत मन्त्री का नियन्त्रण अब कम हो गया।

समालोचना:--इस कानून के अन्तर्गत भारत में उत्तरदायित्वपूर्ण शासन की ओर ब्रिटिश सरकार कुछ बढ़ी। किन्तु भारतवासी सन्तुष्ट नहीं हुए। इस कानून के अन्तर्गत प्रान्तों में द्वैत-शासन (Dyarchy) प्रणाली स्थापित हुई, जिसमें भारतीय निर्वाचित मन्त्रियों का कुछ महत्व नहीं था। प्रथम उन्हें विभाग कम महत्व के दिए जाते थे और दूसरे उन्हें अधिकार भी कुछ प्राप्त नहीं थे। वित्त के अभाव में वे जन-साधारण के हित के लिए कुछ नहीं कर सकते थे। इसके अलावा मन्त्रियों तथा अंग्रेज कौंसिलरों में सामूहिक उत्तरदायित्व तथा टीम स्पिरिट का अभाव था। गवर्नर जनरल तथा गर्वनर विशेषाधिकारों से युक्त थे।

१६३५ का सुधार कानून

जैसा कि अभी बताया गया है १६१६ के सुधार कानून से भारतवासी सन्तुष्ट नहीं हुए थे। देश के समस्त महान नेताओं ने इसका बहिष्कार किया। इसलिए १६२७ में ब्रिटिश सरकार ने साइमन कमीशन (Simon Commission) की नियुक्ति की। इसके उपरान्त तीन गोल मेज सभाओं (Round Table Conference) का आयोजन किया गया। साइमन कमीशन की रिपोर्ट के आधार पर ब्रिटिश सरकार ने पुनः १६३५ का एक सुधार कानून पास किया और उसकी धाराएँ निम्नलिखित थीं—

केन्द्रीय सरकार के सम्बन्ध में

(१) इस सुधार कानून के अन्तर्गत केन्द्र में ब्रिटिश प्रान्त तथा देशी रियासतों को मिलाकर एक संघ राज्य (Federal Government) की स्थापना की व्यवस्था की गई।

(२) केन्द्र में प्रान्तों की भांति द्वैत-शासन प्रणाली की योजना बनाई गई।

(३) गवर्नर जनरल संघीय कार्यकारिणी का प्रधान मान लिया गया। वह

समस्त विषयों को सम्राट के प्रतिनिधि रूप में संचालित करता था।

(४) गवर्नर जनरल को विशेषाधिकार देकर अंग्रेज, मुसलमान तथा देशी रियासतों के हित को संरक्षण दिया गया।

(५) इससे केन्द्र में दो सदनों की स्थापना की व्यवस्था की गई। प्रथम सदन का नाम था लोकसभा (House of Assembly) और दूसरे का नाम राज्य परिषद् (Council of States) था।

(६) एक संघ न्यायालय (Federel Court) स्थापित किया गया।

प्रान्तीय सरकार के सम्बन्ध में

(१) प्रान्तों में से द्वैत शासन (Dyarchy) समाप्त कर प्रान्तीय स्वायत्तता (Provincial Autonamy) प्रदान की गई।

(२) प्रान्तों में अब सुरक्षित तथा हस्तांतरित विभाग समाप्त हो गये और प्रान्तों के समस्त विषय भारतीय निर्वाचित मन्त्रियों को प्राप्त हो गए।

(३) गवर्नर को अपने मन्त्रियों की सलाह से काम करना पड़ता था किन्तु वह प्रत्येक विषय में उनकी मन्त्रणा मानने को बाध्य नहीं था।

(४) १९३५ के कानून की ९३वीं धारा के अन्तर्गत वह प्रान्तीय संविधान को समाप्त कर अपना शासन लागू कर सकता था।

(५) इस कानून से प्रान्तों में १२ प्रतिशत लोगों को मताधिकार दिया गया।

गृह सरकार के सम्बन्ध में

(१) भारतीय परिषद समाप्त करदी गई और भारत-मन्त्री को परामर्श देने के लिए अब परामर्शदाता रखे जाने लगे जिनकी संख्या कम से कम तीन तथा अधिक से अधिक ६ रखी गई। इन परामर्शदाताओं का कार्यकाल ५ वर्ष रखा गया।

(२) १९३५ के कानून से इण्डिया आफिस का व्यय इंगलैण्ड की सरकार वहन करने लगी और भारत सरकार उसे कुछ आर्थिक सहायता देने लगी।

(३) १९३५ के कानून से भारत मन्त्री का भारत में नियन्त्रण कम हो गया।

समालोचना—निःसंदेह यह सुधार कानून गत सुधार कानूनों से अच्छा था। परन्तु फिर भी इसमें बहुत सी बुराइयां विद्यमान थी। ब्रिटिश सरकार ने जब यह देख लिया था कि प्रान्तों में द्वैत शासन असफल रह चुका है तब भी उसे केन्द्र में लागू किया। गवर्नर जनरल के विशेषाधिकार दे कर उसे सर्वाधिक शक्तिशाली बना दिया। संघ-शासन की व्यवस्था की गई जब कि उसके अनुकूल वातावरण था ही

स्वतंत्रता के पक्ष में थे। उन्होंने १९४६ में भारत में कैबिनेट मिशन भेजा और ४ जुलाई १९४७ को एटली ने भारत-स्वतंत्रता बिल पार्लियामेंट में रखा तथा वह १५ जुलाई को पारित हो गया। यह स्वतंत्रता कानून इंगलैण्ड की सरकार का भारत के सम्बन्ध में अन्तिम कानून था। इसकी धाराएं निम्नलिखित थी—

(१) भारत को पाकिस्तान व भारत संघ दो भागों में विभक्त कर दिया गया।

(२) दोनों उपनिवेशों की धारा सभाएं स्वतन्त्र रूप से कानून बनाने के लिए स्वतन्त्र रहेंगी।

(३) १५ अगस्त १९४७ के उपरान्त दोनों उपनिवेशों पर इंगलैण्ड का नियन्त्रण नहीं रहेगा।

(४) जब तक दोनों उपनिवेश नया संविधान न बनालें, वे कुछ परिवर्तनों के साथ १९३५ के सुधार कानून से ही अपना शासन चलायेंगे!

(५) देशी राज्यों पर से ब्रिटिश नियन्त्रण समाप्त कर दिया गया। किन्तु यह उनकी इच्छा पर छोड़ दिया गया कि वे चाहे स्वतंत्र रहें वा चाहे जिस संघ में विलीन हों।

(६) ब्रिटिश क्राउन को जो विशेषाधिकार प्राप्त थे, वे अब गवर्नर जनरल को सौंप दिए गए।

(७) इंगलैंड में भारत मन्त्री का कार्यालय समाप्त कर दिया गया।

महत्व—१९४७ का भारत-स्वतन्त्रता अधिनियम भारत व इंगलैण्ड के इतिहास में अति महत्वपूर्ण है। इससे भारत दो सदी की गुलामी के उपरान्त अंग्रेजी प्रभुता से स्वतन्त्र हुआ। इसके उपरान्त अंग्रेजों की प्रभुता भारत से पूर्णतया हट गईं और भारतवासी स्वयं अपने राष्ट्र के निर्माता बन गए।

इस प्रकार हम देखते हैं कि ब्रिटिश शासन के इन ९० वर्षों में भारतीय प्रशासन में पर्याप्त रूप से विकास हुआ। यद्यपि ब्रिटिश सरकार भारत को परतन्त्रता की बेडियों से जकडे रहने के लिए भारतवासियों को कुछ भी अधिकार नहीं देना चाहती थी। किन्तु परिस्थितियों से बाध्य हो कर उन्हें शनैः शनैः भारतवासियों को अधिकार देने पड़े। यदि १९१९ के सुधार कानून से ब्रिटिश सरकार द्वारा भारत में स्थानीय स्व-शासन को प्रोत्साहन मिला तो १९३५ के सुधार कानून से प्रान्तों में उत्तरदायित्वपूर्ण राज्य की स्थापना हुई। इन विभिन्न समय के सुधार कानूनों का भारत के वर्तमान संविधान पर भी बहुत प्रभाव पडा है। १९३५ के सुधार कानून का तो वर्तमान भारतीय संविधान में प्रभाव स्पष्ट झलकता है। इससे यह विदित होता है ब्रिटिश शासन में जो वैधानिक विकास हुआ उसने वर्तमान भारतीय संविधान के विकास का मार्ग स्पष्ट कर दिया।

अध्याय सार

प्रस्तावना—१८५८ के उपरांत इंगलैण्ड की सरकार भारत पर अनियंत्रित रूप से शासन करना चाहती थी। परन्तु फिर भी परिस्थितियों से बाध्य होकर उसे समय समय पर यहां कुछ शासन सुधार करने पड़े।

रानी विक्टोरिया की घोषणा—गदर के शान्त होते ही इंगलैण्ड की रानी विक्टोरिया भारत की रानी बनी और उसने घोषणा की कि भारतवासियों के भले में हमारा भला होगा। इसके बाद ईस्ट इंडिया कम्पनी के बोर्ड आफ कन्ट्रोल तथा संचालक समिति को भंग कर वहां भारत-मन्त्री का कार्यालय 'इण्डिया आफिस' स्थापित किया गया।

इण्डियन कौंसिल ऐक्ट १८६१—इस कानून से वायसराय की कार्यकारिणी में एक कानून वेत्ता सदस्य रखा गया तथा वायसराय ने अपनी कार्यकारिणी को प्रधान चुनने का अधिकार दिया। प्रान्तों की कौंसिलों में एक महाधिवक्ता रखने की व्यवस्था की गई तथा उनकी सदस्य संख्या निर्धारित करदी गई।

इण्डियन कौंसिल ऐक्ट १८९२—कांग्रेस की स्थापना से भारतीयों में ब्रिटिश सरकार के विरुद्ध जो द्वेष व असन्तोष बढ़ रहा था उसे शान्त करने के लिए यह कानून पास किया गया था। इससे केन्द्रीय धारा सभा में मनोनीत सदस्यों की संख्या अधिक से अधिक सोलह करदी गई तथा उन्हें बजट पर प्रश्न करने का अधिकार भी दिया गया।

मोर्लेमिण्टो सुधार कानून—कर्ज़न के शासन काल में भारत की राजनीतिक अवस्था बहुत गंभीर हो गई थी। अतः भारतवासियों को सन्तुष्ट करने के लिए यह कानून पास किया गया था। इस कानून के अन्तर्गत केन्द्रीय धारा सभा में सदस्य संख्या ६० कर दी गई जिनमें ३३ मनोनीत तथा २७ निर्वाचित होते थे। प्रान्तीय धारा सभाओं की सदस्य संख्या में भी वृद्धि की गई। वहां गैर सरकारी सदस्यों की संख्या अधिक होती थी।

माण्ट फोर्ड सुधार १९१९—१९०९ के सुधार कानून से भारतीय सन्तुष्ट नहीं हुए। इसके विपरीत प्रथम महायुद्ध के समय यह असन्तोष और भी बढ गया। अतः ब्रिटिश सरकार ने १९१९ में भारत मन्त्री मोण्टेग्यू के नेतृत्व में यह सुधार कानून पास किया जिसके अन्तर्गत प्रान्तो में द्वैत शासन की स्थापना हुई तथा केन्द्रीय धारा सभा में राज्य-परिषद् की सदस्य संख्या ६० रखी गई तथा विधान सभा की १४४। राज्य परिषद् का कार्य-काल ५ वर्ष तथा विधान सभा का ३ वर्ष रखा गया। इस के कानून उपरान्त भारत-मन्त्री अब इंगलैण्ड के कोष से वेतन पाने लगा।

१६३५ का सुधार कानून—साइमन कमीशन की रिपोर्ट के आधार पर यह कानून पास किया गया। इसके अन्तर्गत देशी रियासतों को मिलाकर केन्द्र में एक संघ सरकार की स्थापना की व्यवस्था की तथा प्रान्तों में पूर्ण उत्तरदायित्वपूर्ण राज्य की स्थापना की गई। इस कानून के अन्तर्गत भारत–मन्त्री का नियन्त्रण भारत के प्रशासन में कम हो गया। किन्तु यह सुधार कानून केवल प्रान्तों में ही कार्यान्वित किया गया।

क्रिप्स योजना—सन् १६४२ में स्ट्रैफोर्ड क्रिप्स भारत आया और उसने एक योजना देश के नेताओं के समक्ष रखी। उस योजना में व्यक्त किया गया था कि युद्ध के उपरान्त भारतवासी अपना संविधान स्वयं बनावें तथा युद्ध की समाप्ति तक के सुरक्षा, वित्त तथा विदेश–विभाग को छोड़कर अपनी अन्तरिम सरकार बनालें। इस योजना में यह भी स्पष्ट किया गया था कि यह प्रान्तों की इच्छा पर छोड़ दिया जावे कि वे केन्द्रीय सरकार में मिले या नहीं।

भारत स्वतंत्रता कानून १६४७—यह कानून इंगलैण्ड के प्रधान मन्त्री श्री एटली के सहयोग से पास हुआ। इससे भारत सदियों के बाद आजाद हो गया। परन्तु वह पाकिस्तान और भारत संघ में विभाजित हो गया।

योग्यता–प्रश्न

(१) भारतीय प्रशासन में १८६१ के इंडियन कौंसिल कानून से क्या परिवर्तन हुए तथा उनका क्या प्रभाव पडा ?

Describe the changes that the India Councils Act of 1861 introduced or made possible in the Indian administration and discuss fully their effects.

(२) १८६२ के कौंसिल ऐक्ट की विवेचना कीजिए और प्रकट कीजिए कि यह कानून १८६१ के कानून का एक ही विस्तृत रूप था।

Discuss the Indian Council Act of 1892 and show that it was an advance on the Act of 1861.

(३) भारत की बाद में होने वाली राजनीतिक घटनाओं का ध्यान रखते हुए १६०६ के मोर्ले–मिण्टो–सुधार कानून का महत्व बताइये।

Analyse the importance of Morley Minto Roform in terms of the later political developments in India.

(४) १६१६ के भारतीय शासन एक्ट का समालोचनात्मक वर्णन कीजिए।

Give a critical estimate of Government Act of 1919.

(५) १६३५ के सुधार कानून से होने वाले परिवर्तन बताइये।

Name the changes that were to be introduced by the government Act of 1935.

(६) भारतीय स्वतन्त्रता अधिनियम १६४७ की मुख्य धाराओं का वर्णन कीजिए।

Give the important features of the Indian Independence Act of 1947.

अध्याय बीसवाँ

ब्रिटिश शासन में भारत की सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक तथा शैक्षणिक दशा

प्रस्तावना—सामाजिक दशा (समाज की बुराइयां–स्त्रियों का समाज में स्थान, दलित वर्ग की अवस्था) सामाजिक अवस्था में सुधार, आर्थिक, दशा–(गृह उद्योग धन्धों का ह्रास, औद्योगिक विकास की मन्द गति), धार्मिक दशा (हिन्दू धर्म मुसलमान धर्म तथा ईसाई धर्म) शैक्षणिक दशा–(अंग्रेजों के आगमन से पूर्व शिक्षा की अवस्था तथा तदुपरान्त उसका विकास) निष्कर्ष ।

प्रस्तावना—ब्रिटिश शासन से पूर्व भारत मुगल शासकों के आधीन था । मुग़ल शासकों में से कुछ तो अवश्य ही सुधारवादी तथा प्रगतिशील विचारों के थे । उनके शासन काल में देश ने विभिन्न क्षेत्रों में प्रगति भी की । किन्तु अधिकांश मुगल शासकों का दृष्टिकोण संकुचित था । वे भारत के प्रत्येक क्षेत्र में मुस्लिम-सभ्यता का प्रभाव देखना चाहते थे ।इसी कारण भारत की सामाजिक,धार्मिक तथा शैक्षणिक अवस्थाअति रुग्ण थी ।ब्रिटिश-शासन में भारत की अवस्था इस प्रकार की नहीं रही । यह सही है कि वे भी भारत को अपनी सभ्यता में देखना चाहते थे । परन्तु उन्होंने अपनी सभ्यता के प्रचारार्थ मुगलों की संकुचित मनोवृत्ति की साधन नहीं अपनाये । इसलिए उनके शासन काल में भारत अपनी सामाजिक बुराइयों से मुक्त हो सका । शिक्षा का विकास यद्यपि भारत के अनुकूल नहीं हुआ तथापि उसका भारत में विकास अच्छा हुआ जिसमे कि राष्ट्रीय भावना के विकास में पर्याप्त सहयोग प्राप्त हुआ । इसी प्रकार आर्थिक क्षेत्र में यद्यपि ब्रिटिश-शासक भारत को विकसित नहीं देखना चाहते थे किन्तु फिर भी परिस्थितियों से बाध्य होकर उन्हें ऐसा करना पड़ा । अतः हम देखते हैं कि इस दासता के समय में भी भारत में नव जागरण हुआ जिसने कि स्वतन्त्र भारत को सर्वोन्मुखी विकास के समर्थ बना दिया ।

सामाजिक अवस्था—जब अंग्रेज भारत में आये तब हमारा समाज हिन्दू तथा मुसलमान दो वर्गों से बटा हुआ था । यद्यपि दोनों के सहस्त्रों वर्षों के सहवास से एक दूसरे की सभ्यता में समन्वय अवश्य हुआ तथापि दोनों ने अपना अपना अस्तित्व अलग अलग ही बनाया रखा हिन्दू समाज के विकास को तो मुस्लिम शासकों ने कुंठित किया था और मुस्लिम समाज संकुचित व अशिक्षित होने के कारण अधिक विकसित न होने पाया था । अत: जब अंग्रेज भारत में आये तो यहां के दोनों महान् सम्प्रदायों में ही अनेक बुराइयों का समावेश था तथा वे विकास की ओर उन्मुख नहीं थे ।

सामाजिक बुराइयां

हिन्दू समाज में—

(१) हिन्दू समाज में उस समय सती-प्रथा विद्यमान थी और इसका सर्वाधिक प्रकोप बंगाल में था। (२) बाल-विवाह की प्रथा भी उस समय जोरों पर प्रचलित थी। इस प्रथा का प्रमुख कारण मुसलमानों द्वारा हिन्दू-युवतियों के साथ जबरन शादी करना था। हिन्दू लोग अपनी कन्याओं के सतीत्व की रक्षा के लिए उनका बचपन में ही विवाह कर दिया करते थे। (३) विधवा-विवाह प्रचलित नहीं था। बाल विवाह का एक दुष्परिणाम विधवाओं की संख्या में होता भी होता है। उस समय हिन्दू समाज में विधवा स्त्रियों की संख्या बहुत बढ़ी चढ़ी थी और उनका समाज में हीन स्थान था। यदि उनके उत्थान के लिए कोई विधवा-विवाह को प्रोत्साहन देता तो वह समाज में हेय समझा जाता था। (४) जाति व्यवस्था उस समय कठोर रूप में मानी जाती थी। अन्तर्जातीय विवाह सम्भव नहीं थे। केवल मुसलमान लोग जबरन हिन्दू औरतों से विवाह करते या उन्हें अपने यहां रख लिया करते थे। अतः जाति व्यवस्था भी राष्ट्रीयता के विकास में बाधा बनी हुई थी। (६) राजपूत वर्ग में कन्या-वध की प्रथा भी प्रचलित थी। यदि किसी राजपूत के सर्वप्रथम कन्या का जन्म होता तो वह जन्म लेते ही यमलोक पहुंचा दी जाती थी। (७) अस्पृश्यता भी उस समय भारत में एक कलंक स्वरूप बनी हुई थी। सवर्ण हिन्दू शूद्र लोग से हिलना, मिलना घृणास्पद समझते थे। (८) शिक्षा के अभाव में हिन्दू समाज में अन्ध-विश्वास भी घर किए हुए था। वे अन्ध विश्वास के वशीभूत होकर कभी कभी हास्यप्रद तथा अप्रगतिशील कार्य भी कर बैठते थे।

मुस्लिम समाज में—(१) बहु-विवाह की प्रथा मुसलमानों में जोरों पर प्रचलित थी। चार विवाह करना तो इनके जायज समझा गया है। किन्तु मुस्लिम शासकों व सूबेदारों के सहस्रों पत्नियां होती थीं। इससे स्त्रियों की दशा अति दयनीय थी। (२) ऊंच-नीच की भावना आरम्भ में तो मुसलमानों में नहीं थी। किन्तु जब वे भारत में आकर बस गए तो उनमें भी ऊंच-नीच की भावना का प्राबल्य होगया। (३) मानसिक जड़ता के कारण भी मुस्लिम समाज अधिक विकसित नहीं हो पाया था। (४) बाल-विवाह प्रथा इस समाज में भी प्रचुरता से उस समय व्याप्त थी। (५) मद्य-पान की कुप्रथा भी इन लोगों में पाई जाती है।

स्त्रियों का समाज में स्थान—स्त्रियों का समाज में स्थान आदरणीय नहीं था। उन्हें वैदिक काल की भांति अर्द्धाङ्गिनी नहीं समझा जाता था। उच्च वर्ग में

जहां बहु विवाह की प्रथा प्रचलित थी वहां उनका कोई स्थान नहीं था। वे केवल उनके मनोविनोद के उपकरण रूप में समझी जाती थी। अन्य वर्गों में भी उन्हें एक दासी स्वरूप माना जाता था। उन्हें पर्दा-प्रथा की ओट में घर की चार दीवारियों में रखा जाता था। पर्दा-प्रथा हिन्दू व मुसलमान दोनों सम्प्रदायों में विद्यमान थी। सामाजिक कार्यों में भाग लेने की उन्हें अनुमति नहीं थी। उनकी यह दशा शिक्षा के अभाव तथा विधवा-विवाह के निषेध होने से और भी विकराल थी। मुस्लिम समाज में स्त्रियां फिर भी तलाक देकर अपने पति के अत्याचारों से छुटकारा पा सकती थी। विधवा विवाह भी उनके यहाँ अधार्मिक नहीं समझा जाता था। अनमेल-विवाह तथा दहेज प्रथा से स्त्रियो की दशा में सुधार संभव नहीं था। इस प्रकार हम देखते हैं कि अंग्रेजों के भारत आगमन के समय यहां की स्त्री समाज की अवस्था अच्छी नहीं थी।

दलित वर्ग की अवस्था—मुस्लिम समाज का संगठन प्रजातन्त्रात्मक प्रणाली पर आधारित है। उसमें बन्धुत्व की भावना प्रधान है। इस कारण उसमें दलित वर्ग की समस्या नहीं उठती। किन्तु जब मुसलमान भारत में रहने लगे तो उनमें भी निम्न वर्ग बन गये और उच्च मुसलमान निम्न श्रेणी का कार्य करने वाले मुसलमानों से सम्पर्क रखना उचित नहीं समझते। परन्तु यह समस्या मुसलमानों में भयंकर रूप में नहीं है। उधर हिन्दू समाज में यह कलंक बना हुआ है उच्च वर्ग के हिन्दू उनको हेय समझते हैं। वे उनसे बात करना तो दूर रहा उनकी अपने पर छाया पड़ने देना भी अपवित्र समझते हैं। इसी कारण शूद्र लोगों की दशा अंग्रेजों के आने के समय अत्यन्त शोचनीय थी। वे सवर्ण हिन्दुओं की दया पर जीवन निर्वाह करते थे। शिक्षण संस्थाओं में उन्हें स्थान नहीं मिलता था। राजकीय सेवा के द्वार उनके लिए बन्द थे। जीवन-स्तर उनका अति गिरा हुआ था।

सामाजिक सुधार—परन्तु भारत की यह सामाजिक दशा ब्रिटिश शासन में नहीं रही। लार्ड विलियम् बेंटिक एक सुधारवादी व्यक्ति था तथा उसे राजा राममोहन राय का सहयोग प्राप्त था। उसने सती-प्रथा, बाल-विवाह तथा कन्या वध को अवैध घोषित कर स्त्री समाज में पर्याप्त सुधार किया। कालानन्तर में शारदा कानून से भी स्त्रियों की दशा में सुधार हुआ। स्वामी दयानन्द सरस्वती ने भी बाल विवाह का विरोध तथा विधवा-विवाह का समर्थन किया। पर्दा-प्रथा का घोर विरोध महात्मा गांधी ने किया। इन सुधारों के अतिरिक्त स्त्री-शिक्षा ने स्त्रियों की दशा में पर्याप्त सुधार किया। शिक्षा के विस्तार से उन्होंने अपनी हीन अवस्था को पहिचाना तथा इससे वे स्वावलंबी भी बन गई। इस शिक्षा से उसमें नव-चेतना का जागरण हुआ और वे अपने अधिकारों को संघर्ष करने लगी।

कहने का तात्पर्य यह है कि ब्रिटिश शासन में भारतीय नारियां त्रिवेणी की तीन धाराओं में विभक्त हो गईं। प्रथम पाश्चात्य सभ्यता से प्रभावित हैं और जो अपने अधिकारों की प्राप्ति के लिए उग्र विचार रखती हैं। दूसरी श्रेणी साधारण शिक्षित स्त्रियों की है। वे अपने पति की छत्र-छाया में रहकर अपने उचित अधिकारों की मांग करने लगी हैं। तीसरी श्रेणी अशिक्षित स्त्रियों की है जो अपनी प्राचीन व तत्कालीन अवस्था से सन्तुष्ट थीं तथा अपने पति की सेवा में ही भारतीय नारी के स्वरूप में रहकर जीवन व्यतीत करने में अपना अहोभाग्य समझती हैं।

इसी प्रकार मुसलमानों में कुछ सुधारक उत्पन्न हुए और उन्होने अपनी समाज की बुराइयों को दूर करने का प्रयत्न किया। वहाबी आन्दोलन के द्वारा यह प्रसारित किया गया कि कुरान को ही धर्म का आधार मानना चाहिए और इसका अर्थ लगाने को प्रत्येक व्यक्ति स्वतन्त्र है। इस आन्दोलन ने फकीरों की पूजा करना कर्म बताया। इसके समर्थक पाश्चात्य सभ्यता के विरोधी थे। परन्तु सय्यद अहमद खां ने मुस्लिम संस्कृति को पाश्चात्य संस्कृति के अनुरूप बनाने पर जोर दिया। आपने अंग्रेजी भाषा के प्रसार में सहयोग दिया तथा मुस्लिम समाज में से पर्दा प्रथा तथा ऊंचनीच के भेद को दूर करने का प्रयत्न किया।

आर्थिक दशा—ब्रिटिश शासन में भारतवासियों की आर्थिक अवस्था अति दयनीय थी। इसका प्रमुख कारण यह था कि ब्रिटिश सरकार का मुख्य उद्देश्य भारत का शोषण कर इंगलैण्ड को सम्पन्न बनाना था। अंग्रेजों ने कभी अपने को भारतीय नहीं समझा। उनके मस्तिष्क में सदैव इंगलैण्ड का हित रहता था। इस कारण उन्होने कभी भारतवासियों की अवस्था को सुधारने की ओर ध्यान नहीं दिया। इसी कारण उन्होंने भारतीयों को सरकारी उच्च पदों पर नियुक्त नही किया और जब किया भी तो उन्हे वेतन बहुत थोड़े दिए गये। इसी प्रकार भारत के व्यापारी वर्ग को भी उन्होंने ठेके देना बन्द कर दिया तथा भारत के सभी कच्चे उत्पादनों का इंगलैण्ड में निर्यात करना आरम्भ कर दिया। भारत के मुख्य व्यवसाय कृषि को उन्नत करने के लिए उन्होंने कुछ नहीं किया। केवल सिन्ध में सक्कर का बांध उनके द्वारा बनाया गया था। सिंचाई के पर्याप्त साधन उपलब्ध न होने के कारण कृषि का विकास नहीं हुआ और कृषक अधिकांश कर्ज़दार बने रहे। १८६८ में अवध टिनेन्सी एक्ट तथा १८६९ में पंजाब टिनेन्सी एक्ट पारित हुए जिनसे कि कृषकों की अवस्था में कुछ सुधार हुआ।

गृह-उद्योग धन्धे का ह्रास—जब अंग्रेज व्यापारी के रूप में भारत आये थे, उस समय भारत एक सम्पन्न देश था। उसकी इस सम्पन्नता का प्रमुख कारण यहां के विकसित उद्योग धन्धे थे। वस्त्र-व्यवसाय में भारत उस समय जगत विख्यात्

था। ढाके की मलमल के समान अन्यन्त्र वस्त्र नहीं बुनता था। इसी प्रकार उस समय बंगाल में रंगाई व लकड़ी का काम बहुत जोरों पर था, परन्तु इस समय इंगलैण्ड औद्योगिक क्रांन्ति (Industrial Revolution) की चपेट में आ रहा था। अत: ब्रिटिश सरकार ने यहां के गृह उद्योग धन्धों को समाप्त कर इंगलैण्ड का औद्योगिक विकास करना चाहा। इस नीति को अपनाते ही ब्रिटिश सरकार ने अपनी कूट नीति से यहां के गृह उद्योग धन्धों को समाप्त कर दिया। यहाँ का कच्चा माल कौड़ियों के भाव इंगलैंड जाने लगा तथा वहाँ का तैयार माल आकर भारत खपने लगा। इससे भारत का वस्त्र व्यवसाय समाप्त हो गया। परन्तु जब महात्मा गांधी ने नेतृत्व में राष्ट्रीय आन्दोलन आरम्भ हुआ तो विदेशी वस्त्र का विरोध किया गया तथा खादी के प्रसार से व ः त्र का गृह उद्योग पुन: विकसित हुआ।

औद्योगिक विकास की भारत में मन्द गति—औद्यांगिक क्रांति का प्रभाव भारत में बहुत विलंब से दृष्टिगत हुआ। उन्नीसवीं शताब्दी के अन्त तक भारत में कोई औद्योगिक विकास नहीं हुआ। इसका प्रमुख कारण ब्रिटिश सरकार की नीति थी। वह नहीं चाहती थीं कि भारत में किसी प्रकार के कारखाने खुले। प्रथम महा युद्ध ने ब्रिटिश सरकार की नीति थी। वह नहीं चाहती थी कि भारत मेंको भारत कुछ कपड़ों की मीलें खोलने की भारतवासियों को अनुमति देने को बाध्य होना पड़ा और इसके अनन्तर दूसरे महायुद्ध के समय तो भारत ने वस्त्र के क्षेत्र में पर्याप्त विकास किया। आज भारत एशिया में वस्त्र उत्पादन की दृष्टि से दूसरा देश है।

आधुनिक युग एक मशीनों का युग है। परन्तु मशीनों का निर्माण लोहा और फौलाद पर निर्भर रहता है। अंग्रेजों ने हमारे लोहे के उद्योग को भी समाप्त करने का प्रयत्न किया। भारत में सब तरह की मशीनें इंगलैण्ड से ही आती थीं। मशीनों की क्या कहें भारत में एक साइकिल का एक साधारण पुर्जा व कपड़े सीने की सुई भी नहीं बनती थी। किन्तु बाद में टाटा का लोहे का कारखाना खुला जिसमें कि धीरे धोरे रेल के इंजिन व रेल की पटरियां बनने लगीं। परन्तु भारत जैसे विशाल देश में एक लोहे के कारखाने से विशेष लाभ न हुआ।

इसी प्रकार सीमेन्ट, कागज, चीनी व माचिस उत्पादन में भारत की औद्योगिक स्थिति अति मन्द रही है। स्वतन्त्रता प्राप्ति के उपरान्त भारत ने औद्योगिक विकास में सक्रिय कदम रखा है।

धार्मिक दशा—अंग्रेजों के भारत आगमन के समय यहां की धार्मिक अवस्था भी अच्छी नहीं थी। हिन्दू धर्म के विकास को मुसलमान शासकों ने अवरुद्ध कर दिया था और मुसलमान धार्मिक कट्टरता के आवरण से आवरित थे। इसके पश्चात अंग्रेज जब भारत में आबाद हो गये तो उन्होंने अपना धर्म यहां फैलाने का प्रयास किया।

इस प्रकार दोनों धर्मों पर ईसाई धर्म का प्रभाव पड़ा। यद्यपि हिन्दुओं के जीवन में धर्म का प्रमुख स्थान है और वे प्रत्येक कार्य धर्म से प्रेरित हो कर करते हैं। किन्तु मुस्लिम शासन ने उनकी धार्मिक प्रवृति को कुछ शिथिल बना दिया था। मूर्ति-पूजा से उनकी आस्था दिन पर दिन हटती जा रही थी। ब्रिटिश शासन में हिन्दू नवयुवक देवालयों में पाषाण मूर्तियों को नत मस्तक होना व्यर्थ समझने लगे। इनके आगमन पर भी छुआछूत विद्यमान थी। सवर्ण हिन्दू शूद्रवर्ण के लोगों से घृणा करते थे। ईसाइयों ने इसका फ़ायदा उठाया। उन्होंने अपने धर्म प्रचारकों की सहायता से निम्न वर्ग व पिछड़े लोगों की ईसाई बनाना प्रारम्भ कर दिया। इससे हिन्दू धर्म का ह्रास हुआ। किन्तु आर्य समाज के आन्दोलन से हिन्दू धर्म की रक्षा हुई। राजा-राममोहनराय ने ब्रह्म समाज की स्थापना से धार्मिक बुराइयों को दूर करने का प्रयत्न किया। थियोसोफिकल सोसाइटी ने भारत में पुनः हिन्दू धर्म की लुप्त गरिमा को स्थापित किया। परन्तु ब्रिटिश सरकार की नीति १८७० के उपरान्त मुसलमानों का पक्ष लेने की हो गई। इससे उनमें कट्टरता और भी पनपी और इसका परिणाम यह निकला कि भारत में हिन्दू व मुसलमानों में साम्प्रादायिक झगड़े होने लगे। ब्रिटिश सरकार ने उनको समाप्त करने के बजाय प्रोत्साहित किया ताकि हिन्दू मुस्लिम फूट की नीति पर उनका साम्राज्य बना रहे। अंग्रेजों के सम्पर्क से कुछ भारतीयों में नास्तिकता की भावना जागृत होने लगी।

शैक्षणिक दशा

अंग्रेजों के आने से पूर्व—अंग्रेजों के भारत आने से पूर्व यहां मुगलों का शासन था। मुगल शासक तथा उनके पूर्वज मुस्लिम शासकों ने शिक्षा की ओर विशेष ध्यान नहीं दिया। और यदि किसी ने शिक्षा की ओर ध्यान दिया भी तो वह केवल मुसलमानों की शिक्षा की ओर ही दिया। इसका परिणाम यह निकला कि मुस्लिम नवयुवकों को मस्जिदों में धार्मिक शिक्षा मिलने लगी और फ़ारसी, अरबी व उर्दू भाषा का प्रसार होने लगा। मुस्लिम शासकों ने हिन्दुओं के विद्यालयों को बन्द कर दिया। औरंगजेब ने भी इस दिशा में अपना नाम अग्रिम के रूप में लिखवाया। इसके फलस्वरुप शिक्षा का क्षेत्र सीमित रह गया और जब अंग्रेज यहां आये तो उन्हें प्राचीन भारत की तरह कहीं विश्वविद्यालय देखने को नहीं मिले।

ब्रिटिश शासन के संरक्षण में शिक्षा का विकास—प्रारंभ में तो ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने भी भारत में शिक्षा-प्रसार की ओर ध्यान नहीं दिया, किन्तु लार्ड विलियम बैंटिक ने अपनी सरकार का हित इसी में देखा कि भारतवासियों को शिक्षित बनाया जावे। उसने लार्ड मैकाले (Lord Macaulay) के प्रस्ताव

को स्वीकृत कर भारत में अंग्रेजी शिक्षा का सूत्रपात किया और इसमें उससे राजा राममोहनराय की बड़ी सहायता मिली। इसके बाद लार्ड रिपन (Ripon) ने शिक्षा-विस्तार की ओर ध्यान दिया और उसने हण्टर कमीशन (Hunter Commission) की नियुक्ति की। इस कमीशन की सिफारिश पर उच्च शिक्षण संस्थाओं को सरकारी नियन्त्रण से मुक्त कर दिया गया तथा कालेजों में वैकल्पिक विषय भी चालू किये कये। लार्ड चैम्पसफोर्ड ने कलकत्ता विश्वविद्यालय की समस्याओं पर विचार करने की दृष्टि से सेडलर (Saddler Commission) की नियुक्ति की। १९११ के सुधार कानून के अन्तर्गत प्रान्तों में शिक्षा-विभाग भारतीय मन्त्रियों के हाथ में आ गया और उन मन्त्रियों ने अपने प्रान्तों में शिक्षा-विकास की ओर पर्याप्त ध्यान दिया। १९४४ में ब्रिटिश सरकार ने सारजेन्ट कमीशन (Sargent Commission) की नियुक्ति की। उसने भारत में प्राइमरी शिक्षा को अनिवार्य तथा उच्च शिक्षा को सीमित रखने का प्रस्ताव रखा। उसकी योजना वास्तव में भारत में शिक्षा के विकास लिये थो को परन्तु ब्रिटिश सरकार ने इस योजना को कार्यान्वित नहीं किया।

अतः हम देखते हैं कि ब्रिटिश सरकार ने भारत में शिक्षा का विकास अवश्य करना चाहा किन्तु वह शिक्षा भारत के अनुकूल नहीं थी। यह वर्तमान शिक्षा ब्रिटिश सरकार की ही देन है। यह शिक्षा भारतीय ग्रामीणों के लिए कठिन एवं खर्चीली है। उन्होंने भारत में टेकनिकल व औद्योगिक शिक्षा के विस्तार की ओर ध्यान नहीं दिया। उनकी शिक्षा भारतोयों को केवल मुन्शी बनाने में समर्थ थी। इसलिए हम कह सकते हैं कि ब्रिटिश सरकार के समय भारत में शिक्षा का विकास अवश्य हुआ किन्तु वह भारत को अधिक हितकर सिद्ध नहीं हुई और इससे केवल १५ प्रतिशत भारतीय ही शिक्षा शिक्षित हो सके।

निष्कर्ष—इस अध्याय के पूर्ण अवलोकन से हम निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि ब्रिटिश शासन की स्थापना से पूर्व भारत की सामाजिक, धार्मिक तथा शैक्षणिक अवस्था दयनीय थी। अंग्रेजों के सम्पर्क से इन पर पाश्चात्य सभ्यता का प्रभाव अवश्य पड़ा किन्तु फिर भी वे विकासोन्मुख हुए। सामाजिक व धर्म-सुधार आन्दोलन से भारत में एक नव चेतना प्रस्फुटित हुई। शिक्षा के विस्तार से भारतवासियों का अन्धविश्वास दूर हुआ तथा उनके मस्तिष्क विकसित हुए। अंग्रेजी भाषा के माध्यम से वे पश्चिम के सम्पर्क आये तथा उनके सम्पर्क से उनमें राष्ट्रीयता का प्रादुर्भाव हुआ। ब्रिटिश शासन से भारत का आर्थिक शोषण अवश्य हुआ तथा यहाँ कई आर्थिक कठिनाइयाँ उत्पन्न हो गईं। परन्तु यह सब होते हुए भी हमें यह स्वीकार

करना पड़ता है कि ब्रिटिश शासन से यहां औद्योगिक विकास का बीजारोपण अवश्य होगया। अन्त में हम यह कह सकते है। कि भारत ने ब्रिटीश प्रभुता के आधीन रहतेहुए भी सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक तथा शैक्षणिक क्षेत्रो में उन्नति ही की है।

अध्याय-सार

प्रस्तावना--मुगल शासन काल में भारत का सामाजिक, धार्मिक, व शैक्षणिक विकास अवरुद्ध हो गया था किन्तु ब्रिटिश-शासन में भारत इन क्षेत्रों में विकासोन्मुख हुआ।

सामाजिक अवस्था--हिन्दू समाज को मुस्लिम-शासन ने कुंठित कर दिया था और मुस्लिम समाज अशिक्षा के कारण अविकसित बना हुआ था।

सामाजिक बुराइयां--हिन्दू समाज में उस समय सती-प्रथा, बाल-विवाह, कन्या-वध, जाति प्रथा की ऊँच-नीच भावना तथा अस्पृश्यता की भावना घर किये हुए थी। शिक्षा के अभाव में वे अन्ध विश्वासी भी थे।

इसी प्रकार मुसलमानों में बाल-विवाह, बहु-विवाह मद्यपान तथा मानसिक जड़ता आदि दुर्गुण विद्यमान थे।

स्त्रियों का समाज में स्थान—अंग्रेजों के भारत आने से पूर्व भारत में स्त्रियों का समाज में कुछ भी स्थान नहीं था। वे पुरुष जाति से दासी रूप में समझी जाती थीं। किन्तु शिक्षा-विस्तार तथा पाश्चात्य सभ्यता के प्रभाव से उनमें सुधार हुआ।

दलित वर्ग की अवस्था—ब्रिटिश शासन की स्थापना से पूर्व शूद्र वर्ण व पिछड़ी जाति के लोगों की भी अवस्था अच्छी नहीं थी। न तो उनका समाज में आदर था और न उनको राजकीय सेवा में ही स्थान प्राप्त होता था।

सामाजिक सुधार—परन्तु हिन्दू व मुस्लिम समाज में बुराइयां अधिक दिनों न टिक सकीं। राजा राममोहन राय, स्वामी दयानन्द तथा महात्मागांधी ने यदि हिन्दू समाज की बुराइयों को दूर करने का प्रयत्न किया तो सय्यद अहमद खां ने मुस्लिमों की संकीर्णता व जड़ता को दूर करने का प्रयास किया।

आर्थिक दशा—ब्रिटिश शासन से पूर्व भारत की आर्थिक अवस्था अच्छी थी। उन्होंने यहां भारतवासियों के शोषण को नीति अपनाई और देश के गृह उद्योग धन्धों को समाप्त किया तथा औद्योगिक विकास में नाना प्रकार की बाधाएं प्रस्तुत कीं। किन्तु अन्त में स्वदेश आन्दोलन से वस्त्र का गृह-उद्योग पुनः पनप उठा और प्रथम तथा द्वितीय महायुद्ध से देश का औद्योगिक विकास भी संभव हो सका।

धार्मिक दशा—हिन्दुओं की मुस्लिम शासन के कारण धर्म से आस्था उठती जा रही थी और अंग्रेजों के आगमन से उन्हें मूर्ति पूजा व्यर्थ प्रतीत होने लगी

थी। मुसलमानों में धार्मिक कट्टरता थी और अंग्रेजों की पक्षपात पूर्ण नीति से उनकी कट्टरता उत्तरोत्तर बढती गई। हिन्दू धर्म में ब्रह्म समाज तथा आर्य-समाज ने पर्याप्त सुधार किया तथा थियोसोफिकल सोसाइटी ने हिन्दू धर्म की लुप्त गरिमा को पुनः स्थापित किया।

शैक्षणिक दशा—अंग्रेजों के यहां आने से पूर्व भारत शिक्षा के क्षेत्र में पिछड़ा हुआ था। किन्तु लार्ड विलियम बेंटिक ने यहां आधुनिक शिक्षा को जन्म दिया जोकि रिपन तथा चेम्सफोर्ड के प्रयत्नों से और भी विकसित हुई। १९१९ के सुधार कानून से प्रान्तों में शिक्षा का विस्तार हुआ। यह ब्रिटिश-कालीन शिक्षा का विकास भारतवासियों को हितकर सिद्ध हुआ। इससे उनकी संकीर्णता नष्ट हुई तथा उनमें राष्ट्रीय भावना का जागरण हुआ।

निष्कर्ष—ब्रिटिश-शासन में भारत सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक तथा शैक्षणिक क्षेत्रों में विकासोन्मुख ही हुआ।

योग्यता प्रश्न

(१) अंग्रेजों के शासन-काल में भारत की सामाजिक अवस्था कैसी थी और उस समय उसमें क्या सुधार किये गये ?

What was the social condition of India during the British rule and what reforms were introduced during that period ?

(२) हिन्दू-समाज में आज स्त्रियों की क्या दशा है ? उसको कैसे सुधारा जा सकता है ?

What is the condition of the women in Hindu society to day ? How can it be improved ?

(३) अंग्रेजी शासन-काल में शिक्षा का क्या विकास हुआ संक्षेप में बताइये।

Trace briefly the his stry of Educational developments during the British Rule.

(४) उन्नीसवीं शताब्दी में भारत की आर्थिक दशा कैसी थी ? उसके उद्योग-धन्धों का पतन अंग्रेजी काल में क्यों हुआ ?

Wat was the economic condition of India during the 19 th century. What were the causes which led to the downfall of Indian

अध्याय इक्कीसवां

स्वतन्त्र भारत

प्रस्तावना—भारत का स्वतन्त्र होना—स्वतन्त्र भारत की कठिनाइयां, स्वतन्त्र भारत का संविधान, प्रथम राष्ट्रपति डा० राजेन्द्रप्रसाद, भारत के प्रथम प्रधान मन्त्री पं० जवाहरलाल नेहरू तथा उनकी विदेश नीति (पंचशील के सिद्धान्त, भारत और संयुक्त राष्ट्र संघ, भारत व कॉमनवेल्थ, भारत का पड़ौसी राष्ट्रों से सम्बन्ध) भारत का विकास—निष्कर्ष।

प्रस्तावना—अंग्रेजी शासन भारत में १९० वर्ष तक बना रहा। सन् १७५७ से १८५७ तक भारत पर ईस्ट इण्डिया कम्पनी की हुकूमत रही तथा तदुपरान्त १९४७ तक ब्रिटिश सरकार भारत पर शासन करती रही। ब्रिटिश सरकार की भारत के प्रति शोषण की नीति थी। इसीलिए उस सरकार ने इंगलैंड की रानी विक्टोरिया (Queen Victoria) की १८५८ की घोषणा पर भी ध्यान नहीं दिया। अंग्रेजों ने भारत पर अपना शासन बनाये रखने के लिए हर संभव साधनों का आश्रय लिया। भारत ब्रिटिश प्रान्त तथा देशी राज्यों में विभक्त था और देशी राज्यों के नरेश ब्रिटिश सरकार के परम-सेवक थे। इसके अलावा अंग्रेजों ने १८७० के उपरान्त मुसलमानों पर अधिक अनुकम्पा दिखाना आरंभ कर दिया था और इसका भारत के संवैधानिक विकास पर बुरा प्रभाव पड़ा। मुसलमानों को अल्पसंख्यक स्वीकार किया गया तथा १९०६ से ही सरकार उनके अधिकारों के लिए अधिक चिन्तित रहने लगी। इसका परिणाम यह निकला कि भारत में साम्प्रदायिकता घर करने लगी। मुसलमान अपने को हिन्दुओं से भिन्न समझने लगे और उन्होने मिस्टर जिन्ना (Jinnah) के नेतृत्व में पाकिस्तान की मांग की। यह मांग उत्तरोत्तर जोर पकड़ती गई और भारत की स्वतन्त्रता में प्रमुख बाधा बन गई। जब इस मांग के स्वीकार में विलम्ब होने लगी तो जिन्ना के समर्थकों ने सीधी कार्यवाही (Direct Action) की धमकी दी और वे बंगाल में हिन्दुओं के खून से होली खेलने लगे। देश की यही परिस्थिति द्वितीय महायुद्ध के समाप्त होने पर भी सन् १९४६ तक चलती रही।

भारत का स्वतन्त्र होना—भारत में ब्रिटिश सरकार के कड़े नियन्त्रण में यहां के लोगों का शोषण हो रहा था तथा उन्हें राजनैतिक अधिकारों से वंचित किया जा रहा था। परन्तु १८८५ में डा० ह्यूम (Hume) के नेतृत्व में यहां कांग्रेस की स्थापना हुई। कांग्रेस के संरक्षण में भारत की सोयी जनता जाग उठी और उनमें राष्ट्रीय भावना प्रबल रूप से हिलोरें लेने लगी। ब्रिटिश सरकार ने

१६१६ व१६३५ के सुधार कानून पास किए। परन्तु उनसे देशवासी सन्तुष्ट नहीं हुए और वे भारत की स्वतन्त्रता की मांग करने लगे। कांग्रेस देश की स्वतन्त्रता के लिए अथक प्रयत्न कर रही थी किन्तु मुस्लिम लीग (Muslim League) की पाकिस्तान (Pakistan) की मांग उसमें ब्रेक का कार्य कर रही थी। ब्रिटिश सरकार भारत-स्वातन्त्र्य की मांग को सदैव पाकिस्तान की ओट में ही टालती रही। परन्तु समय परिवर्तन शील है। १६४६ में इंगलेंड का प्रधान मन्त्री मजदूर दल (Labour Party) का नेता ऐटली (Attlee) अनुदारदल (Conservative Party) के नेता चर्चिल (Churchil) को परास्त कर प्रधान मन्त्री बना। वह भारत की स्वतन्त्रता में सच्चे दिल से सहानुभूति रखता था। अतः उसने २० फरवरी १६४७ को घोषणा की कि ब्रिटिश सरकार का यह दृढ़ निश्चय है कि वह जून १६४८ से पूर्व भारत से अपना शासन समाप्त कर लेगी। अत: वहां के राजनीतिक दलों को आपस में समझौता कर लेना चाहिये। अपने इस निर्णय को कार्यान्वित करने के लिए उसने लार्ड माउन्ट बेटन (Mount Batten) को भारत भेजा। लार्ड माउन्ट बेटन ने एक योजना बनाई जिसके अन्तर्गत हिन्दुस्तान का भारत व पाकिस्तान में विभाजन होना था। उस योजना को कांग्रेस तथा लीग दोनों ने स्वीकार किया। इसके परिणाम स्वरूप १५ जुलाई १६४७ को भारतयी स्वतन्त्रता कानून (Indian Independence Act, 1947) पास हुआ और १५ अगस्त, १६४७ को भारत सदियों की दासता के बाद अंग्रेजी शासन से मुक्त हुआ।

स्वतन्त्र भारत की कठिनाइयाँ—भारतवासियों को स्वतन्त्रता प्राप्ति का भारी मूल्य चुकाना पड़ा। पहले तो स्वतन्त्रता के लिए उन्होंने अपना तन, मन व धन देश के लिए न्यौछावर कर संघर्ष किया। परन्तु स्वतन्त्रता मिल जाने पर भी उन्हें कोई आराम नहीं मिला। हमारी प्रथम राष्ट्रीय सरकार को कई कठिनाइयों का सामना करना पड़ा और उनमें कुछ कठिनाइयाँ तो ऐसी थीं। जिनका प्रकोप आज तक विश्व के किसी देश पर नहीं हुआ था। प्रथम तो देश की सरकार को आबादी अदला बदली की समस्या का सामना करना पड़ा। ब्रिटिश-शासन में साम्प्रदायिकता ने इतना जोर जमा लिया था कि स्वतन्त्रता प्राप्ति के उपरान्त भी साम्प्रदायिक झगड़े शान्त नहीं हुए। पाकिस्तान के मुसलमान अपने यहां हिन्दुओं को रखना नहीं चाहते थे। अत: उनका कत्ले आम कर वा उन्हें अन्य प्रकार अमानुषिक अत्याचारों से पाकिस्तान छोड़ने को बाध्य किया। इसका परिणाम यह निकला कि करोड़ों की संख्या में पाकिस्तान के हिन्दू भारत आ गये। सरकार के सामने उन्हें अपने यहां बसाने तथा उनकी जीविका उपार्जन के साधन की व्यवस्था करने की अजीब समस्या थी। किन्तु हमारी सरकार ने उस समस्या का वीरता व सावधानी से

सामना किया और उसे हल भी किया। इसके बाद दूसरी कठिनाई देशी राज्यों की भारत में विलय की थी परन्तु भाग्यवश नरेशों ने समय के परिवर्तन को पहिचान स्वेच्छा से ही भारत संघ में मिलना स्वीकार कर लिया। इस समस्या को भयंकर रूप देने में निजाम हैदराबाद व जूनागढ़ के नवाब का विशेष हाथ था। हैदराबाद की समस्या का हल गूढ़ राजनीतिज्ञ स्व० सरदार पटेल (Sardar Patel) ने निकाला तथा जूनागढ़ का हल स्वयं वहाँ की जनता ने ही निकाल लिया। पूर्वी बंगाल के पाकिस्तान में चले जाने से जूट के उद्योग को भी कुछ संकट उत्पन्न हा गया था। परन्तु वह भी शीघ्र ही दूर कर दिया गया। इसी प्रकार अन्य कई प्रकार की कठिनाइयाँ हमारी राष्ट्रीय सरकार के समक्ष प्रस्तुत हुई जिनमें महात्मा गांधी की मृत्यु (३० जनवरी, १९४८) तथा काश्मीर पर कबालियों का आक्रमण भारत के लिए अधिक दुष्कर सिद्ध हो रही हैं।

स्वतन्त्र भारत का संविधान—भारत स्वतन्त्रता अधिनियम में यह शर्त थी कि जब तक भारत अपना नया संविधान न बनाले तब तक यहाँ १९३५ के सुधार कानून से ही शासन संचालित होता रहेगा। संविधान परिषद (Constituent Assembly) का निर्वाचन १९४६ में ही हो गया था। किन्तु मुस्लिल लीग द्वारा सहयोग न देने पर वह कुछ भी कार्य नहीं कर सकी। भारत के स्वतन्त्र होते ही डा. राजेन्द्र प्रसाद की अध्यक्षता में इस संविधान परिषद ने अपना कार्य प्रारंभ कर दिया और २९ नवम्बर १९४९ को संविधान बनकर सरकार के समक्ष प्रस्तुत कर दिया। यह नया भारतीय संविधान देश में २६ जनवरी १९५० से लागू हुआ। इस नवीन संविधान की विशेषताएँ निम्नलिखित हैं—

भारतीय संविधान की विशेषताएँ—(१) भारत का संविधान विश्व का सबसे बड़ा है। इसमें ३९५ धाराएँ तथा ९ परिशिष्ट हैं। (२) भारतीय शासन व्यवस्था संघात्मक रखी गई है परन्तु वह राष्ट्रपति के आपत्तिकालीन अधिकारों से एकात्मक हो गई है। (३) भारत को धर्म निरपेक्ष राज्य घोषित किया गया। (४) भारतवासियों को मौलिक अधिकार प्रदान किये गये हैं। परन्तु आपत्तिकालीन परिस्थिति में वे अधिकार नागरिकों से छीन लिए जाते हैं। (५) आयरलैंड के संविधान के आदर्श पर हमारे संविधान ने भी कुछ निर्देशक तत्व (Directive Principles) स्वीकार किये हैं। (६) हमारे संविधान ने बिना संघर्ष स्त्री व पुरुषों को समान उम्र (२१) पर नागरिकता का अधिकार दिया है। (७) भारत का संविधान एक मौलिक संविधान नहीं वरन् विश्व के प्रमुख संविधानों का मिश्रण है। (८) इस वर्तमान संविधान पर ब्रिटिश सरकार द्वारा पारित १९३५ के सुधार अधिनियम का भी प्रभाव पड़ा है। (९) नागरिकों के अधिकारों को

सुरक्षित रखने के लिए स्वतन्त्र उच्चतम न्यायालय (Supreme Court) की व्यवस्था की गई है। (१०) साम्प्रदायिकता तथा छुआछूत की समाप्ति का प्रयास भी इस संविधान द्वारा किया गया है। इन विशेषताओं के आधार पर हम कह सकते हैं कि आज भारत में जनता का राज्य है तथा वह जंत्रतन्त्रात्मक है।

स्वतन्त्र भारत के प्रथम राष्ट्रपति

[डा० राजेन्द्र प्रसाद]

१५ अगस्त १९४७ को जब भारत स्वतन्त्र हो गया तो उदार भारत वासियों ने लार्ड माउन्ट बेटन को ही स्वतन्त्र भारत का प्रथम गवर्नर जनरल नियुक्त किया। उसने अपने प्रशासनकाल में भारत के हित में बहुत ही सराहनीय कार्य किये। २१ जून १९४८ को जब वह अपने देश लौट गया तो उसके स्थान पर चक्रवर्ती राजा गोपालाचार्य (Raja Gopalacharia) नियुक्त हुए। परन्तु जब २६ जनवरी १९५० से भारत का नया संविधान लागू हुआ तो डा० राजेन्द्र प्रसाद (Dr. Rajendra Prasad) भारत के प्रथम राष्ट्रपति निर्वाचित हुए।
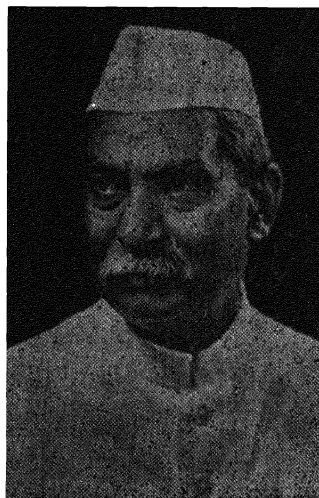
राष्ट्रपति का सामान्य परिचयः—आपका जन्म ३ दिसंबर १८८४ को बिहार के एक प्रतिष्ठित कायस्थ कुल में हुआ। आपका विद्यार्थी जीवन बहुत ही सराहनीय रहा। १९०८ में आप मुजफ्फर नगर के जी. बी. कालेज में अंग्रेजी के आध्यापक नियुक्त हुए और १९११ में आपने कलकत्ते की हाईकोर्ट में वकालत की। आपका यह व्यवसाय १९२० तक चलता रहा। परन्तु इसी समय आपने १९१६–२० तक पटना की हाई कोर्ट में वकालत की और वहाँ के विख्यात वकीलों में आपका नाम हो गया।

राष्ट्रपति की देश–सेवाः—जब १९२० में महात्मा गांधी ने जलियांवाला के हत्याकाण्ड के विरुद्ध सत्याग्रह किया तो आप भी उस आन्दोलन में कूद पड़े। आपने इस आन्दोलन में अच्छी ख्याति पाई और १९२२ में ही आप अखिल कांग्रेस के मन्त्री पद पर नियुक्त हो गये। इस पद पर भी आपका कार्य देशवासियों की

दृष्टि में अति सन्तोषप्रद रहा। यही कारण था कि आप १९३२, '३४,' ३९ तथा '४७ में कांग्रेस के अध्यक्ष निर्वाचित हुए। इस समय के दौरान आप कई बार जेल गये। १९४२ की क्रान्ति में आपका नाम और भी उज्जवल हुआ। यद्यपि आप तो जेल के सीखचों में बन्द कर दिए गये थे और १९४५ तक वहीं रहे, तथापि १९४२ की क्रान्ति में बिहार ने बहुत महत्वपूर्ण भाग लिया। इन जैसे शान्ति प्रिय तथा अहिंसा में पूर्ण विश्वास रखने वाले के प्रदेश बिहार में १९४२ की क्रान्ति का भारी प्रकोप देख सबको आश्चर्य हुआ। १९४६ में जब जवाहरलाल नेहरू के नेतृत्व में अन्तरिम सरकार (Interim Govt.) का निर्माण हुआ तो आप खाद्य-मन्त्री नियुक्त किये गये थे और जब संविधान परिषद का गठन हुआ तो उसके अध्यक्ष भी आप ही बने। भारत का नवीन संविधान आपकी संरक्षिता में ही बना है ।

राजेन्द्र प्रसाद राष्ट्रपति के रूप में—आप २६ जनवरी १९५० को इस पद पर निर्वाचित हुए और तभी से आप इस पद पर कार्य बहुत ही सराहनीय ढंग से कर रहे हैं। यद्यपि शासन सत्ता देश के प्रधान-मन्त्री के हाथ में ही रहती है किन्तु उसके भले बुरे का उत्तरदायी राष्ट्रपति ही होता है। आपने उस उत्तरदायित्व को पूर्ण रूप से निभाने का प्रयत्न किया है। आपके कार्यों से सबको सन्तोष है। यही कारण है कि १९५६ में आपका कार्यकाल समाप्त होते ही आप दूसरी बार भारत के राष्ट्रपति चुन लिए गये। इनके नेतृत्व में भारत निरन्तर विश्व में अपना स्थान उन्नत करता जा रहा है। काश्मीर व पाकिस्तान से भी आप अच्छे सम्बन्ध बनाये हुए हैं। इनके समय की विशेष घटना हम प्रथम पंच वर्षीय योजना (First Five year Plan) व द्वितीय पंच वर्षीय योजना (Second Five year Plan) को मान सकते हैं। इन दोनों योजनाओं के अन्तर्गत् भारत का बहुमुखी विकास हुआ है।

डा० राजेन्द्र प्रसाद भारत माता के नो निहाल पुत्र समझे जाते हैं। आपने अपने जीवन का समस्त काल देश सेवा में लगाया है। यदि आपकी आयु इस समय ७४ के ऊपर है और स्वास्थ्य भी दमा के रोग के कारण अच्छा नहीं है तो भी आप देश के कार्यों में सदा व्यस्त रहते हैं। आप भी देश के उन रत्नों में से हैं जिनके विरुद्ध आज किसी को किसी प्रकार की शिकायत नहीं है ।

भारत के प्रथम प्रधान मन्त्री

(श्री जवाहर लाल नेहरू)

स्वतन्त्र भारत का प्रथम प्रधान मन्त्री बनने का गौरव श्री जवाहर लाल

नेहरू को प्राप्त हुआ। आप पं० मोतीलाल नेहरु के सुपुत्र हैं । इंगलैण्ड से कानून की शिक्षा समाप्त करके आप ज्योंही भारत लौटे कि कांग्रेस में सम्मिलित हो गये। कांग्रेस को शक्तिशाली बनाने में आपका महान सहयोग था । आपने ही लाहौर अधिवेशन में भारत को पूर्ण स्वतन्त्र कराने की घोषणा की थी । भाग्यवश जब भारत स्वतन्त्र हो गया तो आप को ही प्रधान मन्त्री बनाया गया । सन् १९५० से पूर्व वे अन्तरिम (Interim Govt.) सरकार के जिसकी स्थापना १९४६ में हुई थी, प्रधान मन्त्री रहे तथा तदुपरान्त १९४७ से १९५० तक भी यही भारत के प्रधान मन्त्री रहे। सन् १९५० में जब से भारत का संविधान लागू हुआ है—तब से अब तक आप ही मन्त्री पद को सुशोभित कर रहे हैं। इससे स्पष्ट है कि आप का देश में कितना सम्मान है। भारत के संविधान की विशेषताओं का उल्लेख करते हुए हमने बताया है कि यहाँ की शासन प्रणाली संघात्मक होने के साथ संसदीय भी है। अतः राष्ट्रपति के होते हुए भी देश के प्रशासन में प्रधान मन्त्री का स्थान कम महत्व का नहीं हैं।

उनकी विदेश नीति:—भारत की विदेश नीत-प्रधान मन्त्रों पं० जवाहर लाल नेहरू के नेतृत्व में संचालित होती है । भारत की विदेश नीति अन्तर्राष्ट्रीय जगत् में सराहनीय रही है और भारत ने जो आज अन्तर्राष्ट्रीय जगत् में नाम कमाया है-उसका श्रेय पं० जवाहर लाल नेहरू की विदेश नीति को ही जाता है उनकी यह विदेशी नीति निम्न लिखित सिद्धान्तों पर आधारित है:—

(१) किसी भी गुट में न रहते हुए विश्व के सभी राष्ट्रों के साथ मित्रता के सम्बन्ध बनाये रखना।

(२) एशिया के समस्त देशों की स्वाधीनता चाहते हुए पाश्चात्य साम्राज्य-वाद की घोर निन्दा करना ।

(३) रूस व अमेरिका जैसे शक्तिशाली राष्ट्रों के बीच तटस्थता की नीति पर दृढ़ रहना।

(४) संयुक्त राष्ट्र संघ जैसे अन्तर्राष्ट्रीय संघों के नियमों का पालन करना तथा उन्हें अपना पूरा सहयोग देना।

(५) विश्व-शान्ति का समर्थन करना तथा उसमे सहयोग देना।

(६) सैन्य-संधियों (Military Pacts) में विश्वास नहीं रखना।

(७) रंग-भेद में विश्वास नहीं करना ।

१५ अगस्त १९४७ से हमारा भारत इन्हीं सिद्धान्तों पर आचरण कर रहा है। जब संयुक्त राष्ट्र संघ में फिलोस्तान (Palastine) की समस्या प्रस्तुत हुई तो भारत ने उसके विभाजन का विरोध किया। इसी प्रकार हिन्देशिया (Indonesia)

की स्वतन्त्रता की समस्या उत्पन्न हुई तो भारत ने उसकी स्वतन्त्रता का पूर्ण समर्थन किया तथा उसको सहयोग देने के लिए भारत ने १६ राष्ट्रों का एशियाई सम्मेलन (Asian Conference) का आयोजन किया। जब उ० कोरिया और द० कोरिया के मध्य युद्ध हुआ और जब युद्ध विश्व युद्ध का रूप धारण करने वाला था कि भारत ने तटस्थ होकर वहाँ युद्ध विराम (Cease fire) सन्धि करवाई। मिश्र (Egypt) की स्वतन्त्रता का समर्थन किया तथा हंगरी (Hungary) पर जब रूस की सेना ने आक्रमण किया तो भारत ने उसकी कटु आलोचना की। इस समय जो संयुक्त राष्ट्र संघ के समक्ष कांगो (Congo) की समस्या प्रस्तुत है–उसमें भी भारत अपना अपूर्व सहयोग दे रहा है।

भारत अपने पड़ौसी देशों से सदा अच्छे सम्बन्ध बनाये रखना चाहता है। यही उसकी नीति लाल चीन (Red China) के साथ रही और हमारा भारत उसको संयुक्त राष्ट्र संघ का सदस्य बानाने का सदैव प्रयत्न करता रहा। परन्तु आज कल लाल चीन(Red China)के प्रधान मन्त्री चाउ एन लाई की नीति भारत केप्रति मित्रता पूर्ण नहीं रही है और उसने भारत की उतरी सीमा पर बहुत सी भूमि पर अधिकार कर लिया है। जब भारत के प्रधान मन्त्री नेहरू को चीन के प्रधान मन्त्री की नीयत में कुछ साम्राज्यवाद की बू नजर आई तो उन्होंने पंच-शील (Panch-Sheel) के सिद्धान्त का सूत्रपात किया। आजकल पंच-शील भी हमारी विदेश नीति का एक अमूल्य सिद्धान्त बना हुआ है। पंचशील के सिद्धान्त निम्नलिखित हैं —

(१) एक दूसरे की प्रादेशिक सीमा तथा सार्वभौमिकता का सम्मान किया जावे।

(२) अनाक्रमण नीति (Non-Aggression Policy) को स्वीकार किया जावे।

(३) कोई भी राष्ट्र किसी दूसरे राष्ट्र के आन्तरिक मामलों में हस्तक्षेप न करे।

(४) सब छोटे बड़े राष्ट्र समान समझे जावें।

(५) शान्ति-पूर्वक सह-अस्तित्व (Peaceful Co-existence) के सिद्धान्तों का अनुसरण किया जावे।

भारत के प्रधान मन्त्री की यह मान्यता है कि विश्व के समस्त राष्ट्र पंच-शील के सिद्धान्तों पर आचरण करना प्रारम्भ कर दें तो विश्व में शान्ति अवश्य स्थापित हो सकती है तथा राष्ट्रों में पारस्परिक घृणा व द्वेष के स्थान पर प्रेम व श्रद्धा की स्थापना हो सकती है।

भारत और संयुक्त राष्ट्र संघ—भारत संयुक्त राष्ट्र संघ (U. N. O)

का सदस्य १९४५ में ही बन गया था। १५ अगस्त १९४७ से पूर्व उसकी वहां नीति इंगलैण्ड का समर्थन करने की रही। किन्तु स्वतन्त्रता प्राप्ति के उपरान्त भारत संयुक्त राष्ट्र संघ में स्वतन्त्र नीति का अवलंबन कर रहा है। संयुक्त राष्ट्र संघ आज दो गुटों में विभक्त है। पूर्वीगुट (Eastern Block) का नेतृत्व रूस (U.S.S.R) कर रहा है तथा पश्चिमी गुट(Western Block)का नेतृत्व अमेरिका(U.S.A) कर रहा है किन्तु भारत दोनों से मित्रता रखना चाहता है। दोनों देशों के सम्बन्ध में पं० जवाहर लाल (Pt. J. L. Nehru) का कहना है, "हम भारत के स्वार्थ विश्व के सहयोग तथा विश्व शान्ति के आधार पर विचार करते हैं। हम चाहते हैं कि सब राष्ट्रों से हमारे मित्रता के सम्बन्ध बने रहें और रूस तथा अमेरिका दोनों ही हमारे परम मित्र हों"। इसके अलावा संयुक्त राष्ट्र संघ में कुछ बुराइयों को देखता हुआ भी भारत उसमें पूर्ण आस्था रखता है। यद्यपि कश्मीर (Kashmir) के मामले में संयुक्त राष्ट्र संघ ने भारत के प्रति न्याय की नीति नहीं बरती और द० अफ्रीका (S. Africa) के भारतवासी अभी तक वहां की अंग्रेजी सरकार की रंग-भेद को नीति से मुक्त नहीं हुए हैं, तथापि भारत संयुक्त राष्ट्र संघ की विश्व-शान्ति की स्थापना में पूर्ण सहयोग दे रहा है। और कोरिया (Korea), मिश्र (Egypt), हंगरी (Hungary) तथा कांगों (Congo) में शान्ति स्थापित करने में पूर्ण सहयोग दिया है। इसके लिए विश्व के देशों को स्वतन्त्र कराने में भी भारत सहयोग देता रहा है। हिन्देशिया (Indonesia) की तो स्वतन्त्रता भारत के सहयोग से ही मिली है। इसके अलावा हमारे देश ने मिश्र (Egypt) को सहयोग दिया तथा घाना (Ghanna), अल्जीरिया (Algeria), ट्यूनिशिया (Tunisia), मोरक्को (Morocco), मलाया (Malaya) तथा कीनिया (Kennya) की स्वतन्त्रता का पूर्ण समर्थन किया। रंग-भेद की नीति को दूर करने के उद्देश्य से भारत ने फिलीस्तीन के बँटवारे (Division of Palestine) का घोर विरोध किया। विश्व में शान्ति बनाये रखने के उद्देश्य से नाटो (N.A.T.O.), सिटो (S.E..A.T.O) तथा बगदाद (Bagdad Pact) आदि सैन्य सन्धियों का भारत ने विरोध किया।

जिस प्रकार भारत ने संयुक्त राष्ट्र संघ को उसके कार्यों में सहयोग दिया है-उसी प्रकार भारत को भी अपने विकास कार्यों में संयुक्त राष्ट्र संघ का अपूर्व सहयोग प्राप्त हुआ है। भारत में पैनिसिलीन (Penicillin) तथा पैल्यूड्रिन (Peludrine) के कारखाने विश्व स्वास्थ्य संघ (W.H.O.) के सहयोग से ही खुले हैं। विश्व-बैंक (World Bank) से भारत को समय समय पर ऋण मिलता रहता है। यूनेस्को (U.N.E.S. C. O) की सहायता से १९४८ में यूनेस्को का दक्षिणी

एशिया का विज्ञान सहयोग-कार्यालय दिल्ली में स्थापित हुआ तथा खाद्य कृषि संघ (F.A.O.) की सहायता से भारत की कृषि उन्नत हो रही है। इनके अलावा भारत के बच्चों के लिए दूध व दवा भी यह संघ भेजता रहता है। क्षय रोग (T.B.) से बचाने के लिए B.C.G. के टीके वहीं से आते हैं। इस प्रकार हम देखते हैं भारत को इसकी सदस्यता से बड़ा फायदा है।

भारत और कामन वेल्थ—कामन वेल्थ से हमारा तात्पर्य इंगलैण्ड तथा उसके अन्य सहयोगी राष्ट्रों से है। इसमें इस समय कनाड़ा, पाकिस्तान, लंका, भारत, आस्ट्रेलिया, न्यूजीलैण्ड तथा घाना सदस्य हैं। द० अफ्रीका (S. Africa) को अभी कामन वेल्थ से विलग कर दिया है। स्वतन्त्रता प्राप्ति से पूर्व भारत इसमें एक दास देश को दशा में सदस्य था। अतः जब भारत स्वतन्त्र हुआ तो यह प्रश्न उत्पन्न हुआ कि भारत कामन वेल्थ का सदस्य रहे या नहीं। भारत के समाजवादी तथा साम्यवादियों ने भारत का कामनवेल्थ में रहने का विरोध किया। परन्तु भारत के प्रधान मन्त्री ने बड़ी सूझ मे कार्य किया। उन्होंने, भारत को कामनवेल्थ का सदस्य रखना स्वीकार किया, किन्तु एक गुलाम देश की हैसियत से नहीं वरन् एक स्वतन्त्र राष्ट्र की दशा में। इंगलैण्ड की रानी अब भारत की साम्राज्ञी नहीं है और कामन वेल्थ का संविधान भी अब बदल गया है। कामन वेल्थ के सब सदस्य अब समान अस्तित्व रखते हैं। भारत सदैव इसमें में विश्वास करता आया है जिसमें कि कुछ राष्ट्र अपनी समस्याओं पर एक जगह बैठकर विचार करते है। इसी उद्देश्य से भारत इसका सदस्य रहा है।

भारत और पड़ौसी राष्ट्र—भारत सदा से शान्ति तथा विश्व-कल्याण में विश्वास रखता आया है। अतः स्वाभाविक है कि वह अपने पडौसी राष्ट्रों से भी सम्बन्ध अच्छे रखे। इसी उद्देश्य से उसने पंचशील के सिद्धान्त का प्रतिपादन किया है और वह इस बात का भरसक प्रयत्न करता है कि उसके सम्बन्ध पड़ौसी राष्ट्रों से अच्छे बने रहें। पाकिस्तान कुछ वर्ष पूर्व भारत का ही एक भाग था। परन्तु वहाँ साम्प्रदायिकता का साम्राज्य होने के कारण भारत से वह अच्छे सम्बन्ध नहीं रख सकता है। परन्तु यह सब होते हुए भी भारत उससे अच्छे सम्बन्ध रखना चाहता है। यद्यपि काश्मीर के आक्रमण में कबालियों को पाकिस्तान के सैनिको ने सहायता दी थी, तथापि भारत ने पाकिस्तान पर आक्रमण नहीं किया और न उसके विरुद्ध कहीं प्रचार ही किया। इसके विपरीत ३० सितम्बर १९५० को लखनऊ में भारत-पाकिस्तान सद्भावना सम्मेलन हुआ। इस सम्मेलन का उद्घाटन स्व० गोविन्दबल्लभ पन्त ने किया था और उसमें २०० प्रतिनिधि उपस्थित थे। जनवरी १९५१ में भारत ने अफगानिस्तान से मैत्री-सन्धि की। इस सन्धि का आशय यह था कि दोनों राष्ट्रों में

मित्रता बनी रहे। ३ अक्टूबर १९५० में 'प्रशान्त सम्बन्ध सम्मेलन' (Pacific Relations Conference) पं. हृदयनाथ कुंजरू की अध्यक्षता में हुआ। १९५६ में भारत ने बह्मा के साथ सन्धि की और इसी वर्ष जापान के साथ सन्धि की और १९५८ में भारत के राष्ट्रपति डा० राजेन्द्रप्रसाद जापान भी गये । सन् १९५५ में हिन्देशिया में जो बाडुंग सम्मेलन (Bandung Conference) हुआ तो पड़ौसी राष्ट्रों से सम्बन्ध अच्छे रखने की दृष्टि से पं० नेहरू ने पंचशील के सिद्धान्तों का वहां प्रसार किया। मिश्र का स्वेज नहर के राष्ट्रीयकरण करने पर भारत ने उसका समर्थन किया तथा कोरिया के संघर्ष में मध्यस्थता का कार्य किया। हिन्देशिया को स्वतन्त्र कराके उससे भी आज भारत अच्छे सम्बन्ध बनाये हुए है। लंका में यदि भारतीयों को नागरिकता देने के प्रश्न पर यद्यपि कुछ मतभेद है, तथापि उससे भी भारत के अच्छे सम्बन्ध हैं। लंका के प्रधान मन्त्री कई बार भारत आ चुके हैं। रूस के साथ भी हमारे सम्बन्ध अच्छे हैं और उसने पंचशील के सिद्धान्तों को भी अंगीकार कर लिया है।

भारत और लाल चीन—चीन से भारत के सम्बन्ध सदा अच्छे रहते आये है। भारत की स्वतन्त्रता का राष्ट्रवादी चीन के प्रेसीडेण्ट च्यांग काई शेक ने भी समर्थन किया था। परन्तु दूसरे महायुद्ध के उपरान्त चीन में साम्यवादियों की सत्ता कायम हो गई है। वहां का प्रधान मन्त्री चाउ. एन. लाई (Chow. En. Lai) है। जब वह १९५१ में भारत आया तो भारत के प्रधान मन्त्री पं. जवाहरलाल नेहरू ने पंचशील के सिद्धान्त उसके समक्ष रखे और उसने उनको स्वीकार किया। इससे चीन और भारत में मित्रता के सम्बन्ध स्थापित हुए। चाउ. एन. लाई सन् १९५४ में भारत पुनः आये और भारत व चीन के प्रधान मन्त्रियों का संयुक्त वक्तव्य में प्रकाशित हुआ। इस वक्तव्य का विश्व पर बड़ा प्रभाव पड़ा और इसी वक्तव्य पंचशील के सिद्धान्त सन्निहित थे। सन् १९५३ जुलाई मास में भारत से ३५ सदस्यों का सांस्कृतिक दल तथा १९५६ के सितम्बर में संसदीय दल चीन गया। इस प्रकार दोनों देशों के बीच सम्बन्ध उत्तरोत्तर अच्छे होते चले गये। इसी कारण भारत ने संयुक्त राष्ट्रसंघ में लाल चीन(Red China) को सदस्य बनाने पर पूरा जोर दिया।

परन्तु आजकल चीन के सम्बन्ध भारत से अच्छे नहीं है। चाऊ. एन. लाई आजकल साम्राज्यवादी क्षुधा से पीड़ित है। वह तिब्बत के आधीन भारत की सीमा में प्रवेश कर चुका है। भारत ने अभी तक भी उसको ईंट का जवाब पत्थर से नहीं दिया है। किन्तु चीन भारत का विरोधी बना हुआ है और वह आजकल पाकिस्तान से भी पेक्ट करने पर उतारू हो रहा है। अतः भारत के पड़ौसी राष्ट्रों में केवल चीन ही एक ऐसा देश है जिससे कि भारत के सम्बन्ध अच्छे नहीं है।

भारत का विकास

भारत को विश्व के पिछड़े राष्ट्रों में से गिना जाता है यहां आर्थिक विकास अवरुद्ध तथा बेकारी मुंह फाड़े खड़ी है। इसके अतिरिक्त भारत एक कृषि प्रधान देश होता हुआ भी कृषि में पिछड़ा हुआ है। भारत के इन अभावों को हमारी राष्ट्रीय सरकार ने समझा तथा उनको दूर करने की नीयत से सन् १९५० में एक प्लानिंग कमीशन (Planning Commission) की स्थापना हुई। इस कमीशन के अध्यक्ष पं० जवाहरलाल नेहरू तथा उपाध्यक्ष वी. टी. कृष्णमाचारी थे। इस प्लानिंग कमीशन के नेतृत्व में तीन पंचवर्षीय योजनाएं बन चुकी हैं जिनमें से प्रथम दो समाप्त होने को हैं और तीसरी लागू होने वाली है।

प्रथम पंचवर्षीय योजना—यह योजना १९५१ में लागू हुई उसमें २३५६ करोड़ रुपये खर्च हुए। इस योजना के अन्तर्गत ३७२ करोड़ कृषि तथा सामुदायिक योजना में, ६६१ करोड़ सिचाई तथा विद्युत शक्ति में, ५४७ करोड़ उद्योग व खनिज में, ५५६ करोड़ यातायात तथा संचार में, १७९ करोड़ सामाजिक सेवाओं में तथा ४१ करोड़ अन्य कार्यों में खर्च किए गये। इस योजना की सफलता से भारत की आय में १८ प्रतिशत वृद्धि हुई। भारत अपनी दयनीय खाद्य-समस्या को सुधार सका। विदेशों से व्यापार करने हेतु २१ नवीन जलपोत बनाये गये तथा १०० रेल के इंजिन बनाये गये। सिन्दरी में खाद का तथा पिम्परी (Pimpri) में पैनिसिलीन के कारखाने खोले गये। इस योजना के अन्तर्गत प्राथमिक शिक्षा का प्रमुख रूप से विकास हुआ। इनके अलावा सिंचाई के साधनों को उपलब्ध बनाने के लिए जगह जगह बांध बनाये गये।

द्वितीय पंच वर्षीय योजना—दूसरी योजना १९५६ में लागू की गई। इसमें ४८ अरब रुपये व्यय करने की व्यवस्था थी। दूसरी योजना में बड़े उद्योगों पर विशेष जोर दिया गया। परन्तु सिंचाई के महत्व की अवहेलना नहीं की गई। इस योजना के अन्तर्गत् भाकरा बांध, हीरा कुंड बांध, दामोदर घाटी योजना आदि सब सम्पूर्ण हो जावेंगे। दूसरी योजना से शिक्षा का विकास भी पर्याप्त मात्रा में हुआ। टेकनिकल शिक्षा की ओर भी ध्यान समुचित रूप में दिया जा रहा है। एक प्रकार से देखा जाय तो हम द्वितीय योजना को प्रथम योजना का पूरक कह सकते हैं। १९६२ से तृतीय योजना आरंभ होने की है।

निष्कर्ष—हमें स्पष्ट है कि भारत को स्वतन्त्र हुए १४ वर्ष समाप्त होने को है। इन गत १४ वर्षों में भारत का सर्वोन्मुखी विकास हुआ है। यह सत्य है कि इन योजनाओं को कार्यान्वित करने में भारत को विभिन्न देशों से ऋण लेना पड़ रहा है

और यहां के निवासी विभिन्न करों से दबे आ रहे हैं। परन्तु यह सब होते हुए भी हमारा देश प्रगति के मार्ग पर अग्रसर हो रहा है। यदि उसकी प्रगति में किसी प्रकार की बाधा उत्पन्न होती है तो केवल हमारी अनैतिकता के कारण होती है। सन् १९५५ में भारत से लौटते हुए अपने विदाई भाषण में रूस के प्रधान मन्त्री श्री बुलगानिन (Bulganin) ने कहा था, "भारत अपने इतिहास के एक बहुत ही महत्वपूर्ण दौर से गुजर रहा है। औपनिवेशिक दासता के लम्बे युग के पश्चात् भारतीयों ने अपने भाग्य का आप निर्माण करने का अधिकार पहली बार प्राप्त किया। राजनैतिक स्वाधीनता के इन कुछ वर्षों में भारत ने बड़े बड़े काम कर दिखाये हैं। अब भारत महत्वपूर्ण अन्तर्राष्ट्रीय समस्याओं के सुलझाने में प्रशंसनीय योग दे रहा है। भारत ने अपनी अर्थ व्यवस्था के विकास और औद्योगिक निर्माण में भी महान सफलताएँ प्राप्त की हैं।" इंगलैण्ड की रानी एलीजाबेथ द्वितीय (Elijabeth II) ने भी अपनी इस वर्ष की भारत यात्रा में भारत की सर्वोमुखी प्रगति पर सन्तोष व्यक्त किया है।

अध्याय-सार

प्रस्तावना—ब्रिटिश सरकार का भारत पर प्रभुत्व १८५८ से १९४७ के १४ अगस्त तक रहा। इस समय मुस्लिम लीग ने पाकिस्तान प्राप्ति के लिए हिंसक नीति का अवलम्बन किया।

भारत का स्वतन्त्र होना—मुस्लिम लीग द्वारा प्रसारित साम्प्रदायिकता के वातावरण में भारत स्वतन्त्रता कानून पास हुआ और माउन्ट बेटन के सहयोग से भारत १५ अगस्त १९४७ को स्वतन्त्र हुआ।

स्वतन्त्र भारत की कठिनाइयां—भारत को स्वतन्त्र होते ही इन कठिनाइयों का सामना करना पड़ा (१) आबादी की अदला बदली, (२) देशी राज्यों का संघ में विलय, (३) शरणार्थियों का बसाना व (४) काश्मीर की समस्या।

भारत के विधान की विशेषताएं—(१) संविधान सबसे बड़ा है (२) संघात्मक, (३) धर्मनिरपेक्ष, (४) मौलिक अधिकार, (५) निर्देशक तत्व, (६) स्त्री व पुरुषों को समान आयु पर वयस्क मताधिकार प्राप्त होना,(७) विश्व के संविधानों का मिश्रण, (८) १९३५ के सुधार कानून से प्रभावित, (९) स्वतन्त्र न्यायालय व, (१०) सम्प्रदायिकता व छुआछूत से परे है।

भारत के राष्ट्रपति—भारत के प्रथम राष्ट्रपति डा० राजेन्द्रप्रसाद बने। आपका जन्म १८८४ में हुआ था। आरम्भ से आप प्रतिभावान छात्र सिद्ध हुए। अध्ययन समाप्त कर आपने अध्यापन का कार्य किया तथा तदुपरान्त वकालत की।

कानूनवेत्ता की हैसियत से आपने अच्छी कीर्ति पाई तथा १६२० में आप कांग्रेस में सम्मिलित हो गये। कांग्रेस में रहकर आपने देश की अच्छी सेवा की है। उन सेवाओं से रीझकर ही देशवासियों ने आपको १६५० में भारत का प्रथम राष्ट्रपति निर्वाचित किया और आप अब तक इस पद को सुशोभित कर रहे हैं। आपके इस प्रशासन काल में भारत ने पर्याप्त उन्नति की है और प्रथम व द्वितीय पंचवर्षीय योजनाओं के अन्तर्गत भारत का औद्योगिक विकास भी हो रहा है।

भारत के प्रधान मन्त्री और उनकी विदेश नीति—भारत के प्रथम प्रधान मन्त्री पं० जवाहरलाल नेहरू बने हैं। आप देश के परम सेवक तथा कांग्रेस के कर्णधार है। भारत का विदेश विभाग आपके ही अधीन है। आपकी विदेश नीति के सिद्धांत ये हैं-(१) विश्व के सभी देशों से मित्रता रखना, (२) एशिया के देशों की स्वाधीनता का समर्थन, (३) रूस व अमेरिका से तटस्थ रहना, (४) U.N.O. के नियमों का पालन, (५) विश्वशान्ति का समर्थन, (६) सैन्य सन्धियों का विरोध तथा रंग भेद की नीति का बहिष्कार।

भारत पं० नेहरू के नेतृत्व में अन्तर्राष्ट्रीय जगत में बढ़ रहा है। संयुक्त राष्ट्रसंघ के उद्देश्यों की पूर्ति में वह अपना अपूर्व सहयोग दे रहा है। कोरिया, मिश्र, तथा कांगो की समस्या के समाधान में सहयोग दिया तथा लालचीन को संघ का सदस्य बनाने का प्रयास किया। चीन से मित्रता करने के लिए पंचशील के सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया। किन्तु खेद है कि भारत चीन से अच्छे सम्बन्ध नहीं बनाये रख सका और आज लालचीन व पाकिस्तान के सिवाय भारत के सभी पड़ोसी राष्ट्रों से सम्बन्ध अच्छे हैं। भारत उनसे अच्छे सम्बन्ध बनाये रखने के लिए विभिन्न समय पर सन्धियां करता रहता है तथा अपने विभिन्न प्रकार का माल वहां भेजता है तथा वहां से आने वालों का स्वागत करता है। सैनिक सन्धियां में विश्वास नहीं रखता। जिस प्रकार भारत ने (U.N.O.) को उसके कार्य-सम्पादन करने में सहयाग दिया है उसी प्रकार (U.N.O.) ने भी भारत की विभिन्न प्रकार से सहायता की है।

भारत स्वतन्त्रता प्राप्ति से पूर्व कॉमनवेल्थ का सदस्य एक दासरूप में था किन्तु आज वह एक स्वतन्त्र राष्ट्र की दशा में इंगलैंड के समान ही उसका सदस्य है।

भारत का विकास—स्वतन्त्रता प्राप्ति के उपरान्त अपनी राष्ट्रीय सरकार की अध्यक्षता में भारत सर्वोन्मुखी विकास कर रहा है। इस विकास में प्रथम पंच वर्षीय योजना तथा द्वितीय पंचवर्षीय योजना से अपूर्व सहयोग प्राप्त हुआ है। इन दोनों योजनाओं की सफलता से भारत की अनेक कठिनाइयां स्वयं हल हो जावेंगी। १६६१ के उपरान्त भारत के विकास में तृतीय पंचवर्षीय योजना सहायक होगी ऐसी हमारी मान्यता है।

विकास—भारत के गत् १४ वर्षों के कार्यों व उसकी प्रगति को देखकर हम कह सकते हैं कि भारत निश्चित रूप से सभी क्षेत्रों में विकसित हो रहा है।

योग्यता—प्रश्न

(१) भारत को स्वतन्त्रता किन परिस्थितियों में प्राप्त हुई ?

Under what circumstances did India get her independence ?

(२) भारत के संविधान की विशेषताओं का उल्लेख कीजिए।

Enumerate the salient features of Indian constitution.

(३) भारत की विदेश नीति के क्या सिद्धान्त हैं और पं० जवाहरलाल नेहरू ने इसमें क्या भाग लिया है ?

What are the principles of India's foreign policy ? What part has been played by Pt. Jawahar Lal Nehru ?

(४) स्वतन्त्रता प्राप्ति से भारत की विदेश नीति पर क्या प्रभाव पड़ा ? संक्षेप में बताइये।

Trace briefly the foreign policy of India since her independence.

(५) भारत के विकास में प्रथम पंचवर्षीय तथा द्वितीय पंचवर्षीय योजनाओं ने किस प्रकार सहयोग दिया है ?

How did the First Five Year and the Second Five Year plan help India in her development ?